# कादम्बरी

## कथामुखम्

डा. बाबूराम त्रिपाठी

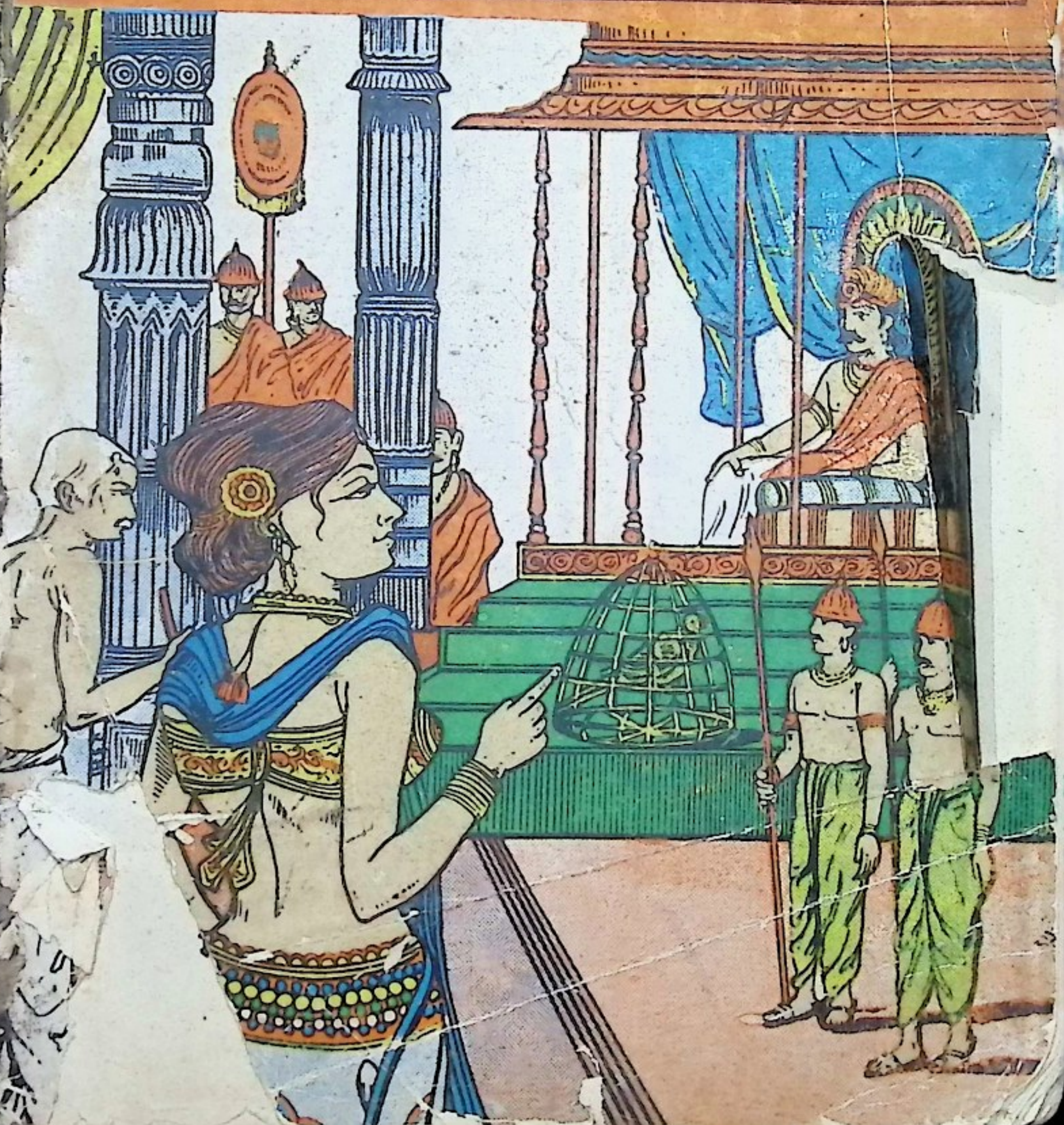

महाकवि श्रीबाणभट्ट विरचितां

# कादम्बरी

[ कथामुखम् ]

Poonam Kolis

Kashs

लेखक
डॉ. चन्द्रशेखर द्विवेदी
एम. ए., पी-एच. डी.,
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
कासगंज कालिज, कासगंज (एटा)

प्रा. लेखक
डॉ. बाबूराम त्रिपाठी
शास्त्री, एम. ए., (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच. डी.
संस्कृत विभागाध्यक्ष (नि.)
सेण्ट जॉन्स कॉलिज, आगरा

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
POST BOX No. 2206
Bangalow Road, 9-U.B. Jawahar Nagar
(Near Kirorimal Collage)
Delhi-110007 (India)
Phone No 3911617, 3958790

महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा-२

[ मूल्य : ६५.००

"सरल अध्ययनों एवं गाइडों से आपको,
सरलता तो हो सकती है, किन्तु
जीवन में सफलता कदापि
नहीं मिल सकती।"

प्रकाशक :
महालक्ष्मी प्रकाशन
प्रस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता
शहीद भगतसिंह मार्ग, आगरा-२८२००२
बिक्री केन्द्र : कंचन मार्केट (फर्स्ट फ्लोर)
हॉस्पीटल रोड, आगरा-२८२००३

मूल्य : पिच्यानवे रुपये मात्र

मुद्रक :
कमल आफसैट प्रिन्टर्स, आगरा

# अनुक्रमणिका


| विषय | पृष्ठ संख्या |
| --- | --- |
| **भूमिका भाग** | १ -- ४४ |
| संस्कृत साहित्य | २ |
| संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास | ३ |
| गद्य काव्य (साहित्यिक गद्य) संक्षिप्त परिचय | ४ |
| संस्कृत गद्य साहित्य के दो रूपः कथा एवं आख्यायिका | ७ |
| महाकवि बाणभट्ट | ९ |
| बाण की रचनाएँ | १२ |
| कादम्बरी का कथासार | १३ |
| कादम्बरी कथा का मूल-स्रोत | १५ |
| बाणभट्ट की काव्य-योजना | १६ |
| बाणभट्ट की काव्यकला | १८ |
| कादम्बरी के पात्र | २१ |
| कादम्बरी में रस परिपाक | २७ |
| प्रकृति चित्रण | ३३ |
| बाणभट्ट की शैली | ३६ |
| कादम्बरी में भावपक्ष एवं कलापक्ष | ३८ |
| बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम् | ४० |
| कादम्बरी कथामुख | ४४ |
| **मूल भाग** | १ -- ४४६ |
| मंगलाचरणम् | १ |
| सज्जन दुर्जनयोः स्तुतिनिन्दे | ८ |
| कथा प्रशंसा | १२ |
| कविवंश वर्णनम् | १६ |
| शूद्रक वर्णनम् | ३३ |
| चाण्डालकन्या वर्णनम् | ९४ |
| शुकवर्णनम् | ११४ |

| विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| सभाभंग वर्णनम् | १२६ |
| शूद्रक स्नान वर्णनम् | १३७ |
| शूद्रक नित्यकृत्यवर्णनम् | १५० |
| सभामण्डपगमनम् | १५५ |
| राज्ञः शुकं प्रति जिज्ञासा | १६८ |
| विंध्याटवी वर्णनम् | १७१ |
| अगस्त्याश्रम वर्णनम् | १९४ |
| पम्पासरो वर्णनम् | २०९ |
| शाल्मलीतरु वर्णनम् | २२१ |
| शुकजन्मादि वर्णनम् | २३० |
| प्रभात वर्णनम् | २४० |
| शवर मृगया वर्णनम् | २५८ |
| शवर सैन्य वर्णनम् | २७३ |
| शवर सेनापति वर्णनम् | २७७ |
| शवर चरित्र वर्णनम् | ३०० |
| शुकशावकनिपात वर्णनम् | ३०७ |
| शुकावस्था वर्णनम् | ३१२ |
| शुकेन स्वावस्थावर्णनम् | ३१७ |
| हारीत वर्णनम् | ३३१ |
| शुकजलपानादि वर्णनम् | ३४६ |
| जाबाल्याश्रम वर्णनम् | ३५१ |
| अथ जाबालि वर्णनम् | ३८७ |
| शुद्रकस्नान वर्णनम् | ४०३ |
| जावालिवर्णनम् | ४१५ |
| सन्ध्यावर्णनम् | ४२८ |
| रात्रिवर्णनम् | ४३७ |

## परिशिष्ट भाग

| | |
|---|---|
| | ४४७ – ४५० |
| परिशिष्ट १ – सूक्ति संग्रह एवं अन्तः कथाएँ | ४४७ |
| परिशिष्ट २ – वाण की प्रशस्ति में कतिपय सुभाषित | ४४७ |
| परिशिष्ट ३ – महत्त्वपूर्ण प्रश्न | ४४८ |

# कादम्बरी

## भूमिका

अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥

—(आनन्दवर्धन)

संसार में सत्य और शिव को सुन्दरता के साथ प्रस्तुत करने का कार्य केवल कवि ही कर सकता है। कवि की सृष्टि के समक्ष ब्रह्मा की सृष्टि भी तिरस्कृत हो जाती है। काव्यप्रकाशकार ने स्पष्टोल्लेख किया है कि ब्रह्मा की सृष्टि नियतिकृत नियम से आबद्ध, सुखदुःखात्मक, परतन्त्र, मात्र षड् रसों से समन्वित है और उनमें भी सभी रस हृद्य नहीं होते, जबकि कवि की सृष्टि इनसे निर्मुक्त अर्थात् नियतिकृत नियमों से रहित, मात्र आह्लादक, स्वतन्त्र, नव (९ संख्यांक) रुचिकर रसों से समन्वित होती है।[1] यही कारण है कि मानव की सर्वविधि आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा की अभिव्यक्ति, प्रचार, प्रसार एवं परिरक्षण का एकमात्र एवं सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य है। भर्तृहरि ने इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए ही यह लिखा था कि साहित्य, संगीत एवं कला से रहित मानव समाज पूंछ एवं सींगों से रहित पशु समाज ही होता है—

"साहित्य संगीत कलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः"

विश्व का प्राचीनतम साहित्य संस्कृत साहित्य है यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। भारतीय सामाजिक जीवन का चरम लक्ष्य सदा ही शाश्वत आनन्दोपलब्धि रहा है, अन्य देशों की भांति भौतिक उन्नति के क्षेत्र में जीवनोपयोगी साधनों को जुटाने में ही व्यस्त न रहकर सत्य, शिव और शाश्वत आनन्द की खोज ही भारतीयों के परम उपास्य रहे हैं यह प्राचीन संस्कृत साहित्य के अनुशीलन से प्रमाणित है। वैदिक साहित्य में यदि त्याग, तप, दया, दान, सहानुभूति एवं आचार की पवित्रता का पु[illegible] सन्देश है तो व्यास, वाल्मीकि, भास, कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ, दण्डी और बाण की रचनाओं में विविध आख्यानों, चरित्रों एवं प्रकृति के माध्यम से उपर्युक्त मानवीय मूल्यों की स्थापना कान्तासम्मित उपदेश की सरस शैली के माध्यम से हुई है। अतः लौकिक संस्कृत साहित्य में भारतीय संस्कृति और शिष्टाचार को

1. नियतिकृत नियम रहितां ह्लादैकमयीमनन्य परतन्त्राम्।
नवरस रुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ॥ —काव्यप्रकाश

उदात्त एवं भव्य प्रस्तुति है । यही कारण है कि विश्व की अनेक संस्कृतियाँ समय की क्षितिज रेखा पर उभरीं एवं विलीन भी हो गयीं, किन्तु भारतीय संस्कृति का अविच्छिन्न प्रवाह सहस्राधिक वर्षों से सतत् प्रवहमान है एवं रहेगा । यतः भारतीय संस्कृति का भव्यभवन साहित्य की दृढ नींव पर आधारित है ।

**'साहित्य समाज का दर्पण है'** इस कथन की सत्यता को झुठलाया नहीं जा सकता । सामाजिक उत्क्रान्ति के साथ ही साहित्य में परिवर्तन अवश्यम्भावी है । मध्ययुगीन साहित्य इसका प्रमाण है जिसमें सामयिक राजसिक विलासिता का स्पष्ट प्रतिविम्ब मिलता है । संस्कृत साहित्य की वैदिक काल से प्रवर्तित धारा में उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है । मानवीय मूल्यों को विविध दृष्टियों से देखने एवं जन-सामान्य तक उनको पहुँचाने के लिए संस्कृत कवियों ने विविध मार्ग अपनाये हैं । अतः वैदिक साहित्य के रूप में जहाँ संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं सूत्रों की रचना हुई वहीं लौकिक साहित्य में काव्य को प्रमुख माध्यम बनाया गया ।

काव्य के मुख्यतः दो भेद हुए—श्रव्य एवं दृश्य । दृश्य काव्य का पुनः रूपक एवं उपरूपक के रूप में विभाजन हुआ । श्रव्य काव्य को पद्य, गद्य एवं चम्पू के नाम से त्रिविध विस्तार दिया गया । संक्षेपतः लौकिक संस्कृत साहित्य की विविध धाराओं का ज्ञान निम्नाङ्कित तालिका से मिल सकता है—

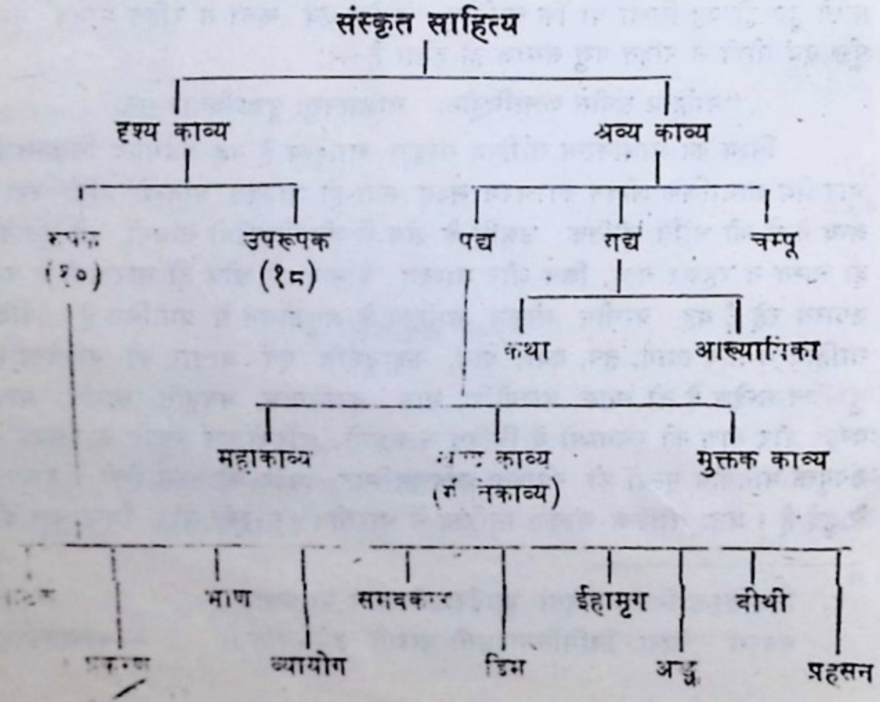

## संस्कृत गद्य साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

प्रायः यह देखा जाता है कि विश्व की समस्त भाषाओं का प्राचीनतम साहित्य अधिकांशतः पद्यबद्ध ही है। संस्कृत साहित्य का आदि उपलब्ध ग्रन्थ ऋग्वेद पद्यमय है। गद्य पद्य की अपेक्षा पश्चाद्‌वर्ती है यह निर्विवाद नहीं है। "संस्कृत गद्य साहित्य का उद्‌भव एवं विकास" विषय पर विचार करने से पूर्व उसके स्वरूप एवं प्रवृत्ति पर दृष्टिपात करना अनिवार्य है।

सामान्यतः संस्कृत गद्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है— १. वैदिक गद्य, २. लौकिक गद्य। वैदिक गद्य सरल, वर्णनात्मक एवं संवादात्मक है उसमें अलंकारों, समास एवं प्रौढ़ि का अभाव है। इसीलिए वैदिक गद्य मात्र गद्य है उसे गद्य साहित्य या गद्य काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। मानवीय चेतना में सुख, दुख, करुणा, क्रोध, भय, विलासादि की मार्मिक अनुभूति होती है। जब हृदय के मर्मस्थल पर इन अनुभूतियों के संवेग का गम्भीर आघात होता है। तब सहसा उन अनुभूतियों से अनुस्यूत भाव प्रकट हो जाते हैं इन्हीं भावों को काव्य कहा जाता है। वैदिक गद्य में इस प्रकार का न तो संवेग है और न ही उसमें अभिव्यञ्जना। अतः वैदिक गद्य मात्र गद्य है काव्य नहीं। गद्य का काव्य रूप में प्रादुर्भाव कब हुआ यह निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता किन्तु उसका परिष्कृत रूप ईसा की छठी एवं सातवीं शती के दण्डी, सुबन्धु और बाण के गद्यों में देखने को मिलता है। सामान्यतः गद्य का उद्‌भव कब हुआ यह भी विचारणीय है अतः गद्य के वैदिक एवं लौकिक दोनों रूपों का सामान्य परिचय प्राप्त करना भी अनिवार्य है।

**गद्य के विविध रूप**—संस्कृत गद्य को मुख्यतः ५ भागों में बाट सकते हैं— (१) वैदिक गद्य, (२) दार्शनिक गद्य, (३) व्याख्यात्मक गद्य, (४) लोक कथात्मक गद्य एवं (५) साहित्यिक या अलंकृत गद्य।

(१) **वैदिक गद्य**—संस्कृत गद्य का सर्वप्रथम दर्शन वैदिक वाङ्मय में मिलता है। शुक्ल यजुर्वेद, कृष्ण यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में सर्वप्रथम गद्य के दर्शन होते हैं। इस गद्य में सरलता एवं वर्णनात्मकता है यत्र-तत्र उपमा और रूपक अलंकारों का भी प्रयोग है। अतः भारत में पद्य एवं गद्य धाराओं का प्रवर्तन लगभग एक-साथ ही हुआ है। पीटर्सन आदि पाश्चात्य विद्वानों का यह कथन सत्य नहीं है कि भारतीय गद्य काव्य प्रत्यक्षतः यूनानी गद्य काव्य के अनुकरण पर विकसित हुआ था।

वैदिक गद्य का विकास चतुर्विध हुआ—(१) संहिता ग्रन्थों में, (२) ब्राह्मण ग्रन्थों में, (३) आरण्यक ग्रन्थों में एवं (४) निरुक्तादिवेदाङ्गों में।

(२) **दर्शनिक गद्य**—विविध दार्शनिक विचारधाराओं की प्रस्तुति में गद्य का भरपूर प्रयोग हुआ है किन्तु इनमें साहित्यिक कलात्मकता का अभाव है। इस गद्य शैली में—उपनिषदों का गद्य तथा वाचस्पति मिश्र, श्रीहर्ष, चित्सुखाचार्य आदि के वेदान्त ग्रन्थों का गद्य, गङ्गेश उपाध्याय, गदाधर भट्ट, मथुरानाथ आदि के नव्य-

न्याय का जटिल गद्य समाहित है। इस गद्य में तार्किकता के साथ अभिनव पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है।

(३) **व्याख्यात्मक गद्य**—संस्कृत गद्य की वैचारिक धारा का पल्लवन पतञ्जलि के महाभाष्य, शबर के मीमांसाभाष्य एवं शङ्कर के शारीरक भाष्य में मिलता है। इन ग्रन्थों को भी यद्यपि दार्शनिक माना जाता है फिर भी संक्षिप्त सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत करने के कारण इन्हें व्याख्यात्मक गद्य की संज्ञा दी गयी है।

(४) **लोक कथात्मक गद्य**—संस्कृत भाषा में लोक कथाओं एवं नीति-कथाओं का प्रभूत सृजन हुआ है। इनमें गद्य का आधिक्येन किन्तु पद्य का स्वल्प प्रयोग है। इन कथा ग्रन्थों का गद्य सरल, स्वाभाविक, अनलंकृत एवं वर्णनात्मक है। कथा ग्रन्थों में प्रयुक्त गद्य का उद्देश्य लोक को व्यवहार की शिक्षा देना एवं जन-सामान्य का मनोरंजन करना है। फलतः इनमें प्रयुक्त गद्य अत्यन्त सरल है।

(५) **साहित्यिक गद्य**—"**ओजः समास भूयस्त्वम् एतद् गद्यस्य लक्षणम्**" इस लक्षण के अनुसार समासबहुल, ओज गुण विशिष्ट रचना को गद्य कहा जाता हैं। लक्षण से स्पष्ट है कि पूर्वोक्त गद्य प्रकारों में समास बहुलता एवं ओजात्मक प्रौढ़ि न होने से उन्हें साहित्यिक गद्य नहीं माना जा सकता। साहित्यिक गद्य में कवि की सम्पूर्ण प्रतिभा का व्यापक उपयोग होता है अतः इस प्रकार के गद्य की अपेक्षा पद्य रचना को अपेक्षाकृत सरल माना गया है क्योंकि उसमें सीमित छन्द में लयात्मक सरणि शब्दचयन के लिये सुविधाजनक होती है। इसीलिये "**गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति**" की उक्ति को मान्यता मिली है।

संस्कृत गद्य के उपर्युक्त जिन ५ रूपों का उल्लेख किया गया है, उसके अतिरिक्त पुराणों, वैज्ञानिक ग्रन्थों, ज्योतिष्, आयुर्वेद एवं पाणिनि आदि वैय्याकरणों के ग्रन्थों में भी गद्य उपलब्ध होता है। व्याकरण के अष्टाध्यायी आदि ग्रन्थों में गद्य का संक्षिप्ततम रूप है जिसे सूत्र पद्धति का गद्य माना जाता है। पौराणिक गद्य में कहीं दार्शनिकता है तो कहीं विशुद्ध साहित्यिकता क्योंकि उनमें समासाधिक्य न होने पर भी अलंकारों की मनोरम छटा है। कल्पना की मधुर सृष्टि एवं वर्णनवैचित्र्य है।

## गद्य काव्य (साहित्यिक गद्य) संक्षिप्त परिचय

संस्कृत गद्य साहित्य का जो विकसित रूप सुबन्धु, दण्डी बाण के काव्यों में उपलब्ध होता है उसे देखकर यह सहज अनुमान होता है कि संस्कृत गद्य का काव्यात्मक रूप अति प्राचीनकाल में प्रचलित हो चुका होगा। यह दुर्भाग्य की बात है कि वह प्राचीन गद्यकाव्य आज उपलब्ध नहीं है फिर भी विविध ग्रन्थों में किये गये निर्देशों से कुछ प्राचीन गद्यकाव्यों का परिचय मिलता है।

(क) प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन (ई० पू० चौथी शती) ने "**लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्-आख्यानाख्यायिकेतिहास पुराणेभ्यश्च**" लिखकर यह स्पष्ट कर दिया

है कि उन्हें आख्यान, आख्यायिका, कथा एवं इतिहास पुराणादि का परिचय था। इससे ई० पू० चतुर्थ शती में कथा एवं आख्यायिका रूप गद्य काव्यों की सत्ता थी यह स्पष्ट है।

(ख) महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि (ई० पू० द्वितीय शतक) ने वासवदत्ता सुमनोत्तरा और भैमरथी नामक आख्यायिकाओं को उद्धृत किया है—**"अधिकृत्य कृते ग्रन्थे, बहुलं लुग्वक्तव्यः। वासवदत्ता सुमनोत्तरा न च भवति भैमरथी"**।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ई० पू० चतुर्थ शती में संस्कृत गद्यकाव्यों की सत्ता थी, किन्तु आज ये ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

(ग) बाणभट्ट (७वीं शती) ने हर्ष चरित में **"भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते"** लिखकर भट्टारहरिचन्द्र का गद्य काव्यकार के रूप में उल्लेख किया है किन्तु ये हरिचन्द्र कब हुए एवं इनकी कृति का क्या नाम है कुछ ज्ञात नहीं। फिर भी बाण से पूर्व गद्य काव्यकार के रूप में उनकी सत्ता सुनिश्चित है।

बाण ने हर्ष चरित में ही कवि गुणाढ्य (७८ ई० पू०) की वृहत्कथा की आश्चर्यजनक रचना कहकर प्रशंसा की है। अतः यह सन्देह होता है कि शायद वृहत्कथा का कुछ अंश गद्यमय भी रहा हो।

(घ) **२६ ई० पू० से १६५ ई० तक** के आन्ध्रभृत्य राजाओं के काल में निम्नलिखित गद्य साहित्य की रचना का उल्लेख मिलता है—

(१) तरङ्गवती (आख्यायिका) श्री पालित कृत
(२) मनोवती ,, अज्ञात लेखक
(३) शातकर्णीहरण ,, ,, ,,

तरङ्गवती की प्रशंसा धनपाल की तिलकमंजरी एवं अभिनन्द के रामचरित ग्रन्थ में की गयी है—**"पुण्या पुनाति गङ्गेव गां तरङ्गवती कथा"**। (तिलक मञ्जरी)

भोजराज के शृङ्गार प्रकाश में मनोवती और शातकर्णीहरण की प्रशंसा है। अवन्तिसुन्दरी कथा (दण्डीकृत) में भी मनोवती का उल्लेख है।

(ङ) **भोजराज** (११वीं शती) ने शृङ्गार प्रकाश में वररुचिकृत चारुमती गद्यकाव्य का उल्लेख किया है।

(च) **जल्हण** (१२वीं शती) द्वारा रचित सूक्ति मुक्तावली में (१) कुलशेखर वर्मा द्वारा रचित आश्चर्यमञ्जरी आख्यायिका एवं (२) शीला भट्टारिका विरचित पाञ्चाली रीति विशिष्ट गद्य काव्य का उल्लेख किया है।

(३) **शूद्रक कथा**—रामिल एवं सौमिल विद्वानों द्वारा लिखित इस कथा ग्रन्थ को अर्धनारीश्वरोपम बताया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त गद्य ग्रन्थों का भिन्न-भिन्न विद्वानों की कृतियों में उल्लेख हुआ है जो इस बात का प्रमाण है कि संस्कृत गद्य साहित्य की परम्परा अत्यन्त

आचार्य रुद्रट कथा के आरम्भ में गुरु या देवता की वन्दना एवं आख्यायिका में कविवंश का परिचय देना मुख्य मानते हैं। साथ ही उनका मत है कि कथा जब संस्कृत में लिखी जाती है तो वह गद्यमय किन्तु प्राकृत में लिखी जाने पर पद्यमय होती है।

उपर्युक्त मतों के आधार पर कथा और आख्यायिका के भेदक एवं नियामक तत्त्वों को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है—

| | कथा | आख्यायिका |
|---|---|---|
| १. | कथा कवि कल्पित होती है। | ऐतिहासिक घटना पर आधारित होती है। |
| २. | वक्ता नायक या अन्य पात्र होता है। | आख्यायिका का वक्ता स्वयं नायक होता है अतः यह आत्मकथावत् होती है। (रुद्रट नायक का वक्तृत्व अनिवार्य नहीं मानते। |
| ३. | उच्छ्वास आदि के रूप में कोई विभाजन नहीं होता। | इसका विभाजन उच्छ्वासों में होता है। |
| ४. | वक्त्र, अपरवक्त्र आदि छन्दों का प्रयोग नहीं होता। (विश्वनाथ यत्र-तत्र इन छन्दों का एवं आर्या का प्रयोग मानते हैं।) | वक्त्र, अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है, जो भावी कथा के सूचक होते हैं। |
| ५. | भाषा संस्कृत या प्राकृत। | भाषा केवल संस्कृत। |
| ६. | रचना केवल गद्य में। | यत्र-तत्र पद्यों का प्रयोग। |
| ७. | स्वचरित का वर्णन नहीं होता। | स्वचरित तथा अन्य कवि-चरितों का वर्णन होता है। |
| ८. | कन्याहरण, कन्यालाभ, संग्राम प्रकृति एवं विप्रलम्भ वर्णन होता है। | इनका वर्णन नहीं होता। (भामह के अनुसार इनका वर्णन होता है) |
| ९. | कथा के आरम्भ में देव, गुरु वन्दना होती है। | आख्यायिका के प्रारम्भ में कविवंश का वर्णन अवश्य होता है। |

कथा और आख्यायिका के उपर्युक्त जिन भेदक तत्त्वों का उल्लेख किया गया है उनका मुख्य आधार बाणभट्ट की हर्षचरित और कादम्बरी रचनाएँ हैं। दण्डी ने यद्यपि भेद का कथन किया है किन्तु वे दोनों विधाओं को एक जातीय मानकर उनमें नाममात्र का भेद ही स्वीकार करते हैं—**"तत्कथाऽऽख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता ॥"** प्रो० एस० के० डे भी दण्डी के इस मत से सहमत हैं। उनकी दृष्टि से कथा और आख्यायिका में भेद कर पाना सर्वथा असम्भव है।

आधुनिक काल में कथा और आख्यायिका के रूप में गद्य काव्य का विभाजन विद्वानों को अधिक रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। डा० कपिलदेव द्विवेदी ने कात्यायन और पतञ्जलि के उदाहरणो के आधार पर गद्य-काव्य का विभाजन इस प्रकार किया है—

(१) **काल्पनिक कथाएँ**—घटना विशेष पर आधारित कवि कल्पित कथाएँ जैसे—बृहत्कथा, कथा सरित्सागर आदि।

(२) **नीति कथाएँ**—वृक्ष, वनस्पति, पशु, पक्षी आदि के माध्यम से कल्पित उपदेशात्मक कथाएँ जैसे—पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, शुक सप्पति आदि ।

(३) **वैयक्तिक या जीवनवृत्त से सम्बद्ध कथाएँ**—ऐतिहासिक या ऐतिहासिक प्राय व्यक्ति सम्बद्ध कथाएँ । जैसे—हर्षचरित, जातकमाला, सिंहासन द्वात्रिंशिका, अवदान शतक आदि ।

डा० कपिलदेव द्विवेदी के अनुसार महाभाष्य में उल्लिखित **आख्यान कथा (कहानी) साहित्य का परिचायक है** एवं आख्यायिका संस्कृत के शृङ्गार प्रधान उपन्यास साहित्य का बोधक है । संस्कृत उपन्यासों की मुख्यतः तीन विशेषताओं का उल्लेख उन्होंने किया है—(१) शृङ्गार प्रधानता (२) ग्रन्थ का नाम प्रायः नायिका के नाम पर एवं (३) भाषा में सौष्ठव, अलंकरण एवं रसाभिव्यक्ति के साथ मनोज्ञता । इनके आधार पर संस्कृत उपन्यासों (आख्यायिका) की श्रेणी में उन्होंने—चारुमती, वासवदत्ता, कादम्बरी, तरङ्गवती, मनोवती, आश्चर्यमञ्जरी एवं मन्दारमञ्जरी का उल्लेख किया है ।

रचना की दृष्टि से आचार्य विश्वनाथ ने संस्कृत गद्य काव्य के ४ भेद किये हैं—

(१) मुक्तक—समास रहित गद्य प्रधान ।
(२) वृत्तगन्धि—यत्र-तत्र छन्दोमयता का प्रवाह ।
(३) उत्कलिकाप्राय—दीर्घ समास बहुल पदावली ।
(४) चूर्णक—छोटे-छोटे समासों से युक्त ।

संस्कृत गद्य काव्य का विभाजन चाहे जिस रूप में किया गया हो यह निर्विवाद है कि संस्कृत पद्य काव्य की अपेक्षा संस्कृत गद्य काव्यों का प्रणयन बहुत कम हुआ है । यदि दण्डी, सुबन्धु और बाण की कृतियों को अलग कर दिया जाय तो शायद संस्कृत काव्य जगत में गद्य काव्य विद्या का पृथक् अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा । दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट की रचनाओं का और इनमें भी मुख्यतः बाणभट्ट की कादम्बरी और हर्षचरित का विशेष महत्त्व है ।

## महाकवि बाणभट्ट

**जीवन-परिचय**—संस्कृत कवियों की सामान्यतः यह प्रवृत्ति रही है कि वे अपने विषय में कुछ नहीं लिखते किन्तु सौभाग्य की बात है कि बाणभट्ट ने इस पद्धति से हटकर अपने वंश, आश्रयदाता एवं अपने विषय में पर्याप्त जानकारी दी है। हर्षचरित के प्रथम दो उच्छ्वासों एवं कादम्बरी के आरम्भिक १० से २० श्लोकों में इन्होंने अपनी आत्मकथा एवं वंश का सुविस्तृत परिचय दिया है ।

**बाण का वंश**—हर्षचरित के अनुसार बाणभट्ट के वंश प्रवर्तक वत्स थे जो दधीचि और सरस्वती (वाग्देवता) के पुत्र सारस्वत के चचेरे भाई थे । सारस्वत ने

वत्स के प्रति प्रीतिभाव रखकर शोण नदी (सोन नदी) के समीप प्रीतिकूट नामक ग्राम बसाया। ब्राह्मणों की बहुलता के कारण इस ग्राम को ब्राह्मणाधिवास भी कहा जाता था। वर्तमान गया जिले के देवकुण्ड (च्यवनाश्रम) के समीप प्रीतिकूट की सत्ता थी ऐसा आज विद्वान् लोग मानते हैं। ब्राह्मण कुलोत्पन्न वत्स से आगे वंश की वृद्धि हुई जिसमें वत्स से वात्स्यायन, वात्स्यायन से कुबेर, कुबेर के ४ पुत्रों में पाशुपत से अर्थपति हुए। अर्थपति के ११ पुत्रों में चित्रभानु से बाण का जन्म हुआथा। बाण की माता का नाम राजदेवी एवं पुत्र का नाम भूषण भट्ट या पुलिन भट्ट था किन्तु बाण ने अपने पुत्र की कोई चर्चा नहीं की है। अतः समीक्षकों को सन्देह का अवसर मिल गया है।

**बाण का वंशवृक्ष**

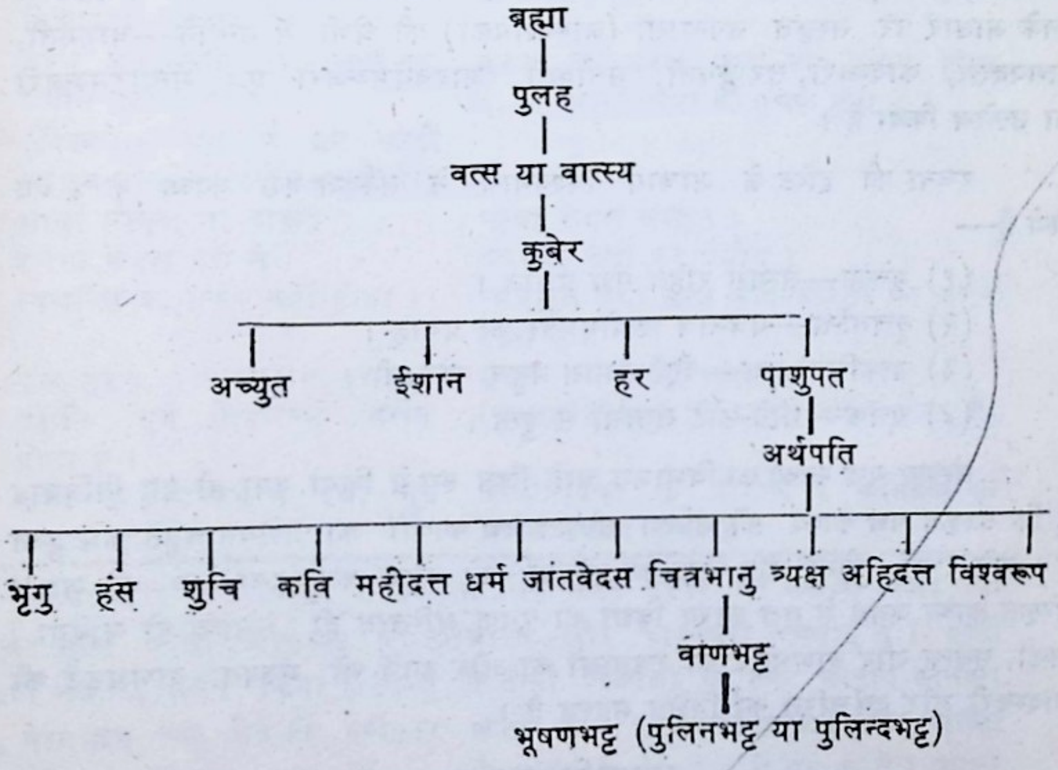


वाणभट्ट का पूरा वंश वेदशास्त्रादि में पारंगत था। वाण के पूर्वज कुबेर के यहाँ पढ़ने आने वाले छात्र वेदपाठ करते समय सशंकित रहते थे कि कहीं उस घर के तोता मैना उन्हें अशुद्ध पाठ करने पर टोक न दें। वाण को विद्या अपने पूर्वजों से विरासत के रूप में मिलि थी।

**बाण की बाल्यावस्था**—वाण की अल्पायु में ही माता का देहान्त हो गया था और जब वे १४ वर्ष के थे तब पिता का साया भी उठ गया। संरक्षक के अभाव में बाण देशाटन के लिए निकल पड़े। उस समय उनके बहुत से मित्र बने

जिनमें विद्वान, नर्तक, संगीतज्ञ आदि सभी थे। मित्रों की लम्बी सूची हर्षचरित में दी गयी है। देशाटन के समय बाण ने अनेक राजकुलों, गुरुकुलों, तीर्थों आदि का भ्रमण कर भारतीय जनमानस को बहुत समीप से देखा था। विद्वान वंश की सन्तान के घुमक्कड़ स्वरूप को देखकर समाज में उनका उपहास भी किया गया। पर्याप्त भ्रमण के पश्चात् जब वे प्रीतिकूट पुनः लौटे तो एक दिन उन्हें महाराजा हर्षवर्धन के भाई कृष्ण का सन्देश मिला कि उन्हें हर्षवर्धन के दरबार में पहुँचना चाहिए। हर्षवर्धन की सभा में पहुँचने पर सम्राट ने **महानयं भुजङ्गः** कहकर उन पर कटाक्ष किया किन्तु बाण के द्वारा प्रदर्शित शिष्टता एवं विद्वत्ता से शीघ्र ही हर्ष का भ्रम दूर हो गया एवं उन्होंने उन्हें राजकीय सम्मान प्रदान कर राजकवि बना लिया। राजाश्रय में जाने से पूर्व ही बाण का विवाह हो चुका था।

**बाणभट्ट का स्थितिकाल (समय)**—बाण स्थाण्वीश्वर (कन्नौज) के प्रसिद्ध सम्राट हर्षवर्धन के सभापण्डित थे अतः बाण के समय निर्धारण में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है। हर्ष का राज्याभिषेक ६०६ ई० में एवं उनकी मृत्यु ६४८ ई० में हुई थी यह इतिहास प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत भ्रमण के समय हर्ष के निकट सम्पर्क में रहा था, उसके वर्णनों एवं ताम्रपत्रों से हर्ष का उक्त काल प्रमाणित है। अतः बाणभट्ट का काल सातवी शती ई० का पूर्वार्द्ध मानना सर्वथा उचित है।

इसके अतिरिक्त ईशा की ८वीं शती से ही बाण का एवं उनकी रचनाओं का संस्कृत ग्रन्थकारों ने आदर के साथ उल्लेख किया है। जिनमें कुछ इस प्रकार हैं—

(१) वामन (८०० ई०) कृत काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में कादम्बरी का सन्दर्भ।

(२) आनन्दवर्धन (८५० ई०) कृत ध्वन्यालोक में कादम्बरी हर्षचरित का उल्लेख।

(३) धनञ्जय (१००० ई०) कृत दशरूपक में बाण एवं उनके काव्य का उल्लेख है।

(४) भोजराज (१०२५ ई०) कृत सरस्वती कण्ठाभरण में बाण के गद्य की प्रशंसा।

(५) क्षेमेन्द्र एवं रूय्यक (१०५० ई०) के ग्रन्थों में बाण का उल्लेख है।

अतः बाणभट्ट का समय ईसा की ७वीं शती का पूर्वार्द्ध निर्धारित है। अन्य कवियों की भाँति इनके समय निर्धारण में अन्तः बहिः साक्ष्य के अधिक अन्वेषण का श्रम नहीं करना है।

**बाण के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में एक किवदन्ती**

कहा जाता है कि बाणभट्ट के श्वसुर प्रसिद्ध कवि मयुर थे। एक दिन प्रातः काल वे बाणभट्ट से मिलने उनके घर गये। बाणभट्ट उस समय अपनी रूठी हुई पत्नी को इन शब्दों के साथ मना रहे थे--कि "हे प्रिये! रात्रि प्रायः बीत चुकी है, क्षीण

शरीर चन्द्रमा लुप्त-सा हो रहा है, यह दीपक निद्रा के वशीभूत हो ऊंघ रहा है किन्तु मेरे प्रणाम करने पर भी तुम अपना क्रोध नहीं छोड़ रही हो।''

''गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी शीर्यत इव,
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो धूर्णत इव।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो.......।''

बाण अभी उपर्युक्त तीन चरण ही पूरे कर पाये थे कि तभी मयूर ने इन तीनों चरणों को सुनकर स्वयं चतुर्थ चरण पूरा कर दिया—

''कुचप्रत्यासत्या हृदयमपि ते चण्डि ! कठिनम् ॥''

''अर्थात् हे क्रोधशीले ! कठोर स्तनों के समीप रहने के कारण तुम्हारा हृदय भी कठोर हो गया है।'' मयूर के द्वारा अपनी पुत्री के प्रति इस प्रकार कथन करने से बाण लज्जित हो गये और क्रोधावेश में उन्होंने मयूर को कोढ़ी (कुष्ठ रोगी) हो जाने का शाप दे दिया। मयूर ने भी बाण को तुरन्त शाप दिया। कुष्ठ रोग—पीड़ित मयूर ने 'सूर्यशतक' एवं बाण ने 'चण्डी शतक' की रचना की और रोग से मुक्ति पायी। शाङ्र्गधर पद्धति में मयूर और बाण दोनों को हर्ष की सभा के प्रतिष्ठित विद्वान बताया गया है। अतः दोनों का समसामयिक होना स्वाभाविक है।

## बाण की रचनाएँ

बाण की रचनाओं के विषय में विद्वानों में निश्चित ऐकमत्य नहीं है। किन्तु **हर्षचरित, कादम्बरी और चण्डीशतक** को सभी विद्वान् बाण की कृतियाँ मानते हैं। इन कृतियों के अतिरिक्त निम्न ग्रन्थ विचारणीय हैं—

१. **पार्वती परिणय**—महामहोपाध्याय पी. वी. काणे ने पार्वती परिणय नाटक को बाणभट्ट की रचना स्वीकार किया है। किन्तु कीथ एवं डा. भोलाशंकर व्यास इसे बाण की रचना नहीं मानते। उनका विचार है कि इस नाटक की सरल संस्कृत प्रौढ़ि प्राप्त बाण की देन नहीं हो सकती।

२. **मुकुटताडितक**—भोज के शृङ्गारप्रकाश में एवं नलचम्पू के टीकाकार चन्द्रपाल ने इस नाटक को बाण की रचना माना है किन्तु आज यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है अतः इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

३. **पद्य कादम्बरी**—क्षेमेन्द्र के ''औचित्य विचारचर्चा'' में उद्धृत एक पद्य में कादम्बरी का विरह निवेदन वर्णित है, क्षेमेन्द्र ने इसे बाण का पद्य कहकर उद्धृत किया है। फलतः विद्वानों का अनुमान है कि बाण ने कादम्बरी कथा को पद्यमय भी लिखा था। ग्रन्थ की अनुपलब्धि एवं पुष्ट प्रमाणों के अभाव में निश्चित कुछ कह पाना सम्भव नहीं। यद्यपि कादम्बरी और हर्षचरित के आरम्भिक श्लोकों को देखकर यह तथ्य प्रतीत होता है कि बाण में पद्यकाव्य सृष्टि की पूर्ण क्षमता थी।

## बाण की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

**हर्षचरित**—यह ऐतिहासिक गद्य काव्य है जिसे आख्यायिका की संज्ञा दी गयी है। इसमें ८ उच्छ्वास हैं, कादम्बरी के समान यह भी अधूरा ही है। इसमें अपने आश्रयदाता महाराजा हर्षवर्धन के जीवन एवं परिवार से सम्बद्ध कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन है।

ग्रन्थ का आरम्भ पौराणिक शैली में अपने वंश की उत्पत्ति के वर्णन के साथ होता है। काव्यधर्मा कृति होने के कारण कतिपय ऐतिहासिक सत्यों को तोड़ा भी गया है। यह बाणभट्ट की प्रथम रचना है अतः अपने पूर्ववर्ती सुबन्धु के प्रभाव से अधिक प्रभावित होने के कारण कवि ने इसमें नये अर्थ, अग्राम्य शैली, श्लेष एवं विकटाक्षर बन्ध पर अधिक ध्यान देकर ग्रन्थ को प्रौढ़ि प्रदान की है। बाण का स्वयं कथन है—

"नवोऽर्थो जातिर ग्राम्या श्लेषोऽविलष्टः स्फुटो रसः
विकटाक्षर बन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥

**कादम्बरी**—कादम्बरी बाणभट्ट के पूर्ण विकसित पाण्डित्य एवं कवित्व की प्रौढ़ रचना है। अपनी निजी कल्पना पर आधारित इस गद्य काव्य में चन्द्रापीड और वैशम्पायन का क्रमशः कादम्बरी एवं महाश्वेता से प्रेमाख्यान वर्णित है। कथा के विस्तार का मुख्य कारण ३ जन्मों तक की कथा का वर्णन है। गद्य काव्य के भेद की दृष्टि से यह कथा है किन्तु आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में यह संस्कृत का एक उपन्यास है। कतिपय समालोचकों ने कादम्बरी कथा का बीज या प्रेरणा-स्रोत गुणाढ्य की वृहत्कथा को माना है।

## कादम्बरी का कथासार

**कथामुख**—विदिशा के राजा शूद्रक के दरबार में एक चाण्डाल कन्या आती है और एक स्वर्ण पिंजड़े में अद्भुत शुक को अति विदग्ध, शास्त्रज्ञ, कलाभिज्ञ बतला कर राजा को समर्पित कर देती है। शुक मनुष्य वाणी में राजा की एक आर्या (छन्द) के माध्यम से स्तुति करता है। जिसे सुनकर आश्चर्यचकित राजा उससे उसके जन्मादि के विषय में प्रश्न करता है। शुक अपने जन्म के तुरन्त पश्चात् विन्ध्याटवी मे माता की मृत्यु, पिता के द्वारा प्रयत्नपूर्वक लालन-पालन, शिकारियों के द्वारा पिता का वध एवं जाबालि ऋषि के शिष्य हारीत के द्वारा जाबालि के आश्रम में अपने आगमन का वर्णन करता है। आश्रमवासियों के पूछने पर जाबालि ऋषि उसके पूर्वजन्मों के वर्णन का उपक्रम करते हैं। (कथामुख भाग यहीं समाप्त हो जाता है)।

**पूर्वार्द्ध की कथा**—(जाबालि ऋषि बतलाते हैं) उज्जयिनी के राजा तारापीड और रानी विलासवती को पर्याप्त साधना के पश्चात् चन्द्रापीड नामक पुत्र प्राप्त होता है। इसी समय तारापीड के सुयोग्य मन्त्री शुकनास के घर वैशम्पायन का जन्म

होता है। चन्द्रापीड और वैशम्पायन में मित्रता बढ़ जाती है। दोनों साथ-साथ एक ही गुरुकुल में पढ़ते हैं। पश्चात् युवराज पद पर अभिषेक के समय शुकनास राजनीति की विस्तृत शिक्षा देते हैं। चन्द्रापीड के लिये इन्द्रायुध नाम का घोड़ा दिया जाता है। दिग्विजय की यात्रा पर वह वैशम्पायन के साथ निकल पड़ता है। चन्द्रापीड एक किन्नरयुगल का पीछा करते हुए अच्छोद सरोवर पर एक शिव मन्दिर में महाश्वेता का परिचय प्राप्त करता है। महाश्वेता अपनी तपस्या का कारण और अपने प्रेमी पुण्डरीक की मृत्यु आदि का वर्णन करती है। तत्पश्चात् महाश्वेता चन्द्रापीड को अपनी सखी ग़न्धर्वराज पुत्री कादम्बरी से मिलाने के लिये ले जाती है। कादम्बरी ने महाश्वेता के विवाह न करने के कारण स्वयं भी विवाह न करने का निश्चय किया था किन्तु चन्द्रापीड को देखकर वह कामासक्त हो गयी, इधर चन्द्रापीड भी उसके ऊपर अनुरक्त हो गया। वह अपनी सेना के पड़ाव-स्थल पर लौटकर वैशम्पायन को सारी बात बतलाता है। दूसरे दिन बुलाने पर पुनः कादम्बरी के पास जाता है। इसके बाद पिता की सूचना के अनुसार वह उज्जयिनी लौट जाता है और वैशम्पायन को बाद में आने को कह जाता है। (बाणकृत कादम्बरी यहीं समाप्त हो जाती है)।

**कादम्बरी उत्तरार्द्ध (बाणपुत्र भूषणभट्ट कृत)**

कादम्बरी की विरहव्याकुलता के समाचार से दुःखी हो चन्द्रापीड किसी प्रकार माता-पिता की अनुमति लेकर चल दिया। मार्ग में पता लगा कि मित्र वैशम्पायन को विराग हो गया है। जब चन्द्रापीड महाश्वेता से मिला तो पता लगा कि महाश्वेता के शाप से वैशम्पायन शुक योनि में परिवर्तित हो गया है। चन्द्रापीड मित्र के ऊपर आयी इस आपत्ति को सहन न कर सका और वहीं प्राण छोड़ दिये।

चन्द्रापीड के दर्शनार्थ आयी हुई कादम्बरी उसके निर्जीव शरीर को देख स्वयं मरने का निश्चय कर जैसे ही उसके चरण छूती है, तभी चन्द्रापीड के शरीर से एक तेज निकलकर आकाश पर चला जाता है एवं यह आकाशवाणी होती है कि इस शरीर को जलाना मत इसमें पुनः प्राण आयेगा तभी तुमसे समन्वय होगा।

इधर चन्द्रापीड का घोड़ा अच्छोद सरोवर में कूद गया और उससे कपिञ्जल के रूप में उसका आविर्भाव हुआ। उसने चन्द्रापीड और वैशम्पायन के पूर्व जीवन तथा उनको दिये गये विविध शापों की तथा स्वयं के अश्वयोनि प्राप्त करने की कथा वर्णित की और श्वेत केतु के पास चला गया! महाराजा तारापीड एवं शुकनास भी अच्छोद तट पर पहुँचे और उन्हें आकाशवाणी से दोनों के शापमुक्त हो शीघ्र चेतन होने की सूचना मिली।

शुक राजा शूद्रक को आगे बता रहा है कि जाबालि ऋषि से उक्त वृत्तान्त सुनकर मुझ में दिव्यवाणी, और ज्ञान जागृत हो गया। प्रातःकाल मेरा मित्र कपिञ्जल आ गया और पिता शुकनास, कादम्बरी, महाश्वेता आदि के द्वारा यज्ञ की सूचना

मिली। मैं अधीर होकर उधर की ओर उड़ चलात भी विश्राम करते समय रात्रि में जाल में फँस गया और इस चाण्डाल-कन्या के हाथ आ गया।

तत्पश्चात् पूछने पर चाण्डाल कन्या ने स्वयं को लक्ष्मी बताकर शुक और शूद्रक को क्रमशः वैशम्पायन एवं चन्द्रापीड बताया। यह सुनते ही पूर्वजन्म स्मरण से शुक और शूद्रक के शरीर निर्जीव हो गये। उधर कादम्बरी ने चन्द्रापीड के निर्जीव शरीर को जैसे ही अलंकृत किया चन्द्रापीड में जान आ गयी और उठ बैठा। तभी आकाश से पुण्डरीक और कपिञ्जल भी अवितरित हुए। तत्पश्चात् कादम्बरी एवं चन्द्रापीड का तथा महाश्वेता एवं पुण्डरीक का विवाह हो गया और सभी सानन्द रहने लगे।

**विशेष**—कादम्बरी में विविध पात्रों के तीन जन्मों की कथा वर्णित है। तीनों जन्मों में उन पात्रों के क्या नाम थे इसका वर्णन निम्नाङ्कित है—

| पात्र— चन्द्रापीड | वैशम्पायन | इन्द्रायुध | पत्रलेखा | चाण्डाल कन्या |
|---|---|---|---|---|
| प्रथम जन्म में— चन्द्रापीड | पुण्डरीक | कपिञ्जल | रोहिणी | लक्ष्मी |
| द्वितीय जन्म में— चन्द्रापीड | वैशम्पायन | इन्द्रायुध (अश्व) | पत्रलेखा | — |
| तृतीय जन्म में—शूद्रक | शुक | कपिञ्जल | — | चाण्डाल कन्या |

स्त्री पात्रों में प्रमुख कादम्बरी एवं महाश्वेता का पुनर्जन्म नहीं वर्णित है और न उनके शरीर में वृद्धावस्था का समावेश ही हुआ है। यह स्वयं में एक विचित्र घटना है।

**कादम्बरी कथा का मूल स्रोत**—कादम्बरी कथा को बाणभट्ट ने बीजरूप में कहीं से प्राप्त किया या स्वयं अपनी प्रतिभा कल्पना से इसकी रचना की इस विषय में निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता। संस्कृत साहित्य के समीक्षकों ने प्रायः यह स्वीकार किया है कि बाण को इस कथा की प्रेरणा गुणाढ्य की वृहत्कथा से मिली, किन्तु वृहत्कथा आज उपलब्ध नहीं है। वृहत्कथा के दो रूपान्तर सोमदेव का कथासरित्सागर और क्षेमेन्द्र का वृहत्कथा मञ्जरी हैं। कथासरित्सागर में मकरन्दिकोपाख्यान में राजा सुमनस् की कथा का कादम्बरी कथा से पर्याप्त साम्य है।

यही समीक्षकों की मान्यता का आधार है। किन्तु डा० वासुदेव शरण अग्रवाल कथासरित्सागर की रचना को कादम्बरी के बार की रचना मानते हैं। अतः यह कहना कठिन है कि गुणाढ्य की वृहत्कथा से कितना अंश बाण ने लिया है।

कथासरित्सागर में सुमनस् राजा की कथा में—"राजा सुमनस् दधीचि के मानस पुत्र बन जाते हैं और तब मनोरथप्रभा से उनका मिलन होता है। राजकुमारी मकरन्दिका का पिता के शापवश निषाद कन्या होना, शाप से खिन्न राजा

का मर कर शुक होना, पुलस्त्य ऋषि द्वारा वर्णित स्ववृत्तत का शुक द्वारा वर्णन, मकरन्दिका का अपने पूर्वरूप में आना और प्रिय सोमप्रभ से मिलन" आदि घटनाएँ कुछ ऐसी हैं जिनका कादम्बरी की घटनाओं से पर्याप्त साम्य है। किन्तु पात्रों के नाम में पूर्णतः भिन्नता है। पात्रों की संख्या दुगुनी है। कथा अत्यन्त विस्तृत है। शुकनास जैसे सुयोग्य, राजनीति पटु मन्त्री की सृष्टि सर्वथा मौलिक है। चन्द्रापीड के मित्र रूप में वैशम्पायन की अभिनव सृष्टि है। अतः बाण ने बीज रूप में यदि गुणाढ्य की कथा का अवलम्बन भी किया हो तो भी कादम्बरी की रचना पद्धति, पात्रों के चरित्र, प्रकृतिवर्णन, प्रेमानुभूति की मार्मिक अभिव्यञ्जना, रसपेशलता, भाषा सौष्ठव एवं सौन्दर्य की दृष्टि से इसे सर्वथा नूतन एवं कवि की निजी कल्पना से उद्‌भूत ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

**विशेष**—कादम्बरी का उत्तर भाग बाणभट्ट के पुत्र भूषणभट्ट (कुछ विद्वानों के अनुसार पुलिन्द या पुलिनभट्ट) ने पिता की इच्छा एवं विद्वानों की मनस्तुष्टि के लिए रचा यह माना जाता है। यद्यपि इस अंश में कहीं भी भूषणभट्ट ने स्वनामोल्लेख नहीं किया है। फिर भी इसे बाणभट्ट के पुत्र ने ही रचा यह उत्तर भाग के आरम्भिक पद्यों से स्पष्ट ज्ञात होता है—

"याते दिवं पितरि मद्वचसैव सार्धं
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य
प्रारब्ध एष च मया न कवित्वदर्पात्॥
गद्ये कृतेऽपि गुरुणा तु तथाक्षराणि
यन्निर्गतानि पितुरेव स मेऽनुभावः।
एकप्लवामृतरसास्पद चन्द्रपाद—
सम्पर्क एव हि मृगाङ्क मणेर्द्रवाय॥
बीजानि गर्भितफलानि विकासभाञ्जि
वप्त्रैव यान्युचित कर्मबलात्कृतानि।
उत्कृष्ट भूमिविततानि च यान्ति पोषं
तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि॥

इन पद्यों में अपने पिता के प्रति प्रदर्शित विनय, श्रद्धा एवं वैदुष्य की प्रशंसा से रचनाकार का बाण पुत्र होना जहाँ स्पष्ट है वहीं उसकी स्वयं की कवित्वशक्ति का भी आभास मिलता है।

कर्तृभेद से कादम्बरी का दो भागों में विभाजन है। (१) कादम्बरी—बाणभट्ट कृत (२) कादम्बरी उत्तर भाग—भूषणभट्ट कृत।

**बाणभट्ट की काव्य योजना**

बाण के समय भारत में काव्य का प्रभूत सृजन हो रहा था। गद्य के क्षेत्र में सुबन्धु की वासवदत्ता में, प्रत्यक्षरश्लेषघनत्व की विकट छटा थी। भावों को अत्यन्त

प्रौढ़ि के साथ प्रस्तुत कर पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति का प्रचार था किन्तु दूसरी ओर कालिदास, अश्वघोष आदि के काव्यों में प्रसाद एवं माधुर्य गुण, व्यञ्जनात्मक पदविन्यास में वैदर्भी शैली और रस की अभिनव सृष्टि थी। बाण पर इन दोनों ही पद्धतियों का पर्याप्त प्रभाव था, साथ ही भारतीय जनरुचि का उन्हें अच्छा परिचय भी था। हर्षचरित में इन्होंने लिखा है—

"श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः॥"

अर्थात् उत्तर भारत के कवि एवं विद्वान् श्लेष प्रधान शैली को मान्यता देते हैं; पश्चिम में अर्थगत चमत्कार (अर्थगौरव) को अधिक चमत्कारकारी माना जाता है; दक्षिण के लोगों में उत्प्रेक्षा प्रधान शैली मान्य है और पूर्व-गौड देशीय (बंग के) विद्वान् शब्दाडम्बर को महत्व देते हैं।

बाण के इस उल्लेख से तत्कालीन काव्यशैलियों एवं जनरुचि का पता चलता है। वे जहाँ कालिदास आदि से प्रभावित थे वही सुबन्धु से अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं। क्योंकि उन्होंने श्लेष अलंकार एवं विकटाक्षरबन्धत्व को काव्य में आवश्यक माना है।

उत्कृष्ट काव्य शैली में पांच गुणों की योजना अनिवार्य है। ये गुण हैं— (१) नवीन अर्थात् उत्तरोत्तर रूचिवर्धक, चमत्कारकारी अर्थ की सृष्टि। (२) स्वाभावोक्ति का प्रयोग शिष्ट एवं सुन्दर हो जिससे अश्लीलता एवं ग्राम्यता न आ सके। (३) श्लेष अलंकार का प्रयोग हो तो किन्तु वह सरल एवं बोधगम्य हो। (४) रस की व्यंजना सर्वत्र स्फुट हो और (५) शब्दयोजना संश्लिष्ट विकट बन्ध-शालिनी हो।

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षर बन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥"

बाण ने इन ५ गुणों का एक ही काव्य में समावेश करना बहुत कठिन माना है किन्तु स्वयं उन्होंने इन गुणों को अपनाकर अपने पाण्डित्य का परिचय भी दिया है। हर्षचरित और कादम्बरी रचनाओं में उनका यही प्रयास रहा है कि किसी भी रुचि का व्यक्ति क्यों न हो. वह उनके ग्रन्थों में आनन्दानुभव कर सके। हर्षचरित की अपेक्षा कादम्बरी में उनका पाण्डित्य एवं कविहृदय अधिक निखरा है। **"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते"** इस लक्षण का पूर्णतया पालन करते हुए उन्होंने कादम्बरी में पाञ्चाली रीति का अवलम्बन कर अपने से पूर्ववर्ती सुबन्धु की धिकटाक्षर बन्ध पदावली, विशिष्ट गौडीरीति एवं कालिदास, अश्वघोष आदि की प्रसादात्मक वैदर्भी रीति का एकत्र समन्वय कर मध्यम मार्ग अपनाने का सफल प्रयास किया है।

गद्य शैलियों के विषय में साहित्यदर्पणकार ने चार मुख्य शैलियाँ मानी हैं—

(१) चूर्णक—जिसमें अत्यल्प समासों का प्रयोग हो।

(२) उत्कलिका—अधिक लम्बे समासों का बाहुल्येन प्रयोग हो।

(३) आबिद्ध—समासों का प्रयोग न हो।

(४) वृत्तगन्धि—गद्य के साथ पद्यों का भी प्रयोग हो।

उपर्युक्त शैलियों की दृष्टि से बाण की कादम्बरी में प्रथम ३ शैलियों का प्रयोग प्राप्त होता है। पद्य मिश्रित गद्य का प्रयोग सामान्यतः नीति कथा ग्रन्थों में हुआ है जैसे पञ्चतन्त्र हितोपदेश आदि।

बाणभट्ट जनरुचि को अधिक महत्त्व देते थे अतः उन्हें यह अनुभव था कि पाठक एक ही प्रकार की शैली में अधिक देर तक आनन्दानुभव नहीं कर सकता। अतः उन्होंने कभी समासबहुल रचना के माध्यम से गौड़ी शैली एवं कभी सरल सम्वादात्मक समास रहित वैदर्भी शैली को अपनाया है। थोड़ी ही दूर आगे चलकर वे मध्यमार्ग अपनाकर साधारण समासयुक्त पदावली का प्रयोग करते हुए पाञ्चाली रीति अपनाते हैं। किन्तु गद्य की प्रौढ़ि का ध्यान उन्हें सदैव रहता है। फलतः समास बहुल-श्लेषमयी पदावली के प्रति उनका झुकाव अधिक रहा है जिससे यत्र-तत्र कई-पृष्ठों तक एक ही वाक्य चलता रहता है और पाठक कुछ क्लेश का भी अनुभव करता है। यही कारण है कि कीथ, वेवर आदि कतिपय पाश्चात्य आलोचकों ने बाण की कादम्बरी को सघन भारतीय कान्तार की संज्ञा दे डाली है। सम्भवतः इन विद्वानों ने तत्कालीन भारतीय मनीषा और विद्वत्प्रवृत्ति की ओर देखने का श्रम नहीं किया था।

**विशेष**—बाणभट्ट की काव्य योजना के सन्दर्भ में उक्त पर्यालोचन से स्पष्ट है कि बाणभट्ट एक सुलझे हुए विचारक, प्रकाण्ड पण्डित एवं सहृदय कवि थे। वे प्राचीन भारतीय परम्पराओं और रूढ़ियों की न तो पूर्णतः उपेक्षा ही करना चाहते थे और न ही नवीनता का अनादर। अतः नूतनता का प्राचीन आदर्श परम्पराओं में संयोजन कर संस्कृत गद्य काव्य को समृद्ध करने का उनका निरन्तर प्रयास रहा है। स्वर्ग और मर्त्यलोक के साथ गन्धर्व लोक के पात्रों का एक साथ प्रयोग, नायकों के तीन जन्मों की कथा में नायिकाओं का केवल एक जन्म, शुक का मनुष्य वद् भाषण एवं पटु होना तथा पुनर्जन्म में अनेक योनियों में भ्रमण आदि की कल्पना उनकी प्राचीनता और नवीनता के मिश्रण का उदाहरण है। अतः बाण की काव्य-योजना में समन्वयवादी प्रवृत्ति का दर्शन होता है।

## बाणभट्ट की काव्यकला

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास की पद्य रचना जितनी उत्कृष्ट, सरस एवं हृदयहारिणी है उतनी ही बाणभट्ट की गद्य रचना समृद्ध, आह्लादक एवं महत्त्व-शालिनी है। अतः जैसे पद्यकाव्य के लिए कालिदास को आदर्श माना गया उसी

प्रकार परवर्ती गद्य काव्यकारों के लिए बाणभट्ट के काव्य आदर्श बन गयें हैं। गद्य क्षेत्र में बाण के हर्षचरित एवं कादम्बरी दोनों ही ग्रन्थ साहित्य और कला की दृष्टि से सर्वांगीण हैं। हर्षचरित में ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परम्परा का विपुल प्रवाह है तो कादम्बरी में वर्णन वैचित्र्य, पात्रों की अद्भुतता, अपार शब्द भण्डार और जीवन के हर क्षेत्र का सूक्ष्मतम चित्रण है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में "कादम्बरी में बाण की वर्णन क्षमता का मृद्वीपाक हुआ है।"

वस्तुतः बाण अपने युग की समस्त सामाजिक चेतना से प्रत्यक्षतः परिचित थे, क्योंकि देशाटन में उन्होंने समाज को बहुत समीप से देखा था। जनरुचि की गहराइयों को नापा था और विद्वन्मण्डलो में छककर काव्यरसपान किया था। यही कारण है कि बाण की काव्यकला में न तो किसी एक शैली के प्रति आग्रह है और न किसी रस विशेष के प्रति दुराव। वर्णन चाहे जैसा हो, कवि की लेखनी में आते ही सरस, मधुर और चमत्कारकारी हो उठता है। अतः बाणभट्ट की काव्यकला का सर्वाङ्गीण विवेचन करने के लिए उसका निम्न स्तम्भों में विभाजन अनिवार्य है—

(क) बाण के काव्यों में कथावस्तु की रमणीयता।
(ख) पात्रों का चित्रण।
(ग) भाव सौन्दर्य एवं रसास्वाद।
(घ) भाषा सौन्दर्य।
(ङ) वर्णन वैचित्र्य।
(च) प्रकृति चित्रण।
(छ) शैली।

**बाण के गद्य काव्यों में कथावस्तु की रमणीयता**

महाकवि बाण ने सर्वप्रथम अपने आश्रयदाता महाराजा हर्षवर्धन की प्रशंसा में 'हर्षचरित' नामक ऐतिहासिक गद्य काव्य (आख्यायिका) लिखा। हर्ष के जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक इतिवृत्त चुनकर भी उन्होंने उसमें अपनी कल्पना का समावेश किया। हर्ष का वंश वर्णन करते समय उसमें पौराणिकता का समावेश कवि की निजी कल्पना है। अन्य अनेक स्थानों पर ऐतिहासिक तथ्यों का अपहृन भी कवि ने किया है। इसका उद्देश्य मात्र इतना ही प्रतीत होता है कि बाण स्तुति काव्य या चरित काव्य लिखना चाहते थे इतिहास का वर्णन नहीं। अतः परिवर्तन एवं काल्पनिक परिवर्धन अवश्यम्भावी था।

कादम्बरी की कथा में उनकी कल्पना-शक्ति का उत्कृष्ट रूप प्रकट हुआ है। वृहत्कथा का आधार होते हुए भी कथावस्तु सर्वथा मौलिक परिवेश में प्रस्तुत है। कादम्बरी की कथावस्तु का संयोजन अत्यन्त सरस एवं ग्राह्य है। बाण की कथावस्तु विषयक प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित हैं—

(१) एक कथा से दूसरी कथा को जन्म देना ।

(२) एक ही व्यक्ति वक्ता न होकर अनेक वक्ता जैसे कादम्बरी में शुक, जाबालि, महाश्वेता आदि के द्वारा कथावर्णन है ।

(३) कथा को स्वर्ग, मर्त्य एवं गन्धर्व लोकों के पात्रों द्वारा विकसित करना ।

(४) कथा में निरन्तर उत्सुकता का भाव जागृत करना ।

(५) शापादि की योजना से चमत्कार उत्पन्न करना ।

(६) कथा के प्रवाह को बहुत तेज न रखने के लिये विविध वर्णनों की योजना के द्वारा पाठक को और अधिक समय तक पढ़ने के लिये प्रेरणा देना ।

(७) भारतीय संस्कृति एवं मान्यताओं के अनुकूल पुनर्जन्म, देवी-देवताओं की पूजा, शाप, तप, मठ, मन्दिर, तालाब आदि के वर्णनों को कथा में पर्याप्त विस्तार दिया गया है ।

इस प्रकार बाणभट्ट की कथावस्तु जहाँ विविधता का आगार है, घटनाओं का समूह है, वहीं चन्द्रापीड और कादम्बरी की तथा महाश्वेता और वैशम्पायन की प्रेमधारा का अजस्र स्रोत है । सम्पूर्ण कथा में यह प्रेमसूत्र ओतप्रोत है जो कहीं वर्णनात्मक अन्तःप्रसङ्ग रूपी मौक्तिकों से छिप जाता है तो कहीं उद्दाम स्वरूप में प्रकट रहता है ।

बाण की कथावस्तु योजना को निर्दोष भी नहीं कहा जा सकता । कथा के कुछ अंश अत्यन्त अस्वाभाविक भी हैं जैसे—(१) पुण्डरीक के शरीर को दिव्यपुरुष द्वारा आकाश में ले जाना एवं कपिंजल का सदेह उसका अनुसरण । (२) इन्द्रायुध अश्व का अच्छोद सरोवर में प्रवेश करते ही कपिंजल रूप ग्रहण करना । (३) कपिंजल एवं वैशम्पायन का शापवशात् क्रमशः अश्व एवं शुक रूप धारण करना । इसी प्रकार प्रासङ्गिक कथाओं को अत्यन्त दीर्घ करना आदि ये सब निश्चय ही मूलकथा के आस्वाद में विघ्न पैदा करते हैं ।

वस्तुतः बाण कादम्बरी में एक ऐसी कथा प्रस्तुत करना चाहते थे जो स्वयं में अद्भुत एवं सर्वथा नवीन शैली में हो तथा वह साधारण पाठकों को और विद्वानों को एक साथ आनन्द देने में सक्षम हो । इस प्रयास में कादम्बरी की कथा कालिदास के शाकुन्तल की कथा के समान पृथ्वी तथा स्वर्ग में घूमने वाली कथा-सी बन गयी है । स्वरूपगत दीर्घता एवं सामयिक वैदुष्य के कारण कथावस्तु अत्यन्त श्लिष्ट एवं प्रौढ़िपूर्ण धरातल पर अवतरित हुई है । बाणभट्ट की वाणी के सम्बन्ध में धर्मदास का यह कथन सत्य है—

**"रुचिर स्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।**
**सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ।।"**

बाण की वाणी अर्थात् कादम्बरी कथा तरुणी की भ्रान्ति पैदा कर ही देती है क्योंकि वह भी तो तरुणी के समान ही अपने सुन्दर स्वर, वर्णविन्यास एवं पद

प्रयोग से युक्त रस और भावों से भरी हुई होने के कारण समस्त पाठकों का मन मोह लेती है ।

## कादम्बरी के पात्र

पात्रों के सजीव चित्रण में बाण बेजोड़ हैं । समाज की विविध श्रेणियों के पात्रों का चयन कर उन्होंने अपने काव्य को सार्वभौमिक रूप प्रदान किया है । किसी वर्ग विशेष या जाति विशेष के प्रति बाण का कोई दुराग्रह नहीं है । तभी वे राजकुमार, राजकुमारियाँ, श्रेष्ठ ब्राह्मण, विद्वानों एवं ऋषि मुनियों के साथ असभ्य एवं निम्न श्रेणी के पात्रों को भी उचित महत्व देते हैं । शास्त्रीय नियमानुसार उनके पात्र प्रथमतः दिव्य और अदिव्य अर्थात् अलौकिक और लौकिक भेदों में विभक्त हो सकते हैं । पुनः उत्तम, मध्यम एवं अधम भेद से त्रिविध विभाजन किया जा सकता है । पात्रों के विषय में उनकी धारणा बहुत उदार एवं युक्ति संगत है । प्रत्येक पात्र का चरित्र अपनी पूर्ण प्रतिभा एवं क्षमता के साथ प्रस्तुत करते समय उसकी भूमिका एवं औचित्य का ध्यान कवि को सदैव रहा है । राजा शूद्रक का उदात्त व्यक्तित्व प्रस्तुत करते हुए जहाँ वे थकते नहीं वहाँ मूलतः लक्ष्मी के चाण्डाल कन्या रूप की उत्कृष्ट प्रशंसा करने में वह आनन्द का अनुभव करते हैं किन्तु अन्त्यजत्व के कारण वे शूद्रक के माध्यम से विधाता को असदृशकार्यकारी घोषित करने में भी नहीं हिचकते—

"सर्वथा धिग्विधातारम् असदृश संयोग कारिणम् । अतिमनोहराकृतिरपि क्रूरजातितया येनेयमसुरश्रीरिव सततनिन्दितसुरता रमणीयाप्युद्वेजयति" । चाण्डाल कन्या का इतना आकर्षक एवं उदात्त रूप वर्णन संस्कृत साहित्य में अन्य किसी कवि ने नहीं किया है ।

इस प्रकार के विरोधी चरित्रों के स्वाभाविक चित्रण कवि की सफलता की कसौटी हैं । बाण उसमें खरे उतरे हैं । पुण्डरीक यदि प्रेम में प्राण त्यागता है तो जाबालि प्रेमानुराग आदि कामात्मक विषयों से सर्वथा परे हैं । कादम्बरी जैसी स्त्री यदि राजमहलों की सुख सुविधाओं की पराकाष्ठा है तो महाश्वेता धैर्य और संयम की प्रतिमूर्ति है । कादम्बरी कथा से सम्बन्धित कतिपय प्रमुख पात्रों का परिचय ही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

कादम्बरी कथा में सर्वाधिक चर्चित चार पात्र हैं—चन्द्रापीड (नायक), कादम्बरी (नायिका), वैशम्पायन (पुण्डरीक)-(उपनायक) एवं महाश्वेता (उपनायिका) । इनके अतिरिक्त मन्त्री शुकनास का विद्वत्त में, वृद्ध शबर का क्रूरता में, महर्षि जाबालि का त्रिकाल द्रष्टा रूप में, कपिञ्जल का सहृदय मित्र रूप में एवं ताम्बूलकरङ्कवाहिनी पत्रलेखा का स्वामिभक्ता के रूप में बाण ने सफल चित्रण किया है ।

(१) **चन्द्रापीड**—उज्जयिनी के राजा तारापीड का दीर्घ साधना के बाद प्राप्त इकलौता पुत्र चन्द्रापीड है । बाल्यावस्था से उचित व्यवस्था एवं अध्यापन

से उसमें उन समस्त संस्कारों को समारोपित कर दिया गया है जो एक यशस्वी राजा, श्रेष्ठ महापुरुष एवं सुयोग्य शासक में होने चाहिए। शौर्य, धैर्य, दयालुता, विनय, देवभक्ति, सहिष्णुता, प्रेम आदि का अक्षय भण्डार उसके स्वभाव में संवलित हो गया है। चन्द्रापीड इन्हीं गुणों के कारण तथा अन्त में कादम्बरी से विवाह रूप फल को प्राप्त करने के कारण इस कथा ग्रन्थ के नायक की गरिमा प्राप्त करता है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने दो नायकों की सत्ता मानकर वैशम्पायन को भी नायक की कोटि में ही गिना है किन्तु विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वैशम्पायन स्वयं राजा नहीं है, क्षत्रिय वंश का भी नहीं है, नायिका जिसके नाम पर ग्रन्थ का नामकरण है, कादम्बरी से उसका विवाह या प्रेमसम्बन्ध भी नहीं है। नायकोचित धैर्य, शौर्य एवं विवेक की भी उसमें कमी है। जबकि ये सभी गुण चन्द्रापीड में हैं अतः चन्द्रापीड ही इसका नायक है।

चन्द्रापीड प्रेमी युवा की भूमिका बखूबी निभाता है। कादम्बरी के प्रथम दर्शन से ही वह उसके प्रति कामासक्त हो जाता है किन्तु कालिदास के दुष्यन्त की भाँति वह रात-रात भर जागकर आँसू नहीं बहाता। उसका तो कहना है कि "अपने मन को व्यर्थ दुःखी करने से क्या लाभ। यदि कादम्बरी उससे प्यार करती है तो कामदेव शीघ्र ही उसकी मनोभावना को प्रकट करेगा।"

**"किमनेन वृथैव मनसा खेदितेन, यदि सत्यमेवेयं धवलेक्षणा मय्येवंजात चित्तवृत्तिस्तदा न चिरात् स एवैनामप्रार्थितानुकूलो मन्मथः प्रकटी करिष्यति"।**

इस कथन से चन्द्रापीड की विवेकशीलता का परिचय मिलता है। जब प्रथम दर्शन के समय महाश्वेता अपनी प्रणयकथा में प्रिय की दुःखद मृत्यु का निवेदन कर अधीर हो उठती है तो चन्द्रापीड उसे विविध दृष्टान्तों से धैर्य दिलाता है यह उसके गम्भीर अध्ययन और वैदुष्य का तथा उसकी सहिष्णुता एवं धृति का परिचायक है। कादम्बरी के प्रति उसका निश्छल प्रेम है किन्तु मर्यादा का अतिक्रमण नहीं है। उसके साथ वार्तालाप में उसके व्यवहार की शालीनता, मानसिक उदारता और वाणी की विदग्धता का परिचय मिलता है—

**"सुतनु! सत्यं न तथा त्वामेष व्यथयति यथास्मान्। इच्छामि देहदानेनापि स्वस्थामत्रभवतीं कर्तुम्।·········अनङ्गदे! तनुभूते ते भुजलते गाढसन्तापया च दृष्ट्या वहसि स्थल कमलिनीमिव रक्ततामरसाम्। दुःखितायाञ्च त्वयि परिजनोऽपि चानवरतकृताश्रुबिन्दुपातेन वर्त्तते मुक्ताभरणता। गृहाण स्वयंवरारोहिणि मङ्गल प्रसाधनानि। सकुसुमशिलीमुखा हि शोभते नवा लता इति।"**

कादम्बरी के प्रति स्थायी प्रेम के रहते हुए भी पुनर्मिलनार्थ जाने से पूर्व वह गुरुजनों से अनुमति लेना नहीं भूलता।

चन्द्रापीड का चरित्र एक सहृदय प्रेमी, विवेकी युवक, पराक्रमी राजपुत्र एवं अच्छे मित्र के रूप में चित्रित कर बाण ने उसे उदात्त नायक की श्रेणी प्रदान की है।

अपने मित्र वैशम्पायन की विक्षिप्त दशा का श्रवण कर वह अत्यन्त व्यथित होता है और उसकी शापावस्था तथा शुकयोनि में परिवर्तन का वृत्तान्त जानकर स्वयं प्राण-त्याग देता है। इस प्रकार का उत्कृष्ट मैत्रीभाव प्रायः कवियों ने वर्णित नहीं किया है।

(२) **कादम्बरी**—'कादम्बरी' इस गद्यकथा की नायिका है। इसी के नाम पर इस कृति का नाम कादम्बरी रखा गया है। कादम्बरी एक मुग्धा नायिका है किन्तु अपनी सखी के दुःख-सुख के प्रति वह सदैव एक रस है। महाश्वेता के दुःख से वह इतनी आर्द्र है कि महाश्वेता के दुःखी रहते स्वयं विवाह न करने का निश्चय कर लेती है। महाश्वेता के सन्देश के उत्तर में वह लिखती है—"**जानास्येव मे सहज प्रेम निष्यन्दनिर्भरं हृदयम्। एवमति निष्ठुरं संदिशन्ती कथमसि न लज्जिता ?……… सुख-दुःख खेदिते हि मनसि कैव सुखाशा, कैव निर्वृत्तिः, कीदृशाः सम्भोगाः, कानिवा-हसितानि ?………यत्र च भर्तृविरह विधुरा व्रतकर्शिताङ्गी प्रियसखी महत्कृच्छ्रमनु-भवति, तत्राहमगणय्यैतत्कथमात्मसुखार्थिनी पाणिं ग्राहयिष्यामि।……तदयमञ्जलि रूपरचितः, प्रणामोऽयम्,……वनमितो गतासि मे जीवितेन सहेति मा कृथाः स्वप्नेऽपि पुनरिममर्थं मनसि।**"

कादम्बरी सुन्दरता की प्रतिमूर्ति है। उसके हृदय में भी मानवोचित दुर्बलता है। चन्द्रापीड का प्रथम दर्शन करते ही वासना के वशीभूत हो जाती है। प्रयत्न करने पर भी भावनाओं पर नियन्त्रण नहीं रख पाती। चन्द्रापीड के चले जाने पर उसकी विरहव्यथा का चित्रण असाधारण है। आदर्श प्रेमिका की विप्रलम्भ दशा का चित्रण करते समय बाण ने कादम्बरी के कृशतनु को साकार रूप में उपस्थित-सा कर दिया है।

कादम्बरी में दया, दाक्षिण्य और लावण्य की त्रिवेणी का संगम है। बाण ने "**कल्पतरु लतासिव काम फल प्रदान्**" लिखकर उसके शारीरिक सौन्दर्य एवं भावनात्मक उपभोग का सुन्दर चित्रण किया है साथ ही कवि ने यह ध्यान रखा है कि वह कामावेश में भी नारी सुलभ लज्जा व शालीनता का त्याग न करे। चन्द्रापीड के प्रणय निवेदन पर भी वह मौन रहकर शील की रक्षा करती है। कादम्बरी के नखशिख वर्णन में उसके अनिन्द्य सौन्दर्य एवं अङ्गों की चारुता का परिचय मिलता है।

संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि कादम्बरी एक सच्ची प्रणयिनी, सहज सरल एवं मृदु स्वभाव से युक्त, अनिन्द्य सुन्दरी, दया, दाक्षिण्यादि गुणों से समलंकृत, विनम्रता एवं शिष्टता की प्रतिमूर्ति एवं विलासवती नायिका के रूप में पाठकों के समक्ष समुपस्थित होती है।

(३) **वैशम्पायन (पुण्डरीक)**—कादम्बरी ग्रन्थ में उपनायक के रूप में चर्चित पात्र वैशम्पायन चन्द्रापीड का मित्र, उसके राज्य के मन्त्री शुकनास का

एकमात्र पुत्र था । पूर्वजन्म में वह पुण्डरीक नाम का मुनिकुमार था और अच्छोद सरोवर पर स्नान करने के लिये आयी हुई महाश्वेता की रूपमाधुरी पर इतना आसक्त हो गया था कि उसके अल्पकालिक दर्शन से उत्पन्न उत्कण्ठा से अकाल कालकवलित हो गया था । द्वितीय जन्म में वैशम्पायन मन्त्रिपुत्र होकर जब वह पुनः महाश्वेता से मिला तो कामुकतावश महाश्वेता का कोपभाजन बना और उसके शाप से उसे शुक-योनि में जाना पड़ा ।

वैशम्पायन के इस वृत्तान्त से एक ही तथ्य उभर कर आता है कि बाणभट्ट ने वैशम्पायन को कामात्मक चित्तवृत्ति प्रधान युवक की भूमिका दी है । परिणामतः उसे दो बार मरना पड़ता है या दो बार जन्म लेना पड़ता है । चन्द्रापीड के साथ रहने के अतिरिक्त उसके किन्हीं विशेष गुणों पर प्रकाश डालने में कवि ने कोई श्रम ही नहीं किया । सम्भवतः बाण की आदर्शवादिता ही इसका मूल कारण थी । बाण कामान्धता को अच्छा नहीं मानते विशेषतः पुरुष में इसीलिये शाप दिलाकर उसे पक्षी योनि दे देते हैं ऐसा प्रतीत होता है ।

(४) **महाश्वेता**—महाश्वेता कादम्बरी ग्रन्थ की उपनायिका है । "**यथा नाम तथा** गुणः" के आधार पर बाण ने महाश्वेता को अत्यन्त गौर वर्णा मोती से निकली हुई के समान वर्णित किया है । शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा गन्धर्वराजपुत्री महाश्वेता हृदय से भी श्वेत अर्थात् निर्मल है । वह दृढ़निश्चयी, संयमी, तपस्विनी, एकनिष्ठ प्रणयिनी और सहृदया सखी के रूप में कवि द्वारा चित्रित की गयी है । तपस्वी जीवन में रहते हुए अतिथि सत्कार जैसे गुणों की उद्भावना करना कवि का धर्म था । प्रथम दर्शन में वह अच्छोद सरोवर के तट स्थित शिवमन्दिर में ध्यानमग्न है । तपःपूत उसके इस रूप का चित्र बाण की दृष्टि में वेदत्रयी-सा लगता है—"**त्रयीमिव कलियुगध्वस्त धर्मशोकगृहीत वनवासाम्**" इतना ही नहीं वे महाश्वेता में मुनियों की ध्यान सम्पत्ति को ही मूर्त रूप में देखते हैं—"**देहवतीमिव मुनिजनध्यानसम्पदम्**" । महाश्वेता में जहाँ तापसी के रूप में उसके संयम और दृढ़ता की प्रतीति है वहीं उसके द्वारा वर्णित पूर्ववृत्त में उसके हृदय की नारी सुलभ-चञ्चलता और बाद में पश्चात्ताप की दशा का भी ज्ञान होता है ।

नारी पुरुष पर पहले आसक्त होती है पुरुष उस पर बाद में । इस प्राकृतिक नियम के अनुसार महाश्वेता पहले पुण्डरीक पर आसक्त होती है पुण्डरीक बाद में, किन्तु कामोद्रेक को सहन करने में स्त्री की अपेक्षा पुरुष निर्बल होता है फलतः पुण्डरीक का शरीरान्त हो जाता है महाश्वेता की स्मृति में ।

महाश्वेता एकनिष्ठ प्रेमिका है । अपने प्रेमी की मृत्यु पर वह स्वयं मरणोद्यत होती है किन्तु दिव्यसन्देशवश वह ऐसा न करके साधना करती है और वैशम्पायन के रूप में पुण्डरीक को न पहचान पाने पर उसके प्रणय निवेदन से दुःखी होकर उसे

शुक हो जाने का शाप दे डालती है। इस प्रकार उसका सतीत्व एवं दृढ़ निश्चयी व्यक्तित्व उभरता है।

अपनी सखी कादम्बरी के प्रति दयालुता एवं अनुराग का भाव ही उसे चन्द्रापीड को कादम्बरी के पास ले जाने को विवश करता है और दोनों को मिलाकर उनके हित साधन में प्रयत्नशील होता है। इसमें उसके हृदय का मैत्रीभाव, दयालुता एवं परोपकार की भावना का साक्षात् दर्शन होता है। वैशम्पायन के योनि परिवर्तन की सूचना से चन्द्रापीड की मृत्यु एक संयोग है इसमें महाश्वेता का जानबूझ कर सखी को कष्ट देने या चन्द्रापीड को मारने का कोई भाव नहीं है। सखी के इस दुःख में हेतु यद्यपि महाश्वेता है किन्तु वह स्वयं निर्दोष है।

महाश्वेता कादम्बरी के ही समान अतिशय रूपवती, कोमलांगो एवं स्निग्ध है। कमल नाल से निर्मित सी या चन्द्रमा के किरणरूपी ब्रुश से साफ की हुई एवं चाँदनी के घोल से मार्जन करने से इतनी स्वच्छ एवं रूपवती महाश्वेता की कल्पना बाण की कल्पना शक्ति का परिचायक है। वस्तुतः सम्पूर्ण कादम्बरी में महाश्वेता का चरित्र अत्यन्त उज्जवल एवं मधुर है। डॉ० बाबूराम त्रिपाठी के शब्दों में—"विरह विधुरा, तपोनिरता, सर्वश्वेता, महाश्वेता के सूक्ष्मातिसूक्ष्म सौन्दर्य वर्णन के द्वारा कवि ने उसे दिव्य सौन्दर्य की परमोज्ज्वल दिव्यानुभूतिमय प्रतिभा के रूप में प्रतिष्ठित किया है।"

**अन्य पात्र**—कादम्बरी के पूर्वोक्त चार पात्रों के अतिरिक्त जाबालि, कपिञ्जल, द्रविड़ धार्मिक, जरत् शबर, विलासवती, चाण्डालकन्या एवं शुकनास के चरित्रों का सफल चित्रण करने में बाणभट्ट को पूर्ण सफलता मिली है। बाण दण्डी के समान यथार्थवादी पात्रों की सृष्टि में विश्वास नहीं रखते इसीलिये उनके पात्र दिव्य और अदिव्यभी हैं। वे मरकर पुनः जन्म लेते हैं और प्रेम की पूर्व परम्परा के अनुस.र "भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि" कालिदास की इस मान्यता को साकार रूप देते हैं। इनके पात्रों में स्वभाव, वातावरण, औचित्य और जीवन्तता का सजीव चित्रण है किन्तु दैवी शक्ति एवं दैवी सन्देश उन्हें समय-समय पर अवलम्ब देता रहता है फलतः वे यथार्थ की देहली से परे हट जाते हैं। यही कारण है कि विभिन्न आलोचकों ने बाण के चरित्र-चित्रण में अस्वाभाविकता एवं परम्परा का बाहुल्य माना है।

बाणभट्ट के पात्रों में शुकनास की विद्वत्ता, चन्द्रापीड की मित्रता, महाश्वेता का आदर्श प्रणय प्रतिमान बन गये हैं।

**भाव सौन्दर्य**—बाणभट्ट में कवि सुलभ उच्चकोटि की संवेदनशीलता है। भावों को अत्यन्त प्रौढ़ एवं परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करने की शक्ति है। बाण ने

एक ही आधार में अनेक भावों को चित्रित करने में अपनी कल्पना शक्ति का अनूठा प्रदर्शन किया है। महाश्वेता के हृदय में पुण्डरीक को देखने पर प्रेम की भावना किस गति से पल्लवित होती है यह द्रष्टव्य है—

**"भामविचारितगुणदोषविशेषो रूपैकपक्षपाती नवयौवनसुलभः कुसुमायुधः कुसुमसमयमद इव मधुकरीं परवशामकरोत्।....स्तम्भितेव लिखितेवोत्कीर्णेव संयतेव मूर्च्छितेव केनापि विधृतेव निष्पन्दसकलावयवा तमचिरं व्यलोकयम्।"**

इसी प्रकार पुण्डरीक की मृत्यु के समाचार से वह आत्मग्लानि से भर उठती हैं वह स्वयं को दोषी मानती हुई अपने को "मिथ्या अनुराग प्रदर्शित करके ठगने में कुशल" और पापिनी तक कह डालती हैं—**धिङ् मां दुष्कृत कारिणीम्, यस्याः कृते तवेयमीदृशी दशा वर्तते। नास्ति मत्सदृशी नृशंसहृदया याहमेवंविधं भवन्तमुत्सृज्य गृहं गतवती। किं मे गृहेण, किमम्बया किं वा तातेन किं बन्धुभिः किं परिजनेन ?"**

कादम्बरी की कथाओं में प्रेमतत्व की प्रधानता है। किन्तु बरसाती नदी की भाँति उनका प्रेमभाव थोड़ी देर उमड़कर सूख नहीं जाता अपितु अजस्र स्रोत की भाँति निरन्तर प्रवहमान रहता है। महाश्वेता का पुण्डरीक के प्रति प्रेम उसकी मृत्यु पर समाप्त नहीं होता अपितु दो जन्मों के बाद वैशम्पायन और शुक के दर्शनों में विफल होता हुआ भी अन्त तक बना रहता है जब तक कि पुण्डरीक के रूप में उसे पुनः उसका प्रेमी प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार चन्द्रापीड की मृत्यु के बाद भी उसके शरीर की रक्षा करती हुई कादम्बरी अन्त तक मिलनोत्सुका ही रहती है और अन्त में उसका प्रेम फलवान् ही होता है। इस प्रकार बाण ने कादम्बरी में प्रेम भावना का अत्यन्त उदात्त एवं पुष्ट रूप प्रस्तुत करते हुए कालिदास को भी पीछे छोड़ दिया है। कालिदास की "**भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि**" की उक्ति का प्रयोगात्मक रूप कादम्बरी में प्रस्तुत किया गया है। जहाँ प्रेमी नायकों को उनके कर्मानुसार विभिन्न योनियों में घुमाते हुए बाद में नायिकाओं से मिलन करा कर निरन्तरता बनाये रखी गयी है। बाण की दृष्टि में प्रेम भौतिक या शारीरिक सम्बन्ध का ही रूपान्तर नहीं है अपितु जन्म-जन्मान्तर में समुदभूत आध्यात्मिक सम्बन्ध का भी परिचायक है। उनकी प्रेम भावना पर न तो समय और स्थान का प्रभाव पड़ता है और न ही मृत्यु का।

कादम्बरी में वर्णित प्रेमभावना परिस्थिति सापेक्ष्य भी नहीं है। अन्यथा कादम्वरी से दूर रहकर चन्द्रापीड राजकुमारी पत्रलेखा से प्रणय सम्बन्ध स्थापित कर सकता था जिसमें किसी प्रकार की बाधा न थी किन्तु वह ऐसा नहीं करता। इसी प्रकार महाश्वेता चन्द्रापीड या वैशम्पायन से अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकती थी। किन्तु ऐसा न करने में बाण की भावदृष्टि की श्रेष्ठता ही है, वह प्रेम को वासना के कालुष्य से मुक्त रखना चाहते थे एवं उसे आध्यात्मिक सत्य का रूप देकर उसकी पवित्रता का आख्यान करना चाहते थे।

बाण के समस्त प्रणय प्रसङ्गों में मनोवैज्ञानिक सत्य का दर्शन होता है। प्रथम प्रणय भावना के अभ्युदय के समय शैशवोचित तरलता एवं गाम्भीर्य के अभाव का चित्रण करना वे नहीं भूलते। चन्द्रापीड को देखने पर कादम्बरी के मनोविकारों का वर्णन करते समय व्यभिचारी भावों एवं अनुभावों की सुन्दरता द्रष्टव्य है।

शुक अपने पिता की मृत्यु पर जिस प्रकार से आत्म निन्दा करता है वह न केवल दुःखात्मक है अपितु भारतीय संस्कृति के अनुसार पिता और पुत्र के पारस्परिक सम्बन्ध व कर्तव्य पर भी अच्छा प्रकाश डालते हैं—**"धिङ्मामकरुणमतिनिष्ठुरमकृतज्ञम्।····खलं हि खलु मे हृदयम्। अहं हि लोकान्तर मुपगतायामम्बायां नियम्य शोकावेगमा प्रसवदिवसात् परिणत वयसापि सता तातेन तैस्तैरुपायैः····परिपालितः, तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्। अति कृपणाः खल्वमी प्राणाःयदुपकारिणमपि तातमद्यातिगच्छन्तं नानुगच्छन्ति।"**

श्रृङ्गार प्रधान होते हुए भी बाण ने जिस पात्र का वर्णन चुना उसमें उसकी बाह्य प्रकृति की अपेक्षा उसकी अन्तः प्रकृति का ही वर्णन अधिक किया है। अतः चाहे वे महाश्वेता की प्रणयभावना का चित्रण करें या जरत् शबर का, चाहे कादम्बरी की विरहोत्कण्ठा का या जाबालि के त्रिकालज्ञत्व का, सर्वत्र पात्र की अन्तः प्रकृति से तादात्म्य रख कर ही वर्णन करते हैं। श्रेष्ठ कवि की पहचान उसकी भावनात्मक गहराइयों एवं अन्तः साक्ष्य से होती है। पाठक द्रविड़ धार्मिक का वर्णन पढ़ते समय भी उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर खो जाता है। यही बाण की भावों को उपस्थित करने की कला है। करुणा, दया, मैत्री, प्रेम औचित्य, विवेक, विनय, हास-परिहास आदि जीवन के विविध भावों की मार्मिक अभिव्यञ्जना बाण को शीर्षस्थ स्थान प्रदान करती है। यही कारण है कि बाण की कविता विद्वानों को अभिनव वधू-सी प्रतीत होती है। यह बाण का निजी अभिमत है—

**"स्फुरत्कलालाप विलास कोमला,**
**करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।**
**रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता,**
**कथा जनस्याभिनवा वधूरिव॥"**

## कादम्बरी में रस परिपाक

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" आचार्य विश्वनाथ के इस कथन से काव्य में रस की प्रमुखता स्पष्ट है। आचार्य पण्डित राज जगन्नाथ ने "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" लिखकर रमणीय अर्थ के रूप में काव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य रस को ही स्वीकार किया है। "रसो वै सः" के द्वारा रस को ब्रह्मानन्द सहोदर अथवा ब्रह्म का ही स्वरूप कहा गया है।

महाकवि बाण रस-सिद्ध कवि हैं। विशेषतः उनका कादम्बरी ग्रन्थ रस का सागर है। श्रृंगार रस में विशेष सिद्धहस्त होने पर भी बाण ने करुण, अद्भुत, शान्त, हास्य, भयानक आदि रसों के उपन्यास में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। अक्षय शब्द भण्डार एवं अलंकारों की अनुपम छटा में भी रसपेशलता लुप्त नहीं होने पायी है। इसीलिये **एस. के. डे महोदय** का यह कथन सार्थक है कि—**"बाण के रोमांस का मुख्य मूल्य कथावर्णन, चरित्र-चित्रण एवं आलंकारिक योजना के उपस्थापन में नहीं है अपितु कवित्व और रस की अभिव्यञ्जना में है।"**

श्रृंगार रस प्रधान कादम्बरी मानव हृदय की मूक प्रणय वेदना की मर्मभरी कथा है। प्रेम के उद्दाम प्रवाह की प्रस्तुति है किन्तु कुल और समाज की मर्यादा-रेखाओं का अतिक्रमण नहीं है फलतः दशकुमार चरित की भाँति बाण ने अश्लीलता की गन्ध अपने श्रृंगार-चित्रणों में नहीं आने दी है! महाश्वेता हो या कादम्बरी, चन्द्रापीड हो या वैशम्पायन सभी के स्वाभाविक प्रेम का उदात्त चित्रण सहृदय हृदय को श्रृंगार के शिखर पर तो पहुँचाता है किन्तु अश्लीलता की कगार से दूर रखता है। पुण्डरीक भी यदि प्रेम में पागल हुआ तो कपिञ्जल ने उसकी भरपूर भर्त्सना की—**"सखे पुण्डरीक! यदेतदारब्धं भवता, किमिदं गुरुभिरुपदिष्टम् उत धर्म-शास्त्रेषु पठितम् उत धर्म्मार्जनोपायोऽयम्····उत स्वर्ग गमनमार्गोऽयम्····मूढो हि मदनेनायास्यते। का वा सुखाशा साधुजन निन्दितेष्वेवं विधेषु प्राकृतजन बहुमतेषु विषयेषु भवतः?**

बाण की दृष्टि में असंयत प्रेम मानसिक एवं शारीरिक दुरवस्था का कारण होता है। अतः श्रृंगार के समस्त चित्रणों में बाण ने मर्यादा, संयम और औदात्य का ध्यान रखा है।

श्रृंगार के दोनों भेदों संयोग एवं विप्रलम्भ रसों में का सम्यक् परिपाक कादम्बरी में किया गया है। राजकुमार चन्द्रापीड के प्रथम दर्शन में ही कादम्बरी के सात्त्विक भावों के वर्णन में जैसे बाण ने कादम्बरी के हृद्गत भावों को वाणी प्रदान कर दी हो—**"अथ तस्याः कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत्, ससंभ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्। उत्कम्प एव गतिं रुरोध, नूपुररवाकृष्ट हंसमण्डलमपयशो लेभे। निःश्वास प्रवृत्तिरेवांशुकं चलं चकार, चामरानिलो निमित्ततां ययौ।"**

(चन्द्रापीड को देखकर कादम्बरी के शरीर पर कामदेव ने पसीना (स्वेद सात्विक भाव) उत्पन्न कर दिया किन्तु लोगों ने समझा कि सहसा उठकर खड़ी होने के कारण उत्पन्न थकान से कोमलाङ्गी कादम्बरी पसीने से लथपथ हो गयी है। इसी प्रकार उसके पैरों में उत्पन्न कम्पन ने उसकी गति को रोक दिया किन्तु उसके नूपुरों की झंकार सुनकर आये हंसों ने रास्ता रोक कर उसका आगे बढ़ना रोक दिया ऐसा लोगों ने समझा)। यहाँ बाण ने जिस सुन्दरता के साथ श्रृंगार रस के सात्विक भावों का वर्णन एवं उनके निगूहन की प्रक्रिया वर्णित की है, निश्चय ही वह सहृदय हृदय में आनन्द की तरंगों को उद्वेलित कर देती है।

संयोग श्रृंगार को प्रस्तुत करने की दूसरी प्रणाली इन्हीं परिस्थितियों में महाश्वेता के प्रथम प्रेम चित्रण में द्रष्टव्य है। "पुण्डरीक को देखने पर उसे ऐसा लगता है जैसे उसकी समस्त इन्द्रियाँ उसे पुण्डरीक के पास फेंक रही हैं, जैसे उसका निज का हृदय ही उसे बलात् खींचकर उसके पास ले जा रहा है। जैसे कामदेव उसे पीछे से धक्का देकर उसे पुण्डरीक के पास भेज रहा है"—"**उत्क्षिप्य नीयमानेव तत्समीपमिन्द्रियैः, पुरस्तादाकृष्यमाणेव हृदयेन, पृष्ठतः प्रेर्यमाणेव पुष्पधन्वा कथमपि मुक्तप्रयत्नमात्मानमकरवम्।**"

शिवाराधनतत्परा महाश्वेता के प्रायः सभी शरीरावयवों का वर्णन करते समय कवि श्रृङ्गारी हो गया है किन्तु प्रयुक्त विशेषणों में पवित्रता एवं दिव्यता की मधुर अनुभूति है जबकि कादम्बरी के नखशिख वर्णन में कामोद्दीपन होता है। इससे बाण की अद्भुत वर्णन क्षमता एवं एक ही परिस्थिति में, एक ही रस में भिन्न-भिन्न आस्वादों की अनुभूति कराने की असाधारण कला है।

विप्रलम्भ श्रृङ्गार की मार्मिक वेदना का अनुभव महाश्वेता विलाप एवं कादम्बरी के विरह वर्णनों में होता है। महाश्वेता पुण्डरीक की मृत्यु पर कहती है—**हा हा किमिदमुपनतम्? हा अम्ब! हा तात! हा सख्यः! हा नाथ! जीवितनिबन्धन! आचक्ष्व, क्व मामेकाकिनीमशरणामकरुण! विमुच्य यासि?····प्रसीद, सकृदप्यालप, ····ईषदपि विलोकय, पूरय मे मनोरथम्, आर्तास्मि, अनुरक्तास्मि, अनाथास्मि·······।**

जरद् द्रविड़ धार्मिक के चित्रण में हास्य रस की अभिव्यञ्जना है। "माता अम्बिका के चरणों पर गिरकर प्रणाम करने में उसके काले ललाट पर गुमड़ा पड़ गया है। किसी पाखण्डी के सिद्धाञ्जन से एक आँख फूट गयी है, मनुष्यों ने थप्पड़ मार-मार कर उसके कान चपटे कर दिये हैं। दिन भर सिर हिलाता हुआ मच्छरों की भाँति गुनगुनाया करता है।" यहाँ उसके व्यवहार में एवं उपमानों की प्रस्तुति में हास्य की पूर्णाभिव्यक्ति है।

चन्द्रापीड की दिग्विजय यात्रा जैसे प्रसंगों में वीररस की, शुक द्वारा विद्वत्तापूर्ण कथन, पुण्डरीक को आकाश में ले जाना, अश्व का सरोवर में स्नान करते ही पुरुष रूप में बदलना आदि वर्णनों में अद्भुत रस की अनुभूति है। जरत् शबर की मनोदशा एवं उसके शरीर की वर्णना में भयानक तथा वीभत्स रसों की तथा जाबालि ऋषि एवं उनके आश्रम का वर्णन करते समय शान्तरस की मार्मिक अभिव्यञ्जना है।

वस्तुतः बाणभट्ट के प्रत्येक वर्णन में एक विचित्रता है, मनोहरता है एवं आह्लादकता है। कादम्बरी नायिका के नखशिख वर्णन में उनकी तूलिका ने जिस श्रृङ्गारिक कोमलता का आश्रय लिया है वह अद्भुत है। डॉ० भोलाशंकर व्यास ने उसे रस की दृष्टि से अतिश्रेष्ठ मानते हुए अपनी भावना इन शब्दों में व्यक्त की

है—''कादम्बरी के नखशिख वर्णन में बाण ने सारी कल्पनाओं की गठरी खोल दी है, सारी रसगगरी को उस अनिन्द्य सुन्दरी गन्धर्वकुमारी के अभिषेक के लिये उड़ेल दिया है। कादम्बरी की वयः सन्धिगत दशा के लिये बाण ने यह कल्पना की है जैसे यौवन के लक्षण प्रेम से युक्त होकर उसके समस्त अंगों में आकर प्रविष्ट हो गये हों, वह बालाभाव को उसी प्रकार छोड़ रही है जैसे आकृत पुण्या (स्वतः प्राप्त पुण्य) को छोड़ रही हो और यौवन, कामदेव के आवेश के वशीभूत होकर कादम्बरी के माता-पितादि के (अनुमति) न देने पर भी उसका उपभोग करने के लिये उसे पकड़ रहा हो।''

बाण के रस परिपाक विषयक प्रयत्न की सफलता का मुख्य कारण उनका अपार शब्द भण्डार एवं लोक जीवन का बहुत ममीप से किया गया अनुभव है। यही कारण है कि गोवर्धनाचार्य जैसे कुछ विद्वानों को यह प्रतीत होने लगा कि बाण, वाणी का ही अवतार हैं, जो प्रगल्भताऽऽधिक्य की प्राप्ति हेतु धारण किया गया है—

''जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह॥''

**भाषा-सौन्दर्य**—संस्कृत साहित्य में विपुल शब्द-भण्डार एवं अभिनव पदों के प्रयोग में बाण की समता कोई कवि नहीं कर सकता। उनकी भाषा सदैव भावानुकूल होती है। वर्णनों के विषय का ध्यान कवि को सदैव रहता है। यद्यपि बाण सुबन्धु की विकटाक्षरबन्धयुक्त समासबहुलपदावली के प्रयोग के पक्षपाती हैं किन्तु उन्होंने उनका अन्धानुसरण नहीं किया है। यही कारण है कि—जहाँ उनके श्रृङ्गार वर्णनों में कोमलकान्त पदावली का प्रयोग है वहीं विकटस्वरूपा विन्ध्याटवी एवं नृशंसकर्मा शबर सेनापति व उसकी सेना का वर्णन करते समय उन्होंने क्लिष्ट समासबहुल ओजगुण प्रधान भाषा का प्रयोग किया है। पारस्परिक संवादों में उनकी भाषा लघु पदावली से युक्त होती है। इसी प्रकार विलाप एवं निन्दात्मक वर्णनों में भी। आत्मकथा सुनाते समय कवि प्रायः मध्यम समास अर्थात छोटे-छोटे समस्त पदों को अपनाकर श्रोता को आह्लादित करता हैं।

भावों की सम्यग् अभिव्यक्ति का सुन्दरतम साधन भाषा होती है। अतः जो वर्णनों (भावों) से भाषा का सामंजस्य स्थापित नहीं करता वह श्रेष्ठ कवि नहीं हो सकता। पाठक की रुचि का भी स्मरण कवि को रहता है अतः थोड़ी-थोड़ी दूर में शब्द संचयन की प्रक्रिया में परिवर्तन कर बाण नूतनता की सृष्टि करते रहते हैं। असमस्त या अल्पसमस्त पदों में भी सौन्दर्य सृष्टि के लिये बाण अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग करने में नहीं चूकते। इसीलिये उनकी भाषा में नूपुरझंकृति युक्त पदावली विशिष्टा वधू की प्रतीति विद्वानों को होने लगती है—
''सा किं तरुणो नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।''

"ओजः समासभूयस्त्वम् एतद्गद्यस्य लक्षणम्" के प्रति विशेष आदर रखने के कारण उनकी भाषा में कहीं-कहीं कठिनता का दोष आ गया है। वाक्य इतने लम्बे हो गये हैं कि क्रियापदों को ढूँढ़ने में अच्छा-खासा व्यायाम करना पड़ता है। वर्णनों को विस्तार देने में विशेषणों का भूयसा प्रयोग कहीं-कहीं मूल अर्थ को निगल-सा जाता है। महाश्वेता-दर्शन में एक वाक्य ६७ पंक्तियों का है तो कादम्बरी-दर्शन में एक वाक्य ७२ पंक्तियों का है। विश्व साहित्य में इतने दीर्घतर वाक्यों का शायद ही किसी ग्रन्थ में प्रयोग मिले। इस प्रकार की पदशय्या एवं विशेषणों के भी विशेषणों की प्रस्तुति से कवि के सामर्थ्य, शब्द भण्डार और कल्पनाशक्ति का जहाँ परिचय मिलता है वहीं कथा का सतत् प्रवहमान प्रवाह क्षणिक अवरुद्ध-सा हो जाता है जो एक कवि के लिये अच्छी बात नहीं। किन्तु स्वकालीन गद्य परम्परा एवं विद्वत् प्रवृत्ति का अनुसरण करना कवि का धर्म है। बाण के समय समास बहुल, विकटाक्षरबन्धयुक्त ओज गुण प्रधान अलंकृत भाषा शैली की परम्परा ही समाज में समादृत थी अतः बाण ने उसको अपनाना अपने कवि कर्म के लिय अनिवार्य माना। अतः बाणभट्ट की कादम्बरी के विषय में कीथ, वेवर आदि पाश्चात्य विद्वानों की यह धारणा कि—"कादम्बरी एक सघन भारतीय कान्तार है जिसमें यात्री जब तक अपने लिये स्वयं झाड़ियों को काटकर मार्ग न बनावे तब तक उसके लिए मार्ग मिलना असम्भव है। इसके बाद भी अप्रचलित शब्दों के रूप में भयंकर वन्य-पशु उसको भयभीत करते हुए प्राप्त होते हैं।" अति उचित नहीं है। इन विद्वानों की समालोचना आधुनिक काव्य पद्धति के आधार पर आधारित है जो कवि के साथ न्याय नहीं है। किसी भी कवि के कवित्व की आलोचना उसके समय के काव्य मानदण्डों के आधार पर ही करना न्यायसंगत है।

बाणभट्ट की वर्णनानुकूल भाषा सौन्दर्य की कुछ झलक इन उदाहरणों में प्राप्त हो सकती है। अच्छोद सरोवर की निर्मलता का वर्णन करते समय भाषा में स्वच्छता एवं समासराहित्य द्रष्टव्य है—**"तस्य तरुखण्डस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः, निर्गमन मार्गमिव सागराणां निष्यन्दमिव दिशाम्, अंशावतारमिव गगनतलस्य कैलाशमिव सागराणां द्रवतामापन्नम्, चन्द्रातपमिव रसतामुपेतम्···· अतिमनोहरम् अच्छोदं नाम सरो दृष्टवान्।"**

विन्ध्याटवी जैसी घनी एवं हिंसक पशुओं से भरी अरण्यानी का वर्णन करते समय भाषा में कठोरता एवं समासबाहुल्य का वर्णनानुकूल अतएव उचित प्रयोग रुचिकर है—**"उन्मद मातङ्गकपोलस्थल गलितमदसलिलसिक्तेनेव निरन्तर मेलालता वनेन मदगन्धिनान्धकारिता, नखमुखलग्नेभकुम्भमुक्ताफललुब्ध शबरसेनापतिभिरभिहन्यमानकेशरिशता प्रेताधिपनगरीव सदा सन्निहित-मृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, ····पुण्यवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम।"**

वसन्त वर्णन में कोमलकान्त पदावली का प्रयोग कर कवि ने माधुर्य गुण की मधुर सृष्टि की है—

"कोमलमलय मारुतावतारतरङ्गितानङ्गध्वजांशुकेषु"'मधुकर कुलकलङ्क कालीकृत कालेयककुसुमकुड्मलेषु"'मधुमासदिवसेषु...."

नीतिज्ञ शुकनास मन्त्री के द्वारा चन्द्रापीड को नीति का उपदेश करते समय छोटे-छोटे वाक्यों में लक्ष्मी के दोषों का सरलतम दर्शन है—"न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते न कृतज्ञतामनुवर्तते। न शीलं पश्यति, न वैदग्धं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति।"

इस प्रकार बाण की भाषा में प्रवाह, शब्दों में नवीनता, अवसरानुकूल वर्ण-विन्यास एवं उचित समय पर समासों का सुन्दर प्रयोग है। इतनी बड़ी कथा को इतने सुन्दर ढंग एवं गद्य के माध्यम से कहने की वाणी बाण की ही हो सकती है अन्य की नहीं।

**कादम्बरी में वर्णन वैचित्र्य**—कादम्बरी वर्णन प्रधान ग्रन्थ है। पद-पद पर कवि का प्रयास रहा है कि वह जो भी वर्णन प्रस्तुत करे उसके प्रत्येक छोटे से बड़े अङ्ग को पूर्णतया उद्घाटित करे। वर्णनों में विस्तार का भय बाण को बिल्कुल नहीं था। अतएव जब वे विलासवती के प्रसूतिकागृह का वर्णन करते हैं तो ऐसी छोटी-छोटी वस्तुओं का भी उल्लेख करते हैं जिन्हें केवल वृद्धाएँ ही जानती होंगी अन्य नहीं। इस दक्षता का मुख्य कारण बाण को देश भ्रमण से प्राप्त जनजीवन का अन्तरङ्ग ज्ञान ही है। बाण के वर्णनों की महती विशेषता है कि उनके वर्णनों का अध्ययन करते समय अध्येता को ऐसा अनुभव होने लगता है जैसे वह उस स्थान विशेष में या वर्णनीय व्यक्ति के रूप में स्वयं ही एक भागीदार हो।

बाण के द्वारा चित्रित विविध वर्णनों को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है। (१) व्यक्तिपरक वर्णन, (२) प्राकृतिक वर्णन, (३) स्थानपरक वर्णन, (४) भावपरक वर्णन, (५) उपदेशात्मक वर्णन। इन वर्णनों की प्रमुख सूची इस प्रकार हैं—

**(१) व्यक्तिपरक वर्णन**—जिनमें किसी व्यक्ति विशेष या उसकी सेना आदि का वर्णन हो जैसे—शूद्रक वर्णन, शुक वर्णन, चाण्डाल कन्या वर्णन, शबर सेना वर्णन, जाबालि वर्णन, तारापीड वर्णन, इन्द्रायुध वर्णन, जरत्शबर वर्णन, द्रविड़ धार्मिक, महाश्वेता वर्णन आदि।

**(२) प्राकृतिक वर्णन**—इस प्रकार के वर्णनों में, उनका वर्गीकरण किया गया है जो समय-सूचक तथा नदी, तालाब, आश्रमादि हैं जैसे—प्रातःकाल (सूर्योदय) सन्ध्या, विन्ध्याटवी, जाबाल्याश्रम अच्छोद सरोवर, पम्पा सरोवर आदि के वर्णन हैं।

(३) **स्थानपरक वर्णन**—इस वर्ग में नगर, देवायतन राजमहल आदि के वर्णनों को वर्गीकृत किया गया है ! जैसे—विदिशा, उज्जयिनी, महाकाल, सूतिकागृह, कादम्बरी का हिमगृह, चण्डिकायतन एवं कन्यान्तःपुर आदि के वर्णन हैं।

(४) **भावपरक वर्णन**—सुख, दुःख, विषाद आदि की परिस्थितियों में मानवीय मनोभावों का चित्रण इस वर्ग में वर्गीकृत है। जैसे—विलासवती का पुत्र-हीनता जन्यविषाद वर्णन, गुरुकुल से लौटे चन्द्रापीड को देखकर नागरी स्त्रियों के हावभाव का वर्णन, पुण्डरीक को देखकर महाश्वेता का प्रेमोद्रेक वर्णन, चन्द्रापीड को देखने पर कादम्बरी के हार्दिक मनोभावों का वर्णन, पुण्डरीक की मृत्यु पर कपिंजल एवं महाश्वेता का विलापवर्णन आदि।

(५) **उपदेशात्मक वर्णन**—इस वर्ग के अन्तर्गत मुख्यरूप से चन्द्रापीड के यौवराज्य पद पर अभिषेक के समय शुकनास के द्वारा उसको दिया गया उपदेश है। इस उपदेश में लक्ष्मी, राज्यसुख युवावस्था एवं धूर्तों के अवगुणों का विस्तार से वर्णन करते हुए इनसे सावधान रहने का उपदेश तथा राजनीति विषयक उपदेश सम्मिलित हैं। वस्तुतः इस वर्णन में ज्ञान की जिस उत्कष्ट सीमा का दर्शन होता है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सरस्वती ही साक्षात् वोल रही हो'

बाणभट्ट के द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त वर्णनों में भाव और भाषा का मञ्जुल सामंजस्य हैं।। भाषा में आरोहावरोह के द्वारा भावाभिव्यक्ति में सौन्दर्य की अनुभूति है। साथ ही उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों से उनमें गाम्भीर्य की सृष्टि की गयी है।

सन्ध्या वर्णन में कवि की कल्पनाशक्ति एवं वर्ण्यविधान दृष्टव्य है। सूर्य का प्रकाश ऊर्ध्वमुख तपस्वियों द्वारा पी लिया जाने के कारण ही मानों वह मन्द पड़ गया है। सप्तर्षियों के कहीं पैर न छू जायें मानो इसीलिये सूर्य ने अपने पैर (किरण) समेट लिये हैं। आश्रम की गाय के समान दिनभर कहीं घूमने के बाद सन्ध्या वापस आ गई है। समुद्र में सूर्य के कूद जाने से उत्पन्न बूंदे ही जैसे तारा बन गये हैं'

**"ऊर्ध्वमुखै····ऊष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयमान तेजः प्रसरो विरलातपो दिवसस्तनिमानमभजत् उद्यत्सप्तर्षिसार्थ स्पर्श पिरजिहीर्षयेव............रविरम्बर तलादलम्बत्। क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या मुनिभिरदृश्यत। अपराम्भसि पतिते दिनकरे····अम्भःसीकर निकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्।"**

**प्रकृति चित्रण**

समस्त भारतीय साहित्य में सौन्दर्य की स्थापना एवं रमणीयता की सृष्टि के लिये प्रकृति चित्रण प्रमुख तत्व-सा बन गया है। काव्य हो या नाटक, कथा हो या उपन्यास, प्रकृति के किसी न किसी अंग का वर्णन उसमें अनिवार्यतः मिलेगा। इसका

मूल कारण यही प्रतीत होता है कि भारत में प्राकृतिक सुषमा की अद्भूत सम्पदा है जो अन्यत्र उतनी समृद्ध नहीं है जैसी यहाँ। यही कारण है कि कवियों ने चाहे वे किसी भी भारतीय भाषा के क्यों न हों प्रकृति और पुरुष में, जड़ एवं चेतन में भेद मिटाकर तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया है। जिस कवि ने प्रकृति को जितनी स्वाभाविकता एवं सूक्ष्मता से निरखा है काव्य जगत् में वह उतना ही अधिक सफल हुआ है।

महाकवि बाण प्रकृति चित्रण में पूर्ण सफल रहे हैं। उन्होंने भी अन्य पूर्ववर्ती कवियों की भाँति प्रकृति का आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों रूपों में चित्रण किया है। पुण्डरीक के वियोग से पीड़ित महाश्वेता को चन्द्रमा की किरणों में दाह-कता का अनुभव होता है —

**"एकत्र चायं पापकारी चन्द्रहतको न शक्यते सोढुम्। इदमति दुर्विषहं मे हृदयम्। अस्य चोद्गमनमिदं सदाहज्वर ग्रस्तस्याङ्गार वर्षः शीतार्तस्य तुषारपातः, विषस्विस्फोट मूर्छितस्य कृष्णसर्पदंशः।**

यहाँ उदीयमान चन्द्रमा का उद्दीपक रूप में वर्णन है। दाह-ज्वर से पीड़ित व्यक्ति के लिए अङ्गारों की वृष्टि के समान महाश्वेता के अङ्गों में चन्द्रमा (शीतल-होकर भी) दाह पैदा कर रहा है। कालिदास का दुष्यन्त भी शकुन्तला के वियोग में चन्द्रकिरणों से अग्निवर्षा का अनुभव करता है—

**"तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोः**
**द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।**
**विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै—**
**स्त्वमपि कुसुम बाणान् बज्रसारीकरोषि।"**

बाण स्थान भेद से इसी चन्द्रमा को जावालि आश्रम में रमणीयता, पवित्रता एवं शिष्टता के परिचायक रूप में वर्णित करते हैं। कादम्बरी और चन्द्रापीड के संयोग के समय चन्द्रोदय दोनों के हृदयों में विशिष्ट अनुराग को उत्पन्न करता है। इस प्रकार प्रकृति के एक ही अंग को कहीं दुःखदायी, तो कहीं सुखदायी, कहीं पवित्र तो कहीं अपवित्र, रूप में चित्रित करने में बाण को पर्याप्त सफलता मिली है।

बाण ने प्रकृति की बाह्य एवं अन्तः उभयविध स्थितियों का चित्राङ्कन किया है किन्तु आलम्बन रूप में उसका अधिक चित्रण है साथ ही उन्होंने उसके सुन्दर-असुन्दर दोनों रूपों को अपनी लेखनी से चित्रित करने की चेष्टा की है। अतः वे यथार्थतया प्रकृति के सहज उपासक हैं। विन्ध्याटवी में जहाँ उन्हें प्रकृति का भयानक रूप दिखाई दिया वहीं अच्छोदसरोवर में उसका कमनीय रूप भी दृष्टिगत हुआ। विविध अलंकारों से अलंकृत प्रकृति वर्णनों में जो सजीवता, स्वाभाविकता एवं चित्रात्मकता है वह प्रशंसनीय है। पूर्णोपमा अलंकार के साथ विन्ध्याटवी की छटा देखिये—

**"क्वचित् प्रलयवेलेव महावराहदंष्ट्रा समुत्खातधरणिमण्डला, क्वचिद्दशमुखनगरीव चटुलवानरवृन्द मज्यमान तुङ्गशालाकुला, क्वचिदचिरनिर्वृत्त विवाह भूमिरिव हरितकुशसमित् कुसुमशमी पलाशशोभिता, क्वचिदुन्मत्तमृगपतिनादभीतेव कण्टकिता।"**

विन्ध्याटवी के इस अंश में कवि ने विविध दृश्यों की योजना की है जैसे— कहीं तो वह विन्ध्याटवी प्रलयकाल के समान थी क्योंकि उस समय जलमग्न पृथ्वी को विष्णु ने वराह (शूकर) अवतार धारण कर अपनी दाढ़ों (दांतों) पर ऊपर लाने का श्रम किया था। इस समय अनेक जंगली सुअरों ने अपनी भयंकर दाढ़ों से पृथ्वी को खोद डाला है। कहीं वानरों के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किये गये शाल के पेड़ों से युक्त विन्ध्याटवी रावण की लंका के समान जिसे राम-दल के वानरों ने नष्ट किया था, प्रतीत हो रही है। कहीं वह विन्ध्याटवी हरे हरे कुशों समिधाओं, शमीवृक्षों एवं पलाश आदि से युक्त होने के कारण विवाह भूमि-सी लगती है तो कहीं मदमत्त सिंहों की गर्जना से डरी हुई अतएव कण्टकित (रोमांचित) सी लग रही है।

इस प्रकार एक ही वर्णन में अनेकरूपता उपस्थित करना बाण का स्वभाव है। कभी-कभी इस योजना में अति क्लिष्ट समास बहुल पदावलीं एवं श्लेषादि अलंकारों की बहुलता पाठकों को अधिक रुचिकर प्रतीत नहीं होती। कवि के ऐसे वर्णन उसके बौद्धिक विलास को तो प्रदर्शित कर सकते हैं किन्तु पाठक के अन्तरङ्ग में हर्ष को नहीं। यद्यपि इस प्रकार का प्रकृति चित्रण सर्वत्र नहीं है। चन्द्रोदय के समय चांदनी की गङ्गाप्रवाह से उपमा कितनी सरल एवं हृद्य है—**"चन्द्रभराभृत स्तारकाकपाल शकलालंकृतादम्बरतलात् त्र्यम्बकोत्तमाङ्गादिव गङ्गा सागराना पूरयन्ती हंसधवला धरण्यामपतज्जोत्स्ना। हिमकरसरसि विकचपुण्डरीकसिते चन्द्रिकाजलपान लोभादवतीर्णो निश्चलमूर्ति रमृतपङ्कलग्न इवादृश्यत हरिणः।"**

जिस प्रकार अपने जल से सागर को परिपूर्ण कर देने वाली हंसों से युक्त समुज्वल गङ्गा चन्द्रमा से अलंकृत कपालधारी शिव के मस्तक से पृथ्वी पर गिरी उसी प्रकार समुद्र को तरङ्गित कर देने वाली, हंसों जैसी उज्ज्वल चाँदनी चन्द्रमा एवं तारों से शोभित आकाश मण्डल से पृथ्वी पर गिरने लगी। चन्द्रमा में स्थित कलङ्क (कालिमा) ऐसा लग रहा था मानो विकसित श्वेतकमलों से धवलित चन्द्र-मण्डल रूपी तालाब में चन्द्रिका रूपी जल पीने के लोभ से आया हुआ हरिण अमृत के पंक में फंस जाने से निश्चल हो गया हो।

बाण ने अपने पात्रों की मनःस्थिति को ध्यान में रखकर प्रकृति का चित्रण किया है। इसीलिये चन्द्रोदय, वियोगिनी महाश्वेता को सन्तापकारक प्रतीत होता है तो वही जाबालि आश्रम को पवित्र करता हुआ सा लगता है। प्रकृति के अनेक बिम्ब चित्र अत्यन्त आह्लादक हैं तो कहीं शब्दचित्रता के व्यामोह से अरुचिकर भी हैं। फिर भी प्रकृति चित्रण में बाण की सूक्ष्मेक्षिका शक्ति प्रशंसनीय है।

**बाणभट्ट की शैली**—महाकवि बाणभट्ट गद्य काव्य जगत के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने भाषा और भाव में अनुपम सामञ्जस्य स्थापित कर एक आदर्श प्रस्तुत किया है। इस प्रक्रिया में उनको शैली का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। **शब्दार्थयोः समोगुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते**" सरस्वती कण्ठाभरण के उक्त लक्षण के अनुसार बाण के गद्य काव्यों में पाञ्चाली रीति का प्रयोग है। बाण के समय शैली विषयक कुछ मान्यताएँ थीं जो जनरुचि पर आधारित थीं जैसे—उत्तर भारतीय कवि श्लेष बहुल रचना को ठीक-ठीक मानते थे तो पश्चिम के कवि अर्थगौरव को महत्व देते थे, दक्षिण के उत्प्रेक्षा को और पूर्वी बङ्गाली शब्दाडम्बर को। यह स्वयं बाण ने हर्षचरित में लिखा है—

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः॥

अपने समय की प्रचलित उक्त चारो शैलियों की कवि उपेक्षा तो नहीं कर सकता था और न उनको यथावत अपना ही सकता था। बाण से पूर्ववर्ती सुबन्धु ने शब्दाडम्बर प्रधान रचना की तो दण्डी नें अर्थ प्रधान। किन्तु बाण ने दोनों के मध्य का मार्ग निकाल कर पाञ्चाली शैली में शब्द और अर्थ के मध्य समन्वय स्थापित करने का सफल प्रयास किया। वर्णनानुकूल समास, अलंकार, वर्ण-विन्यास आदि की योजना एवं आवश्यकता न होने पर समास, अलंकार आदि का सर्वथा परित्याग करना बाण की विशेषता रही है। अतः उनकी शैली में सुस्पष्टता एवं औचित्य की रक्षा है।

बाण ने वर्णन, भाषा और अलंकारों के लिये एक विशिष्ट पद्धति अपनायी जिसे हम उनकी रचना शैली ही कह सकते हैं जैसे—वे जब थोड़ी दूर तक दीर्घ समास युक्त पदावली का प्रयोग कर लेते हैं तो उसके बाद तुरन्त ही लघुपदावली का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार वर्णनों में पहले साङ्गोपाङ्ग-वर्णन एवं दीर्घ समास का प्रयोग तत्पश्चात् श्लेषमूलक उपमा एवं उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग और अन्त में विरोधाभास या परिसंख्या का प्रयोग करते हुए वर्णनीय विषय को पूर्णता देते हैं। इस प्रयास में बाण की यह मान्यता स्पष्ट नजर आती है कि वे नवीन, चमत्कारिक अर्थ, उत्कृष्ट स्वभावोक्ति, सरस श्लेष प्रयोग, सुन्दर रसाभिव्यञ्जना और ओज गुण प्रधान पदावली को एकत्र प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। यद्यपि उनकी मान्यता यही है कि ये सारे-गुण एक ही काव्य में उपस्थित करना अत्यन्त दुष्कर है—

**"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः। विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्।"**

हर्षचरित में उपर्युक्त सभी गुणों का सम्यक परियाक् नहीं हो सका यह सत्य है किन्तु कादम्बरी में इन सभी का पूर्ण दक्षता से प्रयोग एवं सम्यक् परिपाक हुआ है।

जितनी प्रतिभा से कवि ने भावों की कल्पना की है उतनी ही दक्षता से उनकी अभिव्यक्ति भी। जितना सुन्दर अर्थगौरव है उतनी ही ललित उसकी प्रस्तुति भी। दो विरोधी धाराओं को एक साथ प्रवाहित करने में बाण को आनन्द आता है चाहे वे वर्णन हों या भाषा, गुण हों या अलंकार। जैसे एक ओर उनकी कादम्बरी में माधुर्य एवं प्रसाद की मुस्कराहट है तो दूसरी ओर ओज की गंभीरता। एक ओर उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक की सरसता है तो दूसरी ओर श्लेष, विरोधाभास एवं परिसंख्या की श्रमसाध्य प्रौढ़ता है। एक ओर कादम्बरी और महाश्वेता की कोमल प्रणय भावना है तो दूसरी ओर जरत् शबर की क्रूरता। एक ओर अच्छोद सरोवर की तरलता है तो दूसरी ओर विन्ध्याटवी की गहनता एवं कठोरता है।

इस प्रकार कवि की काव्य शैली नितनूतन परिधान से सजी-संवरी नायिका की भाँति अपने हास्य, लास्य एवं अभिनय से पाठकों का मन आकर्षित कर लेती है। उनके अलंकार रूपवती स्त्री के शरीर में शोभित अलंकारों की भाँति हैं कुरूपा के गले में हार की भाँति अरुचिकर नहीं। युवावस्था के प्रवेश का वर्णन करते समय रशनोपमा का प्रयोग ऐसा प्रतीत होता है जैसे एक-एक कदम आगे बढ़ाता हुआ साक्षात् यौवन शब्दों में समा गया हो—

**"क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन मधुमास इव नव पल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्"।**

इस प्रकार अलंकारों को वर्णनानुकूल संयोजित करने की कला उनका स्वभाव बन जाने के कारण उनकी शैली का ही रूप है। शब्द संचयन की प्रवृत्ति एवं नूतनता की सृष्टि का प्रयास उनका शैलीगत चमत्कार है। बाण सहृदय सामाजिक हैं उनका काव्य उनकी प्रतिभा का स्वर्णिम प्रसून है। स्वकालीन समस्त शैलीगत विशेषताओं एवं काव्यगत प्रवृत्तियों को कादम्बरी में एकत्र प्रस्तुत करने का उनका यह प्रयास परवर्ती गद्यकारों के लिये अनुकरणीय रहा है।

ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुणों के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हुए उचित अलंकारों की योजना एवं वर्णनों की विचित्रता ने उनके काव्य को सर्वहृदयङ्गम एवं आह्लादक रूप प्रदान किया है इसीलिये पाञ्चाली शैली में पाञ्चाली जैसी मुग्धता है। विद्वान् एवं साधारण पाठकों को भी वह उसी प्रकार रुचिकर है जैसे भीम, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव को आह्लादित करने वाली पाञ्चाली द्रौपदी।

कवि की रचना शैली से प्रभावित होकर एवं बाण की सर्वाङ्गीण प्रतिभा से चमत्कृत होकर श्री चन्द्रदेव ने काव्यरूपी विन्ध्याटवी के सिंह की उपमा ठीक ही दी है—

श्लेषे केचन शब्दगुम्फ विषये केचिद् रसे चापरे—
अलंकारे कतिचित् सदर्थ विषये चान्ये कथावर्णने।
आः सर्वत्र गंभीरधीर कविता विन्ध्याटवी चातुरी।
संचारी कविकुम्भि कुम्भ भिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।

## कादम्बरी में भावपक्ष एवं कलापक्ष

शब्द और अर्थ का, भाव और भाषा का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करने में बाण बेजोड़ हैं। उनकी कादम्बरी कथा इसका अनूठा उदाहरण है। भाव पक्ष में रस और ध्वनि की प्रधानता होती है तो कलापक्ष में अलंकार, रीति, गुण और भाषा का वैचित्र्य रहता है। कादम्बरी के समस्त वर्णनीय विषयों में भाव प्रधानता, गाम्भीर्य एवं हृदयस्पर्शी सौन्दर्य है। रस की निर्झरिणी में प्रतिपद नूतनता एवं चमत्कार है। एक ही आलम्बन में शृङ्गार, करुण, शान्त एवं वीर रसों की मार्मिक अभिव्यञ्जना है। महाश्वेता के जीवन में इन सभी रसों की मधुर परिणति है। वर्णनानुकूल रसाभिव्यक्ति के लिए बाण प्रायः समास रहित लघुकाय वाक्यों की योजना करते हैं। पुण्डरीक की कामावस्था से चकित कपिञ्जल के अन्तर्हृदय की भावधारा कितनी सहजता से प्रवाहित की है :—

**"सखे पुण्डरीक ! नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः। धैर्यधना हि साधवः।........क्व ते तद्धैर्यम् ? क्वासाविन्द्रिय जयः ? क्वतद्वशित्वं चेतसः क्व सा प्रशान्तिः ?..........क्व ते गुरुपदेशाः ? क्व तानि श्रुतानि ? क्व ताः वैराग्य बुद्धयः ?........।**

यहाँ जहाँ भाषा का मार्दव है वहीं कर्तव्य का बोध एवं ब्रह्मचर्योचित व्यवहार से पलायनवादी प्रवृत्ति का विरोध है।

बाण नगर वन, सरोवर, यात्रादि प्रसङ्गों के वर्णन में प्रायः समास बहुल, अलंकृत शैली का प्रयोग कर कलापक्ष की सुन्दरता का आख्यान करते हैं।

कादम्बरी में अनुप्रास, यमक, श्लेष, रूपक, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या, विरोधाभास, अतिशयोक्ति एवं काव्यलिङ्ग अलंकारों का भूयसा प्रयोग हुआ है। इन सभी अलंकारों के प्रयोग में रस की स्फुटता एवं वर्णन [illegible] औचित्य का निरन्तर ध्यान रखा गया है। बाण काव्य की आत्मा रस को [illegible] ते हैं। अतः अलंकारों का गहन प्रयोग भी चित्र काव्यत्व की सृष्टि नहीं कर [illegible]। फलतः दीर्घ समासों में अलंकारों के द्वारा आनन्द की वृष्टि होती रहती है। बाण के काव्य को आकाश का रूपक देते हुए किसी समालोचक का यह कथन नितान्त सार्थक प्रतीत होता है कि—"कविप्रवर बाण के काव्याकाश में कहीं अनुप्रास की मधुरिम तारावली चमक रही है, कहीं उपमा का मञ्जुल मयंक सरस शीतल रश्मियों के द्वारा दिव्यानन्ददायी प्रकाश विकीर्ण कर रहा है। कहीं उत्प्रेक्षाओं की मेघमाला हृदय को निर्वाण प्रदान करती है, कहीं अतिशयोक्ति विद्युत परिस्फुरित हो रही है। कहीं यमक, श्लेष, रूपक, परिसंख्या, विरोधाभास आदि का सप्तवर्णी इन्द्रधनुष रसाप्लावित कर रहा है।

बाण ने अपनी काव्यशैली की योजना में **"श्लेषोऽक्लिष्टः"** की प्रतिज्ञा की है, तदनुसार उन्होंने सदैव इसका ध्यान रखते हुए श्लेष का प्रयोग प्रायः परिसंख्या,

विरोधाभास एवं उपमा के साथ ही किया है। जाबालि आश्रम के वर्णन में परिसंख्या अलंकार के साथ श्लेष का प्रयोग जितना सरल है उतना ही आश्रम की पवित्रता, शोभा एवं शान्ति की अतिशयता उपस्थित करने में सक्षम है—

**"यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदली दलेषु न मनःसु,……… स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न कामिनीषु, भ्रान्तिरनल प्रदक्षिणासु न शास्त्रेषु,………रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन।**

उपमा अलंकार का प्रयोग करने में कवि ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। इनकी उपमाओं में मूर्त, अमूर्त प्रयोग की विविधता है, पदों में माधुर्य है एवं भाव में गाम्भीर्य है। महाश्वेता की दृष्टि में पुण्डरीक का व्यक्तित्व कैसा है देखिये—

**"अलंकारमिव ब्रह्मचर्यस्य, यौवनमिव धर्मस्य, विलासमिव सरस्वत्याः……… स्वयंवरपतिमिव सर्वविद्यानां, संकेतस्थानमिव सर्वश्रुतीनाम्…………मुनिकुमारकमपश्यम्।**

बाण के द्वारा प्रयुक्त उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ एक ओर जहाँ वर्णनीय पात्र के प्रति कवि की भावना को व्यक्त करती हैं वहीं दूसरी ओर उस पात्र के स्वभाव का भी मनोवैज्ञानिक परिचय देती हैं। अतः बाण की उपमाओं में बाह्य साम्य के साथ-साथ अन्तःसाम्य की भी व्यञ्जना रहती है।

रूपक, उत्प्रेक्षा और श्लेषोपमा अलंकारों का अधिकांशतः प्रकृति चित्रण में प्रयोग है। सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय आदि में इन अलंकारों की कल्पना कवि की काव्यशक्ति को निखारने में अत्यन्त सहायक हुए हैं। **"क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या तपोधनैरदृश्यत"** इस एक ही वाक्य में श्लेष (लोहिततारका, कपिला), उपमा (तपोवनधेनुरिव) एवं उत्प्रेक्षा (क्वापि विहृत्य) इन तीन अलकारों का प्रयोग है साथ ही सन्ध्या की पवित्रता एवं महत्ता की सुन्दर अभिव्यञ्जना है। महाकवि कालिदास ने भी तपोवन की धेनु (नन्दिनी) की कल्पना कुछ इसी प्रकार की थी—

संचार पूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लवराग ताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनु॥ (रघुवंश)

अतः बाणभट्ट के कलापक्ष और भावपक्ष दोनों में अत्यन्त समन्वय है। किसी भी एक पद्धति का विचार करते समय दूसरे पक्ष पर दृष्टि पात अनिवार्य है। इनकी इसी विशेषता के आधार र कादम्बरी की शैली पाञ्चाली मानी जाती है जिसका लक्षण है—**"शब्दार्थयोः समोगुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।"**

बाण की कला की यही विशेषता है कि उसमें रसप्रवणता, कलात्मक सौन्दर्य, वक्रोक्तिमय अभिव्यञ्जना प्रणाली, सानुप्रासिक समासान्त पदावली, दीपक, उपमा और स्वभावोक्ति की रुचिर योजना के बीच-बीच में श्लेष, विरोधाभास और

परिसंख्या को गूंथ दिया गया है जिससे प्रत्येक सहृदय पाठक आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता।

**"हरन्ति कं नोज्वल दीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः।**
**निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्त्रजश्चम्पक कुड्मलैरिव॥**

बाण ने उक्त श्लोक के माध्यम से अपनी कादम्बरी कथा में उपर्युक्त विशेषताओं की विद्यमानता का स्वतः उल्लेख किया है।

अलंकारों की मनोहरता और भावपक्ष की रसपेशलता को समन्वित करने में भाषा का सर्वाधिक महत्त्व है। जिसके पास शब्द न हों अर्थात् भाषा ही न हो वह भावों को कलात्मक रूप से अभिव्यक्ति दे ही कैसे सकेगा? बाण के पास अपार शब्दभण्डार होने के कारण ही वे भावपक्ष और कलापक्ष का मञ्जुल समन्वय स्थापित कर सके। परवर्ती गद्य-काव्यकारों ने बाण की शैली का अनुकरण कर अनेक काव्यों की रचना की है।

## बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्

महाकवि बाण के सम्बन्ध में यह सूक्ति अति प्रचलित है कि सम्पूर्ण जगत् (साहित्यिक जगत्) बाण की जूठन है। अर्थात् बाण ने किसी भी विषय को अछूता नहीं छोड़ा है। जो कुछ भी उन्होंने वर्णन कर दिया है, उससे आगे कुछ भी कहने को शेष नहीं। इसीलिए सब कुछ बाण की जूठन है। इस सुभाषित का मुख्य आधार है—

**"कवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा, व्यापक ज्ञान, अद्‌भुत वर्णन शैली वर्ण्य-विषय का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण और विपुल शब्द भण्डार।"**

बाणभट्ट को सौभाग्य से देशाटन का एवं समाज के सभी अङ्गों को समीप से देखने का सुअवसर मिला था। विद्वत्ता उन्हें विरासत के रूप में मिली थी। विद्वत्ता के अनुभवजन्य ज्ञान से संयोग होते ही उसमें पूर्णता आ जाती है। बाण इसी प्रकार की पूर्ण विद्वत्ता से सम्पन्न थे। इसीलिए भौतिक जगत् एवं साहित्यिक जगत की समस्त लीलाएँ उनके बौद्धिक पटल पर साकार थीं। रूढ़ियों का औचित्यपूर्ण पालन करते हुए भी नवीनता के प्रति उनका झुकाव सदैव रहा है—

"सन्ति श्वात्र इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे।
उत्पादका न ब्रहवः कवयः शरभा इव॥'

—हर्षचरित १/५

इस पद्य के माध्यम से उन्होंने स्वरूप मात्र का वर्णन करने वाले कवियों की कुत्ते से उपमा देकर निन्दा की है।

बाण ने अपने बहुमुखी जीवन के समस्त अनुभवों को समेट कर उन्हें अपने ग्रन्थों में पद-पद पर अनुस्यूत किया है। उनकी दोनों रचनाओं हर्षचरित और

कादम्बरी में वर्णनों की विविधता तथा विपुलता तथा शैली की नवीनता ने परवर्ती कवियों के लिए कुछ भी नवीन नहीं छोड़ा है।

हर्षचरित बाण की प्रथम रचना है। इसमें कवि ने तत्कालीन समाज, शिक्षा, धर्म, नीति, आचार, कलाकौशल, वस्त्र, रंग, छपाई कला, धार्मिक सम्प्रदाय, विद्याकेन्द्र, राजकीय वैभव एवं राजतन्त्र शिक्षा आदि का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। इस प्रकार तत्कालीन मानव समाज से विभिन्न अंगों का विस्तृत वर्णन हर्षचरित में है। विशेषता यह है कि जिस वर्णन के लिए कवि की लेखनी उठी उसका साङ्गों-पाङ्ग. वर्णन करके ही रुकी, साथ ही प्रभावशीलता रोचकता एवं नूतनता का भी निरन्तर सन्निवेश रहा।

हर्षचरित में जहां समाज के सांस्कृतिक एवं नीतिपरक तत्वों का प्रफुल्ल विवेचन है वहीं, आख्यायिकामूलता के आधार पर मुख्यतः वीर रस एवं सहयोगी करूण श्रृंगार आदि रसों की सरस अभिव्यंज़ना है। प्रकृति की मधुर झांकी के साथ ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक झांकी का कविकर्म मिश्रित रूप प्रदर्शित हैं।

बाण की दूसरी कृति कादम्बरी एक कथा ग्रन्थ है जो कल्पनाशील, भावुक ह्रदय कवि की अद्वितीय सृष्टि है। हर्ष चरित में उन्होंने अपनी कल्पनाओं का रेखाचित्र खींचा था, जिसमें अद्वितीय रंग भरकर कादम्बरी के रूप में सहृदयों के समक्ष प्रस्तुत किया है। हर्षचरित में सेनापति सिंहनाद का उपदेश कादम्बरी में शुकनाशोपदेश के रूप में इतना विस्तृत एवं पूर्ण हुआ कि यदि यह कहा जाय कि-जैसे-महर्षि व्यास ने महाभारत में गीताऽमृत की सृष्टि की उसी प्रकार वाण ने शुकनाशोपदेश कीं, तो अत्युक्ति न होगी।

कादम्बरी शताधिक वर्णनों का संग्रह है। संक्षेप की उपेक्षा विस्तार की प्रधानता देने के कारण कालिदास के पश्चात् सर्वाधिक मौलिकता वाण की अपेक्षा अन्य को प्राप्त नहीं हो सकी। परस्पर विरोधी वर्णनों में भी वाण उतने ही दक्ष हें जितने समान श्रेणी के वर्णनों में। उनकी वर्णन पद्वति में छोटे और बड़े का, चेतन अचेतन का, राजा और बहेलियो का, काम पीड़ित और तपस्वी का, स्त्री अथवा पुरुष का भेद कोई महत्त्व नहीं रखता है। वे तो वर्णनीय के प्रत्येक स्वरूप का, उसकी अतः प्रकृति का सर्वाङ्गीण वर्णन करते हैं सकारात्मक भी और नकारात्मक भी। उनके लिए कोई विषय छोटा नहीं है ओर कोई बड़ा भी नहीं।

एक ओर यदि वे राजा तारापीड और शूद्रक का वर्णन करते हैं तो दूसरी ओर उतने ही विस्तार के साथ वे वृद्ध शवर (भील और बहेलिया) का वर्णन करते हैं। 'पुरुष पुण्डरीक यदि प्रेम में पागल होकर प्राण त्याग सकता है तो महाश्वेता स्त्री होकर भी तपस्या कर सकती है। कादम्बरी का महल यदि सुख सुविधाओं का आगार है तो जाबालिआश्रम शान्ति का सागर एवं स्वर्ग का द्वार है। विन्ध्याटवी यदि सम्पूर्ण भयंकरता से भरित है तो अच्छोद सरोवर अपनी निर्मलता एवं गम्भीरता से समुद्र को तिरस्कृत करता है।

बाण ने कादम्बरी में प्रातः काल, सन्ध्या, शूद्रक शुक तारापीड, चाण्डाल, कन्या. विन्ध्याटवी, जाबालिआश्रम, जाबालिऋषि, शवर सैन्य, जरत् शबर, पम्पा सरोवर, आच्छौद सरोवर इन्द्रापूधाश्व, महाश्वेता, उसकी बिरहव्यथा, कादम्बरी की पणय भावना एवं वियोगावस्था, चण्डिकायतन, द्रविड़ धार्मिक, रागी विलासवती, प्रसूतिका गृह, गुरुकुल से विद्याध्यन कर लौटे चन्द्रापीड को देखकर नगर स्त्रियों की मनोदशा, शुक को पितृशोक, कपिञ्जल की मैत्री, शुकनाम का उपदेश, चन्द्रापीड की माता एवं पिता के प्रति भक्ति, वैशम्पायन के प्रति मित्रता एवं हारीत का चरित्र आदि विविध विषयों का इतना विस्तृत स्वाभाविक एवं सरस वर्णन किया है कि ज़िसका कोई दूसरा उदाहरण प्राप्त होना असम्भव है। कादम्बरी के हृदय की

काम-चेष्टायें एवं महाश्वेता के हृदय की कामव्यथा में आश्रयभेद से पर्याप्त अन्तर हैं। एक में संयोग एवं दूसरे में विप्रलम्भ दशा है। प्रथम में वासना का तो दूसरे में पवित्रता की धारा है। यह सब बाण की संवेदनशील कल्पना का ही परिणाम है।

बाण के वर्णनों में भाषा एवं भाव का सामंजस्य है। अलंकारों का प्रचुर किन्तु उपयुक्त प्रयोग है। भाषा में आरोह अवरोह की लय हैं और समासों का दीर्घता से ल्वल्पआ की ओर उत्तरोत्तर झुकाव है। बुद्धिमान पुरुषों के योग्य काव्य में पौढ़ि की सृष्टि का श्लेषमूलक परिसंख्या, विरोधाभास दीपक, उपमा आदि का भूयसा प्रयोग भी है किन्तु वह वर्णनाकूल है। इस प्रयास से ७२ पंक्तियों तक एक वाक्य का विस्तार भी कादम्बरी में हुआ है। रस, गुण, ध्वनि एवं वक्रोक्तिमय भाषा के द्वारा काव्य में सौन्दर्य की सृष्टि है।

कादम्बरी एवं हर्षचरित का अध्ययन करने पर बाणकालीन सामाजिक दशा, वर्णो की स्थिति, नारी की स्थिति, शिक्षा का स्वरूप, भारतीय संस्कृति एवं सम्पन्नता प्राचीन रूढ़ियां एवं मान्यताएँ आभूषण, वस्त्र, कलाकौशल की सामग्री, धर्म, राजनीति, युद्धनीति, युवावस्था, कामदशा, तप, दान, यज्ञ, मन्त्रतन्त्र, पाखण्ड, प्रकृति, नखशिख वर्णन, कामचेष्टाएं, चर्तुदश विद्या, आश्रम व्यवस्था, गुरुशिष्य सम्बन्ध, स्वर्ग गन्धर्व एवं मनुष्य लोक पात्रों की योजना, पशु-पक्षियों के लक्षण उनका स्वरूप एवं गुण, राजा, चाण्डाल, पुजारी, बहेलिया, सेवक, सेविका, ऋषि, सैनिक, उन्नति, अवनति के कारण, पुर, नगर, राज्य, जंगल, गिरि, नदी, सरोवर, व्यापार मात्रा, धन के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण आदि विविध विषयों का अत्यन्त विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। यद्यपि कवि का मूल लक्ष्य इस ग्रन्थ में प्रणय दशाओं का चित्रण करना ही था किन्तु कवि को निरंकुश की संज्ञा दी गई है, वह अपनी इच्छानुकूल काव्य सृष्टि करता है। रोमांस प्रधान कृति होने पर भी उसमें शैव शक्ति, वैष्णव, क्षपणक आदि सम्प्रदाय का तथा देवार्चन, यज्ञ, दान आदि का वर्णन भी कवि ने किया है। तत्कालीन समाज में सतीप्रथा, स्वप्न, भाग्य, शकुन, संस्कार आदि पर लोगों की आस्था का पता इससे चलता है। इन सभी वर्णनों में परम्परागत रूढ़िवादिता नहीं है। नवीनता की सृष्टि के लिए बाण ने कादम्बरी में अभिनव शब्दों का भण्डार भर दिया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कादम्बरी विविध चित्रों की एक चित्रशाला है जिसमें यथारुचि सभी प्रकार के चित्र देखे जा सकते हैं एवं उपदेश ग्रहण किया जा सकता है।

बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम् की यदि हम संक्षिप्त मीमांसा करना चाहें तो निम्न स्तम्भों का पर्यालोचन अपेक्षित है-

(१) बाण अपने युग के अत्यन्त अनुभवी, सामाजिक स्थिति का साक्षात् अवलोकन करने वाले सहृदय कवि थे।

(२) उनके पास अपार शब्द भण्डार था।

(३) वे गद्य को 'ओजः समासभूयस्त्वम्' की कसौटी पर कसा हुआ होने पर ही श्रेष्ठ मानते थे।

(४) कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष को महत्ता देते थे किन्तु वर्णनों में संकोच अर्थात् संक्षिप्तता के पक्षपाती नहीं थे।

(५) किसी भी विषय का सर्वाङ्गीण, सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षणपूर्वक वर्णन करते थे।

(६) समाज एवं वैयक्तिक जीवन का कोई अंग वर्णन से छूटने न पाये यह उनका सतत् प्रयत्न रहा है। अतएव वर्णनों की बाढ़ सी उनके काव्यों में है।

(७) एक कथा से दूसरी और दूसरी से तीसरी कथा को जन्म देकर कथा में श्लिष्टता उत्पन्न की है।

(८) भाषा और भाव में अद्‌भुत समन्वय है।

(९) अलंकारों का भरपूर प्रयोग है किन्तु श्लेष की क्लिष्टता नहीं है।

(१०) शब्द और अर्थ की समन्वयात्मिका पाञ्चाली शैली का प्रयोग है।

(११) भारतीय, धर्म, दर्शन, पूजापद्धति, तप, दान, यज्ञ एवं पुनर्जन्म आदि में पूर्ण विश्वास ही नहीं व्यक्त किया अपितु शुक एवं अश्वयोनियों में घुमाकर सिद्ध भी कर दिया है।

(१२) व्यक्ति के तीन जन्मों की प्रणय कथा का मार्मिक चित्रण जिसमें प्रेमतत्त्व की आध्यात्मिकता का निरूपण है।

(१३) चरित्र-चित्रणों में महाश्वेता का चित्रण अद्‌भुत है किन्तु अत्यन्त रमणीय भी।

(१४) अपने समय तक की समस्त शैलियों का समन्वय बाण ने किया है।

(१५) पदावली में प्रायः नूपुरझंकृतिवत् अनुप्रास का प्रयोग किया है।

(१६) शुकनासोपदेश में युवावस्था के दोष, लक्ष्मी की चञ्चलता, राजनीति के दाँवपेंच, राजा के अन्तरङ्ग, धूर्त एवं आचार आदि विषयों के प्रतिपादन में बेजोड़ है।

(१७) संयोग श्रृंगार की अपेक्षा विप्रलम्भ का अति मार्मिक चित्रण है।

(१८) कल्पना के क्षेत्र में बाण अद्वितीय हैं।

(१९) प्रकृति के अन्तः एवं बाह्य उभयविध रूपों का सजीव चित्रण किया है।

(२०) गद्य की दोनों विधाओं आख्यायिका एवं कथा के एकमात्र कवि हैं। न इनसे पूर्व और न बाद में अभी तक किसी ने गद्य के इतने सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं।

इन्हीं समस्त विशेषताओं के आधार पर यह कहना सर्वथा संगत है कि परवर्ती कवियों, साहित्यकारों के लिए कुछ भी नवीन कहने या लिखने के लिए अवशिष्ट नहीं रहा। जो कुछ भी है वह सब बाण की जूंठन ही है—"**बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्**।

**नोट**—इस प्रकरण में बाण की विशेषताओं सम्बन्धी उदाहरणों के लिए "बाणभट्ट का काव्य-सौन्दर्य" के अन्तर्गत विविध स्तम्भों में दिये गये उदाहरण देखें। विस्तारभय से दूसरे उदाहरण नहीं दिये जा रहे हैं।

**विशेष**—बाणभट्ट की सर्वोत्तम कृति कादम्बरी का साहित्यिक परीक्षण एक श्लोक के माध्यम से इस प्रकार किया गया है—

**"चन्द्रापीडोऽनुकूलः सकलगुणधरो नायकोऽस्मिन्नुदात्तो–**
**नेत्री कन्याऽन्यदीया मृदुललितनुर्मुग्धकादम्बरी च।**
**पाञ्चाली नाम रीतिर्विलसति बहुला विप्रलम्भो रसोऽङ्गी,**
**माधुर्यांख्यो गुणो वा कविमुकुटमणेः काव्ययोरन्त्यमेतत्॥"**

अर्थात् कविमुकुटमणि (बाण) की इस (कादम्बरी) कृति में समस्त गुणों से युक्त उदात्त प्राकृतिक अनुकूल नायक चन्द्रापीड है। कोमलाङ्गी मुग्धा, परकीया कन्या कादम्बरी इसकी नायिका है। मुख्यतः इसमें पाञ्चाली रीति एवं अंङ्गी रस विप्रलम्भ श्रृंगार है तथा माधुर्य नामक गुण है।

# कादम्बरी कथामुख

कादम्बरी कथा ग्रन्थ की मूलकथा, कादम्बरी एवं चन्द्रापीड की प्रणय गाथा की भूमिका के रूप में कथामुख भाग की रचना है। इसमें पुण्डरीक और चन्द्रापीड के तृतीय जन्म क्रमशः 'शुक' एवं "राजा शूद्रक" के रूप में दिखलाये गये हैं। मूलकथा का आरम्भ जाबालि ऋषि के वर्णन से होता है उससे पूर्व शूद्रक एवं शुक की उत्पत्ति तथा उसका राजा शूद्रक की सभा में पहुँचने एवं अपने जन्मादि के वर्णन तक का वृत्तान्त कथामुख भाग में वर्णित है।

**कथामुख का सारांश**–विदिशा नाम की प्रसिद्ध राजधानी में शूद्रक नाम का राजा राज्य करता था। एक दिन चाण्डाल कन्या एक चाण्डाल वृद्ध पुरुष एवं एक बालक के साथ राजा शूद्रक की राजसभा में पहुँचती है। चाण्डाल कन्या (शुक की माता लक्ष्मी) पिञ्जड़े में एक विद्वान् शुक को राजा के योगय बतलाकर उसे समर्पित करती है। वह शुक दायाँ पैर उठाकर राजा की स्तुति में एक आर्या पढ़कर सुनाता है। राजा उसके द्वारा विद्वत्तापूर्ण मनुष्य वाणी में की गयी प्रशंसा से आश्चर्यचकित हो उसके जन्मादि के विषय में प्रश्न करता है। शुक अपने जन्मादि का इस प्रकार वर्णन करता है–

विन्ध्याटवी में एक पुराने शाल्मली वृक्ष के एक कोट में निवास करती हुई माता ने मुझे जन्म दिया किन्तु प्रसवपीड़ा से उसकी मृत्यु हो गयी। वृद्ध पिता ने अनेक उपाय कर मुझे पाला। एक दिन मातङ्ग नामक शबर सेनापति की सेना का एक वृद्ध शबर जो साक्षात् यमराज सा लग रहा था उस पेड़ पर चढ़ गया। भयाक्रान्त पिता ने स्नेहवश मुझे अपने पंखों में छिपा लिया। उस शबर ने उस वृक्ष के सभी शुकों की गर्दन मरोड़ कर मार डाला और उन्हें नीचे फेंकता हुआ मेरे कोटर में अपनी भीषण भुजा फैलाई मेरे सहित पिता को उठाकर उनकी ग्रीवा मरोड़कर भूमि पर डाल दिया लघुता के कारण वह मुझे नहीं देख सका। बाद में मैं पिता के मृत शरीर को छोड़कर, वृक्ष की जड़ों में छिप गया। वृद्ध शबर के चले जाने पर प्यास से व्याकुल मैं लुढ़कता हुआ पम्पा सरोवर की ओर बढ़ा। तभी दयालु जाबालि पुत्र हारीत स्नानार्थ उधर से निकले। उन्होंने मुझे उठाकर तालाब से कुछ बिन्दु पानी पिलाया। बाद में आश्रम लौटते समय वे मुझे अपने साथ लेते गये। जाबालि ने कहा यह अपने पाप कर्मों का फल भुगत रहा है। ऋषि के पूछने पर उन्होंने विस्तार से कादम्बरी कथा का वर्णन सुनाने का उपक्रम किया।

> "सरल अध्ययनों एवं गाइडों से आपको
> सरलता तो हो सकती है, किन्तु
> जीवन में सफलता कदापि
> नहीं मिल सकती।"

महाकविबाणविरचिता

# कादम्बरी

## ( कथामुखम् )

### मङ्गलाचरणम्

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये,
स्थितौ प्रजानां प्रलये तमः स्पृशे ।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे,
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥१॥

**अन्वय**—प्रजानाम् जन्मनि रजोजुषे, (प्रजानाम्) स्थितौ सत्त्ववृत्तये (प्रजानाम्) प्रलये तमःस्पृशे, सर्गस्थितिनाशहेतवे, त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने, अजाय नमः ।

**शब्दार्थ**—प्रजानाम् = समस्त सांसारिक अनित्य पदार्थों के, जन्मनि = उत्पत्ति के समय अर्थात् सृष्टिकाल में, रजोजुषे = रजोगुणयुक्त अर्थात् विरञ्चिरूप, स्थितौ = स्थितिकाल में अर्थात् संसार के संरक्षणकाल में, सत्त्ववृत्तये = सत्त्वगुण युक्त अर्थात् सत्त्वगुण से व्यवहार करने वाले विष्णुरूप, प्रलये = (संसार के) संहार के समय, तमःस्पृशे = तमोगुण का स्पर्श करने वाले अर्थात् शिव रूप (अतएव) सर्गस्थितिनाशहेतवे = सृष्टि, स्थिति तथा संहार के कारण स्वरूप, त्रयीमयाय = ब्रह्मा विष्णु महेश रूप देवत्रयी अथवा ऋक् यजुः साम-रूप वेदत्रयी रूप वाले, त्रिगुणात्मने = सत्त्व रजस् तथा तमो रूप तीनों गुणों वाले, अजाय = अजन्मा अर्थात् नित्यस्वरूप परब्रह्म को, नमः = नमस्कार है ।

**अनुवाद**—समस्त स्थावर जङ्गम अनित्य पदार्थों के सृष्टिकाल में रजोगुण-युक्त अर्थात् विरञ्चिरूप, स्थितिकाल में सत्त्वगुण से व्यवहार करने वाले, अर्थात् विष्णुरूप, (और) संहार काल में तमोगुण का स्पर्श करने वाले अर्थात् महेश रूप, (अतएव) सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण स्वरूप ब्रह्मा विष्णु महेश रूप देवत्रयी अथवा ऋक् यजुः सामरूप वेदत्रयी स्वरूप वाले, सत्त्वादित्रिगुणविशिष्ट अजन्मा अर्थात् नित्यस्वरूप परब्रह्म को नमस्कार है ।

**भावार्थ**—ग्रन्थारम्भकाल में महाकवि बाण, ग्रन्थ की निर्विघ्नतापूर्वक समाप्ति की कामना से, सर्वप्रथम, मंगलाचरण के रूप में, उस सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा की स्तुति करते हैं जो समस्त ऐहिक अनित्य पदार्थों की सृष्टि काल में रजोगुणयुक्त होकर विरञ्चि रूप से जगत् की सृष्टि करता है और जो वही चराचर जगत् के संरक्षणकाल में सत्वगुण विशिष्ट होकर विष्णु रूप से पालन करता है तथा जो संहार काल में तमोगुण से युक्त होकर शिव रूप में सृष्टि का संहार करता है, इस प्रकार जो सृष्टि के स्थिति और संहार का कारण रूप है, तथा जो ब्रह्मा विष्णु तथा महेश रूप देवत्रयी अथवा ऋक् यजुः साम रूप वेदत्रयी रूप वाला; एवं सत्वादित्रिगुण-विशिष्ट और नित्य परमेश्वर है।

**संस्कृत व्याख्या**—श्लोकेऽस्मिन् महाकविर्बाणः ग्रन्थारम्भे मङ्गलमाचरन् परमात्मानं स्तौति :—

**प्रजानाम्** = समस्तचराचरात्मकानित्यपदार्थनाम् । **जन्मनि** = उत्पत्तिकाले सृष्टिकाल इत्यर्थः । **रजोजुषे** = रजोगुणविशिष्टाय-विरञ्चिरूपिण इत्यर्थः । **स्थितौ** = स्थितिकाले । **सत्ववृत्तये** = सत्वस्य वृत्तिर्यस्मिन् स तस्मै सत्ववृत्तये सत्वगुण-युक्ताय-विष्णुरूपिण इत्यर्थः । **प्रलये** = (प्रजानाम्) संहारकाले । **तमः स्पृशे** = तमः तमो गुणं स्पृशतीति तमः स्पृक् तस्मै-तमःस्पृशे—तमोगुणयुक्ताय-शिवरूपिण इत्यर्थः । (अतएव) **सर्गस्थितिनाशहेतवे** = सर्गः सृष्टिः स्थितिः संरक्षणम् नाशः संहारः तेषां हेतुः निमित्त कारणम् तस्मै-सर्गस्थितिनाशहेतवे-सृष्टिपालन संहारनिमित्तकारणाय । **त्रयीमयाय** = वेदत्रयीस्वरूपाय यद्वा ब्रह्माविष्णुमहेशानाम् देवत्रयीस्वरूपाय । **त्रिगुणात्मने** = सत्वादि-त्रिगुणात्मकाय, अथवा त्रिगुणं माया आत्मनि स्वस्मिन् यस्य तस्मै त्रिगुणात्मने = मायावते ब्रह्मणे, **अजाय** = जन्मादिषड्विकार-परिवर्जिताय नित्याय परब्रह्मणे । **नमः** = नमस्कारः (अस्तु-इति-शेषः) ।

**संस्कृत सरलार्थ**—श्लोकेनानेन महाकवि बाणः ग्रन्थारम्भे मङ्गलमाचरन् सच्चिदानन्दरूपं जन्मादिषड्विकाररहितं नित्यं तं परमात्मानं स्तौति, यः समस्त चराचरात्मकानित्यपदार्थानां सृष्टिकाले रजोगुणयुक्तः सन् विरञ्चिरूपेण जगद्रचयति, प्रजानां स्थितिकाले च यः सत्ववृत्तिनिष्ठः सन् विष्णुरूपेण संसारं पालयति, यश्च प्रजानां संहारकाले तमोगुणविशिष्टः सन् महेशरूपेण जगत् संहरति, एवं यः सर्ग-स्थितिसंहारनिमित्तकारणमस्ति, तथा च यः ब्रह्माविष्णुमहेशस्वरूपः वेदत्रयीरूपो वास्ति । यश्चास्ति सत्वादित्रिगुणविशिष्टः अथ च सच्चिदानन्दरूपः निर्विकारः निराकारश्चेति ।

**टिप्पणी**—कुछ टीकाकारों की यह मान्यता रही है कि इस श्लोक द्वारा कवि ने केवल जगत्स्रष्टा प्रजापति ब्रह्मा की ही स्तुति की है, पर यह मान्यता उचित प्रतीत नहीं होती, क्योंकि यदि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से ही केवल इसका तात्पर्य होता तब तो उनके लिए 'रजोजुषे' यही विशेषण पर्याप्त था, क्योंकि सृष्टि के लिए केवल रजोगुण

ही अपेक्षित है। सत्त्व और तमस् जो कि क्रमशः स्थिति और संहार के लिए ही अपेक्षित हैं, प्रजापति ब्रह्म के विशेषण नहीं हो सकते। दूसरी बात यह है कि यदि ब्रह्म त्रिगुण विशिष्ट होकर सर्ग स्थिति और संहार के भी कारण होते तो विष्णु और महेश की आवश्यकता ही नहीं रहती। वस्तुतः प्रस्तुत श्लोक में अजन्मा नित्य सच्चिदानन्दस्वरूप, पारब्रह्म परमात्मा को ही नमस्कार किया गया है, जो कि एक होकर भी सृष्टिकाल में रजोगुण विशिष्ट होकर ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करता है। स्थितिकाल में सत्त्वगुण विशिष्ट होकर पालन करता है और संहारकाल में तमोगुण से सम्बद्ध होकर शिव रूप में संहार करता है। इस प्रकार यह एक ही पारब्रह्म कार्य-भेदेन तीन रूपों और नामों से अभिहित होता है। जैसे एक ही स्फटिकमणि नीलपीतादि गुणों के संसर्ग से नील पीत कही जाने लगती है, उसी प्रकार यह ब्रह्म भी कार्यभेद से तीन नामों एवं रूपों से पुकारा जाता है। अतः इसमें पारब्रह्म स्तुति मानना ही समीचीन है। **प्रजानाम्**—यहाँ यह पद समस्त चराचरात्मक अनित्य जागतिक पदार्थों का उपलक्षण है और इसका **"स्थितौ, जन्मनि तथा प्रलये"** इन तीनों से ही सम्बन्ध है। जन (धातु) से ड प्रत्यय तथा स्त्रीत्व-बोधक टाप् प्रत्यय से 'प्रजा' शब्द बना है। **रजोजुषे**—रजः रजोगुणं जुषते सेवते इति रजोजुट् तस्मै, तौदादिक जुषी प्रीतिसेवनयोः धातु से क्विप् प्रत्यय। **सत्त्ववृत्तये**—सत्त्वस्य सत्त्वगुणस्य वृत्ति र्वर्तनं यस्मिन् तस्मै स्थितिकाल में ब्रह्म सत्त्वगुण विशिष्ट होकर सृष्टि का पालन करता है। **तमः स्पृशे**—तमः तमोगुणं स्पृशतीति तमः स्पृट् तस्मै। ब्रह्म तमोगुण से सम्बद्ध होकर शिव रूप में सृष्टि का संहार करता है। **अजाय**—न जायते असौ अजः अजन्मा ब्रह्म नित्य, कूटस्थ जन्मादि विकारों से रहित है। फिर भी वह त्रिगुणविशिष्ट होकर सृष्टि स्थिति और संहार का कारण बनता है। यहाँ यह नहीं सोचना चाहिए कि निर्विकार निराकार एवं निर्गुण ब्रह्म किस प्रकार सृष्टिकर्ता एवं त्रिगुणात्मक हो जाता है, क्योंकि इसके उत्तर में अनेक **"अजामेकाम्"** इत्यादि श्रुति वाक्य तथा **"ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् विष्णु त्वे पालयत्यपि"** इत्यादि स्मृति वाक्य भी प्रमाण है। **त्रयीमयाय**—त्रि—त्रय+ङीप्+मयट् प्रत्यय, यहाँ त्रयी से ब्रह्मा, विष्णु महेश इस देवत्रयी का तथा ऋक् यजुः साम इस वेदत्रयी का भी ग्रहण है, क्योंकि **"वेद एव परब्रह्म"** ऐसा कहा गया है। 'अजाय' इत्यादि चतुर्थ्यन्त विशेषणों में नमः के योग में "नमः स्वस्तीत्यादि सूत्र से चतुर्थी विभक्ति है।

"प्रस्तुत श्लोक में वंशस्थविल नामक छन्द है, "जतौ तु वंशस्थ मुदीरित जरौ।" रजोजुषे आदि विशेषणों के साभिप्राय होने से यहाँ **परिकर नामक अलंकार**, रजोजुषे आदि में अनुप्रास तथा रजोजुषे आदि विशेषण त्रय का सर्गस्थितिनाश हेतुवे' में क्रमिक अन्वय होने से यहाँ **यथासंख्य** अलंकार भी है।

जयन्ति बाणासुरमौलिलालिता,
दशास्यचूड़ामणिचक्रचुम्बिनः ।
सुरासुराधीशशिखान्तशायिनो,
भवच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः ॥२॥

**अन्वय**—बाणासुरमौलिलालिताः, दशास्यचूड़ामणिचक्रचुम्बिनः, सुरासुराधीश शिखान्तशायिनः, भवच्छिदः त्र्यम्बकपादपांसवः जयन्ति ।

**शब्दार्थ**—**बाणा-सुरमौलिलालिताः**=बाण नामक असुर के मस्तक अथवा मुकुट द्वारा लालित अर्थात् सेवित या वन्दित । **दशास्यचूड़ामणिचक्र चुम्बिनः**=दसास्य-दशमुख वाला रावण की चूड़ा-शिखा की मणियों के समूह का चुम्बिनः-स्पर्श करने वालीं । **सुरासुराधीशशिखान्तशायिनः**=देवों और असुरों के अधीशों अर्थात् स्वामियों की शिखाओं के अन्त अर्थात् अग्रभाग पर शायिनः—शयन करने वाली अर्थात् (पाद-वन्दना करते समय गिर कर) लग जाने वाली, **भवच्छिदः**=संसार के (बन्धनों को) काटने वाली, **त्र्यम्बकपादपांसवः**=त्रिनेत्रधारी शिव के चरणों की धूलियाँ । **जयन्ति**=सर्वोत्कृष्ट हैं अतः उन्हें नमस्कार है ।

**अनुवाद**—बाण नामक असुर के मस्तक अथवा मुकुट द्वारा वन्दित, रावण की शिखा की मणियों के समूह का स्पर्श करने वाली, देदों और असुरों के स्वामियों की शिखाओं के अग्र भाग पर (गिर कर) लग जाने वाली, संसार के (मोक्ष-बाधक बन्धनों को) काटने वाली, त्रिनेत्रधारी शिव के चरणों की धूलियाँ सर्वोत्कृष्ट हैं, अतएव उन्हें नमस्कार है ।

**भावार्थ**—प्रस्तुत पद्य में कवि ने भगवान् शिव के चरणों की धूलियों को सर्वोत्कृष्ट बतलाते हुए उनकी स्तुति की है । भगवान् शिव की चरण-धूलियों को नमस्कार है, क्योंकि वे शिवभक्त बाणासुर के मस्तक द्वारा सेवित हैं । रावण की शिखा-मणियों का स्पर्श करने वाली हैं और सभी सुर और असुरों के अधीश्वरों की शिखाओं के अग्र भाग पर (वन्दना करते समय गिर कर) लग जाने वाली एवं भव बन्धनों को काटने वाली हैं ।

**संस्कृत व्याख्या**—**बाणासुरमौलिलालिताः**=बाणः बाणनामासुरः तस्य मौलिना मुकुटेन मस्तकेन वा लालिताः वन्दिताः—बाणासुरमस्तकसेविताः । **दशास्यचूड़ामणिचक्र चुम्बिनः**=दश आस्यानि मुखानि यस्य स दशास्यः रावणः, तस्य चूड़ामणयः चूड़ासक्तरत्नानि तेषाम् चक्रम् समूहम् चुम्बन्ति, प्रणामकाले स्पृशन्तीति दशास्य चूड़ामणिचक्रचुम्बिनः । **सुरासुराधीशशिखान्तशायिनः**=सुष्ठु परब्रह्मणि रमन्ते ये ते सुराः, न सुराः असुराः दैत्याः तेषामधीशाः स्वामिनः तेषाम् शिखाः चूड़ाः तासाम् अन्तेषु अग्रभागेषु शायितुं प्रणामकाले स्यातुं शीलं येषान्ते इति सुरासुराधीश शिखान्त शायिनः=देव-दैत्याधीश्वरचूणाग्रभागावलम्बिनः । **भवच्छिदः**=भवं संसारं भव-बन्धनमिति यावत् छिन्दन्तिइति भवच्छिदः=संसार दुःख विच्छेदिनः । **त्र्यम्बक-**

पादपांसवः = त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि यस्य तस्य त्र्यम्बकस्य शिवस्य पादपांसवः = चरणरेणवः इति त्र्यम्बकपादपांसवः, जयन्ति = सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते इत्यर्थः। एवं कविरत्र शिवपादधूलिवर्णनमुखेन महेस्वरस्मरणं करोति।

**संस्कृत सरलार्थ**—कविरत्र शिवपादपांसुवैशिष्ट्यप्रतिपादनमुखेन "ज्ञानमिच्छेत्त शङ्करात्" इति स्मृत्यनुसारं काव्यविधानोपयोगिज्ञानोपलब्धये महेश्वरस्य स्मरणं करोति।

**जयन्तीति**—ते शिवचरणरेणवः सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते ये बाणासुरमस्तकेन सेविताः सन्ति, प्रणामकाले रावणस्यापि किरीटरत्नानि स्पृशन्ति एवं देव-दैत्याधीशशिखाग्र-भागेस्वपि नमनकाले तिष्ठन्ति अथ च ये भव-बन्धनविच्छेदकाश्च सन्ति।

**टिप्पणी**—प्रस्तुत श्लोक में 'त्र्यम्बकपादपांसवः जयन्ति' यही मुख्य अंश है। इसके बाणासुरमौलिलालिताः आदि सभी प्रथमान्त पद विशेषण है। कवि ने यहाँ त्र्यम्बकपादपांसु का वर्णन करके भगवान् शिव का स्मरण किया है, जिससे कि उसे काव्य विधानोपयोगी ज्ञान प्राप्त हो सके। **बाणासुरेति**—बाणासुर भगवान् शिव का परम भक्त था। अतएव वह अपने मस्तक से शिव के चरण-रज की बन्दना किया करता था। **दशास्येति**—दशास्यः दशमुखः रावणः यह भी जब भगवान शिव को प्रणाम करने के लिए उनके चरणों पर झुकता था, तब भगवान् शिव के चरणों की धूलि उसके चूड़ामणि पर लग जाया करती थी। **सुरा सुरेति**—इस पद द्वारा भगवान् का सर्वाधिक महत्त्व प्रतिपादित किया गया गया है, क्योंकि न केवल देवताओं के ही असुरों के स्वामी भी जब भगवान् शिव की चरण वन्दना करते थे, तब उनकी शिखाओं के अग्रभाग पर भगवान् के चरणों की धूलि लग जाया करती थी। **भवच्छिद**—भगवान् शिव की चरण रज का सबसे बड़ा प्रभाव तो यह है कि वह भवबन्धन काटने में पूर्ण-तया समर्थ है, यह भवबन्धन ही मोक्षोपयोगी परम तत्त्व की प्राप्ति में बाधक है और विविध दुःखों का कारण भी है।

वंशस्थ नामक छन्द तथा समुच्चयालंकार है क्योंकि चरणरज का वैशिष्ट्य सिद्ध करने के लिए 'बाणासुरेत्यादि अनेक हेतु बतलाये गये हैं; सभी उक्त विशेषण पदों में अनुप्रास का भी सौन्दर्य है।

**जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो,**
**विभित्सया यः क्षणलब्धलक्ष्यया।**
**दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः,**
**स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम् ॥३॥**

**अन्वय**—स उपेन्द्रः जयतु, यः विभित्सया दूरतः क्षणलब्धलक्ष्यया कोपारुणया दृशा एव भयात् स्वयं भिन्नम् इव, रिपोः उरः अस्रपाटलम् चकार।

**शब्दार्थ**—स = वह प्रसिद्ध, उपेन्द्रः = विष्णुः अर्थात् नृसिंहरूपधारी विष्णु, जयति = जय हो। यः = जिसने, विभित्सया = विदीर्ण करने की इच्छा से, दूरतः =

दूर से, क्षणलब्धलक्ष्यया = क्षण मात्र के लिए ही लक्ष्य को अर्थात् हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल रूप लक्ष्य पर क्षण मात्र के लिए ही देख लेने वाली, प्राप्त करने वाली, कोपारुणया = क्रोध से रक्तवर्ण वाली, दृशा एव = दृष्टि से ही, भयात् स्वयम् भिन्नम् इव = भयवश अपने आप मानो विदीर्ण हुए, रिपोः उरः = शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को, अस्रपाटलम् = शोणित के समान श्वेत रक्त-वर्ण का, चकार = कर दिया था।

**अनुवाद**—उस विख्यात नृसिंहावतारधारी विष्णु की जय हो, जिसने विदीर्ण करने की इच्छा से, दूर ही से, क्षण मात्र को (शत्रु के वक्षःस्थल रूपी) लक्ष्य को प्राप्त कर लेने वाली (और) क्रोध से रक्त वर्ण वाली दृष्टि से (ही), भयवश मानो स्वयं ही विदीर्ण हुए शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को रक्तवत् श्वेत रक्त वर्ण का कर दिया था। अर्थात् वह भयवश स्वयं विदीर्ण होकर रक्तवर्ण का हो गया था और वह मर गया था।

**भावार्थ**—उस प्रख्यात नृसिंह रूपधारी विष्णु की जय हो जिसने विदीर्ण करने की इच्छा से दूर से ही क्षण भर लक्ष्य पर पहुँचने वाली क्रोधरक्त दृष्टि से ही, मानो स्वयं विदीर्ण हुए शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को रक्तवत् लालवर्ण का कर दिया था। अर्थात् विदीर्ण कर मार डाला था।

**संस्कृत व्याख्या**—स = विख्यातः, उपेन्द्रः = अनुजत्वेन इन्द्रमुपगतः उपेन्द्रः विष्णुः नृसिंहावतारधारी विष्णुरित्यर्थः, जयति = सर्वोत्कर्षेण वर्तत इत्यर्थः यः = नृसिंहः, दूरतः = दूरादेव, विभित्सया = भेत्तुमिच्छा विभित्सा तया भेत्तुमिच्छया, क्षणलब्धलक्ष्यया = क्षणं क्षणकालं लब्धं प्राप्तं लक्ष्यं हिरण्यकशिपु वक्षःस्थलं यया तया क्षणं दूरस्थलादेवावलोकयन्त्या, कोपारुणया = कोपेने अरुणा तया-क्रोधरक्तवर्णया, दृशा = दृष्ट्या एव, भयात् = नृसिंहभयवशात्, स्वयम् = आत्मनैव, भिन्नम् = विदीर्णम् इव, रिपोः = शत्रोः, उरः = वक्षःस्थलम्. अस्रपाटलम् = शोणितवत् श्वेतरक्तम्, चकार = कृतवान्।

**संस्कृत सरलार्थ**—स नृसिंहावतारधारी विष्णुः जयति। यः भेत्तुमिच्छया दूरत एव हिरण्यकशिपुवक्षःस्थलमवलोकयन्त्या क्रोधरक्तवर्णया दृष्ट्या एवं, भयवशादात्मनैव विदीर्णमिव शत्रुवक्षःस्थलं शोणतवद्रक्त.वर्ण कृतवान्।

**टिप्पणी**—प्रस्तुत श्लोक द्वारा कवि अपने इष्टदेव नृसिंह भगवान का ध्यान करता है और कहता है कि नृसिंह भगवान् की क्रुद्ध दृष्टि पड़ने मात्र से ही भयवश उनके शत्रु हिरण्यकशिपु का वक्षःस्थल स्वयं विदीर्ण हो गया था और वह मर गया था। इस कथन से कवि ने, नृसिंह भगवान् के प्रतापातिशय की व्यञ्जना कराई है। विभित्सया = भेत्तुमिच्छा तया सन्नन्त भिदिर धातु से टाप् प्रत्यय-विभिप्सा तृतीयैक वचने विभित्सया। दूरतः = दूर से ही, क्षणलब्धलक्ष्यया = क्षण मात्र को ही जिसने हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल की ओर देखा था, कोपारुणया = और जो कि उस समय क्रोध से लाल हो रही। ये दोनों ही 'दृशा' के विशेषण हैं। दृशा = दृष्टिपात मात्र

से ही, भिन्नम् = भिदिर विदारणे धातु से क्त प्रत्यय, धातु के प्रकार और प्रत्यय के तकार को 'रदाभ्यमित्यादि सूत्र से नकारादेश। इव = इसके द्वारा कवि उत्प्रेक्षा करता है कि नृसिंह भगवान् के दृष्टिपात मात्र से ही हिरण्यकशिपु इतना भयभीत हो गया था कि उसका वक्षःस्थल स्वयमेव मानो विदीर्ण हो गया था, नृसिंह भगवान् को अपने नखों का प्रयोग ही नहीं करना पड़ा था। अस्रपाटलम् = अस्र = रक्त, पाटलम् = श्वेत रक्त, "श्वेतरक्तस्तु पाटलः इत्यमरः अर्थात् शोणित वत् श्वेतरक्त।

यहाँ वंशस्थ नामक छन्द है। 'स्वयं भिन्नमिव' में क्रियोत्प्रेक्षालंकार, 'अस्र-पाटलम्' में लुप्तोपमा तथा तद्गुणालंकार है।

**नमामि भत्सोश्चरणाम्बुजद्वयं,**
**सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्।**
**समस्तसामन्तकिरीटवेदिका-**
**विटङ्कपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि ॥४॥**

अन्वय—सशेखरैः मौखरिभिः कृतार्चनम्, समस्तसामन्तकिरीटवेदिकाविटङ्क-पीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि भत्सोः चरणाम्बुजद्वयम् नमामि।

शब्दार्थ—सशेखरैः = मुकुटों सहित अर्थात् मुकुटधारी, मौखरिभिः = मौखरी-वंशीय राजाओं के द्वारा, कृतार्चनम् = जिनकी पूजा की गई है। समस्तेत्यादि = सम्पूर्ण अन्यदेशीय कर देने वाले राजाओं के मुकुट रूपी वेदी के मध्य उन्नत भाग रूप चरण पीठ पर घर्षण करने से (जिस चरण द्वय), की अंगुलियाँ लाल हो गई हैं। भत्सोः = भत्सु नामक गुरु के, चरणाम्बुजद्वयम् = ऐसे चरण कमल युगल को नमामि = (मैं) नमस्कार करता हूँ।

अनुवाद—मुकुटधारी मौखरी वंशोत्पन्न राजाओं के द्वारा पूजित, (तथा) समस्त अन्यदेशीय कर देने वाले राजाओं की मुकुट रूपी वेदी के मध्य उन्नत भाग रूप चरणपीठ पर घर्षण कमल युगल को (मैं) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—अपने भत्सु नामक गुरु को नमस्कार करता हुआ कवि कहता है कि मैं भत्सु नामक गुरु के उन चरण कमल युगल को नमस्कार करता हूँ जो कि मुकुटधारी मौखरीवंशीय राजाओं द्वारा पूजित एवं सभी सामन्त राजाओं के मुकुट रूप वेदिका अर्थात् परिष्कृत उन्नत भूमि रूप चरणपीठ पर संघर्षण करने से जिनकी अंगुलियाँ लाल हो गई हैं।

संस्कृत व्याख्या—शेखरैः मुकुटैः सह वर्तमानाः सशेखरास्तैः सशेखरैः = मुकुटधारिभिः, मौखरिभिः = मौखरिवंशोद्भवैः क्षत्रियविशेषैः राजभिः, कृतम् विहितम् अर्चनं पूजनम् यस्य तत्-कृतार्चनम् = विहितपूजनम्, समस्ताः सकला ये सामन्ताः अन्यदेशीयाः करदीकृताः राजानाः तेषां किरीटानि मुकुटानि एव वेदिकाः परिष्कृतभूमयः तासु यानि विटङ्कपीठानि मध्यगतोन्नतभागाः तेषु उल्लुठिताः

नमस्कारकाले घृष्टा अतएव अरुणाः रक्तवर्णाः अंगुलयः यस्य तत्—समस्तसामन्त किरीटवेदिकाविटङ्कपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि = सकलसामन्तमुकुटवेदिकामध्यगतोन्नतभागघृष्टारुणाङ्गुलि, भत्सोः = भत्सुनामकस्य गुरोः, चरणौ अम्बुजे इव तयोः द्वयम्—चरणाम्बुजद्वयम्—चरणकमलयुगलम्, नमामि = नमस्करोमि ।

संस्कृत सरलार्थ—कविरत्र स्वगुरोश्चरणद्वयं नमस्करोति । अहम् भत्सुसंज्ञकस्य स्वगुरोस्तच्चरणद्वयं नमस्करोमि, यत् मुकुटधारिभिः मौखरिवंशीयैः राजभिः पूजितम् अथ च सकलकरदीकृतराजमुकुट वेदिकाविटङ्कपीठोल्लुठितरक्ताङ्गुलि अस्ति ।

टिप्पणी—मौखरिभिः = प्राचीन भारतीय इतिहास के अनुसार ईशवीय पञ्चम से अष्टम शतक के मध्य मौखरि नाम का एक राजवंश था । भत्सोः—भत्सु नामक विद्वान् बाण के गुरु थे जोकि मौखरिवंशीय राजाओं द्वारा भी पूजित थे ।

समस्तेति—यह सम्पूर्ण एक लम्बा पद 'चरणाम्बुजद्वयम् का विशेषण है । सामन्त—वे राजा कहे गये हैं जिन्हें कोई बड़ा राजा विजित कर अपने अधीन एवं करद बना लेता है । ये सामन्त राजा जब भत्सु गुरु को प्रणाम करने के लिए उनके चरणों पर अपना सिर झुकाते थे तब इनके मुकुट रत्नों की चमक से गुरु के चरणों की अंगुलियाँ लाल वर्ण की हो जाती थीं । विटङ्क—का मुख्यार्थ यद्यपि कबूतरों के बैठने के लिए लकड़ी आदि गाड़कर बनाया गया उच्च स्थान है तथापि यहाँ लक्षणा द्वारा इसका अर्थ अति उन्नत प्रदेश लिया गया है । अतः विटङ्क पीठ का अर्थ है एक उन्नत आसन । वेदिका = परिष्कृत और ऊँची भूमि । गुरु की पैरों की अंगुलियाँ स्वभावतः भी लाल थीं पर वे राजाओं के मुकुट रत्नों के घर्षण से और भी अधिक लाल हो जाती थीं । भत्सु नामक विद्वान् बाण के गुरु तो थे ही वे मौखरिवंशीय राजाओं तथा इनके अधीनस्थ भी सभी राजाओं द्वारा पूजित थे ।

इनमें वंशस्थ नामक छन्द और रूपक अलंकार है ।

## सज्जन दुर्जनयोः स्तुतिनिन्दे

अकारणाविष्कृतवैरदारुणाद-
सज्जनात् कस्य भयं न जायते ।
विषं महाहेरिव यस्य दुर्वचः,
सुदुःसहं सन्निहितं सदा मुखे ॥५॥

अन्वय—अकारणाविष्कृतवैरदारुणात् असज्जनात् कस्य भयम् न जायते । यस्य मुखे सुदुःसहम् दुर्वचः महाहेः विषम् इव सदा सन्निहितम् (भवति) ।

शब्दार्थ—अकारणाविष्कृतवैरदारुणात् = बिना कारण ही विरोध प्रकट करने से दुष्ट स्वभाव वाले, असज्जनात् = दुर्जन से, कस्य भयम् न जायते = किसे भय नहीं होता अर्थात् सभी को भय होता है । यस्य मुखे = जिस दुर्जन के मुख में, सुदुःसहम्

दुर्वचः = अति असहनीय बुरे वचन, महाहेः विषम् इव = महा सर्प के (मुख में) विष के समान, सदा सन्निहितंभवति = सदा ही वर्तमान रहता है।

**अनुवाद**—अकारण विरोध प्रकट करने से दुष्ट स्वभाव वाले दुर्जन से किसको भय नहीं होता, जिसके मुख में अति असहनीय दुर्बचन महासर्प के विष के समान सदा वर्तमान रहता है।

**भावार्थ**—दुर्जन का स्वभाव बतलाता हुआ कवि कहता है कि दुर्जन अकारण विरोध करने वाले होते हैं, अतएव दुष्ट स्वभाव के होते हैं, उनके मुख में असहनीय दुर्वचन उसी प्रकार सदा रहता है, जैसे महासर्प के मुख में विष सदा बना रहता है।

**संस्कृत व्याख्या**—अकारणम् विनैव निमित्तम् आविष्कृतम् प्रकटीकृतम् यद् वैरम् विरोधः तेन दारुणात् क्रूरस्वभावात्, अकारणाविष्कृतवैरदारुणात् = अनिमित्त प्रकटीकृतविरोधक्रूरात्, असज्जनात् = दुर्जनात्, कस्य = सज्जनस्य, भयम् = भीतिः, न जायते = न उत्पद्यते, अपितु सर्वस्यैव सत्पुरुषस्य भीतिरुत्पद्यते। यस्य = दुर्जनस्य, मुखे = आनने, महाहेः = महासर्पस्य, विषम् = गरलम् इव, सुदुःसहम् = अत्यसहनीयम् दुर्वचः = कटुवचनम्, सदा = सर्वदा, सन्निहितम् = समीपस्थम् (भवति)।

**भावार्थ**—दुर्जना अनिमित्तमेव विरोधं प्रकटीकुर्वन्ति अतएव ते स्वभावतः क्रूरा भवन्ति, एतेषां दुर्जनानां मुखे महासर्पमुखे गरलमिव अति दुःसहं दुर्वचनं सदैव तिष्ठति येन सत्पुरुषाणां सदैव भीतिरुत्पद्यते।

**टिप्पणी**—अकारणेति—बिना किसी कारण के ही दुर्जन, सज्जनों के निन्दक होने से और उनके प्रति विरोध करने से क्रूर स्वभाव वाले कहे जाते हैं, यह पूरा पद असज्जनात् का विशेषण है। असज्जनात् = यहाँ भय के योग में 'भीत्रार्थानां भयहेतुः से पञ्चमी विभक्ति है, क्योंकि असज्जन भय के हेतु हैं।

यहाँ वंशस्थ नामक छन्द और 'महाहेर्विषमिव' में उपमालंकार है, पूर्वार्द्ध में अर्थापत्ति अलंकार है।

**कटु क्वणन्तो मलदायकाः खला-**
**स्तुदन्त्यलं बन्धनशृङ्खला इव।**
**मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे,**
**हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव ॥६॥**

**अन्वय**—कटु क्वणन्तः मलदायकाः खलाः बन्धनशृङ्खला इव अलम् तुदन्ति तु सन्तः मणिनूपुराः इव साधुध्वनिभिः पदे-पदे मनः हरन्ति।

**शब्दार्थ**—कटु क्वणन्तः = कटु वचन बोलते हुए, (बन्धनशृङ्खला पक्ष में) कर्णकटुध्वनि करने वाली। मलदायकाः = दोष लगाने वाले, (शृङ्खला पक्ष में) बन्धन स्थान हाथ-पैर आदि को मलिन या काला कर देने वाले। खलाः = दुष्टजन, (शृङ्खला पक्ष) बाँधने के लिए लोहे की जंजीरें। इव = तरह। अलम् = अत्यधिक, तुदन्ति पीड़ा पहुँचाते हैं। सन्तः = सज्जन पुरुष। मणिनूपुराः इव = मणिजटितनूपुरों की भाँति। साधुध्वनिभिः = श्रेष्ठ एवं प्रिय वचनों द्वारा (नूपुर पक्ष में) मनोरम नूपुरों की

ध्वनियों से। पदे-पदे := प्रत्येक शब्द पर, (नूपुर पक्ष में) प्रत्येक चरण के रखने पर, मनः = चित्त को। हरन्ति = आकृष्ट करते हैं। तु = किन्तु।

अनुवाद—कटु वचन बोलते हुए (एवं दूसरों पर) दोषारोपण करने वाले दुष्टजन (सत्पुरुषों को) उसी प्रकार पीड़ा पहुँचाते हैं जैसे श्रुतिकटुध्वनि करती हुई एवं व्यक्ति के बन्धन स्थान हाथ-पैर आदि को कालिमा युक्त कर देने वाली लोहे की जंजीरें (बँधे हुए व्यक्तियों) को कष्ट पहुँचाती हैं। किन्तु सत्पुरुष श्रेष्ठ एवं प्रिय वचनों के द्वारा, प्रत्येक (उच्चरित) शब्द पर उसी प्रकार मन को (अपनी ओर) आकृष्ट कर लेते हैं, जैसे मणि जटित नूपुर प्रत्येक कदम रखे जाने पर, मनोरम श्रुतिमधुर ध्वनियों के द्वारा (श्रोता के) मन को आकृष्ट कर लेते हैं।

भावार्थ—प्रस्तुत श्लोक में दुष्टजनों की निन्दा के साथ-साथ सज्जनों की प्रशंसा की गई है। दुष्टों की निन्दा के लिए उनकी तुलना बाँधने वाली लोहे की जंजीरों से की गई है, लोहे की जंजीरें बँधे हुए व्यक्ति के हाथ-पैरों के उन स्थानों को जहाँ वे बाँधी गई हैं, काला कर देती हैं और उनके बजने की कर्कश ध्वनि भी कर्ण कटु होती है, इसी प्रकार दुष्टजन भी दूसरों पर दोषारोपण करने वाले तथा कर्ण कटु अप्रिय वचन बोलने वाले होते हैं। इसी प्रकार श्लोक के उत्तरार्द्ध में सज्जनों की तुलना मणिनूपुरों से करके उनकी प्रशंसा की गई है। नूपुर प्रत्येक कदम पर मनोरम प्रिय ध्वनि करके श्रोता के मन को आकृष्ट कर लेते हैं, इसी प्रकार सत्पुरुष प्रत्येक उच्चरित शब्द पर श्रेष्ठ एवं प्रिय वचनों द्वारा श्रोताओं के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।

संस्कृत व्याख्या—कटु = अप्रियम् दुःश्रवम् वा वचः, क्वणन्तः = रटन्तः दुर्वचनं वदन्त इत्यर्थः। (बन्धनशृङ्खला पक्षे) श्रवणकटु कुत्सितं च शब्दायमानाः। मलदायकाः = मलस्य दोषस्य दायकाः—मिथ्यादोषारोपणकारिणः, (अन्यत्र बन्धन स्थाने) लौह शृङ्खला जनितमालिन्याधायकाः। खलाः = दुष्टा जनाः। बन्धनशृङ्खलाः इव = बन्धनाय निर्मिता लौहशृङ्खलाः यथा, अलम् = अत्यधिकम्, तुदन्ति = पीडयन्ति। तु = किन्तुं, सन्तः = सत्पुरुषाः, मणिनूपुरः = मणि जटित नूपुराः, इव = यथा, साधुध्वनिभिः श्रुतिमधुर प्रिय वचनैः, (अन्यतः) मनोरम ध्वनिभिः, पदे-पदे = शब्दे-शब्दे, (अन्यत्र) प्रतिचरणनिक्षेपे, मनः = चित्तम् श्रोतृणामित्यर्थः हरन्ति = आकर्षयन्ति।

संस्कृत सरलार्थ—कविरस्मिन् श्लोके खलनिन्दया सह सत्पुरुषप्रशंसां विदधाति। यथा मनुष्यादिबन्धनाय निर्मिता लौहनिगडाः कुत्सितं शब्दायमानाः, बन्धनगतमनुष्यादेर्बन्धनस्थानानि मलिनानि कुर्वन्ति, तथैव खला दुःश्रव मप्रियं च भाषमाणा मिथ्यादोषारोपणं कुर्वन्ति, एव मेते खलाः सत्पुरुषान् अत्यधिकं पीडयन्ति परं यथा मणिजटितमञ्जीराणि प्रतिचरणनिक्षेपे स्वमनोरमध्वनिभिः श्रोतृमनो हरन्ति, तथैव सत्पुरुषाः समुच्चरिते शब्दे-शब्दे स्वसन्तोपदायिमधुरवचनैः श्रोतृचित्त माकर्षयन्ति।

**टिप्पणी—क्वणन्तः**—क्वण् धातु से शतृ प्रत्ययान्त रूप है—इसका प्रयोग खनखनाहट, झनझनाहट और साधारण शब्द करने के अर्थ में भी होता है अतएव बन्धन शृंखला के पक्ष में इसका अर्थ, कर्ण कटु खनखनाहट और खलों के पक्ष में कटु भाषण करने वाले है। **साधुध्वनिभिः**—मनोरम और श्रुति मधुर ध्वनि—जैसे नूपुरों की ध्वनि मनोरम एवं चित्ताकर्षक होती है। वैसे ही सज्जनों का बोलना भी श्रुति-मधुर होता है। **पदे-पदे**=प्रत्येक पद पर सज्जनों द्वारा उच्चरित प्रत्येक पद सन्तोष-दायक और प्रिय होता है। नायिका के प्रत्येक चरण निक्षेप पर मनोरम नूपुर ध्वनि स्वभावतः होती है। श्लोक के पूर्वार्द्ध में खलनिन्दा और उत्तरार्द्ध में सज्जन प्रशंसा है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों में ही पूर्णोपमालंकार है तथा वंशस्थ नामक छन्द है।

**सुभाषितं हारि विशत्यधोगला-**
**न्न दुर्जनस्यार्करिपोरिवामृतम् ।**
**तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो,**
**हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम् ॥७॥**

**अन्वय**—हारि सुभाषितम् (अपि) अमृतम् अर्करिपोः इव दुर्जनस्य गलात् अधः न विशति, तदेव (हारि सुभाषितम्) सज्जनः, अतिनिर्मलम् महारत्नम् हरिः इव, हृदयेन धत्ते।

**शब्दार्थ—हारि**=मनोहर, **सुभाषितम्**=सूक्तिमय सुकाव्यादि, **अपि**=भी, **अमृतम्**=अमृत सुधा, **अर्करिपोः**=राहु के, **इव**=तरह, **गलात् अधः**=गले के नीचे, **न विशति**=प्रवेश नहीं करता है। **तदेव**=वही सुभाषित काव्यादि, **सज्जनः**=सत्पुरुष, **अतिनिर्मलम्**=अत्यन्त स्वच्छ, **महारत्नम्**=कौस्तुभमणि को, **हरिः इव**=विष्णु के समान, **हृदयेन धत्ते**=हृदय में धारण कर लेता है।

**अनुवाद**—मनोहर एवं सूक्तिमय सुकाव्यादि दुर्जन के गले के नीचे उसी प्रकार नहीं उतरता, जैसे मनोहर अमृत, राहु के गले के नीचे नहीं उतरा था। उसी (निर्मल) सुकाव्यादि को सत्पुरुष, उसी प्रकार हृदय में धारण कर लेता है जैसे हरि विष्णु भगवान् ने अतिस्वच्छ कौस्तुभमणि को वक्षःस्थल पर धारण कर लिया है।

**भावार्थ**—जिस प्रकार चन्द्रमा के अमृत का पान कर लेने पर भी वह अमृत राहु के गले के नीचे प्रवेश नहीं करता क्योंकि उसके गले के नीचे हृदय होता ही नहीं, अतएव उसका पिया हुआ भी अमृत व्यर्थ जाता है उसी प्रकार दुर्जन भी हृदयहीन या हृदय शून्य होते हैं अतएव अति मनोहर सूक्तिमय काव्यादि बार-बार पढ़ाये या सुनाये जाने पर भी उनके गले से नीचे नहीं उतरते अर्थात् उनके हृदय पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसके ठीक विपरीत वही सुभाषित काव्यादि एक सत्पुरुष उसी प्रकार अपने हृदय में धारण कर प्रसन्न होता है, क्योंकि वह सहृदय होता है जैसे

भगवान् विष्णु अतिस्वच्छ कौस्तुभ मणि को अपने वक्षःस्थल पर धारण कर सुशोभित होते हैं। यहाँ दुर्जन को राहु से और सज्जन को विष्णु से उपमित किया गया है।

**संस्कृत व्याख्या**—हारि=मनोहरम्, सुभाषितम्=सूक्तिमयं सुकाव्यादि, अमृतम्—पीयूषम् अर्करिपोः=कर्कस्य सूर्यस्य रिपुः शत्रुः तस्य-सूर्यशत्रोः राहोः, इव=यथा, दुर्जनस्य=खलस्य, गलात्=कण्ठात्, अधः=अधोभागे हृदय इत्यर्थः, न विशति=न प्रवेशं लभते, तस्य हृदयाभावात् इत्याशयः। तदेव=सूक्तिमयं सुकाव्यादि, सज्जनः=सत्पुरुषः, अतिनिर्मलम्=अतिस्वच्छम् महारत्नम्=कौस्तुभाख्यं महामणिम्, इव=यथा, हरिः=विष्णुः, हृदयेन=स्वान्तःकरणेन, धत्ते=धारयति।

**संस्कृत सरलार्थ**—कविरत्रापि खलनिन्दां सज्जनप्रशंसां च कुर्वन् कथयति—यथा राहोः कण्ठादधः स्थानाभावे पीयमानमपि चन्द्रामृतं न क्वचित्तिष्ठति तथैव हृदयशून्यत्वात् खलस्य गलादधः सूक्तिमयं सुकाव्यादि सततं पाठ्यमानमपि न प्रवेशं लभते। (एतस्माद्विपरीतम्) गुणग्राही सत्पुरुषः तदेव सूक्तिमयं काव्यादि तथैव स्वान्तःकरणेन गृह्णाति यथा भगवान् विष्णुः कौस्तुभाख्यं महामणिं सदैव स्ववक्षः स्थलोपरि धारयति अर्थात् सज्जनः सुभाषित काव्यादि सदैव पठति शृणोति एवं सहृदयत्वात् सदैव हृदयेन धारयति न तु कदापि विस्मरति।

**टिप्पणी**—सुभाषितम्=सुष्ठु भाषितम् सूक्ति प्रधानं काव्यादि। हारि=हृ+घञ्=हारः+इनि=हारिन्, नपुंसके हारि, अर्करिपोः=सूर्य का शत्रु अर्थात् राहु के। पौराणिक कथानुसार एक बार राहु नामक दैत्य ने देवों के साथ बैठकर अमृतपान कर लिया था, सूर्य और चन्द्र ने यह बात विष्णु को बता दी थी और विष्णु ने उसके गले को काट दिया था, उसके गले के नीचे का भाग तो केतु कहलाता है और ऊपर का भाग राहु, अतएव राहु के गले के नीचे कुछ है ही नहीं, इसलिए राहु, सूर्य का शत्रु कहलाता है और वह इसी शत्रुता के कारण कभी-कभी सूर्य और चन्द्र को ग्रसता है। महच्च तद्रत्नम् महारत्नम्—समुद्र से निकलने वाले १४ रत्नों में एक कौस्तुभ मणि भी था जिसे विष्णु अपने वक्षःस्थल पर धारण करते हैं। धत्ते=धा धातोः+लटि आत्मनेपदे रूपम् वंशस्य छन्द और उपमालंकार है।

## कथा प्रशंसा

स्फुरत्कलालापविलासकोमला,
करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता,
कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥८॥

**अन्वय**—स्फुरत्कलालापविलासकोमला स्वयं शय्याम् अभ्युपागता अभिनवा वधूः इव जनस्य हृदि रसेन कौतुकाधिकम् रागम् करोति।

**शब्दार्थ**—प्रस्तुत पद्य के अधिकांश पद, प्रायः द्व्यर्थक हैं, एक कला तथा दूसरा वधू पक्ष। स्फुरत्कलालापविलासकोमला=स्फुरत्कल आलाप अर्थात् स्फुरत्

या प्रतीयमान जो मधुर आलाप अर्थात् शब्द योजना या वर्णन, उस आलाप का जो विलास-सौन्दर्य उससे कोमला अर्थात् मृद्वी। कला-पक्ष में इसका अर्थ है—स्फुट या प्रतीयमान मधुर शब्द योजना या वर्णन के सौन्दर्य से कोमल। वधू पक्ष में इसका अर्थ है कल अर्थात् मधुर जो आलाप वार्तालाप और विलास अर्थात् हावभावादि, स्फुरत्= प्रकाशित होते हुए या फड़कते हुए मधुर वार्तालाप और हावभावादि के कोमला अर्थात् सुन्दर, अतः वधू पक्ष में इसका अर्थ है—फड़कते हुए मधुर वार्तालाप और हावभावादि से सुन्दर। **स्वयम्**=अपने आप—कला-पक्ष में—बिना प्रयास के ही उपस्थित शब्द योजना, वधू पक्ष में आश्लेष और प्रेमवश स्वतः एव उपस्थित। **शय्याम्**—कला-पक्ष में—शब्द गुम्फन में, वधू पक्ष में—पलंग पर, **अभ्युपागता**=कला पक्ष में—प्राप्त हुई, वधू पक्ष में—आयी हुई। **अभिनवा वधूः**=नव वधू, **इव**=यथा, **कथा**=गद्यपद्यमय प्रबन्ध। **जनस्य**=कला पक्ष में—सहृदय पाठक के, वधू पक्ष में—प्रेमी जन के, **हृदि**=हृदय में, **रसेन**=कला पक्ष में—श्रृंङ्गारादिकाव्य रस के द्वारा, वधूपक्ष में—प्रेमानन्द के द्वारा, **कौतुकाधिकम्**=अत्यधिक कौतूहलपूर्ण, **रागम्**=अनुराग या प्रेम, **करोति**=उत्पन्न करती है।

**अनुवाद**—स्फुटतया प्रतीयमान मधुर शब्द योजना या वर्णन के सौन्दर्य से कोमल (वधू पक्ष में) फड़कते हुए मधुर प्रेमालाप और हावभावादि से सुन्दर, अपने आप बिना प्रयास के ही, (वधू पक्ष में) आश्लेष और प्रेमवश स्वतः एव, शब्दगुम्फन में (वधू पक्ष में) पलंग पर, प्राप्त हुई (वधू पक्ष में) आयी हुई, नवोढा वधू के समान सहृदय पाठक के (वधू पक्ष में) प्रेमीजन के, हृदय में श्रृंङ्गारादि काव्यरस के द्वारा (वधू पक्ष में) प्रेमानन्द के द्वारा अत्यधिक कौतूहलपूर्ण अनुराग उत्पन्न करती है।

**भावार्थ**—जैसे नवोढा वधू अपने सरस मधुर प्रेमालाप और हावभावादि से मनोहारिणी होती है और वह स्वयं प्रेमवश पलंग पर आकर प्रेमी जन के हृदय में प्रेमानन्द द्वारा अति कौतूहलपूर्ण अनुराग उत्पन्न कर देती है, उसी प्रकार (यह) कथा, स्फुटतया प्रतीयमान मधुर शब्द-योजना के सौन्दर्य से सरस है और बिना प्रयास ही शब्दगुम्फन में आकर सहृदय पाठक के हृदय में श्रृंङ्गारादि काव्य रस के द्वारा अत्यधिक अनुराग उत्पन्न करने वाली है।

**संस्कृत व्याख्या**—कथा पक्षे—स्फुरत् स्फुटतया प्रतीयमानः यः कलः मधुरः आलापः शब्द योजना वर्णनं वा, तस्य यः विलासः सौन्दर्यम् तेन कोमला मृद्वी। वधूपक्षे—कलः मधुरः यः आलापः वार्तालापः, विलासः नायिकाकृतहावभावादिकम्, स्फुरन्तौ स्फुटं प्रकाशमानौ यौ कलालापविलासौ ताभ्यां कोमला मनोहारिणी, इति स्फुरत्कलालापविलासकोमला। **स्वयम्**=आत्मनैव, **शय्याम्**=कलापक्षे-शब्दगुम्फम्, वधूपक्षे-तल्पम्, **अभ्युपागता**=सान्निध्यमागता, **अभिनवा वधूः इव**=नवोढा पत्नी यथा, **कथा**=गद्य-पद्यमयप्रबन्धः, **जनस्य**=कथापक्षे-सहृदय पाठकस्य, वधू पक्षे-पत्युः **हृदि**=हृदये, **रसेन**=कथापक्षे-श्रृंङ्गारादिकाव्यरसेन, वधू पक्षे-प्रेमानन्देन, **कौतुकाधिकम्**=अतिकौतूहलपूर्णम्, **रागम्**=अनुरागम्, **करोति**=समुत्पादयति।

संस्कृत सरलार्थ—यथा नवोढा वधूः स्वकीयसरसमधुरप्रेमालापैः हावभावादिभिश्च मनोहारिणी भवति, एवं सा स्वयमेव प्रेमवशात् पुरुषस्य तल्पमागत्य तस्य पुरुषस्य हृदये प्रेमानन्देन अतिकौतूहलपूर्णमनुरागं जनयति तथैवेयं कथा स्फुटं प्रतीयमानमधुर-शब्दयोजनासौन्दर्येणातिसरसास्ति, एवमिव मनायासेनैव शब्द गुम्फनमुपेत्य सहृदयपाठकहृदये शृंङ्गारादिकाव्यरसेनातिकौतूहलपूर्णं मनुराग मुत्पादयति।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद्य में कवि ने बड़ी ही सुन्दरता के साथ अपनी नवीन कादम्बरी कथा का नवोढा वधू के साथ साम्य प्रदर्शित किया है। स्फुरत्कलेत्यादिपद, शय्या, रसेन, जनस्य, रागम् इत्यादि पद, कथा एवं वधू दोनों ही का वैशिष्टय प्रकट करते हैं। स्फुरत्—स्फुर् धातु का शतृ प्रत्ययान्त रूप है, इस पद के 'विलास' शब्द का अर्थ कलापक्ष में कुछ टीकाकारों ने, विन्यास किया है पर सुन्दर शब्द योजना में विन्यास आ ही जाता है। कोमल शब्द का अर्थ मृदु और सुन्दर भी होता है "कोमलं मृदुसुन्दरे"। इसी प्रकार शय्या शब्द के गुम्फ और तल्प दोनों ही अर्थ हैं—शय्या तल्पं शब्द गुम्फे-इसीलिए पदशय्या शब्द प्रचलित भी है। विलासः—वि+लस्+घञ् प्रत्यय, आलापः—आ+लप्+घञ्। कौतुकाधिकम् अधिकं कौतुकं यस्मिन् तत् कौतुकाधिकम्। अभ्युपागता—अभि+उप+गम्+क्त प्रत्यय स्त्रीत्वे टाप्। पूर्णोपमालंकार।

हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमै-
नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो
महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥६॥

अन्वय—उज्ज्वलदीपकोपमैः नवैः पदार्थैः चम्पककुड्मलैः उपपादिताः निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयः महास्रजः इव, उज्ज्वलदीपकोपमैः नवैः पदार्थैः उपपादिताः निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयः कथा कम् न हरन्ति।

शब्दार्थ—प्रस्तुत श्लोक के तृतीयान्त और प्रथमान्त अनेक पद श्लिष्ट समस्त पद हैं अतः द्वयर्थक हैं, अतः एक ओर ये महास्रजः (बड़ी मालाएँ) के विशेषण हैं और दूसरी ओर ये सभी कथाः (कथाएँ) की भी विशेषता बतलाते हैं। उज्ज्वलदीपकोपमैः—महास्रक् पक्ष में—चमकीले दीपकों सदृश, नवैः=नवीन न मुर्झाये हुए, पदार्थ=उपयोगी पदार्थभूत, चम्पक कुड्मलैः=चम्पा की कलियों द्वारा, उपपादिताः=बनाई गई या गूँथी गई, निरन्तरश्लेषघनाः=व्यवधानरहित (पुष्पों के) श्लेष अर्थात् संयोग के कारण सघन घनी, सुजातयः=सुन्दर जाति के पुष्पों वाली। महास्रजः=बड़ी-बड़ी मालाओं के, इव=समान। उज्ज्वलदीपकोपमैः=कथा पक्ष में—स्पष्ट प्रतीयमान होने वाले दीपक और उपमालंकारों वाले, नवैः=अपनी प्रतिभा से निर्मित होने के कारण अपूर्व, पदार्थैः=शब्दार्थों द्वारा, उपपादिताः=विरचित, निरन्तरश्लेषघनाः=प्रायः प्रतिपद वर्तमान श्लेषालंकार से सघन अर्थात् दुर्बोध, सुजातयः=सुन्दर जाति

नामक छन्द विशेष वाली, कथाः =कादम्बरी प्रयुक्त कथाएँ, कम् न हरन्ति = किसको आकृष्ट नहीं करती हैं अर्थात् सभी को आकृष्ट कर लेती हैं।

**अनुवाद**—चमकीले दीपकों सदृश, मालोपयोगी वस्तु चम्पा की कलियों से गूंथीं गई और व्यवधानरहित (पुष्पों के) संयोग के कारण घंनी सुन्दर जाति के पुष्पों वाली बड़ी मालाओं के समान, स्पष्ट प्रतीत होने वाले दीपक तथा उपमालंकारों वाले अपूर्व शब्दार्थों द्वारा विरचित और प्रायः प्रतिपद वर्तमान श्लेषालंकार से दुर्बोध, सुन्दर जाति नामक छन्द विशेष वाली कथाएँ किसको आकृष्ट नहीं करती हैं।

**भावार्थ**—जैसे वे बड़ी-बड़ी पुष्प मालाएँ, जो कि चमकीले दीपकों सदृश अम्लान चम्पा की कलियों द्वारा गूथीं गईं एवं अव्यवहित पुष्प संयोग के कारण घनी तथा सुन्दर चमेली के पुष्पों से युक्त हैं, सबके चित्त को आकृष्ट कर लेती हैं, उसी प्रकार स्पष्ट प्रतीयमान दीपक तथा उपमालंकारों वाले अभिनव अपूर्व शब्दार्थों से रचित एवं प्रायः प्रतिपद श्लेषालंकार से सघन तथा सुन्दर स्वरूप वाली कथाएँ सबके मन को आकृष्ट कर लेती हैं।

**संस्कृत व्याख्या**—उज्ज्वलदीपकोपमैः = (महास्रक् पक्षे-उज्ज्वलाः प्रकाशमानाः दीपकाः प्रदीपाः उपमाः सादृश्यानि येषान्तैः—प्रकाशमानप्रदीपतुल्यैः। **नवैः** = नवीनैरम्लानैरित्यर्थः, **पदार्थैः** = मालोपयोगिपदार्थभूतैः, **चम्पककुड्मलैः** = हेमपुष्प-मुकुलैः, **उपपादिताः** = सम्पादिताः संग्रथिता इत्यर्थः, (अथ च) **निरन्तरश्लेषघनाः** = निरन्तरमव्यवधानं यः श्लेषः पुष्पसंयोगः तेन घनाः सान्द्राः—व्यवधानरहितपुष्प संयोगसघनाः, **सुजातयः** = सुष्ठु शोभना जातयः जातिपुष्पाणि यासु, ताः = शोभन जातिकुसुमयुक्ताः, **महास्रजः** = महामालाः, **इव** = यथा, **उज्ज्वलदीपकोपमाः** = कथा-पक्षे—उज्ज्वलाः स्फुटं प्रतीयमानाः दीपकाः दीपकालंकारविशेषाः उपमाः उपमालंकार-विशेषाः च येषु तैः—स्फुटदीपकोपमालंकारसमन्वितैः, **नवैः** = स्वमनीषयैवोद्भावितै—रत एवापूर्वैः, **पदार्थैः** = पदानां शब्दानामर्थैरभिधेयैः शब्दार्थैरित्यर्थः, **उपपादिताः**—विरचिताः, (अथ च) **निरन्तरश्लेषघनाः** = निरन्तरं प्रायेण प्रतिपदं यः श्लेषः श्लेषा-लंकारः तेन घनाः सघनाः दुर्बोधा इत्यर्थः—व्यवधानरहितप्रतिपदश्लेषालंकार प्रयोगसघनाः, **सुजातयः** = सुष्ठु शोभना जातिः छन्दो विशेषः स्वरूपं वा यासु ताः—शोभनजातियुक्ताः, **कथाः** = गद्य-पद्यात्मकप्रन्बधाः, **कं न हरन्ति** = कं सहृदयं विज्ञं पाठकं न वशी कुर्वन्ति अर्थात् अवश्यं वशीकुर्वन्ति।

**संस्कृत सरलार्थ**—यथा ताः महामालाः, याः समुज्ज्वलदीपक-सदृशैरम्लान चम्पक-मुकुलैः संग्रथिता अथ चाव्यवहितपुष्पसंयोगसघना एव शोभनजातिकुसुम-समन्विताः सन्ति, सर्वेषां दर्शकानां चित्तं वशीकुर्वन्ति तथैव स्फुटदीपकोपमालंकारा-लंकृतैरपूर्वैः शब्दार्थे विरचिता अथ च प्रायेण प्रतिपदश्लेषालंकारविराजिताः सुस्वरूप-वत्यः कथाः सर्वसहृदयपाठकानां मनो वशीकुर्वन्ति।

**टिप्पणी**—प्रस्तुत गद्य के प्रायः सभी तृतीयान्त एवं प्रथमान्त पद श्लिष्ट हैं अतः द्वयर्थक है, एक ओर ये कथा की तथा दूसरी ओर माला की विशेषता बतलाते हैं

जैसाकि इसके शब्दार्थ लिखते समय स्पष्ट किया गया है। सुजातय:—माला-पक्ष में तो इसका अर्थ जाति पुष्प है पर कथा पक्ष में कुछ टीकाकारों के अनुसार जाति का अर्थ जाति नामक छन्द है और कुछ के अनुसार जाति का अर्थ स्वरूप है दोनों ही ठीक हैं। वस्तुतः इन श्लोकों द्वारा कादम्बरी कथा के वैशिष्ट्य की ओर संकेत किया गया है। इस कथा में सर्वत्र अभिनय, स्वप्रतिभा, समुद्भावित पदार्थं, योजना एवं सुललित भावानुगामिनी पदावली का प्रयोग है। पदावली अलंकृत एवं दीर्घ समास बहुला तो है ही पर उसके प्रयोग में भी कवि कौशल दर्शनीय है। इस श्लोक में कथा उपमेय और महास्रजः उपमान है अतः पूर्णोपमालंकार और अर्थापत्ति अलंकार भी है।

## कविवंशवर्णनम्

बभूव वात्स्यायनवंशसम्भवो,
द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम्।
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः,
कुबेरनामांश इव स्वयम्भुवः ॥१०॥

**अन्वय**—वात्स्यायनवंशसम्भवः जगद्गीतगुणः सताम् अग्रणीः अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः स्वयम्भुवः अंशः इव कुबेरनामा द्विजः बभूव।

**शब्दार्थ**—**वात्स्यायनवंशसम्भवः**=वात्स्यायन नामक वंश में उत्पन्न, **जगद्गीतगुणः**=संसार में जिनके दयादाक्षिण्यादि गुण गाये जाते थे, **सताम् अग्रणीः**=सज्जनों के अग्रेसर अर्थात् नेता अथवा सज्जनों में उत्तम, **अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः**=अनेक गुप्त वंशीय राजाओं के द्वारा जिनके चरण कमल युगल पूजित थे, अथवा अनेक गुप्त नामधारी वैश्य शूद्रादिकों से जिनके चरण कमलों की पूजा की जाती थी, **स्वयम्भुवः अंशः इव**=जोकि मानो ब्रह्मा के अंश से ही प्रतीत होने वाले थे, **कुबेरनामा द्विजः बभूव**=(ऐसे एक) कुबेर नामक ब्राह्मण थे।

**अनुवाद**—वात्स्यायन कुल में उत्पन्न, संसार में जिनके दयादाक्षिण्यादि गुण गाये जाते थे, जो कि सज्जनों के नेता थे तथा जिनके चरण कमल युगल गुप्तवंशीय राजाओं अथवा अनेक वैश्य शूद्रादिकों से पूजित थे और जो (परम धार्मिक होने के कारण) ब्रह्मा के अंशावतार से प्रतीत होते थे, (ऐसे एक) कुबेर नामक ब्राह्मण थे।

**भावार्थ**—एक कुबेर नामक ब्राह्मण थे जो कि वात्स्यायन कुल में उत्पन्न हुए थे, जगत में जिनके गुण गाये जाते थे और जो सज्जनों के अग्रेसर थे, तथा अनेक गुप्तवंशीय राजाओं अथवा वैश्य शूद्रादिकों द्वारा जिनके चरण कमलों की पूजा की जाती थी, अत्यधिक धार्मिक होने से ही ब्रह्मा के अंशावतार से प्रतीत होते थे।

**संस्कृत व्याख्या**—**वात्स्यायनवंशसम्भवः**=वत्सस्य गोत्रापत्यं पुमान् वात्स्यः वात्स्यस्य युवापत्यं पुमान् वात्स्यायनः, तस्य वंशे कुले सम्भवः उत्पत्तिर्यस्य सः-वात्स्यायनवंशसम्भवः-वात्स्यायनान्वयोत्पन्नः। **जगद्गीतगुणः**=जगति संसारे गीताः गानविषयीकृताः गुणाः दयादाक्षिण्यादयः यस्य सः=जगद्गीतगुणः, **सताम्**=सज्जनानाम्,

अग्रणीः = अग्रेसरः-नायक इत्यर्थः। अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः = अनेके असंख्या ये गुप्ताः प्रख्यातगुप्तवंशोद्भवाः राजानः गुप्तनामधारिणः अन्ये वा वैश्यशूद्रादयः तैः अर्चितम् पूजितं पादपङ्कजम् चरणकमलं यस्य सः—असंख्यगुप्तपूजितचरणकमलः, स्वयम्भुवः = स्वयम् आत्मनैव भवति जायते स्वयम्भूः ब्रह्मा प्रजापतिः तस्य—स्वयम्भुवः-ब्रह्मणः, अंश इव = अतिधार्मिकत्वात् अंशावतार इव, कुवेरनामा = कुवेरनामकः (कश्चित्) द्विजः = ब्राह्मणः, बभूव = आसीत्।

भावार्थ—वात्स्यायनवंशोत्पन्नः कुवेरनामा कश्चिदेको ब्राह्मण आसीत्, यस्य दयादाक्षिण्यादि गुणा लोके प्रशंसापात्र मासन्, यश्चासीत्सतामप्यग्रेसरः, एव मनेक गुप्तवंशीयराजभिः पूजितचरणश्च। स धर्मपरायणोऽत एव ब्रह्मणोऽशांवतार इव प्रतीयते स्म।

टिप्पणी—वात्स्यायनवंशसम्भवः—वत्सत्य गोत्रापत्यं पुमान् वात्स्यः—वत्स शब्द से 'गर्गादिभ्यो यञ् 'इति यम् आदि वृद्धिः, ततः वात्स्य शब्दात् युवापत्ये कक् तस्यं आयन्-वात्स्यायनः तस्य वंशे सम्भवः जन्म यस्य सः। अनेकगुप्तार्चितपाद-पंङ्कजः—असंख्य गुप्ताओं द्वारा जिसके चरण कमलों की पूजा की जाती थी। गुप्त शब्द का प्रयोग यहाँ प्रसिद्ध गुप्तवंशीय राजाओं के लिए भी हो सकता है तथा अनेक गुप्त नामधारी वैश्य शूद्र आदिकों के लिए भी हो सकता है जैसा कि 'शर्मान्तं ब्राह्मण-स्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु। गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः "इस प्राचीन श्लोक से ज्ञात होता है, दोनों ही अर्थों में कुवेर के प्रति विशेषादर भावना ही व्यक्त होती है। अर्चित—पूजार्थक अच् धातु से क्त प्रत्यय इट्। द्विजः—द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जायतेऽसौ द्विजः अतः द्विज शब्द का प्रयोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों ही के लिए होता है क्योंकि जन्म के बाद इनके संस्कार भी होते हैं, यहाँ कुवेर के लिए प्रयुक्त यह शब्द उनकी द्विज श्रेष्ठता का द्योतक होने से ब्राह्मणवाची है। द्विज पक्षी को भी कहते हैं क्योंकि उसका भी जन्म दो बार होता है प्रथम माता के उदर से, पुनः अण्डे से—जन्माण्डाभ्यां जायते-द्विजः। दन्तविप्राण्डजा द्विजाः इत्यमरः। अंशः इव—यहाँ पर द्रव्योत्प्रेक्षालंकार है। ●

**उवास यस्य श्रुतिशान्तकल्मषे,**
**सदा पुरोडाशपवित्रिताधरे।**
**सरस्वती सोमकषायितोदरे,**
**समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे मुखे ॥११॥**

अन्वय—यस्य श्रुतिशान्तकल्मषे, पुरोडाशपवित्रिताधरे, सोमकषायितोदरे, समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे मुखे सदा सरस्वती उवास।

शब्दार्थ—यस्य = जिस कुवेर नामक ब्राह्मण के, श्रुतिशान्तकल्मषे = वेदों के (अध्ययन से) जिसका पाप विलीन हो गया, पुरोडाशपवित्रिताधरे = पुरोडाश अर्थात् यज्ञ में देवताओं को दिये जाने वाले एक प्रकार के हवि से जिसका अधरोष्ठ पवित्र हो

गया था, सोमकषायितोदरे=सोम नामक यज्ञ में कोमलता के रस पान करने से जिसका भीतरी भाग कुछ कसैला या पुष्ट हो गया था, समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे= समस्त शास्त्रों और मन्वादिविरचित स्मृतियों के (अध्ययन से) जोकि सुन्दर हो गया था, (ऐसे) मुखे=मुख में, सरस्वती=वाग्देवी, सदा=सब समय, उवास=निवास करती थी। (यहाँ सभी सप्तम्यन्त समासान्त पद 'मुखे' के विशेषण हैं।

अनुवाद—जिस कुवेर नामक ब्राह्मण के, वेदों के अध्ययन से, विलीन हुए पास वाले पुरोडाश से पवित्र हुए अधरोष्ठ वाले सोमरस पान करने से कषायित हुए अभ्यन्तर भाग वाले एवं समस्त शास्त्रों एवं स्मृतियों के (अध्ययन से) सुन्दर हुए, मुख में सदा वाग्देवी सरस्वती निवास करती थी।

भावार्थ—वाण के पूर्वज कुवेर नामक ब्राह्मण के उस मुख में सदा सरस्वती निवास करती थी, जोकि मुख वेदों के अध्ययन से पापरहित हो गया था, पुरोडाश (यज्ञीय हवि विशेष के खाने से) जोकि पवित्र अधरोष्ठ वाला तथा सोमरस पान करने से पुष्ट अभ्यन्तर भाग वाला था तथा जोकि मुख समस्त शास्त्रों एवं स्मृतियों के अध्ययन से सुन्दर था।

इससे कवि ने अपने पूर्वज कुवेर नामक द्विज की वेदाध्ययनशीलता, नित्याग्नि-होत्रादिकर्मानुष्ठानपरायणता समस्त शास्त्र स्मृति ज्ञातता एवं सर्वश्रेष्ठता तथा पवित्रता को बतलाया है।

संस्कृत व्याख्या—यस्य=कुवेर नामकस्य द्विजस्य, श्रुतिशान्तकल्मषे=श्रुतिभिः वेदैः वेदाध्ययनैरित्यर्थः शान्तं विलीनं कल्मषं पापं यस्य तस्मिन्—वेदाध्ययनविनष्ट-किल्बिषे, पुरोडाशपवित्रिताधरे=पुरोडाशेन अग्निहोत्रादौ देवप्रदेयहुतावशिष्टेन हविषा पवित्रितः पावनीकृतः भक्षणकाले तदोष्ठ सम्बन्धेन पवित्रीकृत इत्यर्थः अधरः अधरोष्ठः यस्य तस्मिन्। पुरोडाशभक्षणपवित्रीकृतौष्ठे, सोमकषायितोदरे=सोमेन सोमयागे सोमलतारसपानेन कषायितं पुष्टं उदरम् अभ्यन्तरं यस्य तस्मिन्—सोमरसपानपुष्टा-भ्यन्तरे, समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे=समस्तानि सकलानि च यानि शास्त्राणि मन्वादिवि-रचिताः स्मृतयश्च तैः तदध्ययनैरित्यर्थः बन्धुरं मनोहरं तस्मिन्-अनेकशास्त्रस्मृत्यध्ययन-मनोहरे, मुखे=आनने, सदा=सर्वस्मिन् काले, सरस्वती=वाग्देवी, उवास=निवासं चकार।

संस्कृत सरलार्थ—कुवेरनामा कश्चिदेको द्विजो महाकविवाणस्य पूर्वज आसीत् यस्य मुखे सदा वाग्देवी सरस्वती निवासं चकार, यस्य तन्मुखं वेदाध्ययनेन विनष्टकल्मषं पुरोडाशभक्षणेन पावनीकृताधरं सोमपानेन पुष्टाभ्यन्तरञ्चासीत् एवञ्च तन्मुखं सकल-शास्त्रस्मृतिनित्याध्ययनेन मनोहरमासीत्। अनेन ज्ञायते यत् स महात्मा विप्रः वेदाध्य-यनपरः अग्निहोत्रादिकर्ता, समस्तशास्त्र स्मृतिज्ञश्चासीत्।

टिप्पणी—श्रुतिशान्तकल्मषे=श्रुतिः अर्थात् वेद का अर्थ, यहाँ वेदाध्ययन से है

कल्मष शब्द का अर्थ पाप है 'पापं किल्विषकल्मषम् इत्यमरः, शान्त का अर्थ नष्ट होना या विलीन होना है। **पुरोडाशपवित्रिताधरे**=पुरोडाश एक विशेष प्रकार की हवि का नाम है जोकि चावलों से मिट्टी के पात्रों में पकाई जाती थी और देवताओं को यज्ञों में दी जाती थी, उसके शेष भाग को यजमान को खाने का विधान था जिससे उसका मुख पवित्र हो जाता था। चूंकि पुरोडाश खाने में उसका सम्वन्ध ओष्ठों से भी हो जाता था अतएव यहाँ पवित्रिताधर शब्द का प्रयोग है। "पुरोडाशो हवि र्भेदे हुतशेषे च कीर्तितः ।" **सोमकषायितोदरे**—सोम नामक एक लता होती थी जिसका रस बड़ा पुष्टिकारक माना जाता था, यज्ञों में विशेषतः सोमरस देवताओं को दिया जाता एवं स्वयं भी पिया जाता था। कषायित का अर्थ कषैला किया हुआ है पर यहाँ प्रसंगतः इसका अर्थ पुष्ट ही लिया गया है। उदर का सामान्य अर्थ पेट होता है पर यहाँ प्रसंगतः इसका अर्थ भीतरी भाग ही करना ठीक है। **समस्तशास्त्रस्मृतिवन्धुरे** =समस्तशास्त्र और मन्वादिरचित स्मृतियों के अध्ययन से जिसका मुख सुन्दर हो गया था। यद्यपि वन्धुर शब्द से अनेक अर्थ होते हैं जैसे नतोन्नत टेढ़ा सुन्दर आदि पर यहाँ प्रसंगानुसार इसका अर्थ 'सुन्दर' ही गृहीत है। **उवास**—वस् धातु लिट् एक वचन का रूप है, अभ्यास के वकार का सम्प्रसारण हो गया है ?

**जगु गृहेंऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः,**
**ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः ।**
**निगृह्यमाणा वटवः पदे-पदे,**
**यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः ॥१२॥**

**अन्वय**—यस्य गृहे अभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः पदे-पदे निगृह्यमाणाः (अतएव) शङ्किताः यजूंषि सामानि च जगुः ।

**शब्दार्थ**—**यस्य गृहे**=जिस कुबेर नामक द्विज के घर में, **अभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः** =(निरन्तर वेद शास्त्रादि की चर्चा सुनते-सुनते) समस्त शास्त्रों का जिन्होंने अभ्यास कर लिया था। **ससारिकैः**=सारिका, मैना, सारिकाओं सहित, **पञ्जरवर्तिभिः**= पिंजड़ों में विद्यमान, **शुकैः**=तोतों के द्वारा, **पदेपदे निगृह्यमाणाः**=पद-पद पर टोके जाते हुए (अतएव) **शङ्किताः**=सशङ्कित, **वटवः**=ब्रह्मचारी छात्र, **यजूंषि-सामानि च** =यजुर्वेद के मन्त्रों को, **जगुः**=गाते थे।

**अनुवाद**—जिस कुवेर नामक द्विज के घर में, (निरन्तर शास्त्रादि की चर्चा सुनते-सुनते) जिन्होंने समस्त वेद शास्त्रादि का अभ्यास कर लिया था, (ऐसे) सारिकाओं सहित पिंजड़ों में विद्यमान तोतों के द्वारा पद-पद पर टोके जाते हुए (अतएव) संशङ्कित ब्रह्मचारी छात्र यजुर्वेद और सामवेद के मन्त्रों को गाते थे।

**भावार्थ**—कुवेर नामक ब्राह्मण के घर में सारिकाओं सहित पिंजड़ों में पले हुए तोते भी (निरन्तर वेद शास्त्रादि की चर्चा सुनते-सुनते) वेदों और शास्त्रों में इतने

अभ्यस्त हो गये थे कि जब वहाँ ब्रह्मचारी छात्र वेद पाठ करते थे, तब वे शुक उनको पद-पद पर टोकते थे अतएव वे सशङ्कित होकर ही वेदगान करते थे ।

इससे कवि ने कुवेर नामक द्विज के अगाध पाण्डित्य की व्यञ्जना कराई है, न केवल वह और उनके छात्र ही वहाँ निरन्तर वेदादि शास्त्रों का अध्ययन एवं मनन करते थे अपितु वहाँ पले हुए शुक भी उन शास्त्रों में अभ्यस्त हो गये थे अतः ब्रह्मचारियों को बहुत समझ बूझ कर कर वेद पाठ करना पड़ता था, थोड़ी-सी गलती पर शुक उन्हें टोक देते हैं ।

**संस्कृत व्याख्या**—यस्य = कुवेरद्विजस्य, गृहे = भवने, अभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः = अभ्यस्तम् पौनःपुन्येनाधीतं कण्ठस्थीकृतञ्च समस्तं सकलम् वाङ्मयम् चतुर्दशविद्यात्मकं शास्त्रं यैः ते तैः—अभ्यस्तसकलशास्त्रैः, ससारिकैः = सारिकाभिः सहितैः, पञ्जरवर्तिभिः = पञ्जरे लौहशलाकानिर्मिते पक्षिगृहे वर्तिनः तै पञ्जरस्थैः, शुकैः = कीरैः, पदे-पदे = प्रतिपदोच्चारणे, निगृह्यमाणाः = "भवदिभरत्राशुद्धं पठयते अत्र पदेनानेनैवं भवितव्यम्" इत्येवमशुद्धि प्रदर्शन पूर्वकं नियम्यमानाः (हेतुनानेनैव) शङ्किता = शङ्काविष्टाः कदाचिदेते शुका मत्कृताशुद्धोच्चारणानि गुरवे निवेदयेयुः फलतो गुरुताडनाशंकया ते भीता आसन् । बटवः = ब्रह्मचारिणः छात्राः, यजूंषि सामानि च = यजुर्वेदान् समावेदांश्च, जगुः = अपठन्, गायन्ति स्म वा ।

**संस्कृत सरलार्थ**—कुवेरद्विजस्य भवने ससारिकाः पालिताः पिञ्जरस्थाः शुका अपि नित्यं वेदशास्त्रादिचर्चा श्रावं श्रावंवेदादिशास्त्रेष्वेवमभ्यस्ता बभूवुः यद्यदा तत्रत्या तत्रत्या ब्रह्मचारिणश्छात्राः वेदपाठ मकुर्वन् तदा ते शुकास्तान् शुद्धोच्चारणे प्रतिपदं निगृह्णन्ति स्म, अतएव ते गुरुताडनभिया सशङ्किता भूत्वा एव वेदपाठं कुर्वन्ति स्म ।

**टिप्पणी**—जिस घर के पालतू शुक भी वेद पाठ की अशुद्धियों का ज्ञान रखते हों, उस घर के स्वामी कुवेर द्विज का अगाध पाण्डित्य अवर्णनीय है । **वाङ्मय**—यह शब्द सामान्यतः साहित्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है वाच् शब्द से मयट्प्रत्यय करने पर वाङ्मय बनता है । **निगृह्यमाणाः**—निगृह्यन्ते इति निगृह्यमाणाः नि + ग्रह + कर्मवाच्ये शानच् । इसका अर्थ यहाँ डाँटना या सावधान करना मात्र है धमकाना नहीं । **जगुः** = गै + लिट् प्रथम पुरुष बहुवचन । यहाँ असम्बन्ध में सम्बन्ध लक्षणा अतिशयोक्ति अलंकार है ।

**हिरण्यगर्भो भुवनाण्कादिव,**
**क्षपाकरः क्षीरमहार्णवादिव ।**
**अभूव सुपर्णा विनतोवरादिव,**
**द्विजन्मनामर्थपतिः पतिस्ततः ॥१३॥**

**अन्वय**—भुवनाण्डकात् हिरण्यगर्भः इव, क्षीरमहार्णवात् क्षपाकरः इव, विनतोवरात् सुपर्णः इव, ततः द्विजन्मनाम् पतिः अर्थपतिः अभूत् ।

शब्दार्थ—प्रस्तुत पद्य का "द्विजन्मनां पतिः" पद न केवल 'अर्थपतिः, का ही विशेषण है अपितु वह हिरण्यगर्भः क्षपाकरः और सुपर्णः इन तीनों का भी भिन्न-भिन्न अर्थों में विशेषण हो सकता है। भुवनाण्डकात्=भुवन, चतुर्दश लोक, अण्डक=ब्रह्माण्ड, अर्थात् भुवनाण्ड अर्थात् ब्रह्माण्ड से, हिरण्यगर्भः=प्रजापति ब्रह्मा, इव=यथा, अर्थात् जैसे ब्रह्माण्ड से, द्विजन्मनां पतिः=ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणों के स्वामी-ब्रह्मा, क्षीरमहार्णवात्=क्षीरमहासागर से, द्विजन्मनां पतिःक्षपाकरः=क्षीरसागर से जैसे द्विजपति या द्विजराज चन्द्रमा, विनतोदरात्=विनता नाम काश्यपपत्नी अरुण और गरुण की जननी मानी गई है अतः विनता के उदर (कुक्षि) से द्विजपतिः अर्थात् पक्षिराज गरुण, ततः=उन कुवेर नामक द्विज से, द्विजन्मनां पतिः=ब्राह्मणों में श्रेष्ठ अर्थपतिः अभूत=अर्थपति नाम के द्विज उत्पन्न हुए।

अनुवाद—जैसे चतुर्दश भुवनाण्ड-ब्रह्माण्ड से (ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणों के अधिपति ब्रह्मा, क्षीर महासागर से जैसे द्विजराज चन्द्रमा, विनता उदर से पक्षिराज गरुण (उत्पन्न हुए थे) उसी प्रकार कुवेर नामक द्विज से ब्राह्मणाधिपति अर्थपति नामक द्विज उत्पन्न हुए।

भावार्थ—महाकवि बाण के पूर्वज कुवेर नामक द्विज से ब्राह्मण श्रेष्ठ अर्थपति नामक द्विज उसी प्रकार उत्पन्न हुए जैसे ब्रह्माण्ड से ब्रह्मा, क्षीर महासागर से चन्द्र, तथा विनता से गरुड़ उत्पन्न हुएं थे।

संस्कृत व्याख्या—भुवनस्य भूर्भुव इत्यादि चतुर्दश लोकस्य अण्डकात् ब्रह्माण्डादित्यर्थः द्विजन्मनां ब्रह्मज्ञब्राह्मणानां पतिरधिपतिः हिरण्यगर्भः=ब्रह्मा-प्रजापतिः इव=यथा, क्षीरमहार्णवात्=क्षीरसागरात्, द्विजन्मनां पतिः=द्विजराजः क्षपाकरः=चन्द्रः, इव=यथा, विनतायाः एतन्नामिकायाः काश्यपपत्न्याः उदरात्=कुक्षेः—विनतोदरात्=विनतागर्भात्, द्विजन्मनां पतिः पक्षिराजः, सुपर्णः=गरुड़, इव=यथा, ततः=कुवेरद्विजात्, द्विजन्मनां=ब्राह्मणानां, पतिः=श्रेष्ठः, अर्थपतिः=एतन्नामकः द्विजः अभूत=समुत्पन्नः।

संस्कृत सरलार्थ—कुवेरद्विजात्, अर्थपतिनामा द्विजश्रेष्ठ स्तथैव जातः, यथा ब्रह्माण्डात् प्रजापतिः ब्रह्मा, क्षीरसागरात् द्विजराजश्चन्द्रः, विनतोदरात् पक्षिराजः गरुड़श्च जातः।

टिप्पणी—भुवनाण्डकात्='लोकस्तु भुवने जने' के अनुसार भुवन का अर्थ लोक है, ये चतुर्दश लोक भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः' सत्यम् नाम से सप्त ऊर्ध्वलोक, एवं अतल, वितल, सुतल रसातल, तलातल अहातल, और पाताल नाम से सप्त अधलोक हैं—भुवनाण्डक का अर्थ है, भुवनाण्ड अर्थात् ब्रह्माण्ड। हिरण्यगर्भः—स्वर्णाण्ड से ब्रह्मा की उत्पत्ति होने के कारण इनको हिरण्यगर्भ कहा गया है। क्षीरमहार्णवात्—समुद्रमन्थन से समुद्भूत १४ रत्नों में एक चन्द्रमा भी था अतएव चन्द्र का उत्पत्ति स्थान क्षीर सागर कहा गया है, क्षपां रात्रि करोतीति क्षपाकरः रजनीकरः चन्द्रः। सुपर्णः शोभनानि पर्णानि छदानि यस्य सः सुन्दर पंखों वाला अर्थात् गरुड़।

भुवनाण्डकात् क्षीरमहार्णवात् और विनतोदरात् इन तीनों पदों में 'भुवः प्रभवः' सूत्र से भू धातु के कर्ता के उत्पत्ति स्थान होने के कारण अपादान होने से पञ्चमी है क्योंकि अभूव् क्रिया के तीनों ही कर्ताओं के उत्पत्ति स्थान उर्युपक्त तीनों ही पद हैं।

**विवृण्वतो यस्य विसारि वाङ्मयं,**
**दिने दिने शिष्यगणा नवा नवाः ।**
**उषःसु लग्ना श्रवणेऽधिकां श्रियं,**
**प्रचक्रिरे चन्दनपल्लवा इव ॥१४॥**

**अन्वय**—दिने-दिने उषः सु नवा नवाः शिष्यगणाः चन्दनपल्लवाः इव श्रवणे लग्नाः (सन्तः) विसारि वाङ्मयम् विवृण्वतः यस्य अधिकाम् श्रियम् प्रचक्रिरे ।

**शब्दार्थ**—**दिने-दिने** = प्रतिदिन, **उषःसु** = प्रातः समय में, **नवा-नवाः** = नये-नये अर्थात् उत्तरोत्तर वृद्धिशाली होने वाले, **शिष्यगणाः** = छात्र समूह, **चन्दनपल्लवाः** = चन्दन वृक्ष के किसलयों के, **इव** = समान, **श्रवणे लग्नाः** = (शिष्य गण पक्ष में—शास्त्रों के व्याख्यान सुनने में तत्पर, [चन्दन पल्लव पक्ष में—रमणियों के कान में संसक्त लगे हुए। (सन्तः) = होकर] **विसारि** = विसरण शील-विस्तृत, **वाङ्मयम्** = चतुर्दश विद्यात्मक शास्त्र को, **विवृण्वतः** = व्याख्यान द्वारा स्पष्ट समझाते हुए, **यस्य** = जिस अर्थपति नामक गुरु की, **अधिकाम् श्रियम्** = अत्यधिक शोभा को, **प्रचक्रिरे** = करते थे या बढ़ाते थे ।

**अनुवाद**—प्रतिदिन प्रातःकाल नये-नये शिष्यगण, शास्त्रव्याख्यान सुनने में तत्पर होकर, विस्तृत चतुर्दशविद्यात्मक शास्त्र को व्याख्यान द्वारा स्पष्ट समझाते हुए जिस अर्थपति नामक गुरु की अत्यधिक शोभा को उसी प्रकार बढ़ाते थे जैसे प्रतिदिन प्रातःकाल नये-नये (विकसित) चन्दन वृक्ष के पल्लव रमणियों के कानों में संसक्त होकर उनकी शोभा बढ़ाते हैं ।

**भावार्थ**—अर्थपति चतुर्दश विद्यात्मक शास्त्रज्ञ एवं उसके विस्तारपूर्वक व्याख्याता गुरु थे अतः प्रतिदिन प्रातःकाल उत्तरोत्तर वृद्धिशाली छात्र उनके पास आते थे और ध्यानपूर्वक कान लगाकर उनके व्याख्यानों को सुनकर उनकी अत्यधिक शोभा या ख्याति को उसी प्रकार बढ़ाते थे जिस प्रकार प्रतिदिन प्रातः विकसित नूतन चन्दन किसलय रमणियों के द्वारा कानों में पहनाये जाकर उनकी शोभा बढ़ाते हैं ।

**संस्कृत व्याख्या**—**दिनेदिने** = प्रतिदिनम्, **उषः सु** = प्रातः समयेषु, **नवा नवाः** = नूतना उत्तरोत्तरं वृद्धिशालिनः, **शिष्यगणाः** = छात्रसमूहाः, **चन्दनपल्लवाः** = चन्दन वृक्षकिसलयानि, **इव** = यथा, **श्रवणे लग्नाः** = शिष्यगणपक्षे—शास्त्रव्याख्यान-श्रवणं तत्पराः, (चन्दनपल्लव-पक्षे—रमणीनां श्रवणसंसक्ताः सन्तः) **विसारि** = विसरणशीलम् विस्तृतं वा वाङ्मयम् = चतुर्दश-विद्यात्मकं शास्त्रम्, **विवृण्वतः** = विस्तृत-व्याख्यानेन विस्पष्टं बोधयतः, **यस्य** = अर्थपतिनामकस्य गुरोः, **अधिकांश्रियम्**अत्यर्थां शोभाम्, **प्रचक्रिरे** = वितेनिरे।

संस्कृत सरलार्थ— अर्थपतिः चतुर्दशविद्यात्मकशास्त्रमर्मज्ञः एवं तच्छास्त्र व्याख्याता विख्यातो गुरुरासीत्, अतएव प्रतिदिनं प्रातः काले तमुपेत्य छात्रा स्तच्छास्त्रव्याख्यानानि सध्यान माकर्णयन्तस्त द्विशिष्टां ख्यातिं तथैव तन्वन्ति स्म यथा प्रतिदिनं प्रातः विकसितानि चन्दनकिसलयानि रमणीनां श्रवणसंसक्तानि भूत्वा तच्छोभा मत्यधिकं वर्धयन्ति ।

टिप्पणी—प्रस्तुतः श्लोक के 'श्रवणे' और 'लग्नाः' पद द्वयर्थक हैं, इनका अन्वय शिष्यगणाः के साथ और चन्दनपलल्वाः के साथ भिन्न अर्थों में है शिष्यगणाः के साथ इनका अर्थ है—शास्त्र व्याख्यानों को सुनने में तत्पर, और चन्दनपल्लवाः के साथ इवका अर्थ है—रमणियों के कानों में पहने जाकर । अर्थात् प्रातः काल विकसित चन्दन पल्लव रमणियों के कानों में संसक्त होकर जैसे उनकी अत्यधिक सुन्दरता को बढ़ाते हैं उसी प्रकार प्रतिदिन प्रातः काल नये-नये छात्र शास्त्रव्याख्यान सुनने में तत्पर होकर गुरु की ख्याति को अत्यधिक बढ़ाते थे । विवृण्वतः—वि+वृ+शतृ प्रत्यय षष्ठ्येक वचन, व्याख्यान द्वारा स्पष्टतया समझाते हुए । विसारि—वि+सृ+ताच्छील्ये णिनि वृद्धि, नपुंसकैक वचने, विसरण शील फैलने वाला । श्रवणे—कान और सुनना, लग्नाः=तत्पर और संसक्त । दिने दिने उषःसु नवा नवाः, इन सब का अन्वय भी शिष्यगणाः और चन्दनपल्लवाः दोनों ही के साथ होता है । प्रचक्रिरे—प्र+कृ लिट् आत्मने पद प्रथम पुरुष बहुवचन । यहाँ चन्दनपल्लवाः उपमान और शिष्यगणाः उपमेय है अतः यहाँ मालोपमालंकार है ।

विधानसम्पादितदानशोभितैः
स्फुरन्महावीरसनाथ मूर्तिभिः ।
मखै रसंख्यैरजयत्सुरालयं
सुखेन यो यूपकरैर्गजैरिव ॥१५॥

अन्वय—यः विधानसम्पादितदानशोभितैः, स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः यूपकरैः गजैः इव असंख्यैः मखैः सुरालयम् अजयत् ।

शब्दार्थ—प्रस्तुत पद्य के प्रायः सभी पद द्वयर्थक हैं, एक यज्ञ-पक्ष में और दूसरा अर्थ गज पक्ष में घटित होता है । यः=जिस अर्थपति ने, विधानसम्पादितदान शोभितैः =यज्ञ पक्ष में—(वेदोक्त) विधि विधान पूर्वक दिये गये दानों से सुशोभित (गज पक्ष में—यज्ञ विधान अर्थात् मद जल को प्रकट करने के लिए (हाथी को) दिये जाने वाले भक्ष्य विशेष के द्वारा निकले हुए मद जल अर्थात् (दान) से शोभायमान, स्फुरन्महावीरसनाथ—मूर्तिभिः=(यज्ञ पक्ष में—प्रज्वलित यज्ञाग्नियों से युक्त स्वरूप वाले (गज पक्ष में—(संग्रामोत्साह के कारण) भड़कते हुए बड़े-बड़े वीर योद्धाओं द्वारा अधिष्ठित शरीरों वाले, यूपकरैः=यज्ञ पक्ष में—यज्ञीय स्तम्भ रूप हाथों वाले, गज पक्ष में—यज्ञीय स्तम्भ जैसे सूंड़ वाले, गजैः इव=हाथियों जैसे, असंख्यैः मखैः=संख्यातीत यज्ञों द्वारा, सुरालयम्=स्वर्ग लोक को, (उसी प्रकार) सुखेन=सरलता से, अजयत्=

जीत लिया, (जिस प्रकार कोई बलवान् राजा) उक्त प्रकार के हाथियों द्वारा स्वर्ग को सरलतापूर्वक जीत लेता है ।

अनुवाद—जिस अर्थपति ने (वेदोक्त) विधि विधानों द्वारा दिये गये (स्वर्णादि) दानों से सुशोभित, प्रज्वलित यज्ञाग्नियों से युक्त स्वरूप वाले तथा यज्ञीय स्तम्भ रूप हाथों वाले असंख्य यज्ञों द्वारा सरलता से ही स्वर्ग लोक को (उसी प्रकार जीत लिया अर्थात् प्राप्त कर लिया जिस प्रकार एक (बलवान् राजा) विधान अर्थात् मद जल को प्रकट करने के लिए दिये जाने वाले खाद्य विशेष के द्वारा निकले हुए (दान) मद जल से शोभायमान और (संग्रामोत्साह के कारण) फड़कते हुए बड़े-बड़े वीर योद्धाओं द्वारा अधिष्ठित शरीरों वाले तथा यज्ञीय स्तम्भों जैसे सूड़ों वाले असंख्य हाथियों से स्वर्ग-लोक को सुखपूर्वक जीत लेता है ।

भावार्थ—जैसे एक बलवान राजा, मदस्रावी एवं युद्धोत्साह सम्पन्न वीराधिष्ठित तथा स्तम्भ जैसे सूड़ों वाले हाथियों से अनायास ही स्वर्ग को भी जीत लेता है, उसी प्रकार अर्थपति ने विधि पूर्वक प्रदत्त दानों से शोभित और देदीप्यमान यज्ञाग्नियों वाले तथा स्तम्भ रूपी हाथों वाले असंख्य यज्ञों द्वारा सरलता से ही स्वर्ग को प्राप्त कर लिया था । कवि का तात्पर्य है कि अर्थपति ने स्वर्ग प्राप्ति कामना से अनेक विशिष्ट यज्ञ किये थे और इस प्रकार अनायास ही स्वर्ग प्राप्ति को अवश्यम्भावी बना लिया था ।

संस्कृत व्याख्या—यः = अर्थपतिनामा द्विजः, विधानसम्पादितदानशोभितैः यज्ञपक्षे—विधानेन वेदविहितविधिना सम्पादितं कृतं यत् दानं ब्राह्मणेभ्यः धनादि-वितरणं तेन शोभितैः समलंकृतैः = वेदविधिसम्पादितदानसुशोभितैः, गजपक्षे—विधानेन गजमदाविर्भावार्थं प्रदेयभक्ष्यविशेष निष्पन्नं यद् दानं गजमदलं तेन शोभिताः विभूषितास्तैः प्रदेयभक्ष्यविशेषनिष्पन्नमदजलालंकृतैः । स्फुरन्महावीर सनाथमूर्तिभिः—यज्ञ-पक्षे—स्फुरन्तः देदीप्यमाना ये महावीराः यज्ञाग्नयः तैः सनाथाः युक्ताः मूर्तयः स्वरूपाणि येषां तैः = प्रज्वलितयज्ञाग्नियुक्तस्वरूपैः, गजपक्षे—स्फुरन्तः युद्धोत्साहेन हस्तपादस्पन्दसमन्विताः ये महावीराः प्रबला शूराः तैः सनाथाः अधिष्ठिताः मूर्तयः शरीराणि येषां तैः—युद्धोत्साहजन्यस्पन्दसमन्वितप्रबलशूराधिष्ठितदेहैः, यूपकरैः—यज्ञपक्षे यूपाः यज्ञीयपशुबन्धनाय निर्मितस्तम्भाविशेषाः त एव कराः हस्ताः येषान्ते तैः—यज्ञस्तम्भरूपहस्तैः, गजपक्षे—यूपा इव कराः शुण्डादण्डाः येषान्ते तैः—यज्ञ-स्तम्भसदृश-शुण्डादण्डधारिभिः, गजैः = हस्तिभिः, इव = यथा, असंख्यैः = संख्यातीतैः अत्यधिकैरित्यर्थः, मखैः = यज्ञैः, सुखेन = अनायासेन, सुरालयम् = सुराणाम् आलयः सुरालयः देवलोकः स्वर्गं इति यावत् तम् सुरालयम् अजयत् = स्ववशीचकार । (स्वर्ग लोकप्राप्त्यभिवाञ्छया सम्पादितैरनेकैर्यज्ञैरर्थ पतिः स तदवाप्ति मवश्यम्भाविनीं विदधादित्याशयः ।)

संस्कृत सरलार्थ—यथा कश्चिद् बलवान्नृपतिः, मदस्राविभिः युद्धोत्साहसमन्वितशूरवीराधिष्ठितैः यज्ञीयस्तम्भसदृशशुण्डादण्डधारिभिरनेकैर्गजैरनायासेनैव

स्वर्लोकाधिपत्य मप्यवाप्तुं क्षमते तथैवायमप्यर्थपतिः, वेदविहितविधिप्रदत्तधनादिदानालंकृतैः प्रज्वलितयज्ञाग्नियुक्तस्वरूपैर्यज्ञस्तम्भरूपकरैरनेकैर्यज्ञैरनायासेनैव स्वर्लोकावाप्ति मवश्यम्भाविनीमकरोत् ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद्य के प्रायः सभी पद द्वयर्थक हैं, एक ओर ये यज्ञ के विशेषण बनते हैं और दूसरी ओर गज के। प्रथम पद "विद्यानेत्यादि का यज्ञ पक्ष में तो स्पष्ट अर्थ है कि वे यज्ञ जो कि वेदविहित विधि के अनुसार दिये गये धनादिदानों से सुशोभित थे किन्तु गज-पक्ष में विधान का अर्थ है वह भक्ष्य विशेष जिसके द्वारा गज का मद शीघ्र बाहर प्रकट हो जाता है इस प्रकार के विधान द्वारा निष्पन्न हुए मद जल से वे हाथी सुशोभित थे। इसी प्रकार द्वितीय पद "स्फुरन्महावीरेत्यादि भी दोनों ही पक्षों में विशेषण बनता है। यज्ञ पक्ष में इसका अर्थ है—स्फुरत् = प्रज्वलित महावीर = यज्ञाग्नि (महावीर शब्द का यज्ञाग्नि अर्थ में प्रयोग होता है इसके लिए यह कोश वचन प्रमाण है "होमाग्नि स्तु महाज्वालो महावीरः प्रवर्गवत् ।" सनाथ = युक्त या समन्वित, मूर्ति = स्वरूप अर्थात् वे यज्ञ प्रज्वलित यज्ञाग्नियों ते युक्त रूप वाले थे गज पक्ष में इसका अर्थ है, वे गज जिनकी देह पर युद्धोत्साह से फड़फड़ाते हुए बड़े बलशाली योद्धा चढ़े हुए थे। इसी प्रकार यूप करैः भी दोनों पक्षों में विशेषण है—यज्ञ पक्ष में यूप अर्थात् यज्ञस्तम्भ रूपी हाथों वाले। यज्ञों में पशुबन्धनार्थ जो एक विशेष प्रकार का स्तम्भ बनाया जाता है वह यूप कहा जाता है ये यूप ही मानो यज्ञों के हाथ थे। गज पक्ष में इसका अर्थ है कि उन गजों की सूड़ यथीय स्तम्भों सदृश स्थूल एव विशाल थीं। शेष शब्दों के अर्थ स्पष्ट हैं। यहाँ मख की समानता गज के साथ होने से उपमालंकर तो स्पष्ट ही है किन्तु यहाँ यज्ञ सम्बन्धी मुख्यार्थ के द्वारा श्लिष्ट विशेषणों की सहायता से एक अन्य गौण अर्थ भी प्रकट किया है अतः समासोक्ति अलंकार भी है अतः यहाँ उपमानुप्राणित समासोक्ति अलंकार है।

स चित्रभानुं तनयं महात्मनां,
सुतोत्तमानां श्रुतिशास्त्रशालिनाम् ।
अवाप मध्ये स्फटिकोपलोपमं,
क्रमेण कैलासमिव क्ष्माभृताम् ॥१६॥

अन्वय—सः क्रमेण क्षमाभृताम् मध्ये स्फटिकोपलोपमम् कैलासम् इव क्षमाभृताम् महात्मनाम् श्रुतिशास्त्रशालिनाम् सुतोत्तमानाम् मध्ये चित्रभानुम् तनयम् अवाप ।

शब्दार्थ—सः = उस अर्थपति ने। क्रमेण = क्रम से अर्थात् वंश क्रम के अनुसार क्ष्माभृताम् = पर्वतों के, मध्ये = मध्य में, स्फटिकोपलोपमम् = स्फटिक मणि सदृश-उपल पत्थर, यहाँ इसका अर्थ मणि है, अन्य पुस्तकों में उपल के स्थान पर अमल भी पाठ है जिसका अर्थ स्वच्छ या निर्मल है दोनों ही प्रकार के पाठों में अर्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं है। स्फटिक मणि सदृश अर्थात् निष्कलङ्क स्वच्छ। कैलासम् = कैलास

पर्वत, इव = यथा अर्थात् कैलास पर्वत के समान, क्षमाभृताम् = शान्ति गुण को धारण करने वाले, महात्मनाम् = उत्कृष्ट गुणों वाले विद्वान, श्रुतिशास्त्रशालिनाम् = वेदशास्त्रों के ज्ञाता एवं अध्यापयिता सुतोत्तमानाम् = उत्तम पुत्रों के, मध्ये = मध्य में, चित्रभानुम् = चित्रभानु नाम के, तनयम् = पुत्र को, अवाप = प्राप्त किया। महाकवि बाण ने अपनी हर्ष चरित नामक आख्यायिका में स्वयं ही अर्थपति के ११ पुत्रों का उल्लेख किया है, ये सभी विद्वान् और धार्मिक थे, इनमें आठवें चित्रभानु ही महाकवि बाण के पिता थे।

अनुवाद—उन अर्थपति ने वंशक्रमानुसार पर्वतों के मध्य, स्फटिक मणि सदृश निष्कलंक अवं निर्मल कैलास पर्वत के समान, शक्तिशाली, उत्कृष्ट गुणशाली, और वेदशास्त्राध्यापक उत्तम पुत्रों के बीच अत्रिभानु नामक पुत्र को प्राप्त किया।

भावार्थ—अर्थपति के वंश परम्परानुसार ११ पुत्र हुए, ये सभी वेदशास्त्रज्ञ क्षमाशील विद्वान् एवं गुनवान् उत्तम पुत्र थे इनमें ही आठवें चित्रभानु नाम द्विज वैसे ही निष्कलंक एवं निर्मल गुण सम्पन्न थे जैसे कि पर्वतों के बीच कैलास पर्वत होता है।

संस्कृत व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः अर्थपतिः, क्रमेण = वंशपरम्परया क्षमाभृताम् = क्षमां पृथिवीं बिभ्रति धारयन्ति ते क्षमाभृतः तेषां क्षमाभृताम् भूधराणाम्, मध्ये, स्फटिकोपलोपमम् = स्फटिकोपलः स्फटिक मणिः उपमा यस्य सः तम्-स्फटिकोपलोपमम् = स्फटिकमणिसदृशम्—अमलम् स्वच्छम् निष्कलङ्कञ्चेत्यर्थः। कैलासम् = कैलास पर्वतम्ः इव = यथा, क्षमाभृताम्—क्षमां क्षान्तिं बिभ्रति धारयन्ति ते क्षमाभृतः तेषाम्—क्षान्तिशालिनाम्,, महात्मनाम्—महाम् आत्मा येषां तेषाम्—उदारचरितानाम्—श्रुतिशास्त्रशालिनाम् = वेदशास्त्राध्यापकानाम्, सुतोत्तमानाम्—श्रेष्ठ-पुत्राणाम् मध्ये, चत्रभानुम्, तनयम् = चित्रभानु नामकं पुत्रम्, अवाप = लेभे।

संस्कृत सरलार्थ—भूधराणां मध्ये स्फटिकमणिसदृशं निर्मलं कैलासपर्वतमिव अर्थपतिः क्षान्तिशालिनां गुणवतां वेदशास्त्राध्यापकानां श्रेष्ठपुत्राणां मध्ये चित्रभानु संज्ञकं निष्कलङ्कम् पुत्रं लब्धवान्।

टिप्पणी—क्षमाभृताम्—क्षमा शब्द के 'क्षितिक्षान्त्योः क्षम इत्यमरः इस कोश के अनुसार दो अर्थ हैं १. पृथिवी २. क्षान्ति। कैलाश पर्वत के पक्ष में इसका अर्थ पृथिवी और चित्रभानु के पक्ष में क्षान्ति लिया जायेगा जैसाकि ऊपर व्याख्या में दिखलाया गया है। मध्ये इस शब्द के योग में क्षमाभृताम् आदि षष्ठ्यन्त पदों में षष्ठी विभक्ति है। क्षमाभृताम्—क्षमां + भृ + क्विप् तुक् क्षमाभृत् तेषाम्। अवाप—अव + आप् लिट् प्रथम पुरुषैक वचनं। श्रुति-शास्त्रशालिनाम् = श्रुतिभिः शास्त्रैश्च शालन्ते शोभन्ते तेषाम्।

महात्मनो यस्य सुदूरनिर्गताः,
कलङ्कमुक्तेन्दुकलामलत्विषः ।
द्विषन्मनः प्राविविशुः कृतान्तरा,
गुणा नृसिंहस्य नखाङ्कुरा इव ॥१७॥

**अन्वय**—यस्य महात्मनः सुदूरनिर्गताः कलङ्कमुक्तेन्दु कलामलत्विषः नृसिंहस्य नखाङ्कुराः इव कृतान्तराः गुणाः द्विषन्मनः (अपि) प्रविविशुः ।

**शब्दार्थ**—**यस्य महात्मनः**=जिस महानुभाव चित्रभानु के, **सुदूरनिर्गताः**= गुण पक्ष में—दूर तक फैले हुए, नखपक्ष में दूर तक लम्बे बाहर निकले हुए, **कलङ्कमुक्तेन्दुकलामलत्विषः**=कलङ्कमुक्त अर्थात् निष्कलङ्क जो इन्दुकला—चन्द्रमा की कला उसके समान अमल निर्मल **त्विष्**=कान्ति अर्थात् निष्कलङ्कचन्द्रकला के समान निर्मल कान्ति वाले (गुण और नख दोनों पक्षों में यही एक अर्थ होगा) **नृसिंहस्य**= नृसिंहावतारधारी विष्णु के, **नखाङ्कुराः**=नखों के अग्रभाग, **इव**=जैसे, **गुणाः**= दयादाक्षिण्यादि सद् गुण, **कृतान्तराः**=गुण पक्ष में—अपने प्रभाव से प्रवेश मार्ग बना लेने वाले, नख पक्ष में—भेद कर और विदीर्ण कर अन्तः प्रवेश मार्ग बना लेने वाले, **द्विषन्मनः**=गुण पक्ष में—शत्रुओं के मन में, नख पक्ष में—शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्षः-स्थल में (अपि=भी) **प्राविविशुः**=प्रविष्ट हो गये थे ।

**अनुवाद**—जिस महानुभाव चित्रभानु के दूर तक फैले हुए (तथा) निष्कलङ्क चन्द्रकला के समान निर्मल कान्ति वाले दयदाक्षिण्यादि गुण (अपने प्रभाव से) अन्तः प्रवेश मार्ग बनाकर शत्रुओं के मन में भी उसी प्रकार प्रविष्ट हो गये थे जिस प्रकार दूर तक लम्बे बाहर निकले हुए (तथा, निष्कलङ्क चन्द्रकला के समान निर्मल कान्ति वाले नृसिंहावतार विष्णु के नखों के अग्रभाग, (अपनी अपूर्व सामर्थ्य से) अन्तः प्रवेशावकाश बनाकर, शत्रुहिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल में प्रविष्ट हो गये थे ।

**भावार्थ**—जिस प्रकार दूर तक बाहर निकले हुए और स्वच्छ चन्द्रकला के समान चमकते हुए नृसिंहभगवान् के नखाग्र, अपने शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल में उसे विदीर्ण कर घुस गये थे उसी प्रकार चित्रभानु महानुभाव के दूर तक विस्तृत एवं निष्कलंक चन्द्रकला के समान निर्मल दयादाक्षिण्यादि गुण अपने प्रभाव से ही अन्तः प्रवेश मार्ग बनाकर न केवल मित्रों के मन में अपितु शत्रुओं के मन में भी प्रविष्ट हो गये थे, अर्थात् उनके गुणों ने शत्रुओं के मन को भी आकृष्ट कर लिया था। तब मित्रों की तो बात ही क्या थी अर्थात् उनके गुण सर्वथा अवर्णनीय थे ।

**संस्कृत व्याख्या**—यस्य=पूर्वोक्तस्य, महात्मनः=महानुभावस्य चित्रभानोः, सुदूरनिर्गताः=गुण पक्षे—सुदूरदेशपरिव्याप्ताः—नखपक्षे—नखराग्रादाधिक्येन बहिरागताः, कलङ्कमुक्तेन्दुकलामलत्विषः=उभयपक्षेऽपि-कलङ्केन मृगलाञ्छनेन मुक्ता परित्यक्ता या इन्दोश्चन्द्रस्य कला षोडशांशः तद्वत् अमला निर्मला स्वच्छा वा त्विष् कान्तिः येषान्ते गुणाः नखाश्च—निष्कलङ्कचन्द्रकलानिर्मलकान्तिमन्तः, गुणाः=

दयादाक्षिण्यादयः, नृसिंहस्य = नृसिंहावतारधारिणो विष्णोः, नखाङ्कुराः = नखाग्र-भागाः, इव = यथा कृतान्तराः = गुणपक्षे—स्वप्रभावलब्धप्रवेशावकाशाः—नखपक्षे—स्वशक्ति प्राप्तान्तःप्रवेशमार्गाः (सन्तः) द्विषन्मनः = गुण पक्षे—द्विषतां शत्रूणां मनश्चित्तम्—शत्रुचेतः, (अपि) नखपक्षेतु—द्विषतः शत्रोः हिरण्यकशिपोः मनः = प्रसंगतः वक्षःस्थलम्, प्राविविशुः = प्रवेशमकुर्वन् ।

संस्कृत सरलार्थ—यथा नखाग्रभागादाधिक्येन वहिर्निगताः (तथा) निष्कलङ्क चन्द्रकलानिर्मलकान्तिमन्तो नृसिंहावतारधारिणो भगवतो विष्णोः नखाग्रभागाः स्वशक्त्या विदीर्य स्वशत्रोर्हिण्यकशिपोर्वक्षःस्थलं प्राविशन् तथैव महामहिमशालिनश्चित्रभानोः सुदूरदेशप्रसृताः (तथा निष्कलङ्क चन्द्रकलानिर्मलकातिमन्तो दयादाक्षिण्यादि-गुणाः स्वप्रभावलब्धान्तः प्रवेशावकाशाः, न केवलं मित्रमनःस्वेवापितु स्वशत्रुचेतःस्वपि पदं विदधुः । शत्रुचित्ताकर्षकत्वादतिप्रभावशालिनस्तस्य गुणा वर्णनातीता एवासन इत्याशयः ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद्य में चित्रभानु के गुणों की उपमा नृसिंह ने नखों से देकर कवि ने यह द्योतित किया है कि न केवल चित्रभानु के सहृदय मित्र ही उनके गुणों के प्रशंसक थे अपितु उनके शत्रु भी उनके सद्गुणों के आगे नतमस्तक थे अर्थात् सभी उनके प्रशंसक थे । दूर-दूर तक उनके गुणों का प्रकाश निर्मल चन्द्रकान्ति के समान फैला हुआ था । इन्दुकला—कला तु षोडशो भागः चन्द्रमण्डल का १६वां अंश एक चन्द्रकला कही जाती है । अमलत्विषः-निर्मल कान्ति—त्विष् शब्द का प्रथमा बहुवचन का रूप 'त्विषः' है द्विषन्मनः—द्विषत् = शत्रु तकारान्त शब्द है । प्राविविशुः—प्र+आ+विश् धातु लिट् प्रथम पुरुष बहु० वचन ।

दिशामलीकालकभङ्गतां गत-
स्त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः ।
चकार यस्याध्वरधूमसञ्चयो
मलीमसः शुक्लतरं निजं यशः ॥१८॥

अन्वय—यस्य दिशाम् अलीकालकभङ्गताम् गतः, त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः' मलीमसः (अपि) अध्वरधूमसञ्चयः निजम् यशः शुक्लतरम् चकार ।

शब्दार्थ—यस्य = जिस चित्रभानु के, दिशाम् = दिशा रूपी सुन्दरियों के, अलीकालकभङ्गताम् गतः = ललाट प्रदेश पर (स्थित) घुंघराली लटों की विशेष प्रकार की रचना को प्राप्त (अलीक = ललाट प्रान्त, अलक = घुंघराली लटें, भङ्गता = रचना विशेष । त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः = त्रयी = वेदत्रयी—ऋग् यजुः सामवेद, वेदत्रयी रूपी बधू के कानों में (शोभित) तमाल (वृक्ष के) किसलय सदृश, मलीमसः = मलिन, कृष्णवर्ण (अपि भी) अध्वरधूमसञ्चयः = अध्वर यज्ञ, यज्ञों के धूम समूह ने, निजं यशः = अपनी कीर्ति को, शुक्लतरम् चकार = और अधिक श्वेत बना दिया था ।

**अनुवाद**—जिस चित्रभानु के, दिशा रूपी सुन्दरियों के ललाट प्रदेश पर (स्थित घुंघराली लटों की विशेष प्रकार की रचना को प्राप्त हुए, (तथा) वेदत्रयी रूपी वधू के कानों में (शोभित) तमाल (वृक्ष के) किसलय सदृश, (स्वभावतः) कृष्णवर्ण, यज्ञों के धूम समूह ने अपने यश को और अधिक श्वेतवर्ण वाला बना दिया था।

**भावार्थ**—जिस प्रकार सुन्दरी नायिकाओं के ललाट पर रची हुई घुंघराली केश रचना एवं नवोढा नायिकाओं के कानों में लगा हुआ तमाल पल्लव स्वतः कृष्णवर्ण होकर भी और अधिक शोभावर्धक हो जाते हैं, उसी प्रकार चित्रभानुकृत यज्ञों के धूम समूह ने दिशाओं के छोरों तक फैलकर एवं आकाश तक व्याप्त होकर स्वयं कृष्णवर्ण होकर भी अपने यश को और अधिक श्वेत बना दिया था।

कवि का आशय यह है कि चित्रभानु ने लगातार अनेक यज्ञ किये थे अतः उन यज्ञों का धूम समूह दिशाओं के छोरों तक तथा आकाश तक व्याप्त हो गया था अर्थात् उनके यज्ञों का यश सर्वत्र फैला हुआ था, निरन्तर यज्ञकर्ता होने से उनकी धर्म-परायणता भी प्रकट होती है जिसका कि यश चारों ओर फैला था।

**संस्कृत व्याख्या—यस्य**=चित्रभानोः, **दिशाम्**=वधूस्वरूपाणां पूर्वादीनाम् दिशामित्यर्थः। **अलीकालकभङ्गताम्**=ललाटप्रदेशस्थचूर्णकुन्तलरचनाविशेषत्वम्-अलीकेष ललाटप्रदेशेषु ये अलकाः चूर्णकुन्तलाः तेषां भङ्गता रचनाविशेषत्वम् ताम्; **गतः**=प्राप्तः, **त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः**=त्रयी ऋग्यजु-सामरूपा वेदत्रयी सैव वधूः तस्याः कर्णे श्रोत्रे तमालस्य तमालवृक्षस्य पल्लवः किसलयस्वरूपः—वेदत्रयीवधूश्रोत तापिच्छकिसलयस्वरूपः, **मलीमसः**=स्वभावतः मलिनः (अपि) **अध्वरधूमसञ्चयः**= अध्वराणां धूमस्य सञ्चयः—यज्ञीयधूमसमूहः, **निजं यशः**=स्वकीयां प्रकृतिस्वच्छा कीर्तिम्, **शुक्लतरं चकार**=अतिशयेनोज्ज्वलं कृतवान्।

**संस्कृत सरलार्थ**—यथा कामिनीललाटरचितकेशविशेषरचना अथ च नवोढा—श्रोत्रसंसक्ततापिच्छकिसलयरेखाः प्रकृतितः श्यामवर्णा अपि शोभां चित्ताकर्षकत्वञ्च वर्ध-यन्त्येव तथैव दिगन्तप्रसृता आकाशव्याप्ताश्च तदीययज्ञीयधूमारेखाः श्यामवर्णा भूत्वापि धर्मपरायणस्य चित्रभानोरुज्ज्वलं यशो वितेनिरे।

**टिप्पणी**—प्रस्तुत पद्य में दिशाओं पर कामिनियों का, वेदत्रयी पर नवोढा वधू का तथा यज्ञीयधूम पर तमालपल्लव का आरोप कर सुन्दर रूपक अलंकार की योजना की गई है। किन्तु यज्ञीयधूम के द्वारा जो कि स्वभावतः कृष्णवर्ण होता है। शुक्लतर बना देना संघटित नहीं होता अपितु यहाँ स्पष्ट विरोध है, इस विरोध के परिहार के लिये यहाँ यह भाव ग्रहण करना पड़ेगा कि चित्रभानु ने परम धार्मिक होकर निरन्तर अनेक यज्ञ किये थे जिससे उनका यश, जिसका कि रंग काव्य में श्वेत माना जाता है, और अधिक श्वेत एवं उज्ज्वल हो गया था। इस दृष्टि से यहाँ **विरोधाभास** अलंकार भी है—जहाँ वस्तुतः विरोध न होने पर भी विरोध-सा प्रतीत हो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। "विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।" **अलीकालक-भङ्गताम्**=अलक का अर्थ 'ललाट प्रदेश' है जैसा कि यह कोशवचन है "अलीकमप्रिये

भाले" अलक का अर्थ है—चूर्ण कुन्तल—धुंघराले केश "अलकाश्चूर्णकुन्तला:" अमर कोश। भङ्गता का अर्थ है—केशों की विशेष प्रकार की रचना या बनावट। काले-काले घुंघराले केशों को यदि विशेष प्रकार से सजा दिया जाय तो उनमें अधिक मनोहरता उत्पन्न हो जाती है। **त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः** = त्रयी—ऋग्यजुः सामरूपा वेदत्रयी, इस पर वधू का आरोप करने पर त्रयीवधू बना है, यज्ञीयधूम इस वधू के कानों में शोभित तमालपल्लव के समान था अर्थात् वधू के कानों में पहने गये तमाल-पल्लव के समान शोभित था। तमाल का दूसरा नाम तापिच्छ भी है "तापिच्छोऽपि तमालः स्यात्" इत्यमरः इसका किसलय (पल्लव) भी श्यामवर्ण का ही होता है। श्यामवर्ण की वस्तु के साथ श्यामवर्ण की वस्तु मिलकर उसकी शोभा को और भी निखार देती है। इसीलिए तो प्रकृतितः मलिन भी धूम उक्त दोनों की ही शोभावर्धक था। "मलिन धूम ने शुक्लतर यश उत्पन्न कर दिया था। इस कथन में विषमालंकार भी है।" मलीमसः के स्थान पर मलीमसम् भी पाठ है।

**सरस्वती पाणिसरोजसम्पुट,**
**प्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भसः**
**यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपा,**
**ततः सुतो बाण इति व्यजायत ।।१६।।**

**अन्वय**—सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुटप्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भसः यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात् ततः बाणः इति सुतः व्यजायत।

**शब्दार्थ—सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुटप्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भसः** = **सरस्वती पाणिसरोजसम्पुट** = वाग्देवी सरस्वती के कर-कमल युगल द्वारा अर्थात् कर-कमल की अञ्जुलि से, **प्रमृष्ट** = पोंछे गये। **होमश्रम** = यज्ञीय हवन से (उत्पन्न) **शीकराम्भसः** = शीकराम्भसः जल-कण, जल की बूंदें—अर्थात् जिनके यज्ञीय हवन के श्रम से (उत्पन्न) जल के कणों को सरस्वती के कर-कमलों की अञ्जुलियों द्वारा पोंछा जाता था। इससे कवि ने यह व्यञ्जना की है कि चित्रभानु अत्यधिक यज्ञों के कर्ता थे, निरन्तर यज्ञ ही किया करते थे। अतः अग्नि सामीप्य से तथा थकान से जो उन्हें अत्यधिक पसीना आता था वह इतना अधिक होता था कि सरस्वती उसे अपने कर-कमलों की अञ्जुलियों से पोंछ पाती थी। केवल हाथ से ही नहीं। **यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्** = यशोंऽशु-(यज्ञजनित) कीर्ति की किरणों द्वारा (जिनका कि वर्ण काव्य में श्वेत माना गया है)। **शुक्लीकृत** = श्वेत बना दिये गये। **सप्तविष्टप** = सप्तलोक अर्थात् जिनकी कीर्ति की किरणों द्वारा सप्तलोक धवलित कर दिये गये थे। **ततः** = (ऐसे) चित्रभानु से, **बाणः इति सुतः व्यजायत** = बाण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

**अनुवाद**—सरस्वती के कर-कमल युगल के पोंछे गये होम से (उत्पन्न) थकान के जल कणों वाले, तथा (अपनी) कीर्ति किरणों से सप्तलोकों को धवलित कर देने वाले चित्रभानु से बाण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

**भावार्थ**—चित्रभानु निरन्तर अत्यधिक यज्ञों के कर्ता थे । हवन की थकान से उत्पन्न उनके जल कणों को सरस्वती कर-कमलों की अञ्जुलियों से पोंछती थीं—और यज्ञों से उत्पन्न उनकी कीर्ति किरणों ने न केवल भू-लोक अपितु सातों लोकों को श्वेत कर दिया था, क्योंकि कीर्ति का रंग श्वेत होता है । ऐसे परम धार्मिक चित्रभानु से महाकवि बाण उत्पन्न हुए थे ।

**संस्कृत व्याख्या**—**सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुटप्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भसः**=सरस्वत्याः वाग्देव्याः पाणी हस्तौ एव सरोजे कमले तयोः सम्पुटेन युग्मेन प्रमृष्टानि प्रोञ्छितानि प्रमार्जितानि वा होमश्रमस्य यज्ञीयहवनजन्यखेदस्य शीकाराम्भांसि प्रस्वेद जलानि यस्य तस्मात्—सरस्वतीकर-कमलद्वयप्रोञ्छितहोमखेदप्रस्वेदजलात् । **यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्**=यशसः अंशवः तैः यशोंऽशुभिः कीर्तिकिरणैः शुक्लीकृतानि धवलीकृतानि सप्तविष्टपानि सप्त भूप्रभृतीनि भुवनानि येन तस्मात्—कीर्तिकिरण धवलीकृतसप्तभुवनात् । **ततः**=चित्रभानोः । **बाण इति सुतः**=बाण इति नामधेयः पुत्रः । **व्यजायत**=समभवत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—चित्रभानुर्निरन्तरं बहुयज्ञकर्तासीत् अत एव यज्ञीयहवनश्रमसमुद्भवानि तस्य समधिकप्रस्वेदजलानि सरस्वती स्वयमेव स्वकरकमलद्वयेन प्रोञ्छितानि विदधाति स्म । अनेन स्पष्टं प्रतिभाति यत्स वैदिकयज्ञानुष्ठाता त्वासीदेव स विद्यापारङ्गतो विद्वानप्यासीत् अतएव स सरस्वत्याः कृपापात्रमप्यासीत् । यज्ञविधानविद्याध्ययनजनितेन तस्य यशसा सप्तलोका धवलीकृता आसन् । अस्मादेव महानुभवाच्चित्रभानोर्महाकविरयं बाणोऽजायत ।

**टिप्पणी**—**सरस्वतीत्यादि–सम्पुटेन**=सम्पुट का अर्थ अञ्जलि है, होमश्रमजन्य प्रस्वेद इतना अधिक होता था कि सरस्वती देवी को उसके पोंछने के लिये दोनों हाथों की अञ्जलि बनानी पड़ती थी । **प्रमृष्ट**=प्र+मृश्+क्त । **शीकराम्भसः**=शीकर=बिन्दु या कण, अम्भस्=जल, यह सम्पूर्ण पद पञ्चम्यन्त है और ततः का विशेषण है **यशोंऽशुधवलीकृतेत्यादि**—चित्रभानु के यज्ञों एवं विद्याओं से उनका यश यहाँ तक फला था कि उसने न केवल भूलोक को ही अपितु सप्तभुवनों को भी श्वेत कर दिया था, वस्तुतः यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण है । **यशोंऽशु**=यश की रश्मियों से, **शुक्लीकृत**—जो, पहले श्वेत नहीं थे उन्हें श्वेत बना दिया था—यहाँ कृ धातु के योग में शुक्ली यह च्विप्रत्ययान्त रूप है । **विष्टप**=भुवन "विष्टपं भुवनं जगत्" कोषः । **ततः**—पञ्चम्यन्त तसिल् प्रत्ययान्त शब्द है । **व्याजायत**—वि+जन धातोः लङि रूपम् । □

**द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठ्यया,**
**महामनोमोहमलीमसान्धया ।**
**अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया,**
**धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा ॥२०॥**

**अन्वय**—तेन द्विजेन अक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्ध्या, अलब्धवैराग्यविलासमुग्धया धिया इयम् अतिद्वयी कन्या निबद्धा ।

**अन्वय**—तेन द्विजेन अक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्धया, अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया इयम् अतिद्वयी कन्या निबद्धा ।

**शब्दार्थ**—**तेन द्विजेन**=उस ब्राह्मण बाणभट्ट ने, **अक्षतकण्ठकौण्ठ्यया**=जिसके कण्ठ की कुण्ठता अर्थात् जड़ता भी अभी दूर नहीं हुई थी । तात्पर्य यह कि जिसकी बुद्धि की कण्ठदेशस्थ जड़ता (अस्पष्ट उच्चारण) या तुतलाहट जैसी कि बच्चों में देखी जाती है, वह नष्ट नहीं हुई थी अर्थात् जो अभी कण्ठ से स्पष्ट वर्णोच्चारण भी नहीं कर सकती थी । **महामनोमोहमलीमसान्धया**=महामनोमोह अत्यधिकचित्त की विकलता या अस्थिरता एवं चञ्चलता, **मलीमस**=मलिन दोषपूर्ण या अप्रशंसनीय, **अन्धया**=अर्थात् जो सत् असत् का विवेक करने में असमर्थ होने के कारण अन्धी थी । अर्थात् जो कि (बुद्धि) अत्यधिक चित्त विकलता के कारण दोषपूर्ण एवं सदसद् विवेकासमर्थ होने से अन्धी थी ।—जो बुद्धि अभी तक कविचातुर्य विलास के न प्राप्त होने के कारण मुग्ध अर्थात मूढ़तायुक्त थी । **धिया**=बुद्धि से, **इयम्**=यह **अतिद्वयी**=गुणाढ्यकृतबृहत्कथा और सुबन्धुकृत वासनदत्ता कथा को उत्कृष्टता में अतिक्रमण करने वाली अर्थात् उन दोनों से श्रेष्ठ, **कथा**=कादम्बरी कथा । **निबद्धा**=रची गई है या बनाई गई है ।

**अनुवाद**—उस ब्राह्मण बाणभट्ट ने (अपनी उस) बुद्धि से, जिसके कि कण्ठ की कुण्ठता (जड़ता या अस्पष्टोच्चारणता—तुतलाहट अब तक) नष्ट नहीं हुई है । (और जो कि) अत्यधिक चित्त विकलता के कारण सदोष एवं सदसद्विवेकासमर्थ होने से अन्धी है, (तथा) जो कविचातुर्य लीला की अप्राप्ति के कारण मूढ़ है, यह दो कथाओं—गुणाढ्यकृत बृहत्कथा और सुबन्धु कृत वासवदत्ता—से उत्कृष्ट अथवा अद्वितीय कादम्बरी कथा की रचना की है ।

**भावार्थ**—महाकवि बाण कहते हैं कि यह कादम्बरी कथा जो कि अद्वितीय या बृहत्कथा और वासवदत्ता नामक दो कथाओं से उत्कृष्ट है, मेरी उस बुद्धि के द्वारा रचित है जिसके कि कण्ठ की जड़ता अभी तक दूर नहीं हुई है और जो अत्यधिकचित्तविकलतावश सदोष एवं सदसद्विवेकरहित होने से अन्धी है तथा कविचातुर्य लीला के न प्राप्त होने से जो कि अभी भी मूढ़ ही है ।

**संस्कृत व्याख्या**—**तेन द्विजेन**=पूर्वोक्तेन तेन ब्राह्मणेन बाणेन, **अक्षतकण्ठकौण्ठ्यया**=न क्षतम् अक्षतम् अविनष्टम् कण्ठे गलप्रदेशे कुण्ठाया भावः कौण्ठ्यम् जाड्यम् वचनव्यापारे गलमान्द्यमित्यर्थः यस्याः सा तया—अविनष्टगलजाड्यया, **महामनोमोहमलीमसान्धया**=महान् अत्यधिकः यः मनसः चित्तस्य मोहः शिशुत्वेन वैकल्य तेन मलीमसा सदोषा प्रशंसानर्हा अतएव अन्धा सदसद्विवेकासमर्था तया—अत्यधिकचित्तवैकल्यसदोषान्धया, **अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया**—अलब्धः अप्राप्तः यः वैदग्ध्यस्य विलासः वैदुष्यं चातुर्य तेन (हेतुना) मुग्धा मूढ़ा तया अप्राप्तवैदुष्यचातुर्यमूढ़या, **धिया**=स्वप्रज्ञता, **अतिद्वयी**—द्वयीं बृहत्कथां वासवदत्तां च अतिक्रान्तेति अतिद्वयी, इयं मद्बुद्धिस्था कादम्बरीं कथा, **निबद्धा**=संग्रथिता निर्मिता वा ।

**संस्कृत सरलार्थ**—महाकवि र्बाण: कथयति यन्मया मद्बुद्धिस्थेयं कादम्बरीकथा तादृश्या बुद्धया संग्रथिता याधुना अविनष्टगलमान्द्या, अत्यधिकचित्तवैकल्यसदोषान्धा अप्राप्तवैदुष्यचातुर्य्यमुग्धा वर्तते।

**टिप्पणी**—प्रस्तुत पद्य के सभी स्त्रीलिंग, तृतीयैक वचनान्त पद "धिया" के विशेषण हैं। अक्षत कण्ठ कौण्ठ्यया क्षत = विनष्ट, अक्षत = जिसका नाश न हुआ हो अर्थात् अविनिष्ट। कुण्ठाया: भाव: कौण्ठ्यम् कुण्ठाशब्दात् भावे ष्यञ् प्रत्यय: आदिवृद्धि: आकारलोप: कौण्ठ्यम् = कुण्ठता जड़ता-बोलने में अस्पष्टता या तुतलाहट, अर्थात् ऐसी वुद्धि जिसकी कि गले में ही तुतलाहट दूर नहीं हुई थी—जो बुद्धि अभी स्पष्ट वर्णोच्चारण ही नहीं कर सकती, उससे गद्य-काव्य रचना कैसे सम्भव हो सकती है। **महन्मनोमोहमलीमसान्धया**—महा = अत्यधिक, मनोमोह, चित्त की विकलता, मलीमस = सदोष, अन्धा = अन्धे व्यक्ति के समान व्यवहार करने वाली, अच्छे-बुरे का निर्णय न कर सकने वाली। महान् य: मनस: मोह: तेन मलीमसा सदोषा अतएव अन्धा। **अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धा** = अलब्ध = लभ + क्त = लब्ध: न लब्ध: अलब्ध: अप्राप्त:। विदग्धस्य भाव: वैदग्ध्यम्—विदग्धशब्दात् ष्यञ्प्रत्यय: तस्य य: विलास: चातुर्य्यम् तेन मुग्धा = मूढ़ा। वस्तुत: मुग्ध शब्द का प्रयोग सुन्दर और मूढ़ दोनों अर्थों में होता है। "मुग्ध: सुन्दरमूढ़यो:" इस दृष्टि से यहाँ मुग्धा का अर्थ कोमल भी हो सकता है। अधिक वैदुष्य चातुर्य्य न मिलने के कारण जो कि वुद्धि अभी बड़ी कोमल थी, जैसे कि बच्चे कोमल मति होते हैं। **अतिद्वयी** = दो का अतिक्रमण करने वाली अर्थात् उन दोनों से बढ़कर श्रेष्ठ, इसका दूसरा अर्थ अद्वितीय भी हो सकता है अर्थात् जिसके समान दूसरा अन्य न हो।

## शूद्रक वर्णनम्

**आसीदशेषनरपतिशिर:समभ्यर्चितशासन: पाकशासन इवापर: चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्त्ता, प्रतापानुरागावनतसमस्तसामन्तचक्र:, चक्रवर्तिलक्षणोपेत:, चक्रधर एव करकमलोपलक्ष्यमाण-शङ्खचक्रलाञ्छन:, हर इव जितमन्मथ:, गुह इवाप्रतिहतशक्ति:, कमलयोनिरिव विमानीकृत-राजहंसमण्डल: जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूति: गंगाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्त:, रविरिव प्रतिदिवसोपजायमानोदय: मेरुरिव सकलोपजीव्यपादच्छाय:, दिग्गज इवानवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकर:,..........................................**

शब्दार्थ—प्रस्तुत गद्यांश में 'आसीत्' यह क्रिया पद है—जिसका कर्त्ता, इस वाक्य के अन्त में "शूद्रको नाम राजा" है। इस गद्यांश के सभी प्रथमान्त पद इसी कर्ता के विशेषण हैं। **अशेष-नरपति-शिर:समभ्यर्चितशासन:** = जिसका आदेश (शासन) समस्त (अशेष) राजाओं के सिरों द्वारा पूजित (समभ्यर्चित) था अर्थात् सभी राजा उसकी आज्ञा को आदरपूर्वक मानते थे। **पाकशासन इवापर:** = (अतएव जो) दूसरे (अपर:) इन्द्र (पाकशासन:) के समान (था)। **चतुरुदधि-माला-मेखलाया भुवो भर्त्ता** = (भूमण्डल के चारों ओर विद्यमान) चारों समुद्रों (चतुर् उदधि) की पंक्ति (माला) रूपी मेखला (करधनी) वाली, पृथ्वी का, (भुव:) भर्त्ता (पति या स्वामी) अर्थात् जो चारों ओर समुद्रों की पंक्ति रूपी मेखला वाली पृथ्वी का स्वामी (था)।

प्रतापानुरागावनत-समस्त-सामन्त-चक्रः=प्रताप (कोश और दण्ड से उत्पन्न तेज) और अनुराग (प्रेम) से सभी (समस्त) सामन्त राजाओं के समूह (चक्र) को झुका देने वाला (अवनत) अर्थात् (जो अपने) तेज और प्रेम से सभी सामन्त राजाओं को वशीभूत कर लेने वाला था। चक्रवर्ति-लक्षणोपेतः=चक्रवर्ती (सार्वभौम राजा) के चिन्हों (लक्षण) से युक्त (उपेतः) अर्थात् जो सार्वभौम राजा के लक्षणों से युक्त था। चक्रधर इव=(अतएव जो) विष्णु (चक्रधर) के समान था। कर-कमलोपलक्ष्यमाण-शङ्ख-चक्र-लाञ्छनः=कमल रूपी हाथों में कर-कमल दिखाई देते हुए (उपलक्ष्यमाण) (सामुद्रिक शास्त्रोक्त) शङ्ख की हस्तरेखाओं (लाञ्छनः) वाला, अर्थात् (जो अपने) कर कमलों में दिखाई देते हुए (सामुद्रिक शास्त्रोक्त शङ्खचक्र की हस्त रेखाओं वाला था)। तात्पर्य यह है कि जैसे विष्णु के कर कमलों में सदा (आयुध रूप में) प्रत्यक्षतः दृश्यमान शङ्ख और चक्र रहते हैं और उसी प्रकार शूद्रक राजा के कर कमलों में शङ्ख और चक्र की हस्तरेखायें दिखलाई पड़ती थीं अतएव वह विष्णु के समान था। हर इव जित-मन्मथः= भगवान् शंकर (हर) के समान जिसने कामदेव को जीत लिया था। अर्थात् जैसे भगवान् शंकर ने अपने तृतीय नेत्र से भस्म कर कामदेव को जीत लिया था उसी प्रकार राजा ने (अति सौन्दर्यशाली होने के कारण कामदेव को जीत लिया था वस्तुतः यहाँ मन्मथ पद कामवासना का उपलक्षण है अतः इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि जिसने कामवासना को जीत लिया था। गुह इवाप्रतिहत-शक्तिः= जो स्वामिकार्तिकेय (गुह) के समान अकुण्ठित या अनिरुद्ध (अप्रतिहत) सामर्थ्य (शक्ति) वाला था अर्थात् जैसे स्वामिकार्तिकेय अकुण्ठित सामर्थ्य वाले अथवा शक्ति नामक अस्त्र विशेष वाले है उसी प्रकार राजा अप्रतिहत बल वाला था। कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंस-मण्डलः=राजहंसों के समूह को (मण्डल) विमान—देवयान या वाहन—बनाने वाले ब्रह्मा (कमलयोनिः) के समान, वह राजा, श्रेष्ठ राजाओं के (राजहंस) समूह (मण्डल) को मान या गर्व रहित (विमान) कर देने वाला था। यहाँ विमानीकृत और राजहंस पद श्लिष्ट हैं अतः इनके दो-दो अर्थ हैं—ब्रह्मा के पक्ष में—राजहंस का अर्थ है—राजहंस नामक पक्षी जिनकी चोंच और पैर लाल होते हैं और विमानीकृत का अर्थ—विमान अर्थात् आकाशगामी देवयान या अपना वाहन बनाना, ब्रह्मा के वाहन राजहंस ही माने गये हैं। राजा के पक्ष में—राजहंस अर्थात् श्रेष्ठ राजा और विमानीकृत—विमान कृत अर्थात् जिनका मान या गर्व नष्ट कर दिया गया है। जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूति=जलधि=समुद्र, लक्ष्मी-प्रसूतिः=लक्ष्मी=भगवान विष्णु पत्नी देवी लक्ष्मी, जो देवासुरों द्वारा समुद्र मंथन करने पर समुद्र से उत्पन्न हुई थी, इसका दूसरा अर्थ—शोभा या धन सम्पत्ति भी होता है। प्रसूतिः=उत्पत्तिस्थान। लक्ष्मी देवी के उत्पत्ति स्थान समुद्र की भाँति राजा भी शोभाशाली एवं राजलक्ष्मी वाला होने के कारण लक्ष्मी का उत्पत्ति स्थान था। गङ्गाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्तः=गङ्गा के प्रवाह के समान, भगीरथ के रथ चक्र द्वारा बनाये, पथ=मार्ग पर चलने वाला (प्रवृत्तः) अर्थात् भगीरथ के रथ चक्र द्वारा बनाये गये मार्ग पर चलने वाले गंगा के प्रवाह के समान वह राजा भी भगीरथ द्वारा (प्रवर्तित सदाचार) मार्ग पर चलने वाला था। रविरिव प्रतिदिवसोपजायमानोदयः=रविः, इव=सूर्य के समान, प्रतिदिवस=प्रतिदिन, उपजायमान उदयः=उदयगिरि से जिसका उद्गम होता था और जिसके धनादि की उन्नति होती

थी। उदय शब्द का अर्थ राजा के पक्ष में है—धनादि की उन्नति; और सूर्य पक्ष में अर्थ है, उदयाचल से उदय होना। उपजायमान का अर्थ है, उत्पन्न होना अर्थात् प्रतिदिन (उदयगिरि से) उदित होने वाले सूर्य की भाँति वह राजा भी प्रतिदिन धनादि की उन्नति करने वाला था। मेरुरिव सकलोपजीव्यमानपादच्छायः=मेरुः इव—सुमेरु पर्वत के समान, सकल उपजीव्यमान=सभी (देवताओं) द्वारा सेवन की जा रही, पादच्छायः=पहाड़ियों के आश्रय वाला (सभी देवता सुमेरु पर्वत की पहाड़ियों के धूप रहित स्थान में रहते हैं। राजा के पक्ष में इसका अर्थ है—सभी लोगों के द्वारा सेवन किये जा रहे चरणों (पाद) के आश्रय (छाया) वाला। अर्थात् सभी (देवताओं) द्वारा सेवन की जा रही पहाड़ियों के अनातप स्थान वाले सुमेरु पर्वत के समान वह राजा भी सभी लोगों के द्वारा सेवन किये जा रहे चरणों के आश्रय वाला था। दिग्गज इवानवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकरः=दिग्गज इव=दिग्गज या दिङ्नाग की तरह अनवरत प्रवृत्तदान=लगातार (अनवरत) प्रवहमान (प्रवृत्त) मदजल (दान) से, आर्द्रीकृतकरः=जिसका सूँड गीला हो गया था। राजा के पक्ष में इसका अर्थ है—लगातार (अनवरत) हुए (प्रवृत्त) (संकल्प जलसहित) दानों से जिसका हाथ गीला कर दिया गया था। आर्द्रीकृत=गीला किया गया मद जल के बहने से हाथी का सूँड (कर) तथा संकल्प जल सहित दान से राजा का हाथ (कर) भी गीला था। अर्थात् निरन्तर प्रवाहमान मद जल से गीली सूँड वाले दिग्गज के समान वह राजा निरन्तर हुए (संकल्प जलसहित) दानों गीले हाथ वाला था।

अनुवाद—(शूद्रक नाम का) राजा दूसरे इन्द्र के समान था। (क्योंकि उसकी आज्ञा को सभी राजा आदरपूर्वक (सिरों द्वारा) मानते थे। (जो कि) (भूमण्डल के चारों ओर स्थित) चारों समुद्रों की पंक्ति रूपी मेखला (करधनी) वाली पृथ्वी का स्वामी (था) (और जो) (अपने कोशदण्डज) तेज और प्रेम से सभी सामन्त राजाओं के समूह को झुका देने वाला अर्थात् उन्हें वशीभूत कर लेने वाला (था) और सार्वभौम राजा के लक्षणों से युक्त था। (तथा वह) चक्रधारी विष्णु भगवान् के समान था। जैसे विष्णु के करकमलों में (आयुधरूप में प्रत्यक्षतः) शङ्ख और चक्र दिखलाई पड़ते हैं उसी प्रकार वह राजा अपने कर कमलों में (सामुद्रिक शास्त्रोक्त) शंक चक्र (की हस्तरेखाओं के) चिन्हों वाला था। वह भगवान् शंकर के समान था—जैसे भगवान् शंकर ने कामदेव को जीत लिया था (अपने तृतीय नेत्र से भस्म कर दिया था) उसी प्रकार राजा ने सभी कामवासनाओं को जीत लिया था (संयम से कामवासनाओं को भस्म कर दिया था)। अकुण्ठित शक्ति नामक अस्त्र विशेष वाले स्वामिकार्तिकेय के समान वह भी अनिरुद्ध बल वाला था। राजहंस नामक पक्षि समूह को (अपना) वाहन बना लेने वाले ब्रह्मा के समान जो राजा श्रेष्ठ राज समूह को (अपने प्रबल प्रताप से) मानरहित कर देने वाला (था)। देवी लक्ष्मी के उत्पत्ति स्थान समुद्र की भाँति जो राजा (अपनी ऐश्वर्य-शालिता एवं शोभाशालिता के कारण) धनादि सम्पत्ति का उत्पत्ति स्थान था। भगीरथ (के रथ चक्रों से निर्मित) मार्ग पर बहने वाले गंगा के प्रवाह के समान जो राजा भगीरथ द्वारा प्रवर्तित (तपः साधना एवं सदाचार के) मार्ग पर चलने वाला था। प्रतिदिन (उदयगिरि से) उदय प्राप्त करने वाले सूर्य की भाँति जो राजा प्रतिदिन (धनादि की) उन्नति करने वाला (था) सभी (देवताओं) द्वारा सेवन की जा रही पहाड़ियों से अनातप प्रदेश वाले सुमेरु पर्वत के समान वह राजा, सभी लोगों द्वारा

सेवन किये जा रहे चरणों के आश्रय वाला (था) निरन्तर प्रवहमान मद जल से गीले सूड़ वाले दिग्गज के समान (जो राजा) निरन्तर दिये गये (संकल्प जल सहित धनादि के) दानों से गीले हाथ वाला था ।

**संस्कृत व्याख्या**—आसीदिति क्रियापदस्य 'राजा शूद्रको नाम' इति वाक्यान्तस्थकर्तृपदेनान्वयो वोध्यः । **अशेष-नरपति-शिरः समभ्यर्चितशासनः** = न शेषा अशेषाः सकलाः ये नरपतयः भूपतयः तेषां शिरोभिः मस्तकैः समभ्यर्चितम् पूजितम सादरं स्वीकृतमित्यर्थः शासनम् आदेशः यस्य सः—समस्तनृपतिमस्तकस्वीकृतादेशः, (अतएव) अपरः अन्यः पाकशासनः इन्द्र इव = यथा । **चतुरुदधिमालामेखलाया भुवः कर्ता** = चत्वरः ये उदधयः समुद्राः तेषां माला पंक्तिः एव मेखला अवधिः अन्यत्र काञ्ची यस्या स्तस्याः भुवः पृथिव्याः भर्त्ता पतिः स्वामीत्यर्थः—भूमण्डल चतुर्दिक्षु वर्तमानचतुःसंख्याकसमुद्रश्रेणिमेखलायाः पृथिव्याः पालकः **प्रतापानुरागावनतसमस्तसामन्तचक्रः** = प्रतापः कोशदण्डजं तेज अनुरागः प्रेम ताभ्याम् अवनतम् स्वायत्तीकृतं समस्तं सकलम् सामन्तानाम् स्वाधीन नृपतीनां चक्रम् समूहः येन सः—कोशदण्डजप्रतापेन प्रेम्णा च स्ववशीकृतसकलसामन्तराजसमूहः, **चक्रवर्तिलक्षणोपेतः** = चक्रवर्तिनः सार्वभौमस्य राज्ञः यानि लक्षणानि सामुद्रिकशास्त्रोक्तानि चिह्नानि तैः उपेतः समन्वितःसार्वभौमलक्षणसमन्वितः । चक्रधरः = विष्णुः इव, **करकमलोपलक्ष्यमाणशंखचक्रलांछनः** = करकमलयोः हस्तपद्मतलयोः उपलक्ष्यमाणं समवलोक्यमान शङ्खचक्रयोः शंङ्खचक्राकारयोः लाञ्छनं सामुद्रिकशास्त्रोक्तं चिह्नं—शंखचक्राकारहतरेखास्वरूपं चिह्नं यस्य सः—हस्तपद्मतलावलोक्यमान शंङ्खचक्राकारसामुद्रिकशास्त्रोक्तहस्तरेखालाञ्छनः, विष्णुपक्षे—करकमलयोः उपलक्ष्यमाणं शंङ्खचक्रायुधरूपं लाञ्छनं यस्य सः—प्रत्यक्षतः करकमलावलोक्यमान शंखचक्रायुधलाञ्छनः । **हर इव जितमन्मथः** = शिव इव— राजपक्षे—जितः वशीकृतः मन्मथः कामजन्यो मनोविकारः येन स, हर पक्षे—जितः पराजितः तृतीयनेत्राग्निना भस्मीकृतः कामदेवः येन सः = राजपक्षे—वशीकृतकाममनोविकारः हरपक्षे—भस्मीकृतकामदेवः । गुह इवाप्रतिहतशक्तिः = स्वामिकार्तिकेयइव, राजपक्षे—अप्रतिहता अनिरुद्धा शक्तिः वलं यस्य सः—अनिरुद्धसामर्थ्यः, गुह पक्षे —अप्रतिहता अविनिष्टा शक्तिः अस्तविशेषः यस्य सः—अविनष्टशक्तिः । **कमलयोनिः** = ब्रह्मा इव विमानीकृतराजहंसमण्डलः = राजपक्षे—विगतः पराजयेन विनष्टः मानः अहङ्कारः यस्य तत् विमानम् विमानीकृत राजहंसानां श्रेष्ठनृपतीनां मण्डलं गणः येन सः—नृपश्रेष्ठगणाहङ्कारविनाशकः कमलयोनिपक्षे—विमानीकृतं देवयानीकृतं (वाहनीकृतम्) राज दंसानाम् चञ्चुचरणैः लोहितानां पक्षिविशेषणां मण्डलं समूहः येन सः—देवयानीकृतराजहंससमूहः । **जलधिरिव** = समुद्र इव, **लक्ष्मीप्रसूतिः**—(राजपक्षे-(शोभाशालित्वात् राजलक्ष्म्या आश्रयत्वात् . नीतिचातुर्य्याच्चं) धनादिसम्पत्तिप्रभवस्थानम्, (लक्ष्म्याः राजलक्ष्म्याः प्रसूतिः उत्पत्तिस्थानम्) जलधिपक्षे—लक्ष्म्याः देव्याः विष्णुपत्न्याः शोभाय वा प्रसूतिः उत्पत्तिस्थानम् (समुद्रमन्थनात् लक्ष्मीप्रसूतिरिति प्रसिद्ध मेव) । **गङ्गाप्रवाह इव** = गङ्गाया भागीरथ्याः प्रवाह इव, **भगीरथपथप्रवृत्तः**—राज पक्षे—भगीरथस्य सूर्यवंशीयस्य भगीरथ नामकस्य प्रसिद्धराज्ञः यः पन्थाः सदाचारमार्गः तस्मिन् प्रवृत्त संलग्नः—भागीरथप्रदर्शितसदाचार मार्गानुयायी । गङ्गाप्रवाह पक्षे—(स्वपूर्वजोद्धाराय भगीरथस्य रथचक्रेण कृतः यः मार्गः तस्मिन् प्रवृत्तः—प्रसृतः——भागीरथरथचक्रकृत मार्गप्रसृतः । **रविरिव** = सूर्य इव, **प्रतिदिवसोपजायमानोदयः**—राजपक्षे—प्रतिदिवस

प्रतिदिनम् उपजायमानः समुत्पद्यमानः उदयः धनादीनामुन्नतिः यस्य सः—प्रतिदिन समुत्पद्यानधनाद्यैश्वर्योन्नतिः, रविपक्षे—प्रतिदिवसोपजायमानः उदयः उदयाचलादुद्गमः यस्य सः—प्रतिदिनजायमानोदयाचलोद्गमः। **मेरुरिव**=सुमेरु पर्वत इव, **सकलोपजीव्यमानपादच्छायः**=राज पक्षे—सकलैः समस्तैः जनैः उपजीव्यमानाः सेव्यमानाः पादयोः चरणयोः छाया आश्रयो यस्य सः—समस्तभूतलवासिजनसेव्यमानचरणाश्रयः। मेरु पक्षे—समस्तैः देवैः उपजीव्यमानाः सेव्यमानाः पादानां प्रत्यन्तपर्वतानाम् छायाः अनातपप्रदेशाः यस्य सः—समस्तदेवसेव्यमानप्रत्यन्तपर्वतानातपप्रदेशः **दिग्गज इव**-दिङ्नाग इव, **अनवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकरः**—राजपक्षे—अनवरतं निरन्तरं प्रवृत्तं जातम् यद् दानम् ब्राह्मणादिभ्यः संकल्पजलसहितं दानं तेन आर्द्रीकृतः क्लिन्नीकृतः करः हस्तः यस्य सः—निरन्तर दीयमानसंकल्पजलसहित दानार्द्रीकृतहस्तां। दिग्गजपक्षे—अनवरतं निरन्तरं प्रवृत्तं प्रवहमानं यद् दानं मदजलं तेन आर्द्रीकृतः क्लिन्नीकृतः करः शुण्डःयस्य सः—निरन्तरप्रवाहमानमदजलार्द्रीकृतशुण्डः।

**संस्कृत सरलार्थ**—(राजा शूद्रको नाम) आसीत्, इन्द्र योऽन्य इव सकलनृपतिमस्तकस्वीकृतादेशः, भूमण्डलचतुर्दिक्षु वर्तमानचतुःसंख्याकसमुद्रश्रेणिमेखलाया भुवो भर्त्ता, कोशदण्डजप्रतापेन प्रेम्णा च वशीकृतसकलसामन्तराजसमूहः, चक्रवर्तिराजलक्षणसमन्वितश्चासीत्। स च विष्णुरिवासीत् यथा विष्णु प्रत्यक्षतः स्वकरकमलावलोक्यमानशङ्खचक्रायुधलाञ्छनः अस्ति तथैव शूद्रकोऽपि स्वकरकमलोपलक्ष्यमाणशङ्खचक्राकारसामुद्रिकशास्त्रोक्तहस्तरेखालाञ्छन आसीत्। एवञ्च सः स्वतृतीयनेत्राग्निना भस्मीकृत कामदेवः शिव इव वशीकृतकामजन्यमनोविकार आसीत्। अकुण्ठित शक्तिरुपास्त्रविशेषः गुह इव स राजापि अनिरुद्धसामर्थ्य आसीत्। देवयानीकृत राजहंस समूह ब्रह्मा इव सोऽपि राजा नृपश्रेष्ठगणाहङ्कारविनाशक आसीत्। लक्ष्मीजनकः समुद्र इव सोऽपि धनादिसम्पत्ति प्रभवस्थान मासीत्। स्वपूर्वजोद्धाराय भागीरथरथ चक्रनिर्मितमार्गं प्रसृता गङ्गायाः प्रवाह इव सोऽपि राजा भागीरथप्रवर्तितसदाचारमार्गानुयायी, अथ च प्रतिदिवसोपजायमानोदयाचलोद्गमः रविरिव सोऽपि प्रतिदिन समुत्पद्यमानधनाद्यैश्वर्योन्नतिरासीत्। समस्तदेवसेव्यमानप्रत्यन्तपर्वतानातपप्रदेशः सुमेरुरिव सोऽपि राजा समस्तभूतलवासिजनसेव्यमानचरणाश्रय आसीत्। एवं निरन्तर प्रवाहमानमदजलार्द्रीकृतशुण्डः दिग्गज इव सोऽपि राजा निरन्तरदीयमानसंकल्पजलसहितदानार्द्रीकृतकर आसीत्।

**टिप्पणी**—**पाकशासनः**—पाकं पाकनामानं दैत्यं शासितवान् इति पाकशासनः इन्द्रः "विडौजा पाकशासन इत्यमरः **समभ्यर्चितशासनः**—सम्+अभि+अर्चधातोः क्त प्रत्ययः इडागमः शासनम्=आदेशः आज्ञा, राजा शूद्रक इन्द्र की ही तरह समस्त राजाओं का आज्ञापालक था आज्ञाकार नहीं। शासनपदों की आवृत्ति के कारण यहाँ यमकालंकार है। पाकशासन इव में उत्प्रेक्षालंकार है—मानो वह दूसरा इन्द्र ही था। **चतुरुदधीत्यादि**—इस पद में मेखला का अर्थ करधनी या काञ्ची भी होता है और इसके आगे भर्ता का अर्थ पति भी होता है—अतः कवि का तात्पर्य है कि वह राजा चारों ओर चार समुद्रों से घिरी हुई मानो चौलड़ी करधनी पहने हुई पृथ्वी रूपी नायिका का वह भरण-पोषण करने वाला पति (नायक) था। इस प्रकार यहाँ पृथ्वी और शूद्रक पर नायिका और नायक के व्यवहार का समारोहण होने से **समासोक्ति** अलंकार है। **प्रतापानुरागेत्यादिः**—कोश और दण्ड से उत्पन्न होने वाला राजा का तेज

प्रताप कहलाता है । अनुराग=प्रेम । राजा ने न केवल अपने प्रताप से ही अपितु प्रेम से भी सभी राजाओं को नम्रीभूत एवं वशीभूत कर दिया था। इस पद में चक्र॰ का अर्थ मण्डल या समूह है और चक्रम् का अर्थ लोह-चक्र भी होता है, यह लोहे चक्र भी अग्नि के प्र+ताप=प्रबल ताप से रक्त वर्ण का एवं अनवतहो जाता है, तपाया हुआ लोहा लाल वर्ण का एवं झुकने वाला हो जाता है। चक्रवर्तीत्यादि—सामुद्रिक शास्त्र में चक्रवर्ती राजा के कुछ चिन्ह्न बतलाये गये हैं। जैसे—"अतिरिक्तः करो यस्य ग्रथिताङ्गुलिको मृदुः चापाङ्कुशाङ्कितः सोऽपि चक्रवर्ती भवेद् ध्रुवम्"। शूद्रक में ये लक्षण थे अतः वह चक्रवती था। चक्रधर……लाञ्छनः राजा के हाथ में शङ्ख चक्र की रेखायें थीं और विष्णु आयुधरूप में शङ्ख चक्र धारण करते हैं अतः दोनों में साम्य था, अतः यहाँ पूर्णोपमालंकार तथा वृत्यानुप्रास भी है। हर इव…………मन्मथः—हरित पाप यः स हरः शिवः— शिव ने कामदेव को और राजा ने कामविकार को जीत लिया था अतएव दोनों समान थे—पूर्णोपमा ग्रह इवेत्यादि—पार्वतीपुत्र स्वामिकार्तिकेय के अस्त्र का नाम 'शक्ति' था जो सदा अप्रतिहत थी राजा का भी बल सदा अप्रतिहत रहता था। कमलयोनिरित्यादि—कमलं योनिः उत्पत्ति स्थानं यस्य सः—ब्रह्मा विष्णु भगवान् के नाभि कमल से उत्पन्न हुए थे और इनके वाहन राजहंस माने गये हैं इन हंसों के चञ्चुचरण अति लाल होते हैं—राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैरतिलोहिताः। राजपक्ष में—राजहंस का अर्थ है श्रेष्ठ राजा—राजानोहंसा इवेति राजहंसाः यह उपमितसमास है। विमान् का साधारण अर्थ देवयान या आकाश यान है। राजपक्ष में इसका अर्थ—विगतः पराजयेन विनष्ट मानः अहंकारः यस्य तत् विमानम्=मानरहित। अर्थात् राजा ने श्रेष्ठ राजाओं को भी पराजित कर गर्व रहित कर दिया था। गंगाप्रवाह…………प्रवृत्तः—कपिल द्वारा भस्मीकृत अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए भगीरथ तप के द्वारा गंगा को ले आये थे, उनके रथचक्रों द्वारा बनाये गये मार्ग पर ही गंगा प्रवाहित हुई हैं। राजा-भगीरथ द्वारा प्रवर्तित सदाचार मार्ग पर तत्पर था। रविरिवेत्यादि—इस पद में उदय। का अर्थ—राजपक्ष में तो धनादि की उन्नति है और रवि पक्ष में उदयाचल से उदय होना अर्थ है। मेरुरिवेत्यादि=यह प्रसिद्ध है कि सुमेरु पर्वत की पहाड़ियों के घूप रहित स्थानों में देवता आश्रय लेते हैं इसी प्रकार राजा के चरणों का आश्रय सभी भूतलवासी जन लेते थे— पादच्छायः=पाद का अर्थ सुमेरु के पक्ष में पहाड़ियाँ और छाया का अर्थ अनातप प्रदेश है—"छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः" तथा "पादाः प्रत्यन्तपर्वतः" कोश। राजा के पक्ष में इसका अर्थ है— चरणों का आश्रय दिग्गज इवेत्यादि—आठों दिशाओं के ये आठ दिग्गज माने गये हैं—"ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽजनः पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजः"। इस वाक्य में दान का अर्थ राजपक्ष में ब्राह्मणादि को संकल्प जल सहित दिया गया दान है, और कर का अर्थ हाथ है। दिग्गज पक्ष में दान का अर्थ मदजल है और कर का अर्थ सूड़ है। उक्त सभी वाक्यों में जहाँ इव का प्रयोग है, उपमा अलंकार है।

**कर्त्ता महाश्चर्याणाम्, आहर्त्ता क्रतूनाम्, आदर्शः सर्वशास्त्राणाम्, उत्पत्तिः कलानाम्, कुलभवनं गुणानाम्, आगमः काव्यामृतरसानाम्, उदयशैलो मित्रमण्डलस्य, उत्पातकेतुरहितजनस्य, प्रवर्त्तयिता गोष्ठीबन्धानाम् आश्रयो**

**रसिकानाम्,प्रत्यादेशो धनुष्मताम्,धौरेयःसाहसिकानाम्,अग्रणी विदग्धानाम्; वैनतेय इव विनतानन्दजनकः, वैन्य इव चापकोटिसमुत्सारितसकलारातिकुलाचलो राजा शूद्रकोनाम ।**

शब्दार्थ—**कर्ता महाश्चर्याणाम्**=अति प्रबल पशुओं को पराजित करने आदि विस्मयजनक कार्यों का करने वाला, **आहर्ता क्रतूनाम्**=यज्ञों का अनुष्ठान करने वाला, **आदर्श सर्वशास्त्राणाम्**=वेदादि समस्त वाङ्मय का दर्पण, अर्थात् जैसे दर्पण में सभी पदार्थ दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार उसमें सभी शास्त्रों की छाया प्रतिभासित होती थी। **उत्पत्ति कलानाम्**=नृत्य गीतादि ६४ कलाओं की उत्पत्ति स्थान था। **कुलभवनम् गुणानाम्**=दयादाक्षिण्य परोपकार आदि गुणों का (वंश परम्परागत आश्रय स्थान) **आगमः काव्यामृतरसानाम्**=दृश्य श्रव्यादि काव्यों के अमृत तुल्य शृङ्गारादि रसों का उद्गम स्थान, **उदयशैलो मित्रमण्डलस्य**=(वह (राजा) अपने मित्र समूह की उन्नति स्थान था, जैसे बिम्ब का (उदय स्थान) उदयाचल होता है (मित्र शब्द के दो अर्थ हैं—मित्र=१ सखा २ सूर्य, उदय=१ उन्नति २ उद्गम=निकलना)। **उत्पातकेतुः अहितजनस्य**=उत्पातकेतुः=विनाश सूचक धूमकेतुः अहितजनस्य=शत्रु जन का। (वह राजा अपने) शत्रुजनों के लिए विनाश सूचक धूमकेतु था। जैसे - धूमकेतु के उदय होने पर विनाश की सम्भावना रहती है उसी प्रकार वह राजा अपने शत्रुजनों के लिए विनाशकारी था। **प्रवर्त्तयिता गोष्ठीबन्धनाम्**=प्रवर्त्तयिता=प्रवर्तक—आयोजक, **गोष्ठीबन्धनाम्**=साहित्यिक गोष्ठियों या सभायोजनाओं का (वह (राजा) विविध साहित्यिक गोष्ठियों एवं सभायोजनाओं का आयोजक था। **आश्रयो रसिकानाम्**=आश्रयः=अवलम्बन स्थान—सहारा, **रसिकानाम्**—काव्य रस के मर्मज्ञ जनों का (वह राजा) काव्य रस मर्मज्ञ जनों का आश्रय या सहारा था। **प्रत्यादेशो धनुष्मताम्**=प्रत्यादेश प्रत्याख्यन करने वाला, धनुष्मताम्=धनुर्धारियों में सर्वश्रेष्ठ। **धौरेयः साहसिकानाम्**—धौरेयः=प्रमुख या अग्रणी, (वह) साहसिक जनों के बीच प्रमुख था। **अग्रणीः विदग्धानाम्**=सहृदय विद्वानों के बीच यह अग्रणी=प्रमुख था। **वैनतेय इव विनतानन्दजननः**=वैनतेयः=गरुड़, विनत=विनम्र जनों के, आनन्द जननः=आनन्द का जनक, गरुड़ पक्ष में—विनता नामक अपनी माता के हर्ष का जनक। अर्थात् अपनी माता विनता के लिए हर्ष कारक गरुड़ के समान (वह राजा) विनम्र जनों के आनन्द का जनक था। **वैन्य इव चापकोटिसमुत्सारितसकलारातिकुलाचलः**=वैन्यः=वेन राजा के पुत्र पृथु के समान, **चापकोटि**=धनुप के अग्रभाग से जिसने, कुल पर्वतों के समान सभी शत्रुओं का समुत्सारित=विनाश कर दिया था। पृथु के पक्ष में जिसने (पृथु ने) अपने धनुप के अग्रभाग से सकल शत्रु रूपी कुल पर्वतों को विनष्ट कर दिया था। अर्थात् अपने धनुप के अग्रभाग से सकल शत्रु रूपी महेन्द्रादि कुल पर्वतों को उखाड़ कर पृथ्वी समतल कर देने वाले राजा पृथु के समान (शूद्रक राजा भी) अपने धनुप के अग्रभाग से कुल पर्वतों जैसे सभी शत्रुओं का विनाश करने वाला था। **राजा शूद्रको नाम**=(ऐसा) शूद्रक नाम का राजा था।

अनुवाद—(अति प्रबल शत्रुओं को पराजित करने आदि) विस्मयजनक कार्यों का करने वाला, यज्ञों का अनुष्ठाता, वेदादि समस्त वाङ्मय का दर्पण, (दर्पण के

समान जिसमें सभी शास्त्र प्रतिबिम्बित होते थे) नृत्य गीतादि ६४ कलाओं का उत्पत्ति स्थान (सभी कलाओं की शिक्षा का प्रबन्धक होने के कारण इनका उत्पत्ति स्थान) दया दाक्षिण्यादि गुणों का (वंश परम्परागत आश्रय, दृश्य श्रव्यादि काव्यों के अमृत तुल्य शृंगारादि रसों का उद्गम स्थान, अपने मित्र समूह का उसी प्रकार उन्नति स्थान जिस प्रकार सूर्य बिम्ब का उदय स्थान उदयाचल होता है। अपने शत्रुजनों के लिए धूमकेतु जैसा विकाशकारी, साहित्यिक गोष्ठियों या सभा योजनाओं का आयोजक, काव्य रस मर्मज्ञ जनों का अवलम्बन, धनुर्धारियों का प्रत्यख्यान कर्ता, साहसिक जनों के बीच प्रमुख, सहृदय विद्वानों के बीच अग्रणी, विनता नामक अपनी माता के हर्षजनक गरुड़ के समान विनम्र जनों के आनन्द का जनक, अपने धनुष के अग्रभाग से शत्रुओं सदृश समस्त महेन्द्रादि कुल पर्वतों को उखाड़ देने वाले राजा पृथु के समान, धनुष के अग्रभाग अथवा करोड़ों धनुपों से कुल पर्वत सदृश दृढ़ मूल समस्त शत्रुओं को विनष्ट करने वाला शूद्रक नाम का राजा था।

**संस्कृत व्याख्या**—महाश्चर्याणाम् प्रबलशत्रुपराजयादिविस्मयकारिकार्याणाम्-**कर्ता**=कारकः, **क्रतूनाम्**=यज्ञानाम्, **आहर्ता**=अनुष्ठाता, **सर्वशास्त्राणाम्**=वेदादि समस्त शास्त्राणाम्, **आदर्शः**=दर्पणः (सर्वाण्यपि शास्त्राणि तस्मिन् दर्पण इव प्रतिबिम्बितान्यासन्)। **कलानाम्**=नृत्यगीतादिचतुष्षष्टिकलानाम्, **उत्पत्तिः**=शिक्षा-प्रबन्धात् तदुत्पत्तिस्थानम्, **गुणानाम्**=दया दक्षिण्यादि गुणानाम् **कुलभवनम्**=वंश-परम्परानुगताश्रयस्थनम्, **काव्यामृतरसानाम्**=काव्यानां दृश्यश्रव्यादिकाव्यानां ये अमृतरसाः अमृतवत्स्वादुशृंगारादिरसाः तेषाम्, **आगमः**=उद्गमस्थानम्, **मित्रमण्डलस्य**=मित्राणां सुहृदाम् मण्डलं समूहः तस्य—सुहृत्समूहस्य, **उदयशैलः**=उन्नतिस्थानम्, पक्षे—मित्रमण्डलस्य=सूर्यबिम्बस्य, **उदयशैलः**=उदयाचलः। **अहितजनस्य**=शत्रुजनस्य, **उत्पातकेतुः**=विनाश सूचकः धूमकेतुः (यथा धूमकेतोरुदये विनाशः सम्भाव्यते तथैव स राजा शत्रूणां कृते अनिष्टकरः (आसीत्) **गोष्ठीबन्धनाम्**=साहित्य सभायोजनानाम् **प्रवर्तयिता**=आयोजकः, **रसिकानाम्**=रसज्ञविदग्धानाम्, **आश्रयः**=अवलम्बनम् **धनुष्मताम्**=धनुर्धारिणाम्, **प्रत्यादेशः**=प्रत्याख्यानकारकः सर्वातिगो धनुर्धरः इत्यर्थः, **साहसिकानाम्**=साहसिकजनानां मध्ये, **धौरेयः**=अग्रेसरः, **विदग्धानाम्**=सहृदय-विदुषाम् मध्ये, **अग्रणीः**=अग्रगण्यः। **वैनतेयः**=गरुड़ः इव यथा विनतजनानन्दः—विनतेभ्यः विनम्रीभूतजनेभ्यः आनन्दस्य हर्षस्य जननः समुत्पादकः—विनतानन्दजननः-सम्पादकः गरुड़पक्षे विनतायाः स्वमातुः आनन्ददायकः। **वैन्यः** पथुराजः इव, **चापकोटिसमुत्सारितारातिकुलाचलः**=चापस्य धनुषः कोटिः अग्रभागस्तेन समुत्सारिताः विनाशंप्रापिताः अरातयः शत्रवः एव कुलाचलाः येन सः—धनुष्कोटिसमुत्पाटित शत्रु-कुलाचलः, (एवम्भूतः) शूद्रको नाम राजा आसीत्।

**संस्कृत सरलार्थ**—प्रबलशत्रुविजयादिविमस्मयकारिकार्यकर्ता, यज्ञानुष्ठाता सर्वशास्त्रादर्शः, कलोत्पत्तिस्थानम्, गुणानां वंशपरम्परागतश्रयः, काव्यामृतरसागमः, सूर्यबिम्बस्योदयगिरिरिव मित्रोन्नतिकारकः, शत्रुजनस्यानिष्टकरो धूमकेतुः साहित्यसभायोजकः रसिकाश्रमः, धनुर्धरश्रेष्ठः, साहसिकाग्रणीः, विदग्धजनाग्रेसरः, विनतायाःस्वमातुरानन्दजनको गरुड़ इव विनम्रजनानन्ददायकः, धनुष्कोटिविनाशित समस्त शत्रु

कुलाचलः पृथुराज इव चापाग्रभागविनाशित समस्तशत्रुकुलाचलः शूद्रको नाम राजा आसीत्।

**टिप्पणी—महाश्चर्याणाम्**=बड़े-बड़े आश्चर्यजनक कार्यों का। **आहर्ता**= आ+हृ=तृच्—अनुष्ठान करने वाला, **आदर्शः**=दर्पण (दर्पणे मुकुरादर्शौ, इत्यमरः) जैसे दर्पण में सभी पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं, उसी प्रकार राजा में सभी शास्त्र प्रतिबिम्बित होते थे, अर्थात् वह सभी शास्त्रों का ज्ञाता था। **उत्पत्तिः कलानाम्**= नृत्य गीत आदि ६४ कलाओं के प्रशिक्षण का प्रबन्धक होने के कारण वह कलाओं का उत्पत्ति स्थान था। **कुलभवनम्**=वंश परम्परागत आश्रय। **काव्यामृतरसानाम्**= काव्य के अमृत तुल्य जो शृंगारादि रस उनका, **आगमः**=जन्म-स्थान अर्थात् कवित्व प्रतिभा सम्पन्न (यहाँ एक ही व्यक्ति का अनेक विधि वर्णन होने से उल्लेखालंकार है। **उदयशैलो मित्रमण्डलस्य**=मित्र शब्द श्लिष्ट है, अतः यहाँ इसका अर्थ राजा के पक्ष में 'सुहृत्' और अन्य पक्ष में 'सूर्य' है। उदय शब्द के भी दो अर्थ हैं—राज पक्ष में उन्नति और सूर्य पक्ष में उदयाचल। अतएव यहाँ श्लिष्ट परम्परित रूपकालंकार है। **उत्पातकेतुः**=लोकोपद्रवसूचक पुच्छलतारा, **अहितजनः**=शत्रुजन। **गोष्ठीवन्धानाम्**=साहित्य गोष्ठियों या विद्वत्सभाओं का, **प्रवर्त्तयिता**=प्रवर्त्तक या आयोजक। **प्रत्यादेशः**=नीचा दिखाने वाल, प्रत्यादेशो निराकृतिरित्यमरः **धौरेयः**=धुरं वहति इत्यर्थे 'धुरोयड्ढकौ' धुर् शब्द से यत् प्रत्यय से धुर्यः और ढक् प्रत्यय से धौरेयः रूप बनते हैं। इसी अर्थ का वाचक धुरीणः शब्द भी है "धुर्वहे धुर्य धौरेय धुरीणाः" रथ आदि वाहन के अग्रभाग को धुर कहते हैं, इसीलिए रथवाहक अश्वादि को भी धौरेय कहा जाता है, इसी आशय से अग्रणीजन के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। **विदग्ध**=सहृदय विद्वान् क्योंकि उनका अज्ञान दग्ध हो जाता है। **वैनतेय**=विनतायाः अपत्यं पुमान्—गरुड़ की माता का नाम विनता था। विनता+ढक्=एय=वैनतेयः, गरुड़ अपनी माता के लिए आनन्दजनक थे और राजा विनत विनम्रजनों के लिए आनन्दजनक थे।" गरुत्मान् गरुडस्ताक्ष्यों वैनतेयः खगेश्वरः इत्यमरः। **वैन्यः**=राजा वेन के पुत्र, पृथु नामक राजा थे, इन्होंने अपने चाप के अग्रभाग से कुल पर्वतों को उखाड़कर भूमि को समतल बनाकर उसे उर्वरा बनाया था, ऐसी पौराणिक कथा है। कुल पर्वत सात माने गये हैं—"महेन्द्रो, मलयः, सह्यः, शुक्तिमानृक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारिपात्रश्च सप्तैते कुल पर्वताः। विष्णु पुराण में इनके पृथु द्वारा उत्सारण की कथा है। **अराति**=शत्रु, **समुत्सारितः**=सम्+उत्+सृ+णिच्+क्त। पृथु ने शत्रु सदृश कुल पर्वतों को और राजा ने कुल पर्वत सदृश दृढ़ता से स्थिर शत्रुओं को नष्ट कर दिया था।

**नाम्नैव यो निर्भिन्नारातिहृदयो विरचितनरसिंहरूपाडम्बरम्, एकविक्रमाक्रान्तसकलभुवनतलो विक्रमत्रयायासितभुवनत्रयं च जहासेव वासुदेवम्। अतिचिरकाललग्नमतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसंपर्ककलङ्कमिव क्षालयन्ती यस्य विमले कृपाणधाराजले चिरमुवास राजलक्ष्मीः।**

**शब्दार्थ—नाम्ना एव**=नाम मात्र से ही अर्थात् अपना नाम (सुनाने) मात्र से ही, **निर्भिन्नाराति हृदयः**=शत्रुओं के वक्षस्थल को विदीर्ण कर देने वाला, (तथा) **एकविक्रमाक्रान्तसकल भुवनतलः**=(अपने) अद्वितीय पराक्रम से समस्त भुवनों को

स्वाधीन कर लेने वाला, यः=जो राजा शूद्रक, विरचित नरसिंहरूपाडम्बरम्= (अपने शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को विदीर्ण करने के लिए) नृसिंह रूप के आडम्बर (दिखावे) को धारण करने वाले (तथा) विक्रमत्रयायासित भुवनत्रयम्= तीन पैरों या डगों से नाप कर) तीनों लोकों दो कष्ट पहुँचाने वाले, वासुदेवम्= विष्णु भगवान् का जहास इव=मानो उपहास करता था। अतिचिरकाललग्नमतिक्रान्तकुनृपतिसहस्र सम्पर्ककलङ्कम् इव=मानो अति प्राचीन काल से लगे हुए, भूत काल के हजारों दुष्ट राजाओं के संसर्ग रूप कलङ्क को, क्षालयन्ती=धोती हुई यस्य विमले कृपाणधाराजले=जिस (शूद्रक) के स्वच्छ खड्गधार रूपी जल में, चिरम् उवास राजलक्ष्मी=राजलक्ष्मी चिरकाल तक निवास करती रही थी।

अनुवाद—(अपने) नाम (सुनाने) मात्र से ही शत्रुओं के वक्षःस्थल को विदीर्ण कर देने वाला (तथा) अपने एकमात्र पराक्रम से समस्त भुवन तल को स्वाधीन कर लेने वाला जो (शूद्रक राजा) अपने शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को विदीर्ण करने के लिए) नृसिंह रूप का आडम्बर (दिखावा) धारण करने वाले (तथा) अपने तीन पैरों या डगों से (नापकर) तीनों लोकों को कष्ट पहुँचाने वाले भगवान् विष्णु का मानो उपहास करता था। मानो अति प्राचीन काल से लगे हुए, भूतकाल के हजारों दुष्ट राजाओं के संसर्ग रूपी कलङ्क को जिस राजा के स्वच्छ खड्गधार रूपी जल में धोती हुई राजलक्ष्मी चिरकाल तक निवास करती थीं।

भावार्थ—राजा शूद्रक मानो भगवान् विष्णु का उपहास करता था, क्योंकि इसके तो नाम मात्र से ही इसके शत्रुओं के भयवश हृदय विदीर्ण हो जाते थे। राजा को स्वयं कोई प्रयास ही नहीं करना पड़ता था, जबकि भगवान् विष्णु को अपने शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को विदीर्ण करने के लिए नृसिंह रूप का आडम्बर बनाना पड़ा था। उपहास की दूसरी बात यह भी थी कि राजा शूद्रक ने तो केवल अपने अद्वितीय पराक्रम से ही समस्त भुवनतल को स्वाधीन कर लिया था, जबकि भगवान् विष्णु को वामनावतार में अपने तीन डगों से नापकर केवल तीन भुवनों को संत्रस्त करना पड़ा था, किन्तु विष्णु केवल तीन ही भुवनों को आयासित कर पाये थे और वह भी तीन विक्रमों से (तीन पैरों से) इस राजा के पास राजलक्ष्मी चिरकाल तक मानो इसलिए निवास करती रही थी कि वह अपनी उस कलङ्क कालिमा को जो उसे चिरकाल तक दुष्ट राजाओं के संसर्ग में रहने से लग गई थी, उसे वह उस राजा के निर्मल खड्गधार रूपी जल में धोकर स्वच्छ किया करती थी। ठीक उसी प्रकार जैसे कोई व्यक्ति तब तक शान्त निश्चिन्त होकर आराम से नहीं बैठता, जब तक वह अपने ऊपर लगी कीचड़ को जल से धोकर साफ नहीं कर लेता।

संस्कृत व्याख्या—नाम्ना एव—'शूद्रक' इति नामश्रावणेनैव, निर्भिन्नरातिहृदयः=निर्भिन्नानि विदारितानि अरातीनां शत्रूणां हृदयानि येन सः= भयोत्पादनेन विदारितारिहृदयः, (एवम्) एकविक्रमाक्रान्तसकलभुवनतलः=एकेन अद्वितीयेन विक्रमेण पराक्रमेण आक्रान्तम् स्ववशीकृतम् सकलं समग्रं भुवनतलं येन सः—अद्वितीय पराक्रमाधीनीकृतसमस्तभुवनतलः, यः=शूद्रकः, विरचितनरसिंहरूपाडम्बरम्= विरचितः हिरण्यकशिपुवक्षोभेदनाय धृतः नरसिंहरूपस्य आडम्बरः

आरोपः येन सः तम्=धृत नृसिंहस्वरूपस्य आडम्बरम् (एवम्) विक्रमत्रयायासित भुवनत्रयम्=विक्रमः पादनिक्षेपः तस्यं त्रयं त्रितयं तेन आयासितम् कष्टं प्रापितं भुवनत्रयं लोकत्रयन् येन सः तम्—पादत्रयनिक्षेपखिन्नीकृतभुवनत्रयम्, वासुदेवम्=भगवन्तं विष्णुम्, जहासइव=हसति स्म इव । अतिचिरकाललग्नम्=अतिचिरकालात् अति प्राचीनसमयात् लग्नम् संसक्तम्, अतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसंपर्ककलङ्कम्=अतिक्रान्ताः व्यपगताः ये कुनृपतयः कुत्सिताः राजानः तेषां सहस्रं तस्य संपर्कात् संसर्गात् (लग्नः) यः कलङ्कः तम् व्यपगतकुत्सितनृपसंसर्गजातकलङ्कम्, इव (इति उत्प्रेक्षायाम्) क्षालयन्ती=मार्जयन्ती, राजलक्ष्मीः=राजश्रीः, यस्य—प्रतापिनः राज्ञः शूद्रकस्य, विमले=निर्मले, कृपाणधाराजले—खड्गधारारूपे दारिणि, चिरम्=चिरकालं यावत्, उवास=वास कृतवती ।

संस्कृत सरलार्थ—स्वनाम श्रावणेनैव भयोत्पादनेन विदारितारि हृदयः (एवम्) स्वाद्वितीयपराक्रमाधीनीकृतसमस्तलोकः यः शूद्रकः, हिरण्यकशिपुवक्षोभेदनाय धृतनृसिंहस्वरूपाडम्बरम् (एवम्) वामनावतारे पादत्रय—निक्षेपखिन्नीकृत भुवनत्रयम् विष्णु हसति स्मेव । यस्य प्रतापशालिनो नृपस्य निर्मले खड्गधाररूपे जले चिरकाललग्नं गतकुनृपसहस्रसंसर्गजातकलङ्कं प्रक्षालयन्तीव राजश्रीः चिरकालपर्यन्तं निवासमकरोत् ।

टिप्पणी – निर्भिन्नः=निर्+भिद्=क्त 'रदाभ्यामिति' धातोः दकारस्य प्रत्यय तकारस्य च नत्वे निभिन्नः=विदीर्ण किया । अरातिः=शत्रु "अमित्रारिपराराति प्रत्यर्थिपरिपन्थिनः" इत्यमरः । तात्पर्य यह कि राजा का नाम सुनने मात्र से ही भयवश शत्रुहृदय विदीर्ण हो जाते थे । नरसिंहरूप=कहीं नारसिंह भी पाठ है, वहाँ पर अण् प्रत्ययान्त रूप होने से नरसिंह सम्बन्धी रूप यह अर्थ होगा—दोनों पाठों में अर्थभेद नहीं है । विक्रम=राजपक्ष में पराक्रम, विष्णु पक्ष में—पादन्यास या डग रखना । आयासित=त्रस्त करना या दुःखी करना । जहास इव=हस् धातु लिट् प्र० पु० एकवचन । यहाँ उपमानभूत विष्णु से उपमेयभूत राजा का उत्कर्ष बताने के कारण व्यतिरेक अलंकार है तथा 'जहास' इव' में क्रियोत्प्रेक्षालंकार है । अतिक्रान्त इसका यहाँ अर्थ 'व्यतीत या गत' है । अति+क्रम्+क्त । कलङ्कं क्षालयन्तीव में उत्प्रेक्षालंकार है, 'कृपाणधारजले' में रूपकालंकार है । तात्पर्य यह कि राजा ने अपने खड्ग से समस्त राजाओं को जीतकर राजलक्ष्मी को अपने पास स्थिर कर लिया था ।

**यश्च मन सिधर्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता, प्रज्ञायां सुरगुरुणा, रूपे मनसिजेन, तेजसि सवित्रा च वसता सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य ।**

शब्दार्थ—मनसि=चित्त में, यमेन=यमराज (के रूप में) रहने के कारण, धनदेन=कुवेर, भुवा=पृथिवी के रूप में रहने के कारण । दृशि=दृष्टि में, वाचि=वाणी में, मरुता=वायु के रूप में, प्रज्ञायाम्=बुद्धि में, सवित्रा=सूर्य के रूप में, प्रकटितविश्वरूपाकृतेः=विश्वरूप आकार को प्रकट करने वाले ।

अनुवाद—और जो राजा शूद्रक, चित्त में धर्म, क्रोध में यमराज, अनुग्रह में

कुबेर, प्रताप में अग्नि, भुजा में पृथवी, दृष्टि में लक्ष्मी, वाणी में सरस्वती, मुख में चन्द्रमा, बल में, वायु, बुद्धि में वृहस्पति, सौन्दर्य में कामदेव और तेज में, सूर्य के (रूप में) रहने के कारण, सर्वदेवस्वरूप और विश्वरूप आकार को प्रकट करने वाले भगवान् विष्णु का अनुकरण करता था।

**भावार्थ**—प्रस्तुत गद्यखण्ड में सभी धर्मेण आदि तृतीयान्त पदों का अन्वय वसता पद के साथ है और इसमें कारण में तृतीया है अतः सर्वत्र इसका अर्थ "के रूप में रहने के कारण" किया जायेगा।

मन में धर्म के रूप में रहने के कारण, क्रोध में यमराज आदि के रूप में रहने के कारण जो राजा शूद्रक विश्वरूपाकार को प्रकट करने वाले एवं सर्वदेवमय विष्णु भगवान का अनुकरण करता था।

**संस्कृत व्याख्या**—**च** = किञ्च, **यः** = राजा शूद्रकः, **मनसि** = चित्ते, **धर्मेण वसता** = धर्मरूपेण निवास कुर्वता, (मनसि सदैव धर्मचिन्तनात्) **कोपे** = क्रोधे, **यमेन** = यमराजेन वसता (यमवदपराधिनां प्राणहरणात्) **प्रसादे** = अनुग्रहे प्रसन्नतायां वा, धनदेन वसता, धनं ददाति धनदः कुवेरस्तेन—(प्रसन्नतायां कुवेरवद्धनदानात्) **प्रतापे** = तेजसि, **वह्निना** = अग्निनावसता—(सकलशत्रु दाहकत्वात्) **भुजे** = वाहौ, **भुवा** = पृथिव्या (समधिकराज्यभारधारणसमर्थत्वात्) **दृशि** = लोचने, **श्रिया** = लक्ष्म्या (सानुरागावलोकनमात्रेण श्रियः समुत्पत्तेः) **वाचि** = वाण्याम्, **सरस्वत्या** (काव्यरचनानैपुण्यात्) **मुखे शशिना** = चन्द्रेण, (चन्द्रवत्प्रियदर्शनत्वात्) **बले** = शक्तौ, **मरुता** = वायुना, (वायुवत् शक्तिशालित्वात्। **प्रज्ञायाम्** = मतौ, **सुरगुरुणा** = देवगुरुणा वृहस्पतिना (अतिकुशाग्रवुद्धित्वात्) **रूपे**—सौन्दर्ये, **मनसिजेन** = कामदेवेन (अतिसुन्दरत्वात्) **तेजसि** = प्रतापे, सवित्रा च वसता = सूर्येण, (दुर्निरीक्ष्यत्वात्) **सर्वदेवमयस्य** = सर्वे च ते देवाः सर्वदेवाः तत्स्वरूपस्य सर्वदेवमयस्य, (तथा) **प्रकटितविश्वरूपा तेः** = प्रकटिता प्रकाशिता विश्वरूपा आकृतिः स्वरूपं येन तस्य—प्रकाशितविश्वरूपाकारस्य, **भगवतः** = ऐश्वर्यशालिनः, **नारायणस्य** = विष्णोः, **अनुकरोति** = विष्णुसादृश्यं प्राप्नोति।

**संस्कृत सरलार्थ**—किञ्च राजायं शूद्रकः सदैव स्वमनसि धर्मचिन्तनाद् धर्मस्वरूपेण, क्रोधकालेऽपराधिप्राणहरणाद् यमराजरूपेण, अनुग्रहकाले प्रचुरधनदानात् कुवेररूपेण, तेजसि सद्यो दाहकत्वा दग्निरूपेण, भुजेऽतिभारधारणक्षमत्वात् धरिणीरूपेण-लोचने सानुग्रहावलोकनमात्रेण श्रियाः समुत्पादनात् लक्ष्मीरूपेण, काव्यरचना चातुर्याद् वाण्यां सरस्वतीरूपेण, प्रियदर्शनत्वात् स्वमुखे चन्द्ररूपेण, बलशालित्वात्पराक्रमे वायुरूपेण, कुशाग्र बुद्धित्वान्मतौ सुरगुरु रूपेण, अति सौन्दर्यशालित्वाद्रूपे कामदेवरूपेण, दुर्निरोक्ष्यत्वात्प्रतापे सूर्यरूपेण सर्वदेवस्वरुपस्य भगवतो विष्णोः सादृश्यमवाप्नोति स्म।

**टिप्पणी**—प्रस्तुत गद्यखण्ड में राजा को विष्णु के सदृश बतलाया गया है, विष्णु में सभी देवो का स्वरूप है और गीता में उनके विश्वरूप का वर्णन भी है, राज के पुण्यात्मा, कवि प्रतिभा सम्पन्न, निग्रहानुग्रह समर्थ, सुन्दर, तेजस्वी एवं श्रीमान् होने के कारण उसमें सभी देवों के वास की कल्पना की गई है, अतः सर्वदेवमय होने के कारण उसे विष्णु सदृश कल्पित किया गया है। **धनद**—धनंददातीत्यर्थे धनम् + दा + कः = धनदः, **सुरगुरुणा** = सुराणां गुरुः वृहस्पतिः तेन। **मनसिजेन** = मनसि जातः—इत्यर्थेमनस् ङि + जन् + ड, विभक्ति का वैकल्पिक लोप होने से मनसिजः और मनोजः

दोनों रूप होतें हैं । अनुकरोति—यहाँ भूतार्थ में लट् का प्रयोग है । नारायणस्य—नृणां समूह इत्यर्थे अण् प्रत्यये नारम् जीवसमूहः तस्य अयनं गतिः इतिः नारायणः तस्य, यहाँ अनुकरोति के योग में 'कृङः प्रतियत्ने सूत्र से कर्मणि षष्ठी है और सर्वत्र आर्थी उपमा है ।

**यस्य च मदकलकरिकुम्भपीठपाटनमाचरता लग्नस्थूलमुक्ताफलेन दृढमुष्टिनिष्पीडननिष्ठ्यूतधाराजलबिन्दुदन्तुरेणेव कृपाणेनाकृष्यमाणा, सुभटोरःकपाटविघटितकवचसहस्रान्धकारमध्यवर्तिनो करिकरटगलितमदजलासारदुर्दिनास्वभिसारिकेव समरनिशासु समीपमसकृदाजगाम राजलक्ष्मीः।**

शब्दार्थ—**यस्य च** = और जिस राजा शूद्रक के, **मदकलकरिकुम्भपीठपाटनमाचरता** = मद जल से सुन्दर हाथियों के गण्डस्थल (सिर पिण्ड) पीठ या फलकों को विदीर्ण करने वाले, **लग्नस्थूलमुक्ताफलेन**—(अतएव) संसक्त विपुल गजमुक्ताओं वाले, (तथा) **दृढ़मुष्टिनिष्पीडननिष्ठ्यूतधाराजलबिन्दुदन्तुरेण इव** = (युद्धकाल में) सुदृढ़ मुट्ठी से दबाने के कारण मानो निकले हुए (खड्ग) धाररूपी जलकणों से ऊँची नीची प्रतीत होने वाले (धार का अर्थ हैं तलवार का पैना अग्रभाग) (दन्तुर का अर्थ बड़े-बड़े दाँतों वाले' भी हो सकता है पर यहाँ तलवार के दांत नहीं होते अतः तीक्ष्ण अग्रभाग की चमक के कारण ऊँचे-नीचे प्रतीत होने वाले ही अर्थ अधिक ठीक है, **कृपाणेन** = तलवार से, **आकृष्यमाणा** = खींची जाती हुई, **सुभटोरःकपाटविघटित कवचसहस्रान्धकारमध्यवर्तिनी** = प्रशस्त योद्धाओं के वक्षःस्थल रूपी किवाड़ों से तोड़े गये हजारों कवच रूपी अन्धकार के बीच रहने वाली । **सुभट** = बड़े-बड़े योद्धा, **उर** = वक्षःस्थल, **कपाट** = किवाड़, **विघटित** = तोड़े गये, लौह कवचों के कृष्ण वर्ण सादृश्य से यहाँ कवच रूपी अन्धकार कहा गया है । यह शत्रुराज लक्ष्मी का विशेषण हैं । **कटिकरटगलितमदजलासारदुर्दिनासु** = हाथियों के कपोल स्थलों से बहे हुए मद जल की तीव्र धाराओं से हुए मेघाछन्नदुर्दिनों वाली (यह समरनिशासु का विशेषण है) । (**कटि करट** = हाथियों के कपोल स्थल, **गलित** = बहे, हुए, **आसार** = धाराओं में जल वर्षा, **दुर्दिन** = वह दिन जो कि मेघों से आच्छादित होने के कारण अन्धकारयुक्त हो) **समरनिशासु** = संग्राम रूपी रात्रियों में, **अभिसारिका इव** = संकेत स्थल पद नायक के पास रात्रि में स्वयं उपस्थित होने वाली नायिका की तरह । **असकृत्** = बार-बार, **आजगाम** = आई थी । तात्पर्य यह कि जैसे कोई नायिका संकेत स्थल पर संकेत पाकर स्वयं बार-बार उपस्थित होती है उसी प्रकार शत्रुराज लक्ष्मी शूद्रक के पास संग्राम-रूपी रात्रियों में स्वयं बार बार आई थी अर्थात् संग्रामों मे अपने शत्रुओं को बार-बार जीत कर शूद्रक ने उनकी राजश्री को स्वाधीन कर लिया था ।

**अनुवाद**—और जिस राजा शूद्रक के समीप, मदजल से सुन्दर हाथियों के कुम्भ स्थल पिण्डों को विदीर्ण करने वाली (अतएव) लगे हुए अनेक गजमुक्ताओं वाली (तथा युद्धकाल में) सुदृढ़ मुट्ठी से दबाने के कारण मानो निकले हुए खड्गधार रूपी जल बिन्दुओं से ऊँची-नीची प्रतीत होने वाली तलवार से मानो खींची जाती हुई (और) प्रशस्त योद्धाओं के वक्षःस्थल रूपी किवाड़ों से तोड़े गये हजारों कवच रूपी अन्धकार के बीच रहने वाली, (शत्रुओं की) राजलक्ष्मी, हाथियों के कपोलस्थलों से बहे हुए मरद

जल की धारा संपात वर्षा से हुए मेघाच्छन्न दुर्दिनों वाली संग्राम रूपी रात्रियों में, अभिसारिका की भाँति (स्वयं) बार-बार आई थी।

भावार्थ—जिस राजा शूद्रक के पास शत्रुओं की राजलक्ष्मी अभिसारिका की तरह स्वयं बार-बार आ जाती थी अर्थात् वह शत्रुओं को बार-बार पराजित कर उनकी राजश्री को स्ववशवर्तिनी बना लिया करता था। कवि की उत्प्रेक्षा है कि मानो वह शत्रु राजश्री उसकी उस तलवार से खींच ली जाती थी जो मदस्रावी गजों के कुम्भस्थल को विदीर्ण करने वाली अतएव गजमुक्ताओं से शोभित तथा युद्ध काल में सुदृढ़ मुट्ठी से दबाने के कारण विनिःसृत खड्गधार रूपी जल बिन्दुओं से दन्तुर थी। यहाँ कवि ने शत्रु राजलक्ष्मी को अभिसारिका के समान बतलाया है, जैसे अभिसारिका रात्रि में उपनायक के पास जाती है उसी प्रकार राजलक्ष्मी भी संग्राम रूपी उन रात्रियों में शूद्रक के पास जाती थी जो हस्ति कपोलों से गलित मद जलासारदुर्दिनों वाली थीं।

संस्कृत व्याख्या—यस्य च=किञ्च यस्य राज्ञः शूद्रकस्य समीपम् मदकलकरिकुम्भपीठपाटनम् आचरता=मदेन मदजलेन कलानि सुन्दराणि यानि करिणाम् गजानां कुम्भपीठानि मस्तकपिण्डानि तेषां पाटनम् विदारणम् आचरता कुर्वता-मदजल शोभितगजमस्तकपिण्डविदारणम् कुर्वता, (अतएव) लग्नस्थूलमुक्ताफलेन—लग्नानि संसक्तानि स्थूलानि मुक्ताफलानि गजमौक्तिकानि यस्मिन् तेन—संसक्तस्थूलगजमौक्तिकेन, (तथा) दृढ़मुष्टिनिष्पीडननिष्ठ्यूतधारा जलबिन्दु दन्तुरेण=दृढ़मुष्टिना यन्निष्पीडनम् युद्धकाले सुदृढ़मुष्टिबन्धेन खड्गग्रहणम् तेन निष्ठ्यूताः निर्गताः धारा जलबिन्दवः खड्ग धाररूपिणः जलकणाः दन्तुरेण-विषमेण उच्चावचेन—युद्धकाले सुदृढ़मुष्टिबंधेन खड्गग्रहणेन निर्गत खड्गधार रूपिजल कणविषमेण, कृपाणेन=खड्गेन, आकृष्यमाणा =समन्तादाकृष्य गृह्यमाणा इव (एवम्) सुभटोरःकपाटविघटितकवचसहस्रान्धकार मध्यवर्तिनी=सुभटाः प्रशस्ययोद्धारः तेषाम् उरांसि वक्षांसि एवं कपाटानि तेभ्यः विघटितानि भग्नानि यानि कवचसहस्राणि सहस्रसंख्याकानि लौहकवचानि तानि एवं (कृष्णवर्ण सादृश्यात्) अन्धकाराः तमांसि तेषां मध्यवर्तिनी अन्तर्वर्तिनी—प्रशस्त सैनिकवक्षः कपाटभग्नकवचसहस्रतमोऽन्तर्वर्तिनी, राजलक्ष्मी=शत्रुराजश्रीः करिकरटगलितमदजलासारदुर्दिनासु=करिणाम् गजानाम् करटानि कपोलस्थालानि तेभ्यः गलित विनिर्गतम् यत् मदजलम् गजदानवारि तस्य यः आसारः धारासम्पातः तेन दुर्दिनम् मेघाच्छादनजन्यं तमः यासु तासु—करिकपोलनिर्गतमदजलासारदुर्दिनासु, समरनिशासु=समराः संग्रामा एवं निशाः रात्रयः तासु—संग्रामरात्रिषु, अभिसारिका इव=रात्रौ दत्तसंकेता कामार्थिनी नायिकेव, असकृत्=मुहुर्मुहुः, आजगाम=आगतवती।

संस्कृत सरलार्थ—अति प्रतापशालिना राज्ञा तेन मुहुर्मुहुः स्वशत्रून् विजित्य तल्लक्ष्मीरात्मवशीकृता। एतदर्थं कविरत्रोत्प्रेक्षते, यद् तद्राजश्रीस्तस्य तेन खड्गेन समन्तादाकृष्य गृह्यमाणेवासीत्, यो मदजलशोभितगजकुम्भभेदनक्षमः अतएव संसक्तगजमौक्तिकः अथ च युद्धस्थले सुदृढ़मुष्टिबन्धग्रहणात् निर्गत-खड्गधाराजलकणदन्तुर आसीत्। शत्रुराजश्रीश्च तथैव स्वयमेवासकृदुपागतवती तासु समररात्रिषु राजानं यथा रात्रौ दत्तसंकेता कामार्थिनी काचिदभिसारिका स्वमेवोपनायकमुपागच्छति। समररात्रयश्च ताः करिकपोलनिर्गत मदजलधारा संपातदुर्दिना आसन्।

टिप्पणी—प्रस्तुत गद्य खण्ड के "मदकल········माचरता, लग्न········फलेन, तथा "दृढ़मुष्टि········दन्तुरेण, ये तीनों समासान्त पद कृपाणेन के विशेषण हैं, "आकृष्यमाणा और सुभटोर..········मद्यवर्तिनी" ये दोनों पद राजलक्ष्मी के विशेषण है, तथा "कटिकरट········ दुर्दिनासु" पद 'समरनिशासु का विशेषण है। 'दन्तुर' का अर्थ है—ऊँचे नीचे अर्थात् विषम और बड़े-बड़े दाँत भी, "दन्तुर-स्तून्नतरदे तथोन्नतनते त्रिषु" कोश, प्रस्तुत प्रकरण में नतोन्नत या विषम अर्थ ही उपयुक्त है। 'करट' का अर्थ है—गजगण्डस्थल "करटो गजगण्डे स्यात्', कोश आसारः=धाराओं में होने वाली वर्षा' धारासंपात आसारः इत्यमरः, दुर्दिनम्=मेघाच्छन्नेऽहि अन्धकार वाला दिन, दुर्दिन कहा जाता है। "मेघाच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनवा इत्यमर" अभिसारिका का लक्षणः—"हित्वा लज्जां समाकृष्टा मदेन मदनेन वा अभिसारयते कान्तं सा भवेदभिसारिका" अथवा "अभिसारयते कान्त या मन्मथवंशगता, स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका" अथवा "कान्तार्थिनी तु या. याति संकेतं साभिसारिका" इत्यमरः। 'अभिसारकेव' में उपमा, आकृष्यमाणेव में उत्प्रेक्षा, "उरः कपाट" में और कवचसहस्रान्धकार" में रूपक अलकार है। 'आचरता के स्थान पर विदधता भी पाठ है, अर्थ में अन्तर नहीं है। करिकुम्भ=गजों में मस्तकपर स्थित दो मासपिण्ड करिकुम्भ कहे जाते हैं। पाटनम्—पाट्+णिच्+ल्युट्। लग्नमुक्ताफलेन=मुक्ताफल अर्थात् गजमुक्ता जो गजकुम्भ फाड़ने पर प्राप्त होता है, राजा की तलवार में ये गजमोती लग गये थे। अतएव वह सुन्तुर ऊँचे दाँतों वाली लग रही थी। कुछ टीकाकारों की ऐसी मान्यता है; पर चमक से विषम जान पड़ना अधिक उपयुक्त है। निष्पीडित=अर्थात् निचोड़ना निचोड़ना दबाकर ही होता है—निस्+पीड्धातु+ल्युट्। निष्ठ्यूत—ष्टिव् धातु से क्त और ऊठ् हुआ है। दन्तुर= में दन्त से उरच् प्रत्यय है। आकृष्यमाणा—आ+कृष् कर्मणि शानच् टाप्। समरनिशासु—यहाँ भी रूपकालंकार हैं। वर्तिनी वृत+णिनि+ङीप्। आचरता—आ+चर्+शतृ तृतीयैक वचन। धारा-जलविन्दवः—धारा का अर्थ कृपाधारा या धार है। तद्रूपी जलविन्दु। जैसे मदस्रावी गजों के कपोलों से मदजल धीरे-धीरे टपकता रहता है। इसी प्रकार मेघाच्छन्न दिन में मेघों से बूँदें गिरती रहती हैं। समररात्रियाँ भी युद्ध के मेघों से आच्छादित होने से दुर्दिन जैसी हो थी। 'असकृत्' के स्थान पर कहीं सकृत् भी पाठ मिलता है पर असकृत् पाठ ही अधिक उपयुक्त है। राजा ने जब-जब शत्रुओं को परास्त किया तब-तब उनकी राजश्री राजा को प्राप्त हुई थी, केवल एक ही बार उसने युद्ध नहीं किया था।

**यस्य च हृदयस्थितानपि भर्तृन् दिधक्षुरिव प्रतापानलो वियोगिनीनामपि रिपुसुन्दरीणामन्तर्जनितदाहो दिवानिशं जज्वाल।**

शब्दार्थ—वियोगिनीनाम् अपि=(शूद्रक के साथ संग्राम में अपने पतियों के मर जाने के कारण) पतिवियुक्ता भी, रिपुसुन्दरीणाम्—शत्रुओं की सुन्दरियों के, हृदय स्थितान् अपि भर्तृन्=(स्मृतिमात्र से) हृदय में वर्तमान भी पतियों को दिधक्षुः इव=जलाने का इच्छुक जैसा, यस्य=जिस राजा शूद्रक का अन्तर्जनित-दाहः=हृदय में जलन उत्पन्न करने वाला, प्रतापानला—कोशदण्डज रूपी अग्नि, दिवानिशम्=रातदिन, जज्वाल=जलती रहती थी।

**अनुवाद**—और पतिविहीना भी (क्योंकि उनके पति, शूद्रक राजा के साथ युद्ध करते हुए मारे गये थे) शत्रुओं की सुन्दरियों के हृदय में (केवल स्मृति मात्र से ही) वर्तमान पतियों को जलाने का इच्छुक-सा, जिस राजा शूद्रक का हृदय में जलन उत्पन्न करने वाला प्रताप रूपी अनल रात दिन जलता रहता था।

**भावार्थ**—राजा का अतिप्रबल एवं अग्नि के समान दाहक, प्रताप चारों ओर फैला हुआ था जिससे सभी लोग भयभीत रहते थे। शत्रुओं की पति-वियुक्ता स्त्रियाँ तो इतनी भयभीत थीं कि उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि उनके हृदय में जो उनके पतियों की स्मृति शेष रह गई है उसे भी यह प्रतापनल कहीं जला न दे। इससे राजा का प्रतापातिशय द्योतित किया गया है।

**संस्कृत व्याख्या**—वियोगिनीनाम् = (शूद्रकेण सह युद्धे तासां स्वामिनां पूर्वमेव मरणात्) पतिवियुक्तानाम् अपि **रिपुसुन्दरीणाम्** = शत्रुवनितानाम्, **हृदयस्थितान्** = अन्तर्मनसि वर्तमानान् अपि, स्मृतिमात्रशेषानितिभावः, **भर्तॄन्** = पतीन्, **दिधक्षुः** = दग्धुम् इच्छुः इव, **यस्य** = राज्ञः शूद्रकस्य, **अन्तर्जनितदाहः** = अन्तर् मनसि जनित उत्पादितः दाहः ज्वलनं येन सः—हृदयोत्पादितज्वलनः, **प्रतापानलः** = प्रतापः कोश-दण्डजं तेजः एव अनलः अग्नि = प्रतापवह्निः, **दिवानिशम्** रात्रिन्दिवम् **जज्वाल** = प्रदीप्ती बभूव।

**संस्कृत सरलार्थ**—राज्ञः शूद्रकस्याग्निवद्दाहकोऽतिप्रबलः प्रतापः [illegible] प्रसृत आसीत्, येन तस्यारयो भयभीता आसन् पतिवियुक्ताभिरपि शत्रुवनिताभिरन्तर्दाहोत्पादकस्तद्राजप्रतापानलः स्वमनसि स्मृतिमात्रशेषानपि स्वामिनो दग्धुमिच्छु रिवा[illegible]यत।

**टिप्पणी**—अपने सभी शत्रुओं को संग्राम में निहत कर देने पर राजा शूद्रक का प्रतापानल अब मानो इसलिए और अधिक दीप्त हो रहा था कि वह अब शत्रुस्त्रियों के स्मृतिमात्रशेष भी पतियों को जला देना चाहता था। **दिधक्षुः**—दग्धुमिच्छति दिधक्षति-सन्नन्ताद् दह् धातोर्लट्, दिधक्षतीति दिधक्षुः—सन्नन्तात् दह् धातोः 'सनाशंसभिक्ष उः' इति उ प्रत्ययः—दग्धुमिच्छुरित्यर्थः। दिधक्षुरिवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारः। **अन्तर्जनितदाहः** = अन्तर् अर्थात् हृदय दाह (जलन) उत्पन्न करने वाला, दाहः—दह धातोः घञ् प्रत्ययः ञित्वाद्वृद्धिः। प्रतापानलः = प्रताप एक अनलः यहाँ रूपक अलङ्कार है **जज्वाल** = ज्वल् धातोर्लिटि प्रथम पुरुषैक वचने।

**यस्मिंश्च राजनि जितजगति परिपालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसङ्करा, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धा शास्त्रेषु चिन्ता, स्वप्नेषु विप्रलम्भा, छत्रेषु कनकदण्डा, ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु रागवि[illegible]तानि, करिषु मदविकारा, चापेषु गुणच्छेदाः, गवाक्षेषु जालमार्गाः, शशि, कृपाणकवचेषु कलङ्काः, रतिकलहेषु दूतसम्प्रेषणानि, सार्यक्षेषु शून्य[illegible] न प्रजानामासन्।**

**शब्दार्थ**—प्रस्तुत गद्यखण्ड के सभी प्रथमान्त पद द्वयर्थक हैं, इनके [illegible] अर्थ का अन्वय तो इसी गद्य खण्ड के सप्तम्यन्त पदों के साथ है और दूसरे अर्थ का सम्बन्ध, जो कि कोष्ठक में लिखा गया है; प्रजानाम्-प्रजाओं के साथ है। **जितजगति** संसार को जीत लेने वाले, **महीं पालयति** = पृथ्वी का पालन करते होने पर,

**चित्रकर्मसु**=चित्र रचनाओं में, **वर्णसंकराः**=लाल, नीले, पीले आदि रंगों के मिश्रण (प्रजानां वर्णसंकरा न, **आसन्**=प्रजाजनों में ब्राह्मण आदि वर्णों में विवाहादि सम्बन्धों से मिश्रण नहीं थे)। **रतेषु**=सुरत क्रीडाओं में, **केशग्रहाः**=(सुविधा के लिए केश पकड़े जाते थे), (प्रजाजनों में कलह आदि के कारण एक दूसरे के बाल नहीं खींचे जाते थे।) **काव्येषु**=काव्यों में, **दृढबन्धाः**=समासाधिक्य के कारण पदों का प्रगाढ़ सन्निवेश, अथवा मुरज आदि कठिन बन्धनों वाली रचनायें (कारागार आदि में दृढ़तापूर्वक बन्धन) **शास्त्रेषु**=वेदादि शास्त्रों के सिद्धान्तों पर, **चिन्ता**=चिन्तन मनन आदि (अन्न वस्त्रादि की चिन्ता), **स्वप्नेषु**=स्वप्नों में, **विप्रलम्भाः**=वञ्चनायें (वियोग) **छत्रेषु**=छातों में, **कनकदण्डाः**=सोने के डंडे (दण्ड रूप में सोना लेना), **ध्वजेषु**=झण्डों में, **प्रकम्पाः**=अधिक कम्पन हिलना, (भयवश काँपना), **गीतेषु**=गीतों में, **रागविलसितानि**=राग-रागनियों के प्रयोग (राग-द्वेषादि की चेष्टायें), **करिषु**=गजों में, **मदविकाराः**=मद जन्य विकृतियाँ (अहंकार जन्य चेष्टायें), **चापेषु**=धनुषों में, **गुणच्छेदाः**=गुण, प्रत्यञ्चा या डोरी, **छेदाः**=काटना, डोरी काटना, (दया उदारतादि गुणों का खण्डन), **गवाक्षेषु**=वातायनों, झरोखों में, **जालमार्गाः**=जालियों के मार्ग या छिद्र, (कपट छल के मार्ग), **शशिकृपाणकवचेषु**=चन्द्र कृपाण और कवचों में, **कलङ्काः**=मालिन्य जंग आदि, (कुल दोष), **रतिकलहेषु**=कामक्रीड़ा सम्बन्धी प्रणय कलहों में, **दूतप्रेषणानि**=दूतों का भेजना (युद्ध के कारण सन्धि आदि के लिए दूत भेजना), **सार्यक्षेषु**=शतरंज आदि खेलों में प्रयुक्त अक्ष अर्थात् पांसे या गोटों में, **शून्यगृहाः**=खाली घर अर्थात् गोट रखने के खाली स्थान (गृहत्यागादि के कारण खाली घर)।

**अनुवाद**—और जगत् को जित लेने वाले जिस राजा शूद्रक के पृथ्वी का पालन करते होने पर नील पीतादि रंगों का मिश्रण (केवल) चित्र रचनाओं में (ही था) प्रजाजनों में ब्राह्मणादि वर्णों में अनुलोम प्रतिलोम विवाहादि के द्वारा वर्णसंकरता न थी। रतिकालों में ही (सुविधा के लिए) केश पकड़े जाते थे, प्रजाजनों में (कलहादि होने के कारण) एक-दूसरे के बाल पकड़ कर नहीं खींचे जाते थे। समासाधिक्य आदि के कारण पदों का प्रगाढ़ सन्निवेश काव्यों में (ही) था, प्रजाओं में अपराध प्रवृत्ति न होने के कारण) कारागृहों में दृढ़तापूर्वक बन्धन नहीं था। चिन्तन मनन शास्त्रों पर (ही) था, प्रजाओं में भोजनादि चिन्ता न थी, क्योंकि सभी सम्पन्न थे। तुरन्त बिछुड़ना या वञ्चनायें स्वप्नों में (ही) थीं, प्रजाओं में प्रियवियोग नहीं थे। सोने के डंडे राजछत्रों में ही थे, प्रजाओं में अपराध न होने के कारण किसी से दण्ड के रूप में सोना नहीं लिया जाता था। अधिक कम्पन या हिलना-डुलना, झण्डों में ही था, प्रजाओं में भयवश काँपना न था (क्योंकि अपराधाभाव में भय ही नहीं था) राग-रागनियों के प्रयोग गीतों में (ही थे). प्रजाओं में राग-द्वेषादि की चेष्टायें न थीं मदजल के कारण विकार गजों में ही थे प्रजाओं में अहंकारादि जनित विकृत चेष्टायें न थीं। धनुषों में ही डोरियाँ काटी जातीं थीं, प्रजाओं में दया, उदारता आदि गुणों का खण्डन नहीं था क्योंकि सभी गुणवान् थे, जालियों के मार्ग (हवा आने के लिए) झरोखों में थे, प्रजाओं में जाल छल, कपट आदि के रास्ते न थे (क्योंकि सभी सत्स्वभाव वाले थे), कलंक या मलिनता केवल चन्द्रमा कृपाण और लौह कवचों में ही थी। प्रजाओं में कुल दोषादि के कारण कलंक न था। दूतों का भेजना केवल रतिकाल के

प्रणय कलहों में ही था, प्रजाओं में युद्धादि के समय सन्धि-विग्रहादि के लिए दूत नहीं भेजे जाते थे। शतरंज आदि खेलों में प्रयुक्त गोटों में ही खाली स्थान देखे जाते थे। प्रजाजनों में खाली घर न थे अर्थात् कोई गृह त्याग नहीं करता था, क्योंकि राजा से सबको आश्रय प्राप्त था।

भावार्थ—शूद्रक, धार्मिक, न्यायप्रिय, वर्णाश्रमानुगामी जितशत्रु, प्रतापी एवं लोकप्रिय राजा था। इसीलिये उसकी प्रजा भी राजभक्त एवं सुखी थी, यही कारण था कि प्रजाजनों में वर्णसांकर्य, कारागार, बन्धन, कलह, चिन्ता, वियोग, दण्ड, भय, द्वेष, अपराध, कलङ्क, गृहत्यागादि नहीं पाये जाते थे। सभी सात्विक व्यवहार करते थे और अपने कर्त्तव्य-पालन में तत्पर रहते थे।

संस्कृत व्याख्या—जितजगति—जितं जगत् येन—निर्जितसंसारे, यस्मिन् राजनि शूद्रके च। महीं = पृथिवीम्, पालयति = पालनं कुर्वति सति। एतान्यधोवर्णितानि कार्याणि निम्नाङ्कितेष्वेव स्थलेषु दृश्यन्ते स्म, न पुनः प्रजानाम्—एतेन शूद्रकस्यादर्शराज्यं सूच्यते। वर्णसङ्कराः—वर्णानां नीलपीतादिवर्णानां सङ्कराः परस्परसम्मेलनानि—वर्णसम्मिश्रणानि, चित्रकर्मसु = आलेख्यरचनाष्वेव न तु प्रजानां वर्णसंकरोत्पत्तिः यतो हि तत्र नासन् अन्तर्जातीयविवाहाः। रतेषु = रतिक्रीडाष्वेव, केशग्रहाः—कार्यसाधनाय केशकर्षणानि आसन् न तु प्रजासु कलहावसरेषु परस्परकेशकर्षणम् कलहाभावात्। काव्येषु दृढबन्धाः = दृढाः ये बन्धाः-समासाधिक्यादिना पदानां गाढसन्निवेशाः चित्रकाव्यरचनासु मुरजबन्धादयो वा काव्यरचनाष्वेव न तु प्रजासु रज्ज्वादिभिः दृढ़बन्धनानि अपराधाभावात्। शास्त्रेषु चिन्ता = चिन्तनं मननं वा शास्त्रसिद्धान्तेष्वेव न तु प्रजासु अन्नवस्त्रादिचिन्ता सर्वसाधनानां सुलभत्वात्। स्वप्नेषु विप्रलम्भाः = स्वप्नदशायामेव प्रियपदार्थानां तिरोधानात् प्रवञ्चनाः न तु प्रजानां प्रियजनवियोगाः। छत्रेषु कनकदण्डाः = आतपत्रेष्वेव स्वर्णघटिता यष्टयः न तु प्रजासु दण्डेन स्वर्णपरिग्रहाः तत्रापराधाभावात्। ध्वजेषु प्रकम्पाः = प्रकर्षेण चाञ्चल्यानि पताकास्वेव न तु प्रजासु जना भयकम्पिताः। गीतेषु रागविलसितानि = सर्वविधशास्त्रीय रागाणां विलसितानि चेष्टितानि गानेष्वेवासन् न तु प्रजासु रागद्वेषमात्सर्यादिदोषवशात् हननादि चेष्टितानि। करिषु मदविकाराः = गजेष्वेव मदजलेन विकृतयः, न तु प्रजासु अहंकारादिदोषजन्या विकाराः। चापेषु गुणच्छेदाः = गुणानां प्रत्यञ्चारूपरज्जूनां छेदाः कर्तनानि धनुःष्वेव, न तु प्रजासु वीरतादि गुणखण्डनानि। गवाक्षेषु जालमार्गाः = वायुप्रवेशाय निर्मिता जालिकाः क्षुद्रमार्गाः वातायनेषु एव न तु प्रजासु छलप्रपञ्चमार्गाः। शशिकृपाणकवचेषु कलङ्काः = चन्द्र खड्गलौहकवचेष्वेव मालिन्यरूपाः कलङ्काः न तु प्रजासु कुलदोषापराधजन्याः कलङ्काः। रतिकलहेषु दूतप्रेषणानि = सन्देशहराणां गमनानि कामक्रीडाजन्य प्रणयकलहेष्वेव न तु प्रजासु दूत सम्प्रेषणानि तत्र युद्धाद्यभावात्। सार्यक्षेषु शून्यगृहाः = सारयः खेलिन्यः अक्षाः गुटिकाः वा तेषु—सारिगुटिकाक्षेत्रेषु एव शून्यगृहाः गुटिकाशून्य स्थानानि न तु प्रजासु जनशून्यसदनानि बाधाद्यभावात्।

संस्कृत सरलार्थ—[illegible] पशालिनि अतएव विजितजगति राजनि शूद्रके [illegible] नीलपीतादिवर्णसम्मिश्रणं चित्रनिर्माणकर्मस्वेवासीन्नतु प्रजासु ब्राह्मणादिवर्णगतवर्णसंकरोत्पत्तिः अन्तर्जातीयविवाहाद्यभावात्। रतिक्रीडास्वेव केशाकर्षणं न तु प्रजासु कलहेषु केशाकर्षणम्, समासाधिक्यादिजनितकठिनपदयोजना काव्येष्वेव न तु

प्रजासु कस्यापि दृढ़बन्धनानि तत्रापराधाभावात्, शास्त्रसिद्धान्तेष्वेव चिन्तनमासीत् न तु प्रजानामन्नवस्त्रादिचिन्ता, झटित्येव प्रियपदार्थतिरोधानात् प्रवञ्चनास्तु स्वप्नदशायामेवासन् न तु प्रजासु प्रियजनवियोगाः। स्वर्णयष्टयः आतपत्रेष्वेव दृश्यन्ते स्म प्रजासु राजदण्डेन स्वर्णपरिग्रहा नासन्। प्रकम्पनं सञ्चलनं वा पताकास्वेव न तु प्रजासु भयवशात् कम्पनम्। शास्त्रीयवसन्तादिरागाणां चेष्टितानि गानेष्वेव न तु प्रजासु रागद्वेषादिवशात् मारणादिचेष्टितानि। मदजलेन विकृतयो गजेष्वेव न तु प्रजासु गर्वादिजन्यविकाराः। प्रत्यञ्चारुपरज्जुकर्तनं धनुःष्वेव न तु प्रजासु वीरतादिगुणखण्डनम्। वातागमनाय जालीयमार्गा वातायनेष्वेव न तु जनेषु कपटछलछिद्रमार्गाः। मालिन्यरूपाः कलङ्काः चन्द्रे खड्गेषु लौहकवचेष्वेव दृश्यन्ते स्म न तु प्रजासु कुलदोषापराधरुपाः कलङ्का आसन्। सन्देशवाहकगमनानि कामक्रीडाप्रणयकलहेष्वेव न तु प्रजासु युद्धाद्यभावात् दूतसम्प्रेषणानि, सारिगुटिका क्षेत्रेष्वेव गुटिकाशून्यस्थानानि न तु प्रजासु जनशून्यभवनान्यासन्।

**टिप्पणी**—प्रस्तुत गद्यखण्ड में वर्णसंकराः से लेकर शून्यगृहाः तक चौदह वाक्यांशों में श्लेष से अनुप्राणित परिसंख्यालंकर है। इसका लक्षणः—किञ्चित्पृष्टमपृष्टं वा वा कथितं यत् प्रकल्पते। तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा मता। इसके प्रथमान्त पद द्व्यर्थक हैं—**वर्णसंकराः**—नील पीतादि रंगों का मिश्रण अन्यत्र ब्राह्मणादि जातियों में अन्तर्जातीय विवाहादि के कारण वर्णसंकर सन्तानें। **केशग्रहाः**—रीतिकाल में केशावलम्बन अन्यत्र कलहादि में बाल खींचना। **दृढ़बन्धाः** कठिन पद योजना अन्यत्र दृढ़ता पूर्वक बांधना, **विप्रलम्भाः**=वञ्चना अन्यत्र वियोग, **चिन्ता**—चिन्तन अन्यत्र चिन्ता, **कनकदण्डाः**—स्वर्णमयी यष्टि अन्यत्र दण्ड रूप में सोना लेना। **विलसितानि**—चेष्टायें, **मदविकाराः**—मदजल से विकार अन्यत्र गर्व के कारण विकृति, **गुणच्छेदः**—धनुष् की डोरी काटना अन्यत्र गुणों का खण्डन करना, **जालमार्गाः**—झरोखों में वायु के लिये छोटे-छोटे छेद अन्यत्र छल जाल कपट आदि के मार्ग, **शून्यगृहाः**—शतरंज चौपड़ आदि के फलक के गोटों से खाली स्थान, अन्यत्र भयादि के कारण घरों का शून्य होना। ●

**यस्य च परलोकाद् भयम्। अन्तः पुरिकालकेषु भङ्गः नूपुरेषु मुखरता। विवाहेषु करग्रहणम्। अनवरतमखाग्निधूमेनाश्रुपातः तुरगेषु कशाभिघातः मकरध्वजे चापध्वनिरभूत्।**

**शब्दार्थ**—**यस्य च**=और जिस राजा शूद्रक को, **परलोकाद् भयम्**=(केवल) परलोक से (ही) भय (था) (शत्रु आदि से नहीं) **अन्तःपुरिकालकेषु**=अन्तःपुर की सुन्दरियों की अलकों में ही, **भङ्गः**=टेढापन (था) जनता के व्यवहार में कुटिलता नहीं थी। **नूपुरेषु मुखरता**=नूपुरों में ही, **मुखरता**=बजने की आवाज थी, जनता में वाचालता नहीं थी। **विवाहेषु—करग्रहणम्**=विवाहों में ही कर, **ग्रहण**=पाणि-ग्रहण था जनता में राजदेय कर नहीं लिया जाता था। **अनवरतमखाग्निधूमेन अश्रुपातः**=लगातार (प्रज्वलित) यज्ञाग्नियों के धूम से (ही) आँसू गिरते थे, प्रजाओं में शोकादि के कारण नहीं। **तुरगेषु कशाभिघातः**=घोड़ों पर ही **कशा**=कोड़े या चाबुक, **अभिघातः**=मारना (था) प्रजाजनों पर दण्ड के रूप में कोड़े नहीं पड़ते थे क्योंकि कोई अपराधी न था। **मकरध्वजे चापध्वनिः**=कामदेव में ही धनुष् की टंकार थी, प्रजाजनों में युद्धादि के अभाव में धनुष् की टंकार नहीं थी।

अनुवाद—प्रस्तुत गद्यखण्ड के सातों प्रथमान्त पदों का सम्बन्ध 'अभूत्' क्रिया से है—

और जिस राजा शूद्रक को (केवल) परलोक से (ही) भय था (शत्रु आदि से नहीं, क्योंकि वह स्वयं प्रबल प्रतापी था) अन्तपुर की सुन्दरियों की अलकों में ही टेढ़ापन था (प्रजाजनों में कुटिलता नहीं थी) नूपुरों में ही बजने की ध्वनि थी (प्रजाजनों में अधिक वाचालता न थी। विवाहों में ही पाणिग्रहण था प्रजाजनों में राजदेय कर नहीं लिया जाता था) लगातार (प्रज्वलित) यज्ञाग्नियों के धुयें से (ही) आँसू गिरते थे (शोकादि के कारण नहीं) घोड़ों पर ही चाबुकों की मार पड़ती थी) (जनता में किसी पर कोड़े नहीं मारे जाते थे क्योंकि सभी निरपराध थे। कामदेव पर ही धनुष् टंकार देखी जाती थी अर्थात् धनुष् की टंकार कामधनुष् में ही थी (प्रजाओं में युद्धादि के अभाव में—चापध्वनि नहीं थी।

भावार्थ—राजा शूद्रक की प्रजा धनधान्यपूर्ण, शान्त एवं व्यवहार कुशल थी, राजा भी धर्मनिष्ठ एवं प्रतापी था। अतएव उसे केवल परलोक से ही भय था शत्रु से नहीं। वक्रता या कुटिलता केवल अन्तपुर की स्त्रियों के अलकों में ही थी प्रजाओं में नहीं, मुखरता या वाचालता केवल नुपूरध्वनियों में ही थी प्रजाओं में नहीं, करग्रहण या पाणिग्रहण विवादों में ही था प्रजा से कर नहीं लिये जाते थे, लगातार जलने, वाली यज्ञों की अग्नियों के धुयें से ही अश्रुपात होता था शोकादि के कारण नहीं। घोड़ों पर ही चाबुक पड़ते थे, अपराध न होने के कारण प्रजाजनों पर नहीं, कामधनुष् की ही टंकार थी, प्रजाओं में शान्ति थी अतः धनुष् टंकार की आवश्यकता न थीं।

संस्कृत व्याख्या—यस्य च = किञ्च यस्य राज्ञः शूद्रकस्य, परलोकाद् = जन्मान्तरादेव, भयम् = भीतिः अभूत् न तु शत्रुभ्यो भयम्, तस्य प्रतापशालित्वात्। अन्तःपुरिकालकेषु = अन्तपुरे भवा अन्तःपुरिका अन्तः पुरकामिन्यः तासाम् अलकेषु चूर्णकुन्तलेषु—अन्तःपुरनायिकालकेषु, भङ्गः = वक्रता कुटिलता वा (तस्य राज्ये अभूत्) न तु प्रजासु भङ्गः = कौटिल्यम् पार्थक्यम् अधोनिपातो वाभूत्। नूपुरेषु = हंसकेषु, मुखरता = नूपुरध्वनिरूपा शब्दायमानता न तु प्रजासु वाचालतासीत्। विवाहेषु = विवाहसंस्कारेषु एव, करग्रहणम् = पाणिग्रहणसंस्कारः न तु प्रजासु राजदेयकर ग्रहणम भूत्। अनवरतमखाग्निधूमेन = अनवरतं निरन्तरं (प्रज्वलितानाम्) मखानां क्रतून'मृ यः अग्निः वह्निः तस्य धूमेन—अविश्रान्तप्रज्वलितयज्ञाग्निधूमेन (एव) अश्रुपा'तः = अश्रूणां नेत्रजलानां पातः निपतनम्, न तु लोकेषु शोकादिनाश्रुपातः। तुरगेषु = अश्वेषु (एव) कशाभिघातः = कशया ताडिन्या अभिधातः प्रहारः, न तु लोकेषु अपराधाभावात् कशाप्रहार आसीत्। मकरध्वजे = कामदेवे, चापध्वनिः = धनुषश्चालनध्वनिः अभूत् न तु लोकेषु चापचालनावसरः शत्रुभयाभावात्।

संस्कृत सरलार्थ—प्रबल प्रतापशालिनः शूद्रकस्य राज्ये सुखशान्तिसाम्राज्यमासीत्, अतएव कौटिल्यं केवल मलकेषु, मुखरता नूपुरेषु, कर ग्रहणं केवलं विवाहेषु, अश्रुपातः केवलं यज्ञाग्निधूमेन, कशाभिघात स्तुरगेष्वेव, कामदेवस्यैव केवलं चापध्वनिरभूत, राज्ञोऽपि केवलं जन्मान्तराद् भयमासीत् न शत्रुभ्यः। लोकेषु न व्यवहारकुटिलता नापि अतिवाचालता। प्रजाः राजदेयकरमुक्ताः कशाप्रहारवर्जिता श्चासन्। न कोऽपि शोकेनाश्रूणि निपातयति स्म। युद्धाभावान्न कुत्रापि चापध्वनिरश्रूयत।

टिप्पणी—सभी प्रथमान्त पदों का अन्वय अभूत् क्रिया से है, यहाँ सातों वाक्यों में पूर्ववत् परिसंख्यालंकार है। परलोकाद्भयम् = "भीत्रार्थानां भयहेतुः" इस सूत्र से यहाँ पर लोकात् में पञ्चमी विभक्ति है परलोक का अर्थ—जन्मान्तर है। अन्तःपुरिकालकेषु = अन्तःपुरे भवा इत्यर्थे ठक् प्रत्यये तस्येकादेशे अन्तःपुरिका = अन्तः पुर में रहने वाली स्त्रियाँ, अलकाः चूर्णकुन्तलाः = सिर के केशों की लटें। भङ्गः = केशों के साथ इसका अर्थ है, घुंघरालापन टेढ़ा होना, प्रजाजनों के साथ = कुटिलता अलगाव आदि। नूपुरेषु = इसके लिए दूसरा शब्द 'हंसक' है, मुखरता = शब्दायमानता —नूपुरों के बजने की ध्वनि अन्यत्र वाचालता अधिक बकवाद। करग्रहणम् = पाणि-ग्रहण संस्कार अन्यत्र कर = राजदेय टैक्स आदि, ग्रहना करना—लेना। कशाभिघात कोड़ा या चाबुक मारना, प्रजाजनों के कोड़े मार कर दण्ड नहीं लिया जाता था क्योंकि कोई अपराधी ही नहीं था। कशा के लिए दूसरा शब्द है ताडिनी, 'अश्वादेस्ताडिनी कशा"। सभी के समृद्धि सम्पन्न होने के कारण सर्वत्र शान्ति थी अतएव चाप ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती थी, यदा कदा कामधनुष् ही चलता है।

**तस्य च राज्ञः कलिकालभयपुञ्जीभूतकृतयुगानुकारिणी, त्रिभुवन-प्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा, मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरीकृतोर्मिमालया जलावगाहनायात-जयकुञ्जरकुम्भसिन्दूरसन्ध्यायमानसलिलया उन्मदकलहंसकुलकोलाहलमुखरीकृतकूलया वेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्।**

शब्दार्थ—कलिकाल..............अनुकारिणी—कलियुग के भय से संकुचित हुए या सिमटे हुए से सतयुग (कृतयुग) का अनुकरण करने वाली (तथा) तीनों लोक के उत्पत्ति स्थान (प्रसव भूमि) सी, विस्तीर्णा = विस्तृत (राजधानी के विशेषण हैं) मज्जन्..............ऊर्मिमालया = स्नान करती हुई (मज्जन्) मालवविलासिनी = मालवा प्रदेश की सुन्दरियों के, स्तन तटास्फालन = स्तन तटों के, आस्फालन = आघात या टकराहट से, जर्जरीकृत = तोड़ी हुई, उर्मिमालया = लहरों वाली (वेत्रवत्या = वेत्रवती नदी का विशेषण है) जलावगाहन..............सलिलया = जलावगाहनायात = जल में स्नान करने या जल को आलोडित करने के लिए आये हुए (आयात) जय-कुञ्जरकुम्भसिन्दूर = विजयी हाथियों के कुम्भस्थलों पर (लगे हुए) सिन्दूर के कारण, सन्ध्यायमानसलिलया = सायंकालीन लालिमा जैसे जल वाली (वेत्रवत्या का विशेषण है)। उन्मद..............कूलया = उन्मदकलहंसकुल = मतवाले कलहंसों के झुण्डों के, कोलाहल मुखरितकूलया = कोलाहल से शब्दायमान तट (कूल) वाली, वेत्रवत्या = वेतवा नदी से, परिगता = घिरी हुई, विदिशाभिधाना = विदिशा नाम वाली।

अनुवाद—और उस राजा (शूद्रक) की विदिशा नाम की नगरी राजधानी थी, (जो कि) मानो कलियुग के भय से संकुचित हुए सत्ययुग का अनुकरण करने वाली (तथा) तीनों लोकों के उत्पत्ति स्थान-सी विस्तृत थी। (और वह) स्नान करती हुई मालव सुन्दरियों के स्तनतटों के आघात से तोड़ी गई लहरों वाली (एवं) स्नानार्थ आये हुए विजयी गजों के कुम्भस्थलों पर (लगे) सिन्दूर से (संध्या कालीन लालिमा

सदृश जल वाली (तथा) मतवाले कलहंसों के झुण्डों के कोलाहल से शब्दायमान तट वाली वेतवा नदी से घिरी हुई थी।

**भावार्थ**—एक शूद्रक की त्रिदिशा नगरी राजधानी थी वह इतनी विस्तृत थी कि मानो वह तीनों लोकों की उत्पत्ति का स्थान हो, और वह मानो कलियुग से भयभीत अतएव सिमटे हुए सतयुग का अनुकरण करने वाली थी अर्थात् वह अतिशय पुण्य भूमि थी। यह राजधानी उस वेतवा नदी से घिरी हुई थी, जिसमें मालव प्रदेश की सुन्दरियाँ जब स्नान करने आती थीं तब उनके स्तन तटों के टकराहट से जिसमें तरंगें उठने लगती थीं। इसी प्रकार जब विजयी गज इस नदी के जल को विलोडित करने आते थे तब उनके कुम्भ स्थलों पर विजय चिह्न के रूप में लगे सिन्दूर से इसका जल संन्ध्याकालीन लालिमा के समान रक्ताभ हो जाता था और इस नदी का तट मतवाले कल हंसों के कोलाहल से मुखरित रहता था।

**संस्कृत व्याख्या**—**तस्य च**=किञ्च तस्य राज्ञः (शूद्रकस्य) **विदिशाभिधाना**=विदिशा इति अभिधानं नाम यस्याः सा विदिशानाम्नी, नगरी राजधानी आसीत् (या) **कलिकालभयपुञ्जीभूतकृतयुगानुकारिणी**—कलिकालात् कलियुगात् यद् भयम् तस्मात् पुञ्जीभूतम् अवयवसङ्कोचेन सङ्कुचितं यत् कृतयुगम् सत्ययुगम् तदनुकर्तुं शीलं यस्याः सा—कलियुगभीतिसङ्कुचितसत्ययुगानुकरणस्वभावा, (तथा) **त्रिभुवनप्रसवभूमिः इव**=त्रयाणां भुवनानां लोकानां समाहारः त्रिभुवनम् तस्य प्रसवस्य उत्पत्तेः भूमिः स्थानम्—त्रिलोकोत्पत्तिस्थानम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, विस्तीर्णा विस्तृता (तथा च या) **मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरीकृतोर्मिमालया**—मज्जन्त्यः स्नानं कुर्वन्त्यः मालवविलासिन्यः मालवप्रदेशकामिन्यः तासां कुचतटाः स्तनाग्रभागाः तेषाम् आस्फालनेन आघातेन जर्जरीकृता भग्ना ऊर्मीणाम् तरङ्गाणाम् मालाः पङ्क्तयः यस्याः सा तया—स्नानावगाहमानवन्ति सुन्दरीस्तनाग्रभागाघात भग्न तरङ्गमालया। **जलावगाहनायातजयकुञ्जरकुम्भसिन्दूरसन्ध्यायमानसलिलया**=जलस्य सलिलस्य अवगाहनाय अवलोडनाय आयाताः समागताः जयकुञ्जराः विजयिनो गजाः तेषां कुम्भाः शिरःपिण्डाः तेषु (शोभमानम्) यत् सिन्दूरम् तेन सन्ध्यायमानं सन्ध्या कालवल्लोहितं सलिलं यस्याः सा तया—जलावलोडनागतविजयिगजशिरः पिण्डशोभमानसिन्दूसन्ध्यावद्रक्तीभूत सलिलया। **उन्मदकलहंसकुलकोलाहलमुखरीकृतकूलया**=उन्मदा मदोन्मत्ताः ये कलहंसाः तेषां कुलस्य समूहस्य कोलाहलैः रनभिव्यक्तरवैः मुखरितं शब्दायमानं कूलं तटं यस्याः सा तया—मदोन्मत्तकलहंसङ्घकोलाहलशब्दायमानकूलया, वेत्रवत्या नद्या परिगता परिवेष्टिता आसीत्।

**संस्कृत सरलार्थ**—किञ्च तस्य राज्ञः शूद्रकस्य विदिशानाम्नी नगरी राजधानी आसीत् या कलियुगभीतिसङ्कुचितकृतयुगवदाचरणशीला तथा त्रिलोकजन्मभूमि रिवासीत्। या च तादृश्या वेत्रवत्या नद्या परिवेष्टिता आसीत् यस्या नद्याः तरङ्मालाः मञ्जनपरायणावन्तिसुन्दरीणामतिकर्कशस्तनाग्रभागाघातेन जर्जरीकृता आसन्, सलिलञ्च यस्याः जलावगाहनायागतानां विजयिगजानां कुम्भस्थसिन्दूरेण सन्ध्याकालवल्लोहित मासीत्, तटञ्च यस्या नद्याः मदमत्तकहंसकृतकोलाहलेन शब्दायमान मासीत्।

**टिप्पणी**—**कलिकाल·······अनुकारिणी**—मानो कलियुग के दोनों के भय से सिमिट कर सत्ययुग विदिशा में रहने लगा था अर्थात् विदिशावासी लोग सत्ययुग

जैसे ही परम धार्मिक थे। त्रिभुवनप्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा—शूद्रक की राजधानी विदिशा इतनी विस्तृत थी कि मानो वह तीनों लोकों की अकेली जन्मभूमि हो। इव का प्रयोग यहाँ उत्प्रेक्षालंकार द्योतनार्थ है। त्रिभुवन—मित्यत्र 'तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे चेति समाहारे तत्पुरुष समासः। पुञ्जीभूत—च्वि प्रत्ययान्त है, अनुकारिणी—अनु+कृ+ताच्छील्ये णिनिः। प्रसव=प्र+सू+अत्। मज्जन………… मालया—इस पद से अवन्ति सुन्दरियों के स्तनाग्रभाग को अति कर्कशता व्यञ्जित की गई है। ऊर्मयः—तरंगें (भङ्गस्तरङ्ग उर्मिर्वा को।) मज्जन्—मज्ज्+शत्। कुचतट=स्तनाग्र भाग। आस्फालन=आघात। माला=पंक्ति "माला तु पङ्क्तौ पुष्पादि-दामिनि कोश", । जर्जरीकृत—जर्जरित करना भग्न या क्षीण करना। जलावगाहनायात……सलिलया अवगाहन—अव+गाह+ल्युट+अन=स्नान करना, जल को विलोडित करना। कुञ्जरकुम्भसिन्दूर—हाथियों के कुम्भस्थल पर शोभार्थ सिन्दूर लगाया जाता है। जयकुञ्जर—संग्राम में शत्रुओं पर विजय करने वाले गज। सन्ध्यायमान=संध्याकाल के समान आचरण करने वाला अर्थात् रक्त-वर्ण का, नाम धातु से शानच् है। संध्या इवा चरतीति। मुखरीकृत=शब्दायमान, कूल=तट। कलिकालेत्यादि पद में उत्प्रेक्षा तथा आर्थी उपमा है, प्रसवभूमिरिव में द्रव्योत्प्रेक्षा, कुचतटास्फालन में अतिशयोक्ति अलंकार है।

**स तस्याञ्च विजिताशेषभुवनमण्डलतया विगतराज्यचिन्ताभारनिर्वृतः द्वीपान्तरागतानेकभूमिपालमौलिमालालालितचरणयुगलः, वलयमिव लीलया भुजेन भुवनभारमुद्वहन्, अमरगुरुमपि प्रज्ञयोपहसद्भिरनेककुलक्रमागतैरसकृदालोचितनीतिशास्त्र-निर्मलमनोभिरलुब्धैः स्निग्धैः प्रबुद्धैश्चामात्यैः परिवृतः।**

शब्दार्थ—स तस्याम् च=और वह राजा उस राजधानी में, विजिताशेष भुवनमण्डलतया=सम्पूर्ण (अशेष) भुवनमण्डल को जीत लेने के कारण। विगतराज्य चिन्ताभार निर्वृतः=राज्य की चिन्ता के बोझ (भार) के समाप्त (विगत) हो जाने से निश्चिन्त (निर्वृतः), द्वीपान्तरागतानेकभूमिपालमौलिमालालालितचरणयुगलः= दूसरे द्वीपों से (द्वीपान्तर) आये हुए। (आगत) अनेक राजाओं के मुकुटों की मालाओं (अथवा सिरों की पंक्तियों से) (मौलि=मुकुट अथवा शिर, माला=पुष्पमाला अथवा पंक्ति) से, सेवित (लालित) चरण युगल वाला। वलयमिव=कंगन की तरह, लीलया=बिना प्रयास के सरलता से ही, भुजेन=भुजा पर, भुवनभारम्=लोक भार को, उद्वहन्=धारण करता हुआ। अमरगुरुमपि=वृहस्पति का भी, प्रज्ञया= अपनी बुद्धि से, उपहसद्भिः=उपहास करते हुए, अनेक कुलक्रमागतैः=अनेक, वंश-परम्परागत, असकृदालोचितनीतिशास्त्रनिर्मलनोभिः=बार-बार (असकृत) नीति-शास्त्र का चिन्तन मनन (आलोचन) करने से स्वच्छ मन वाले, अलुब्धैः=लोभरहित, स्निग्धैः=स्नेही, प्रबुद्धैः=जागरूक विद्वान्, अमात्यैः=मन्त्रियों से, परिवृतः= घिरा हुआ।

अनुवाद—प्रस्तुत गद्यखण्ड के 'सः' पद का, इस सम्पूर्ण गद्यभाग के अन्त में प्रयुक्त 'उवास' क्रिया से सम्बन्ध है, इस गद्यांश के सभी प्रथमान्त पद 'सः' के विशेषण हैं—

और वह राजा शूद्रक उस विदिशा नगरी में, समस्त भुवनमण्डल को जीत लेने के कारण राज्य की चिन्ता का भार समाप्त हो जाने के कारण निश्चिन्त हुआ, दूसरे द्वीपों से आये हुए अनेक राजाओं की मुकुट मालाओं से सेवित चरणयुगल वाला, भुजा पर कंगन के समान सरलता से ही भुवन भार को धारण करता हुआ, अपनी बुद्धि से वृहस्पति का भी उपहास करते हुए, अनेक, वंशपरम्परागत् बार-बार नीतिशास्त्र का चिन्तन मनन करने से निर्मल मन वाले निर्लोभ, स्नेही एवं जागरूक मन्त्रियों से घिरा हुआ।

भावार्थ—राजा ने समस्त भुवनों को जीत लिया था अतएव राज्य की चिन्ता के भार से मुक्त होकर निश्चिन्त हो गया था। उसका इतना प्रभाव था कि दूसरे द्वीपों के राजा भी आकर आदर पूर्वक उसके चरणों की वन्दना करते थे और वह प्रजाभार को बड़ी सरलता से अपनी भुजा पर धारण किये हुए था। और वह सदा उन मन्त्रियों से घिरा रहता था जो वंश परम्परागत थे और जोकि बुद्धि में वृहस्पति से भी बढ़कर थे, वे सभी नीतिशास्त्र के मर्मज्ञ, निर्लोभ, स्नेही एवं जागरूक विद्वान थे।

संस्कृत व्याख्या—सः = राजा शूद्रकः, तस्याम् = राजधान्याम्, विजिताशेष भुवनमण्डलतया = विजितानि विजित्य स्वाधीनीकृतानि अशेषाणि सकलानि भुवनमण्डलानि येन तस्य भावःतया-निर्जिताखिलभुवनमण्डलत्वेन, विगतराज्यचिन्ताभारनिर्वृतः = विगतः व्यपगतः यः राजस्य चिन्तायाः भारः तेन निर्वृतः सुनिश्चन्तः-समाप्तराज्यभारसुनिश्चिन्तः। द्वीपान्तरागतानेक भूमिपालमौलिमालालालितचरणयुगलः = अन्ये द्वीपाः द्वीपान्तराणि तेभ्यः आगताः ये अनेके भूमिपालाः राजानः तेषां मौलिमालाभिः मुकुटमाल्यैः शिरःपंक्तिभि र्वा लालितं सादरं सेवितम् संस्पृष्टं वा चरणयुगलं पादयुग्मं यस्य सः—द्वीपान्तरायातराजमुकुटमाल्यवन्दितचरणयुगलः। वलयमिव—काङ्कणमिव, लीलया = विना प्रयासेनैव भुवनभारम्—संसारकार्यभारम्, भुजेन = बाहुना, उद्वहन् = धारयन्। अमरगुरुम् = देवगुरुम् वृहस्पति मपि, प्रज्ञया = स्वबुद्धया, उपहसद्भिः = उपहासं कुर्वद्भिः अनेककुलक्रमागतैः = अनेकैः वंशपरम्परया च प्राप्तैः असकृदालोचितनीतिशास्त्रनिर्मलमनोभिः = असकृद् बारंबारम् आलोचितैः गुणदोषपरीक्षया अनुशीलितैः नीतिशास्त्रैः राजोचितव्यवहार निर्देशक ग्रन्थैः निर्मलानि स्वच्छीकृतानि मनांसि चेतांसि येषान्ते तै—असकृदनुशीलितनीतिशास्त्रस्वच्छचेतोभिः, अलुब्धैः = निर्लोभैः स्निग्धैः = स्नेह मयैः, प्रबुद्धैः जागरितविद्वद्भिः, अमात्यैः = मन्त्रिभिश्च परिवृतः—परिवेष्टितः।

संस्कृत सरलार्थ—राजा समस्तभुवनानि विजित्य, राज्यकार्यभारचिन्ताविनिर्मुक्तः पूर्णतया निश्चिन्तो जातः। तस्यैवम्भूतः प्रभाव आसीत् यद् द्वीपान्तरेभ्योऽप्यागत्य राजानस्तच्चरणवन्दनमकुर्वन्। स च ततः मन्त्रिभिश्च परिवृत आसीत् ये वंशपरम्परा गताः बुद्ध्या सुरगुरुमप्युपसन्तः, नीतिशास्त्रपर्यालोचनया निर्मलचित्ताः स्नेहमया निर्लोभाः प्रबुद्धाश्चासन्।

टिप्पणी—द्वीप……युगलः = राजा का इतना प्रभाव था कि दूसरे द्वीपों के भी राजा आकर उसका सादर अभिवादन करते थे। मौलि = मुकुट और शिर, माला = पुष्पमाला और पङ्क्ति। वलयमिव = जिस प्रकार कंगन पहनने में भुजा को कोई कष्ट नहीं होता उसी प्रकार राजा को भुवनभार धारण करने में कोई कष्ट न था। 'कटकं वलयोऽस्त्रियाम्' उद्वहन् = उत् + वह + शतृ। प्रज्ञया—बुद्धि या मति से "प्रज्ञा धिषणा मतिः"। उपहसद्भिः = उप + हस्—शतृ तृतीया बहुवचन, मन्त्री बुद्धि में

नीतिशास्त्र प्रणेता वृहस्पति से भी बढ़कर थे। और वे नये नहीं अपितु वंशपरम्परागत थे, स्निग्धैः—स्निह+क्त,—राज्य और राजा से प्रेम रखने वाले, प्रबुद्धैः प्र+बुधू+क्त—सजग—बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता के साथ वे सजग भी रहते थे, ऐसे कुशल मन्त्री सदा उसके आस-पास बने रहते थे।

**समानवयोविद्यालङ्कारैरनेक मूर्द्धाभिषिक्तपार्थिवकुलोद्गतै रखिलकलाकलापालोचनकठोरमतिभि रतिप्रगल्भैः कालविद्भिः प्रभावानुरक्तहृदयै रग्राम्योपहसकुशलै रिङ्गिताकारवेदिभिः काव्यनाटकाख्यानकाख्यायिकालेख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणै रतिकठिनपीवरस्कन्धोरुबाहुभि रसकृदवदलितसमदरिपुगजघटापीटबन्धैः केसरिकिशोरकैरिव, विक्रमैकरसैरपि विनयव्यवहारिभिरात्मनः प्रतिबिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः प्रथमे वयसि सुखमतिचिरमुवास।**

**शब्दार्थ—समानवयोविद्यालङ्कारैः**—अपने समान विद्या अवस्था तथा आभूषणों वाले (वयः अवस्था) **अनेकमूर्धाभिषिक्तपार्थिवकुलोद्गतैः**=अनेक राज्याभिषेक किये हुए (मूर्धाभिषिक्त) राज (पार्थिव) वंश में उत्पन्न **अखिलकलाकलापालोचनकठोरमतिभिः**=सम्पूर्ण (अखिल) कला-समूह (कला-कलाप) का परिशीलन (आलोचन) करने के कारण दृढ़ बुद्धि (कठोरमति) वाले, **अतिप्रगल्भैः**=अतिप्रतिभाशाली, **कालविद्भिः** अवसर को पहचानने वाले, **प्रभावानुरक्तहृदयैः**=राजप्रभाव से अनुरक्त हृदय वाले, **अग्राम्योपहासकुशलैः**=शिष्ट (अग्राम्य जो गँवारु न हो) परिहास में निपुण, **इङ्गिताकारवेदिभिः**=संकेतों तथा भूनेत्रादि की विशेष आकृतियों को जानने वाले **काव्यनाटकाख्यानकाख्यायिकालेख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणैः**—काव्य नाटक लघुकथा (आख्यानक) वासवदत्तादि गद्यकाव्य, चित्ररचना (लेख्य) व्याख्यान आदि कार्यों (क्रिया) में चतुर, **अतिकठिनपीवरस्कन्धोरुबाहुभिः**=अत्यन्त कठोर, और पुष्ट (पीवर) कन्धे जंघाओं एवं भुजाओं वाले, **असकृदवदलितसमदरिपुगजघटापीठबन्धैः**=बार-बार, मर्दित की गई मस्त शत्रुगजों की पङ्क्तियों रूपी पीठबन्धों वाले (असकृत=बार-बार, अव दलित=मर्दित की गई, **समद**=मदमत्त, **घटा**=समूह या पङ्क्ति, **पीठबन्ध**=गज के पीठ पर रखे जाने वाले आसन अर्थात् हौदे। **केसरिकिशोरकै इव**=सिंह शावकों, जैसे, **विक्रमैकरसैः अपि**=एकमात्र पराक्रम में ही रुचि रखने वाले होकर भी, **विनयव्यवहारिभिः**=विनय का व्यवहार करने वाले, **आत्मनः प्रतिबिम्बैः इव**=अपने ही प्रतिबिम्व जैसे अर्थात् अपने से सब प्रकार समान रूपता रखने वाले, **राजपुत्रैः सह रममाणः**=राजपुत्रों के साथ क्रीडा करता हुआ, **प्रथमे वयसि**=युवावस्था में **अतिचिरम्**=बहुत समय तक, **सुखम्**=सुखपूर्वक, **उवास**=निवास करता रहा।

**अनुवाद**—समान अवस्था विद्या और अलंकारों वाले, अनेक राज्याभिषिक्त राजकुलों में उत्पन्न सम्पूर्ण कला ससूह के पर्यालोचन के कारण दृढ़ बुद्धि वाले, अतिप्रतिभाशाली, उचित अवसर को पहचानने वाले, राजप्रभाव से अनुरक्त हृदय वाले, शिष्ट परिहास में चतुर संकेतों एवं भूनेत्रविकार जन्य आकृतियों को जानने वाले, काव्य, नाटक, लघुकथा, लोकवृत्तात्मक कथा, चित्ररचना, आदि कार्यों में कुशल, अतिकठोर एवं परिपुष्ट कन्धे जंघाओं एवं भुजाओं वाले, बार-बार मर्दित किये गये मदमत्त शत्रुगजों की पंक्तिरूप पीठवन्धों (हौदों) वाले सिंहशावक जैसे, एकमात्र पराक्रम में

रुचि रखने वाले होकर भी विनय पूर्वक व्यवहार करने वाले, अपनी, प्रतिच्छायाओं जैसे, राजकुमारों के साथ क्रीडा करता हुआ युवावस्था में चिरकाल तक सुखपूर्वक निवास किया।

भावार्थ—राजा शूद्रक ने अपनी राजधानी में उन राजकुमारों के साथ क्रीड़ा करते हुए युवावस्था में चिरकाल तक सुखपूर्वक निवास किया जो कि राजकुमार समान अवस्था विद्या तथा आभूषणों वाले थे तथा जो कि राज्याभिषिक्त राजकुलों में उत्पन्न हुए थे। वे सभी सम्पूर्ण कलाओं के विवेचक होने के कारण दृढ़मति, तथा प्रतिभाशाली थे। कार्योचित अवसर की पहचान रखने वाले तथा राजप्रभाव से अनुरक्त हृदय वाले थे। वे शिष्ट परिहास में कुशल तथा सकेतों एवं आकृतियों का ज्ञान रखते थे, सभी काव्य, नाटक, लघुकथा, लोकवृत्त, चित्ररचना, व्याख्या आदि कार्यों में निपुण थे। इतना ही नहीं वे अतिकठोर एवं परिपुष्ट कन्धे जंघाओं एवं भुजाओं वाले भी थे। वे कई बार सिंह शावकों की तरह शत्रुओं के मतवाले हाथियों को पछाड़ कर उनकी पीठ पर आसन जमा चुके थे। यद्यपि वे अद्वितीय पराक्रमी थे फिर भी विनम्र प्रकृति, वाले तथा राजा की प्रतिमूर्ति जैसे ही लगते थे।

संस्कृत व्याख्या—समानवयो विद्यालङ्कारैः=समानाः वयः अवस्था विद्याः अलङ्काराः विभूषणानि च येषान्ते तैः—तुल्यवयोविद्यालङ्कारैः। अनेकमूर्धाभिषिक्तपार्थिवकुलोद्गतैः—अनेके ये मूर्धाभिषिक्ताः कृतराज्याभिषेकाः पार्थिवाः राजानः तेषां कुलेभ्यः वंशेभ्यः उद्गताः समुद्भवाः तैः—अनेकाराज्याभिषिक्त राजकुलप्रसूतैः, अखिलकलाकलापा लोचनकठोरमतिभिः=अखिलाः समग्राः याः कलाः नृत्यगीताद्याः तासां कलापस्य समूहस्य आलोचनेन अनुशीलनेन कठोराः दृढाः परिपक्वा वा मतयः बुद्धयः येषान्ते तैः—सम्पूर्णकलासमूहपर्यालोचनसुदृढबुद्धिभिः। अतिप्रगल्भैः—अतिप्रतिभाशालिभिः। कालविद्भिः=अवसरज्ञैः, प्रभावानुरक्तहृदयैः=प्रभावेण राजमाहात्म्येन अनुरक्तानि आसक्तानि हृदयानि मनांसि येषान्ते तैः राजप्रभावानुसक्तमनोभिः, अग्राम्योपहासकुशलैः—अग्राम्येषु अश्लीलादिदोषरहितेषु नागरिकेषु शिष्टेष्वित्यर्थः यः उपहासः परिहासः तत्र कुशलाः निपुणास्तैः=शिष्टपरिहासंचतुरैः, इङ्गिताकार वेदिभिः=इङ्गितानि अभिप्रायानुकूल विचेष्टितानि आकाराः भ्रू नेत्र सङ्कोचनादिजन्या आकृतिविशेषाः एतानि विन्दन्ति ये ते तैः इङ्गिताकारवेदिभिः—इङ्गिताकृतिविशेषज्ञैः, काव्यनाटकाख्यानकाख्यायिकालेख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणैः=काव्यं रसात्मकं वाक्यम् नाटकम् रूपकविशेषः आख्यानकानि लघुकथाः आख्यायिका लोकवृत्तात्मक गद्यकाव्य विशेषाः आलेख्यानि चित्ररचनाः व्याख्यानानि भाषणानि इत्यादिकाः याः क्रियाः कार्याणि तासु निपुणः कुशलाः तैः—काव्य नाटकाख्यानकाख्यायिका चित्ररचनाभाणादिकार्यकुशलैः, अतिकठिनपीवरस्कन्धोरुबाहुभिः=अतिकठिना नितान्तदृढ़ा पीवराः परिपुष्टाश्च स्कन्धाः अंसाः उरवः जानुपरिभागाः बाहवश्च येषान्तैः—अतिदृढपरिपुष्टस्कन्धोरुबाहुभिः, असकृदवदलितसमदरिपुगजघटापीठबन्धैः=असकृत् वारंवारम् अवदलिताः मर्दिता समदाः मदमत्ताः याः रिपुगजघटाः शत्रुहस्तिपङ्क्तयः ता एव पीठवन्धाः पृष्ठबद्धानि आसनादीनि यैस्ते तैः—असकृन्मर्दितमदमत्तशत्रुगज पंक्तिपृष्ठबद्धासनैः केसरिकिशोरकैरिव=केसरिणां सिंहानां किशोरकाः शावकाः तैः इव—सिंहशावकैरिव, विक्रमैकरसैः अपि=विक्रमे पराक्रमे एकः अद्वितीयः रसः आसक्ति येषान्तैः—पराक्रमैकरुचिभिः, अपि, विनयव्यवहारिभिः=विनयेन व्यवहारकारिभिः,

**आत्मनः प्रतिबिम्बैरिव**—आत्मनः स्वस्य प्रतिबिम्बैः प्रतिकृतिभिः इव—एवम्भूतैः राजपुत्रैः सह—सार्धम् रममाणः क्रीडन् प्रथमेवयसि—युवावस्थायाम्, अतिचिरम्—बहुकालम्, सुखम्—सुखपूर्वकम् उवास—निवासं चकार ।

**संस्कृत सरलार्थ**—राजा शूद्रकः स्वराजधान्यां तैः राजपुत्रैः सह क्रीडन् युवावस्थायां चिरं सुखं निवासं चक्रे, ये राजपुत्राः वयोविद्याविभूषणैस्तत्तुल्या राज्याभिषिक्तराजकुलसम्भवाश्चासन् । ते सर्वे नृत्यगीतादिसर्वकलाविवेचनेन दृढ़मतयः प्रतिभाशालिनः कार्योचितावासरज्ञाः राजप्रभानुरक्तमानसाश्चासन् । ऐते शिष्टपरिहासनिपुणाः इङ्गिताकृतिविशेषज्ञाः काव्य नाटकाख्यानकाख्यायिका चित्रकला व्याख्यानादिकार्यदक्षाश्चासन् । शरीरेणैतेऽति कठोरपरिपुष्ट स्कन्धोरुवाहवः सिंहशावकैरिवविदलितमत्तारिगजपृष्ठवद्धसनाश्चासन्, पराक्रमैकरसा अप्येते सविनयं व्यवहारकारिणः राजप्रतिमूर्तय इवासन् ।

**टिप्पणी**—यह गद्यखण्ड पूर्व के गद्यांश का ही अवशिष्ट अंग है, इसके सभी तृतीयान्त पद राजपुत्रैः के विशेषण हैं । **मूर्धाभिषिक्तपार्थिव**=वे राजा जिनका राज्याभिषेक किया गया है अथवा इस कोश वचन के अनुसार इसका अर्थ क्षत्रिय भी हो सकता है "मूर्धाभिषिक्ता राजन्यो वाहुजः क्षत्रियो विराट" कुछ विद्वानों के अनुसार 'मूर्धाभिषिक्तः ब्राह्मणेभ्यः क्षत्रियासु समुत्पन्नः' भी है । **पार्थिवः** पृथिव्या ईश्वरः पृथिवी+अञ् । **कलाप**=समूह, **कठोरमति**=दृढ़बुद्धि वाले 'प्रज्ञा शेमुषी मतिः' **अतिप्रगल्भैः** "प्रगल्भः प्रतिभान्विते" अति प्रतिभाशालिभिः **कालविद्भिः** काल+विद्+क्विप्—यथोचित अवसर को जानने वाले, **अनुरक्त**=अनु+रञ्ज्+क्त । **अग्राम्य**—जो ग्रामीणों में प्रचलित न हो नगरिकोचित शिष्ट, ग्राम+यः=ग्राम्यः । **आख्यानक**—लघुकथा, कुछ विद्वानों ने इसका अर्थ चूर्णक किया है पर चूर्णक गद्यकाव्य का एक ही प्रकार होता है जिसमें असमासान्त अति सरल शब्दों का प्रयोग होता है "अकठोराक्षरं स्वल्पसमासं चूर्णकं विदुः" **आलेख्य**=चित्र रचना—आ+लिख्+ण्यत् । **पीवर**=परिपुष्ट, **उरु**=जंघा, **पीठबन्ध**=गजपीठस्थ आसन अर्थात् हौदा । **विनयव्यवहारिभिः**=प्रायः दुर्बल भयभीत हो विनयपूर्वक व्यवहार करता है पर वे राजपुत्र पराक्रमी होकर भी विनयशील थे । **आत्मनः प्रतिबिम्बैः इव**=राजपुत्र, रूप वल विद्या स्वभाव आदि में शूद्रक की मानो प्रतिकृति ही थे । **रममाणः**=रम+शानच्, **उवास**=वस्+लिट् व को उ संप्रसारण ।

**तस्य चातिविजिगीषुतया महासत्त्वतया च तृणमिव लघुवृत्ति स्त्रैणमालकयतः प्रथमे वयसि वर्त्तमानस्यापि रूपवतोऽपि सन्तानार्थिभिरमात्यैरपेक्षितस्यापि सुरतसुखस्योपरि द्वेष इवासीत् ।**

**शब्दार्थ**—तस्य च=और उस राजा शूद्रक की, अतिविजिगीषुतया=(पृथ्वी को, जीतने की प्रवल अभिलाषा के कारण महासत्त्वतया च=और अतिबलशालिता के कारण, तृणम् इव=तिनके के समान, लघुवृत्ति=तुच्छ व्यवहार वाला, स्त्रैणम्=स्त्री समूह को, आकलयतः=मानने वाले, प्रथमे वयसि वर्तमानस्यापि=युवावस्था में (प्रथमे वयसि) विद्यमान होने पर भी (वर्तमानस्यापि) अर्थात् युवक होने पर भी रूपवतोऽपि=सुन्दर आकृति युक्त होने पर भी, सन्तानार्थिभिः=(राजा के लिये) सन्तान चाहने वाले, अमात्यैः=मन्त्रियों के द्वारा अपेक्षितस्य अपि=प्रवल इच्छा

वाले होने पर भी, सुरतसुखस्योपरि = सम्भोग सुख के प्रति, द्वेष इव = मानो शत्रुता, आसीत् = थी ।

अनुवाद—(पृथ्वी को) जीतने की प्रबल आकांक्षा एवं अतिशय बलवत्ताके कारण उस राजा (शूद्रक) की स्त्री समुदाय के प्रति तिनके (घासफूस) के समान तुच्छ भावना थी । (यद्यपि) वह पूर्ण युवक एवं सुन्दर था, मन्त्रीजन भी उसकी सन्तान की कामना करते थे, फिर भी उसे सम्भोग सुख के प्रति मानो शत्रुता थी । अर्थात् वह स्त्री समुदाय के प्रति काम व्यापार से पूर्णतः विरत था।

संस्कृत व्याख्या—तस्य च = राज्ञः शूद्रकस्य च, अतिविजिगीषुतया = विजेतुम् इच्छा विजिगीषा, विजिगीषा अस्यास्तीति विजिगीषुः, अतिशयेन विजिगीषुः—अति—विजीगीषुस्तस्य भावस्तत्ता तया—अतिप्रबलविजयाभिलाषितया, महासत्वतया च = महत् उत्कृष्टं सत्वं बलं धैर्यं वा यस्य सः महासत्वः तस्य भावः महासत्वता तया, अतिशयबलवत्तया च, तृणम् इव = घास नामकनिः सारपदार्थमिव, लघुवत्ति = लघ्वी निःसारा तुच्छा वा वृत्तिः व्यवहारः यस्य तत्तथोक्तम् उपेक्षणीयम् इत्यर्थ, स्त्रैणम् = नस्त्रीगणम्, आकलयतः = निश्चिन्वतः युवति समूहं तृणवन्निस्सारं परिगणयत इत्यर्थः, प्रथमे वयसि वर्तमानस्यापि = प्रथमे आद्ये अर्थात् तारुण्ये वयसि—अवस्थायाम्, वर्तमानस्यापि—विद्यमानस्यापि, युवावस्थायुतस्यापि, रूपवतोऽपि = परमसौन्दर्यसम्पन्नस्यापि तस्य राज्ञः शूद्रकस्य, सन्तानार्थिभिरमात्यैपेक्षितस्यापि = सन्तानं (राज्ञः) अपत्यम् अर्थः येषान्तैः सन्तानार्थिभिःअमात्यैः, मन्त्रिभिः, अपेक्षितस्यापि = वाञ्छितस्यापि तस्य सुरतसुखस्योपरि = सुरतं रतिक्रिया तज्जनितं सुखं सुरतसुखम् आश्लेषजनितानन्दः तस्योपरि द्वेष इव = मत्सर इव आसीत् ।

संस्कृत सरलार्थ—महाराजस्य शूद्रकस्य पृथिव्या विजयकामनया महापराक्रमशालितया च स्त्रीसमुदायं प्रति तृणवदुपेक्षाभाव आसीत् । यद्यपि स युवकः अतिरूपवांचासीत्, मन्त्रिणश्चापि तस्य पुत्रप्राप्ति प्रति अभिलाषिण आसन् परं स राजा शूद्रकः कलत्राश्लेषजनितानन्द प्रति सर्वथोदासीन आसीत् अतः प्रतीयते यत्तस्य सुरतसुखस्योपरि द्वेष इवासीत् ।

टिप्पणी—अतिविजिगीषुतया—विजेतुमिच्छा विजिगीषा, विजिगीषा अस्यास्तीति विजिगीषुः, अतिशयेन विजिगीषुः अतिविजिगीषुः तस्य भावः अतिविजिगीषुता तया—अति उपपद वि उपसर्ग पूर्वक सन्नन्त जि धातु से "सनाशंसभिक्ष उः "सूत्र से उ प्रत्यय होकर अतिविजिगीषु शब्द बना उससे भावार्थक तल् प्रत्यय होकर तृतीया एक वचन का रूप है । महासत्वतया—महत् सत्वं यस्य स (बहुव्रीहि समास) महासत्वः तस्य भावस्तया । लघुवृत्ति—लघ्वी वृत्तिः यस्य तत् (बहु०) स्त्रैणम्—स्त्रीणां समूहः इस अर्थ में नञ् प्रत्यय । आकलयतः—आ + णिजन्त कल संख्याने शतृ षष्ठयेकवचने । सन्तानार्थिभिः—सन्तानम् अर्थ येषान्तैः (बहु०) यहाँ तृणमिव में उपमा अलंकार है । और सुरत सुख के समस्त कारण युवावस्था, रूपवत्ता आदि कारणों के रहते हुए भी सुरतसुख रूप कार्य के रहते हुए भी कारणों के न होने के कारण विभावना अलंकार है यह सन्देह रहने के कारण सन्देह सङ्कर नामक अलंकारों की संकीर्णता है ।

विभावना का लक्षण—विभावना बिना हेतोः कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते ।

विशेषोक्ति का लक्षण—सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिर्निगद्यते ।

सत्यपि रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे, लावण्यवति, विनयवत्सन्वयवति हृदयहारिणि चावरोधजने, स कदाचिदनवरतदोलायमानरत्नवलयो घर्घरिकास्फालन-प्रकम्प-झणझणायमान-मणिकर्णपूरः-स्वयमारब्धमृदङ्गवाद्यः सङ्गीतकप्रसङ्गेन, कदाचिदविरल-विमुक्तशरासारःशून्यीकृतकाननो मृगया-व्यापारेण, कदाचिदाबद्धविदग्धमन्डलः काव्यप्रबन्धरचनेन, कदाचिच्छास्त्रालापेन, कदाचिदाख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणाकणनेन, कदाचिदालेख्यविनोदेन, कदाचिद्वीणया, कदाचिद्दर्शनागतमुनिजन चरणसुश्रूषया, कदाचिदक्षरच्यतक मात्राच्युतक बिन्दुमती गूढचतुर्थपादप्रहेलिकाप्रदानादिभिः, वनितासम्भोगसुखपराङ्मुखः सुहृत्परिमृतो दिवसमनैषीत् ।

शब्दार्थ—इस वाक्य में स (राजा शूद्रक) कर्ता एवं अनैषीत् क्रिया पद है । शेष पदों में सप्तम्यन्त पद 'अवरोधजने' (रानियों के) विशेषण एवं प्रथमान्त पद 'सः' पद के विशेषण हैं । **सत्यपि** = विद्यमान होने पर भी, **रूपविलासोपहसितरति विभ्रमे** = रूप सौन्दर्य, **विलास** = हावभाव कटाक्षादि कामव्यापारों के द्वारा, **उपहसित** = उपहास किया है (हंसी उड़ाई है) । **रतिविभ्रमे** = कामदेव की पत्नी रति के सौन्दर्य एवं कामव्यापारों की जिन्होंने (अवरोधजने का विशेषण), **लावण्यवति** = सौन्दर्यशालिनी, **विनयवति** = विनम्रता अर्थात् पति के प्रति आदरभाव व्यक्त करने वाली लज्जालु, **अन्वयवति** = उच्चकुलीन, **हृदयहारिणि** = मन को आकृष्ट कर लेने वाली, **अवरोधजने** = अन्तःपुर की रानियों के, **सत्यपि** = विद्यमान रहने पर भी, **सः** = वह राजा शूद्रक, **कदाचित्** = कभी, **अनवरतदोलायमानरत्नवलयः**—अनवरत = निरन्तर, **दोलायमान** = हिलते हुए, **रत्नवलय** = मणियों से जटित कंगन धारण किये हुए, **घर्घरिकास्फालनप्रकम्पझणझणायमानकर्णपूरः** = **घर्घरिका** = विशेष प्रकार का वाद्य (वीणा) के, **आस्फालन** = बजाने के कारण **प्रकम्प** = हिलाने से, **झणझणायमान** = 'झनझन' इस प्रकार की ध्वनि से युक्त अर्थात् झनझनाते हुए, **मणिकर्णपूरः** + रत्नजटित कर्ण-फूलों (कानों के आभूषणों) वाला **स्वयमारब्धमृदङ्गवाद्यः** = स्वयं ही मृदङ् नामक बाजे को बजाने वाला, **संगीतकप्रसंगेन** = संगीतक (गीत, नृत्य, वाद्य) के माध्यम से (**दिवस मनैषीत्** = दिन बिताता था) इस क्रिया पद से वाक्य का सम्बन्ध है । **कदाचित्** = कभी, **अविरलविमुक्तशरासारशून्यीकृतकाननः** = **अविरल**—निरन्तर अर्थात् अधिकता से एक के बाद एक, **विमुक्त** = छोड़े गये, **शर** = बाणों की, **आसार** = धारा सम्पात वर्षा से, **शून्यीकृत** = (हिंसक पशुओं से) शून्य कर दिया है, **काननः** = जंगल जिसने (सः का विशेषण) ऐसा राजा, **मृगया व्यापारेण** = शिकार खेलने के माध्यम से (दिन बिताना था) **कदाचित्** = कभी, **आबद्धविदग्धमण्डलः** = **आबद्धः** = आयोजित किया है, **विदग्ध** = विद्वानों का, **मण्डल** = समुदाय जिसने अर्थात् विद्वानों की गोष्ठी का आयोजन करने वाला, **काव्यप्रबन्धरचनेन** = काव्य एवं कथा ग्रन्थों की रचना के द्वारा अर्थात् विद्वानों के साथ स्वयं भी कविता आदि करने वाला (दिन बिताता था), **कदाचित्** = कभी, **शास्त्रालापेन** = शास्त्रीय चर्चा के द्वारा (दिन बिताता था), **कदाचित्** = कभी, **आख्यानकाख्यायिकेतिहास पुराणाकर्णनेन** = **आख्यान** = उपाख्यान या लघु कथाएँ, **आख्यायिका** = (ऐतिहासिक) गद्य-काव्य, **इतिहास** =

पुरातन वृत्त, पुराण = श्रीमद्भागवतादि का, आकर्णनेन = श्रवण करने के द्वारा (दिन बिताता था) कभी आलेख्यविनोदेन = चित्र रचना का निर्माण या दर्शन के मनोविनोद के द्वारा आनन्द लेते हुए, कदाचिद्वीणया = कभी वीणा सुनाने या बजाने के द्वारा, कदाचिद्दर्शनागत मुनिजन चरण शुश्रूषया = कभी, दर्शनागत—राजा के दर्शन के लिए आये हुए, मुनिजन = साधु, सन्तों के चरण शुश्रूषया—पैरों की सेवा के द्वारा, कदाचिदक्षरच्युतक मात्राच्युतक बिन्दुमती गूढ़चतुर्थपाद प्रहेलिका प्रदानादिभिः = कभी अक्षरच्युतक—अक्षरच्युतक नामक काव्य अर्थात् जिसमें एक अक्षर हटा देने पर अर्थ में परिवर्तन हो जाय ऐसे काव्य के द्वारा, मात्राच्युतक = जिस छन्द की एक मात्रा हटा देने या परिवर्तित कर देने से अर्थ बदल जाय उसे मात्राच्युतक कहते हैं, ऐसे मात्राच्युतक काव्य के द्वारा, बिन्दुमती = बिन्दु रखकर अक्षर व गति एवं अर्थ बोध कराने वाले पद्यों के द्वारा, गूढ़ चतुर्थपाद = जिस श्लोक के चतुर्थ चरण के अक्षर प्रथम तीन चरणों में ही गूढ़ अर्थात् छिपे हों ऐसे गूढ़चतुर्थपाद पद्यों के द्वारा, प्रहेलिका प्रदानादिभिः = पहेली पूछने के द्वारा, (दिवसमनैषीत्), बनितासम्भोगसुखपराङ्-मुखः = स्त्री सहवास (बनिता सम्भोग) रूपी आनन्द से, पराङ्मुखः = विरत होकर, सुहृत्परिवृतः = मित्रमण्डली से घिरा हुआ, दिवसम् अनैषीत् = दिन को बिता देता था।

अनुवाद—वह राजा शूद्रक, अपने रनिवास में, सौन्दर्य और काम कलाओं से कामदेव की पत्नी रति के (कटाक्षादि) हाव भावों की हँसी उड़ाने वाली, अति सुन्दरी, विनीत, उच्चकुलीन और (अपने पति के) मन को चुरा लेने वाली स्त्रियों के रहते हुए भी स्त्री सहवासजन्य आनन्द के प्रति उपेक्षित रहकर मित्रों से घिरा हुआ, कभी स्वय ही मृदङ्ग नामक वाद्य को बजाना प्रारम्भ करने वाला, (अतएव) निरन्तर हिलते हुए मणि जटित कङ्कनों वाला घर्घरिका नामक विशेष वाद्य (वीणा) को बजाने के कारण कम्पित होने से झनझन शब्द करने वाले अर्थात् झनझनाते हुए मणियों के कर्णफूल धारण किये हुए, वह संगीत गोष्ठियों का आयोजन कर दिन बिताता था! कभी लगाता की गई बाण वर्षा से जंगलों को हिंसक पशु रहित करने वाला वह शिकार खेलने से (दिन बिताता था)। कभी विद्वन्मण्डल को एकत्र कर काव्य और प्रबन्ध रचना के द्वारा तो कभी शास्त्र चर्चा के द्वारा (दिन बिताता था)। कभी छोटी कथाओं, एतिहासिक गद्यकाव्यों एवं इतिहास, पुराणादि को सुनने के द्वारा (दिन बिताता था) कभी चित्र रचना या सुन्दर चित्रों को देखने के द्वारा तो कभी वीणा बजाकर (दिन बिताता था।) कभी राज दर्शन के लिए आये साधु सन्तों की चरण सेवा के द्वारा विन बिताता था)। कभी अक्षर च्युतक (एक अक्षर को हटने से अर्थ परिवर्तन वाले पद्यों) की, (एवं) मात्राच्युचक (एक मात्रा को हटाने से अर्थ परिवर्तन वाले पद्यों) की (एवं) बिन्दुमती (बिन्दु रख देने से अर्थात् अक्षर के स्थान पर बिन्दु का प्रयोग कर देने से अर्थपरिवर्तन वाले चित्र काव्यों) की (और) गूढ़ चतुर्थ चरण के अक्षर प्रथम तीन चरणों में छिपे हों उसे गूढ चतुर्थपाद कहते हैं ऐसे पद्य) की रचना एवं प्रहेलियाँ अर्थात् पहेली पूंछने आदि के (मनोविनोदात्मक कार्यों के) द्वारा दिन बिताता था।

संस्कृत व्याख्या—रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे = रूपं सौन्दर्यं विलासः हसित-कटाक्षादिकामव्यापारः ताभ्या रूपविलासाभ्यामुपहसितः तिरस्कृतः, रतेः कामपत्न्याः

विभ्रमः हावभावकटाक्षादि रूपो विजासो येन स तस्मिन् तादृशे (अवरोधजने इति पदस्य विशेषणम्, लावण्यवति=लावण्यं सौन्दर्यं मस्यास्तीति लावण्यवान् तस्मिन् लावण्यवति सौन्दर्य शालिनीत्यर्थः, विनयवति विनयः सदाचारः पत्युरागमने आसनादुत्थायाभिनन्दनात्मको व्यापारस्तद्वति विनीताचरणयुक्ते इत्यर्थः, अन्वयवति=अन्वयः उच्चकुलमस्यास्तीति तस्मिन् उच्चकुलीने इत्यर्थः, हृदयहारिणि च—हृदयं मनः हर्तुं माक्रष्टुं शील यस्य सः हृदयहारी तस्मिन् हृदयहारिणि मनोहारिणि च, अवरोधजने=अन्तः पुरस्थस्त्रीसमुदाये, सत्यपि विद्यमानेऽपि सः=राजा शूद्रकः, वनितासम्भोगसुखपराङ्मुखः वनितानां स्त्रीणां यः सम्भोगः रतिक्रिया तज्जन्यं यत्सुखमानन्दः तस्मात्पराङ्मुखः विमुखः सन् अर्थात् स्त्रीसहवासजन्यानन्दं प्रति सर्वथादासीनः सन्, सुहृत्परिवृतः= सुहृद्भिः सन्मित्रैः परिवृतः परिवेष्टितः सन् सङ्गीतकप्रसङ्गेनादितृतीयान्तपदनिर्दिष्ट व्यापारैः दिवसमनैषीत् इति दूरेणान्वयः। अनवरतदोलायमानरत्नवलयादीनि प्रथमान्तपदानि सः इति पदस्य विशेषणानि। तद्यथा—कदाचित्=कस्मिंश्चित् प्रकरणेऽवसरे वा इत्यर्थः, अनवरतदोलायमानरत्नवलयः—अनवरतं निरन्तरं दोलायमाने (वाद्यवादने हस्तसंचालनात्) कम्पमाने रत्नवलये रत्नजटितकङ्कणद्वयमथवा रत्नमयं कंकणद्वयं यस्य स तादृशः (शूद्रकः), घर्घरिकास्फालनप्रकम्पझणझणायमानमणिकर्णपूरः=घर्घरिकायाः वाद्यविशेषस्य (वीणायाः) आस्फालनेन वादनेन यः प्रकम्पः शरीरदोलनम् तस्माद्धेतोः झणझणायमानौ झण्-झण् इति प्रकारकं शब्दं कुर्वाणौ मणिकर्णपूरौ रत्नजटितकर्णाभूषणे यस्य स तादृशः, स्वयमारब्धमृदङ्गवाद्यः=स्वयमात्मनैवारब्धं वादयितुमारब्धीकृतं मृदङ्ग नामकं वाद्यं मन्त्रविशेषो येन स तादृशः सन् संगीतकप्रसंगेन=संगीतकम्—गीत-नृत्य-वाद्यादि समवायस्य प्रसङ्गेन सम्बन्धेन दिवसमनैषीत् इतिपदेनान्वयः। गीतं नृत्य-च वाद्यं च त्रयं सङ्गीतमुच्यते इति संगीतरत्नाकरोक्त् यनुसारेण सङ्गीतगोष्ठो व्यज्यते, तस्या आयोजनमाध्यमेन दिवसमनैषीत् इति भावः। कदाचित् अविरलविमुक्तशरासारशून्यीकृतकाननः=न विरलमविरलम् अविरलं सान्द्रं यथा स्यात्तथा विमुक्ताः प्रक्षिप्ताः ये शराः वाणा स्तेषां आसारः धारम्सपातः तेन शून्यीकृतं हिंसकपशुरहितीकृतं काननं वनं येन स तादृशः धादासारवृष्टि रिव वाणवृष्टया व्यापादिता सर्वेऽपि हिंसकपशवो येन अतएव शून्यीकृतमिव काननं येन तादृशो राजा, मृगयाव्यापारेण=आखेटकवृत्या (दिवस-मनैषीत्) तथा च, कदाचिज्जातुचित्

आबद्धविदग्धमण्डल=आवद्धमायोजितं विदग्धानां विद्वज्जनानाम् मण्डलं समूहो येन स तादृशः काव्यप्रबन्धरचनेन=काव्यानां प्रबन्धानां कथाग्रन्थानांञ्च रचनेन निर्माणेन (दिवसमनैषीत्) तथा च, कदाचित् शास्त्रालापेन=शास्त्राणां शिक्षाकल्पव्याकरण निरुक्तछन्दोज्योतिषादिष्ट्र शास्त्राणामापेनापृच्छनेन दिवसमनैषीत् "आपृच्छालापसंलापः' इत्यमरः तथा च कदाचित् आख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणाकर्णनेन=आख्यानकं लघुकथा, उपाख्यानं, वा आख्यायिका—गद्यकाव्यस्य भेदविशेषः वासवदत्ताहर्षचारिताद्यैतिहासिकगद्यकाव्यानि, इतिहासः परावत्तं पुराणानां श्रीमद्भागवताद्यष्टादश पुराणानामाकर्णनेन श्रवणेन च (दिवसमनैषीत्) तथा च कदाचित् आलेख्यविनोदेन=आलेख्यं चित्ररचना तस्य विनोदेन तद्दर्शनानन्देन तन्निर्माणानन्देन वा (दिवसमनैषीत्) कदाचित् च वीणया=वीणेतिवाद्यविशेषस्य श्रवणेन वादनेन वा (दिवसमनैषीत्) कदाचित् दर्शनागतमुनिजनचरणशुश्रूषया=दर्शनाय राजदर्शनाय आगताः समायाताः ये मुनिजनाः ऋषयः इत्यर्थः तेषां चरणशुश्रूषया पादसेवया (दिवसमनैषीत्)

कादाचित् अक्षरच्युतकमात्राच्युतक—बिन्दुमती—गूढ़चतुर्थपाद—प्रहेलिकाप्रदाना-दिभि: = अक्षरच्युतकं = अकारादिवर्णस्य च्युतिः निष्कासन यत्र तदक्षरच्युतिः तेनार्थ-परिवर्तनं जायते मात्राच्युतकम् मात्रापरित्यागेनार्थपरिवर्तनं भवति तन्मात्राच्युतकम् मात्राच्युतकम् यथा "विटः सेव्यः कुलोनस्य तिष्ठतः पथिकस्य सः" इति पदे 'विट शब्दे इकारमात्राच्युतो वट इति शब्दः वृक्षवाची भवति तेनार्थः परिवर्तते" बिन्दुमती पद्यवर्णसंख्यया बिन्दुमात्रनिवेशनेन तत्तद्वर्णोपलब्धिः बिन्दुमतीति कथ्यते एतादृश चित्रकाव्यरचनया तथा च मूढ़चतुर्थपादः—गूढ़ाः प्रथमद्वितीयतृतीय चरणेषुगुप्ताः चतुर्थपादस्य वर्णाः यस्य सः गूढ़चतुर्थपादः एवं प्रहेलिका गुप्तार्थविशिष्टा प्रश्नावली 'पहेली' इति हिन्द्याम् तस्याः प्रदावादिभिःप्रश्नादिभि स राजा शूद्रकः दिवसमनैसीत् दिनसगमयत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—राज्ञः शूद्रकस्यान्तः पुरे अनेकाः सुन्दर्यः आसन् याः स्वकीय-रूपराशिभिः विभ्रमादि कामव्यापारैश्च कामपत्नीं रतिमपि तिरस्कृतवत्यः, अप्रतिम-मनोहारिण्यः पतिसेवारताश्चासन् किन्तु विद्यमानास्वप्येतादृशीषु युवतीषु राजा तासां सहवासजन्यसुखाद्विरक्तः सम् स्वमित्रैः सहानेकविधसंगीतागोष्ठी विद्वद्गोष्ठीश्चायोज्य तत्र दिवसानगमयत् । तद्यथा—तदाचित् संगीतगोष्ठयास स्वयमेव मृदङ्ग घर्घरिकादि-वाद्यानि वादयितुमारेभे । येन कम्पमानयोः हस्तयोः रत्नजटिते कनक-वलयेऽपि दोला-यितेऽभूताम् शिरः कम्पाच्च मणिमये कर्णाभूषणे झण-झण इति प्रकारकं शब्दं चक्रतु, कदाचित् मृगयाव्यापारेण स दिवसमत्यवाहयत् यत्र मृगयायां धारासार वृष्टिरिव नैर-न्तर्येण मुक्तैरिपुभिः हिंसकपशून् व्याघ्रवराहशार्दूलादीन् निहत्य वनं शून्यीकृतवान् । कदाचित् विद्वद्गोष्ठी रायोज्य तत्र विद्वद्भि सह काव्यादीन कथाग्रन्थांश्च रचयन, शास्त्राणां प्रश्नोत्तरमाध्यमेन मनोविनोदयन्, आख्यायिकाद्यैतिहासिक गद्यकाव्यानि, महाभारतादि पुरावृत्तान्येवमष्टादशपुराणादीनि श्रण्वन् दिवसमनैषीत् । कदाचितु चित्र-रचनया कदाचिच्च वीणावादनेन दिवसमप्यवाहयत् कदाचित् स राजा स्वदर्शनायाग तानां साधुजनानां स्वयमेव चरणसेवां कुर्वन् दिवसमगलयत् कदाचिच्च स्वमित्रैः सह विविधचित्रकाव्यानां यथाऽक्षरच्युतक मात्राच्युतक बिन्दुमती गूढ़ चतुर्थपादाश्चेत्येषां रचनया प्रश्नोत्तरेण वा तथा च गूढ़ार्थविशिष्टानां प्रहेलिकादीनां प्रश्नोत्तरमाध्यमेन व्यग्र सन् दिवसमगमयत् । इत्थं स राजा शूद्रकः स्त्रीसुखपराङ्मुखः सन्नात्मानमनेकैरूपायै-विनोदयन् स्वराज्यस्य विस्ताराय विजयेच्छुरासीत् ।

**टिप्पणी रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे**—रूपं च विलासश्च रूपविलासौ (द्वन्द्व समास) रतेःविभ्रमः रतिविभ्रमः (षष्ठी तत्पुरुष) रूपविलोसाभ्याम् उपहसितः रतिविभ्रमः येन तस्मिन् (बहुव्रीहि समास) । विलास धीरा दृष्टिः गतिश्चित्रा विलासे सस्मितं वचः' इस लक्षण के अनुसार "एकटक देखना. इठलाकार चलना एवं मुस्कराते हुए बोलना" विलास नामक कामव्यापार है इसे ही विभ्रम या हावभाव भी कहा जाता है । उपहसित—उप+हस+क्त । स्त्री सौन्दर्य में कामदेव की पत्नी रति को सर्वोत्तम माना जाता जाता है इसलिए यहाँ उसकी सुन्दरता को तिरस्कृत करने की मक्ति है जिससे राजा की रानियों का अतिशय रूपवती होना ध्वनित होता है । लाव-ण्यवति—'लावण्यम् अस्यास्तीति इस अर्थ में लावण्य शब्द से "तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्" सूत्र से मतुप् प्रत्यय हुआ है, लावण्यवान् शब्द का सप्तमी एक वचन में लाव-ण्यवति रूप है । इसी प्रकार विनयमति—विनय+मतुप्, अन्वय+मतुप् अन्वयवति

'अन्वयः शुद्धवंश्योहि' के अनुसार अन्वय शुद्धवंश अर्थात् उच्चकुल का नाचक है। **अवरोध**—स्थ्यागारं भूभुजामन्तः पुरं स्यादवरोधनम् इत्यमरः=अन्तःपुर । **अनवरत दोलायमानरत्नवलयः**—रत्नानां वलये रत्नवलये (ष० तत्पु०) अनवरतं दोलायमाने रत्नवलये यस्य सः (बहु०) । प्राचीनकाल में राजाओं को राजकीय आभूषण के रूप में कटक (वलय) धारण करना अनिवार्य सा था । कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल में—कण्वाश्रम में प्रवेश करते समय राजा के द्वारा आभूषण उतार देने के बाद भी राजा के हाथ में वलय की विद्यमानता का उल्लेख है—

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्ग प्रसारिभिरश्रुभिः ।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ॥

**घर्घरिकास्फालनप्रकम्पझणझणायमानमणिकर्णपूरः**—घर्घरिकायाः आस्फालनं-घर्घरिकास्फालनम् (ष० तत्पु०) तेन यः प्रकम्प घर्घरिकास्फालनप्रकम्पः तेन झणझणायमानौ मणिकर्णपूरौ यस्य सः (बहु०) । **स्वयमारब्धमृदंगवाद्यः**—स्वयमेवारब्धं मृदङ्गवाद्यं येन सः (बहु०) । **संगीतकप्रसंगेन**—सङ्गीतकस्य प्रसङ्गेन इति सङ्गीतक प्रसंगेन (ष० तत्पु०) **संगीतम्**—"गीतं नृत्यं च वाद्यञ्च त्रयं सङ्गीतमुच्यते" गीत, नृत्य और वाद्य तीनों की एक साथ प्रवृत्ति को सङ्गीत कहते हैं । स्वार्थ में कन् प्रत्यय हुआ है । (सङ्गीत+कन्) । **अविरलविमुक्तशरासारशून्यीकृतकाननः**—न विरलम् अविरलम् (नञ् समास) अविरलं विमुक्तानां शराणामासारेण शून्यीकृतं काननं येन सः (तत्पु०गर्भित बहुव्रीहि) शून्यीकृत काननः—न शून्यमशून्यं अशून्यं शून्यं कृतमिति शून्यीकृतम्, शून्यीकृतं काननं येन सः शून्यीकृतकाननः । शून्य शब्द का कृत के साथ योग होने के कारण "कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः" सूत्र से च्वि होने पर शून्य के अन्तिम अ के स्थान पर ई होकर शून्यीकृत शब्द बनता है । इससे राजा की धनुर्विद्या में अतिशय प्रवीणता एवं आखेटप्रियता ध्वनित होती है । **मृगयाव्यापारेण**—मृगयायाः व्यापारेण (ष० तत्पु०) । **आबद्धविदग्धमण्डलः**—विदग्धानां मण्डलं विदग्धमण्डलम् (तत्पु०) आबद्धं विदग्धमण्डलं येन सः (बहु०) । **विदग्ध**=विद्वान् वि+दह+क्त । **काव्यप्रबन्धरचनेन**+काव्यनि प्रबन्धाश्चेति काव्यप्रबन्धाः (द्वन्द्व) तेषां रचनेन (तत्पु०) काव्य+'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् । इतिपण्डितराजः, "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" विश्वनाथः "अदोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि काव्यम्", आचार्य मम्मटः । **शास्त्रालापेन**+शास्त्राणामालापः, तेन (तत्पु०) **शास्त्र**+६ वेदाङ्गों को ही शास्त्र की संज्ञा दी गई है+६ वेदाङ्ग हैं+"शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां तथा ज्योतिषञ्चेति विज्ञेयं वेदानां षडङ्ककम्" । आलापः=चर्चा, पूछना 'आ+लप्+घञ्' आपृच्छालापसंलापः" इत्यमरः । **आख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणाकर्णनेन**= आख्यानकं चाख्यायिकाचेतिहासश्च पुराणञ्चेति+आख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणानि (द्वन्द्व) तेषामाकर्णनेन (तत्पु०) । **आख्यानक**=आख्यान अर्थात् दृष्टान्त रूप प्रकरण, छोटी-छोटी कथाएँ । **आख्यायिका**+गद्य काव्य का एक भेद जो सामान्यतः ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आधारित होता है जैसे बाणकृत हर्षचरित तथा सुबन्धुकृत वासवदत्ता आदि । साहित्य दर्पण में आख्यायिका एवं कथा में कुछ खास भेद है किन्तु दण्डी कथा और आख्यायिका में नाममात्र का ही अन्तर मानते हैं जैसे—साहित्यदर्पण "आख्यायिका कथावत् स्यात् कवेर्वंशादिकीर्तनम् अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित्"

आर्याविक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्" इत्यादि। दण्डी—"तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता"।

इतिहास—'इति ह आस' निश्चय ही ऐसा था, इस प्रकार सत्य घटना का यथार्थ वर्णन ही इतिहास है। जैसे रामायण एवं महाभारत। पुराण—पुराणों की संख्या १८ है। पुराण की पंचलक्षणात्मक परिभाषा इस प्रकार है—"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।" (विष्णु पुराणं) ऐतरेय ब्राह्मण की भूमिका में सायण ने "संसार की उत्पत्ति और विकास क्रम के बोधक ग्रन्थ को पुराण की संज्ञा दी है—"जगतः प्रागवस्थामनुक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्।"

आलेख्यविनोदेन—आलेख्यस्य विनोदः, आलेख्यविनोदस्तेन। (तत्पु०) आलेख्य =चित्र रचना। दर्शनागतमुनिजनचरणसुश्रूषया=दर्शनायागतानां मुनिजनां चरणानां सुश्रूषया। (तत्पुरुष)

अक्षरच्युतक—यह चित्रकाव्य का एक भेद है, जिसमें से ए्क अक्षर निकाल देने पर अर्थ परिवर्तन हो जाता है। जैसे—

"कुर्वन् दिवाकराश्लेषं दधच्चरणडम्बरम्।
देव यौष्माक सेनायाः करेणुः प्रसरत्यसौ॥"

यहाँ उत्तरार्द्ध को 'करेणु' शब्द का अर्थ हाथी होने से वाक्यार्थ इस प्रकार है—"महाराज! आपकी सेना का यह हाथी आगे बढ़ रहा है किन्तु 'करेणुः' में क को हटा देने पर 'रेणुः' शब्द रह जायेगा जिसका अर्थ 'धूलि' है। अतः वाक्यार्थ इस प्रकार बदल जायेगा—"महाराज! आपकी सेना की यह धूल (चारों ओर) फैल रही है।" मात्राच्युतक—अक्षरच्युतक की भाँति ही मात्रा को निकाल देने से जहाँ अर्थ परिवर्तन हो जाता है उसे मात्राच्युतक कहते हैं। जैसे—

"मूलस्थितिमधः कुर्वन् पात्रैर्जुष्टो गताक्षरैः।
विटः सेव्य कुलीनस्य तिष्ठतः पथिकस्य च॥"

यहाँ 'विटः' शब्द जार पुरुष, लम्पट, वेश्यापति, राजाओं के अन्तःपुर में रहने वाला परिचारक विशेष अर्थवाची है, किन्तु इ मात्रा को हटा देने पर 'वट' शब्द रह जायेगा जिसका अर्थ 'बरगद' नामक वृक्ष विशेष होता है। अतः मात्राच्युतक भी चित्रकाव्य का ही एक प्रकार है।

विन्दुमती—बिन्दुओं से युक्त अर्थात् श्लोक के अक्षरों के स्थान पर बिन्दु रख कर यथास्थान मात्राओ को लगाकर उन अक्षरों का ज्ञान हो सके जैसे—

त्रिनयन चूडारत्नं मित्रं सिन्धोः कुमुद्वतीबन्धुः।
अयमुदयति घुसृणारुणरमणीवदनोपमश्चन्द्रः॥"

इस श्लोक में अक्षरों को हटाकर निम्नलिखित रूप से बिन्दुओं को स्थापित कर श्लोक का ज्ञान करना—

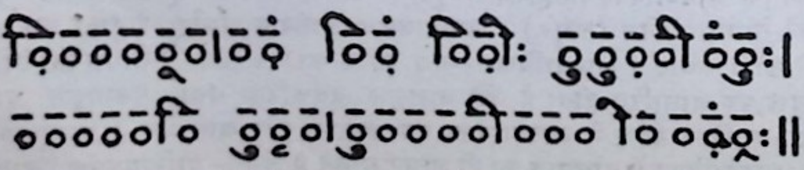

यह भी चित्र काव्य का ही एक भेद है।

गूढ़चतुर्थपाद:—गूढ़: चतुर्थ: पाद: यस्य स: छुपा हुआ है चौथा चरण जिसका अर्थात् जिस श्लोक के चतुर्थ चरण के अक्षर प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय चरणों में ही छिपे हों उसे गूढ़ चतुर्थपाद नामक चित्रकाव्य कहते हैं। जैसे—

४ ३ ६ १
दयावान् प्रयत: शुद्ध: प्रबुद्धकमलेक्षण:।

२ ४ १ २३४५ ६
पापापहस्त्रिभुवनं, (बुद्ध: पायादपायत:)॥

इस श्लोक में "बुद्ध: पापादपायत:" इस चतुर्थ पाद के अक्षर प्रथम तीन चरणों में विद्यमान हैं जिनका संकेत अङ्कों के माध्यम से श्लोक में किया गया है।

प्रहेलिका—अपने मूल अर्थ को छिपाकर किसी अन्य अर्थ को व्यक्त करते हुए जो प्रश्न किए जाते हैं उसे प्रहेलिका (पहेली) कहते हैं। प्रहेलिका लक्षण—

"व्यक्तीकृत्य कमप्यर्थं स्वरूपार्थस्यगोपना।
यत्र बाह्यान्तरावर्थौ कथ्येते सा प्रहेलिका।"

शाब्दी और आर्थी भेद से प्रहेलिका दो प्रकार की होती है जैसे—

"तरुण्यालिङ्गित: कण्ठे नितम्बस्थलमाश्रित:।
गुरुणां सन्निधानेऽपि क: कूजति मुहुर्मुहु:॥"

यहाँ आपातत: ऐसा प्रतीत होता है कि इसका उत्तर प्रियतम है किन्तु वस्तुत: इसका उत्तर 'जल से भरा हुआ घड़ा है।' क्योंकि वही युवती के नितम्ब अर्थात् कटि पर स्थित होता है, गले में उसकी भुजा का आलिंगन भी होता है और गुरुजनों के सामने से चलते समय भी उस घड़े का जल ध्वनि करता ही है। किन्तु गुरुजनों के समक्ष प्रेमी-प्रेमिका का ऐसा व्यवहार संभव नहीं है।

राजा शूद्रक अपने हम उमर साथियों के साथ कभी-कभी चित्र काव्यात्मक पद्यों के द्वारा और कभी पहेलियाँ आदि पूँछकर मनोविनोद करता हुआ दिन बिता दिया करता था। इससे राजा का अतिशय वैदुष्य प्रकट होता है।

वनितासम्भोगसुखपराङ्मुख:—सम्भोग जन्यं सुखमिति सम्भोगसुखम् वनितानां सम्भोगसुखं, वनितासम्भोगसुखं तस्मात् पराङ्मुख: (तत्पु०) सम्भोग:=रतिक्रिया, सम्+भुज्+घञ्। पराङ्मुख:=मुँह तोड़ना या रुचि न लेना, उदासीन रहना या अनुकूल न होना। परा+अञ्च्+क्विन+मुख: सुहृत्परिवृत:—सु शोभनानि हृत् हृदयानि येषान्ते सुहृद: तै: परिवृत: इति सुहृत्परिवृत:=अच्छे मित्रों से घिरा हुआ। परिवृत—परि+वृ+क्त। अनैषीत्—नी धातु का परमैपद में लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप (बिताया)।

**यथैव च दिवसमेवमारब्ध-विविधक्रीडापरिहासचतुरै: सुहृद्भिरुपेतो निशामनैषीत्।**

**एकदा तु नातिदूरोदिते नवनलिनदलसम्पुटभिदि किञ्चिन्मुक्त पाटलिम्नि भगवति सहस्रमरीचिमालिनि, राजानमास्थानमण्डपगतमङ्गनाजनविरुद्धेन वामपार्श्वविलम्बिना कौक्षेयकेण सन्निहितविषधरेव चन्दनलताभीषण रमणीयाकृति: अविरलचन्दनानुलेपनधवलितस्तनतटा उन्मज्जदैरावत-**

कुम्भमण्डलेव मन्दाकिनी चूडामणिसंक्रान्तप्रतिबिम्बच्छलेन राजाज्ञेव मूर्तिमती राजभिः शिरोभिरुह्यमाना शरदिव कलहंसधवलाम्बरा जामदग्न्यपरशुधारेव वशीकृतसकलराजमण्डला विन्ध्यवनभूमिरिव वेत्रलतावती राज्याधिदेवतेव विग्रहिणी प्रतीहारी समुपसृत्य क्षितितलनिहितजानुकरकमला सविनयमब्रवीत् ।

शब्दार्थ—यथैव च=और जिस प्रकार, दिवसम्=दिन को (विविध कार्यों में बिताता था), एवम्=उसी प्रकार, आरब्धविविधक्रीडा परिहासचतुरैः=प्रारम्भ की हैं (आरब्ध) अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ (खेल) जिन्होंने (विविध क्रीड़ा) ऐसे हँसी-मजाक करने में प्रवीण (परिहास चतुरैः) मित्रों से युक्त (सुहृद्भिरुपेतः), रात्रि को बिता देता था (निशामनैषीत्) ।

एकदा तु=एक बार तो, नातिदूरोदिते=उदय हुए बहुत समय नहीं हुआ था जिसका ऐसे अर्थात् अभी-अभी आकाश में प्रकट हुए (सहस्रमरीचिमालिनि=सूर्य का विशेषण), उषाकाल में, नवनलिनदलसम्पुटभिदि=नवीन पत्तियों पंखुड़ियों वाले कमल की कली (सम्पुट) को विकसित करने वाले, किञ्चिन्मुक्तपाटलिम्नि=कुछ-कुछ त्याग दी है लालिमा जिसने अर्थात् अभी जिसकी लालिमा भी पूर्णतः समाप्त नहीं हो पाई है ऐसे, भगवति=भगवान्, सहस्रमरीचिमालिनि=हजारों किरणों को धारण करने वाले सूर्य के अभी-अभी उदय होने पर अर्थात् उषाकाल में ही—प्रतीहारी राजा के समीप जाकर विनयपूर्वक बोली । इस प्रकार वाक्य की संगति है । समस्त प्रथमान्त शब्द प्रतीहारी के विशेषण हैं—

आस्थानमण्डपगतम्=सभा-मण्डप में बैठे हुए या विद्यमान, राजानम्=राजा के समीप अर्थात् जब राजा सभा-मण्डप में बैठे थे तभी, अंगनाजनविरुद्धेन=स्त्रियों के (स्वभाव के) विपरीत, वामपार्श्वविलम्बिना=(शरीर के) बायें अंग में लटकती हुई अर्थात् बगल में लटकती हुई, कौक्षेयकेण=तलवार से, सन्निहितविषधरेव—सन्निहित=लिपटे हुए, विषधरा=सर्पों वाली, चन्दनलताभीषणरमणीयाकृतिः=चन्दनलता के समान भयंकर (भीषण) एवं सुन्दर, मनोहर लगने वाली आकृति से युक्त थी (प्रतीहारी का विशेषण) अर्थात् सर्प के कारण भयंकर किन्तु सुगन्धियुक्त होने से जैसे चन्दनलता मनोहर लगती है, उसी प्रकार आकृति से मधुर किन्तु तलवार धारण करने से वह प्रतीहारी भयंकर प्रतीत हो रही थी। अविरलचन्दनानुलेपनधवलितस्तनतटा—अविरल=घने, चन्दनानुलेपन=चन्दन के लेप करने से, धवलित=श्वेत हो गये हैं, स्तनतटा=स्तन प्रदेश, स्तनों के किनारे जिसके, अतएव उन्मज्जदैरावत कुम्भमण्डलेव मन्दाकिनी—उन्मज्जत्=स्नान करते समय पानी से ऊपर उठे हुए, ऐरावत=इन्द्र के (श्वेत) ऐरावत हाथी के, कुम्भमण्डल=कुम्भस्थल अर्थात् सिर का ऊपरी मांसलस्थल के युक्त, मन्दाकिनी=स्वर्ग गंगा के समान, अर्थात् चन्दन लेप से श्वेत उसके उरोज ऐसे लग रहे थे जैसे गंगा-स्नान के समय ऐरावत का सिर पानी से ऊपर दीख रहा हो और प्रतीहारी स्वयं आकाश-गंगा की भाँति श्वेत प्रतीत हो रही थी । चूड़ामणि संक्रान्तप्रतिबिम्बच्छलेन—चूड़ामणि=मुकुट-मणियों में अर्थात् राजसभा में बैठे राजाओं के मुकुटों में जड़ी मोतियों में, संक्रान्तप्रतिबिम्ब=पड़े हुए प्रतिबिम्ब, प्रतिच्छाया के, छलेन=बहाने से, मूर्तिमती=स्वरूपधारिणी अर्थात् प्रतीहारी का रूप धारण करने वाली, राजाज्ञा इव=महाराजा शूद्रक की आज्ञा के समान, राजभिः=

सामन्त राजाओं के द्वारा, **शिरोभिः**=सिरों से अर्थात् सिर पर, **उह्यमाना**=धारण की जाती हुई अर्थात् प्रतीहारी का प्रतिबिम्ब राजसभा में बैठे समस्त सामन्त राजाओं की मुकुट-मणियों में पड़ रहा था। अतः ऐसा लग रहा था कि मानों वह प्रतीहारी का प्रतिबिम्ब नहीं है, अपितु राजा की आज्ञा ने ही वह रूप धारण कर लिया है, तभी तो समस्त राजा उसे अपने सिर पर धारण किये हुए हैं। **शरदिव**=शरद्ऋतु के समान, **कलहंसधवलाम्बरा**=कलहंस नामक हंस विशेष के समान श्वेत (वस्त्र) साड़ी वाली अथवा कलहंसों के जोड़ों से अंकित श्वेत वस्त्र धारण करने वाली प्रतीहारी, शरद्ऋतु के पक्ष में—कलहंस रूपी श्वेत वस्त्र धारण करने वाली, **जामदग्न्य परशुधारेव**=परशुराम के परशु (फरसा) की धारा के समान, **वशीकृतसकलराजमण्डला**=वश में कर लिया या आकृष्ट कर लिया है समस्त राज-समुदाय को जिसने, **विन्ध्यवनभूमिरिव**=विन्ध्याचल की जंगली भूमि के समान, **वेत्रलतावती**=बेंत की छड़ी (लता) धारण किये हुए, विन्ध्यवनभूमि के पक्ष में—बेंत की लताओं से युक्त। **राज्याधिदेवतेन**=राज्य की अधिष्ठात्री देवी के समान अर्थात् राज्य की कुलदेवी के समान, **विग्रहिणी**=रूप धारण किये हुए, **प्रतीहारी**=द्वारपालिका के रूप में नियुक्त सेविका, **समुपसृत्य**=राजा के समीप पहुँचकर, **क्षितितलनिहितजानुकरकमला**=पृथ्वी पर घुटने टेककर एवं हाथों को रखकर अर्थात् हाथों से भूमि स्पर्श कर, **सविनयम्**=विनम्रतापूर्वक, **अब्रवीत्**=बोली।

**अनुवाद**—जिस प्रकार राजा स्त्री सुख की उपेक्षा कर सङ्गीत आदि विविध क्रीड़ाओं के द्वारा दिन बिताता था उसी प्रकार परिहास कुशल मित्रों के साथ रात्रि भी बिता देता था।

एक बार नवीन कमल पंखुड़ियों की कलियों को विकसित करने वाले, कुछ-कुछ लालिमा का त्याग किये हुए (न कि पूर्णतः लालिमा से मुक्त) हजारों किरणों से सुशोभित भगवान सूर्य के सद्यः उदित होते ही (उषा काल में ही) राजा के सभामण्डप में आसीन होने पर उनके समीप आकर घुटने भूमि पर टेक कर तथा हाथों से भूमि छू कर (एक) द्वारपालिका (प्रतीहारी) ने राजा से विनयपूर्वक कहा। वह प्रतीहारी—स्त्री स्वभाव के विपरीत बायीं ओर अर्थात् बगल में तलवार लटकाने के कारण सर्पों से लिपटी हुई चन्दनलता की भाँति भयंकर किन्तु सुन्दर आकृति से युक्त थी, अर्थात् देखने में डरावनी किन्तु सुन्दर भी लग रही थी। गाढ़े चन्दन के लेप से श्वेत स्तनों के किनारे वाली वह पानी से ऊपर निकले हुए ऐरावत के कुम्भस्थलों से युक्त आकाश गङ्गा के समान लग रही थी। (सभासीन राजाओं की) मुकुट मणियों में पड़ने वाला उसका प्रतिबिम्ब मानों साक्षात् शरीरधारिणी राजा की आज्ञा हो तभी तो वे सभी सामन्त राजा (प्रतिबिम्ब के माध्यम से) राजाज्ञा रूपा प्रतीहारी को सिर पर धारण किये हुए थे। कलहंस (राजहंस) रूपी श्वेत वस्त्र धारिणी या श्वेत राजहंसों से श्वेत आकाश वाली शरद् ऋतु के समान वह कलहंसों के समान श्वेत वस्त्र धारण किये थी अथवा कलहंसों के जोड़ों से चित्रित श्वेत साड़ी पहने हुए थी। जमदग्नि पुत्र परशुराम के परशु (फरसे) की धार के समान उसने समस्त राज समुदाय को (अपनी ओर आकृष्ट कर) वशीभूत कर लिया था। बेंत की लताओं से युक्त विन्ध्याचल की वन भूमि (जंगली भूमि) के समान वह बेंत की छड़ी लिए हुए थी और वह राजकुल की शरीरधारिणी कुलदेवी के समान थी।

**भावार्थ**—कवि ने इस गद्यखण्ड में अनेक उपमा उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से प्रतीहारी का वर्णन किया है—

दिन के समान ही रात्रि को भी विविध कार्यों में निपुण हँसी मजाक करने वाले मित्रों के साथ बिता देने वाले राजा शूद्रक के पास एक बार बहुत सबेरे जब तक कि सूर्य की लालिमा भी पूर्णतः समाप्त न हुई थी तभी एक द्वारपालिका ने, जो राजकीय नियमानुसार बगल में तलवार लटकाये थी, अतः सुन्दराकृति होते हुए भी स्त्री जनोचित व्यवहार से विपरीत आयुध धारण करने के कारण उसी प्रकार डरावनी किन्तु रमणीय थी जैसे सर्पों से युक्त शीतल सुगन्धित चन्दन की लता मनोहर किन्तु भयानक लगती है। गाढ़े चन्दन से लिप्त उसके पुष्ट स्तन आकाश-गंगा में डूबे ऐरावत के ऊपर उभरे हुए कुम्भ स्थल से थे अतः वह स्वयं आकाश-गंगा सी लग रही थी। सभा में बैठे राजाओं की मुकुट मणियों में प्रतिबिम्बित उसका रूप साक्षात् राजा की आज्ञा-सा लग रहा था क्योंकि राजाज्ञा को सभी लोग सिर पर धारण करते ही हैं अतः उन सभी सभासीन राजाओं ने भी उसे सिर पर धारण कर रखा था। राजहंसों के समान या राजहंसों से चित्रित श्वेत वस्त्र धारण करने के कारण वह शरद् ऋतु के समान लग रही थी क्योंकि शरद् ऋतु पर आकाश में हंस उड़ने लगते हैं अतः वही हंसों रूपी वस्त्र शरद् ऋतु का परिधान माना जा सकता है। जमदग्नि-पुत्र परशुराम ने अपने कुठार से २१ बार क्षत्रियों का वध करके समस्त राजाओं को अपने अधीन कर लिया था, (इस किंवदन्ती) के अनुरूप प्रतीहारी ने अपने विशेष रूप व्यक्तित्व से सभी राजसमुदाय को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था अतः वह परशुधार के समान थी, विन्ध्याचल के जंगलों में बेंत की लताएँ हैं और प्रतीहारी ने बेंत की छड़ी धारण कर रखी थी अतः वह विन्ध्य वन भूमि-सी लग रही थी, राजा के समीप राजकुल की कुलदेवी का जाना अत्यन्त उचित है, अतः उस साक्षात् कुलदेवी के समान प्रतीत होने वाली प्रतीहारी ने राजा के पास जाकर घुटने टेक कर हाथों से भूमि को छूती हुई विनम्रतापूर्वक कहा।

**संस्कृत व्याख्या**—सः राजा शूद्रकः यथैव येन प्रकारेण दिवसम् स्त्रीसुखसङ्ग-विवर्जितः सन् सङ्गीतादिक्रीड़ाभिरगमयत् तथैवेति पूर्वेणाभिसम्बन्धः। **आरब्धविविध-क्रीड़ापरिहासचतुरैः**—आरब्धाः प्रवर्तिताः विविधास्वनेकासु क्रीड़ासु खेलासु ये परि-हासाः उपहासाः तेषु चतुरैः कुशलैः अति प्रवीणैरित्यर्थः तादृशैः **सुहृद्भिः**—मित्रैः उपेतः युक्तः सन् निशां रात्रिम् अपि अनैषीत् अगमयत्। अनेन तस्य सम्भोगसुखस्योपरि द्वेष इवासीदिति पूर्वोक्तकथनं चरितार्थं भवति।

**एकदा**—एकस्मिन् समये प्रत्यूषे प्रतिहारी समुपसृत्य राजानं सविनयमब्रवीत् इति दूरेणान्वयः। अत्र प्रथमान्तानि पदानि प्रतिहारीति पदस्य विशेषणानि सप्तम्यन्तानि च सहस्रमालिनीति पदस्य। **नवनलिनदलसम्पुटभिदि**—नवानि नूतनानि यानि नलिनानि कमलानि तेषां दलानां पत्राणां यत् सम्पुट कुड्मलीभूतं स्वरूपं तत् भिनत्ति दूरीकरोति विकासयतीत्यर्थः यः सः तस्मिन्निति नवनलिनदलसम्पुटभिदि—अभिनवपद्मपत्रकोरक-विकासके, **किञ्चिन्मुक्त पाटलिम्नि**—किंचित्—ईषत् मुक्तः त्यक्तः पाटलिमा रक्तिमा येन स तस्मिन् ईषत्परित्यक्तारुणिम्नि, अथवा 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः इत्यमरोक्त्यनुसारेणेषत् परित्यक्तं श्वेतरक्तत्वं येन स तस्मिन् तथोक्ते, **भगवति**—ऐश्वर्यशालिनि **सहस्रमरीचि मालिनि**—सहस्रसंख्याः ये मरीचयः रश्मयः तैःमालते शोभते यः तस्मिन्निति सहस्ररश्मि शोभमाने तथोक्ते सूर्ये, **नातिदूरोदिते**—नातिदूरम् अल्पकालीनम् उदितम् उद्गमनं यस्य स

तस्मिन् समयेऽत्युषसि सूर्योदयसमकालमेवेत्यर्थः **आस्थानमण्डपगतम्**—आ समन्तात् स्थीयतेऽस्मिन्निति आस्थानम् आस्थानस्य मण्डपमित्यास्थानमण्डपम् सभागृहं तस्मिन् गतं स्थितं विद्यमानं वा, **राजानम्**—नृपं शूद्रकम्, शूद्रकान्तिकमित्यर्थः, **समुपसृत्य**—समीपमागत्य, **अंगनाजनविरुद्धेन**—अंगनाजनः स्त्रीजनस्तस्य **विरुद्धेन**—विपरीताचरणेन, आयुधधारणं-स्त्रीस्वभावव्यवहार विरुद्धमिति हेतुनोक्तमृअंगनाजनविरुद्धेन **वामपार्श्वविलम्बिना**—वामपार्श्वे शरीरस्य सव्यभागे अवलम्बतेऽवतिष्ठते इत्येवंविधं शीलं यस्य तेन, **कौक्षेयकेण** खड्गेन (हेतुना) **सन्निहितविषधरा**—सन्निहितः समीपे पार्श्वे वा स्थितः विषधरः सर्पो यस्याः सा—निकटस्थितसर्पा, सर्पैर्वलयितेति तात्पर्यम्, **चन्दनलता इव**—मलयजवल्लरीव, **भीषणरमणीयाकृतिः**—भीषणा भयानका, रमणीया मनोहरा चाकृतिः रूपं यस्याः सा तथोक्ता—यथा सर्पधारणत्वात् स्वभावतः सुगन्धिशीतलतादि—गुणविशेषाद्रमणोयापि चन्दनलता भयानका भवति तथैव स्वभावतो मधुराकृतिसम्पन्नाऽपि सा प्रतीहारी खड्ग-धारणत्वाद् भीषणाऽपि परिलक्ष्यते स्म इत्यभिप्रायः। **अविरलचन्दनानुलेपनधवलित-स्तनतटा**—न विरलमित्यविरलं सघनं यत् चन्दनस्य मलयजस्यानुलेपनमुद्वर्तनं तेन धवलिते श्वेतीकृते स्तनयोरुरोजयोःतटे प्रान्ते यस्याः सा तथोक्ता, अतएव, उन्मज्जतः स्नानावसरे जलादुपरि उपप्लवतः **ऐरावतस्येन्द्रहस्तिनः कुम्भमण्डलम्** शिरःस्थमांसपिण्डं यस्यां सा उन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डला **मन्दाकिनीव स्वर्गंगा** इव आकाशगंगेव शोभमाना, **चूड़ामणिसंक्रान्तप्रतिबिम्बच्छलेन**—चूड़ामणिषु सभासीनराजमण्डलस्य मुकुटस्थ रत्नेषु संक्रान्तं प्रतिफलितं यत् प्रतिबिम्बं प्रतीहार्य्याः प्रतिच्छाया तस्याश्छलेन व्याजेन **राजभिः** सन्निहितसामन्तनृपैः **शिरोभिः**—मस्तकैः, **उह्यमाना**—धार्यमाणा, **मूर्तिमती**—देहधारिणी **राजाज्ञा इव** राज्ञः शूद्रकस्य आदेश इव शोभमाना, अत्र प्रतीहार्याः प्रतिबिम्बे राजाज्ञायाः उत्प्रेक्षा सा च छलशब्द प्रयोगेनापह्नवयुतेति सापह्नवोत्प्रेक्षा, अतएव राज्ञां चूड़ामणिषु संक्रान्तं प्रतिबिम्बं नास्ति प्रतीहार्य्याः प्रतिबिम्बमपितु राज्ञाज्ञैव, तस्मादेव राजभिः शिरोभिरुह्यते सादरं शिरोभिः धार्यते इतिरूपेऽर्थसंगतिः, **शरदिव**—शरद् ऋतुरिव वर्षावसान समय इव **कलहंसधवलाम्बरा**—कलहंसा राजहंसा इव धवलानि श्वेतानि अम्बराणि वस्त्राणि यस्याः सा तादृशी प्रतीहारी, **शरत्पक्षे**—कलहंसा एव धवलमम्वरं वस्त्रं यस्याः सा, **जामदग्न्यपरशुधारा इव**—जमदग्नेरपत्यं पुमान् अथवा जमदग्नेर्गोत्रापत्यं पुमान् जामदग्न्यः तस्य परशोः कुठारस्य धारा निशितांश इव, **वशीकृतसकलराजमण्डला**—वशीकृतं स्वीयेनाकर्षक स्वरूपेण व्यक्तित्वेन वा आकृष्टं सकलं सम्पूर्णं राजमण्डलं नृपसमूहः यया सा तथोक्ता प्रतीहारी, **जामदग्न्यपक्षे**—वशीकृतं परशुबलेन बलात् स्वायत्तीकृतं सकलराजमण्डलं समस्तक्षत्रियराजसमुदायो यया सा तादृशी परशुधारा इव, **विन्ध्यवनभूमिरिव**—विन्ध्यं विन्ध्याचलः तस्य वनं काननं तस्य भूमिरिव पृथिवीव, **वेत्रलतावती**—वेत्राणां वेतसानां लताः वल्लयः यस्यां सा वेत्रलतावती वनभूमिः प्रतीहारीपक्षे—वेत्रस्य वेतसः लता यष्टिः हस्ते यस्याः सा तादृशी, **विग्रहिणी**—शरीरधारिणी **राज्याधिदेवता इव**—राज्यस्य राजकुलस्य अधिदेवता कुलदेवता राजकुलस्याधिष्ठात्री देवता इव सा प्रतीहारी राजानं समुपसृत्य **क्षितितलनिहितजानुकर-कमला**—क्षितेस्तलं क्षितितलं भूमितलं तस्मिन् निहितौ स्थापितौ जानू नलकीलौ (घुटने इति हिन्दीभाषायाम्) अथ च कर कमले कमलरूपिणौ करौ हस्तौ यया सा तथोक्ता प्रतीहारी **सविनयम्**—विनयेन सहितमिति सविनयम् विनयपूर्वकम् **अब्रवीत्**—अवोचत्।

**संस्कृत सरलार्थ**—वनितासम्भोगसुख पराङ्मुखो राजा शूद्रको यथा संगीतादि विविधि क्रीडाभिः दिवसमत्यवाहयत् तथैव स परिहास कुशलैः मित्रैः सह रात्रिमप्यनयत्।

एकस्मिन् समये यदा सहस्रकिरणमाली भगवान् सूर्यः स्वकीयं श्वेतरक्तत्वमीषदपहाय नवकमलदलसम्पुट मुद्भेदयन नातिदूरोदित आसीत्, एवम्भूते प्रत्यूषसमय एव सभामण्डपाधिष्ठितं राजानं शूद्रकं समुपेत्य द्वारदेशनियुक्ता, प्रतीहारी भूमितले जानू करौ च संस्थाप्य विनयपूर्वकमवोचत्। द्वारपालिकेयं समाश्लिष्टभुजङ्गा चन्दनवल्लरीव भीषणाकृति रथ च रमणीयाकृतिरासीत्, यतो ह्यस्याः सव्यपार्श्वे खड्गमेकमवलम्वमान मासीत् स्वरुपतश्चेयमासीन्मनोहारिणी। स्वभावतो रमणीयापि चन्दनलता यथा सन्निहितसर्पत्वेन भयानका भवति तथैवेयं स्वभावतो मनोहारिणी भूत्वापि वामपार्श्वस्थखड्गत्वेन प्रमदाजनस्वभावविरुद्धेन भीषणाकृतिरासीत्। गाढचन्दानुलेपनधवलित कुचतटेयं जलावगाहनपरैरावतशिरःस्थमांसपिण्डा शुभ्रजला वियदगङ्गेवासीत्। श्वेतराजहंसा इव सा शुभ्रवस्त्रधारिणी शरदृतुरिवासीत्, शरदृतुरपि शुभ्रराजहंसरुपिगगनं धारयति। समीपस्थराजमस्तककिरीटरत्नेषु संक्रान्तं यत्तस्याः प्रतिविम्वं तच्छलेन सा राजभिर्मस्तके धार्यमाणा विग्रहवती राज्ञः शूद्रकस्याज्ञेवासीत्। दर्शनाकृष्टसकलराजसमूहा सा परशुराम कुठारधारेवासीत्, पुरा परशुरामेणापि स्वकुठारवलेन सर्वे क्षत्रिया वशीकृता आसन्। राजद्वारनियमानुसारं वेत्रयष्टिधारिणी सा प्रतीहारी विन्ध्यपर्वतभूमि रिवासीत्, विन्ध्यभूमिः वेतसलतावती भवत्मेव। अथ च स मूर्तिमती शूद्रकराज्यस्याधिष्ठातृदेवतवासीत्।

**टिप्पणी—आरब्धविविध क्रीड़ापरिहासचतुरैः**—आरब्धा ये विविधाः क्रीडापरिहासाः तेषु चतुरास्तैः (आरम्भ की गई विविध खेलरूपी हँसी मजाकों से चतुर) **आरब्ध**—आ+रभ्+क्त।

**नवनलिनदलसम्पुटभिदि**—नलिनीनां दलानि नलिनदलानि (तत्पु०) नवानि च तानि नलिनीदलानि नवनलिनदलानि (कर्म धारय) तेषां सम्पुटभिनत्ति यः स तस्मिन् (बहु०) **दल**—'पत्रं पलाश छदनं दलं पर्णं छदः पुमान्" इत्यमरः। **किञ्चिन्मुक्त पाटलिम्नि**—किञ्चित् यथा स्यात्तथा मुक्तः पाटलिमा येनः स तस्मिन् (बहु०) "श्वेतरक्तस्तु: पाटलः" इत्यमरः। पाटलिम्नि—पाटल+इमनिच् (सप्तमी एकवचन का रूप) **मुक्त**—मुच्+क्त भगवति—भगः ऐश्वर्यमस्यास्तीति भगवान् तस्मिन् **सहस्रमरीचिमालिनि**—सहस्रसख्यैः मरीचिभिःमालते शोभते यः स तस्मिन् (बहु०) **आस्थानमण्डपगतम्**—आस्थानस्य मण्डपमास्थानमण्डपं तस्मिन् गतः तम् (तत्पु० बहु०) **आस्थान=सभा**—"समज्या परिषद् गोष्ठी सभा समिति संसदः। आस्थानी क्लीवमास्थानं स्त्रीनपुंसकयोः सदा" इत्यमरः। **अंगनाजनविरुद्धेन**—अंगनाजनस्य विरुद्धेन (तत्पु०) **अंगना**—अंग+न+टाप् (रमणी) प्रशस्तानि अंगानि सन्ति यस्याः सा अंगना।

**वामपार्श्वविलम्बिना**—वामपार्श्वे अवलम्बते इत्येवंशीलं यस्य तेन **कौक्षेयकेण**—कुक्षि शब्द से "कुलकुक्षिइत्यादि" सूत्र से ढकञ् प्रत्यय ढक् को एय होकर कौक्षेयक शब्द बना जिसका तृतीया एकवचन का रूप है। तरवारिमंण्डलाग्रः खड्गकौक्षेयकोऽसिः "इति कोशः। **सन्निहितविषधरा**—सन्निहितः विषधरो यस्याः=सा (बहु०), "सर्पः आशीविषो विषधरः" इत्यमरः। सन्निहित—सम्+नि+धा+क्त। **भीषणरमणीयाकृतिः**—भीषणा च रमणीया चाकृतिः यस्याः सा (द्वन्द्व-बहु०)। रमणीय=रम्+अनीयर्। **अविरलचन्दनानुलेपनधवलितस्तनतटा**—चन्दनस्यानुलेपनं चन्दनानुलेपनं (तत्पु०) अविरलं च यत् चन्दनानुलेपनम्, अविरलचन्दनानुलेपनम्, तेन धवलितं स्तनयोस्तटं यस्याः सा (बहु०) **उन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डला**—ऐरावतस्य कुम्भमण्डलमैरावतकुम्भमण्डलम् (तत्पु०) उन्मज्जत् ऐरावतकुम्भमण्डलं यस्यां सा (बहु०)।

**उन्मज्जत्**—उद्+मस्ज+शतृ। (स्नान करता हुआ)। **ऐरावत**—समुद्रमन्थन से निकले १४ रत्नों में एक ऐरावत हाथी भी था जो श्वेत रंग का था और इन्द्र को दिया गया था। **चूड़ामणिसंक्रान्त प्रतिविम्बच्छलेन**—चूडानां मणयः चूडामणयः (तत्पु०) तेषु संक्रान्तं यत् प्रतिविम्बं तत् चूडामणिसंक्रान्तप्रतिविम्बं तस्य छलेन (तत्पु०) सङ्क्रान्त—सम्+क्रम्+क्त।

**मूर्तिमती**—मूर्ति+मतुप्+ङीप्। **उह्यमाना**—वह्+यक्+शानच्+टाप् (धारण की जाती हुई)। **कलहंसधवलाम्बरा**—कलहंसा इव धवलानि अम्बराणि यस्याः सा (बहु०) (कलहंसों के समान श्वेत वस्त्रों वाली) **प्रतिहारी के पक्ष में।** **शरदृतु के पक्ष में**—कलहंसा एव धवलम् अम्बरं यस्याः सा (कलहंस रूपी श्वेत अम्बर वाली) यहाँ अम्बर शब्द वस्त्र एवं आकाश दोनों अर्थों का वाचक है। **जामदग्न्य-परशुधारा**—जमदग्नेरपत्यं पुमान् जामदग्न्यः, जामदग्न्यस्य परशोः धारा इति (तत्पु०) **जामदग्न्य**—जमदग्नि+यञ् (जमदग्नि के पुत्र परशुराम)। ऐसी प्रसिद्धि है कि परशुराम ने अपने प्रसिद्ध अस्त्र परशु (कुठार) के द्वारा २१ बार आततायी क्षत्रिय राजाओं को मारकर समस्त राजलोक को अपने वश में कर लिया था। **वशीकृत-सकलराजमण्डला**—वशीकृतं सकलं राज्ञां मण्डलं यया सा (बहु०) **वशीकृतम्**—न वशम् अवशं, अवशं वशं कृतमिति वशीकृतम् मण्डल शब्द यहाँ समूहार्थ में प्रयुक्त है।

**विन्ध्यवनभूमिः**—विन्ध्यस्य वनं विन्ध्यवनं तस्य भूमिः (तत्पु०) **वेत्रलतावती**—वेत्राणां लता वेत्रलता (तत्पु०)। वेत्रलता+क्तवतु+ङीप्। **राज्याधिदेवता**—राज्यस्याधिदेवता इति (तत्पु०)। राज्य की अधिष्ठातृदेवता अर्थात् कुलदेवी)। **विग्रहिणी**—विग्रहः अस्या अस्तीति विग्रहिणी—विग्रह+इनि (शरीरधारिणी) **समुपसृत्य**—सम्+उप+सृ+क्त्वा-ल्यप् **क्षितितलनिहितजानुकरकमला**—करौ एव कमले करकमले, क्षितेस्तलं क्षितितलं तस्मिन् निहितौ जानू च करकमले च यया सा (बहु०) निहित—नि+धा+क्त। **सविनयम्**—विनयेन सहितम् (अव्ययीभाव समास)।

प्रस्तुत गद्य खण्ड में प्रतिहारी की अनेक रूपों से समानता बतलाई गई है। तदनुसार—चन्दनलता इव में **पूर्णोपमा**, मन्दाकिनीव में **पूर्णोपमा**, राजाज्ञा इव में **अपह्नुति युक्त उत्प्रेक्षा** (सापह्नवोत्प्रेक्षा), शरदिव में **पूर्णोपमा**, परशुधारा इव में **शाब्दी उपमा**, विन्ध्यवनभूमिरिव में **शाब्दी उपमा** राज्याधिदेवतेव में **द्रव्योत्पेक्षा** अलंकार है। इस प्रकार सम्पूर्ण गद्यखण्ड में एक ही प्रतिहारी (उपमेय) की चन्दन-लता, मन्दाकिनी आदि (उपमानों) से उपमित करने के कारण **मालोपमा** नामक अलंकार है।

**"देव! द्वारस्थिता सुरलोकमारोहत स्त्रिशङ्कोरिव कुपित शतमखहुङ्कार-निपातिता राजलक्ष्मीर्दक्षिणापथादागता चाण्डालकन्यका पञ्जरस्थं शुकमादाय देवं विज्ञापयति"—"सकल भुवनतल सर्वरत्नानाम् उदधिरिवैकभाजनं देवः, विहङ्गमश्चायमाश्चर्य्यभूतो निखिल भुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपाद-मूलमेनमादायागताऽहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुम्" इति। एतदाकर्ण्य देवः प्रमाणमि' त्युक्त्वा विरराम।**

**उपजातकुतूहलस्तु राजा समीपवर्तिनां राज्ञामवलोक्य मखानि "को दोषः प्रवेश्यताम्" इत्यादिदेश।**

**शब्दार्थ**—**देव !** =हे महाराज ! **द्वारस्थिता**=द्वार पर खड़ी हुई । **सुरलोकमारोहतः**=स्वर्गलोक को सशरीर जाते हुए अर्थात् स्वर्ग को चढ़ते हुए, **त्रिशङ्कोः**=त्रिशुङ्कु नामक राजा की, **कुपितशतमखहुङ्कारनिपातिता**=क्रुद्ध इन्द्र (शतमख) की हुङ्कार से नीचे गिराई हुई (निपातिता), **राजलक्ष्मीः इव**=राज्य श्री के समान, **दक्षिणापथात्**=दक्षिणमार्ग से, आगता=आई हुई, **चाण्डालकन्यका**=मातङ्गकुमारी अर्थात् चाण्डाल नामक विशिष्ट जाति की एक कन्या, **पञ्जरस्थम्**=पिंजड़े में स्थित, **शुकमादाय**=तोते को लेकर, **देवम्**=महाराजा शूद्रक से, **विज्ञापयति**=निवेदन कर रही है । **सकलभुवनतलसर्वरत्नानाम्**=सम्पूर्ण पृथ्वी तल के समस्त रत्नों के, **उदधिरिव**=समुद्र के समान, **एकभाजनं देवः**=एकमात्र सत्पात्र या उपयुक्त पात्र आप ही हैं, **विहंगमश्चायम्**=और यह पक्षी शुक, **आश्चर्यभूतः**=आश्चर्यजनक, विस्मयजनक, **निखिलभुवनतलरत्नम्**=समस्त पृथ्वी का (उत्कृष्ट) रत्न है। **इतिकृत्वा**=ऐसा मान कर, **देवपादमूलम्**=महाराज आपके चरणों में, **एनम्**=इस तोते को, **आदाय**=लेकर, **आगता**=आई हुई, **अहम्**=मैं (चाण्डाल कन्या), **इच्छामि**=चाहती हूँ, **देवदर्शनसुखमनुभवितुम्**=महाराज के दर्शनजन्य सुख का अनुभव करना, **एतदाकर्ण्य**=यह सुनकर, **देव प्रमाणम्**=आप की (राजा की) क्या आज्ञा है ?, **इत्युक्त्वा**=ऐसा कहकर, **विरराम**=(वह प्रतिहारी) चुप हो गई। **उपजात कुतूहलस्तु**=अत्यन्त उत्सुकता उत्पन्न होने पर राजा ने, **समीपवर्तिनां**=समीप विद्यमान, **राज्ञां मुखानि**=राजाओं के मुखों को, **अवलोक्य**=देखकर, **को दोषः**=क्या हर्ज है, **प्रवेश्यताम्**=प्रवेश कराओ, **इत्यादिदेश**=ऐसा आदेश दिया ।

**अनुवाद**—(प्रतीहारी कहती है) महाराज ! स्वर्गलोक में सशरीर (मन्त्रबल से) जाते हुए त्रिशङ्कु राजा की क्रुद्ध इन्द्र की हुङ्कार से नीचे गिराई गई राज्यलक्ष्मी के समान (अत्यन्त सुन्दर) दक्षिणापथ से आई हुई एक चाण्डाल कन्या पिंजड़े में एक तोते को लिए हुए द्वार पर खड़ी हुई आपसे निवेदन करती है कि— 'आप ही सम्पूर्ण पृथ्वीतल के समस्त रत्नों के (आगार) समुद्र के समान एकमात्र सत्पात्र हैं, और यह शुक अति विस्मयकारी सम्पूर्णभूतल का उत्कृष्ट रत्न है ऐसा मानकर मैं आपके चरणों में इस तोते को लेकर आई हुई आपके दर्शनजन्य सुख का अनुभव करना चाहती हूँ" यह सुनकर आपकी जो आज्ञा ऐसा कह कर (वह प्रतिहारी) चुप हो गई ।

उत्सुक हुए राजा ने अपने समीपवर्ती अन्य सामन्त राजाओं के मुखों को देख कर "क्या दोष है, प्रवेश कराओ" ऐसा (उसे) आदेश दिया ।

**भावार्थ**—इसमें प्रतीहारी ने चाण्डाल कन्या की सुन्दरता का कथन करते हुए उसकी बात का राजा से निवेदन किया है—अत्यन्त रूपवती किन्तु चाण्डाल कुलोत्पन्ना वह कन्या, सदेह स्वर्ग जाने वाले त्रिशङ्कु की राज्यलक्ष्मी के समान सुन्दर थी (त्रिशङ्कु की कथा का सन्दर्भ टिप्पणी में देखें), द्वार पर राजा के आदेश की प्रतीक्षा में थी क्योंकि उसे विश्वास था कि राजा शूद्रक स्वयं अत्यन्त गुणी है और गुणी वस्तुओं का संग्रहकर्ता भी, अतः उसके हाथ के पिंजड़े का तोता जो अति विद्वान् है, उस राजा के ही योग्य है, अतः वह उसे राजा को समर्पित कर उनकी कृपा चाहती थी यह सूचना प्रतिहारी से प्राप्त कर राजा उसको प्रवेश कराने की आज्ञा देते हैं ।

**संस्कृत व्याख्या**—देव ! हे महाराज ! **द्वारस्थिता**—द्वारे स्थिता सभामण्डपप्रवेशस्थले विद्यमाना (चाण्डाल कन्य कायाः विशेषणम्) **सुरलोकमारोहतः**—सुराणां

देवानां लोकः स्वर्गमिति सुरलोकः तम् आरोहतः आरोहणं कुर्वतः सदेहस्वर्गं गच्छतः, **त्रिशङ्कोः**—त्रिशङ्कु नाम सूर्यवंशीय राजविशेषस्य, **राज्यलक्ष्मीरिवं**=राज्यस्य लक्ष्मीः नृपश्रीः इव शोभमानेत्यर्थः किन्तु, **कुपितशतमखहुङ्कारनिपातिता**=**कुपितः**—क्रुद्धः (यज्ञं विना स्वर्गगमनं न भवति, अयं चायाजी एव सदेह स्वर्गमधिरोहतीति हेतोः क्रुद्धः) यः **शतमखः**—इन्द्रस्तस्य **हुङ्कारेण**—हुम् इति निषेधव्यञ्जकध्वनिना, **निपातिता**—अधः क्षिप्ता या राज्यलक्ष्मीः सा इव, **दक्षिणापथात्**—दक्षिणमार्गात्, दक्षिणापथनाम्नो दक्षिण प्रदेशाद्वा **आगता**—समायाता **चाण्डालकन्यका**—चाण्डालानां मातङ्गानां कन्यका कुमारीति चाण्डालकन्यका, चाण्डाल जात्युद्भवैका कुमारी, **पञ्जरस्थम्**—पञ्जरं पक्षिणामाधारः तस्मिन् तिष्ठतीति तं **शुकम्**—कीरमदाय गृहीत्वा, **देवं राजानं** भवन्तं **विज्ञापयति**—निवेदयति यत्=**सकलभुवनतलसर्वरत्नानामुदधिरिव**—**सकले** सम्पूर्णेऽपि **भुवनतले** विद्यमानानां **सर्वेषां रत्नानाम्** उत्कृष्ट **मणीनाम् उदधिः** समुद्र इव **देवः** स्वामी भवानेव **एकभाजनम्**—एकमेवोपयुक्तपात्रम् अस्ति अर्थात् समस्त भूतले अथवा समस्त चतुर्दशभुवनेषु विद्यमानानां सर्वेषां रत्नानां संग्राहकः सागर इव राजा शूद्रक एवोपयुक्तं पात्रम् अस्ति नान्यः । **अयं**—पुरोदृश्यमानः पञ्जरस्थः **विहंगमः**—विहायसा आकाशेन गच्छतीति विहङ्गमः पक्षी शुकः, **आश्चर्यभूतः**—विस्मयकारकः, **निखिलभुवनतलरत्नम्**—निखिलानि समग्राणि यानि **भुवनतलानि** चतुर्दशभुवनानि तेषां रत्नम् उत्कृष्टं रत्नतुल्यम् **इतिकृत्वा** इति निश्चित्य, **देवपादमूलं** देवस्य राज्ञः शूद्रकस्य **पादमूलं** चरणाश्रयम् **आगता** आयाता अहं—चाण्डालकन्यका, **देवदर्शनसुखमनुभवितुम्**—**देवस्य** महाराजस्य **दर्शनसुखम्** अवलोकनजन्यानन्द **मनुभवितुं** साक्षात्कर्तुम् **इच्छामि** अभिलषामि । **एतदाकर्ण्य**–इदं चाण्डाल कन्या निवेदितं **श्रुत्वा** आकर्ण्य **देवःप्रमाणम्**—यो भवतामादेशः स एव मया पालनीयः **इत्युक्त्वा** इत्थमभिधाय, **विरराम**—मौनमवलम्ब्य स्थिताऽभूत् । चाण्डालकन्यकोक्तं राज्ञे निवेद्य प्रतीहारी आदेशप्राप्तिप्रतीक्षारताऽभूदिति तात्पर्यम् ।

**उपजातकुतूहलस्तु**—उपजातम् समुत्पन्नं कुतूहलम् औत्सुक्यं यस्य सः तादृशो राजा तु, **समीपवर्तिनाम्**—समीपे पार्श्वे सभायामित्यर्थः वर्तन्ते विद्यन्ते ये ते समीपवर्तिनस्तेषां **राज्ञाम्** सामान्त नृपाणाम् **मुखानि** आननानि, **अवलोक्य** निरीक्ष्य, **को दोषः** चाण्डालकन्याप्रवेशे न काप्यापत्तिः इति विचार्य—चाण्डाल कन्या राजसभाप्रवेशमर्हति नवेति विषये राज्ञां सम्मतिमधिगन्तुं तेषां मुखानि विलोक्य तेषां राज्ञामपि हृदये दिदृक्षा तस्याः कन्यकायाः इति निश्चित्य प्रवेशे न कोऽपि दोष अतः **प्रवेश्यताम्** इति प्रतीहारीम् **आदिदेश** आज्ञापितवान् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—प्रतीहारी राजानं शूद्रकं निवेदयति यत् महाराज ! अयाज्यस्यापि स्वर्गमारुरुक्षोः अतएव क्रुद्धेन्द्रहुङ्कारेणाधो निपातिता त्रिशङ्कोः राज्यलक्ष्मीरिव द्वारदेशस्थिता दक्षिणापथादागता काचित् मातङ्गकुमारी पञ्जरगतं शुकमादाय भवन्तं विज्ञापयति—यद्भवानेव केवलं समस्तभुवनश्रेष्ठरत्नानां संग्राहक उदधिरिवास्ति, पञ्जरस्थः शुकश्चायमतीवाश्चर्यजनकः समस्तभुवनरत्नमिति ज्ञात्वा भवच्चरणाश्रयमेन मादाय समागताहं भवद्दर्शनसुखमनुभवितु मभिलषामि इति । एतच्छ्रुत्वा देवस्य य आदेशः स एव पालनीयः इति विनिवेद्य सा मौनमास्थिता ।

एतदाकर्ण्य कुतूहलाविष्टो राजा, सभामण्डपस्थानां राज्ञां मुखान्यवलोक्य तदभिमतं विज्ञाय च प्रतिहारीमादिष्टवान् न कोऽपि दोपस्तस्याः प्रवेशे अतः प्रवेश्यतामिति ।

**टिप्पणी—त्रिशङ्कुः**—त्रयः शङ्कवः यस्य सः (बहु०) तीन अपराध करने वाले को त्रिशङ्कु कहते थे।

रामायण की कथा के अनुसार सूर्यवंशी राजाओं में एक राजा त्रिशङ्कु हुए थे—पिता के क्रोध का पात्र बनने, गुरु की गौ के वध करने एवं अपवित्र वस्तुओं के उपयोग रूप तीन पापों के करने के कारण उसका नाम त्रिशङ्कु पड़ा था—

"पितुश्चपरिरोषेण गुरोः दोग्ध्रीवधेन च।
अपोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः॥
एवं त्रीण्यस्य शंङ्कानि तानि दृष्ट्वा महातपाः।
त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुरिति सः स्मृतः॥

राजा त्रिशङ्कु को अपने शरीर से अत्यधिक प्रेम था, अतः उसने सदेह स्वर्ग जाने की कामना से वशिष्ठ से यज्ञ कराने की प्रार्थना की। उनके मना करने पर उसने वशिष्ठ के १०० पुत्रों से निवेदन किया किन्तु उनके भी मना करने पर उसने उन सबको नपुंसक कहकर अपमानित किया। उन्होंने उसे चाण्डाल बनने का शाप दिया। तब वह विश्वामित्र ऋषि के पास गया और यज्ञ कराने को कहा। विश्वामित्र ने यज्ञ कराकर अपने मन्त्र बल से उसे सदेह स्वर्ग भेजना प्रारम्भ किया। स्वर्ग के स्वामी इन्द्र ने उसे स्वर्ग की ओर आता हुआ देखकर हुङ्कार कर उसे बीच में ही रोक दिया जिससे त्रिशङ्कु स्वर्ग और पृथ्वी के बीच में ही उल्टा लटक गया। कहा जाता है वह आज भी वैसा ही लटका हुआ है।

**शतमखः**—सौ यज्ञों को करने वाला इन्द्र का पद प्राप्त करता है अतः शतमखः देवराज इन्द्र का पर्यायवाची बन गया है। **कुपित शतमखहुङ्कारनिपातिता**—कुपितस्य शतमखस्य हुङ्कारेण निपातिता (तत्पु०) **राजलक्ष्मीः**—राज्ञःलक्ष्मीः (तत्पु०)। राजलक्ष्मीरिव में **उत्प्रेक्षा** अलंकार है। **उदधिः**—उदकानि धीयन्तेऽस्मिन्निति उदधिः। उदक+धा+कि उदक शब्द को उदन् आदेश, न का लोप होकर उदधि शब्द बनता है (सागर)। **एकभाजनम्**—एक एव भाजनमिति (एकमात्र सुपात्र)। **विहगमः**—विहायसा (आकाशेन) गच्छति इति विहंगमः (पक्षी)—विहायस्+गम्+खच्+मुम्—विहायस् को विह आदेश। **रत्नम्**=उत्कृष्ट—"जातौ-जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते" क्षीरस्वामी (समस्त वस्तुओं में सर्वोत्कृष्ट वस्तु रत्न कहलाती है।)। **इतिकृत्वा**—ऐसा समझकर (राजा शूद्रक ही सम्पूर्ण भूमण्डल में ऐसा व्यक्ति है जो उत्कृष्ट वस्तुओं (रत्नतुल्य) का अधिकारी है ऐसा विचार कर वह शुक को उसके पास लायी। **आकर्ण्य**=सुनकर—आ+कर्ण+क्त्वा (ल्यप्)। **देवः प्रमाणम्**—महाराज ही प्रमाण है। अर्थात् महाराज की आज्ञा ही सर्वोपरि है। **विरराम**=चुप हो गई—वि उपसर्ग पूर्वक रम् धातु का लिट्—प्रथम पुरुष एकवचन का रूप। रम् धातु यद्यपि आत्मनेपदी है किन्तु "व्याङ् परिभ्यो रमः" सूत्र के अनुसार वि उपसर्ग लग जाने से परस्मैपदी हो गई है। **उपजात कुतूहलः**—उपजातं कुतूहलं यस्य सः (बहु०) उत्सुकता उत्पन्न हो गई है जिसे। उदधिरिव में उपमा अलंकार है। **सुरलोकम्**—स्वःअव्ययं स्वर्ग नाक स्त्रिदिव स्त्रिदशालयः सुरलोको द्यौ दिवि स्त्रियां क्लीवे त्रिविष्टपम्" इत्यमरः।

**अथ प्रतीहारी नरपतिकथनानन्तरमुत्थाय तां मातङ्गकुमारीं प्रावेशयत्। प्रविश्य च सा नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनमशनिभयपुञ्जितकुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेकरत्नाभरणकिरणजालकान्तरितावयवमिन्द्रा-**

Poonam Rani



**युधसहस्रसञ्छादिताष्टदिग्विभागमिव जलधरदिवसम्, अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य कनकशृङ्खलानियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य गगनसिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तमणिपर्य्यङ्किकानिषण्णम्..................।**

**शब्दार्थ**—**अथ**=इसके बाद, **प्रतीहारी**=द्वारपालिका ने, **नरपतिकथनानन्तरम्**=राजा के कथन के बाद, **उत्थाय**=उठकर, **ताम्**=उस (द्वार स्थित), **मातङ्गकुमारीम्**=चाण्डाल कन्या को, **प्रावेशयत्**=(सभा मण्डप में) प्रवेश कराया। **प्रविश्य च**=और भीतर जाकर, **सा**=उस चाण्डाल कन्या ने (राजान मद्राक्षीत्, राजा को देखा—इस अन्तिम भाग से, (इसके आगे के वाक्य राजा के विशेषण हैं) **नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनम्**=हजारों राजाओं (सामन्तों) की बीच बैठे हुए, **अशनिभयपुञ्जितकुलशैलमध्यगतम्**=(इन्द्र के) वज्र के भय से एकत्रित हुए कुल पर्वतों के मध्य स्थित, **कनकशिखरिणम् इव**=स्वर्ण की चोटियों वाले सुमेरु पर्वत के समान, **अनेक रत्नाभरणकिरणजालकान्तरितावयवम्**=अनेक रत्नों के बने हुए आभूषणों की (अनेक रत्नाभरण) प्रभा समूह से (किरण जालक) ढक गये हैं (अन्तरित) अङ्ग जिसके (अवयवम्), **इन्द्रायुधसहस्रसञ्छादिताष्टदिग्विभागम्**=(मानों) हजारों इन्द्र धनुषों से (इन्द्रायुधसहस्र) ढंक गये हैं (सञ्छादित) आठों दिशाओं के अन्तराल जिसमें ऐसे (अष्टदिग्विभागम्) **जलधर दिवसम् इव**=वर्षा के दिन के समान (राजा को देखा जो) **अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य**=लटकते हुए (अवलम्बित) बड़े-बड़े (स्थूल) मोतियों के गुच्छों से युक्त (मुक्ताकलापस्य) **कनकशृङ्खलानियमित मणिदण्डिका चतुष्टयस्य**=सोने की जंजीरों से (कनक शृङ्खला) बँधी हुई (नियमित) मणियों से बनी हुई चार यष्टियों, पाटियों से युक्त (मणिदण्डिका चतुष्टयस्य), **गगनसिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य**=आकाश गङ्गा (गगन सिन्धु) या आकाश रूपी समुद्र के (गगन सिन्धु) फेन समूह की तरह (फेन पटल) श्वेत, उजले (पाण्डुरस्य) **नातिमहतः**=अधिक बड़े नहीं (अपितु आसंन स्थल की नाप वाले) **दुकूलवितानस्य**=रेशमी वस्त्र के चंदोवा के **अधस्तात्**=नीचे, **इन्दुकान्तमणिपर्य्यङ्किकानिषण्णम्**=चन्द्रकान्त मणियों से बनी, चौकी या मचिया (पर्य्यङ्किका) पर **निषण्णम्**=बैठे हुए (राजा को देखा यह आगे से अन्वित है)।

**अनुवाद**—राजा के आदेश को प्राप्त करने के पश्चात् प्रतीहारी ने उठकर उस चाण्डाल कन्या को (सभा में) प्रवेश कराया। उसने भीतर जाकर (राजा शूद्रक को देखा जो) इन्द्र के वज्र से डर कर एकत्रित हुए (समस्त) कुल पर्वतों के मध्य स्थित सुमेरु पर्वत के समान हजारों सामन्त राजाओं के मध्य बैठा था (जो) विविध रत्नजटित आभूषणों के प्रभा मण्डल से आच्छादित अङ्ग प्रत्यङ्ग वाला (होने के कारण मानों) हजारों इन्द्र धनुषों से ढकी हुई आठों दिशाओं वाले मेघाच्छन्न दिन (वर्षा का दिन) के समान प्रतीत हो रहा था। और जो लटकाये गये बड़े-बड़े मोतियों के गुच्छों वाले, सोने की जंजीरों से बँधी हुई चार मणि खचित यष्टियों वाले, आकाश गङ्गा या आकाश रूपी समुद्र के फेन समुदाय के समान श्वेत, (उजले) अधिक बड़े नहीं अपितु प्रमाणानुसार रेशमी चंदोवे के नीचे चन्द्रकान्त मणियों की बनी चौकी पर बैठा हुआ था।

**भावार्थ**—प्रस्तुत गद्य खण्ड में प्रतीहारी के द्वारा राजा को देखने का वर्णन

है। जिसमें राजा को अनेक उपमानों से उपमित किया गया है अतः विभिन्न कल्पनाओं, उत्प्रेक्षाओं एवं अतिशयोक्तियों के माध्यम से राजवैभव का प्रदर्शन है।

**संस्कृत व्याख्या**—अथ **नरपतिकथनान्तरम्**=राज्ञः आदेशानन्तरम्। नराणां पतिः नरपतिः तस्य कथनस्यानन्तरम्। उत्थाय सा **प्रतीहारी** द्वारपालिका **तां पूर्वोक्तां मातङ्गकुमारीं** मातङ्गजाति विशेष पुरुषस्य कन्यकां **प्रावेशयत्**—प्रवेशमकारयत्।

**प्रविश्य च**—सभामण्डपम् आगत्य च सा चाण्डाल कन्यका राजानमद्राक्षीदिति दूरेणान्वयः। अत्र सर्वाण्यपि द्वितीयान्तपदानि राजानमिति पदस्य विशेषणानीति ध्येयम्। सम्प्रति राजानं विशिनष्टि—**नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनम्**—नराणां मनुष्याणां पतिः नरपतिः, नरपतीनां सहस्रं नरपतिसहस्रं तन्मध्ये वर्तते यः स तं नरपति सहस्रमध्यवर्तिनं नृपति सहस्रमध्यस्थितम्, (राजानम्) **अशनिभयपुञ्जितकुलशैलमध्यगतम्**—अशनेः इन्द्रायुधस्य वज्रस्य भयात् पक्षच्छेदनरूपत्रासात् पुञ्जिताः एकत्रीभूताः ये कुल शैलाः सप्तकुल पर्वताः हिमालयादयस्तेषां मध्येगतम् विद्यमानम्, अन्तःस्थित मित्यर्थः **कनकशिखरिणम् इव**—कनकमयानि स्वर्णमयानि शिखराणि यस्य स कनकशिखरी तम् अथवा शिखराणि सन्त्यस्यासौ शिखरी (पर्वतः) कनकस्य शिखरीति कनकशिखरी तं सुवर्णपर्वतं सुमेरुमिव शोभमानं राजानमद्राक्षीत्। **अनेकरत्नाभरणकिरण जालकान्तरितावयवम्**—अनेकानि नाना प्रकाराणि यानि रत्नाभरणानि मणिजटितालङ्कारास्तेषां किरणानां रश्मीनां यज्जालं समूहः, तेनान्तरिता सर्वथाऽऽवृता अवयवाः अङ्गानि यस्य स तम् **इन्द्रायुधसहस्रसञ्छादिताष्टदिग्विभागम्**—इन्द्रस्य देवराजस्य आयुधं शस्त्रं धनुरिति इन्द्रायुधं तस्य सहस्रमितीन्द्रायुधसहस्रं तेन शक्रधनु समूहेन सञ्छादिताः अन्तरिताः परित आवृताः अष्टौ दिग्विभागाः दिशां प्रदेशाः यस्मिन् तथाविधम्, **जलधरदिवसम्**—मेघसञ्छादितदिनम् इव=समानं (इत्युपमा) शोभमानं राजानमद्राक्षीत् इत्यन्वयः। **अवलम्बितस्थूल मुक्ताकलापस्य**—अवलम्बिताः शिल्पिभिरलङ्करणायाधोविलम्बितत्वेन ग्रथिताः स्थूलानां मुक्तानां मौक्तिकानां कलापाः पंक्तयो यस्मिन् तस्य (दुकूलवितानस्येति पदस्य विशेषणम्) **कनकशृङ्खलानियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य**—कनकं सुवर्णं तन्निर्मिताभिः शृङ्खलाभिः बन्धनरज्जुभिः नियमिताः चतुर्षु कोणेषु बद्धाः मणिदण्डिकाः रत्नखचिता यष्टयः तासां चतुष्टयः यस्मिन् तस्य **गगन सिन्धुफेन पटलपाण्डुरस्य**—गगनसिन्धुः आकाशगंगा अथवा गगन इव विस्तृतो यः सिन्धुः समुद्रस्तस्य फेनपटलवत् फेनः डिण्डीरः "डिण्डरोऽब्धिकफः फेनः" इति कोशः फेनस्य पटलं समूहः तद्वत् पाण्डुरस्य शुभ्रवर्णस्य, **नातिमहतः**—नातिविस्तृतस्य स्थान प्रमाणानुरूपं विशालस्येत्यर्थः, **दुकूलवितानस्य**—क्षौमवस्त्रनिर्मितोल्लोचस्य (रेशमी चंदोवा इति हिन्द्याम्) "उल्लोचो वितानं कतकोऽपि" इति अभिधानचिन्तामणिः **अधस्तात्** (वितानस्य) निम्नभागे **इन्दुकान्तमणिपर्य्यङ्किकानिषण्णम्**—इन्दुकान्ता: चन्द्रकान्ताः मणयः इन्दुकान्तमणिभिः रचिता या पर्य्यङ्किका—मञ्चिका (आसन विशेषः) तत्र निषण्णम् उपविष्टम् (राजानमद्राक्षीत्) इन्दुकान्तमणिनिर्मितत्त्वेनासने शैत्यमानन्ददायकत्वं च प्रतीयते।

**संस्कृत सरलार्थ**—राज्ञ आदेशमनुसृत्य तत उत्थाय प्रतीहारी तां चाण्डाल कन्यां सभायां प्रावेशयत्। अन्तः प्रविश्य च सा—इन्द्रवज्रप्रहारभयादेकत्रितानां कुलपर्वतानां मध्ये स्थितं सुवर्णगिरिं सुमेरुमिव सहस्रसामन्तराज्ञां मध्यस्थितं राजानं शूद्रकमद्राक्षीत् —स च राजा शूद्रकः बहुविध भूषणानां प्रभाभिःरश्मिभिः स्वकीयाष्टस्वप्यङ्गेषु तथा सच्छादित आसीत् यथा इन्द्रधनुःसमूहेनाच्छादिताष्टदिगन्तरालो मेघदिवसो भवति।

तस्मिन् काले स राजा, शिल्पिभिरधोऽवलम्बितस्थूलमुक्तासमूहस्य स्वर्णरज्जुभिराबद्ध-मणिखचितदण्डचतुष्टस्य आकाशसमुद्रस्य फेनसमूहवच्छवेतस्य प्रमाणानुरूपविस्तृतस्य कौशेयवस्त्रनिर्मितवितानस्याधस्तात् मञ्चिकोपरि समुपविष्ट आसीत् ।

**टिप्पणी**—'प्रविश्य च सा राजानम् अद्राक्षीत्' यह इस लम्बे वाक्य का मूल अंश है। राजा का वर्णन मुख्य होने के कारण समस्त द्वितीयान्त पद राजानम् के विशेषण हैं।

**प्रविश्य**—प्र+विश्+क्त्वा→ल्यप् (प्रवेश कर) **कनकशिखरिमिव** में उपमा-लंकार है। **पुञ्जितकुलशैल**—से सम्बन्धित एक पौराणिक कथा है तदनुसार—पहले पर्वतों के पंख थे वे आकाश में उड़ा करते थे। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर जब वे बैठते थे तो उससे कृषि विनाश एवं जीवहत्या प्रभूत मात्रा में होती थी। देवराज ने इस विनाश को देख कर वज्र से उनके पंख काटना प्रारम्भ कर दिया। तब पर्वतों ने वज्र से अपनी रक्षा के लिए एकत्रित होकर विचार विनिमय किया। उन पर्वतों में सर्वोच्च स्थान स्वर्णपर्वत सुमेरु को मिला। अतः यहाँ राजा की उपमा सुमेरु पर्वत से एवं अन्य राजाओं की कुल पर्वतों से है। कुल पर्वतों की संख्या सात मानी गई है। **कनकशिखरिणम्**—कनकस्य शिखराणि यस्य सः कनक शिखरी तम् (बहु०) (स्वर्ण पर्वत, सुमेरु) **अशनि**—इन्द्र का अस्त्र विशेष—'वज्र'। **इन्द्रायुध**—"इन्द्रायुधं शक्रधनुः" इन्द्र का धनुष इन्द्र का आयुध है। वर्षा ऋतु में आकाश के मेघाच्छन्न होने पर कभी-कभी सात रंगों का एक धनुष सा प्रभामण्डल में दीखता है जिसे इन्द्रधनुष कहा जाता है। **जलधरदिवसमिव**—वर्षा ऋतु का दिन या मेघाच्छादित दिन अर्थात् जिस दिन आकाश में पूर्णतः मेघ घिरे हों एवं उपर्युक्त इन्द्रधनुष विद्यमान हों ऐसे दिन के समान राजा को बतलाने के कारण यहाँ उपमा अलंकार है। उसी प्रकार राजा के शरीर पर विभिन्न रत्नाभूषणों की कान्ति से उसका अष्टांग शरीर कान्तिमय हो गया था जैसे इन्द्रधनुषों की छटा से सम्पूर्ण मेघाच्छन्न आकाश कान्तिमय हो जाता है। अतः राजा उपमेय एवं जलधर दिवस उपमान अन्तरित या सञ्छादित होना साधारण धर्म है। **अवलम्बित**—अव+लम्ब+क्त। **नियमित**—नि+यम+क्त (बँधे हुए) **मणिदण्डिका**—मणीनां दण्डिकाः मणिदण्डिकाः (मणिजटित सहारे की बल्लियाँ जिन पर चंदोवा तना हुआ था)। **वितान**—प्रायः राज सिंहासनों पर ऊपर एक विशेष प्रकार के सिल्क या सनील आदि का चंदोवा होता था जिसमें विविध प्रकार की झालरों, फूलों, रत्नों आदि से सजावट की जाती थी। संस्कृत में उसे "उल्लोच, कदक, वितान" आदि शब्दों से कहा जाता है—"उल्लोचो वितानं कद-कोऽपि" इति अभिधानचिन्तामणिः। **गगन सिन्धुः**—गगनस्य आकाशस्य सिन्धुः नदीति आकाशसिन्धुः (आकाशगंगा) अथवा गगनमिव आकाशमिव विस्तृतं यः सिन्धुः समुद्रः स गगनसिन्धुः (आकाश के समान विशाल समुद्र)। **फेनपटल पाण्डुरस्य**—फेनस्य पटलम् इव पाण्डुरं यत्तत् फेनपटल पाण्डुरं तस्य (फेनसमूह के समान श्वेत)—**पाण्डुर** =श्वेत—**"अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्जुनः हरिणःपाण्डुरः पाण्डु रीषत्पाण्डुतु धूसरः" इत्यमरः**। **'फेनपटल पाण्डुरस्य'** में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। **पर्यङ्किका**—राजा के बैठने की चौकी या छोटा सिंहासन। इस वर्णन से राजकीय वैभव एवं कवि की कल्पना शक्ति का परिचय मिलता है।

**उद्धूयमान कनकदण्डचामरकलापम्, उन्मयूखमुखकान्तिनिचयपराभवप्रणते शशिनीव स्फटिकपादपीठे विन्यस्तवामपादम्, इन्द्रनीलमणिकुट्टिम प्रभासम्पर्क-**

श्यामायमानैः प्रणतरिपुनिःश्वासमलिनीकृतैरिव चरणनखमयूखजालैरुपशोभमानम्, आसनोल्लसितपद्मरागकिरणपाटलीकृतेनाचिरमृदितमधुकैटभरुधिरारुणेन हरिमिवोरुयुगलेन विराजमानम् अमृतफेनधवले गोरोचनालिखितहंसमिथुनसनाथपर्य्यन्ते चामरपवनप्रनर्तितान्तदेशे दुकूले वसानम्..............।

शब्दार्थ—उद्धूयमानकनकदण्डचामरकलापम्–उद्धूयमान=डुलाये जा रहे थे, झले जा रहे थे, कनकदण्ड=सोने की मूठ वाले, चामरकलापम्=चंवर समुदाय (जिस पर ऐसे राजा को चण्डाल कन्या ने देखा)। उन्मयूखमुखकान्तिनिचयपराभव प्रणते—उन्मयूख=ऊपर की ओर फैलती हुई, किरणों वाले मुखकान्तिनिचय=मुख की शोभा के समूह से, पराजय के कारण, प्रणते=पैरों के नीचे पड़े हुए, शशिनि इव=चन्द्रमा के समान, स्फटिकपादपीठे=स्फटिक मणि के बने हुए पावदान पर, विन्यस्तवामपादम्=बायाँ पैर रखे हुए । इन्द्रनीलमणिकुट्टिम प्रभासम्पर्कश्यामायमानैः—इन्द्रनीलमणि=नीली शोभा वाली विशिष्ट मणियों (से बनी) कुट्टिम=वेदिका (फर्श) की प्रभा=कान्ति के, सम्पर्कश्यामायमानैः=सम्पर्क या मिश्रण से कुछ-कुछ श्याम वर्ण से होते हुए और, प्रणतरिपुनिःश्वासमलिनीकृतैः इव—प्रणत=विनत (पैरों पर झुके हुए), रिपुनिःश्वास=शत्रुओं की लम्बी साँसों (आहों) से, मलिनीकृतैः=मैले से किये गये। चरणनखमयूखजालैः—चरणनख=पैरों के नाखूनों की=किरणों के समूह से, उपशोभमानम्=सुशोभित । आसनोल्लसितपद्मरागकिरणपाटलीकृतेन—आसनोल्लसित=आसन पर प्रकाशमान, पद्मराग=पद्मराग नामक लालरंग की मणियों की, किरणपाटलीकृतेन=किरणों से लाल की गई। (तथा) अचिरमृदितमधुकैटभरुधिरारुणेन—अचिर=अभी-अभी, मृदित=मारे गये, मधुकैटभ=मधु और कैटभ नामक राक्षसों के, रुधिरारुणेन=खून से लाल हुई, उरुयुगलेन=दो जंघाओं से, हरिमिव=विष्णु भगवान् के समान, विराजमानम्=शोभित होने वाले । अमृतफेनधवले=अमृत के फेन के समान श्वेत, गोरोचनालिखितहंसमिथुनसनाथपर्य्यन्ते—गोरोचना=एक सुगन्धित श्वेत पदार्थ जिसकी उत्पत्ति गाय के पित्त से मानी जाती है, अतः गोरोचना को 'गोपित्त' भी कहा गया है। गोरोचना से, लिखितहंसमिथुन=लिखे गये हँसों के जोड़ों से, सनाथपर्य्यन्ते=जिनके किनारे सुशोभित हैं। चामरपवनप्रनर्तितान्तदेशे—चामरपवन=चंवर डुलाने से उनकी हवा से, प्रनर्तितान्तदेशे=जिसके छोर हिल रहे हैं ऐसे दुकूले=रेशमी वस्त्र (दो रेशमी उत्तरीय वस्त्र), वसानम्=धारण किये हुए या पहने हुए ।

अनुवाद—(राजा के ऊपर) सोने की मूंठ वाले चंवर डुलाये जा रहे थे, (वह) ऊपर को फैलने वाली मुख ज्योत्स्ना (कान्ति) मण्डल से पराजित होकर चरणों में पड़े हुए चन्द्रमा के समान प्रतीत होने वाले स्फटिक मणि रचित पावदान अर्थात् पादपीठिका (छोटी चौकी) पर बायाँ पैर रखे हुए था। (वह) अपने ही पैरों के नाखूनों की किरणों के समूह से, जो किरणें इन्द्रनील मणियों की बनी फर्श की नीली कान्ति से मिलने के कारण कुछ-कुछ श्यामवर्ण की हो गई थीं, उनसे ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों (राजा के चरणों में) विनत अर्थात् झुके हुए शत्रुओं की लम्बी-लम्बी साँसों से वे नख किरणें मैली पड़ गई हों। सिंहासन में जड़ी हुई पद्मराग मणियों की लाल किरणों से उसकी दोनों जंघायें (उरुयुगल) लाल हो गई थी (अतः) अभी-अभी (तत्काल) मारे गये मधु और कैटभ (नामक राक्षसों) के खून से लाल रंग की जंघाओं वाले भगवान्

विष्णु के समान वह प्रतीत होता था, वह अमृत के फेन के समान श्वेत दो रेशमी वस्त्र धारण किये था, जिनके किनारों पर गोरोचन से हँस के जोड़ों की आकृतियाँ चित्रित की गई थीं तथा जिनके छोर चंवर की हवा से लहरा रहे थे।

**भावार्थ**—राजा ने अपना बाँया पैर श्वेत स्फटिक मणि के पावदान पर रखा था उस पावदान की शोभा ऐसी थी; जैसे राजा की मुख शोभा से पराजित चन्द्रमा उसके चरणों में आ पड़ा हो, इसी प्रकार इन्द्रनील मणियों के फर्श की किरणों से श्यामवर्ण उसके पैरों के नाखूनों की शोभा ऐसी थी जैसे उसके चरणों पर झुके हुए शत्रुओं की कराह (निःश्वास) से यह मैली हो गई हो, उस अपने ही चरण नख कान्ति से वह लिप्त था। सिंहासन में जटित पद्मराग मणियों से लाल जंघा के कारण वह विष्णु भगवान् जैसा लग रहा था जब उन्होंने मधु और कैटभ का वध किया था (अन्तःकथा टिप्पणी में देखें) उसके दो रेशमी वस्त्रों पर हँसों के जोड़े चित्रित थे एवं वे हवा में लहरा रहे थे।

**संस्कृत व्याख्या—उन्मयूखमुखकान्तिनिचयपराभवप्रणते**—उत् ऊर्ध्वं गताः **मयूखाः** रश्मयो यस्य तथा विधस्य मुखस्याननस्य यः **कान्तिः** दीप्तिस्तस्य **निचयः** समूह स्तेन यः **पराभवः** पराजयः तेन **प्रणते** नम्रीभूते चरणतल संलग्ने इत्यर्थः—शशिनि चन्द्रमसि इव शोभमाने स्फटिकपादपीठे इत्यस्य विशेषणम् अत्र द्रव्योत्प्रेक्षा, **स्फटिकपादपीठे**—स्फटिकानां शुभ्रवर्णमणीनां पादपीठे चरणस्थापनाय निर्मितं लघुपीठकम् तस्मिन् **विन्यस्तवामपादम्** विन्यस्तः स्थापितः वामः दक्षिणेतरः पादः चरणः येन तम् तादृशं राजानंमद्राक्षीदिति दूरेणान्वयः। **इन्द्रनीलमणिकुट्टिमप्रभासम्पर्कश्यामायमानैः**—इन्द्रनीलमणीनां नीलकान्तमणिविशेषाणां याः कुट्टिमः वेदिका स्थली वा तस्य या प्रभा कान्तिस्तस्य सम्पर्केण **श्यामायमानैः** श्यामवदाचरद्भिः श्यामवर्णैरित्यर्थः अतएव **प्रणतरिपु निःश्वासमलिनी कृतैरिव** **प्रणतानां** चरणयोः पतितानां **रिपूणां** शत्रूणां **निःश्वासेन** दीर्घोच्छ्वासेन **मलिनीकृतैरिव**—मालिन्यं प्राप्तैरिव (अत्र क्रियोत्प्रेक्षा) **चरणनखमयूखजालैः—चरणयोः** पादयो **नखानां** पुनर्भवाणां ये **मयूखाः** रश्मया तेषां **जालैः** समूहैः, **उपशोभमानम्** - भासमानम् (राजानम्)। **आसनोल्लसित पद्मरागकिरणपाटलीकृतेन**—**आसने** उपवेशनस्थले सिंहासने, विष्टरे इति तात्पर्यम्, **उल्लसिताः** प्रकाशमानाः ये **पद्मरागाः** लोहितमणयस्तेषां **किरणैः** प्रभाभिः रश्मिभिः **पाटलीकृतेन**—न पाटलः अपाटलः, अपाटलः पाटलः कृत इति पाटलीकृतस्तेन पाटलीकृतेन श्वेतरक्तीकृतेन ("श्वेतरक्तस्तु पाटलः" इति कोशः) उरुयुगलेनेति पदस्य विशेषणम्, अतएव **अचिरमृदितमधुकैटभरुधिरारुणेन**—अचिरं सद्यस्तत्कालं वा मृदितौ मर्दितौ निकृत्तकण्ठौ इत्यर्थः **यौ मधुकैटभौ** मधुश्च कैटभश्चेति मधुकैटभौ एतन्नामकौ दैत्यविशेषौ तयोः **रुधिरेण**—रक्तेन अरुणं रक्तवर्णीभूतं (उरु युगलं) तेन **उरुयुगलेन**—ऊरोः युगलमिति उरुयुगलं जङ्घाद्वयेन तेन—जङ्घाद्वयेन विराजमानं शोभमानं हरिमिव—विष्णुमिव (राजानमद्राक्षीत् अत्रान्तःकथा टिप्पण्यां द्रष्टव्या, हरिमिवेत्यत्रोपमालंकारः। **अमृतफेनधवले**—**अमृतस्य सुधायाः यः फेनः** डिण्डीरः तद्वत् धवले श्वेतवर्णे अथ च **गोरोचनालिखितहंसमिथुन सनाथपर्य्यन्ते—गोरोचना** पदार्थविशेषः गोः पित्तेन निर्मितः अतएव 'गोपित्तम्' इति नाम्नापि प्रसिद्धः तेन **लिखितानि** चित्रितानि यानि **हंसमिथुनानि** सितच्छद युगलानि श्वेत हंस युगलानीत्यर्थः तैः **सनाथाः** सहिताः **पर्यन्ताः** प्रान्त प्रदेशाः ययोस्ते (दुकूले), अथ च **चामरपवन प्रनर्तितान्त देशे**—चामराणां—चमरीगवां पुच्छवालैर्निर्मित व्यजन विशेषाणाम् वाल व्यजनानामित्यर्थः "चामराः चामरं बालव्यजनं रोमगुच्छकम्" **पवनेन**

वायुना। प्रनर्तितौ आन्दोलितौ अन्तःदेशौ प्रान्तभागौ ययोस्तादृशे, दुकूले क्षौमवसने कौशेय वस्त्रे वसानम् दधानं राजानमद्राक्षीत् इति दूरेणान्वयः।

**संस्कृत सरलार्थ**—राजा शूद्रकः स्वर्णजटितदण्डैः चामरै र्वीज्यमान आसीत्, तस्य मुखस्योपरि प्रसृतैः कान्तिसमुदायैः पराभूतचन्द्र इव प्रतीयमाने स्फाटिके पादपीठे सः विन्यस्तवामपदः आसीत् तथा च सः स्वचरणनोर्नखानां मयूख जालैरुपशोभितः इत्थं प्रतीयतेस्म यत्-इन्द्रनीलमणिभिर्निर्मितकुट्टिमादुद्भूतया नील प्रभया मिश्रिता चरणनखानां रक्त प्रभा राज्ञा पराजितानामतएव विनीतानां शत्रूणां निःश्वासेन मलिनीभूतास्ति तया नखप्रभया शोभमान आसीत्। तथा च आसने जटितानां पद्मरागमणीनां रक्तप्रभया रक्तवर्णीभूतं तस्य उरुयुगलं तथैवासीत् यथा सद्योर्मर्दित-मधुकैटभयो रुधिरेण रक्तवर्णं भगवतो विष्णोः उरुयुगलम् अतस्तादृशेनोरु युगलेन शोभमानः सः हरिरिवासीत्। स द्वे पट्टवसने (दुकूले) दधानः आसीत् ये च पट्टवसने अमृतफेनवच्छुभ्रवर्णेऽथ च प्रान्तभागे गोरोचनया चित्रितहंसमिथुने तथा च वीज्यमानचामरपवनैरान्दोलिते आस्ताम् तादृशे दुकूले वसानं राजानं चाण्डालकन्याऽद्राक्षीत्।

**टिप्पणी उद्धूयमानम्**— उत्+धूञ्+णिच्+शानच् (डुलाये जा रहे)। **'शशिनीव स्फटिकपादपीठे'** में द्रव्योत्प्रेक्षा अलंकार है। **श्यामायमानैः—**अश्यामं श्याममिवाचरतीत्यर्थे 'उपमानादाचारे' सूत्र से क्यङ् प्रत्यय होने के कारण क्यङ्गता उपमा है। **कुट्टिम**=भूमि या फर्श। **मलिनीकृतैरिव**—अमिलनं मलिनं कृतमिति मलिनीकृतं तैरिव यहाँ क्रिया की उत्प्रेक्षा है। **अचिरमृदितमधुकैटभरुधिरारुणेन**— न चिरम् अचिरं, अचिरं यथा स्यात्तथा मृदितौ यौ मधुकैटभौ तयोः रुधिरेण अरुणम् तेन—तत्काल मारे गये मधु और कैटभ राक्षसों के खून से लाल (उरु युगल का विशेषण)। **मधुकैटभ का वध विष्णु द्वारा किया गया**—इस विषय में मार्कण्डेय पुराण की एक कथा का यहाँ संकेत है। कथा इस प्रकार है—"भगवान विष्णु के कान के मैल से मधु और कैटभ नामक दो राक्षस उत्पन्न हुए और उत्पन्न होते ही उन्होंने विष्णु के नाभिकमल में स्थित ब्रह्मा को मारना चाहा। आत्मरक्षा के लिए ब्रह्मा ने व्याकुल होकर जगज्जननी जगदम्बा माँ की स्तुति की। जगज्जननी ने विष्णु भगवान को जगा दिया। उन्होंने उठकर ५ हजार वर्षों तक उनसे युद्ध किया। अपनी माया से मोहित उन दोनों ने विष्णु से वर माँगने को कहा विष्णु ने उनके वध का वरदान माँगा। प्रलयकालीन उस बेला में उन असुरों ने जलमग्ना पृथ्वी को देखकर कहा कि—जहाँ पृथ्वी जलमग्न न हो वहाँ हमारा वध करें। भगवान ने पृथ्वी के अंश से निर्मित अपनी जंघाओं पर बिठाकर चक्र से उनका वध कर दिया। उनके खून से उनकी जङ्घाएँ लाल हो गईं।" **हरिमिव—**में उपमा अलंकार है। **गोरोचना**—गाय के पित्त से निर्मित एक प्रकार का सुगन्धित द्रव्य विशेष। आजकल विवाहादि कार्यों में चावल हल्दी आदि का लेप मंगल कार्यों में प्रयुक्त होता है प्राचीनकाल में हंसों का जोड़ा प्रायः शाटिकाओं एवं शालों पर चित्रित किया जाता था। **चामर**—भारत में चमरी नामक गायें हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में पाई जाती हैं। उनकी पूंछ के बालों से एक विशेष प्रकार का व्यंजन चवंर, चामर आदि नाम वाला बनाया जाता है। यह विवाहादि अवसरों तथा राजा-महाराजाओं के यहाँ उसके डुलाने की परम्परा है। साधु महात्माओं की पीठों में भी इसका प्रचलन

है। अमृतफेनधवले में लुप्तोपमा अलंकार है। वाचक पद का लोप है। "पीयूषममृतं सुधा" इत्यमरः।

**अतिसुरभिचन्दनानुलेपनधवलितोरःस्थलम्, उपरिविन्यस्तकुङ्कुमस्थासकम्, अन्तरान्तरानिपतितबालातपच्छेदमिव कैलासशिखरिणम्, अपरशशिशङ्कया नक्षत्रमालयेव हारलतया कृतमुखपरिवेषम्, अतिचपलराजलक्ष्मीबन्धनिगडशङ्कामुपजनयतेन्द्रमणिकेयूरयुगलेन मलयजरसगन्धलुब्धेन भुजङ्गद्वयेनेव वेष्टितबाहुयुगलम्, ईषदालम्बिकर्णोत्पलम्, उन्नतघोणम्, उत्फुल्लपुण्डरीकलोचनम्, अमलकलधौतपट्टायतम्, अष्टमीचन्द्रशकलाकारम्, अशेषभुवनराज्याभिषेकसलिलपूतम् ऊर्णासनाथं ललाटदेशमुद्वहन्तम्। आमोदितमालतीकुसुमशेखरम्, उषसि शिखरपर्य्यस्ततारकापुञ्जमिव पश्चिमाचलम्, आभरणप्रभापिशङ्गिताङ्गतया लग्नहरहुताशमिव मकरध्वजम्……।**

शब्दार्थ—**अतिसुरभिचन्दनानुलेपनधवलितोरः स्थलम्**=अत्यन्त सुगन्धित चन्दन के लेप से श्वेतीकृत वक्षःस्थल वाले। **उपरिविन्यस्तकुङ्कुमस्थासकम्**= ऊपर अर्थात् चन्दन के ऊपर लगाई गई (विन्यस्त) कुमकुम (कुङ्कुम) की थांपो अर्थात् हथेली के ठप्पों या उँगलियों के निशानों (स्थासकम्) वाले, **अन्तरान्तरानिपतितबालातपच्छेदम्**=बीच-बीच में (अन्तरान्तरा) पड़े हुए (निपतित) उदयकालीन बाल सूर्य के प्रकाश खण्ड वाले (बालातपच्छेदम्) **कैलाश शिखरिणम्** इव=कैलास पर्वत के समान, **अपरशशिशङ्कया**=दूसरे चन्द्रमा की आशङ्का से, **नक्षत्रमालया**- तारा समूहों के द्वारा नक्षत्रमालया) **इव**= यथा, अर्थात् नक्षत्रमाला रुपिणी, **हारलतया**=मोतियों की माला द्वारा, **कृतमुख परिवेषम्** = घेर लिये गये मुख मण्डल वाले, **अतिचपलराजलक्ष्मीबन्ध निगडशङ्कामुपजनतयता** अतिशय चञ्चल (अतिचपल) राज्यलक्ष्मी को बाँधने के लिए शृंखलाओं (बन्धनिगड) का भ्रम (शङ्काम्) पैदा करने वाले (उपजनयता) **इन्द्रमणिकेयूरयुगलेन**= नीलकान्तमणियों से जड़े हुए दो बाजू बन्दों (केयूरयुगलेन) से **मलयजरस गन्धलुब्धेन**=चन्दन के घोल (मलयजरस) की सुगन्धि से आकृष्ट हुये (लुब्धेन) दो सर्पों (जैसे प्रतीत होने वाले केयूर युगल से) समावृत या घिरी हुई दोनों भुजाओं वाले (वेष्टित बाहुयुगलम्) **ईषदालम्बि कर्णोत्पलम्** = कुछ कुछ लटकने वाले (ईषदालम्बित) कान के कमलों वाले अर्थात् कमल जैसे कान के आभूषणों वाले, **उन्नतघोणम्**=ऊँची नाक वाले, **उत्फुल्लपुण्डरीकलोचनम्**= खिले हुए (उत्फुल्ल) कमल (पुण्डरीक) के समान नेत्रों वाले, लोचनम्), **अमल कलधौतपट्टायतम्**= स्वच्छ (अमल) सोने के (कलधौत) पट्ट या फलक के समान चौड़े (पट्टायतम्) एवं **अष्टमीचन्द्रशकलाकारम्**=अष्टमी तिथि के चन्द्रमा के टुकड़े अर्थात् अर्धचन्द्र के समान आकृति वाले एवं **अशेषभुवनराज्याभिषेकसलिल पूतम्**= सम्पूर्ण लोकों से (अशेषभुवन) राज्य के अभिषेक के जल से अर्थात् मंगलस्नान के जल से (सलिल) पवित्र (पूतम्) तथा **ऊर्णासनाथम्**=दोनों भौहों के बीच बालों की भँवरी (ऊर्णा) से सुशोभित (सनाथम्) **ललाटदेशम्**=मस्तक को, **उद्वहन्तम्**– धारण करने वाले, **आमोदित मालती कुसुमशेखरम्** सुगन्धि युक्त (आमोदित) चमेली या जाती (मालती) के फूलों की माला या शिर के आभूषण (शेखरम्) को धारण करने वाले अतएव, **उषसि**=प्रातःकाल,

शिखरपर्य्यस्ततारकापुञ्जम्=चोटी पर (शखर) फैले हुए (पर्य्यस्त) नक्षत्र समुदाय वाले (तारकापुञ्जम्) **पश्चिमाचलम्**=पश्चिम दिशा के पर्वत अर्थात् अस्ताचल के इव=समान प्रतीत होने वाले, **आभरणप्रभापिशंगितांगतया**=आभूषणों की चमक (आभरणप्रभा) से ताम्रवर्ण के (पिशङ्गित) अंगों के हो जाने के कारण (लग्नहरहुताशम् =लग गई है (लग्न) भगवान शंकर के तृतीय नेत्र की अग्नि (हर हुताश) जिसके शरीर में ऐसे मकरध्वजम् इव=कामदेव के समान प्रतीत होने वाले (राजा शूद्रक को चाण्डाल कन्या ने देखा ।)

**अनुवाद**—(चाण्डाल कन्या ने राजा शूद्रक को देखा जो) अत्यन्त सुगन्धित चन्दन के लेप से श्वेत वक्षःस्थल वाला, उसके ऊपर अर्थात् चन्दन युक्त वक्षःस्थल पर केसर (कुङ्कुम) की थापें लगाये हुए, (अतएव) बीच-बीच में पड़े हुए प्रातःकालीन सूर्य की धूप के अंशों से युक्त, कैलाश पर्वत के समान, (प्रतीत होने वाले) दूसरे चन्द्रमा के भ्रम से नक्षत्र माला जैसी मोतियों की माला से घिरे हुए मुख वाला। अति चञ्चल राज्यलक्ष्मी को बांधने के लिए जंजीर का भ्रम पैदा करते हुए (अतएव) चन्दन रस की सुगन्ध से आकृष्ट हुए दो सर्पों जैसे, नीलकान्तमणि जटित दो बाजूबन्धों से आवेष्टित 'दोनों भुजाओं वाला' कानों में कुछ-कुछ लटकते हुए कमल रूप कर्णाभूषण वाला, ऊँची (उठी हुई) नासिका वाला, खिले हुए कमलों के समान नेत्र वाला, स्वच्छ निर्मल स्वर्ण की पट्टी के समान विशाल, (तथा) अष्टमी (तिथि) के जल से पवित्र, एवं दोनों भौहों से मध्य बालों की भँवर अर्थात् रोमावर्त से युक्त मस्तक को धारण किये हुए, सुगन्धित चमेली के पुष्पों का शिरोभूषण वाला (अतएव) प्रातःकाल चोटियों पर बिखरे हुए नक्षत्र समूह वाले अस्ताचल के समान, आभूषणों की चमक से ताम्रवर्ण के अङ्ग-प्रत्यङ्ग वाला होने के कारण, वह भगवान् शङ्कर की नेत्राग्नि से जलते शरीर वाले कामदेव के समान प्रतीत हो रहा था।

**भावार्थ**—राजा शूद्रक का वक्षःस्थल, अति सुगन्धित चन्दन के सेप से धवलित हो रहा था और उस पर बीच-बीच में कुंकुम के छापे लगे हुए थे, जिससे वह, कहीं-कहीं प्राप्तःकालीन धूप से शोभित कैलाम पर्वत की चोटी के समान लग रहा था। उसके गले में जो मोतियों की माला पड़ी हुई थी वह ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो तारागणों ने उसके मुख को दूसरा चन्द्रमा समझ कर उसे चारों ओर से घेर लिया हो। चन्दन की सुगन्धि से आकृष्ट होकर आये हुए दो सर्पों के समान अपनी दोनों भुजाओं पर उसने नीलकान्तमणिजटित केयूर बांध रखे थे जो कि चञ्चल राजलक्ष्मी को बांधने के लिए दी जंजीरों का भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। उसके कानों से कमल रूप कर्णाभूषण लटक रहे थे। नासिका ऊँची थी नेत्र विकसित कमलों जैसे थे। तथा निर्मल सोने के पट्ट के समान चौड़े, अष्टमी के अर्धचन्द्र के समान आकार वाले एवं सभी लोकों के राज्य के मंगल स्नान के जल से पवित्र तथा भौहों के बीच ऊर्णा से शोभित ललाट की वह धारण किए हुए था। ऊसके सिर पर सुगन्धित चमेली के पुष्पों फी माला लपटी हुई थी जिससे वह प्रातःकाल चोटी पर बिखरे हुए तारों वाला अस्ताचल जैसा लग रहा था। आभूषणों की चमक से ताम्रवर्ण के अंगों वाला होने के कारण वह शिव के तृतीय नेत्र की अग्नि से जलते हुए कामदेव के समान प्रतीत हो रहा था।

**संस्कृत व्याख्या—अतिसुरभिचन्दनानुलेपनधवलितोरःस्थलम्**—अति अत्यधिकं

सुरभि सुगन्धि सम्पन्नं यच्चन्दनं मलयजं तस्यानुलेपनेनाङ्गरागेण धवलितं शुभ्रीकृतम् उरःस्थलम् वक्षःस्थलं यस्य तं तादृशम् । **उपरिविन्यस्त कुङ्कुमस्थासकम्**—उपरि-चन्दनलेपस्योपरि विन्यस्ताः रचिताः स्थापिताः वा कुङ्कुमस्य केसरस्य स्थासकाः हस्तविम्बाः यस्य तं तादृशम्, **अन्तरान्तरानिपतित बालातपच्छेदम्**—अन्तरा-अन्तरा मध्ये-मध्ये निपतिताः पर्यस्ताः बालातपच्छेदाः बालातपस्य प्रातःकालीनानुष्ण सूर्य प्रकाशस्य खण्डाः यस्य तम् तादृशं **कैलाश शिखरिणम्**—कैलाश नामानं पर्वतमिव गोभमानम्, यथा शुभ्रवर्णः कैलाशगिरिः प्रातःकालीनप्रकाशेनेतस्ततः पीतवर्णो लक्ष्यते तथैव चन्दनलेपधवलिते तस्य राज्ञः वक्षस्थले यत्र तत्र केसरस्थासकैः पीतत्व मासीत् तेन तस्य वक्षःस्थलं कैलाशशोभा धत्तेस्म इति तात्पर्यम्, **अपरशशिशङ्कया**—अपरश्चासौ शशी **अपरशशी**—अन्यचन्द्रः तस्य शङ्कया भ्रान्त्या द्वितीयशशि भ्रान्त्या (समागतया) **नक्षत्रमालया**—नक्षत्राणां ताराणां माला पंक्तिरिति नक्षत्रमाला तया तारापंक्तिरूपिण्या **हारलतया**—मौक्तिकस्रजा इव **कृतमुखपरिवेषम्**—कृतः विहितः मुखस्याननस्य परिवेषः परिधिः यस्य स तम् तादृशम्; **अतिचपल राजलक्ष्मी बन्ध निगडशङ्कामुपजनयता**—अधिकं चपला चञ्चला या राजलक्ष्मीः राजश्रीः तस्याः बन्धाय नियमनाय यः निगडः बन्धन शृंखला तस्य शङ्काम् भ्रमम् उपजनयता उत्पादयता **इन्द्रनीलकेयूरयुगलेन**—इन्द्रनीलः—नीलकान्तमणिः तन्निर्मितं तत्खचितं वा यत् केयूरयुगलम् अंगदद्वयं तेन तथोक्तेन, (अतएव) **मलयज रस गन्धलुब्धेन**—मलयाज्जातः मलयजः चन्दनं तस्य यो रसः द्रवः तस्य गन्धेन परिमलेन लुब्धः आसक्तस्तेन **भुजंगद्वयेन** सर्प युगलेन इवं **वेष्टित बाहुयुगलम्**—वेष्टितं परित आवृतं परिक्षिप्तमित्यर्थः बाह्वोः युगलमिति बाहुयुगलं भुजद्वयं यस्य स तं तादृशम्, **ईषदालम्बिकर्णोत्पलम्**—ईषद् किञ्चित् स्वल्पमित्यर्थः आलम्बिनी आ समन्ताल्लम्बितुं शीलं ययोस्ते लम्बमाने कर्णोत्पले कमलाकृति कर्णाभूषणे यस्य तम् तथोक्तम्, **उन्नतघोणम्**—उत् ऊर्ध्वं नता उन्नता उच्चा घोणा नासिका यस्य तम् तथोक्तम्, **उत्फुल्लपुण्डरीकलोचनम्**—उत्फुल्लं विकसितं यत् पुण्डरीकम् कमलम् श्वेताम्भोजमित्यभिप्रायस्तद्वत् लोचने नयने यस्य तम् तथोक्तम्, **अमलकलधौत पट्टायतम्**—अमलं च यत् कलधोत मित्यमलकलधोतम् स्वच्छसुवर्णं तस्य यः पट्टः फलकं तद्वत् आयतं विस्तीर्णम् (अथ च) **अष्टमी चन्द्र शकलाकारम्**—अष्टम्यां तिथौ उदितश्चन्द्रः तस्य शकल खण्डः तद्वदाकारः आकृतिः यस्य तस्य तम् अर्द्धचन्द्राकाराकृतिर्यस्य तम् तादृशम्, **अशेष भुवनराज्याभिषेक सलिल पूतम्**—न शेषाणीत्यशेषाणि सम्पूर्णानि यानि भुवनानि भूमण्डलानि चतुर्दशलोकाः इतितात्पर्यम् तेषां राज्यमाधिपत्यं तस्य कृते यत् **अभिषेक जलम्** मङ्गलस्नानोदकं तेन पूतं पवित्रीभूतं (तथा च) **ऊर्णासनाथम्**—ऊर्णा भ्रुवोर्मध्यवर्ती रोमावर्तः तया सनाथम् युक्तं ललाटदेशं मस्तक प्राप्तं उद्वहन्तम् धारयन्तम्; **आमोदितमालतीकुसुम शेखरम्**—आमोदितानि सुरभीणि यानि मालती कुसमानि जाती पुष्पाणि तान्येव शेखरः शिरोभूषणं यस्य तम् तथोक्तम्; अतएव **उषसि** प्रत्यूषे प्रभातवेलायाम् **शिखरपर्य्यस्त तारकापुञ्जम्** शिखरे शृंङ्गे पर्य्यस्ताः परितो विकीर्णाः तारकापुञ्जाः तारकाणां नक्षत्राणा पुञ्जाः समूहाः यस्मिन् तं तादृशं **पश्चिमाचलम्** अस्तगिरिम् इव वर्तमानम्, **आभरण-प्रभापिशंगितांगतया**—आभरणानांमलङ्कारणां याः प्रभाः कान्तयस्ताभिः पिशंगितानि पिंगल वर्णी कृतानि ताम्रवर्णीकृतानि वा अंगानि ऊवयवाः यस्य तस्य भावस्तत्ता तया तथोक्तया (अतएव), **लग्नहरहुताशम्**—लग्नः संसक्तः हरस्य शिवस्य हुताशः तृतीय नेत्र

वह्निर्यत्र तम् तादृशं मकरध्वजम् कामदेवमिव शोभमानम्·······राजानम् चाण्डाल कन्याऽद्राक्षीदिति दूरेणान्वयः।

**संस्कृत सरलार्थ**—सा चाण्डालकन्यका तादृशं राजान मद्राक्षीत्, यस्य वक्षः-स्थलम् अतिसुगन्धितचन्दनलेपेन उज्ज्वलमासीत्, तच्चन्दनलेपस्योपरि मध्ये-मध्ये ये केसरहस्तबिम्बा विन्यस्ता आसन् एतैः स इतस्ततो निपपितवालसूर्यप्रकाशेन शोभमानो हिमाचल इव प्रतीयते स्म। एवञ्च स, द्वितीयचन्द्रभ्रान्त्या समागतया नक्षत्र पंङ्क्तिरूपिण्या लता वल्लम्बमानया मौक्तिकस्रजा विहिताननपरिवेष आसीत्। एवञ्च सः, अतिचञ्चल राजलक्ष्मीबन्धनश्रृंखलाभ्रान्ति समुपजनयता नीलकान्तमणि जटित केयूर युगलेन, चन्दनरसाकृष्टेन भुजङ्गद्वयेनेव परिवेष्टितभुजयुगल आसीत्, तस्य कर्णयोः कर्णोत्पले किञ्चिदवलम्बिते आस्ताम्, तस्य नासिकोन्नता, नेत्रे च विकसित कमले इवास्ताम्, तस्य ललाटदेशश्च निर्मलस्वर्णपट्ट वद्विस्तीर्णः अष्टमी चन्द्रखण्डाकारः, सकललोकराज्यमंगलस्नानजलपूतः, भ्रुवोमध्ये रोमभ्रमरीसनाथश्चास्तीत्। एवञ्च सुरभितमालतीपुष्पशेखरः अतएव प्रातःकाले श्रृङ्गसमवेतनक्षत्रसमूहः अस्ताचल इव स शोभते स्म। स्वशरीरधृताभूपणकान्तिभिः पिङ्गलवर्णीकृतावयवैः स शिवस्य तृतीयनेत्राग्निा दह्यमानकामदेव इव शोभमान आसीत्।

**टिप्पणी**—**धवलित**—(श्वेत किया हुआ) धवल शब्द से "तारकादिभ्यः इतच्" सूत्र से इतच् प्रत्यय हुआ है। **स्थासक**=(हाथों की छाप। "स्थासकं हस्तबिम्बम्" इतिकोश; स्था+स+क। हथेली पर केसर लगाकर लगाई गयी छाप को स्थासक कहा गया है। **शिखरिणम्**—शिखराणि सन्त्यस्यासौ शिखरी तम्—शिखर+इनि (पर्वत)। **परिवेषम्**—परिधि, घेरा—"परिवेषस्तु परिधिः" इत्यमरः। **केयूरयुगल**= बाजू बन्द नामक भुजाओं में पहनने वाले आभूपण विशेष का जोड़ा। **वेष्टित**=घिरा हुआ। अपरशशिशङ्कयेत्यत्र भ्रान्तिमान्, नक्षत्रमालयेत्यत्र उत्प्रेक्षा अनयोः संकरः। एवमेव निगडशङ्कामित्यत्र भ्रान्तिमान्, भर्जङ्गद्वयेनेवेत्यत्रोत्प्रेक्षा अनयोः संकरश्च।

**उन्नतघोणम्**—उन्नता घोणा यस्य तम् (बहु०) ऊँची नाक वाले। पुरुषों के सौन्दर्याधायक अंगों में नासिका का उच्च होना माना गया है। "घोणा नासा च नासिका" इत्यमरः।

**ऊर्णा**—दोनों भौहों के बीच में रोम का आवर्त, घेरा ऊर्णा कहलाता है। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ऊर्णा केवल महापुरुषों के मस्तक में ही पाया जाता है। "ऊर्णमिषादि लोम्नि स्यादावर्तस्त्वन्तरा भ्रुवोः" इत्यमरः। "ऊर्णाभ्रूमध्यगावर्ते मेषादीनाञ्च लोमनि" इति हेमचन्द्रः। "**भ्रूद्वयमध्ये मृणालतन्तुसूक्ष्मं शुभ्रायतमेकं प्रशस्तावर्त्तं महापुरुषलक्षणम्**" **लग्नहरहुताशमिव मकरध्वजम्**—भगवान् शंकर की नेत्राग्नि से युक्त (जलते हुए) कामदेव के समान—यहाँ एक पौराणिक सन्दर्भ है। कि—"हिमाचल पुत्री पार्वती से विवाह करने के लिए देवताओं द्वारा प्रेरित कामदेव ने भगवान् शंकर को उद्दीप्त करने के लिए अपनी माया का प्रसार किया और अपने पुष्पबाणों को समाधिस्थ शंकर पर छोड़ने लगा। क्षुभित मन शंकर ने क्रुद्ध होकर अपना तीसरा नेत्र खोला, जिससे भीषण ज्वाला निकली और पल भर में ही कामदेव धू-धू कर जलने लगा। यहाँ राजा के शरीर में आभूपणों की पीली प्रभा सर्वतः व्याप्त थी ठीक उसी प्रकार जैसे कामदेव के शरीर में शंकर की क्रोधाग्नि। **कैलाशशिखरिणमिव** में पूर्णोपमा अलंकार है। **शशिशंकया** में भ्रान्तिमान तथा **नक्षत्रमालयेव** में उत्प्रेक्षा अलंकार और इन दोनों का अङ्गाङ्गिभाव शंकर है एवं अलंकार से हारलता की

अत्यन्त निर्मलता रूप वस्तु ध्वनि है, इसी प्रकार—**निगडशंकामुपजनयता** में भ्रान्तिमान तथा **भुजंगंद्वयनेव** में उत्प्रेक्षा अलंकारों का परस्पर अङ्गाङ्गिभाव शंकर है।

**उत्फुल्लपुण्डरीकलोचनम्, अमलकलधौत पट्टायतम्** एवं **अष्टमीचन्द्रशकलाकारम्** इन तीनों स्थलों में पृथक्-पृथक् लुप्तोपमा अलंकार है। **तारकापुञ्जमिव** में उपमालंकार है तथा **आभरण'''मकरध्वजम्** में भी उपमा अलंकार है।

**आसन्नवर्तिनीभिः सेवार्थमागताभिरिव दिग्वधूभिर्वारविलासिनीभिः परिवृतम्, अमलमणिकुट्टिमसंक्रान्तसकलदेहप्रतिबिम्बतया पतिप्रेम्णा वसुन्धरया हृदयेनेवोह्यमानम्, अशेषजनभोग्यतामुपनीतयाप्यसाधारणया राजलक्ष्म्या समालिङ्गितम्। अपरिमितपरिवारजनमप्यद्वितीयम्, अनन्तगजतुरगसाधनमपि खड्गमात्रसहायम्, एकदेशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम् आसने स्थितमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादिताशेषद्विषदिन्धनमपि ज्वलत्प्रतापानलम् आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम् महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम् कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अविरलप्रवृत्तदानमप्यमदम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि कृष्ण चरितम् अकरमपि हस्तस्थितसकलभुवनतलं राजानमद्राक्षीत्।**

**शब्दार्थ – आसन्नवर्तिनीभिः** = समीप में विद्यमान, **सेवार्थमागताभिरिव** = सेवा करने के लिए मानो आई हुई, **दिग्वधूभिः** दिशारूपी वधुओं के समान, **वारविलासिनीभिः** = वेश्याओं से **परिवृतम्** = चारों ओर से घिरे हुए, **अमलमणिकुट्टिम संक्रान्त सकलदेह प्रतिबिम्बतया** = शुभ्र (अमल) मणियों के बने फर्श में (मणिकुट्टिम) प्रतिबिम्बत (संक्रान्त) सम्पूर्ण शरीर की छाया के माध्यम से (सकलदेह प्रतिबिम्बतया, **प्रतिप्रेम्णा** = पति के प्रति प्रेम से **वसुन्धरया** = पृथ्वी के द्वारा **हृदयेनेवोह्यमानम्** = हृदय में मानो धारण किये हुए (उह्यमानम्) **अशेषजनभोग्यतामुपनीतयापि** = समस्त लोगों से (अवशेषजन) भोगी जाने पर भी (भोग्यतामुपनीतयापि) **असाधारणया राजलक्ष्म्या** = असामान्य अर्थात् विशिष्ट (असाधारणया) राजलक्ष्मी के द्वारा **समालिंगितम्** = आलिंगन किये गये, **अपरिमितपरिवार जनमप्यद्वितीयम्** = असंख्य परिवारीजनों वाले भी एकाकी (अद्वितीयम्) (विरोध) अर्थात् अद्वितीय, स्वयं में अनुपमेय सर्वोत्कृष्ट (विरोध परिहार) **अनन्तगजतुरगसाधनमपि** = असीमित हाथी घोड़ों के साधनों वाले भी **खड्गमात्र सहायम्** केवल तलवार ही सहायक वाले (विरोध) अर्थात् युद्ध में केवल अपनी तलवार पर भरोसा रखता था अर्थात् केवल तलवार की सहायता लेता था (विरोध परिहार) **एकदेशस्थितमपि** = एक स्थान पर स्थित होते हुए भी **व्याप्त भुवनमण्डलम्** = सम्पूर्णभूमण्डल में व्याप्त था (विरोध) अर्थात् अपने यश और प्रताप से सम्पूर्ण भूमण्डल में प्रसिद्धि प्राप्त था (विरोध परिहार), **आसने स्थितमपि** = आसन या सिंहासन पर बैठा होने पर भी **धनुषि निषण्णम्** = धनुप पर बैठा था (विरोध) परिहार), **उत्सादिताशेषद्विषदिन्धनमपि** समस्त शत्रु रूपी इंधन को द्विपदिन्धनम्) नष्ट कर देने पर भी (उत्सादितमपि) **ज्वलत्प्रतापानलम्** –जिसके प्रताप की अग्नि जलती रहती थी (विरोध) अर्थात् उसके यश का तेज चतुर्दिक फैला था (विरोध परिहार), **आयातलोचनमपि** = विशाल अर्थात् बड़ी-बड़ी आँखो वाला होते हुए भी **सूक्ष्मदर्शनम** =

सूक्ष्मदृष्टि अर्थात् छोटी आँखों वाला था (विरोध) अर्थात् किसी विषय को बड़ी सूक्ष्मता से देखता था (विरोध परिहार) **महादोषमपि**=बड़े-बड़े दोषों वाला होने पर भी, **सकलगुणाधिष्ठानम्**=समस्त गुणों का आशय था (विरोध) अर्थात् बड़ी-बड़ी लम्बी दोषा भुजाओं वाला होने पर भी गुणों का आश्रय था (विरोध परिहार) **कुपतिमपि**=कुपति अर्थात् दुष्टपति होने पर भी **कलत्रवल्लभम्**=पत्नियों का प्रिय था (विरोध) अर्थात् कु=पृथ्वी, कुपति=पृथ्वी का पति होने पर भी पत्नियों का प्रिय था (परिहार) **अविरतप्रवृत्तदानमप्यमदम्**=निरन्तर (अविरत) मदजल बहाने पर भी (प्रवृत्त दानमपि) मदरहित था (अमदम्) (विरोध) अर्थात् निरन्तर दान करते पर भी मद अर्थात् अहंकार रहित था (विरोध परिहार), **अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि**= अतिशय शिष्ट स्वभाव होते हुए भी **कृष्णचरितम्**=काले चरित्र वाला था (विरोध) अर्थात् शिष्ट स्वभाव होने पर भी वह कृष्ण भगवान् के समान चरित्र वाला था (विरोध परिहार), **अकरमपि**=बिना हाथ वाला होने पर भी भी **हस्तस्थित सकल भुवन तलम्**=जिसके हाथ में सम्पूर्ण भूमण्डल स्थित था (विरोध) अर्थात् अकरम्= कर (टैक्स) लिए बिना ही सम्पूर्ण पृथ्वी का भार धारण करता था (विरोध परिहार) ऐसे **राजानम्**=राजा शूद्रक को **अद्राक्षीत्** =देखा ।

**अनुवाद**—(चाण्डाल कन्या ने राजा शूद्रक को देखा जोकि) सेवा के लिए आई हुई दिग्वधुओं जैसी समीपवर्तिनी वेश्याओं से घिरा हुआ (था) निर्मल मणियों से निर्मित फर्श में सम्पूर्ण शरीर के प्रतिबिम्ब के संक्रान्त होने के कारण, मानों पति प्रेमवश पृथिवी के द्वारा (अपने) हृदय में धारण किया जाता हुआ, (तथा) समस्तजनों द्वारा (दानादिविधि से) भोगी जाने पर भी, फलतः सर्वसाधारण होने पर भी, असाधारण अर्थात् असमान्या (विरोधपरिहारार्थम्) सर्वोत्कृष्टा राजलक्ष्मी द्वारा आलिंगित, असीम सेवक सेविकादिपरिवारजनों वाला होकर भी अद्वितीय अर्थात् अकेला (विरोध-परिहारार्थम्) अपने समान दूसरे व्यक्ति से रहित (था) अपरिमित गजों और अश्वों के सहायकों वाला होकर भी केवल तलवार मात्र सहायक वाला (विरोध परिहारार्थं) केवल तलवार मात्र से ही अकेला शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला, सभा मण्डप आदि एक स्थान पर रहते हुए भी समस्त मर्त्य लोक में व्याप्त रहने वाला (विरोध परिहारार्थं) यश अथवा प्रताप से समस्त भुवन मण्डल में विख्यात, राजसिंहासन पर स्थित होकर भी धनुष पर बैठे हुए (विरोध परिहारार्थं) अविलम्ब धनुष उठा लेने वाला, समस्त शत्रु रूप ईंधन को नष्ट कर चुकने पर भी जलते हुए प्रतापानल वाला किन्तु ईंधन के अभाव में अग्नि नहीं जलता, (इस विरोध के परिहारार्थं) सर्वत्र प्रकाशित प्रबल प्रभाव वाला, विस्तृत या विशाल नेत्रों वाला होकर भी सूक्ष्म नेत्र वाला। (विरोध परिहारार्थं) आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान रखने वाला, महान दोषों वाला होकर भी सम्पूर्ण गुणों का स्थान (विरोध परिहारार्थं) महान् भुजाओं (दोषों) वाला भी वह सफल गुण निधान था। कुत्सित पति होकर भी पत्नियों का प्रिय (विरोध परिहारार्थं) कुपति अर्थात् पृथिवीपति होकर भी पत्नी प्रिय (था) निरन्तर बहते हुए मदजल वाला होकर भी मदररहित (विरोध परिहारार्थं) निरन्तर चलते रहने वाले धनादि के दान वाला होकर भी जो घमण्ड रहित था। अत्यन्त शुद्ध स्वभाव वाला होकर भी काले आचरण वाला (विरोध परिहारार्थं) भगवान कृष्ण के समान आचरण वाला और कर रहित होते हुए भी हाथ पर रखे हुए समस्त भुवनों वाला (विरोध

परिहारार्थ) अकर अर्थात् कर या टैक्स न लेने वाला होकर भी सम्पूर्ण भुवन को अपने शासन के आधीन रखने वाला ऐसे राजा शूद्रक को देखा।

**भावार्थ**—राजा शूद्रक के चारों ओर वेश्यायें घिरी रहती थीं, जो कि ऐसी प्रतीत होती थीं कि मानो उसकी सेवा के लिए दिग्वधुएँ स्वयं आ गई हों। निर्मल मणियों के बने फर्श पर उसके सम्पूर्ण शरीर का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, इससे ऐसा प्रतीत होता था कि मानों पृथिवी ने प्रेमवश अपने पति-भूपति-राजा को अपने हृदय में रख लिया हो। यद्यपि दान आदि के द्वारा राजलक्ष्मी अनेक लोगों द्वारा प्रयोग में लायी जाने के कारण सर्वसामान्या थी फिर भी वह असाधारणा अथवा सर्वोत्कृष्टा राजलक्ष्मी से सेवित था। यद्यपि उसके पास अनेक सेवक-सेविकायें थीं, फिर भी वह अकेला था ; अर्थात् उसके समान दूसरा कोई चक्रवर्ती राजा न था। यद्यपि उसके सहायक अनेक गज, अश्व आदि थे, फिर भी वह संग्राम में अपनी एकमात्र तलवार से ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता था। एक ही स्थान पर रहता हुआ भी वह अपने प्रताप या यश से समस्त भुवन मण्डल में विख्यात था। यद्यपि उसने समस्त शत्रु रूपी ईंधन को जलाकर नष्ट कर दिया था फिर भी उसका प्रबल प्रताप सर्वत्र सबको भयभीत किए रहता था। यद्यपि वह सिंहासन पर बैठा रहता था लेकिन उसे सदा अपने धनुष पर विजय का विश्वास रहता था। बड़ी-बड़ी आँखों के होते हुए भी वह सूक्ष्मदर्शी था। वह महादोषी अर्थात् बड़ी-बड़ी भुजाओं वाला था और सभी गुणों का निधान था। भूपति होकर भी वह अपनी पत्नियों का भी प्रिय था। लगातार दान करता हुआ भी वह अहंकार रहित था। वह शुद्ध प्रकृति वाला था और भगवान कृष्ण के समान आचरणशाली था। प्रजाओं से यद्यपि वह कर नहीं लेता था तथापि समस्त भुवन तल उसके शासन के आधीन था। ऐसे राजा को देखा।

**संस्कृत व्याख्या**—गद्यभागेऽस्मिन् पुनरपि कविः, आसन्नवर्तिनीत्यादि पदैः राजानं विशिनष्टि यथा **आसन्नवर्त्तिनीभिः** आसन्न समीपे वर्तन्ते यास्ता आसन्नवर्त्तिन्य स्ताभिः निकट स्थायिनीभिः **सेवार्थम्**—राज्ञः परिचर्य्यार्थम् आगताभिः समायाताभिः **दिग्वधूभिः**—दिश एव वध्वः स्त्रियः इति दिग्वध्वस्ताभि दिग्वधूभिः इव **वारविलासिनीभिः** गणिकाभिः **परिवृत्तम्** परिवेष्टितम्, **अमलमणिकुट्टिम संक्रान्त सकल देह प्रतिबिम्बतया**—न मलम् अमलं निर्मलं स्वच्छमित्यर्थः अमलं यत् मणीनां चन्द्रकान्तादि मणीनां कुट्टिमं मणिजटिता बद्धभूमि तत्र बद्धभूमौ (फर्श इति हिन्द्याम्) संक्रान्तं संचरितं यत् **सकलदेहस्य** सम्पूर्ण शरीरस्य **प्रतिबिम्बं** प्रतिच्छाया तस्य भावस्तत्ता तया तथोक्तया **पतिप्रेम्णा** स्वामिनो भर्तुर्वा प्रीत्या **वसुन्धरया**—पृथिव्या **हृदयेन** स्वचेतसा **उह्यमानम्** धार्यमाणमिव तथोक्तम्, **अशेषजन भोग्यतामुपनीतयापि**—न शेषाः अशेषाः अशेषाश्च ते जना अशेषजनाः समस्तलोकाः तेषाम् भोग्यताम् दानादिना उपभोग्यत्वम् उपनीतया संप्राप्तयाऽपि सर्वसाधारणेत्यर्थः, **असाधारणया** न साधारणया इत्यसाधारणया सर्वोत्कृष्टया **राजलक्ष्म्या** राज्यश्रिया **समालिंगितम्** आश्लिष्टदेहम्, तथोक्तम्, अत्र सर्वसाधारण भोग्याऽपि असाधारणेति परस्परं विरोधः किन्तु दानादिना सर्वभोग्याऽपि राज्य लक्ष्मीत्वेन तस्याः सर्वोत्कृष्टत्वम् इति विरोधपरिहारः। नास्ति कस्याप्यन्यस्येदृशी राज्यलक्ष्मीरिति ध्वन्यते। **अपरिमितपरिवारजनमप्यद्वितीयम्**—अपरिमिताः असंख्याः परिवारजनाः सेवकादिसमूहाः यस्य तम् तादृशमपि अद्वितीयम् एकाकिनम् इति विरोधः, नास्ति तत्सदृशो द्वितीयः यस्य तम् तादृशम् सर्वोत्कृष्टमिति विरोध परिहारः। अत्र विरोधाभासालंकारेल राज्ञि सर्वोत्कृष्टत्वरूपवस्तु ध्वनिः। **अनन्तगजतुरग साधनमपि**—

अनन्ता असंख्येयाः गजाः तुरगाः अश्वाश्च साधनानि उपकरणानि यस्य तम् तादृशमपि, **खड्गमात्रसहायम्**—केवलं खड्गः तरवारि मात्रं सहायः सहायकः यस्य स तमिति विरोधः, युद्धादिषु स्वखड्गबलेनैव विजयं लब्धवानिति विरोध परिवारः। **एकदेशस्थितमपि**—एकदेशे सभामण्डपाद्येकस्मिन् स्थाने स्थितिमपि **व्याप्त भुवनमण्डलम्**—व्याप्तं समाक्रान्तं भुवनमण्डलं सम्पूर्णं भूमण्डलमथवा चतुर्दश भुवनमण्डलमिति विरोधः नहि एकस्थाने स्थितः कश्चित् सर्वत्र व्याप्तो भवितुमर्हति अत्र स्वप्रतापेन कीर्त्या वा व्याप्तं भुवनमण्डलं येन तमिति विरोध परिहारः **आसने**—सिंहासने **स्थितमपि**—समासीनमपि **धनुषि** चापे **निषण्णम्** स्थितमिति विरोधः नहि कश्चिदेकसमये एवाधारद्वये (सिंहासने चापे च) स्थातुं शक्यते अतोऽत्र धनुषि निषण्णम् इत्यस्यायमर्थः यत् विजयाय स्वधनुषि एव विश्वासिनम् इति विरोध परिहारः। **उत्सादिताशेषद्विषदिन्धनमपि**—उत्सादितानि व्यापादितानि समग्राणि अशेषाणि द्विषन्तः रिपवः एव इन्धनानि काष्ठानि येन स तम् तादृशमपि **ज्वलत्प्रतापानलम्**—ज्वलन् ज्वालां प्रकाशयन् प्रताप एव यश एव अनलः अग्निर्यस्य तमिति विरोधः इन्धननाशेऽपि ज्वालोद्गमनं कथामिति विरोधः, ज्वलन् दीप्यमानः स्वप्रबलप्रतापतेजसा सर्वत्र वर्तमानः इत्यर्थेन विरोधपरिहारः। **आयतलोचनमपि**—आयते विस्तीर्णे विशाले वा लोचने नेत्रे यस्य स तम् दीर्घनेत्रमपि **सूक्ष्मदर्शनम्**—सूक्ष्मे अविपुले दर्शने लोचने यस्य सः तमिति विरोधः नहि आयतलोचनः सूक्ष्मलोचनो भवितुमर्हति अतोऽत्र सूक्ष्म दर्शनम् इत्यस्यायमभिप्रायः—सूक्ष्मेऽध्यात्मादिविषये दर्शनं ज्ञानं यस्य तमिति विरोध-परिहारः विशाललोचनः सन्नपि सः अध्यात्मादि सूक्ष्म विषयानापि जानातिस्म। "सूक्ष्मं स्यात्कैतवेऽध्यात्मे पुंस्यणौ त्रिषु चाल्पके" इति विश्वः 'दर्शनं नयन स्वप्नबुद्धि धर्मोपलब्धिषु" इति विश्वः। **महादोषमपि**—महान्तः बहवः दोषा अवगुणा यस्मिन् तम् बहुदोषमपि **सकलगुणाधिष्ठानम्**—सकलानां सम्पूर्णनां गुणानां सद्गुणानामधिष्ठानम् आश्रयमिति विरोधः नहि कश्चिदेशसमय एव अवगुणानां सद्गुणानाञ्चा श्रयो भवितु मर्हति, महत्यौ दोषे बाहू यस्य तं विशालबाहुम् इत्यर्थ करणात् विरोध परिहारः दीर्घबाहुः सन्नपि स राजा सकलगुण स्थानमासीत्। **कुपतिमपि**—कु कुत्सितः गर्हितश्चासौ पतिः कुपति स्तम् निन्दितपतिमपि **कलत्रवल्लभम्**—पत्नी प्रियम्, अत्र विरोध-परिहारस्तु कुः पृथ्वी तस्याः पतिः स्वामीति कुपतिस्तं पृथ्वीपतिमिति अर्थकरणेन बोध्यः **अविरत प्रवृत्त दानमपि**—न विरतम् अविरतं सन्ततम् यथा स्यात्तथा प्रवृत्तं दानं मदजलम् यस्य तादृशं प्रवहमानमदजलमपि—**अमदम्**—मद रहितमिति विरोधः नहि प्रवहमानमदजलो मदजलरहितो भवितुमर्हति अत्र दान पदस्य द्रव्यादि वितरणात्मकं दानमित्यर्थग्रहणेन अमदम् इत्यस्य अहङ्काररहितमित्यर्थ ग्रहणेण च विरोध परिहारः यथा—निरन्तरमर्थिभ्यो द्रव्यादि दान शीलमपि अहङ्कार रहित मिति, **अत्यन्त शुद्ध स्वभावमपि** अत्यन्ततिशयेन शुद्धः स्वच्छः स्वभावः प्रकृतिर्यस्य तं तादृशमपि **कृष्णचरितम्**—कृष्णं मलिनं चरितमाचारो यस्य तमिति विरोधः नहि स्वच्छाचारः मलिनाचारो भवितुमर्हति इति विरोधः परं **कृष्णचरितमिति** पदस्य कृष्णस्य भगवतः श्रीकृष्णस्य चरितमिव चरितं यस्य तमिति विग्रहेण विरोधपरिहारः। स्वीयेन स्वच्छाचारेण स, श्रीकृष्णस्य चरितमनुकरोतिस्म इत्याशयः। **अकरमपि**—न विद्यते करः पाणि र्यस्य तम् अकरम् हस्तविहीनमपि **हस्तस्थित सकल भुवनतलम्**—हस्ते स्थितं करे विद्यमानं सकलं सम्पूर्णं भुवनतलम् भूमण्डलं यस्य तम् तादृशम् इति विरोधः नहि हस्तविहीनः हस्ते किमपि गृहीतुं शक्यते इति विरोधः। अकरम् इतिपदस्य न विद्यते करः राजग्राह्य—

द्रव्याद्यर्पणं यस्य तमित्यर्थग्रहणेन विरोध परिहारः, अयमभिप्रायः प्रजाभ्यः राजग्राह्य-करादिकमगृहीत्वैव स सम्पूर्णंभुवनमण्डलमपालयत्, इति तादृशं विविध विशिष्ट गुण सम्पन्नं राजान शूद्रकनामानं नृपतिम् अद्राक्षीत् अवलोकितवती ।

**संस्कृत सरलार्थ**—सेवार्थमुपस्थिताभिः दिग्वधूभिरिव प्रतीयमानाभि निकटस्था यिनीभिः बाराङ्गनाभिः स राजा परिवृत आसीत् । निर्मल चन्द्रकान्तादिमणि निर्मितायां बद्धभूमौ सञ्चरितेन समस्त शरीरप्रतिबिम्बहेतुना स पतिप्रेमवशात् पृथिव्या स्वकीयेन हृदयेन धार्यमाण इवासीत् । समग्रलोकानां दानादिना भोग्यत्वं संप्राप्तया अतएव सर्वसाधारणयापि सर्वोत्कृष्टया राजश्रिया स समालिङ्गितदेह आसीत् । असंख्येय सेवक सेविकादि युक्तोऽपि स आत्मतुल्यान्यजनाभावात् अद्वितीय एवासीत् । अपरिमितगजा-श्वमाधनसम्पनोऽपि स युद्धे केवलं तरवारिसहाये नैव विजयशील आसीत् । सभामण्टपा-द्येकस्मिन् स्थाने वर्तमानोऽपि स स्वयशसा तेजसा च समस्त मर्त्यभुवनविख्यात आसीत् । सिहासनस्थितोऽपि स समरेषु स्वधनुष्येव विजयविश्वस्त आसीत् । उच्छिन्न समग्र-सात्नेन्धनोऽपि स स्वकीयेन प्रबलप्रभावेण प्रतापेन च सर्वत्र प्रकाशित आसीत् । विशाल-लोचनोऽपि सः अध्यात्मविषयेषु सूक्ष्मज्ञान सम्पन्न आसीत् । महाबाहुरपि स दयादाक्षि-ण्यादिसद्गुणानामाश्रय आसीत् । भूपति र्भूत्वापि स स्वपत्नीप्रिय आसीत् न तु कुपतिः । निरन्तरदानपरोऽपि स धनदानाहंकारविवर्जित आसीत् । अतिनिर्मल प्रकृतिरपि स भगवतः श्रीकृष्णस्य चरितस्यानुयायी आसीत् न तु मलिनाचारः । राजग्राह्यद्रव्यादि-कराभावेऽपि सकलभुवनतलं चक्रवर्तित्वात् तस्य शासनाधीनमासीत् । एतादृशं समस्त-गुणशालिनं शूद्रकाभिधानं राजानं चाण्डालकन्या समवलोकितवती ।

**टिप्पणी**—सेवार्थमागताभिरिव दिग्वधूभिः—यहाँ 'दिग्वधूभिः' में दिशाओं पर वधू का आरोप करने के कारण रूपक एवं 'आगताभिरिव' में सेवार्थ आने में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है तथा वारविलासिनी पर दिग्वधू की सम्भावना होने से रूपोत्प्रेक्षा भी है ।

**उह्यमानम्**—वह+यक्+शानच् (वहन किया जाता हुआ, धारण किया जाता हुआ) । **प्रतिबिम्बतया**—प्रतिबिम्ब शब्द से भावार्थक तल् प्रत्यय हुआ है । **हृदयेनेव**—यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

"अशेषजनभोग्यताम् से हस्तस्थित सकल भुवनतलम्" तक सर्वत्र विरोधाभास अलंकार का प्रयोग किया गया है । विरोधाभास अलंकार में आपातातः कार्य, रूप आदि में विरोध का आभास होता है किन्तु वास्तविक विरोध नहीं होता । श्लेषादि के द्वारा उसमें प्रतीत होने वाले विरोध का निराकरण (परिहार) हो जाता है । जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है, यथा—**अद्वितीयम्**—विरोध पक्ष में—न द्वितीयमिति, एकाकिनमित्यर्थः—परिहार पक्ष में—नास्ति द्वितीयःतत्सदृशः अर्थात् जिसके समान दूसरा कोई नहीं है अर्थात् सर्वोत्कृष्ट ।

**व्यापतम्**—विरोध पक्ष—व्यापक होकर एक स्थान स्थित होना, परिहार पक्ष —प्रसिद्ध होना "व्याप्तं ख्याते समाक्रान्ते" इति विश्वः । **निषण्णम्**—बैठे हुए नि+सद्+क्त । **विरोधपक्ष**—बैठे हुए, **परिहारपक्ष**—आश्रित रहने वाला ज्वलत् - ज्वल्+शतृ विरोध पक्ष—जलती हुई । परिहार पक्ष—देदीप्यमान । **द्विषदिन्धन** में द्विषत् = शत्रु पर ईंधन (लकड़ियाँ) का आरोप एवं प्रतापानल में प्रताप पर अनल का आरोप होने के कारण रूपक है । साथ ही विरोधाभास अलंकार । **सूक्ष्म**—विरोधपक्ष—छोटा

**परिहारपक्ष**—अध्यात्म विषयक ज्ञान। **दर्शन**—विरोध पक्ष—नेत्र, परिहार पक्ष ज्ञान, बुद्धि—"दर्शनं नयन स्वप्नबुद्धि धर्मोपलब्धिषु" इति विश्वः। **महादोषम्**—**विरोध पक्ष**—बहुत से अवगुणों वाला, **परिहारपक्ष**—बड़ी-बड़ी भुजाओं वाला—दोर्दोषा च भुजो बाहुः" इति धनञ्जयः। **अधिष्ठानम्**—अधि+स्था+ल्युट् (अन)। **कुपतिम्**—**विरोध पक्ष**—कुत्सितश्चासौ पतिः कुपतिस्तम् दुष्ट दुराचारी पति को, **परिहार पक्ष**—कुः=पृथ्वी तस्याः पति स्वामी=पृथ्वीपतिः—गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी" इत्यमरः। **दान**—**विरोध पक्ष**—मदजल **परिहार पक्ष**—धन आदि का दान करना, **अमदम्**—विरोधपक्ष—मदजल रहित, परिहार पक्ष—अहंकार रहित। "मदे रेतसि कस्तूर्य्यां गर्वे हर्षेभदानयोः" इतिमेदिनी। **कृष्णचरितम्**—**विरोध पक्ष**—कृष्ण=काले चरित्र वाला (दुराचारी), **परिहारपक्ष**—श्रीकृष्ण जैसे चरित्र वाला। **अकरम्**—विरोधपक्ष—बिना हाथ वाला, **परिहार पक्ष**—कर (टैक्स) न लेने वाला—"बलिः करो भागधेयः इति कोशः। **अद्राक्षीत्**—दृश् धातु का लुङ्लकार प्रथम पुरुष एक वचन का रूप है।

सम्पूर्ण शूद्रक वर्णन में कवि की कल्पना शक्ति का वैभव दृष्टिगोचर होता है। बाण की शैली की यह विशिष्टता है कि वे साधारण से वर्णन को भी काल्पनिक उपमानों के द्वारा पर्याप्त विस्तार देते हैं एवं काव्य सौन्दर्य भी समाविष्ट करते हैं।

**आलोक्य च सा दूरस्थितैव प्रचलितरत्नवलयेन रक्तकुवलयदलकोमलेन पाणिना जर्जरितमुखभागां वेणुलतामादाय नरपतिप्रबोधनार्थं सकृत् सभाकुट्टिममाजघान, येन सकलमेव तद् राजकम् एकपदे वनकरियूथमिव तालशब्देन तेन वेणुलताध्वनिना युगपदावलितवदनमवनिपालमुखादाकृष्य चक्षुस्तदभिमुखमासीत्।**

शब्दार्थ—**आलोक्य च**=और (राजा शूद्रक को) देखकर **सा**=उस चाण्डाल कन्या ने, **दूरस्थितैव**=दूर (राजसिंहासन से) ही खड़ी रहकर, **प्रचलितरत्नवलयेन**=किञ्चित प्रकम्पित मणि जटित कङ्कण वाले, **रक्तकुवलयदलकोमलेन**=लाल कमल के पत्ते के समान सुकुमार, **पाणिना**=हाथ से, **जर्जरितमुखभागाम्**=फटे हुए अग्रभाग वाला, **वेणुलताम्**=बांस का डण्डा, **आदाय**=लेकर अर्थात् उठाकर, **नरपतिप्रबोधनार्थम्**=राजा को अपनी ओर आकृष्ट या उन्मुख करने के लिए, **सकृत्**=एक बार, **सभाकुट्टिमम्**=सभा भवन के फर्श को, **आजघान**=खटखटाया (पीटा) **येन**=जिससे **तत्सकलम् एव राजकम्**=वह सम्पूर्ण राजसमूह। **एकपदे**—एक साथ ही, **वनकरियूथमिव**=जंगली हाथियों के झुण्ड के समान, **तालशब्देन**=ताड़पत्रों की खड़खड़ाहट अथवा काँसे की बनी करताल वाद्य विशेष की ध्वनि से, **तेन**=उस, **वेणुलताध्वनिना**=बाँस के डण्डे के शब्द से, **युगपदावलितवदनम्**=एक साथ ही मुख मोड़कर **अवनिपालमुखाद्**=राजा के मुख की ओर से, **आकृष्य**=खींच कर, **चक्षुः**=नेत्रों को **तदभिमुखम्**=उस चाण्डाल कन्या की ओर, **आसीत्**=(उन्मुख या आकृष्ट) हो गया।

अनुवाद—राजा को देखकर दूर ही खड़ी हुई उस चाण्डाल कन्या ने प्रकम्पित मणिकंगन वाले लाल कमल के पत्ते के समान सुकोमल (अपने) हाथ से फटे हुए अग्रभाग वाले डण्डे को लेकर राजा को (अपनी ओर) आकृष्ट करने के लिए एक बार सभा भवन के फर्श को पीटा जिससे ताड़पत्रों की ध्वनि या काँसे के बने करताल नामक वाद्य विशेष की ध्वनि से (आकृष्ट) जंगली हाथियों के झुण्ड के समान वह समस्त सामन्त राजाओं का समूह फटे बाँस के डण्डे के शब्द से तत्काल आकृष्ट होकर

एक साथ ही सिर घुमाकर राजा के मुख की ओर से दृष्टि हटाकर उस (चाण्डाल कन्या) की ओर हो गया।

**भावार्थ**—चाण्डाल कन्या ने चातुर्य से राज सभा एवं राजा को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए एक फटे हुए बाँस से भूमि पर एक जोर का आघात किया जिससे राजा सहित सारी सभा उसकी ओर आकृष्ट हो गयी।

**संस्कृत व्याख्या—आलोक्य च** राजानं दृष्ट्वा च **सा** चाण्डाल कन्या **दूरस्थितैव** राजसिंहासनात् दविष्ठ प्रदेश एव वर्तमाना चाण्डाल कुलोत्पत्तित्वान्नृपसन्निधौ गमनं नोचितमिति लौकिकाचारात् राजसभानियमाद्वा राज्ञः दूरप्रदेश एव स्थिता वा। **प्रचलित रत्नवलयेन** प्रचलितं स्वपूर्वस्थानात्किञ्चित् प्रकम्पितं रत्नवलयं मणिखचित कटकं यस्य तेन तथोक्तेन **रक्तकुवलयदलकोमलेन**—रक्तं लोहितवर्णं यत् कुवलयदलम् उत्पलपत्रं तद्वत् कोमलेन सुकुमारेण तथोक्तेन। **पाणिना** हस्तेन **जर्जरितमुखभागां**—जर्जरितो जीर्णः विखण्डितो वा मुखभागः—अग्रभागो यास्याः सा ताम् तथोक्ताम् शीर्णाग्रभागा मित्यर्थः **वेणुलताम्**—वंश यष्टि वंशवृक्षदण्डखण्डम् **आदाय गृहीत्वा, नरपतिप्रबोधनार्थम्**—नाराणां पतिः नरपतिः राजा तस्य प्रबोधनमेवार्थः प्रयोजनं यस्मिन् कर्मणि तत्, राजानं स्वाभिमुखीकर्तुम, **सकृत्** केवलमेकबारमेव **सभाकुट्टिमम्** सभायाः परिषद्भवनस्य कुट्टिमं वृद्धिभूमिम् **आजघान**—ताडितवती, **येन** वेणुलताकृताघातेन **सकलमेव** समग्रमेव तद् सभासीनं **राजकम्** सामन्तनृपतिमण्डलं **एकपदे** तस्मिन्नेवक्षणे **तालशब्देन** तालः एतंन्नामको वृक्ष विशेषः (ताड़ इति हिन्द्याम्) तस्य पत्राणां शब्देन ध्वनिता, खड़खड़ेति ध्वनिना अथवा तालः कांस्यकरतालः (वाद्यविशेषः) तस्य शब्देन करतालोत्थध्वनिना **वनकरियूथमिव**—वनकरिणां वन्यहस्तिनां यूथं समूह इव, हस्तिग्रहणावसरे कास्यकरतालादिवाद्यध्वनिना वन्यहस्तिन आकृष्टाः भवन्ति तदभिमुखं च धावन्ति येन ते रज्जाद्विषु बध्यन्ते तस्मात् यथा तालशब्देन वन्यहस्तिनः आकृष्टा भवन्ति तथैव **तेन** पूर्वकृतेन **वेणुलताध्वनिना**—जर्जर वंशयष्टि शब्देन **युगपत्** एककालमेव **आवलितवदनम्**—आवलितं परावर्तितं वदनं मुखम् येन एवंभूतम् **अवनिपालमुखाद्**—राजमुखात् **आकृष्य**—आकर्षणं विधाय **चक्षुः** लोचनं **तदभिमुखम्**—चाण्डालकान्यकायाः सम्मुखम् **आसीत्** अभवत्। तद्राजकम् अवनिपालमुखाच्चक्षुराकृष्य तदभिमुख मासीदिति।

**संस्कृत सरलार्थ**—राजानं शूद्रकं दृष्ट्वा सा चाण्डालकन्यका राजसिंहासनाद्दूर प्रदेशे स्थितैव प्रकम्पिन रत्नजटितवलयवता स्ववीयेनातिशय मृदुलेन अतएव रक्तकमलदलमिव शोभमानेन पाणिना राजानं स्वाभिमुखीकर्तुम् जीर्णवंशखण्डेन सभाभवन भूमिम् एकवारम् आहतवती। येन ध्वनिना तन्सभासीनं सम्पूर्णमपि सामन्तराजमण्डलम् राज्ञः मुखात् स्वचक्षुराकृष्य तथैव चाण्डालकन्याभिमुखीभूतम् यथा वनकरिसमूहः तालशब्द श्रवणेन सहसैव तच्छब्दाभिमुखी भवति।

**टिप्पणी—आलोक्य**=देखकर आ+लुक्+(क्त्वा) ल्यप्। **दूरस्थितैव**=दूर ही उड़ी होकर—दूरेस्थिता दूरस्थिता। चाण्डाल कुल में उत्पन्न होने के कारण निम्न जातीया होने से राजा के समीप जाना उचित न होने के कारण अथवा राजसभा के नियमानुसार इस प्रकार राजदर्शनार्थ आने वाले व्यक्तियों को राजा से दूर ही खड़ा होना चाहिए आदि कारण से राजा से दूर खड़ी रहना औचित्यपूर्ण था। **प्रचलितरत्नवलयेन**—वंशखण्ड को उठाने के कारण हाथ में पड़ा रत्नखचित कंगन अपने स्थान से हट गया या कम्पित हो

गया था ऐसे हाथ के द्वारा। किन्तु चाण्डाल कन्या के हाथ में 'मणियों के कंगन की योजना आपाततः पात्रानुकूल वेश रचना से विपरीत प्रतीत होती है किन्तु "उस चाण्डाल कन्या का 'लक्ष्मी रूप' जो बाद में स्पष्ट होता है" के अनुसार अनौचित्य पूर्ण नहीं है। **वलय** शब्द कंगन (कटक) के लिए प्रयुक्त होता है"—'कटकंवलयोऽस्त्रियाम्'। **रक्तकुवलयदल कोमलेन**—रक्तञ्च तत् कुवलयं रक्त कुवलयं तस्य दलमिव कोमलं यत् तत् तेन, यहाँ वाचकलुप्ता उपमा अलंकार है। **जर्जरित मुखभागाम्**—जर्जरितो मुखभागः यास्या सा ताम्, बाँस का किनारा फटा होने से उसके द्वारा भूमि पर किया गया आघात तीव्र ध्वनि को उत्पन्न करता है। अतः फटे बांस से किया गया शब्द राजा को आकृष्ट करने का मुख्य हेतु है। जिससे न केवल राजा ही अपितु सारी सभा उसकी ओर आकृष्ट हो गई। **कुट्टिम**—गच, फर्श, भूमि "कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूः"। इति कोशः कूट-कूटकर गिट्टी, पत्थर या मणियों से जिस भूमि को ठोस चमकदार बना दिया जाता है उसे कुट्टिम कहा जाता है। **आजघान**—पीटा (खटखटाया) आ उपसर्ग पूर्वक हन् धातु का लिट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन का रूप। **राजकम्**—सामन्त राजाओं का समूह राजन् + वुञ्। **एकपदे**—तत्क्षण, तत्काल "तत्क्षणैकपदे तुल्ये" इति हलायुधः **वनकरियूथमिव**—जंगली हाथियों के समूह के समान—यहाँ उपमा अलंकार है। **तालशब्देन**—'ताल' के दो अर्थ हैं—ताल—ताड़पत्र को कहते हैं। ताल कांसे के बने एक विशेष प्रकार के बाजे को भी कहते हैं। हाथी ताड़पत्रों की खड़खड़ाहट सुन कर चकित हो उस ओर ताकने लगते हैं अथवा वाद्य विशेष की ध्वनि से आकृष्ट होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जंगली हाथियों को पकड़ने के लिए ताल नामक बाजा बजाया जाता होगा जिससे हस्तिसमूह उस शब्द को सुनकर उधर आता होगा और सरलता उसे पकड़ने का कार्य किया जाता होगा। अतः यह ताड़ पत्र की अपेक्षा ताल नामक वाद्य विशेष को ग्रहण करना ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है। जैसे वाद्य स्वर से हस्तसमूह तदभिमुख हो जाता है, उसी प्रकार वह राज समूह भी उस वंशखण्ड की ध्वनि से उधर की ओर आकृष्ट हो गया। **आकृष्य**—खींच कर आ + कृष् + (क्त्वा) ल्यप्।

## चाण्डालकन्या वर्णनम्

**अवनिपतिस्तु 'दूरादालोकय, इत्यभिधाय प्रतीहार्या निर्दिश्यमानां तां वयःपरिणामशुभ्रशिरसा रक्तराजीव-नेत्रपाङ्गेनानवरतकृतव्यायामतया, यौवनापगमेऽप्यशिथिलशरीरसन्धिना सत्यपि मातङ्गत्वे नातिनृशंसाकृतिना अनुगृहीतार्य्यवेशेन शुभ्रवाससा पुरुषेणाधिष्ठितपुरोभागाम्, आकुलाकुल-काकपक्षधारिणा कनकशलाकानिर्म्मितमप्यन्तर्गत शुकप्रभाश्यायमानं मरकतमयमिव पञ्जरमुद्वहता चाण्डालदारकेणानुगम्यमानाम्...... ......**

**शब्दार्थ**—**अवनिपतिस्तु** = राजा ने तो, **दूरादालोकय** दूर से ही (राजा को) देखो, **इति** इस प्रकार, **अभिधाय**=कहकर, **प्रतीहार्य्या**= प्रतीहारी (सेविका) के द्वारा, **निर्दिश्यमानाम्** = दिखलाई जाती हुई, **ताम्** =उस चाण्डालकन्या को, **वयःपरिणामशुभ्रशिरसा** = वृद्धावस्था (वय: परिणाम) के कारण श्वेत शिर वाले, **रक्तराजीवनेत्रापांगेन** = लालकमल (रक्त राजीव) के सदृश नेत्रों के अपांग अर्थात् किनारों वाले

**अनवरतकृतव्यायामतया**= निरन्तर व्यायाम परिश्रमपूर्ण कार्य करने के कारण, **यौवनापगमेऽपि**= युवावस्था के बीत जाने पर भी, **अशिथिल शरीरसन्धिना**=जिसके शरीर के जोड़ों में शिथिलता नहीं आयी थी ; अर्थात् अस्थिबन्धों में सुदृढ़ शरीर वाले, **सत्यपि मातंगत्वे**=चाण्डाल होने पर भी, **नातिनृशंसाकृतिना**=अत्यधिक क्रूर आकृति से हीन अर्थात् उदार दिखलायी पड़ने वाले, **अनुगृहीतार्यवेशेन**=शिष्टजनों के समान वेशभूषा धारण करने वाले, **शुभ्रवाससा**=श्वेत वस्त्रधारी, **पुरुषेण**=पुरुष (वृद्ध पुरुष) के द्वारा, **अधिष्ठितपुरोभागाम्**=जो आगे अधिष्ठित थी (अर्थात् उपर्युक्त वृद्ध पुरुष जिसके आगे था, **आकुलाकुल काकपक्षधारिणा**=इधर-उधर छितराई हुई (आकुलाकुल) घुंघराले बालों की लटों को (काकपक्ष) धारण करने वाले, **कनकशलाकानिर्मितमपि**=सोने की सलाइयों से बने होने पर भी, **अन्तर्गतशुकप्रभाश्यामायमानम्**=अंदर विद्यमान तोते की कान्ति से हरे रंग का प्रतीक होने वाले (अतएव **मरकतमयमिव**= मानों मरकतमणि (हरे रंग की मणि विशेष) से ही बने हुए, **पञ्जरम्**=पिंजड़े को **उद्वहता**= धारण करने वाले, **चाण्डालदारकेण**=चाण्डाल बालक के द्वारा, **अनुगम्यमानाम्**=अनुगमन की जाती हुई अर्थात् चाण्डाल बालक जिसके पीछे चल रहा था (ऐसी चाण्डाल कन्या को राजा ने निर्निमेष नेत्रों से देखा)।

**अनुवाद**—राजा शूद्रक ने (उस चाण्डाल कन्या को देखा) "दूर से ही देखो" "ऐसा कहकर जो कि प्रतीहारी से द्वारा दिखलायी जा रही थी," (तथा) वृद्धावस्था के कारण श्वेत सिर वाला, लालकमल के समान नेत्रप्रान्त वाला, निरन्तर व्यायाम (परिश्रम) करने के कारण युवावस्था के समाप्त हो जाने पर भी शिथिलतारहित शरीर के जोड़ों वाला ; अर्थात् सुदृढ़ संधियों वाला, चाण्डाल होने पर भी क्रूर आकृति से रहित, शिष्ट पुरुषों जैसी वेशभूषा वाला, एक श्वेत वस्त्रधारी पुरुष जिसके आगे स्थित था, (तथा) छितराई हुई घुंघराली लटों वाले, सोने की सलाइयों से बने होने पर भी भीतर विद्यमान शुक की (हरित) कान्ति से श्यामवर्ण प्रतीत होने वाले, (अतएव) मानों हरित् (मरकत) मणियों के बने हुए पिंजड़े को धारण करने वाले एक चाण्डाल बालक से द्वारा अनुगमन की जा रही थी।

**भावार्थ**—प्रतीहारी के द्वारा निर्दिष्ट की गयी चाण्डालकन्या उसे को, जिसके आगे एक वृद्ध चाण्डाल पुरुष तथा पीछे एक बालक जिसके हाथ में सोने के पिंजड़े में एक शुक था, चल रहा था (राजा ने देखा)।

**संस्कृत व्याख्या—अवनिपतिरतु**— अवनेः पृथिव्याः पतिः स्वामी राजा शूद्रकः तु, "**दूरादालोक्य**" दूरस्थानात् एव राजानं पश्य **इति** इत्थम् **अभिधाय** कथयित्वा **प्रतीहार्या**—द्वारपालिकया **निर्दिश्यमानाम्** ज्ञाप्यमानाम् तां चाण्डालकन्यकाम् (अनिमिषलोचन, ददर्श इति दूरेणान्वयः) **वयःपरिणामशुभ्रशिरसा**— वयसः अवस्थायाः परिणामेन परिपाकेन वार्धक्येत्यर्थः **शुभ्रं** पलितत्वात् श्वेतं शिरः उत्तमांगं यस्य स तथोक्तेन **रक्तराजीवनेत्रापांगेन—रक्तं** च यत् राजीवं रक्तराजीवम् रक्तकमलम् तद्वत् (रक्तौ) नेत्रयोः अपांगौ लोचनप्रान्तौ यस्य स तेन, तथोक्तेन (तथा च) **अनवरतकृतव्यायामतया** अनवरतं निरन्तरं यथा स्यात्तथा कृतः निहितः व्यायामो येन सः अनवरतकृतव्यायामः तस्य भावः तत्ता तया अनवरतकृत व्यायामतया निरन्तर विहित शारीरिक परिश्रमतया,

**यौवनापगमेऽपि** व्यतीतायामपि युवावस्थायाम्, **अशिथिलशरीरसन्धिना**—न शिथिला अशिथिलाः शरीरस्य सन्धयः यस्य स तेन दृढ़देहबन्धेन व्यायामकरणात् वार्धक्येऽपि अस्थिसन्धिषु शैथिल्याभावः इति तात्पर्यम्, तादृशेन (तथा च) **सत्यपि मातंगत्वे** चाण्डालकुलोत्पन्नत्वात् चाण्डालत्वे सत्यपि **नातिनृशंसाकृतिना** न अतिनृशंसा अतिक्रूरा आकृतिः स्वरूपम् यस्य स तेन सौम्याकृतिनेति तात्पर्यम् **अनुगृहीतार्यवेषेण**—अनुगृहीतः धारितः आर्याणां शिष्ट पुरुषाणां वेषः नेपथ्यं य़ेन स तेन तथोक्तेन, **शुभ्रवाससा** धवल-वस्त्र धारिणा **पुरुषेण** केनचित् मनुष्येण **अधिष्ठितपुरोभागाम्**—अधिष्ठित आश्रितः पुरोभागः अग्रभागः यस्याः साः ताम् आश्रिताग्रभागाम् । (अथ च) **आकुलाकुलकाकपक्ष-धारिणा**—आकुलाकुलः इतस्ततः पर्यस्तः काकपक्षः शिखण्डकः शिरोमूर्धजमण्डलं तं धारयितुं शीलं यस्य स तेन तादृशेन **कनकशलाका निर्मितमपि** कनक शलाकाः सुवर्ण-शलाकाः ताभिः निर्मितमपि रचितमपि **अन्तर्गतशुकप्रभाश्यामायमानम्**—अन्तर्गतः मध्येस्थितः यः शुकः कीरस्तस्यः प्रभया हरितकान्त्या श्यामायमानम् श्यामवर्णवदाचरत् अतएव **मरकतमयमिव**—मरकतमणिजटितमिव हरितवर्णमरकतमणिरचितमिव वा प्रतीयेमानं पञ्जरं पक्षिधारणाय निर्मितं शलाकागृहम् **उद्वहता** धारयता **चाण्डाल-दारकेण**—चाण्डालपुत्रेणैकेन **अनुगम्यमानाम्** अनुव्रज्यमानाम्—(चाण्डालकन्यकां राजा ददर्श इतिदूरेणान्वयः) ।

**संस्कृत सरलार्थ**—'दूरान्नृपतिं शूद्रक मवलोकय' इत्यभिधाय द्वारपालिकया 'इयमस्ति सा चाण्डालकन्यका' इति सभामण्डपे ज्ञाप्यमानाम् ताम् तादृशीं चाण्डाल-कन्यकाम्-अवनिपतिः राजा शूद्रकः (अनिमेपलोचनो ददर्श ······इति दूरेणान्वयः) या चाण्डलकन्यका तादृशेन पुरुषेणैकेनाश्रिताग्रभागासीत्, यः वार्धक्यवशाच्छ्वेतमौलिः, रक्तकमलवन्नेत्रप्रान्तभागः, निरन्तरकृतव्यायामहेतुना अतीतयौवनकालोऽसि दृढ़देहवन्धः, चाण्डालोऽपि नातिक्रूराकृतिः, अंगीकृतार्यवेशः शुभ्रवस्त्रधारी चासीत् । इयञ्च चाण्डाल-कन्यका तादृशेनैकेन अन्त्यजपुत्रेण अनुगम्यमानासीत्, यः इतस्ततो विक्षिप्तशिखण्डक-धारी स्वर्णशलाकारचितमपि मध्यस्थितशुकस्य हरितकान्त्या श्यामवर्णमिव प्रतीयमानम् अतएव नीलमणिमयमिवावलोक्यमानम् पञ्जरं धारयन्नासीत्; ।

**टिप्पणी**—"**दूरादालोकेय**" प्रतिहारी के इस कथन का उद्देश्य उस कन्या का चाण्डाल कुलोत्पन्ना होना अथवा अपरिचित व्यक्ति का राजा के समीप जाना उचित न होना हो सकता है । **अभिधाय** अभि+धा+(क्त्वा) ल्यप्—कहकर । **निर्दिश्यमानाम्**—यह चाण्डालकन्या का विशेषण है । निर्+दिश्+णिच्+शानच् द्वितीयाविभक्ति एकवचन दिखलायी जाती हुई कि यह वही चाण्डालकन्या है, जो द्वार पर प्रतीक्षारत थी । इस वाक्य के द्वितीयान्त स्त्रीलिङ्ग पद चाण्डालकन्यकाम् के विशेषण है । वाक्य का कर्ता अवनिपतिः है । **वयः परिणाम शुभ्रशिरसा** से **शुभ्रवाससा** तक के तृतीयान्त पद **पुरुषेण** के विशेषण है । **रक्तराजीवनेत्रापांगेन** पद में वाचक लुप्ता उपमा अलंकार है । **मातंगत्वे**—मातङ्गस्य भावः मातङ्गत्वं मातङ्ग+त्व भावार्थकत्व प्रत्यय । तस्मिन् सप्तमी एकवचन का रूप । **मातंगत्वेऽपि नातिनृशंसाकृतिना**—मातङ्गत्व अर्थात् जात्या चाण्डालत्व होने पर भी आकृति से अतिनृशंस (क्रूर) न होने का कारण उस पुरुष की वृद्धावस्था का होना है । **अधिष्ठितः** अधि+स्था+क्त—आश्रित **पुरोभाग**—अग्रभाग । **आर्य**—सज्जन—"कर्तव्यमाचरन् कामम कर्तव्यमनारन्, तिष्ठति साध्वाचारे यः स आर्य इति स्मृतः" **काकपक्षःधारिणा**—काकपक्ष एक विशेष प्रकार से (घुंघराले रूप में)

में) संवारे गये बालक के कनपटी के बाल अथवा लट को धारण करने वाले। "काकपक्षः शिखण्डकः" इत्यमरः **श्यामायमानम्**—अश्यामं श्यामं सम्पद्यते इति श्यामायमानम् श्याम+क्यङ्+शानच् द्वितीया एकवचन का रूप—श्यामवर्ण के समान होते हुए—यहाँ क्यङ्गत उपमा अलंकार है। **मरकतमयमिव**—यहाँ क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। अतः दोनों अलंकारों का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है। **दारक**—दार+कन् बालक में लघुत्व या हीनत्व प्रदर्शनार्थ कन् प्रत्यय का प्रयोग। **उद्वहता**—उत+वह्+शतृ तृतीया एकवचन धारण करते हुए। **अनुगम्यमानाम्**—अनु+गम्+यक्+शानच्+टाप् द्वितीया एकवचन—अनुगमन की जाती हुई।

इस अंश में चाण्डालकन्या के आगे विद्यमान वृद्ध व्यक्ति एवं पीछे अनुगमन करने वाले चाण्डाल बालक का विशेषतः वर्णन है। आगे के अंशों में चाण्डालकन्या का विशिष्ट वर्णन है, जो इस वाक्य का प्रतिपाद्य है।

**अमुरगृहीतामृतापहरण कृतकपटपटु विलासिनीवेशस्य श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम् संचारिणीमिवेन्द्रनीलमणि-पुत्रिकाम्, आगुल्फावलम्बिना नीलकञ्चुकेनाच्छन्नशरीराम्, उपरि रक्तांशुकविरचितावगुण्ठनाम् नीलोत्पल-स्थलीमिव निपतितसन्ध्यातपाम् एककर्णावसक्तदन्तपत्रप्रभाधवलितकपोल-मण्डलाम् उद्यदिन्दुकिरणच्छुरित मुखीमिव विभावरीम्, आकपिलगोरोचना-रचिततिलकतृतीय लोचनाम् ईशानुचरितकिरातवेशामिव भवानीम्.........**

**शब्दार्थ**—**असुरगृहीतामृतापहरणकृत कपट पटु विलासिनीवेषस्य**—**असुर**= राक्षसों के द्वारा, **गृहीत**=ग्रहण किया गया या अपहरण किया गया (जो) अमृत उसको, **अपहरण**=(राक्षसों से) अपहृत करने के लिए, **कृतकपटपटु विलासिनीवेषस्य**= मायावी चातुर्यपूर्ण स्त्री (मोहिनी) का स्वरूप धारण करने वाले, **श्यामतया**=श्याम वर्ण अर्थात् सांवले रंग की होने के कारण, **भगवतः हेरः इव**=मानो भगवान् विष्णु का, **अनुकुर्वतीम्**=अनुकरण करने वाली, **संचारिणीम्**=चलती-फिरती, **इव**=मानो, **इन्द्र-नीलमणि पुत्रकाम्**=इन्द्र नील नामक नीलमणि की बनी हुई पुतली, **गुल्फावलम्बि**= घुटनों तक लटकने वाले, **नीलकञ्चुकेन**=नीले कंचुक (लम्बा कुर्ता या जामा नामक परिधान विशेष) से **आच्छन्न शरीराम्**=ढके हुए शरीर वाली, **उपरिरक्तांशुकरचिता-वगुण्ठनाम्**=ऊपर अर्थात् सिर पर लाल रेशमी कपड़े के द्वारा घूंघट निकाले हुई **नीलो-त्पलस्थलीमिव**=नील कमलों की भूमि के समान, **निपतित सन्ध्यातपाम्** =संध्याकालीन धूप जिस पर पड़ रही हो, **एककर्णावसक्तदन्तपत्रप्रभा**=एक कान में पहने हुए हाथी दाँत के पत्ते की कान्ति से (हाथी दांत का विशेष कर्णाभूषण) **धवलितकपोलमण्डलाम्** =श्वेत हुए कपोल मण्डल वाली, **उद्यदिन्दु किरणच्छुरितमुखीम्**=उदित होते हुए चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित अग्रभाव वाली अर्थात् प्रदोष वेला, **विभावरीमिव**= रात्रि के समान, **आकपिल गोरोचना रचिततिलक तृतीय लोचनाम्**—**आकपिल**=कुछ-कुछ लाल पीले रंग का, **गोरोचना**=गोपित्त नामक विशेष प्रकार का लेपन द्रव्य के द्वारा, **रचित**=लगाया गया, **तिलक**=टीका रूपी, **तृतीय लोचनाम्**=तीसरे नेत्र की शोभा धारण करने वाली, **ईशानुचरितकिरात वेशामिव**—**ईश**=भगवान् शङ्कर के, **अनुचरित** =बाद में धारण किये गये (अर्थात् शङ्कर के द्वारा पहले किरात वेश धारण करने के

पश्चात् पार्वती के द्वारा किराती का वेश धारण करने वाली) **किरातवेशामिव** = किरात नामक भील जाति के वेश वाली, **मानो भवानीम्** = भगवती पार्वती को।

**अनुवाद**—श्याम वर्णा होने के कारण (वह चाण्डालकन्या ऐसी लग रही थी जैसे) राक्षसों के द्वारा गृहीत अमृत को (उनसे) छुड़ाने के लिए बड़ी चतुरता से मायावी मोहिनी स्त्री का रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु का अनुकरण करने वाली हो। इन्द्र नील मणियों की बनी चलती-फिरती पुतली (गुड़िया) के समान, घुटने या टखने तक लटकने वाले नीले परिधान (कञ्चुक, जामा) से ढके हुए शरीर वाली (तथा) सिर पर लाल वस्त्र से घूंघट निकालें हुई (अतएव) जिस पर सायंकालीन धूप पड़ रही हो ऐसी नीलकमल भूमि के समान, एक कान में पहने हुए हाथी दाँत के (आभूषण) की चमक से श्वेत कपोल मण्डल वाली अतएव उदित होते हुए चन्द्रमा की किरणों से रञ्जित अग्रभाव अर्थात् प्रदोष वेला वाली रात्रि के समान, कुछ-कुछ लाल-पीले गोरोचना से रचित तिलक रूपी तृतीय नेत्र वाली (अतएव) किरात वेषधारी भगवान् शंकर के अनुकरण पर (किराती) का वेष धारण करने वाली भगवती पार्वती जैसी (ऐसी चाण्डालकन्या को निर्निमेष नेत्रों से राजा ने देखा—यह आगे से सम्बद्ध है)

**भावार्थ**—श्याम वर्णा होने से वह चाण्डालकन्या भगवान् विष्णु के मोहिनी रूप के समान थी, सिर पर लाल एवं नीचे नीला वस्त्र धारण करने के कारण वह ऐसी लग रही थी जैसे नीलकमलों की स्थली में सायंकालीन सूर्य का लाल प्रकाश पड़ रहा हो। कान के हाथी दाँत के आभूषण की चमक से उसका श्यामल मुख उस रात्रि जैसा लग रहा था जिसमें उदित होते हुए चन्द्रमा की कान्ति से रात्रि का एक (आद्य) भाग श्वेत वर्ण हो जाता है। मस्तक पर गोरोचना का तिलक भगवान् शंकर के मस्तक के तृतीय नेत्र जैसा लग रहा था और वह चाण्डालकन्या स्वयं किरातवेश धारिणी पार्वती के समान लग रही थी। (ऐसी विशिष्ट चाण्डालकन्या को राजा ने देखा)।

**संस्कृत व्याख्या—असुरगृहीतामृतापहरण कृतकपट पटु विलासिनी वेषस्य**—असुरैः राक्षसैः गृहीतं स्वायत्तीकृतम् यत् अमृतं समुद्रमन्थनोत्था सुधा तस्य अपहरणाय राक्षसेभ्यः पुनर्ग्रहणाय कृतः धृतः कपटेन पटुः छलेन चातुर्यपूर्ण विलासिन्याः मोहिनी रूपस्त्रियो वेषः स्वरूपं येन तस्य तथोक्तस्य भगवतः हरेः विष्णोः श्यामतया समान कृष्ण वर्णतया **अनुकुर्वतीमिव** सादृश्यमा चरन्तीमिव। **सञ्चारिणीं** गमनशीलां **इन्द्रनीलमणि पुत्रिकाम्** गमनक्षमां नीलकान्तमणि पुत्तलिकामिव विद्यमानाम्, **आगुल्फावलम्बिना** घुटिका पर्यन्त पातिना **नीलकञ्चुकेन** नील वर्णं वस्त्रविशेषेण आच्छन्नशरीराम्—आ समन्तात् छन्नम् आवृतमाच्छादितं शरीरं यस्याः सा ताम् तथोक्ताम् तथा **उपरि** ऊर्ध्वदेशे शिरसीत्यर्थः **रक्तांशुक विरचितावगुण्ठनाम्** रक्तांशुकेन लोहितवर्ण वस्त्रेण विरचितं कृतम् अवगुण्टनं मुखाच्छादनं यया सा ताम् तादृशीम् (अतएव) **निपतित सन्ध्यातापम्**—निपतितः उपरि पर्यस्तः सन्ध्यायाः प्रातः सन्ध्याकालीनः आतपः यस्याः ताम् तादृशीं **नीलोत्पलस्थलीमिव**—नीलवर्ण कमलानां स्थलीम् उत्पत्ति भूमिमिव, **एककर्णावसक्तदन्त पत्र प्रभा धवलित कपोल मण्डलाम्**—एककर्णे एकस्मिन् श्रोत्रे अवसक्तं संलग्नं धारित-मित्यर्थः यत् दन्तपत्रं हस्तिदन्त रचित कर्णाभरण विशेषः तस्य **प्रभया** कान्त्या **धवलितं** शुभ्रवर्णीकृतम् **कपोलमण्डलम्** गण्डप्रदेशो यस्याः सा ताम् तादृशीम् अतएव **उद्यदिन्दु-कि**[illegible]**च्छुरित मुखीम्**—**उद्यत्** उदयं प्राप्नुवन् य इन्दुश्चन्द्रः तस्य **किरणैः** मयूखैः **छुरितं**

तमोनाशेन रञ्जितम् मुखम् आद्यभागो यस्याः सा ताम् तादृशीं **विभावरीमिव** रात्रिमिव शोभमानाम्, तथा च, **आकपिल गोरोचना रचित तिलक तृतीयनेत्राम्—आकपिलया** ईषत् पीतरक्तया **गोरोचनया** गोपित्तनामकेन लेपविशेषेण **रचितं** निर्मितं **यत्तिलकं** पुण्ड्रं तदेव **तृतीयं लोचनं** नेत्रं यस्याः सा ताम् तादृशीम् अतएव **ईशानुचरितकिरातवेशाम्—ईशस्य** भगवतः शंकरस्य **अनुचरितः** पश्चाद् धृतः पूर्वं भगवता शंकरेण पार्थहिताय किरातवेशो धृतः तत्पश्चात् पार्वत्याऽपि इति पश्चाद् धृतः **किरातवेशः** किरात्याः भिल्लिन्याः वेशः नेपथ्यं यया सा ताम् तादृशीम् **भवानीम्** पार्वतीमिव दिद्यमानाम् (चाण्डालकन्यां राजा ददर्श इति दूरेणान्वयः) ।

**संस्कृत सरलार्थ**—अवनिपतिस्तादृशीं चाण्डालकन्यकां ददर्श, या स्वसमान कृष्णवर्णतया दैत्यगृहीतस्यामृतस्यापहरणाय धृतकपट पटुमोहनीस्वरुपस्य भगवतो विष्णोः साद्दश्यमनुभवन्तीवासीत् । एवञ्च या गमनशीला नीलकान्तमणिनिर्मित पुत्रलिकेवासीत् । अथ च या घुटिकापर्यन्तावलम्बिना नीलवर्णवस्त्रेण आच्छादितदेहासीत् । एवञ्च या रक्तवर्णवस्त्रेण कृतावगुण्ठना अतएव उपरि पर्यस्तप्रातः सन्ध्याकालीनातपा कुवलय कृत्रिमभूभिरिव प्रतीयते स्म । अथ चैक कर्णावसक्तदन्तपत्रकर्णाभरणस्य कान्त्या श्वेतीकृतकपोलमण्डला या उद्यच्चन्द्ररश्मिभिः प्रकाशिताद्यभागा रात्रिरिवा यक्ष्यतेस्म । एवञ्च ईषद्रक्तपीतगोरोचनया रचिततिलकरूपतृतीयनेत्रा या शम्भोः पश्चाद् गृहीत-किरातिनीवेशा पार्वतीवासीत् ।

**टिप्पणी**—'असुरगृहीतामृतापहरण'—वाक्यांश से सम्बन्धित एक पौराणिक आख्यान इस प्रकार है—"समुद्र मन्थन से जब अमृत निकला तो उसे राक्षसों ने ले लिया और स्वयं पान करने का प्रयत्न करने लगे, ऐसा देखकर भगवान् विष्णु ने 'मोहिनी' का रूप धारण कर राक्षसों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया और देवताओं को अमृत पीने का अवसर सुलभ कराया। समुद्र मन्थन से जो चौदह रत्न निकले वे इस प्रकार है—"लक्ष्मीः सुरा कौस्तुभशाङ्गं शंखाः उच्चैः श्रवाः कामदुघारथरम्भा।" "ऐरावतः कल्पतरुर्मृगाङ्को धन्वन्तरिश्चापि विषं सुधा च ।" **भगवान्**—भगम् ऐश्वर्य-मस्यास्तीति भगवान्- भग+मतुप्—लक्षण "उत्पत्ति च स्थितिञ्चैव लोकानामगतिं गतिम् । वेत्ति दिद्यामविद्यां च स ज्ञेयो भगवानिति ।" **हरेरिवानुवर्तीम्**—में "मानों विष्णु का अनुकरण करने वाली साद्दश्य धारण करने वाली । इस अर्थ में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है । दोनों में साधारण धर्म "श्यामतया" है । **सञ्चारिणीम्**—सम्+चर्+णिनि+ङीप् द्वितीया एकवचन (गमनशील) । संचारिणीमिव में भी उत्प्रेक्षा अलंकार है । **पुत्रिका**—पुतली (गुड़िया, कठपुतली) । **अवगुण्ठन**—घूंघट "नीले रङ्ग के कंचुक से शरीर का ढका होना तथा लाल वस्त्र से घूंघट डालना" यह एक विशेष परिधान परम्परा का द्योतक है । कन्या होने पर भी घूंघट धारण करना तत्समय में यवन सभ्यता के प्रचलन का स्पष्ट प्रमाण है । 'बुर्का' नामक विशेष मुस्लिम स्त्रियों का परिधान आज भी मुस्लिम समाज में कन्या धारण करती है, जिससे सिर से घुटने तक का सम्पूर्ण शरीर उसमें ढका रहता है ।

**'नीलोत्पलस्थलीमिव'** में उपमा अलंकार है, जिसमें चेतन चाण्डालकन्या की अचेतन । 'नीलोत्पलस्थली' से उपमा दी गयी है । **अवसक्त**—अव—सञ्ज्+क्त—लगा हुआ या धारण किया गया । **छुरित**=प्रकाशित—**एककर्णावसक्त···विभावरीम्** इस वाक्याश में **उपमा** अलंकार का सुन्दर प्रयोग है, श्यामवर्णा चाण्डालकन्या और रात्रि में एवं दन्तपत्र और चन्द्रमा में सुन्दर साम्य है । 'अवसक्त' का पाठान्तर अवमुक्त भी

मिलता है, जिसका अर्थ, त्यागा हुआ है। "आकपिल···भवानीम्" इस वाक्यांश में **उपमा** अलंकार है, जिसके मस्तक में गोरोचना का तिलक जो तृतीय नेत्र की प्रतीति करा रहा था ऐसी चाण्डालकन्या की उपमा किरातवेशधारिणी भगवती पार्वती से दी गयी है। इस 'वाक्यांश' में महाभारत की एक कथा की ओर संकेत है—'भगवान् श्रीकृष्ण के निर्देश पर पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिए जब अर्जुन ने तप करना आरम्भ किया तो **'मूकदानव'** ने वराह (जंगली सूअर) का रूप धारण कर अर्जुन को मारना चाहा, भगवान् शंकर ने अर्जुन की रक्षा के लिए स्वयं किरात का वेश धारण किया, शिव के पीछे ही पार्वती भी किरातिनी का वेश धारण कर वहाँ पहुँच गयीं।

यहाँ तक कवि ने चाण्डालकन्या के बालों, मुखावयवों एवं कर्णाभूषण, आदि का कण्ठ से ऊपर के भाग का काल्पनिक वर्णन किया है। अग्रिम अंश में उसके वक्ष, हाथ, उदर, आदि का वर्णन है।

**उरस्थल निवास संक्रान्तनारायण देह प्रभाश्यामलितामिव श्रियम्। कुपित हरहुताशन दह्यमानमदन धूम मलिनी कृतामिव रतिम्, उन्मादहलि हलाकर्षणभयपलायितामिव कालिन्दीम्, अतिबहलपिण्डालक्तक रसराग पल्लवित पादपङ्कजाम्, अचिरमृदितमहिषा सुररुधिर रक्त चरणामिव कात्यायनीम्, आलोहिताङ्गुलि प्रभापाटलित नखमयूखाम्, अतिकठिन मणिकुट्टिम स्पर्शमसहमानां क्षितितले पल्लवभङ्गानिव निधाय सञ्चरन्तीम ............।**

**शब्दार्थ**—**उरःस्थलनिवास संक्रान्त नारायण देहप्रभाश्यामलिताम्**—**उरः-स्थल**=वक्षःस्थल में अर्थात् हृदय में, **निवास**=बसने के कारण, **सङ्क्रान्त**=प्रतिबिम्बित होने वाली, **नारायण देह**=भगवान् विष्णु के (श्यामल) शरीर की, **प्रभाश्यामलिताम्** कान्ति से श्याम वर्ण सांवली बनी हुई, **श्रियम् इव**=लक्ष्मी के समान, **कुपित हर हुताशन दह्यमानमदनधूममलिनीकृताम्**—**कुपित**=क्रुद्ध जो, **हर**=भगवान् शंकर, **हुताशन**=तृतीय नेत्र की अग्नि से, **दह्यमान**=जलते हुए, **मदन**=कामदेव के, **धूम** धुएँ से, **मलिनीकृताम्**=मलिन की गयी, **रतिम् इव**=कामदेव की पत्नी रति के समान, **उन्मदहलिाकर्षणभयपलायिताम्**—**उन्मद**=(मदिरा पान से) **उन्मत्त हलि**= (कृष्ण के बड़े भाई) बलरामजी के, **हलाकर्षण**=हल से खींचे जाने के भय से, **पलायिताम्**=भागी हुई, **कालिन्दीम् इव**=यमुना सी (प्रतीत होने वाली) **अतिबहल-पिण्डालक्तक रसराग पल्लवितपादपङ्कजाम्**—**अतिबहल**=अत्यधिक, **पिण्डालक्तकरस**=पिण्डीभूत महावर के रस की, **राग**=लालिमा से, **पल्लवितपादपङ्कजाम्**=नवीन पत्ता अर्थात् किसलय, कोंपल के समान (लाल) चरण कमलों वाली, **अचिरमृदित-महिषासुर रुधिररक्तचरणाम्** **अचिर**=अभी-अभी (तत्काल) **मृदित**=मारे गये **महिषा-सुर**=महिषासुर नामक दैत्य के, **रुधिर**=खून से, **रक्तचरणाम्**=लाल हुए पैरों वाली, **कात्यायनीम् इव**=भगवती दुर्गा के समान, **आलोहितांगुलिप्रभा पाटलितनख-मयूखाम्**—**आलोहित**=अत्यधिक लाल, **अंगुलिप्रभा**=(पैरों की) उंगलियों की कान्ति से, **पाटलित**=गुलाबी हुई, **नखमयूखाम्**=नाखुनों की कान्ति वाली, **अति-कठिनमणिकुट्टिमस्पर्शमसहमानाम्**—**अतकिठिन**=अत्यन्त कठोर, **मणिकुट्टिम**=मणियों का बना हुआ फर्श, (उसके) **स्पर्शम् असहमानाम्**=स्पर्श को सहन न कर सकने

वाली, क्षितितले=पृथ्वी पर (फर्श पर) पल्लवभंगान् इव=मानो किसलय खण्डों को, निधाय=रखकर फैलाकर, सञ्चरन्तीम्=चलने वाली (चाण्डालकन्या को राजा ने देखा।)

अनुवाद— "राजा ने...चाण्डालकन्या को देखा" यह मूल वाक्य है। (जो चाण्डालकन्या) वक्षःस्थल पर अर्थात् हृदय में निवास करने के कारण प्रतिबिम्बित हुई भगवान् विष्णु के शरीर की (श्यामवर्ण) कान्ति से श्यामवर्णा हुई लक्ष्मी के समान प्रतीत होने वाली (एवं) क्रुद्ध हुए भगवान् शङ्कर के द्वारा जलाये जा रहे कामदेव के धुएँ से काली पड़ी हुई (काम पत्नी) रति के समान, उन्मत्त हुए बलरामजी के हल से खींचे जाने के भय से भागी हुई यमुना के समान, अत्यधिक पिण्डीभूत महावर के रस की लालिमा से रंगे हुए नवीन किसलियों के समान चरण कमलों वाली (होने के कारण) तत्काल मारे गये दैत्य महिषासुर के खून से सने (अतएव) लाल पैरों वाली भगवती दुर्गा के समान प्रतीत होने वाली, अत्यधिक उँगलियों की प्रभा से गुलाबी हुए नाखूनों वाली (अतएव) मानो अतिशय कर्कश, कठोर मणिरचित फर्श के स्पर्श को सहन न कर सकने के कारण उस पर पल्लव खण्डों को बिछाकर चलती हुई, (चाण्डालकन्या को राजा ने देखा)।

भावार्थ—राजा ने ऐसी चाण्डालकन्या को देखा जो श्याम वर्णा होने के कारण ऐसी लक्ष्मी के समान थी, जिसका शरीर हृदयस्थ विष्णु के श्यामल शरीर के प्रतिबिम्ब से स्वयं श्याम हो गया था, जो भगवान् शङ्कर के द्वारा जलाये गये कामदेव के शरीर के धुएँ से धूमायित रति के समान थी, जो उस यमुना जैसी थी, जिसे नशे में चूर हो बलराम ने अपने हल से खींचने की चेष्टा की थी और वह भय से भाग खड़ी हुई थी, उसके चरण कमल इतने लाल थे कि ऐसा लग रहा था, जैसे अभी-अभी महिषासुर को मारने से उसके खून से सने पैरों वाली साक्षात् दुर्गा ही हो। पैरों की उँगलियों की लालिमा से लाल हुए नाखूनों की कान्ति, मणि रचित फर्श पर नव किसलय की शोभा प्राप्त कर रही थी, अतः ऐसा लग रहा था मानों कठोर उस भूमि पर चलने में कष्ट का अनुभव करने के कारण वह नवीन कोपलें बिछाकर चल रही हो।

संस्कृत व्याख्या—उरःस्थलनिवाससंक्रान्तनारायणदेहप्रभा श्यामलिताम्—उरःस्थले वक्षसि निवासेन आवासेन संक्रान्ता प्रतिबिम्बिता या नारायणस्य भगवतो विष्णोः देहप्रभा शरीरकान्तिः तया श्यामलिताम् श्यामत्वं कृष्णवर्णत्वं प्राप्ताम् श्रियम् इव लक्ष्मीमिव शोभमानाम्, कुपितहरहुताशन दह्यमानमदनधूममलिनी कृताम्—कुपितश्चासौ हरः कुपितहरः क्रुद्धो यः शिवः तस्य हुताशनेनः तृतीय लोचन वह्निना दह्यमानः ज्वाल्यमानो यो, मदनः—कामदेवः तस्य, धूमेन— दहनकेतुना, मलिनीकृताम्—मालिन्यं, धूमवर्णत्वमुपगताम् रतिम इव— कामपत्नीं रतिमिव, उन्मद हलिहलाकर्षण भयपलायित ाम—उन्मदः मदिरापानादिनोन्मत्तो यो हलिः हलधरः कृष्णाग्रजः तस्य हलाकर्षणात् —हलेन लाङ्गलेन यदाकर्षणम् आकृष्टिः तस्मात् यद् भयं त्रासस्तेन पलायिताम् विलयं गताम्, कालिन्दीम इव यमुनामिव, अतिबहलपिण्डालक्तक रस रागपल्लवित पादपंकजाम्—अतिबहलः अत्यधिकः यः पिण्डालक्तकरसः—पिण्डीभूत ालक्तकद्रवस्तस्य रागेण लौहित्येन पल्लविते नवकिसलयवत् शोभिते पादपङ्कजे चरणकमले यस्याः सा तां तादृशीम् अतएव अचिरमृदितमहिषासुर रुधिररक्त चरणाम्—अचिरं सद्यः मृदितस्य मारितस्य छिन्नकण्ठस्य महिषासुरस्य एतन्नामासुर विशेषस्य रुधिरेण शोणितेन रक्तौ लोहितवर्णौ चरणौ पादौ यस्यास्तां तादृशीम् कात्यायनीम् इव भगवतीं महिषासुरमर्दिनीं दुर्गामिव वि

**आलोहितांगुलि प्रभापाटलित नखमयूखाम्**—आलोहिताः अत्यधिकं रक्तवर्णाः याः अङ्गुलयः तासां: प्रभाभिः कान्तिभिः पाटलिताः श्वेतरक्तीकृताः नखमयूखाः नखानां पुनर्भवानां मयूखाः रश्मयः यस्याः सा ताम् तादृशीम् **अतिकठिन मणिकुट्टिम स्पर्शमसहमानाम्**—अतिकठिनम् अतीवकर्कशम् यत् मणिकुट्टिमं मणिखचितबद्धभूमिः तस्य स्पर्शं संश्लेषम् असहमानाम् अक्षममाणाम् अतिसुकुमारचरणत्वादित्याशयः, अतएव **क्षितितले** पृथिव्यास्तले बद्धकुट्टिमस्थले इति भावः, **पल्लवभंगान्** किसलयखण्डान्, **निधायेव**—स्थापयित्वेव, **सञ्चरन्तीं**–गच्छन्तीम् एवं भूतां चाण्डालकन्यकां राजा ददर्शेति दूरेणान्वयः।

**संस्कृत सरलार्थ**—राजा शूद्रकोऽनिमिषलोचनः सन् तादृशीं चाण्डालकन्यकां ददर्श। या स्वहृदये स्थितस्य भगवतो विष्णोः शरीरच्छायया श्यामायितशरीरा लक्ष्मीरिवासीत् अथ च या क्रुद्धस्य भगवतः शंकरस्य तृतीय नेत्राग्निना दह्यमानस्य कामदेवस्य धूमेन मलिनशरीरा कामपत्नी रतिरिवासीत् अथवा या मधुपानमत्तस्य बलरामस्य हलाकर्षणात् भयभीता अतएव भयेन पलायिता यमुनेवासीत्। तथा च, या अत्यधिकपिण्डीभूतालक्तक स्य द्रवस्य लौहित्येन पल्लवितपादपङ्कजासीत्। अतएव या सद्यो मारितस्य महिषासुरस्य रक्तेन लोहितचरणा भगवती दुर्गेव प्रतीयमानासीत्। रक्तवर्णानां चरणाङ्गुलीनां प्रभाभिः श्वेतरक्तीकृतचरणनखमयूखा या अतिकर्कशकुट्टिम भूमेः स्पर्शमसहमाना अतएव पल्लवखण्डान् निधाय इव संचरन्ती प्रतीयते स्म।

**टिप्पणी**—संक्रान्त—सम् + क्रम् + क्त (प्रतिविम्बित) 'उरःस्थल······श्रियम्' इस वाक्यांश में लक्ष्मी और चाण्डालकन्या में सादृश्य वर्णित करने के कारण उपमा अलंकार तथा लक्ष्मी का अपना गौर वर्ण त्यागकर श्याम वर्ण ग्रहण करने के कारण तद्गुण अलंकार है। इस प्रकार दोनों अलंकारों का अङ्गाङ्गिभाव संकर है। **तद्गुण अलंकार का लक्षण**—

"स्वमुत्सृज्य गुणं योगादत्युज्ज्वल गुणस्य यत्
वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुणः"

'कुपितहर······रतिम्' इस वाक्यांश में शिवपुराण की एक कथा का संकेत है। जो इस प्रकार है—"तारकासुर के वध के लिए ब्रह्मा ने देवताओं को बताया कि शिव-पार्वती का पुत्र कार्तिकेय ही समर्थ है। तब देवताओं ने शिव को विवाह हेतु प्रसन्न करने के लिए कामदेव को नियुक्त किया। कामदेव अपनी शक्ति का प्रयोग कर शिव के धैर्य को लुप्त करने का यत्न करने लगा तभी शिव ने क्रुद्ध हो अपने मस्तक के तृतीय नेत्र की ज्वाला से कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया।" **हुताशन**—हुतमेव अशनं यस्य सः अथवा हुतम् अश्नाति इति हुताशनः = अग्नि। **दह्यमान** – दह् + णिच् + शानच् = जलते हुए। **मलिनीकृताम्**—न मलिना अमिलना अमलिना मलिना कृता इति मलिनीकृता = मैली की गयी, श्यामल हुई। 'उन्मदहलि······कालिन्दीम्' यहाँ श्रीमद्भागवत् पुराण की एक कथा का संकेत है, जो इस प्रकार है—"एक बार कृष्ण के बड़े भाई बलराम जी ने (जिनके अस्त्र हल और मूसल हैं) जल-क्रीड़ा के लिए यमुना को बुलाया किन्तु जब वह नहीं आयी तो मदिरा पान से उन्मत्त या अहंकारी बलराम ने अपने हल से यमुना को खींचा हलकर्षण के भय से यमुना वहाँ से अन्तर्धान हो गयी।" **आलक्तक**—पैरों में लगाने वाला महावर नामक द्रव विशेष। **पल्लवितपादपङ्कजाम्**—यहाँ क्यङ् लुप्ता उपमा अलंकार है। **कात्यायनीमिव** में उपमा अलंकार है। **रुधिररक्तचरणो** पद में रुधिर और रक्त पदों में आपाततः पुनरुक्ति प्रतीत

होती है, किन्तु अर्थ करने पर रुधिर का अर्थ खून एवं रक्त का अर्थ लाल हो जाना, रंजित हो जाना, आदि होने के कारण यहाँ पुनरुक्तवदाभास अलंकार है। पुनरुक्तवदाभास का लक्षण—**पुनरुक्तवदाभासो विभिन्नाकारशब्दगः एकार्थतेव शब्दस्य तथा शब्दार्थ योरयम् ॥**" इस प्रकार उपमा और पुनरुक्तवदाभास का एकाश्रयानु प्रवेश रूप संकर है। महिषासुर से सम्बन्धित मार्कण्डेय पुराण की कथा इस प्रकार है—"ब्रह्मा से वर प्राप्त कर महिषासुर सारे संसार को पीड़ित करने लगा तब भगवती दुर्गा ने स्वयं प्रकट होकर उसका बध किया था। 'आलोहिताङ्गुलि…… संचरन्तीम्' यहाँ गुलाबी रंग की नख किरणों को लाल वर्ण के किसलय खण्ड के रूप में सम्भावित किया गया है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है। **निधाय**—नि+धा+(क्त्वा) ल्यप्=रखकर **निधाय इव** में भी उत्प्रेक्षा अलंकार है। यहाँ चाण्डालकन्या की अतिशय सुकुमारता ध्वनित हो रही है। **असहमाना**—न सहमाना इति असहमाना—(न) अ+सह+शानच्+टाप्।

**आपिञ्जरेणोत्सर्पिणा नूपुरमणीनां प्रभाजालेन रंजित शरीरतया पावकेनेव भगवता रूपैकपक्षपातिना प्रजापतिममाप्रणीकुर्वता जातिसंशोधनार्थ मालिङ्गितदेहाम्, अनङ्गवारणशिरोनक्षत्रमालायमानेन रोमराजिलतालवालकेन मेखलादाम्ना परिगतजघनस्थलाम्, अतिस्थूल मुक्ताफलघटितेन शुचिना हारेण गङ्गास्रोतसेव कालिन्दीशङ्कया कृतकण्ठग्रहाम्………**

**शब्दार्थ**—**आपिञ्जरेण**=कुछ-कुछ लाल पीले वर्ण की, **उत्सर्पिणाम्**=ऊपर की ओर फैलने वाली, **नूपुरमणीनाम्**=नूपुरों (विछिया) में जड़ी हुई मणियों की, **प्रभाजालेन**=किरण समूह से, **रंजितशरीरतया**=शरीर रंग जाने के कारण, **पावकेन इव भगवता**=मानो अग्निदेव के द्वारा, **रूपैकपक्षपातिना**=एकमात्र रूप के पक्षपाती, **प्रजापतिम्**=ब्रह्मा को, **अप्रमाणीकुर्वता**=अप्रामाणिक बनाते हुए, **जातिसंशोधनार्थम्**=(चाण्डाल) जाति को शुद्ध, पवित्र करने के लिए, **आलिंगतदेहाम्**=आलिङ्गित (आश्लिष्ट) शरीर वाली, **अनंगवारण शिरोनक्षत्रमालायमानेन—अनंग**=कामदेव के, **वारण**=हाथी के, **शिरोनक्षत्रमालायमानेन**=मस्तक की नक्षत्र माला (अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्रों की पंक्ति) का सा आचरण करने वाली अर्थात् नक्षत्र माला-सी शोभित होने वाली, **रोमराजिलतावालकेन—रोमराजिलता**=नाभि प्रदेश से ऊर्ध्वगामिनी रोमावली रूपी लता के, **आलवालकेन**=चारों ओर बने घेरे (थाल या क्यारी की गोल मेंड) के समान, **मेखलादाम्ना**=करधनी (कन्धौनी) की लड़ियों से, **परिगतजघनस्थलाम्**=घिरे हुए नितम्ब स्थल वाली, **अतिस्थूल मुक्ताफल घटितेन अतिस्थूल**=अत्यन्त मोटे-मोटे (बड़े-बड़े) **मुक्ताफल**=मोतियों से, **घटितेन**=बने हुए, **शुचिना**=शुभ्र अर्थात् श्वेत वर्ण के, **हारेण**=हार (माला) से, **गंगास्रोतसा**=गङ्गा प्रवाह के द्वारा, **इव**=मानों, **कालिन्दीशङ्कया**=यमुना नदी के भ्रम से अर्थात् चाण्डालकन्या को यमुना समझ कर, **कृतकण्ठग्रहाम्**=कण्ठ ग्रहण कर लेने वाली अर्थात् गले में लिपटी हुई।

**अनुवाद**—(चाण्डालकन्या के) नूपुरों में लगी मणियों की ऊर्ध्वगामी लाल-पीली रंगों वाली प्रभारश्मियों से उसका शरीर इस प्रकार अनुरंजित था मानों रूपमात्र पर मुग्ध अग्निदेव ने ब्रह्मा के विधान को अप्रामाणिक सिद्ध करते हुए उसकी अस्पृश्य जाति को शुद्ध करने के लिए उसके शरीर का आलिंगन कर लिया हो, कामदेव के

हाथी के सिर पर नक्षत्रमाला-सी प्रतीत होने वाली (तथा) रोमावली रूपी लता के (मूल में बने) थाल अर्थात् क्यारी की मेंड-सी करधनी की लड़ी से घिरे हुए जघन-स्थल वाली, अत्यन्त मोटे-मोटे अर्थात् बड़े-बड़े मोतियों से बना हुआ श्वेत हार गले में ऐसा लग रहा था मानों यमुना की भ्रान्ति से गङ्गा का प्रवाह उसके गले में लिपट गया हो (ऐसी चाण्डालकन्या को राजा ने देखा)।

**भावार्थ**—रंग और आकार के आधार पर कवि चाण्डालकन्या के नूपुर करधनी और हार का वर्णन करते हुए नूपुर की मणियों की चमक से लिप्त शरीर में अग्निदेव के आलिङ्गन की सम्भावना करता है ; क्योंकि इतने सुन्दर रूप को अस्पृश्य चाण्डाल जाति में उत्पन्न कर ब्रह्मा ने जो त्रुटि की उसका परिमार्जन वह उसे शुद्ध कर, करना चाहता है। करधनी की उपमा में दो कल्पनाएँ हैं प्रथम तो करधनी में २७ पुष्प हैं, जो २७ नक्षत्रों की पंक्ति वाले कामदेव के हाथी की शिरोमाला-सी प्रतीत होती है। द्वितीय उसकी नाभि से ऊर्ध्वगामी रोमावली रूपी लता के मूल में जल डालने के लिए बने थाल के घेरे के समान प्रतीत होने वाली करधनी से उसका कटि घिरा हुआ था। गले में बड़े-बड़े मोतियों की माला में श्वेत रंग को आधार बनाकर कवि ने गङ्गा प्रवाह की कल्पना की है और उसके औचित्य के लिए चाण्डालकन्या में यमुना की भ्रान्ति का उल्लेख किया है।

**संस्कृत व्याख्या**—आपिञ्जरेण—आपिञ्जरेण ईषत्पीतरक्तेन, उत्सर्पिणा ऊर्ध्वगामिना, नूपुरमणीनाम्=हंसकरत्नानाम्, प्रभाजालेन—कान्ति समूहेन, रञ्जित शरीरतया=शोभितशरीरतया, रूपैकपक्षपातिना—केवलं सौन्दर्यादरविधायिना अतएव प्रजापतिम् भगवन्तं सृष्टिकर्तारं ब्रह्माणम् अप्रमाणीकुर्वता—प्रमाणत्वेन निराकुर्वता, भगवता—आदरणीयेन प्रभाववता वा पावकेन अग्निदेवेन जातिसंशोधनार्थम् चाण्डाल-जाति पवित्रीकर्तुम् आलिंगितदेहाम्—आलिङ्गितो देहः यस्याः सा ताम् आश्लिष्ट-शरीराम्। अनगवारण शिरोनक्षत्रमालायमानेन=अनङ्गः कामदेव स्तस्य यो वारणः हस्ती तस्य शिरसि मस्तके या नक्षत्र माला (सप्तविंशति नक्षत्राणीव) सप्तविंशति संख्याकमुक्ताग्रन्थितमाला तद्वदाचरता, रोमराजिलतालवालकेन—रोमराजिः नाभेरुर्ध्व-गामिनी या ऋजु लोमपंक्ति सैव लतावल्ली तस्याः आलवालकं जलदानाय मूले निर्मिता वापः स्वल्पजलाधारः तत्स्वरूपेण मेखलादाम्ना–कुटिमेखलाबन्धनरज्ज्वा, परिगतजघन-स्थलाम्—परिगतं समन्ताद् व्याप्तमावृतंवा जघन स्थलं गुह्य कटिपुरोभागो यस्याः सा ता तादृशीम्, अथ च अतिस्थूलमुक्ताफलघटितेन—अतिस्थूलानि यानि मुक्ताफलानि मौक्तकानि तैः घटितेन निर्मितेन, शुचिना शुभ्रवर्णेन हारेण चतुष्टिलतेन "चतुःषष्टिलतो हारः" इत्यमरः कालिन्दीशङ्कया—कालिन्दी यमुना तस्याः शङ्कया भ्रान्त्या गंगास्रोतसा –गङ्गाप्रवाहेण इव कृतकण्ठग्रहाम्—कृतः विहितः कण्ठग्रहः गलश्लेषः आलिङ्गनमित्यर्थः यस्याः सा ताम् तादृशीम् चाण्डालकन्यकां राजा शूद्रकोऽनिमिषलोचनः सन् ददर्श।

**संस्कृत सरलार्थ**—(राजा तादृशीं चाण्डालकन्यकां ददर्श) या स्वकीय हंसक मणीनाम् ऊर्ध्वगामिना रक्तपीतवर्णवता कान्ति समूहेन सुशोभितदेहतया केवलसौन्दर्यादर-विधायिना महिमशालिना अग्निदेवेन सृष्टिविधातारं ब्रह्माण मपि अप्रमाणीकुर्वता तस्या अस्पृश्याम् अन्त्यजजातिम् संशोधनार्थम् आश्लेषितदेहेवासीत्। कामदेवगजमस्तक नक्षत्रमालावदाचरता नाभिप्रदेशादूर्ध्वगरोमावलिरूपलतावापस्वरूपेण कटिमेखला-बन्धनेन परिव्याप्तजघनप्रदेशा, एवम् अतिस्थूलमौक्तिक निर्मितेन श्वेतवर्णेन हारेण कोकिलकण्ठः सा यमुनाभ्रान्त्या गङ्गाप्रवाहेण आश्लिष्टकण्ठेवासीत्।

**विशेष**—'आसिञ्जरेणोत्सर्पिणा······ देहाम्' इस वाक्यांश में 'पावक' और 'प्रभाजाल' में उपमानोपमेय भाव है। अतः आपिञ्जरेण और उत्सर्पिणा दोनों विशेषण पावक और प्रभाजाल में समान रूप से लगते हैं। रत्नों का प्रकाश भी लाल-पीला होता है और अग्नि का भी, इसी प्रकार दोनों का प्रकाश ऊर्ध्वगामी भी होता है। **प्रजापतिमप्रमाणी कुर्वता**—प्रजापति को प्रमाण न मानना अर्थात् प्रजापति ने कन्या को चाण्डाल कुल में जन्म देकर अस्पृश्य बनाया था, किन्तु अग्नि ने मानों उसका आलिगन कर ब्रह्मा के अस्पृश्यत्व रूप विधान को अस्वीकृत कर दिया था। अग्नि में यह सामर्थ्य है कि वह जिसका स्पर्श कर लेती है वह पवित्र हो जाता है, "**सर्वमग्नौ प्रतप्तं शुध्यते**" यह धर्मशास्त्र का कथन है। इस प्रकार इस वाक्यांश में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का अङ्गाङ्गिभाव संकर है। **अनंग**—न सन्ति अङ्गानि यस्य स अनङ्ग=कामदेव "कन्दर्पोदर्पकोऽनङ्गः कामः पञ्चशरः स्मरः इत्यमरः। **नक्षत्रमालायमानेन**—नक्षत्रमालावदाचरमाणः नक्षत्रमालायमानः तेन—नक्षत्रमाला + क्यङ + शानच्—तृतीया एकवचन। नक्षत्रमाला अमरकोश के अनुसार २७ मोतियों की बनी एक माला विशेष होती है—"सैव नक्षत्रमाला स्यात्सप्तविंशतिमौक्तिकैः" इत्यमरः। यहाँ चाण्डालकन्या की करधनी की उपमा कामदेव के हाथी के मस्तक की नक्षत्रमाला से दी जाने का यह उद्देश्य प्रतीत होता है कि कामदेव के सम्बन्ध से उसकी करधनी का अत्यन्त उद्दीपक होना स्पष्ट हो जाता है या ध्वनित होता है अन्यथा काम जब स्वयं अनङ्ग है, तो उसके हाथी और उसकी माला आदि की कल्पना निराधार ही है, यहाँ उत्प्रेक्षा की सम्भावना नहीं है क्योंकि नक्षत्रमालायमानेन में क्यङ् प्रत्यय होने के कारण क्यङ्गतोपमा स्पष्ट है। **रोमराजिलतालवालकेन**—रोमपंक्ति रूपी लता के थाल की परिधि स्वरूपा-सी। **रोमराजि**—स्त्रियों की नाभि से ऊपर की ओर रोम की एक सीधी पंक्ति रोमावलि कहलाती है—**राजि**=पंक्ति—"वीथ्यालिरावलिः पंक्तिः श्रेणी लेखास्तु राजयः" इत्यमरः। रोमराजि पर लता का आरोप होने से रूपक अलंकार है। **आलवाल**—वृक्षमूल में जल रोकने के लिए बनाया गया थाल विशेष गड्डा विशेष जिसे थलहा थाँवला आदि नामों से पुकारा जाता है। **जघनस्थल**—नितम्ब से ऊपर का भाग कटिप्रदेश या कमर कहा जाता है। "कटय्या क्लीबे तु जघनं पुरः" इत्यमरः अतः यहाँ नक्षत्रमालायमानेन में उपमा, रोमराजि में लतात्व का तथा मेखलादाम में आलवालत्व का आरोप होने से परम्परित रूपक अलंकारों का सांकर्य है।

'अतिस्थूल······कण्ठग्रहाम्—"इस वाक्यांश में हार में गङ्गा प्रवाह की सम्भावना से उत्प्रेक्षा एवं चाण्डालकन्या में कृष्णता के आधार पर कालिन्दी की भ्रान्ति से भ्रान्तिमान अलंकारों का अङ्गाङ्गिभाव संकर है।

**शरदमिव विकसित पुण्डरीकलोचनाम् प्रावृषमिव घनकेशजालाम्, मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम्, नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्, श्रियमिव हस्तस्थित कमलशोभाम्, मूर्च्छामिव मनोहारिणीम्, अरण्यभूमिमिव अक्षतरूपसम्पन्नाम्, दिव्ययोषितामिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचन ग्राहिणीम्, अरण्यकमलिनीमिव मातङ्गकुलदूषिताम् अमूर्त्तामिव स्पर्शवर्जिताम्, आलेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम्, मधमासकुसुम समृद्धिमिव**

**अजातिम्, अनङ्गकुसुमचापलेखामिव मुष्टिग्राह्यमध्याम्, यक्षाधिप लक्ष्मीमिव अलकोद्भासिनीम्, अचिरोपारुढयौवनाम्, अतिशयरुपाकृतिम् अनिमिष-लोचनो ददर्श।**

**शब्दार्थ**—**शरदम् इव**=शरदऋतु के समान, **विकसित पुण्डरीक लोचनाम्**=खिले हुए कमल के समान नेत्रों वाली, **पक्ष में**=खिले कमल रूपी नेत्रों वाली, **प्रावृषम् इव**=वर्षा ऋतु के समान, **घनकेशजालाम्**=घने बाल समूह वाली, **प्रावृट् पक्ष में**=मेघरूपी (घन) बाल समूह वाली, **मलयमेखलाम् इव**=मलय पर्वत की उपत्यका के समान, **चन्दनपल्लवावतसाम्**=चन्दन के कोंपलों के आभूषणों से सजी हुई, **मलय पक्ष में**=चन्दनपल्लवरूपी आभूषणों वाली, **नक्षत्रमालामिव**=तारों की पंक्ति के समान, **चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्**=रंग-बिरंगे (चित्र) कान से आभूपणों (श्रवणाभारण) से सजी हुई, **नक्षत्रमाला पक्ष में**=चित्रा, श्रवण, भरणी नामक नक्षत्रों से सजी हुई। **श्रियमिव**=लक्ष्मी के समान, **हस्तस्थित कमलशोभाम्**=हाथ में पकड़े हुए कमल से शोभायमान, **मूर्च्छामिव**=मूर्च्छा के समान, **मनोहारिणीम्**=मन को आकृष्ट करने वाली, **मूर्च्छा पक्ष में**=मन को अर्थात् चेतना को लुप्त करने वाली, **अरण्यभूमिमिव**=जंगली भूमि के समान, **अक्षतरूपसम्पन्नाम्**=किसी के द्वारा भोग न किया गया (अक्षत) सौन्दर्य से भरपूर, युक्त, **अरण्यभूमि के पक्ष में**—अक्ष=रुद्राक्ष या बहेड़ा नामक वृक्षों से परिपूर्ण (अक्ष+तरु+उपसम्पन्नाम्)। **दिव्ययोषिताम् इव**=देव स्त्री के समान, **अकुलीनाम्**=निम्नकुल में उत्पन्न, **दिव्ययोषिता पक्ष में**=कु अर्थात् पृथ्वी, अ अर्थात् नहीं **लीनाम्**=युक्त जो पृथ्वी से सम्बद्ध नहीं है अर्थात् स्वर्गनिवासिनी, **निद्रामिव**=नींद (निद्रा) के समान, **लोचनग्राहिणीम्**=नेत्रों को आकर्षित करने वाली, **निद्रा पक्ष में**=नेत्रों को बन्द करने वाली, **अरण्यकमलिनीम् इव**=जंगली कमलिनी के समान, **मातंगकुलदूषिताम्**=चाण्डाल कुल से दूषित अर्थात् चाण्डाल कुल में उत्पन्न होने के कारण निम्नजातीय दोष से युक्त, **कमलिनी पक्ष में**=हस्ति समुदाय से मसली हुई। **अमूर्त्तामिव**=शरीर रहित के समान अर्थात् अशरीरी के समान, **स्पर्शवर्जिताम्**=शिष्ट जनों के स्पर्श के अयोग्य। **आलेख्यगतामिव**=चित्र लिखित के समान, **दर्शनमात्रफलाम्**=केवल देखना रूप फल वाली (अर्थात नीचकुलोत्पन्ना होने के कारण भोग्या न होकर केवल दर्शनीया ही थी, **आलेख्य पक्ष में**=आकृति या द्रव्यरूपा न होने के कारण केवल देखने योग्य, **मधुमासकुसुम समृद्धिमिव**=वसन्त ऋतु की पुष्प समृद्धि के समान, **अजातिम्**=(उच्च) जाति रहित, **मधुमास पक्ष में**=जाति नामक पुष्प से रहित (वसन्त ऋतु में जाति पुष्प नहीं होता), **अनंगकुसुम चापलेखामिव**=कामदेव के पुष्प धनुप की डण्डी के समान, **मुष्टिग्राह्यमध्याम्**=मुट्ठी में पकड़ने योग्य मध्य भाग (कमर) वाली, **कुसुमचापलेखा पक्ष में**=मुट्ठी में पकड़ने योग्य मध्य भाग वाली, **यक्षाधिपलक्ष्मीमिव**=यक्षराज कुबेर की राजलक्ष्मी के समान, **अलकोदभासिनीम्**=बालों की लटों से शोभित होने वाली, **यक्षाधिप पक्ष में**=अलकापुरी में शोभित होने वाली **अचिरोपरूढयौवनाम्**=कुछ समयपूर्व ही (अचिर) यौवन प्राप्त करने वाली अर्थात् युवावस्था आये हुए जिसके अधिक दिन नहीं बीते हैं ऐसी, **अतिशयरूपाकृतिम्**=अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण आकृति वाली (चाण्डाल-कन्या को), **अनिमिषलोचनः**=बिना पलक झपकाये अर्थात् टकटकी बाँधकर निर्निमेष नेत्रों से (राजा ने), **ददर्श**=देखा।

**अनुवाद**—(राजा ने उस चाण्डालकन्या को देखा जो कि) खिले हुए नेत्र सदृश कमलों वाली शरद् ऋतु के समान विकसित कमल सदृश नेत्रों वाली, मेघरूपी केश समूह वाली वर्षाऋतु के समान घने केश समूह वाली, चन्दन पल्लवों के आभूषणों वाले मलय पर्वत के मध्य भाग के समान चन्दन किसलयों के कर्णाभूषणों वाली, चित्रा श्रवण भरणी नामक नक्षत्रों से विभूषित नक्षत्र माला के समान रंग-बिरंगे कर्णा-भूपणों से शोभायमान, हाथ में विद्यमान कमल कुसुम की शोभा वाली लक्ष्मी के समान, हाथ में गृहीत कमलकुसुम से शोभाशालिनी, चेतना का अपहरण करने वाली (मनोहारिणी) मूर्छा के समान (सौन्दर्यातिशय से दर्शकों के। हृदयों को आकृष्ट करने वाली, अक्ष तरु अर्थात् बहेड़ा (रुद्राक्ष अथवा विभीतक वृक्ष) के वृक्षों से उप-सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण वनभूमि अथवा वनस्थली के समान (अक्षत=अभुक्त, रूप=सौन्दर्य, सम्पन्न=परिपूर्ण) न भोगे गये सौन्दर्य से परिपूर्णा, पृथवी पर न रहने वाली (अ=नहीं, कु=पृथिवी, लीना=रहने वाली) स्वर्गीय अप्सरा के समान नीच कुलोत्पन्ना, (अकुलीन, जो उच्च कल वाला न हो) नेत्रों को ग्राहिणी अर्थात् निमीलित अथवा बन्द कर देने वाली निद्रा के समान नेत्रों को (अपनी ओर) खींच लेने वाली, हाथियों (दूषिता) के समूह (कुल) द्वारा मसली या कुचली (दूषिता) हुई वनकमलिनी के समान, चाण्डाल (मातङ्ग) कुल (वंश) से दूषिता, (चाण्डल वंश में उत्पन्न होने के कारण अस्पृश्या) स्पर्शरहित। अशरीरी (अमूर्त) पदार्थ के समान स्पर्श से वर्जित, स्पर्श न करने योग्य, केवल दर्शन मात्र ही जिसका फल हो, न कि स्पर्श भी, ऐसी, चित्रलिखित वस्तु के समान केवल दर्शन मात्र ही (न कि उपभोग आदि भी) फल वाली, जाति नामक कुसुम के रहित (अजाति) बसन्त ऋतु की पुष्प समृद्धि के समान जातिहीना (अजाति), मुट्ठी से पकड़े जाने योग्य मध्य भाग वाले कामदेव के पुष्प धनुष् की लता के समान मुष्ठि ग्राह्य कटि प्रदेश वाली, अलकापुरी में सुशोभित होने वाली कुवेर की लक्ष्मी के समान अलकों से शोभायमाना, शीघ्र ही प्राप्त यौवन वाली तथा अतिश्य सौन्दर्य-शालिनी आकृति वाली थी। (इस प्रकार की चाण्डाल कन्या को राजा शूद्रक ने) निमेष (पलकों का गिरना) रहित दृष्टि होकर देखा।

**भावार्थ**—प्रस्तुत गद्यांश में चाण्डाल कन्या को शरत्, प्रावृट्, मलयमेखला, नक्षत्रमाला, श्री, मूर्च्छा, वनभूमि, दिव्ययोषित्, निद्रा, वनकमलिनी, आदि अनेक उपमानों से उपमित किया गया है और इनमें कहीं श्लेष कहीं रूपक आदि के द्वारा साम्य स्थापित किया गया है, ये सभी उपमान उसके सौन्दर्याधायक हैं। इनका विशेष विवरण टिप्पणी में किया गया है।

**संस्कृत व्याख्या—शरदमिव**—शरदृतुम् इव **विकसितपुण्डरीकलोचनाम्**—विकसिते विस्फारिते पुण्डरीके कमले इव लोचने नयने यस्याः सा ताम् तादृशीम् शरत् **पक्षे**—विकसितानि पुण्डरीकाणि एव लोचनानि यस्याः सा ताम् तथोक्ताम्। **प्रावृषमिव**—वर्षर्तुमिव **घनकेशजालाम्**—घनाः सान्द्राः घनीभूताः इत्यर्थः ये केशाः शिरोरुहा स्तेषां जालानि समूहाः यस्याः सा तां तादृशीम् **वर्षतु पक्षे**—घनाः मेघा एव केशजालानि यस्याः सा ताम् तादृशीम् **मलयमेखलामिव**—मलयस्य मेखला मलयमेखला—मलय नाम पर्वत विशेषस्य मध्य भागमिव, **चन्दनपल्लवातंवसाम्**—चन्दनस्य मलयजस्य पल्लवाः किसलयानि तेषामवतंसाः आभूषणानि, विशेषेण कर्णाभूषणानि यस्याः सा ताम् **मलयमेखला पक्षे**—चन्दन पल्लवा एव अवतंसः शेखरः यस्याः सा ताम्। **नक्षत्रमालाम्**

इव—तारकापंक्तिमिव **चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्** चित्रैः विविधप्रकारैः श्रवणाभरणः कर्णाभूषणैः भूषितां शोभिताम् **नक्षत्रमालापक्षे तु**—चित्रा-श्रवण भरणीप्रमुखैर्नक्षत्रै रलंकृताम्। **श्रियमिव** लक्ष्मीमिव **हस्तस्थित कमलशोभाम्** हस्ते पाणौ स्थिता विद्यमाना कमलस्य पङ्कजस्य शोभा श्रीर्यस्याः सा ताम् **श्रीपक्षे**—हस्ते स्थितं यत्कमलं तेन शोभा यस्याः सा ताम्। **मूर्च्छामिव**—मोहमिव चेतन शून्यतामिव **मनोहारिणीम्**—स्वीयरूपातिशयेन दर्शकानां हृदयाकर्षिणीम् **मूर्च्छापक्षे**—चेतना लोपकारिणीम्। **अरण्यभूमिमिव**—अरण्यं वनं तस्य भूमिमिव वयभूमिसदृशीम्, **अक्षतरूपसम्पन्नाम्**—न क्षतं नोपभुक्तं केनापीत्यक्तम् अनुपभुक्तं अक्षतं यद् रूपं लावण्यं तेन सम्पन्नां समन्विताम्, यावदिदानीं न केनाप्युपभुक्तास्तएव कौमार्यं सम्पन्नामित्याशयः **वनभूमिपक्षे**—अक्षतरुभिः रुद्राक्षवृक्षैः विभीतकवृक्षैर्वा, **उपसम्पन्नाम्** संयुक्ताम्, **दिव्ययोषितामिव**—देवाङ्गनाम् इव **अकुलीनाम्**—अन्त्यजत्वान्नीच. कुलोत्पन्नाम्, **दिव्ययोषितत्पक्षेतु** कुः पृथ्वी तत्र लीना विद्यमाना इति कुलीना एवंविधा या न भवति सा अकुलीना पृथ्वीतल स्पर्शरहिता ताम् स्वर्ग निवासिनीमित्यर्थः। **निद्राम्** इव—स्वापमिव प्रभीलामिव वा, **लोचनग्राहिणीम्** लोचने नेत्रे गृह्णाति या सा तां स्वातिश रूपाकृतिना कामुकानां नेत्राकर्षिणीम् **निद्रापक्षे**—निमेषोन्मेष व्यापारावरोधिनीम्। **अरण्य कमलिनीमिव** वन कमलनीमिव, **मातङ्गकुलदूषिताम्** मातङ्गानां चाण्डलानां कुलमन्वयः तस्मिन् जातत्वात् दूषितां निन्दिताम्, **अरण्यकमलिनीपक्षे** मातङ्गानां हस्तिनां कुलेन समुदायेन दूषितां मर्दिताम्। **अमूर्तामिव**—अशरीरिणीमिव, **स्पर्शवर्जिताम्**—स्पर्शेण रहितां अर्थात् निम्नकुलोत्पन्नत्वात् उच्चवर्णस्पर्शरहिताम्, **आलेख्यगतमिव**—चित्रलिखितामिव, **दर्शनमात्रफलाम्**=दर्शनमात्रं चाण्डालत्वेनोपभोगाभावेन केवलमवलोकनमेव फलं प्रयोजनं यस्याः सा ताम्, **आलेख्य पक्षे**—आकृत्यभावेन स्पर्शा योग्यत्वात्केवलं दर्शनमात्रं फलाम्। **मधुमासकुसुमसमृद्धिमिव**=मधुमासस्य वसन्तर्तोः कुसुमसमृद्धिम् पुष्पसम्पत्तिमिव, **अजातिम्**—नास्ति जातिर्यस्याः सा ताम् मन्वादि धर्माचार्यैः शूद्रत्वाच्चाण्डालादौ जात्यभावो निर्दिष्टः तस्माद जातिम् यथा—

"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थः एक जातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः॥" (मनुस्मृतिः)

**मधुमासपक्षे** - न विद्यते जातिर्मालिती पुष्पविशेषः यस्यां सा ताम् "न स्याज्जाती वसन्ते" इति साहित्यदर्पणोक्तं प्रमाणम्। **अनङ्ग कुसुमचापलेखामिव**—अनङ्गस्य कामदेवस्य कुसुमचापस्य पुष्पधनुषः लेखां लतामिव **मुष्टिग्राह्यामध्याम्** मुष्टिना सम्पीडिताङ्गुलिना ग्राह्यः ग्रहीतुं शक्यः मध्यः मध्यशरीरः कटिप्रदेशो वा यस्याः सा ताम् क्षीणकटिप्रदेशामित्यर्थः **अनङ्गपक्षे**—मुष्टिना ग्राह्यः मध्यभागः यस्याः सा ताम्। **यक्षाधिपलक्ष्मीमिव**—यक्षाणामधिपः यक्षाधिपः यक्षराजः कुबेरस्तस्य लक्ष्मीमिव राजलक्ष्मीमिव, **अलकोद्भासिनीम्**—अलकैः केशपाशैः उद्भासिनी शोभमानाम्, **यक्ष पक्षे**—अलका नाम यक्षपुरी तस्याम् अलकापुर्याम् उद्भासते शोभते या सा ताम्। **अचिरोपारूढयौवनाम्**—न चिरमचिरं शीघ्रम् उपारूढम् उपगतं यौवनं तारुण्यं यस्याः सा ताम् **अतिशयरूपाकृतिम्** अतिशयम् अत्यधिकं रूपं लावण्यं यस्याः सा अतिशयरूपा तादृशी आकृतिः स्वरूपं यस्याः सा ताम् अनिन्द्य सुन्दरीमित्यर्थः एतादृशीं चाण्डालकन्यकाम्, **अनिमिषलोचनः** अनिमिषे निमेषोन्मेषवर्जित लोचने नेत्रे यस्य सः एवम्भूतो निर्निमेष नयनो राजा (तां) ददर्श अवलोकयामास।

**संस्कृत सरलार्थ**—निर्निमेषनयनो राजा तादृशीं चाण्डालकन्यकां ददर्श या

प्रस्फुटितकमलरूपनेत्रा शरदृतुरिव विकसितकमलतुल्यनेत्रधारिणी, मेघरूपकेशजाल-सम्पन्ना वर्षतेरिव सघनमूर्धजसम्पन्ना, मलयजवृक्षस्य किसलयरूपाभूषणवती मलयपर्वत-स्योपत्यकेव चन्दनपल्लवस्यावतंसधारिणी, चित्रा-श्रवणभरणीप्रमुखैर्नक्षत्रै राभूषिता तारकापंक्तिरिव विविधप्रकारैराभूषणैरलंकृता, पाणौ धारितेन कमलेन शोभायमाना लक्ष्मीरिव स्वहस्तगृहीतकमलशोभाधारिणी, चेतनालोपिनी मूर्च्छेव स्वातिशयरूपेण चित्ताकर्षिणी, अक्षैः विभीतकैः रुद्राक्षवृक्षैर्वा सम्पन्ना वनभूमिरिवानुपभुक्त सौन्दर्यशालिनी, भूतलस्पर्शवर्जिता स्वर्गनिवासिनी देवाङ्गनेव निम्नकुलोत्पन्ना, निमेषोन्मेष व्यापार रहिता निद्रेव स्वीयेनातिशय रमणीयवपुषा कामुकानां नेत्राकर्षिणी, हस्तिसमूहैर्मर्दिता मथिता वा वनखण्डस्थिता कमलिनीव चाण्डालान्वयेन निन्दिता स्पर्शायोग्या, अशरीरिणी मूर्ति-रिवोच्चकुलीन स्पर्शानर्हा, केवलमवलोकन रूपप्रयोजनवती, चित्राकृतिरिव दर्शनमात्रफला न तूपभोगयोग्या, मालती पुष्परहिता वसन्तर्तु पुष्प सम्पत्तिरिव मन्वादि निर्दिष्ट ब्राह्मण क्षत्रियादिजातिहीना, मुष्टिना ग्राह्यमध्यभागा कामदेव धनुषः दण्डिकेव मुष्टिमेया कटि-प्रदेशा क्षीण कटिप्रदेशा वा, अलकापुर्यां शोभमाना यक्षराजस्य राजलक्ष्मीरिवा लकैः केशजालेनोशोभिता, सद्यः उपारूढयौवना अत्युत्कृष्ट सौन्दर्यसम्पन्नाकृति दधाना च आसीत् ।

**टिप्पणी**—इस अंश में सर्वत्र शाब्दी उपमा का प्रयोग होने के कारण श्लेषात्मक विशेषणों का साधर्म्य प्रदर्शित किया गया है । अतः श्लेष से युक्त उपमालंकार है । श्लिष्ट पदों में भी कहीं सभङ्ग और कहीं अभङ्ग श्लेष का प्रयोग है । आँख की सुन्दरता का वर्णन करने के लिए उसकी उपमा कमल से दी जाती है । **पुण्डरीक**= कमल (श्वेत कमल) "पुण्डरीकं सिताम्भोजम् इत्यमरः । **घनकेशजालाम्**—घन का अर्थ मेघ एवं गहन है । **मेखला**=मध्य भाग । **चित्रश्रवणाभरण भूषिताम्**=यहाँ नक्षत्र माला पक्ष में—चित्र से चित्रा नक्षत्र तथा आभरण से भरणी नक्षत्र का ग्रहण किया गया है चित्रा और भरणी दोनों स्त्रीलिंग होने पर भी श्लेष से प्रयुक्त होने के कारण दोषाधायक नहीं है ; क्योंकि—'श्लेषे स्वरो न गण्यते' नियम के अनुसार लिङ्ग व्यत्यय (लिङ्ग परिवर्तन) श्लेष में विविध अर्थों की प्रतीत कराने के कारण दोषात्मक नहीं होता । **श्रियम्**—"श्रयति हरिं या सा श्रीः" हरि का आशय लेने वाली लक्ष्मी विष्णु पत्नी "कमला श्रीः हरि प्रिया" इत्यमरः । **अक्षतरूपसम्पन्नाम्**—यहाँ सभङ्ग श्लेष के द्वारा पृथक्-पृथक् अर्थों की प्रतीति होती है यथा—**वनभूमि के पक्ष में**—अक्षतरुभिः उपसम्पन्नाम् अक्षयरु+उपसम्पन्नाम् अक्ष अर्थात् रुद्राक्ष या अक्ष अर्थात् बहेड़ा "रुद्राक्षे रावणे सर्पे विभीतक तरावपि" इति हैमः । वृक्षों से सम्पन्न=युक्त । **चाण्डाल कन्या पक्ष में**—अक्षत+रूप सम्पन्नाम्=अनुपभुक्त सौन्दर्य से युक्त । **अकुलीनाम्**—कु अर्थात् पृथ्वी कु+लीन=पृथ्वी पर स्थित, न कुलीना अकुलीना (नञ् समास) ताम् =पृथ्वी पर न रहने वाली यह अर्थ दिव्ययोषित् पक्ष में, चाण्डाल कन्या के पक्ष में—न कुलीनाम् इति अकुलीनाम्=उच्च कुल में उत्पन्न न होने वाली—कुल+ख (ईन्) +नञ् । पौराणिक मान्यतानुसार देवलोक के स्त्री या पुरुष पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते **मातङ्ग**—"मातङ्गःश्वपचे गजे" इस मेदिनी कोश के अनुसार **चाण्डाल और हाथी** दो अर्थ मातङ्ग शब्द के हैं । अरण्य कमलिनी के पक्ष में मातङ्ग का अर्थ हाथी है और दूसरा चाण्डालकन्या के पक्ष में । **स्पर्शवर्जिताम्**—स्पर्श करने के योग्य न होना । चाण्डाल कुल में जन्म लेने के कारण वह कन्या स्पर्श वर्जिता थी क्योंकि मनु का कथन है—

"दिवाकीर्ति मुद्राक्याञ्च पतितं सूतिकां तथा,
शवं तत्स्पृष्टिनञ्चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति"।

अजातिम्—न विद्यते: जाति: पुष्पविशेष: यस्यां सा ताम् वसन्त ऋतु में जाति (चमेली) नामक पुष्प नहीं होता "न स्याजजाती वसन्ते" यह साहित्य दर्पणकार ने कवि समय प्रसिद्धि में निर्दिष्ट किया है। "जातिश्छन्दसि सामान्ये मालत्यां गोत्र जन्मनो:" इति मेदिनी। चाण्डाल कन्या पक्ष में—चाण्डाल कुलोत्पन्ना होने के कारण जातिविहीन। मनु ने चाण्डाल को अजाति ही माना है क्योंकि उनका कथन है—

ब्राह्मण: क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा: द्विजातय:।
चतुर्थ: एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चम:॥"

इस कथन के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तो उपनयन संस्कार योग्य होने के कारण द्विजाति कहलाते हैं। शूद्र की केवल एक जाति होती है इसके अतिरिक्त श्वपच (चाण्डाल) आदि की कोई (पाँचवी) जाति नहीं होती। **मुष्टिग्राह्यामध्याम्**—मुष्टिना ग्राह्यो मध्य: यस्या: सा=मुट्ठी में पकड़ने योग्य है मध्य भाग जिसका ऐसा धनुष, चाण्डाल कन्या पक्ष में—मध्य का अर्थ कमर है। इससे उसकी कमर का अत्यन्त पतला होना ध्वनित होता है, जो सुन्दर स्त्री का लक्षण है। **अलकोद्भासिनी**—**चाण्डालकन्या पक्ष में**—अलक+उद्भासिनी=बालों से शोभित होने वाली, **यक्षाधिप पक्ष में**—अलका+उदभासिनी—अलकायाम् उद्भासिनी=अलकापुरी (कुवेर की नगरी) में शोभायमान। **उपारूढयौवनाम्**—उपारूढं यौवनंयस्या: सा ताम्—आई हुई युवावस्था वाली उप+आ+रुह्+क्त=उपारूढ। **अनिमिषलोचन:**—अनिमिषे लोचने यस्य स:=निमेष रहित नेत्रों वाला। **ददर्श**=दृश् धातु लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

**दृष्ट्वा च तां समुपजात विस्मयस्याभून्मनसि महीपते:—"अहो! विधातुरस्थाने रूपनिष्पादन प्रयत्न:। तथाहि, यदि नामेयमात्मरूपोपहसिताशेषरूपसम्पदुत्पादिता, किमर्थमपगतस्पर्शसम्भोगसुखे कृतं कुले जन्म। मन्ये च मातङ्ग जातिस्पर्शदोषभयादस्पृशतेयमुत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य। नहि करतलस्पर्शक्लेशितानामवयवानामीदृशी भवति कान्ति:। सर्वथा धिग्विधातारम् असदृश संयोगकारिणम्। अतिमनोहराकृतिरपि क्रूरजातितया येनेयमसुरश्रीरिव सततनिन्दितसुरता रमणीयाऽप्युद्वेजयति" इति।**

**शब्दार्थ**—**द्रष्ट्वा च ताम्**=और उस चाण्डालकन्या को देखकर **समुपजातविस्मयस्य**=आश्चर्य चकित, **महीपते:**=राजा के, **समभून्मनसि**=मन में यह भाव उठा—**अहो**=आश्चर्य है, **विधातु:**=ब्रह्मा का **अस्थाने**=अनुचित स्थान पर **रूपनिष्पादनप्रयत्न:**=सौन्दर्य रचना का प्रयास, **तथाहि**=क्योंकि, **यदि नाम इयम्**=अगर (उन्होंने) इसको **आत्मरूपोपहसिताशेषरूपसम्पदुत्पादिता**=अपने रूप से (आत्मरूप) समस्त सौन्दर्य सम्पत्ति का उपहास करने वाली (उपहसिता शेषरूप सम्पत्) बनाया (उत्पादिता) **किमर्थम्**=तो किसलिए, **अपगत स्पर्श सम्भोग सुखे**=स्पर्श एवं उपभोग रूपी सुख से रहित, **कुले**=कुल में (चाण्डाल कुल में) **कृतंजन्म**=जन्म दिया।

**मन्ये च**=(मैं ऐसा) मानता हूँ, **मातंगजातिस्पर्शदोषभयाद्**=चाण्डाल जाति को छूने के दोष के भय से, **अस्पृशता**=बिना स्पर्श किये हुए की ब्रह्मा ने, **इयम्** यह **उत्पादिता** =उत्पन्न की है अर्थात् मन से उत्पन्न की गयी है। **अन्यथा**=नहीं तो, **कथम्**=कैसे **लावण्यस्य**=सौन्दर्य की, **इयमक्लिष्टता**—यह अक्षतता आती। **नहि**=नहीं। **करतलस्पर्शक्लेशितानाम्**=हथेलियों के स्पर्शसे दूषित, **अवयवानाम्**=अङ्गों की, **कान्तिः**=सुन्दरता **ईदृशी** ऐसी **भवति**=होती है। **सर्वथा**=पूर्णतः, **धिग्विधातारम्**= विधाता अर्थात् ब्रह्मा को धिक्कार है। **असदृशसंयोगकारिणम्**=असमान अर्थात् परस्पर विरोधी वस्तुओं का सम्बन्ध स्थापित करने वाले। **अतिमनोहराकृतिः अपि**= अतिशय चित्ताकर्षक स्वरूप वाली होने पर भी **क्रूरजातितया**=कठोर जाति (चाण्डाल) होने के कारण, **असुरश्रीः इव**=राक्षसों की लक्ष्मी के समान, **सततनिन्दितसुरता**= सदैव निन्दित सम्भोग वाली, **असुर श्री के पक्ष में**—सदैव देवत्व की निन्दा करने वाली, **रमणीया अपि**=मनोहरा होने पर भी, **उद्वेजयति**=आकुलता या उद्वेग ही उत्पन्न करती है।

**अनुवाद**—और उस चाण्डालकन्या को देखकर आश्चर्य चकित राजा के मन में विचार हुआ कि आश्चर्य है, ब्रह्मा ने अनुचित स्थान पर (अर्थात् अनुपयुक्त व्यक्ति में) सौन्दर्य सृष्टि का प्रयत्न किया है। क्योंकि यदि अपनी सुन्दरता से समस्त सौन्दर्य सम्पत्ति का उपहास करने वाली ही उन्होंने इसको बनाया था, तो फिर इसे स्पर्श एवं सम्भोग जन्य आनन्द से रहित कुल (चाण्डाल कुल) में जन्म (ही) क्यों दिया। (इस सम्बन्ध में) मैं ऐसा मानता हूँ कि चाण्डाल जाति से छू जाने के भय से ब्रह्मा ने इसे बिना छुए ही (अर्थात् मन से ही) बनाया है नहीं तो (इसमें) इतनी सौन्दर्य पूर्णता कैसे हो सकती थी। हाथों के स्पर्श से कठोर एवं मलिन किये गये अङ्गों में इस प्रकार की कान्ति नहीं होती। परस्पर असमान (विरोधी) वस्तुओं को जोड़ने वाले विधाता को धिक्कार है, इतनी हृदय हारिणी आकृति वाली आकृति होने पर भी कठोर जाति (चाण्डाल जाति) की होने के कारण सदैव देवदत्व की निन्दा करने वाली राक्षसों की लक्ष्मी के समान (सुरतमुख अर्थात् सम्भोग जन्य सुख से वञ्चित होने के कारण) रमणीया होकर भी उद्वेग ही उत्पन्न करती है।

**भावार्थ**—चाण्डाल कन्या के असाधारण रूप को देखकर तथा उसके निम्न चाण्डाल कुल का विचार कर राजा के मन में सृष्टि कर्त्ता विधाता की रचना पद्धति के विषय में अनेक मनोभाव इस प्रकार आते हैं कि यदि ब्रह्मा के इतना सुन्दर रूप उत्पन्न किया था तो इसे निम्न कुल में जन्म क्यों दिया अथवा इसका असाधारण कोमल सौन्दर्य ब्रह्मा की मानसी सृष्टि का परिणाम है, यदि हाथों से इसकी रचना करते तो इतना सुकुमार सौन्दर्य इसे कैसे मिलता। विरुद्ध धर्मी रचना करने वाले ब्रह्मा को धिक्कार है। जिसने राक्षस राजलक्ष्मी के समान इसका ऐसा रूप बनाया जो अत्यन्त सुन्दर होकर भी कुलीन लोगों के लिए संभोगजन्य सुख से रहित होने के कारण मानसिक उद्वेग ही उत्पन्न करता है।

**संस्कृत व्याख्या—ताम्**—चाण्डालकन्यकां **दृष्ट्वा** विलोक्य **समुपजात-विस्मयस्य** समुपजातः समुत्पन्नो विस्मयः आश्चर्यं यस्य स तस्य, उपजात कुतूहलस्य **महीपतेः** राज्ञः शूद्रकस्य **मनसि**—अन्तः करणे चित्ते वा **अभूत्**—इयं भावना समुत्पन्ना **अहो**—वितर्के, विधातुः सृष्टिकर्तु ब्रह्मणः **अस्थाने** अनुचित स्थाने, अस्पृश्य चाण्डाल जातावििति तात्पर्यम्, **रूपनिष्पादन प्रयत्नः**=रूपस्य लावण्यस्य निष्पादनम् उत्पादनमिति

रूपनिष्पादनं तस्य प्रयत्नः प्रयासः श्रमः, **तथाहि** इति स्पष्टीकरणार्थे। **यदि नाम**—नाम इति कोमलामन्त्रणार्थकः, यदि – चेत्, **आत्मरूपोपहसिता शेष रूपसम्पद्**— आत्म रूपेण स्वकीयसौन्दर्येण उपहसिताः तिरस्कृताःन्यक्कृता अशेषा समग्रा रूपसम्पत् सौन्दर्य-समृद्धिर्यया सा तादृशी **इयं** चाण्डालकन्यका **उत्पादिता** (विधात्रा) निष्पादिता तर्हि **किमर्थम्** कस्मात् कारणात् **अपगतस्पर्शसंभोगसुखे**—अपगतं दूरीभूतं स्पर्शस्य संश्लेषस्य संभोगस्य च सुरतस्य च सुखं यस्मिन् तादृशे **कुले** चाण्डालवंशे जन्म उत्पत्तिः **कृतम्** विहितम् यदि असाधारण सुन्दरीयं ब्रह्मणा निर्मिता तर्हि कथं न सर्वजनसंभोग्या विनिर्मिता। **मन्ये च** जाने चाहम् यत्—**मातङ्गजातिस्पर्शदोषभयाद्** मातङ्गस्य जाति र्मातङ्गजातिस्तस्याः चाण्डालजातेः स्पर्शेण संश्लेषेण जन्यो यो दोषः अपवित्रता तस्माद् यद् भयंभीतिः त्रासः तस्माद् "मातङ्गश्वपचे गजे" इति मेदिनी **अस्पृशता** देहस्पर्श-मकुर्वता, **प्रजापतिना** ब्राह्मणा इयं चाण्डालकन्यका **उत्पादिता** रचिता, ब्राह्मण इयं मानसी सृष्टिरिति विभावयेऽहम् इति तात्पर्यम्, **अन्यथा**—एतद्विपरीतम् स्पर्शयोग्ये सति, लावण्यस्य सौन्दर्यस्य, **इयम्** ईदृशी, **अक्लिष्टता** कोमलता, अक्षतता वा **कथम्** केन प्रकारेण स्यात्? कथमपि नेति तात्पर्यम् **करतल स्पर्शक्लेशितानाम्**—करतलयोः हस्ताग्रयोः स्पर्शेण संश्लेषेण क्लेशितानाम् मर्दितानां **अवयवानाम्** शरीरस्य कराद्यङ्गा-नाम् **ईदृशी** एवंविधा सुकुमारा **कान्तिः** शोभा, **नहि भवति** न स्यात्। **असदृश संयोग-कारिणम्**—न सदृशम् असदृशम् असदृशयोः संयोगं कर्तुं शीलं यस्य तम् असदृश संयोग कारिणम्—असमान संयोग—निर्मातारम्—चाण्डालत्वात्यन्त रूपत्वयोरेकस्मिन् निष्पादयितारं, **विधातारं** ब्राह्मणं, **सर्वथा धिक्** सर्वविधिना धिक्कारः, अतिशयेन निन्दामीति तात्पर्यम्। **येन** असदृश सम्बन्ध विधानेन **इयम्**—चाण्डालकन्यका **अति-मनोहराकृतिरपि** अतिशयेन मनोहरा चित्ताकर्षिणी आकृतिः स्वरूपं यस्याः सा एवंभूता अपि **असुरश्रीः** राक्षसलक्ष्मीः इव **सततनिन्दितसुरता** सततं निरन्तरं निन्दितं गर्हितं चाण्डालत्वात् सुरतं सम्भोगः यस्यां सा एवंविधा, **असुरश्रीपक्षे**—सततम् अजस्रं निन्दिता तिरस्कृता सुरता सुराणां भावः सुरता देवभावः यया: सा एवंभूता **रमणीयापि** मनोहरापि, सुरतयोग्यापि **क्रूरजातितया**—नृशंस चाण्डाल जातितया पक्षे नृशंसराक्षस-जातितया च **उद्वेजयति**—उद्वेगमुत्पादयति। **अत्रासुरश्रीरिव** इत्यत्र पूर्णोपमालंकारः।

**संस्कृत सरलार्थ**—पुरःस्थिता मतिशय लावण्यवतीं चाण्डालकन्यकां निरीक्ष्य आश्चर्यचकितस्य राज्ञो मनसीयं भावना समुद्भूता, अहो, ब्रह्मणोऽपात्रे सौन्दर्यातिशय-निर्माणायासः, तथाहि, यदिनाम ब्रह्मणेय मात्मरूपातिशयेन तिरस्कृतसमग्र सौन्दर्य सम्पत्ति रुत्पादिता तर्हि किमर्थं मस्यास्तेन स्पर्शानर्हे चाण्डाल कुले जन्म कृतम्। तदनु-विमृश्य स निश्चिनोति-मन्येऽहमेवम् यच्चाण्डालजाति संस्पर्शजन्य दोषत्रासा दस्याः शरीरस्पर्शमकुर्वता प्रजापतिनेयं समुत्पादिता, मनसा कृता न तु हस्तस्पर्शेनेत्यर्थः। अन्यथा शरीरस्पर्शयोग्यत्वे सति तु नैवम्भूता सौन्दर्यस्या क्षतता समुज्वला कान्ति र्वा सम्भवेत्। यतो हि करतलसंश्लेषेण मर्दितानां करादिशरीराङ्गाना नह्येवम्भूता शारीरिक कमनीयता भवति। अतो विरुद्धयोश्चाण्डालत्वसौन्दर्यातिश्योरेकत्र सम्बन्ध विधायिनं विधातारंधिक्, निन्दापात्रं हि सः। येनासदृश। संयोगविधानेन चिन्ताकर्षक स्वरूपवती भूत्वापीयं दैत्य लक्ष्मीरिव निरन्तरनिन्दित सुरतसम्भोग सुखा, पक्षे तिरस्कृत सुरभावा, सुरतयोग्याऽपि अन्त्यज जातितया चित्तोद्वेगं जनयति।

**विशेष—दृष्ट्वा**—दृश्+क्त्वा=देखकर। **समुपजात** सम्+उप+जन्+क्त =उत्पन्न हुआ। **अहो** यह तर्क-वितर्कात्मक अव्यय है "आहो उताहो किमुत"

**इत्यमरः** । **निष्पादन**—निस्+पद्+णिच्+ल्युट् (अन)=उत्पादन, निर्माण । **तथाहि**—यह एक निपात है । इसका पयोग "विधाता ने किस प्रकार अनुचित स्थान में' सौन्दर्य उत्पादन का प्रयत्न किया" इसको स्पष्ट करने के लिए किया गया है । **नान**—यह भी एक निप्रात है जो संस्कृत में मृदुल आमन्त्रण अर्थात् कोमलता से किसी विषय पर विचार-विमर्श के लिए प्रयुक्त किया जाता है । **अस्पृशता**—अ(नञ्) +स्पृश्+शतृ, तृतीया एकवचन=स्पर्श न करते हुए । **अक्लिष्टता**—(नञ्) अ+क्लिश्+क्त+टाप्=कोमलता, अकठोरता । **करतल**—हथेलियाँ । **क्लेशित**—क्लिश्+क्त **धिग्विधातारम्**—यहाँ विधातारम् में द्वितीया धिक् के योग के कारण हुई है जैसा कि कात्यायन का निर्देश है—

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु ।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ।।

अतिमनोहराकृति····उद्वेजयति वाक्य में पूर्णोपमालंकार है । इसमें चाण्डाल कन्या की उपमा असुरश्री से दी गई है ।

**एवमादि चिन्तयन्तमेव राजानमीषदवगलितकर्णपल्लवावतंसा प्रगल्भ वनितेव कन्यका प्रणनाम । कृत प्रणामायाञ्च तस्यां मणिकुट्टिमोपविष्टायाम्, स पुरुषस्तं विहङ्गममादाय पञ्जर गतमेव किञ्चिदुपसृत्य राज्ञे न्यवेदयत् । अब्रवीच्च—**

**शब्दार्थ**—**एवमादि**=(चाण्डालकन्या के विषय में) इस प्रकार और उसी प्रकार की अन्य बातें, **चिन्तयन्तम् एव**=सोचते हुए ही, **राजानाम्**=राजा शूद्रक को । **ईषदवगलितकर्णपल्लवावतंसा**=कुछ-कुछ झुके हुए कोमल पत्तों के कर्णाभूषण वाली, **प्रगल्भवनिता इव**=अनुभवी या चतुर अथवा धृष्ट स्त्री के समान, **कन्यका**=उस चाण्डालकन्या ने, **प्रणनाम**=प्रणाम किया । **कृतप्रणामायाञ्च तस्याम्**=और उसके प्रणाम करने के पश्चात् । **मणिकुट्टिमोपविष्टायाम्**=मणियों से जड़े हुए फर्श पर बैठ जाने पर । **सः पुरुषः**=(चाण्डालकन्या के साथ वाले) उस (वृद्ध) व्यक्ति ने **विहङ्गमम्**=पक्षी (शुक) को, **आदाय**=लेकर, **पञ्चरगतम् एव**=(जो) पिजड़े में ही स्थित था । **किञ्चिद् उपसृत्य**=(राजा के) थोड़ा पास जाकर । **राज्ञे**=राजा से, **न्यवेदयत्**=निवेदन किया । **अब्रवीच्च**=और बोला ।

**अनुवाद**—(चाण्डालकन्या के विषय में) इस प्रकार तथान्य प्रकार की बातें सोचते हुए ही राजा को, कुछ-कुछ झुके हुए कोमल पत्तों के कर्णाभूषण वाली उस चाण्डालकन्या ने वाचाल (धृष्ट) स्त्री की भाँति प्रणाम किया । और उसके प्रणाम कर लेने तथा रत्नजटित फर्श पर बैठ जाने पर (साथ के) उस पुरुष ने पिंजड़े में स्थित ही उस पक्षी को लेकर (राजा के) कुछ समीप जाकर राजा से निवेदन किया और बोला ।

**संस्कृत व्याख्या**—**एवमादि** चाण्डालकन्यकाविषये पूर्वोक्तमन्यच्च, **चिन्तयन्तमेव** विचारयन्तमेव, **राजानं** शूद्रकम्, **ईषदवगलितकर्णपल्लवावतंसा**—ईषत् स्वल्पम् अवगलितौ अधोऽवनतौ कर्णयोः श्रोत्रयोः पल्लवावतंसौ किसलयाभूषणे यस्याः सा तादृशी, **कन्यका** चाण्डाल दारिका, **प्रगल्भावनिता इव** प्रगल्भा चेयं वनितेति प्रगल्भवनिता प्रौढ़नायिका इव अथवा धृष्ट स्त्रीव, **प्रणनाम**प्र—णामम् अकरोत् । **कृतप्रणामा**·

यान्त्र—कृतः विहितः प्रणामः नमस्कारो यया सा तस्यां विहितनमस्कारायाम्, तस्याम् कन्यकायाम् तथा च, मणिकुट्टिमोपविष्टायाम्—मणीनां कुट्टिमं मणिकुट्टिमं मणिजटित-बद्धभूमिस्तत्रोपविष्टायाम् आसीनायाम् च, सः पूर्वोक्तो वृद्धः, पुरुषः मनुष्यः पञ्जरगतम् एव=पञ्जरस्थितमेव, विहङ्गमम्—विहायसा गच्छतीति विहङ्गमस्तं पक्षिणम् शुकम् आदाय गृहीत्वा, किञ्चिदुपसृत्य=किञ्चित् स्वल्पम्, उपसृत्य (राज्ञः) समीपमागत्य, राज्ञे नृपाय शूद्रकाय, न्यवेदयत् उपहृतवान् । अब्रवीच्च वक्ष्यमाणं वचनम् उवाच च ।

संस्कृत सरलार्थ—पूर्वोक्तमन्यच्चैवं विचा यन्तमेव राजानं शूद्रकं सा चाण्डाल-कन्यका यस्याः पल्लवरचितकर्णाभूषणे किञ्चिदधोऽवनते आस्ताम्, प्रणाममकरोत् । प्रौढ़ा स्त्रीव राजानं विहितप्रणामायां मणिजटितबद्धभूमावुपविष्टायां च तस्याम्, तदग्रगामी स वृद्ध पुरुषः पञ्जरस्थमेव पक्षिण मादाय किञ्चिद्राज्ञः समीपमागत्य च शूद्रकाय समुपहृतवान् वक्ष्यमाण वचनञ्च अवोचत् ।

विशेष—प्रगल्भवनिता—प्रगल्भ स्त्री वह होती है जिसमें सङ्कोच, लज्जा आदि भाव न हों एवं वह पुरुष समाज में भी खुलकर बातचीत आदि व्यापार कर सके । यहाँ कन्या होने पर भी राजसभा में संकोच न कर राजा को प्रणाम करने के कारण उसकी उपमा प्रगल्भ वनिता से दी गई है । प्रणनाम—प्र+नम्+लिट् लकार प्र० पु० एक वचन=प्रणाम किया । उपविष्टायाम्—उप+विश्+क्त+सप्तमी एक वचन । विहङ्गमम्—विहायसा आकाश मार्गेण गच्छतीति विहङ्गम—विहायस+गम्+खच् (मुम्) तथा विहायस् को विह आदेश हुआ है । उपसृत्य—उप+सृ+(क्त्वा) ल्यप्=जाकर ।

## शुकवर्णनम्

**देव ! विदितसकलशास्त्रार्थः, राजनीतिप्रयोग कुशलः, पुराणेतिहास-कथालापनिपुणः, वेदिता गीतश्रुतीनाम्, काव्य नाटकाख्यानकप्रभृतीनामपरि-मितानां सुभाषितानामध्येता स्वयञ्च कर्ता, परिहासालापपेशलः, वीणावेणु-मुरज प्रभृतीनां वाद्यविशेषाणामसमः श्रोता, नृत्यप्रयोगदर्शननिपुणः, चित्र-कर्म्मणि प्रवीणः, द्यूतव्यापारे प्रगल्भः, प्रणयकलहकुपितकामिनी प्रसादनोपाय-चतुरः, गजतुरगपुरुषस्त्रीलक्षणाभिज्ञः, सकलभूतलरत्नभूतोऽयं वैशम्पायनो नाम शुकः । सर्वरत्नानाञ्चोदधिरिव देवो भाजनमिति कृत्वैनमादायास्म-त्स्वामिदुहिता देवपादमूलमायाता, तदयमात्मीयः क्रियतामित्युक्त्वा नरपतेः पुरो निधाय पञ्जरमसावपससार ।**

शब्दार्थ—देव !=महाराज ! विदितसकलशास्त्रार्थः=समस्त शास्त्रों के अर्थ (मर्म) को जानने वाला । राजनीति प्रयोग कुशलः=राजनीति के प्रयोग में चतुर । पुराणेतिहासकथालापनिपुणः=पुराणों और ऐतिहासिक कथाओं अथवा इतिहास तथा कथा साहित्य को कहने में दक्ष । वेदिता गीत श्रुतीनाम्=संगीत की श्रुतियों को जानने वाला । काव्यनाटकाख्यानक प्रभृतीनामपरिमितानां सुभाषितानाम्=अनेक काव्य, नाटक, आख्यानक आदि की असंख्य सूक्तियों का अध्ययन करने वाला या पाठ करने वाला । स्वयं च कर्ता=और स्वयं ही सूक्तियों की रचना करने वाला । परिहासा-

लापपेशलः=हँसी-मजाक की बातों के कहने में कुशल। **वीणावेणुमुरजप्रभृतीनाम्**=वीणा, वंशी (वेणु) मृदङ्ग (मुरज) आदि, **वाद्यविशेषाणाम्**=विशिष्ट वाद्य यन्त्रों का **असमः श्रोता**=अप्रतिम श्रोता। **नृत्य प्रयोगदर्शन निपुणः**=नृत्य के प्रयोगों को देखने में निपुण अर्थात् रुचि रखने वाला, **चित्रकर्म्मणि** चित्र बनाने की कला अर्थात् चित्रकारी में, **प्रवीणः**=दक्ष। **द्यूतव्यापारे**=जुआ खेलने में, **प्रगल्भः**=प्रतिभा सम्पन्न। **प्रणयकलहकुपितकामनी प्रसादनोपायचतुरः**=प्रेम कलह में रूठी हुई प्रेमिकाओं को प्रसन्न करने के उपायों में कुशल। **गजतुरगपुरुषस्त्रीलक्षणाभिज्ञः**=हाथी, घोड़ों पुरुषों और स्त्रियों के (सामुद्रिक शास्त्रोक्त) लक्षणों को भली-भाँति जानने वाला। **सकलभूतलरत्नभूतः**=सम्पूर्ण पृथ्वीतल में रत्नतुल्य, **अयम्**=यह (पिंजड़े में बन्द), **वैशम्पायनो नाम शुकः** वैशम्पायन नाम वाला तोता है। **सर्वरत्नाम्**=सभी प्रकार के या समस्त रत्नों के, **उदधिः इव**=समुद्र के समान, देवः महाराज शूद्रक आप, **भाजनम्**=पात्र या उचित संग्राहक है। **इतिकृत्वा**=ऐसा समझ कर, **एनम् आदाय**=इसे लेकर, **अस्मत्स्वामिदुहिता**=हमारे स्वामी की पुत्री (चाण्डालकन्या), **देवपादमूलम्**=महाराज (आपके) चरणों में, **आयाता**=आई है। **तद् अयम्**=तो इसे आप, **आत्मीयः**=अपना बना लें। **इत्युक्त्वा**=ऐसा कह कर, **नरपतेः** राजा के, **पुरो निधाय**=सामने रखकर, **पञ्जरम्**=पिजड़े को। **असौ**=वह वृद्ध चाण्डाल पुरुष। **अपससार**=हट गया।

**अनुवाद**—हे महाराज! समस्त शास्त्रों के अर्थों को जानने वाला, राजनीति (के दाँव-पेचों) के प्रयोग में चतुर, पुराणों तथा ऐतिहासिक कथाओं को कहने में चतुर संगीत की २२ प्रकार की श्रुतियों का ज्ञाता, काव्य-नाटक-आख्यायिका-आख्यान (राजवंश चरित्र) आदि असंख्य सुभाषितों का अध्ययन करने वाला तथा स्वयं इनकी रचना करने वाला, हँसी की बातों में कुशल, वीणा, वंशी एवं मृदङ्ग आदि (विशिष्ट वाद्य यन्त्रों) का अद्वितीय श्रोता, नृत्य (भावाश्रित अथवा काललयाश्रित) के अभिनय व दर्शन में प्रवीण, चित्र रचना में चतुर, जुआ खेलने में सिद्धहस्त, प्रणय-कलह से रूठी हुई मानिनी स्त्रियों को प्रसन्न करने के उपायों में चतुर, (सामुद्रिक शास्त्र में वर्णित) हाथी, घोड़े, मनुष्य एवं स्त्रियों के लक्षणों का विशेषज्ञ, समस्त पृथ्वी तल का रत्नस्वरूप यह वैशम्पायन नाम का शुक (सुग्गा) है। समस्त रत्नों के आश्रय स्थान सागर के समान आप समस्त उत्कृष्ट वस्तुओं के उचित पात्र हैं ऐसा मानकर इस शुक को लेकर हमारे स्वामी की पुत्री आपके चरणों में आई हैं। अतः इस (शुक) को अपना लीजिये, ऐसा कहकर पिंजड़ा सामने रख कर वह (वृद्ध पुरुष वहाँ से) हट गया।

**भावार्थ**—चाण्डालकन्या के साथ आया हुआ वृद्ध पुरुष पिंजड़े में बन्द शुक के चातुर्य, विद्वत्ता एवं संगीताभिज्ञता का परिचय राजा को देकर और उसे स्वीकार करने का निवेदन कर वहाँ से हट गया।

**संस्कृत व्याख्या**—**देव**! हे महाराज!, **विदितसकलशास्त्रार्थः**—विदितः ज्ञातः सकलानां सम्पूर्णानां शास्त्राणाम् शिक्षाकल्पव्याकरणादिषडङ्गशास्त्राणाम् अर्थः अभिधेयः प्रतिपाद्यो वा येन स तादृशः, समस्तप्रथमान्तपदानि 'शुक' इति पदस्य विशेषणानि। **राजनीति प्रयोग कुशलः**—राज्ञां नीतिः राजनीतिः कामन्दकया प्रोक्ता विशिष्टा शासननीतिः तस्याः प्रयोगे क्रियान्वयने कुशल निपुणः। **पुराणेतिहासकथाला निपुणः**=

पुराणं पञ्चलक्षणम् इतिहासः पुरावृत्तं तयोः कथाः वार्ता तासु यः आलापः सम्भाषणम्—तत्र निपुणः प्रवीणः, **वेदिता**—ज्ञाता, **गीतश्रुतीनाम्**—गीतं गानं श्रुतयः द्वाविंशतिविधाः स्वरारम्भकावयवीभूताः शब्द विशेषाः तासाम्—

"सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामाः मूर्च्छनाश्चैकोनविंशतिः ।
ताना एकोनपञ्चाशद् द्वयधिका विंशतिः श्रुति ॥

**अन्यत्र श्रुतयः इत्थं वर्णिताः**—

"नान्दी चालनिका रसा च सुमुखी चित्रा विचित्रा घना ।
मातङ्गी सरसामृता मधुकरी मैत्री शिवा माधवी ॥
बाला शार्ङ्गरवी कला कलरवा माला विशाला जया ।
मात्रेति श्रुतयः पुराणकविभिर्द्वाविंशतिः कीर्त्तिताः ॥"

**काव्यनाटकाख्यानकं प्रभृतीनाम्**—काव्यं 'रसात्मकं वाक्यम्' अथवा 'अदोषत्वे सति गुणवदलङ्कारवत् कविकर्म' नाटकम्—अभिनयात्मकम् कविकर्म, आख्यानकम् स्वकालीनराजवृत्तम् एतत् प्रभृतीनां **अपरिमितानाम्** असंख्यानां **सुभाषितानाम्** नीतिवैराग्यादिबोधकानां सूक्तिरूपपद्यानाम् अध्येता पाठकः तथा च स्वयं स्वयमेव कर्त्ता निर्मातापि । **परिहासालापपेशलः** अन्येषां प्रियवचनैर्हसनं परिहासः रसबोधकवार्तालापकरणे दक्षः, **वीणावेणुमुरजप्रभृतीनाम्**—वीणा तन्त्री वाद्यविशेषः **वेणुः** सुषिरम्, वंशीति प्रसिद्धम् **मुरजम्**-आनद्धं मृदङ्गं वा प्रभृतीनाम् कांस्यतालादीनां वाद्यविशेषाणाम् **असमः** अनुपमः **श्रोता** श्रवणकर्ता (तेषांगुणदोष विवेचनसामर्थ्यात्) । **नृत्यप्रयोगदर्शननिपुणः**—नृत्यम्—भावाश्रयमभिनयं पाठान्तरे नृत्तं ताललया श्रितं, तस्य प्रयोगदर्शने प्रयुज्यमानस्यनृत्यस्यावलोकने **निपुणः** चतुरः अथवा—नृत्यस्य प्रयोगे—स्वयमेव नृत्य करणे तथा चान्यकृन्नृत्यस्य दर्शनेऽवलोकने निपुणः । **चित्रकर्मणि**—आलेख्यकलायां **प्रवीणः** निपुणः । **द्यूतव्यापारे**—दुदोदर व्यापारे **प्रगल्भः**—प्रतिभासम्पन्नः सिद्धहस्त इत्यर्थः । **प्रणयकलहकुपितकामिनीप्रसादनोपायचतुरः**—प्रणयकलहेन—प्रेमविषयकविवादेनाथवा प्रेमकर्म्मणि समुत्पन्नकलहेन कुपितानां क्रुद्धानां कामिनीनां मानिनीनां प्रियाणां प्रसादनोपायेषु अनुकूलीकरणविधिषु चतुरः पण्डितः । **गजतुरग पुरुषस्त्रीलक्षणाभिज्ञः**—गजाः भद्रजातीयाः हस्तिनः तुरगाः शालिहोत्रप्रतिपादिताः देवमण्यादयः अश्वाः धीरोदात्तादिप्रकृतिकाः पुरुषाः पद्मिन्यादिस्त्रियः तासां सामुद्रिकशास्त्रोक्तेषु लक्षणेषु अभिज्ञो निपुणः । **सकलभूतलरत्नभूतः**—सकलं यद्भूतलं तत्र सकलभूतले सम्पूर्णं पृथ्वीतले रत्नभूतः अत्युत्कृष्टमणिः इव अयं **पुरः** पञ्जरस्थितः **वैशम्पायनो** नाम—वैशम्पायनाभिधः शुकः कीरः अस्तीति शेषः । **सर्वरत्नानाम्**—समेषामुत्कृष्टवस्तूनां **उदधिः**—सागरः इव यथा सर्वविधरत्नानामाकरः समुद्रस्तथैव **देवो** भवान् (राजा) **भाजनम्** अस्य शुकरूप रत्नस्याश्रयः इति **कृत्वा** एतद्विचार्य इति निश्चित्य वा **एनम्** शुकम् **आदाय** गृहीत्वा **अस्मत्स्वामिदुहिता** अस्मन्नेतुः पुत्री **देवपादमूलम्** स्वामिनो भवन श्चरणमूलम् **आयाता** समागता तत् तस्मात् कारणात् **अयं** शुकः **आत्मीयः क्रियताम्** ग्रहणेन स्वीयः विधीयताम् । **इति** एवं पूर्वोक्तम् **उक्त्वा**—अभिधाय **नरपतेः** राजः शूद्रकस्य **पुरः** अग्रे **निधाय**—पञ्जरं स्थापयित्वा **असौ पुरुषः अपससार**—ततो दूरीभूतः ।

**संस्कृत सरलार्थ**—शुकस्य विशेषताः वर्णयन् चाण्डालपुरुषः राजानं विज्ञापयति यत् हे राजन् ! अयं शुकः समस्त शास्त्राणाम् अर्थज्ञः, राजनीतिकपटुप्रयोगेषु चतुरः, पुराणेतिहासा दीनां कथानां सम्यग् वक्ता, संगीतश्रुतीनां ज्ञाता, स न केवलं

काव्यनाटकाख्यायिकादीनामध्येता अपितु स्वयं सुभाषितरचनाकरोऽपि । हास-परिहासात्मजल्पनिपुणः, वीणावेणुमुरजादीनां गुणदोषपरीक्षणक्षमतासम्पन्नत्वात् अयमेव यथार्थतः श्रोता, नृत्यप्रयोगेष्वपि प्रवीणः, चित्ररचनायामपि निपुणः द्यूतव्यापारे सिद्धहस्तस्तथा नर्मकर्मणि निपुणः गजतुरगादीनामपि सामुद्रिक शास्त्रोक्त लक्षणाभिज्ञः । इत्थं समस्त पृथिव्याः उत्कृष्टतममणिः इवायं पञ्जरस्थः 'वैशम्पायन' इति नामधेयः शुकः । समस्त रत्नाधारः सागर इव श्रीमान् भवानेवास्य शुकस्याश्रयः इति मनसि-विचार्य मम स्वामिनः कन्या शुकमेनम् आदाय भवच्चरणमूलं सम्प्राप्ता अतः शुकमेनं स्वीकरोतु भवान् इत्युक्त्वा स चाण्डालवृद्धो दूरीभूतः ।

**टिप्पणी—शास्त्र** शासनात्मक, शिक्षात्मक ग्रन्थों को शास्त्र कहा जा सकता है किन्तु सं० साहित्य में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष वेदाङ्गों को षट्शास्त्र की संज्ञा प्रदान की गई है । **पुराण** - संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने में पुराणों का विशेष योगदान है । इनकी संख्या—१८ है । **पुराण की परिभाषा इस प्रकार है—**

"सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥"

**इतिहास**—पुरावृत्त अर्थात् अतीत की सत्य घटना ।

**काव्य**—वाक्यं रसात्मकं काव्यम् (सा० दर्पण) । अदोषौ सगुणौ सालंकारौ अनलंकृती पुनः क्वापि शब्दार्थौ काव्यम् (का० प्र०) । रमणीयार्थ प्रति पादकः शब्द काव्यम् (रसगंगाधर) ।

**नाटक**—'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धि समन्वितम्' । इत्यादि वस्तुतः नाटकं अभिनेतव्य काव्य का ही नाम है ।

'**आख्यानक**—राजाओं के चरित्र वर्णनात्मक चरित काव्य ।

**श्रुति**—श्रूयते इति श्रुतिः—श्रु + क्तिन्—संगीतशास्त्र में २२ प्रकार की श्रुतियों का निर्देश है यथा—

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामाः मूर्च्छनाश्चैकोनविंशतिः ।
ताना एकोनपञ्चाशत् द्वयधिकाविंशति श्रुतिः ॥

संगीत में किसी स्वर के आरम्भ का शब्द विशेष श्रुति कहलाता है । शिशुपाल बध की टीका में आचार्य मल्लिनाथ ने लिखा है—

"प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः ।
सा श्रुतिः संपरिज्ञेया स्वरावयव लक्षणा ॥"

इन श्रुतियों के नाम इस प्रकार अन्य ग्रन्थों में हैं—

१. नान्दी २. चालनिका ३. रसा ४. सुमुखी ५. चित्रा ६. विचित्रा ७. घना ८. मातङ्गी ९. सरसा १०. अमृता ११. मधुकरी १२. मैत्री १३. शिवा १४. माधवी १५. बाला १६. शार्ङ्गरवी १७. कला १८. कलरवा १९. माला २०. विशाला २१. जया २२. मात्रा । **गजतुरग पुरुषस्त्री लक्षणाभिज्ञः**—सामुद्रिक शास्त्र में पशु-पक्षियों एवं स्त्री-पुरुषों के रूप गुणादि के आधार पर अनेक लक्षण दिये गये हैं । यह शुक उन सबका सम्यग् ज्ञाता था । **दुहिता**—पुत्री । **निधाय**—नि + धा + (क्त्वा) ल्यप् + रखकर । **अपससार**—अप + सृ + लिट् प्र० पु० एकवचन हट गया ।

अपसृते च तस्मिन् स विहङ्गराजो राजाभिमुखो भूत्वा समुन्नमय्य दक्षिणं चरणमतिस्पष्ट वर्ण स्वर संस्कारया गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्य्यामिमां पपाठ—

स्तनयुगमश्रु स्नातं समीपतरवर्त्तिहृदय शोकाग्नेः ।
चरित विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम् ।।

**शब्दार्थ**—**अपसृते च**=और वहाँ से हट जाने पर **तस्मिन्**=उस वृद्ध पुरुष के, **स विहङ्गराजः**=उस पक्षिराज (शुक) ने **राजाभिमुखो भूत्वा**=राजा की ओर मुख करके, **समुन्नमय्य**=ऊपर उठाकर, **दक्षिणं चरणम्**=दाहिने पैर को, **अतिस्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया**=अत्यन्त स्पष्ट वर्णों एवं स्वरों से शुद्ध, **गिरा**=वाणी से, **कृतजयशब्दः**=जय शब्द का उच्चारण कर, **राजानम् उद्दिश्य**=राजा को लक्ष्य करके, **आर्य्यामिमाम्**=इस आर्याछन्द को, **पपाठ**=पढ़ा (सुनाया)। **भवतः**=आपकी **रिपुस्त्रीणाम्**=शत्रुओं की स्त्रियों के **स्तनयुगम्**=दोनों स्तन, **अश्रुस्नातम्**=आँसुओं से नहाये हुए हैं। **हृदयशोकाग्नेः**=हृदयस्थित शोक रूप अग्नि के **समीपतरर्वात**=अधिक समीप विद्यमान। **विमुक्ताहारम्**=हार (आभूषण) का परित्याग कर देने वाले **व्रतपक्ष में**=आहार (भोजन) का परित्याग कर देने वाले, **व्रतम् इव**=मानों व्रत (साधना) **चरति**=कर रहा है।

**अनुवाद**—उस (वृद्ध चाण्डाल) के (वहाँ से) हट जाने पर उस पक्षिराज ने राजा की ओर मुखकर, दायाँ पैर ऊपर उठाकर, अत्यन्त स्पष्ट वर्णों एवं स्वरों से शुद्ध स्वरूप वाली वाणी के द्वारा 'जय' शब्द का उच्चारण कर (अर्थात् राजा की जय जयकार कर) राजा को उद्देश्य करके इस आर्या छन्द को पढ़ा—

(हे महाराज !) आपकी शत्रु स्त्रियों के, आँसुओं से नहाये हुए, हृदय स्थित शोक रूप अग्नि के अधिक समीपवर्ती तथा मुक्ताहार का परित्याग किये हुये स्तनयुगल, मानो आहार का परित्यागकर व्रत कर रहे हैं।

**भावार्थ**—चाण्डाल पुरुष के हट जाने पर एक शिष्ट एवं विद्वान् व्यक्ति के समान उस शुक ने दाहिने पैर को उठाकर राजा की जयकार कर उसकी स्तुति इस प्रकार की—हे महाराज आपके शत्रुओं की स्त्रियों के दोनों स्तन मानों व्रत कर रहे हैं अर्थात् साधना साध रहे हैं जैसे कि एक व्रती नित्य स्नान करता है, अग्नि जलाकर समाधिस्थ होता है एवं आहार का परित्याग कर देता है उसी प्रकार शत्रु स्त्रियों के दोनों स्तन आँखों से बहते हुए आँसुओं से भीगने के कारण मानों स्नान किये हुए हैं, हृदय स्थित शोकाग्नि के समीप रहते हैं एवं हार का परित्याग करने से विमुक्ता हार हैं।

**संस्कृत व्याख्या**—**तस्मिन्** पूर्वोक्ते वृद्ध पुरुषे **अपसृते च** तत्स्थानाद् दूरीभूते च सति, **स विहङ्गराजः**—पक्षिराट् सः। शुकः **राजाभिमुखः** नृपसम्मुखो **भूत्वा दक्षिणं चरणं चोन्नमय्य**—वामेतरं पादमुत्थाप्य **अतिस्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया**—अतिस्पष्टाः सुव्यक्ताः वर्णाः अक्षराणि स्वराः उदात्तादिध्वनयस्तेषां संस्कारः परिष्कारः व्याकरण शुद्धिः यस्यां सा तया **गिरा** वाण्या **कृतजयशब्दः** विहित 'जय' इति ध्वनिः सः। **राजानम् उद्दिश्य** नृपं शूद्रकं लक्ष्यीकृत्य **इमाम्**—अग्रे वर्णिताम् **आर्याम्**—आर्य्या संज्ञक छन्दोबद्धां स्तुति **पपाठ** पठितवान्—**स्तनयुगमिति**—**अन्वयः**—भवतः रिपुस्त्रीणाम् अश्रुस्नातम्, हृदय शोकाग्नेः समीतरवर्ति विमुक्ताहारं स्तनयुगम्—व्रतम् इव

चरति । भवतः राज्ञः शूद्रकस्य **रिपुस्त्रीणाम्**—रिपूणां स्त्रियः रिपुस्त्रियस्तासां शत्रु नारीणाम् **अश्रुस्नातम्** अश्रुभिर्नेत्र जलैः स्नातम् कृतस्नानम् पतिविरहजनितशोका-श्रुभिः सिक्तम्, **हृदयशोकाग्नेः** हृदय स्थितः यः पतिविरहजनितः शोकः स एव अग्नि-स्तस्य **समीपतरवर्ति** अतिनिकट स्थितम् **विमुक्ताहारम्**—वि-विगतः मुक्ताहारः मौक्तिक माला यस्मात्तत् तादृशं स्तनयुगम् उरोजद्वयम्, पक्षे—विमुक्तः त्यक्तः आहारो भोजनं येन तादृशं **व्रतम्**—नियमम् **चरति इव** अनुतिष्ठ तीवोत्प्रेक्षायाम् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—तस्मिन् वृद्ध पुरुषे दूरीभूते स पक्षिराड् शुकः राजाभिमुखी-भूय ब्राह्मणोचित—शिष्टाचारं परिपालयन् दक्षिणं चरणमुत्थाप्य, सुव्यक्तवर्णैः व्याकरणादिदृष्ट्या शुद्ध स्वरैश्च समन्वितया वाण्या नृपं निमित्तीकृत्य विहितजयशब्दः आर्ययानया राजानं प्रशशंस राजन् ! पतिविरहजन्यलोचनजलैः कृतस्नानम्, पति-वियोगजनित हृदयस्य शोकरूपाग्नेरतिनिकटवर्ति, पतिविनाशात् परित्यक्त मुक्ताहारम्, तव शत्रुवनितानां स्तनद्वयम् व्रतमनुतिष्ठतीव । अन्योऽपि व्रतमाचरन् कालत्रयेऽपि स्नानं करोति, होत्राग्निसमीपं तिष्ठति, सम्यगुपवासञ्च करोति ।

**विशेष**—**अपसृते**—अप+सृ+क्त सप्तमी एक व०=हट जाने पर । **विहङ्ग-राजः** विहङ्गानां राजा विहङ्गराजः "राजाहःसखिभ्यष्टच्" सूत्र से टच् प्रत्यय होकर राजः बना है । **समुन्नमय्य**—सम्+उत्+नम् (क्त्वा) ल्यप्=ऊपर उठाकर । **अति-स्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया** अति स्पष्टानां वर्णानां स्वराणां च संस्कारो यस्यां सा तया (बहु०)=सुव्यक्त अक्षरों और स्वरों से शुद्ध । पक्षी होने पर भी उसकी वाणी में अक्षरों की स्पष्टता एवं स्वरों की शुद्धता शुक के वैदुष्य का एवं पृथ्वी तल के रत्नत्व का बोधक है ।

**आर्या**—यह एक मात्रिक छन्द का नाम है—**लक्षण**—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रा स्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।

**स्तनयुगम्**—रिपुस्त्रीणाम् इस श्लोक में कवि ने श्लिष्ट पदावली के माध्यम से शत्रु स्त्रियों के स्तन युगल एवं व्रतधारी व्यक्ति में साम्य प्रदर्शित किया है। पति विरह जन्य शोक के कारण रोने से शत्रु स्त्रियों के स्तनयुग भीग जाते हैं अतः वे स्नात हैं व्रती भी स्नान करता है । स्तनयुग हृदयस्थ शोकाग्नि के समीप स्थित है व्रतधारी भी यज्ञाग्नि का सेवन करता है । शोक सन्तप्त शत्रु स्त्रियाँ हार नहीं पहनती अतः उनका स्तनयुग विमुक्ताहार है । जबकि व्रती आहार (भोजन) छोड़कर विमुक्ताहार होता है इस प्रकार यहाँ विमुक्ताहार में सभङ्ग श्लेष है (वि+मुक्ताहार, विमुक्त+आहार) । हृदय शोकाग्नेः में शोक में अग्नि का अभेद आरोप होने से निरङ्ग केवल रूपक है तथा इव पद में उत्प्रेक्षा है इस प्रकार तीनों की संसृष्टि है । शत्रु स्त्रियों के वर्णन के बहाने राजा की स्तुति होने के कारण यहाँ व्याजस्तुति या अप्रस्तुत से प्रस्तुत अर्थ की व्यञ्जना होने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार व्यङ्ग्य है । ●

**राजा तु तां श्रुत्वा संजातविस्मयः सहर्षमासन्नवर्तिनम् अतिमहार्घ-हेमासनोपविष्टम् अमरगुरुमिवा शेषनीति शास्त्रपारगम् अतिवयसमग्रजन्मा-नमखिल मन्त्रिमण्डल प्रधानममात्यं कुमारपालितनामानमब्रवीत् ।**

**शब्दार्थ**—**राजा तु तां श्रुत्वा**=राजा ने तो उस आर्या को सुनकर, **संजात-विस्मयः**=आश्चर्यचकित होकर, **सहर्षम्**— प्रसन्नतापूर्वक, **आसन्नवर्तिनम्**=समीप में

विद्यमान, **अतिमहार्घ हेमासनोपविष्टम्**=अत्यन्त कीमती (अति महार्घ) स्वर्णसिंहासन पर बैठे हुए, **अमर गुरुम् इव**=देवताओं के गुरु बृहस्पति के समान, **अशेषनीति शास्त्रपारगम्**=सम्पूर्ण नीतिशास्त्र में पारंगत, **अतिवयसम्**=अत्यधिक अवस्था (उम्र) वाले, **अग्रजन्मानम्**=ब्राह्मण (वंश में उत्पन्न), **अखल मन्त्रिमण्डल प्रधानम्**=सम्पूर्ण मन्त्रिसमूह में प्रधान, **अमात्यम्**=प्रधान मन्त्री, **कुमारपालितनामानम**=कुमार पालित नामक से, । **अब्रवीत्**=बोले ।

**अनुवाद**—राजा ने उस आर्या को सुनकर आश्चर्यचकित हो प्रसन्नतापूर्वक समीप ही विद्यमान बहुमूल्य स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुए, देव गुरु बृहस्पति के समान सम्पूर्ण नीतिशास्त्र में पारंगत, अत्यधिक आयु वाले ब्राह्मण (वंश में उत्पन्न) समस्त मन्त्रिपरिषद् में प्रधान कुमार पालित नामक मन्त्री से कहा ।

**भावार्थ**—शुक द्वारा की गई प्रशंसा को सुनकर राजा आश्चर्यचकित हो गया अतः उसने स्वर्ण सिंहासनासीन नीतिकुशल प्रधानमन्त्री कुमार पालित से कहा ।

**संस्कृत व्याख्या**—राजा शूद्रकस्तु, ताम् पूर्वोक्ताम् शुकपठिताम् आर्याम्, श्रुत्वा आकर्ण्य, **संजातविस्मयः** संजातः समुत्पन्नः विस्मयः आश्चर्य यस्य स तादृशः, **सहर्षम्**—हर्षेण सहितम् सहर्षम् प्रसन्नतापूर्वकम्, **आसन्नवर्तिनम्**—आसन्नं समीपे वर्तते यः स आसन्नवर्ती तम् समीपस्थितम्, **अतिमहार्घहेमासनोपविष्टम्**—अतिमहार्घं बहुमूल्यं यद् हेमासनं सुवर्णरचितं आसनं तत्रोपविष्टम्=तस्मिन् समासीनम्, **अमरगुरुम्**=देव गुरुम् वृहस्पतिमिव, **अशेषनीति शास्त्रपारगम्**—अशेषाणि यानि नीतिशास्त्राणि अशेषनीति शास्त्राणि समस्तलौकिककृत्यबोधकानि तन्त्राणि तेषां पारं गच्छतीति पारगस्तम् तत्त्वज्ञातारम्, **अतिवयसम्**—अत्यधिकं वयः आयुर्यस्य सः तम् अतिवयसम् वृद्धावस्था युतमित्यर्थः, **अग्रजन्मानम्**—अग्रे सर्ववर्णेभ्यः पूर्वं जन्म यस्य सोऽग्रजन्मा ब्राह्मणस्तम्, **अखिलमन्त्रिमण्डल प्रधानम्**—अखिले सम्पूर्णे मन्त्रिणां मण्डले सचिव-समुदाये प्रधान मुख्यम्, **कुमारपालित नामानम्**—कुमारपालिताभिधानम्, **अमात्यम्**—मन्त्रिणम्, **अब्रवीत्**—अवोचत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—शुकोदितामार्यां श्रुत्वा विस्मयाविष्टो राजा शूद्रकः प्रसन्न-चित्तः सन् समीपस्थितं बहुमूल्य स्वर्णसिंहासनासीनं देव गुरु वृहस्पतिमिव समस्त नीतिशास्त्रतत्वज्ञम्, अधिकायुःसम्पन्नमत एव वृद्धं ब्राह्मणवंशीयं सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषदि मुख्यं कुमारपालिताख्यं मन्त्रिणम् अवोचत् ।

**विशेष**—यहाँ प्रधान अमात्य कुमारपालित को जो स्वर्णसिंहासनारूढ़ प्रदर्शित किया गया है एवं जिन विशेषणों से उसकी विशेषता वर्णित है, उससे स्पष्ट है कि बाणभट्ट के समय राजाओं के द्वारा प्रधानमन्त्री को कितना आदर एवं सम्मान दिया जाता था । अग्रजन्मा=ब्राह्मण; चारों वर्णों में सबसे प्रथम जन्म होने के कारण ब्राह्मण को अग्रजन्मा कहा जाता है ।

**श्रुता भवद्भिरस्य विहङ्गमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे, स्वरे च मधुरता प्रथमं तावदिदमेव महादाश्चर्यम्, यदयमसङ्कीर्णवर्णं प्रविभागामभिव्यक्त-मात्रानुस्वारस्वर संस्कारयोगां विशेष युक्ताम् अतिपरिस्फुटाक्षरां गिरमुदीर-यति । तत्र पुनरपरम् अभिमत विषये तिरश्चोऽपि मनुजस्येव संस्कारवती बुद्धिपूर्वा प्रवृत्तिः । तथाहि अनेनसमुत्क्षिप्त दक्षिणचरणेनोच्चार्य जयशब्द-**

**मियमार्या मामुद्दिश्य परिस्फुटाक्षरं गीता। प्रायेण हि पक्षिणः पशवश्च भयाहार मैथुननिद्रा संज्ञा मात्र वेदिनो भवन्ति। इदन्तु महच्चित्रम्।**

**शब्दार्थ**—**भवद्भिः**=आप लोगों के द्वारा, **अस्य विहङ्गमस्य**=इस पक्षी की **वर्णोच्चारणे**=अक्षरों के उच्चारण में, **स्पष्टता, स्वरे च**=और स्वर में, **मधुरता**=मिठास, **श्रुता**=सुनी गई, **प्रथमं तावत्**=पहले तो अर्थात् सबसे पहला तो, **इदमेव महदाश्चर्यम्**=यही महान् आश्चर्य है, **यत्**=कि, **अयम्**=यह शुक, **असंकीर्णवर्णप्रविभागाम्**=अलग-अलग वर्णों के विभाजन वाली, **अभिव्यक्त मात्रानुस्वारस्वर संस्कारयोगाम्**=स्पष्ट सुनाई देने वाली मात्राओं, अनुस्वारों, स्वरों और संस्कार=व्याकरण शुद्धि से युक्त, **विशेष युक्ताम्**=विशेष अर्थात् श्लेषादि अलङ्कारों से परिपूर्ण, **अतिपरिस्फुटाक्षराम्**=अत्यन्त स्पष्ट वर्णों वाली, **गिरम्**=वाणी का, **उदीरयति**=उच्चारण कर रहा है। **तत्र पुनः**=वहाँ फिर (उस पर भी), **अपरम्**=दूसरा (आश्चर्य), **अभिमत विषये**=अपने अभीष्ट विषय में (अभीष्ट कथ्य में), **तिरश्चोऽपि**=पक्षी की भी, **मनुजस्य इव**=मनुष्य के समान, **संस्कारवती**=अनुभव जन्य संस्कारों से पूर्ण, **बुद्धिपूर्वा**=बुद्धिमत्तापूर्ण, **प्रवृत्तिः**=व्यवहार है। **तथाहि**=जैसे कि, **अनेन**=इसके द्वारा, **समुत्क्षिप्त दक्षिणचरणेन**=दाहिने पैर को उठाये हुए, **जयशब्दम्**='जय' इस प्रकार के शब्द को, **उच्चार्य**=उच्चारण कर, **इयम् आर्या**=यह आर्या (छन्द), **माम् उद्दिश्य**=मुझे लक्षित कर, **परिस्फुटाक्षरम्**=अत्यन्त स्पष्ट अक्षरों में, **गीता**=गाई गई **प्रायेण हि**=प्रायशः, **पक्षिण पशवश्च**=पशु और पक्षी, **भयाहार मैथुननिद्रा संज्ञा मात्र वेदिनः** भय, भोजन (आहार), मैथुन (स्त्री संभोग), और निद्रा संज्ञा=लोकव्यवहार जनक संकेत, नामक (मूल) वृत्तियों को ही जानने वाले, **भवन्ति**=होते हैं। **इदन्तु**=यह तो (शुक विषयक) **महच्चित्रम्**=अत्यधिक आश्चर्य है।

**अनुवाद**—आप लोगों ने इस पक्षी की अक्षरों के उच्चारण में स्पष्टता एवं स्वर की मधुरता सुनी है। पहले तो यही महान् आश्चर्य है कि यह अलग-अलग वर्णों के विभाजन से युक्त, स्पष्ट मात्राओं, अनुस्वारों, स्वरों और व्याकरणादि की शुद्धता से युक्त (तथा) विशिष्ट अलंकारों से समन्वित, अत्यन्त स्पष्ट अक्षरों वाली वाणी का उच्चारण करता है। और फिर इस पर भी यह दूसरा (आश्चर्य यह) है कि अपने अभीष्ट विषय में मनुष्य की भाँति इस पक्षी की भी अनुभव जन्य संस्कारपूर्ण एव बुद्धिमत्तापूर्ण प्रवृत्ति है। क्योंकि इसने (अपने) दाहिने पैर को उठाये हुए जय शब्द का उच्चारण कर मुझे लक्ष्य कर अत्यन्त स्पष्ट अक्षरों में इस आर्या का गान किया है। प्रायशः पक्षी और पशु तो भय, आहार, मैथुन और निद्रा तथा संकेत नामक (मूल प्रवृत्तियों) मात्र को ही जानने वाले होते हैं (इससे अधिक नहीं) यह तो महान् आश्चर्य है।

**भावार्थ**—राजा अपने प्रधानमन्त्री से शुक की मानवीय प्रवृत्तियों का आश्चर्यपूर्वक वर्णन करता है कि इसके द्वारा गाई गई आर्या में वर्णों की अत्यन्त स्पष्टता है, स्वरों में मधुरता भी। यह महान् आश्चर्य है कि इसकी वाणी में वर्णों का स्पष्ट विभाग, मात्राओं, अनुस्वारों एवं स्वरों में स्पष्टता के साथ-साथ व्याकरण की शुद्धता और अलंकारों का योग भी है। दूसरा आश्चर्य यह है कि अपने अभीष्ट विषय में इसकी प्रवृत्ति पूर्णतः मनुष्य की भाँति बुद्धिमतापूर्ण है यद्यपि यह पक्षी है। क्योंकि मेरी स्तुति में इसने व्यवहार का भी पालन किया है जैसे दाहिने पैर को उठाकर जय

शब्द का उच्चारण। पशु-पक्षियों में तो प्राय: आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि की ही प्रवृत्तियों का ज्ञान होता है। अतः यह शुक का व्यवहार अत्यन्त आश्चर्यजनक है।

**संस्कृत व्याख्या**—**भवद्भिः** युष्माभिः, **अस्य विहङ्गमस्य, पुरोविद्य** मानस्य, विहङ्गमस्य=पक्षिणः शुकस्य, **वर्णोच्चारणे** 'क' 'ख' प्रभृति वर्णानां भाषणे **स्पष्टता** स्फुटता, **स्वरे** उदात्तादिस्वर संयोगे **मधुरता** माधुर्यं, **श्रुता** आकर्णिता, किमिति काक्वा व्यज्यते। **प्रथमम्** आदौ **तावदिदमेव** प्रत्यक्षगतमेव **महद् आश्चर्यम्** अतिकौतूहलं **यत् अयम्** शुकः **असंकीर्ण वर्णप्रविभागाम्**—न सङ्कीर्णः असंकीर्णः असङ्कीर्णः अमिश्रितः परस्परं भिन्नत्वेन श्रूयमाण इत्यर्थः वर्णानाम् अक्षराणां प्रविभागः पार्थक्यं यस्यां सा ताम् तथोक्ताम्, **अभिव्यक्तमात्रानुस्वारस्वरसंस्कारयोगाम्**—अभिव्यक्तः स्फुटं प्रतीयमानः मात्रा इकारादयः अनुस्वाराः अनुनासिकाः स्वराःहृस्वदीर्घप्लुतरूपाः, संस्कारो व्याकरण-शुद्धिश्च एतेषां योगः सम्बन्धो यस्यां सा ताम् तथोक्ताम्, **विशेषयुक्ताम्** विशेषैः असामान्यैः काव्यगुणैरलङ्कारादिभिः युक्ताम् सहिताम् (तथा च) **अतिपरिस्फुटाक्षराम्**—अति-परिस्फुटानि अत्यन्तस्पष्टानि अक्षराणि वर्णा यस्यां सा ताम् तादृशीं **गिरम्** वाणीम् **उदीरयति** उच्चारयति। **तत्र** शुकस्योच्चारण विषये **पुन रपरम्** अन्यद् आश्चर्यम् यत् **अभिमत विषये** इष्ट प्रसङ्गे उपादेयेऽर्थे **तिरश्चोऽपि** तिर्यजातीयंग्स्य पक्षिणोऽपि **मनुजस्य** इव मानवस्येव **संस्कारवती** तत्तदर्थानुभवजन्य संस्कार युक्ता, **बुद्धिपूर्वा** विवेकसंगता **प्रवृत्तिः** कथनप्रवर्तनम् (वर्तते) तथाहि **समुत्क्षिप्तदक्षिणचरणेन** समुत्क्षिप्तः उत्थापितः दक्षिणः सव्येतरः चरणं पादो येन सः तेन तथोक्तेन, **अनेन** शुकेन **जयशब्दम्** राजसभो-चितं कथनात्प्राक् जयजयेति पदम् **उच्चार्य** अभिधाय, **इयम्** पूर्वपठिता **आर्या** आर्यागीतिः **मामुद्दिश्य** माम् राजानम् अभिलक्ष्य **परिस्फुटाक्षरं** परिस्फुटानि स्पष्टानि अक्षराणि वर्णाःयत्र तद् यथा स्यात्तथा **गीता** पठिता। **प्रायेणहि** बहुल्येन तु **पक्षिणः विहगाः पशवश्च** मृगादयश्च **भयाहारमैथुननिद्रासंज्ञामात्रवेदिनः**—भयं भीतिः अनिष्टकारण-ज्ञानम् आहारो भोजनं मैथुनम् स्त्रीसंभोगः, निद्रा स्वापः संज्ञा लोकव्यवहार प्रयुज्यमान-सङ्केतां एतन्मात्रवेदिनो ज्ञातारो भवन्ति। केवलमाहारनिद्राभयमैथुनमेव जानन्ति नान्यत्किमपि। **इदन्तु** अदृष्ट पूर्वं **महच्चित्रम्** महदाश्चर्यम्। यदयं विहङ्गमोऽपि बुद्धि पूर्वकं व्याकरणादि विशुद्धां काव्यगुणैरलङ्कृतां च कवितां पठतीति महदाश्चर्यम्।

**संस्कृत सरलार्थ**—राजा शुकोदितामार्यागीतिं श्रुत्वाऽतीवाश्चर्यचकितः सन् स्वप्रधानामात्यं कुमारपालितं तस्यासाधारण स्वरूपं वर्णयति यत् किं भवद्भिः अस्य शुकस्य वर्णानामुच्चारणे परिस्फुटत्वम्—स्वरे च माधुर्यम् आकर्णितम्। अयं हि अभिव्यक्त वर्णस्वरमात्रा नुस्वारादि सम्पन्नां व्याकरणविशुद्धां काव्यगुणैरलङ्कृतां वाणीं समुदीरयति, एतन्महदाश्चर्यम्। अपरञ्चास्य बुद्धि मानवीय प्रवृत्तिरिव संस्कार सम्पन्ना विवेकान्विता चास्ति, यतोहि अनेनाऽऽर्यागान समये प्रथमं स्वदक्षिण पाद-मुत्थाप्य मामुदिश्य च जयेति शब्द स्योच्चारणम् कृतम् तदनु, स्फुटाक्षरम आर्या गीता, बाहुल्येन पक्षिणां पशूनाञ्चाहारनिद्राभयमैथुन संकेतादि मूलप्रवृत्तीनामेव ज्ञानं भवति नान्यत्किमपि, परमस्मिन शुके तु विलक्षण ज्ञातृत्वं दृश्यते तस्मादिदं महच्चित्रम्।

**टिप्पणी**—**विशेषयुक्ताम्**—विशेषाः श्लेषाद्यलङ्काराः काव्यगुणाश्च तैर्युक्ताम्= काव्यगुण अलङ्कारादिकों से समन्वित। **अभिमतविषये**—अभिमतम् अभीष्टतद्विषये—अभीष्ट विषय में, **तत्र पुनरपरम्**······························**प्रवृत्तिः**

इस पक्षी के विषय में दूसरा बड़ा आश्चर्य यह है कि जैसे संस्कार युक्त कोई आदमी किसी कार्य की भलाई-बुराई का विचार कर उनमें प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार पक्षी होते हुए भी यह विवेक पूर्वक ही कार्य में प्रवृत्त हुआ है जैसे कि उसने, दायाँ हाथ उठाकर आशीर्वाद देने वाले ब्राह्मण की भाँति अपना दाहिना पैर उठाकर 'जय' शब्द कहा और तब राजा को लक्षित कर श्लेष प्रधान आर्या पढ़ी। "अतः पशुपक्षी की प्रवृत्ति से इसकी प्रवृत्ति में भिन्नता है। पशु-पक्षियों को तो मात्र आहार, निद्रा, भय और मैथुन संकेत आदि का बोध होता है तदतिरिक्त कुछ नहीं। 'संज्ञा' शब्द एवं संकेत दोनों का बोधक है अतः विद्वानों ने आहार, निद्रा, भय और मैथुन के सङ्केत मात्र को जानने वाले ऐसा अर्थ किया है।

**इत्युक्तवति भुभुजि कुमारपालितः किञ्चित् स्मितवदनो नृपमवादीत् —देव! किमत्र चित्रम्? एते हि शुकसारिका प्रभतयो विहङ्गविशेषा यथाश्रुतां वाचमुच्चारयन्तीत्यधिगतमेव देवेन। तत्राप्यन्यजन्मोपात्तसंस्कारानुबन्धेन वा पुरुष प्रयत्नेन वा संस्कारातिशय उपजायत इति नाति चित्रम्। अन्यच्च, एतेषामपि पुरा पुरुषाणामिवातिपरिस्फुटाक्षरा वागासीत्, अग्निशापात्त्वस्फुटालापता शुकानामुपजाता, करिणां च जिह्वा परिवृत्तिः।**

**शब्दार्थ**—**इत्युक्तवति**=ऐसा कहने पर **भूभुजि**=राजा शूद्रक के। **कुमारपालितः किञ्चित् स्मितवदनः**=कुमारपालित (मन्त्री) ने कुछ मुस्कराते हुए **नृपम्** = राजा से **अवादीत्**=कहा। **देव!** =हे महाराज! **किमत्र चित्रम्**=इसमें आश्चर्य की क्या बात है? **एतेहि**=क्योंकि ये **शुकसारिकाप्रभृतयः**=तोता-मैना आदि **विहङ्गविशेषाः**=विशेष पक्षी **यथाश्रुताम्**=जैसी (दूसरे के मुख से) सुनते हैं वैसी ही, **वाचम् उच्चारयन्ति**=वाणी का उच्चारण कर देते हैं। **इति अधिगतम् एव**=यह विदित ही है। **देवेन**=आपको। **तत्रापि**=उसमें भी **अन्यजन्मोपात्तसंस्कारानुबन्धेन**= अन्य जन्मों अर्थात् अपने पूर्वजन्मों में अर्जित किये गये संस्कारों के प्रभाव से **वा**= अथवा, **पुरुषप्रयत्नेन**=व्यक्ति विशेष के द्वारा किये गये प्रयत्नों से अर्थात् शुकादि को प्रयत्न पूर्व पढ़ाने आदि प्रयासों से **संस्कारातिशयः**=संस्कार का आधिक्य, **उपजायते** उत्पन्न हो जाता है **इति नातिचित्रम्**=यह बहुत आश्चर्य (की बात) नहीं है। **अन्यच्च** =और भी, **एतेषामपि**=इन पक्षियों की भी **पुरा**=पहले **पुरुषाणाम् इव**=मनुष्यों के समान ही **अतिपरिस्फुटाक्षरा**=अत्यन्त स्पष्ट वर्णों वाली अर्थात् अतिस्पष्ट उच्चारण करने वाली, **वाग्**=वाणी **आसीत्**=थी **अग्निशापात्तु**=अग्निदेव के शाप से तो **अस्फुटालापता**=अस्पष्ट उच्चारणता, **शुकानामुपजाता**=तोतों की हो गई। **करिणाञ्च**=और हाथियों की, **जिह्वापरिवृत्तिः**=जीभ (जिह्वा) उलट गई अर्थात् कण्ठ की ओर मुड़ गई।

**अनुवाद**—राजा के इस (पूर्वोक्त) प्रकार से कहने पर कुमारपालित ने कुछ मुस्कराते हुए राजा से कहा—"महाराज! इसमें आश्चर्य क्या है? ये तोता-मैना आदि विशेष पक्षी सुनी हुई बातों का ठीक वैसा ही उच्चारण कर देते हैं। यह श्रीमान् आपको ज्ञात ही है। उसमें भी पूर्वजन्मार्जित संस्कारों के प्रभाव अथवा (इस जन्म में)

किसी व्यक्ति के प्रयास से (पढ़ाने से) (उनके अनुकरणात्मक) संस्कार और अधिक दृढ़ हो जाता है यह विशेष आश्चर्य नहीं है। और भी, पहले मनुष्यों के समान ही इन पक्षियों में भी वर्णों का स्पष्टोच्चारण करने वाली वाणी थी। अग्निदेव के शाप से तोतों की स्पष्टोच्चारण क्षमता नष्ट हो गई और हाथियों की जिह्वा उलट गई अर्थात् कण्ठ की ओर मुड़ गई।

भावार्थ—कुमारपालित ने राजा के आश्चर्य को कम करने के लिए बतलाया कि तोता-मैना अनुकरणशील पक्षी हैं वे किसी के कहे हुए शब्दों को ज्यों का त्यों उच्चारण कर सकते हैं। कुछ तो पूर्वजन्म के संस्कार से और कुछ किसी के सिखाने से उनकी यह अनुकरण की अर्थात् उच्चारण की कला और अधिक परिष्कृत हो जाती है। पहले मनुष्यों की तरह ही ये पक्षी भी स्पष्ट वाणी बोलने वाले थे किन्तु शुकों की स्पष्टोच्चारण क्षमता में अग्निदेव के शाप के कारण कमी आ गई इसी प्रकार हाथियों की जिह्वा का उलट जाना भी शाप का ही परिणाम है।

**संस्कृत व्याख्या—भूभुजि**=भुवं भुनक्तीति भूभुक् तस्मिन् राज्ञि शूद्रके, **इति** पूर्वोक्तम् **उक्तवति** कथिते सति, **कुमारपालितः** एतन्नामा महामात्यः, **किञ्चित्स्मितवदनः** किञ्चिद् ईषत् स्मितं वदनं यस्य सः किञ्चिद् हास्यमुखः सन्, **नृपम्** राजानम् **अवादीत्** अवोचत्, **देव !** हे महाराज ! **किमत्र चित्रम्**=अस्मिन् शुकोदितविषये किमाश्चर्यम् न किमपीति काक्वा व्यज्यते यतः एते **शुकसारिका प्रभृतयः** शुकाः कीरपदवाच्याः सारिकाः पीतचरणाः पक्षि विशेषाः (मैना इति हिन्द्याम्) प्रभृतय एतदाद्याः **विहङ्गविशेषाः** पक्षिविशेषाः **यथाश्रुताम्** अन्यमुखात् श्रुतामर्थप्रतीतिरहिताम् **वाचम्** वाणीम् **उच्चारयन्ति** उद्गिरन्ति इति इदम् **देवेन** स्वामिना **अधिगतम् एव** ज्ञातमेव। **तत्रापि** पूर्वोदितायां वाचि **अन्यजन्मोपात्तसंस्कारानुबन्धेन**—अन्यजन्मनि जन्मान्तरे पूर्वजन्मनीत्यर्थः उपात्तस्य गृहीतस्य संस्कारस्य वासनायाः अनुबन्धेन प्रभावेण तथोक्तेन, **पुरुषप्रयत्नेन वा** परिपालकजनकृतपाठनोद्योगेन वा **संस्कारातिशयः** शुकादीनां संस्कारेषु अतिशयः दाढ्यंम्, **उपजायते** उत्पद्यते इतिहेतोः **नातिचित्रम्** शुकोच्चारणे नातीवाश्चर्यम्। **अन्यच्च** अपरञ्चात्र कारणम् **एतेषाम्** अपि शुक सारिकादीनाम् अपि **पुरा** पूर्वकाले **पुरुषाणामिव** मनुष्याणामिव **अतिपरिस्फुटाक्षरा** अति अत्यधिकं यथा स्यात्तथा परिस्फुटानि अतिस्पष्टानि अक्षराणि वर्णाः यस्यामेवम्भूता **वाक्** वाणी **आसीत्**, **तु** किन्तु **अग्निशापात्** अग्निदेवस्य शापकारणात् **अस्फुटालापता** अस्फुटः आलापः यत्र अस्फुलापः तस्य भावस्तत्ता अस्पष्टोच्चारणता **शुकानाम्** कीराणाम् **उपजाता** उत्पन्ना। **करिणाञ्च** हस्तिनाञ्च **जिह्वापरिवृत्तिः** जिह्वायाः रसनायाः परिवृत्तिः वैपरीत्येनावस्थितिः।

**संस्कृत सरलार्थ**—राज्ञि शूद्रके पूर्वोक्तप्रकारेण कथितवति, ईषद्हास्यमुखः कुमारपालितामात्यो राजानमवोचत्—हे महाराज ! भवद्भिरिदं ज्ञातमेव यदिमे शुक सारिकादिपक्षिणः अन्योदितां वाचं श्रुत्वा तद्वदेवोच्चारणं कर्तुं समर्थाः। तत्रापि पूर्व जन्मोपार्जित संस्कारवशाद्वा पालकपुरुषपाठनाद्युद्योगेन वा तेषां संस्कारो दृढीभवति अर्थात् स्पष्टोच्चारणे क्षमताधिक्यं जायते। अतः इदं वृत्तं नातीवाश्चर्य जनकम्। अन्यच्चात्र कारणम् यत् प्राचीनकाले शुकादि पक्षिणां वाक् अपि मनुष्यवत् स्पष्टोच्चारण समर्था आसीत् किन्तु अग्निदेवस्य शापवशात् शुकानां स्पष्टोच्चारण क्षमता विनष्टा हस्तिनाञ्च जिह्वा एव परिवर्तिता।

**विशेष—भूभुजि**—भुवं भुनक्तीति भूभुक्, तस्मिन्. पृथ्वी का भोग करने

वाले राजा के। **एतेषामपि पुरा····परिवृत्तिः**–'इस वाक्य में महाभारत के एक कथानक का संकेत है तदनुसार—"एक बार तारकासुर से पीड़ित देवता ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्मा जी ने अग्निपुत्र कार्तिकेय के द्वारा उसके बध का कथन कर अग्नि को खोजकर कार्तिकेय को माँगने का निर्देश दिया। खोजने पर भी जब अग्नि नहीं मिला तो देवताओं ने एक हाथी से पूछा, हाथी ने पीपल वृक्ष में अग्नि के छुपे होने की सूचना दी तो अग्नि ने क्रुद्ध होकर उसकी जीभ उलट जाने का शाप दिया और अन्तर्धान हो गया। पुनः देवताओं ने तोते से पूछा। तोते ने समी वृक्ष में अग्नि के छिपे होने की सूचना दी जिससे, क्रुद्ध अग्नि ने प्रकट होकर तोते को अस्पष्ट वाणी हो जाने का शाप दिया था।" तभी से तोता स्पष्ट बोलने में असमर्थ हो गया और हाथी की जीभ उल्टी हो जाने से वह वर्णोच्चारण में सर्वथा असमर्थ हो गया। ●

**इत्येवमुच्चारयत्येव तस्मिन्नशिशिर किरणमम्बरतलस्य मध्यमारूढ मावेदयन्, नाडिकाच्छेद प्रहत पटुपटह नादानुसारी मध्याह्नशंखध्वनिरुदतिष्ठत्। तमाकर्ण्य च समासन्नस्नानसमयो विसर्जितराजलोकः क्षितिपतिरास्थानमण्डपादुत्तस्थौ।**

**शब्दार्थ**—**इत्येवम्**=इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से, **उच्चारयति एव**=उच्चारण करते हुए अर्थात् कहते ही **तस्मिन्**=उन कुमारपालित के, **अशिशिर किरणम्**=उष्णरश्मि वाले अर्थात् सूर्य को **अम्बरतलस्य**=आकाश के **मध्यम्**=मध्य में **आरूढम्**=चढ़े हुए अर्थात् पहुँच गये हुये। **आवेदयन्**=बतलाते हुए अर्थात् सूचना देते हुए, **नाडिकाच्छेद प्रहतपटुपटहनादानुसारी**=नाडिका=घड़ी (सभा की कार्यवाही समाप्त होने के समय की सूचना देने वाली घड़ी अर्थात् समय) के **छेद**=समाप्त होने पर **प्रहत**=बजाये गये **पटुपटह**=विशाल नगाड़े की **नाद**=ध्वनि का **अनुसारी**=अनुसरण करने वाला अर्थात् साथ ही। **मध्याह्नशङ्खध्वनिः** दोपहर के शङ्ख का शब्द **उदतिष्ठत्**=उत्पन्न हो गया अर्थात् बज उठा। **तम्**=उस ध्वनि को **आकर्ण्य**=सुन कर **समासन्नस्नानसमयः**=जिसके स्नान का समय अति समीप था, **विसर्जितराजलोकः**=और जिसने समस्त सामन्त राजसमुदाय को विदा कर दिया था, ऐसा **क्षितिपतिः**=राजा शूद्रक, **आस्थानमण्डपात्**=सभा मण्डप से, **उत्तस्थौ**=उठ खड़ा हुआ।

**अनुवाद**—उस कुमारपालित के इस प्रकार कहते ही, उष्णरश्मि (सूर्य) के आकाश के मध्य में पहुँच जाने की सूचना देते हुए सभासमापन की घड़ी बीत जाने पर बजाये गये विशाल नगाड़े की ध्वनि का अनुसरण करने वाली मध्याह्नकालिका शङ्ख की ध्वनि उठी। उसे सुनकर स्नान का समय अति समीप है (यह जानकर) समस्त सामन्त राजमण्डल को विदाकर राजा शूद्रक सभा मण्डप से उठ खड़े हुए।

**भावार्थ**—राजसभाओं के संचालन के लिए विभिन्न समयों की सूचना देने वाले वाद्य यन्त्रों में राजा के स्नान एवं दोपहर के समय की सूचना देने वाले नगाड़े एवं शंखध्वनि को सुनते ही राजा सभी राजसमाज को विदा दे स्नान का समय समीप जानकर, आस्थानमण्डप से चल दिये।

**संस्कृत व्याख्या**—**तस्मिन्** अमात्ये कुमारपालिते इत्येवं पूर्वोक्त प्रकारेण उच्चारयत्येव कथयत्येव, **अशिशिरकिरणम्** न शिशिराणीत्यशिशिराणि उष्णानि किरणानि रश्मयो यस्य स तम् सूर्यम् **अम्बरतलस्य** आकाशस्य **मध्यम्** मध्यभागम् **आरूढम्**

प्राप्तम् आवेदयन् सूचयन्, **नाडिकाच्छेद प्रहत पटुपटहनादानुसारी**—नाडिका सभा समाप्ति सूचिका घटिका तस्या घटिकायाः छेदे समाप्तौ प्रहतः ताडितः यः पटुर्महान् पटहः दुन्दुभिस्तस्य नादः शब्द स्तमनुसर्तुं शीलं यस्य स तादृशः, **मध्याह्नशङ्खध्वनिः** मध्याह्नद्योतकः शङ्खस्य जलजस्य ध्वनिः शब्दः उदतिष्ठत् उत्पन्नोऽभूत् **तम् ध्वनिम् आकर्ण्य** च श्रुत्वा च **समासन्नस्नानसमयः** समासन्नः सन्निकटः स्नान समयः अवगाहन-कालः यस्य सः तथोक्त **विसर्जितराजलोकः** विसर्जितः निर्वर्तितः राजलोकः सामन्तनृप-समुदायः परिजन जनो वा येन स तादृशः, **क्षितिपतिः** क्षितेः पृथिव्याः पतिः स्वामीति क्षितिपतिः राजा शूद्रकः **आस्थानमण्डपात्**—आ समन्तात् स्थीयतेऽस्मिन्निति आस्थानं तस्य मण्डपात् सभास्थलात् सभा भवनात् वा **उत्तस्थौ** उत्थितवान् ।

**संस्कृत सरलार्थः**—अमात्ये कुमारपालिते स्वविचारान् प्रकटयत्येव, सूर्यो मध्याकाशं प्राप्तः इति सूचयन् सभाभङ्ग समय समाप्तौ वाद्यमानस्य दुन्दुभेः ध्वनि ना सहैव मध्याह्नकालिक शङ्खध्वनिरुत्पन्नोऽभूत् । तं ध्वनिं श्रुत्वा राजा स्नानवेला सन्नि-कटेति ज्ञात्वा समस्त राजसमुदयं विसृज्य सभामण्डपात् उत्थितवान् ।

**विशेष—नाडिकाच्छेद**=समय समाप्ति सूचक घड़ी, इससे ज्ञात होता है कि बाण के समय राजदरबार में समय की सूचना देने के लिए प्रत्येक घड़ी की समाप्ति पर नगाड़े, शंख आदि बजाये जाते थे । **उदतिष्ठत्**—उत्+स्था+लङ् प्रथम पुरुष एकवचन । **उत्तस्थौ**—उत्+स्था+लिट् प्रथम पुरुष एकवचन । **विसर्जितराजलोकः**= विसर्जितः राज्ञां लोकः येन सः राजसमुदाय को विदा देने वाला (राजा) यहाँ राज शब्द सामन्त राजाओं एवं समस्त सभासदों का परिचायक है। **पटुपटहः**—विशाल नगाड़ा, नादानुसारी=वादमनुसर्तुं शीलमस्यास्तीतिनाद+अनु+सृ कर्तरि ताच्छील्ये णिनि आस्थानमण्डप=सभा भवन—समज्या परिषद् गोष्ठी सभा समिति संसदः, आस्थानी क्लीवमास्थानं स्त्रीनुपुंसकयों सदः' इत्यमरः ।

## सभाभंगवर्णनम्

**"अथ चलति महीपतावन्योन्य मतिरभसञ्चलन चालिताङ्गद पत्रभङ्ग मकरकोटि पाटितानेकपटानाम्, आक्षेप दोलायमान कण्ठदाम्नाम् अंसस्थलो-ल्लसित कुंकुमपटवासधूलिपटल पिंजरीकृतदिशाम्, आलोलमालती कुसुमशेख रोत्पतदलिकदम्बकानाम् अर्द्धावलम्बिभिः कर्णोत्पलैश्चुम्ब्यमानगण्डस्थलानाम्, गमन प्रणाम लालसानाम्, अहमहमिकया वक्षःस्थल प्रेङ्खोलित हारलतानाम्, उत्तिष्ठतामासीदतिमहान् सम्भ्रमो महीपतीनाम् ।**

**शब्दार्थ—अथ**=राजा के उठने के बाद, **चलति महीपतौ**=राजा के चल देने पर, **अन्योन्यम्**=आपस में, **अतिरभस सञ्चलनचालिताङ्गदपत्रभङ्गमकरकोटिपाटि-तानेकपटानाम्**=**अतिरभस**=अत्यन्त वेग से, **सञ्चलन**=चलने के कारण, **चालित**= अपने स्थान से हिलाये गये, **अङ्गदपत्रभङ्ग**=बाजूबन्दों की पत्र रचना में (उत्कीर्ण) **मकरकोटि**=मछलियों की नोक से, **पाटित**=फटे हुए **अनेकपटानाम्**=अनेकों रेशमी वस्त्रों वाले, **आक्षेपदोलायमान कण्ठदाम्नाम्**—**आक्षेप**=आपस में टकराने से, **दोलायमान**=झूलने लगी अर्थात् हिलने लगी, **कण्ठदाम्नाम्**=गले की मालाएँ जिनकी **अंसस्थलोल्लसित कुंकुमपटवासधूलिपटलपिंजरीकृतदिशाम्**=**अंसस्थल**=स्कन्धों से, **उल्लसित**=उड़ी हुई, **कुंकुम**=केसर, **पटवास** सुगन्धित चूर्ण (पाउडर) की, **धूलिपटल**

=धूलि समूह से, पिंजरीकृत=लाल पीली हो गई, **दिशाम्**=दिशाओं वाले, **आलोल-मालती कुसुमशेखरोत्पतदलि कदम्बकानाम्**=आलोल=हिलते हुए, **मालतीकुसुमशेखर**=चमेली के फूलों से बने मुकुटों पर, **उत्पतत्**=उड़ते हुए, **अलिकदम्बकानाम्**=भौरों के झुण्डों वाले; **अर्द्धावलम्बिभिः**=आधे लटके हुए, **कर्णोत्पलैः**=कानों में पहने गये कमलों से, **चुम्ब्यमानगण्डस्थलानाम्**—चुम्बित या स्पृष्ट कपोल स्थलों वाले, **गमन-प्रणामलालसानाम्**=प्रस्थान के समय (राजा को) प्रणाम करने की अभिलाषा वाले, **अहमहमिकया**=मैं पहले, मैं पहले (प्रणाम करूँ) इस प्रयत्न से, **वक्षःस्थल प्रेङ्खोलित हारलतानाम्**=वक्षःस्थलों पर आन्दोलित मुक्तामालाओं वाले, **उत्तिष्ठताम्**=(आसनों से) उठ खड़े होने वाले, **महीपतीनाम्**=सामन्त राजाओं की, **अतिमहान्**=बहुत अधिक, **सम्भ्रमः** खलबली, **आसीत्** हो गई थी ।

**अनुवाद**—उठने के बाद राजा के चल देने पर, (सभा मण्डप से) उठते हुए उन सामन्त राजाओं के बीच परस्पर अत्यधिक खलबली मच गई थी, जो कि अतिवेग से चलने के कारण सञ्चालित केयूरों की पत्र रचना में (उत्कीर्ण) मत्स्यों की नोकों से अनेक फटे हुए रेशमी वस्त्रों वाले, आपस में टकराने के कारण आन्दोलित कण्ठ मालाओं वाले, स्कन्ध भागों से उड़े हुए केसर तथा सुगन्धित चूर्ण के धूलिसमूह से दिशाओं को लाल-पीली कर देने वाले, अत्यधिक हिलने वाले मालती पुष्पों के शिरो-भूषणों के ऊपर उड़ते हुए भ्रमरों के झुण्ड वाले, आधे लटकते हुए कानों के कमलों द्वारा स्पृश्यमान कपोल स्थलों वाले, (राजा के) प्रस्थान के समय प्रणाम की लालसा रखने वाले (और जोकि) मैं पहले, इस प्रकार की अहमहमिका द्वारा वक्षःस्थलों पर आन्दोलित मुक्ताहारों वाले थे ।

**भावार्थ**—राजा शूद्रक के चलते ही अन्य सामन्त राजा भी अपने आसनों से उठ खड़े हुए और चलते समय मैं पहले प्रणाम करूँ इस भावना से वे सभी एक-दूसरे से टकराकर आगे पहुँचने की कोशिश करने लगे जिससे अनेकों के वस्त्र दूसरों के बाजूबन्दों की मकराकृति में उलझ कर फट गये, हारलताएँ, कर्णाभूषण के कमल झूलने लगे एवं उनके शरीर में केशर आदि के लगाये गये अङ्गराग की उड़ती हुई धूल से दिशाएँ मानो लाल-पीली पड़ने लगीं तथा मुकुटों में लगे चमेली के फूलों की सुगन्ध में डूबे भ्रमर समुदाय हड़बड़ा कर उड़ने लगे । इस प्रकार की वहाँ खलबली-सी मच गई थी ।

**संस्कृत व्याख्या**—अथ राज्ञः उत्थानानन्तरम् **महीपतौ** राजनि शूद्रके, **चलति** सभामण्डपात्प्रस्थातुमारभमाणे सत्येव, **उत्तिष्ठताम्** उत्थानं कुर्वताम् स्वासनं परित्य-ज्योत्थितानामित्याशयः, **महीपतीनाम्** सामन्त नृपतीनाम्, **अन्योन्यं** परस्परम्, **अति-महान्**—अत्यधिकः सम्भ्रमः सम्मर्दः आसीदिति वाक्यसम्बन्धः । अत्र षष्ठ्यन्तानि पदानि 'महीपतीनाम्' इति पदस्य विशेषणानीति ज्ञेयम् । **अतिरभस सञ्चलन चालिता-ङ्गदपत्रभङ्गमकरकोटिपाटितानेकपटानाम्**—अतिरभसेनात्यधिक वेगेन यत् सञ्चलनम् गमनं तेन चालितानि स्वस्थानात्प्रच्युतानि यान्यङ्गदानि केयूराणि तेषां पत्रभङ्गेषु पत्ररचनासु ये मकराः उत्कीर्णाः झषादिजलन्तवस्तेषां कोटिभिरग्रभागैः पाटिताः विदा-रिता छिन्नाः अनेकपटाः बहुवस्त्राणि येषां तेषाम्, तथोक्तानाम्, **आक्षेपदोलायमान कण्ठदाम्नाम्**—आक्षेपेण परस्पर शरीरसंघट्टेन दोलायमानानि चंचलीभूतानि कण्ठ-दामानि कण्ठहारा येषां तेषाम्, तथोक्तानाम् **अंसस्थलोल्लसित कुङ्कुमपटवासधूलि पटलपिञ्जरीकृतदिशाम्**—अंसस्थलेभ्यः स्कन्ध प्रदेशेभ्यः उल्लसितानि उत्थितानि

यानि कुङ्कुमानि केसराणि, पटवासः सुगन्धित चूर्णविशेषः पिष्टातक इत्यर्थः तयोर्धूलि पटलेन परागसमुदायेन पिञ्जरीकृताः पीतरक्तवर्णीकृताः दिशः आशाः दिग्भागाः यैस्तेषाम् तथोक्तानाम्, **आलोलमालतीकुसुम शेखरोत्पतदलिकदम्बकानाम्**—आलोलाः आ समन्तात् लोलाः चञ्चलाः ये मालतीकुसुमानां जातिपुष्पाणां शेखराः शिरोभूषणानि तदुपरि उत्पतन्तः उड्डीयमाना अलिकदम्बाः भ्रमरसमूहा येषां तेषाम् तथोक्तानाम्, **अर्द्धावलम्बिभिः** अर्द्धप्रदेशलग्नैः **कर्णोत्पलैः** श्रवणकमलैः श्रवणाभरणरूपैः कमलैरित्यर्थः **चुम्ब्यमानगण्डस्थलानाम्**—चुम्ब्यमानानि स्पृश्यमानानि गण्डस्थलानि कपोलप्रान्ताः येषान्तेषाम् तथोक्तानाम्, **गमनप्रणामलालसानाम्** गमने राज्ञः प्रस्थान समये प्राणामाय नमस्कांराय लालसानाम् अतिस्पृहावताम् तथोक्तानाम्, **अहमहमिकया**—अहं पूर्वमहं पूर्वमिति अहमहमिका तथा स्पर्धया उत्कण्ठया वा **वक्षःस्थलप्रेङ्खोलित हारलतानाम्**—वक्षःस्थले भुजान्तरे रेङ्खोलिता आन्दोलिताः हारलताः मुक्ताफलमालाः येषान्तेषाम् उरस्थले दोलायमान मुक्ताहाराणाम् तेषां महीपतीनाम् अतिमहान् सम्भ्रमः आसीत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—राजसभामण्डपात् प्रस्थानं कुर्वत्येव राजनि शूद्रके, स्वस्वासनेभ्यः समुत्तिष्ठताम् सामन्तनृपाणा मध्ये तत्राति महान् सम्मर्दः समभूत् । तत्र अतिवेगेन चलनात् स्वस्थानेभ्यः प्रच्युतानां केयूराणां पत्ररचनासु समुत्कीर्णझषादि जलजन्तूनामग्रभागै र्बहूनां वस्त्राणि छिन्नानि, परस्पर शरीरसंघट्टात् तेषां कण्ठहारा अपि सञ्चलिताः तेषां स्कन्ध स्थलेभ्यः उत्थितस्य केसरस्य सुगन्धित पिष्टातकस्य च धूलि समूहेन दिग्भागाः पिञ्जरीभूताः, तेषां शिरोमुकुटेषु पिनद्धचञ्चलमालती पुष्पेभ्योऽलिसमूहा, उड्डीयमाना बभूवुः, अर्द्धप्रलम्बमानैः कर्णकमलै स्तेषां कपोलस्थलानि स्पृष्टानि राज्ञः प्रस्थानसमये प्रणामाय अहं पूर्वम् अहं पूर्वम् इति स्पर्धया चलितानां तेषां वक्षः स्थलेषु मौक्तिकमाला आन्दोलिता जाताः इत्यं तत्र महान् सम्मर्द आसीदिति ।

**विशेष**—इस वाक्य में मुख्य वाक्य का अन्वय इस प्रकार है—"अथ महीपतौ चलति उत्तिष्ठताम् महीपतीनाम् अतिमहान् सम्भ्रम आसीत्" । समस्त षष्ठी विभक्त्यन्त पद 'महीपतीनाम्' के विशेषण हैं । **रभस**=वेग, **पत्रभङ्ग**=किसी आभूषण में सौन्दर्य के लिए उसमें की गई नक्काशी या मोती आदि की जड़ाई । **अङ्गद**—बाजूबन्द, जो हाथों में कुहनी के ऊपर पहना जाता है । प्राचीन काल में राजा लोग अनेक प्रकार के कान, गले, हाथों एवं पैरों में आभूषण पहना करते थे । **पटवास**—एक विशेष प्रकार का सौन्दर्यवर्धक सुगन्धित चूर्ण (पाउडर) **पिञ्जरीकृतदिशाम्**—चूर्ण से दिशाएँ पीली कर देने वाली इस कथन में उत्प्रेक्षा व्यङ्ग्य है "मानो दिशाएँ पीली हो गई थीं" । **अहमहकिया**—मैं पहले मैं पहले की भावना का नाम अहमहमिका है । "अहं पूर्वमहं पूर्वमिति अहमहमिका तया" । "अहमहमिका तु सा स्यात् परस्परं यो भवत्यहङ्कारः" । **प्रेङ्खोलित**=हिलाई हुई । **सम्भ्रमः**—सम् + भ्रम् + घञ् =हड़बड़ाहट, भीड़ ।

**इतश्चेतश्च निष्पतन्तीनां स्कन्धावसक्त चामराणां चामरग्राहिणीनां कमलमधुपानमत्त जरत्कलहंस नाद जर्जरितेन पदे-पदे रणितमणीनां मणिनूपुराणां निनादेन, वारविलासिनी जनस्य संचरतो जघनस्थलास्फालन रसित रत्न मालिकानां मेखलानां मनोहारिण झंकारेण, नूपुरखाकृष्टानाञ्च धवलितास्थानमण्डप सोपानफलकानां भवनदीर्घिकाकलहंसकानां कोलाहलेन, रशनारसितोत्सुकानाञ्च तारतर विराविणामुल्लिख्यमान कांस्यकेङ्कारदीर्घेण**

**गृहसारसानां कूजितेन, सरभसप्रचलितसामन्तशतचरणतलाभिहतस्य आस्थानमण्डपस्य निर्घोषगम्भीरेण कम्पयतेव वसुमतीं ध्वनिना……।**

**शब्दार्थ**—**इतश्चेतश्च**=इधर-उधर से **निष्पतन्तीनाम्**=(भीड़ के कारण) लड़खड़ाती हुई, **स्कन्धावसक्तचामराणाम्**=कन्धे पर चँवर धारण किये हुये, **चामरग्राहिणीनाम्**=चँवर डुलाने वाली स्त्रियों के, **पदे-पदे** पग-पग पर, **रणितमणीनाम्**=खनकती हुई मणियों वाले, **मणि**=**नूपुराणाम्**=मणिजटित नूपुरों के, **कमलमधुपानमत्तजरत्कलहंसनादजर्जरितेन**=कमलों का मधु अर्थात् पद्मरस के **पान**=पीने से **मत्त**=मतवाले हुए, **जरत्कलहंस**—वृद्ध राजहंसों के **नादजर्जरितेन**=स्वर के समान जर्जरित अर्थात् पृथक्-पृथक् सुनाई देने वाले, **निनादेन**=स्वर से, **सञ्चरतः**=चलते हुए, **वारविलासिनीजनस्य**=वेश्या जन के, **जघनस्थलास्फालनरसितरत्नमालिकानाम्**=**जघनस्थल**=कटिपुरोभागो के, **आस्फालन**=अत्यधिक चलाने के कारण **रसित**=बजती हुई, **रत्नमालिकानाम्**=रत्नों की लड़ियों वाली, **मेखलानाम्**=करधनियों की **मनोहारिणा**=मन को आकर्षित करने वाली **झङ्कारेण**=झङ्कार से ; **नूपुररवाकृष्टानाञ्च**=और नूपुरों की ध्वनि से आकृष्ट हुए, **धवलितास्थानमण्डपसोपानफलकानाम्**=**धवलित**=श्वेतवर्ण कर देने वाले, **आस्थानमण्डप**=सभा भवन की **सोपानफलकानाम्**=सीढ़ियों को, **भवनदीर्घिकाकलहंसकानाम्**=घर की बावड़ी (भवनदीर्घिका) के सुन्दर हंसों के **कोलाहलेन**=शोर (कोलाहल) से ; **रशनारसितोत्सुकानाञ्च**=**रशना**=करधनी के **रसित**=शब्द से, **उत्सुकानाम्**=चकित हुए **तारतर विराविणाम्**=और अधिक तेज स्वर में कूजने वाले, गृहसारसानाम्=घरेलू सारसों की, **उल्लिख्यमानकांस्यकेङ्कारदीर्घेण**=**उल्लिख्यमान**=घिसे जाते हुए (खराद पर चढ़ाकर घिसे जाते हुए) **कांस्य**=कांसे के (बर्तन) **केङ्कारदीर्घेण**=कें कें ध्वनि के समान तीव्र, **कूजितेन**=कूजन से, **सरभस प्रचलित सामन्त शतचरणतलाभिहतस्य**, **सरभस**=वेगपूर्वक **प्रचलित**=चलने वाले **सामन्तशतचरणतल**, सैकड़ों सामन्त राजाओं के पैरों से, **अभिहतस्य**—ताडित **आस्थानमण्डपस्य**=सभाभवन की, **निर्घोषगम्भीरेण**=वज्र की गर्जना के समान गम्भीर **वसुमतीम्**=पृथ्वी को **कम्पयता इव**=मानों कपा देने वाली **ध्वनिना**=ध्वनि से (क्षुभितमिव तदास्थानभवनमभवत्=वह सभा भवन व्याकुल-सा हो उठा ।

**अनुवाद**—इधर-उधर से (भीड़ के कारण) लड़खड़ाकर चलने वालीं, कन्धों पर चँवर रखे हुए चँवर डुलाने वाली स्त्रियों के प्रत्येक पग पर बजती हुई मणियों वाले, मणि जटित नूपुरों के, कमलरस पीने से मतवाले वृद्ध राजहंसों के नाद के समान पृथक्-पृथक् श्रूयमाण निनाद से, चलती हुई वेश्याओं के कटिपुरोभागों से टकराने से बजती हुई रत्नों की लड़ियों वाली करधनियों की झंकार से, (नूपुरों) के शब्द से आकृष्ट हुए, सभा भवन की सीढ़ियों के फलकों (पट्टों) को श्वेत वर्ण बना देने वाले, घर की बावड़ी के सुन्दर हंसों के कोलाहल से, करधनियों की ध्वनि से उत्कण्ठित हुए (अतएव) और अधिक ऊँचे स्वर में बोलने वाले घरेलू सारसों के (खराद पर) घिसे जाते हुए कांसे (फूल के बर्तनों) की कें-कें ध्वनि के समान तेज कूजने से, वेगपूर्वक चलने वाले सैकड़ों सामन्त राजाओं के पैरों (की धमक) से ताडित सभामण्डल की पृथ्वी को कंपाते हुए से वज्र जैसी गम्भीर ध्वनि से…. ।

**भावार्थ**—राजा शूद्रक के उठते ही सभाभवन में जो खलबली मच गई थी उससे चारों ओर एक महान् कोलाहल (शोर-शराबा) होने लगा जिससे वह सभा

भवन व्याकुल-सा हो गया। उस कोलाहल में मुख्यतः—चामरधारिणी स्त्रियों की नूपुरध्वनि, जो कमलरस पीने वाले वृद्ध हंस की ध्वनि जैसी मधुर थी, इधर-उधर घूमती वेश्याओं की करधनी की ध्वनि जो नितम्बों पर टकराकर रत्नों के बजने से उत्पन्न हुई थी, घरेलू बावड़ी में पले सभाभवन की सीढ़ियों पर बैठे, वेश्याओं के नुपूरध्वनि से आकृष्ट हुए सुन्दर हंसों की कोलाहल ध्वनि, करधनियों की झनझनाहट से उत्कण्ठित उच्च स्वर में बोलने वाले कांसे के पात्र की घर्षण ध्वनि के समान गृह सारसों की कें-कें ध्वनि एवं बड़े वेग से चलने वाले सामन्त राजाओं के पैरों की धमक से उत्पन्न सभाभवन की बज्रघोष जैसी ध्वनियाँ थीं जो मानों पृथ्वी को कम्पित कर रही थीं।

संस्कृत व्याख्या—(तत् आस्थानमण्डपं तदा क्षुभितमिवाभवत् इति वक्ष्यमाण क्रिययाऽन्वयः। इतश्चेतश्च सम्मर्दवशादितस्ततो निष्पतन्तीनाम् स्खलन्तीनां स्कन्धावसक्तचामराणाम् स्कन्धेषु अंशस्थलेषु अवसक्तानि विन्यस्तानि चामराणि बाल व्यजनानि यासां तासाम तयोक्तानाम्, चामरग्राहिणीनाम् चामराणि ग्रहीतुं शीलं यासां तासां चामरधारिणीनां योषिताम्, कमलमधुपानमत्तजरत्कलहंस नादजर्जरितेन—कमलानां पद्मानां मधु रसं तस्य पानेन = आस्वादेन मत्ताः मदमुपगता ये जरत्कलहंसाः वृद्ध कलहंसाः तेषां नादः कण्ठशब्दः तद्वत् जर्जरितेन पृथक्-पृथक् रूपेण श्रूयमाणेन, पदे-पदे प्रतिपदं, रणितमणीनाम् रणिताः शब्दायमानाः मणयः वैडूर्यादयः येषु तथाविधानां मणिनूपुराणाम् मणिजटित पादकटकानां निनादेन शब्देन ; सञ्चरतः गच्छतः वारविलासिनीजनस्य वेश्यासमूहस्य जघनस्थलास्फालनरसितरत्नमालिकानाम्—जघनस्थलानाम् कटिपुरोभागानाम् आस्फालनेन शीघ्रगमनतया संवेगसञ्चालनेन रसिताः शब्दायमानाः रत्नमालिकाः मणिमालाः यासामेवंविधानां मेखलानां काञ्चीनां मनोहारिणा चित्ताकर्षकेण झङ्कारेण झन्झनेति शब्देन, नूपुररवाकृष्टानाञ्च नूपुराणां पादकटकानां रवैः ध्वनिभिः आकृष्टानाम् तदभि मुखीभूतानाम् च, धवलितास्थान मण्डपसोपानफलकानाम्—धवलितानि स्वदेहकान्त्या श्वेतवर्णीकृतानि आस्थानमण्डपस्य सभाभवनस्य सोपान फलकानि आरोहण पटलानि यैस्तेषाम् तयोक्तानाम—भवनदीर्घिकाकलहंसकानाम्—भवनदीर्घिकास्थानां गृहवापीस्थानां कलहंसानाम् कोलाहलेन कलकलेन, रशनारसितोत्सुकानाञ्च—रशनानां कटि मेखलानां काञ्चीनामित्यर्थः रसितैः शब्दितैः—उत्सुकानाम् उत्कठितानां च (अतएव) तारतरविराविणाम् तारतरः उच्चैस्तरः विरावः शब्दोऽस्ति येषान्तेषाम् उच्चस्वरैः कूजनं कुर्वताम् गृहसारसाणाम् भवनस्य सारसपक्षिणाम्, उल्लिख्यमानकांस्य केङ्कारदीर्घेण—उल्लिख्यमानं घृष्यमाणं यत् कांस्यं धातुविशेषपात्रम् तस्य यत् केङ्कारः 'के-कें' इत्येवंरूपो ध्वनिस्तद्वत् दीर्घेण विस्तृतेन, तीव्रेणेति यावत् कूजितेन कूजित शब्देनास्पष्टशब्दितेनेत्यर्थः ; सरभस प्रचलित सामन्तशतचरणतलाभिहतस्य—सरभसं सवेगं प्रचलिताः गन्तुमुद्यताः ये सामन्ताः अधीनस्थ—राजानस्तेषां शतं तस्य चरणतलैः पादतलैः अभिहतस्य ताडितस्य तथोक्तस्य आस्थानमण्डपस्य उभाभवनस्य निर्घोषगम्भीरेण मेघ गर्जन वत् पुष्टशब्देन वसुमतीं पृथ्वीं कम्पयता इव क्षोभं जनयतेवेत्युत्प्रेक्षा ध्वनिना शब्देन (क्षुभितमिवास्थान मण्डपमभवदित्यग्रेणान्वयः)।

संस्कृत सरलार्थः—(सभाभवने) इतस्ततः सम्मर्दवशात्परिस्खलन्तीनाम् स्कन्धेषु चामरधारिणीनां योषितां प्रतिपदं रणितानां मणिजटितनूपुराणां कमलरसपान मत्तानां कलहंसानां नादवत् पृथक्-पृथक् श्रूयमाणेन निनादेन, अथ च—इतस्ततो

गच्छत्तीनां वेश्यानां जघनस्थलानां सञ्चालनेन शब्दितानां रत्नमालायुतानां काञ्चीनां चित्ताकर्षकेण 'झनझन' इतिध्वनिना, तथा च—वारविलासिनीनां पादकटकशब्देनाक्रुष्टानां श्वेतवर्णीकृतसभाभवनसोपानपट्टानां गृहवापीस्थकलहंसानां कोलाहलेन, अथ च काञ्चीशब्देनोत्कण्ठितानामधिकाधिकोच्चस्वरैः कजितानाम् अतएव घर्ष्यमाणकांस्यपात्राणां कें कें ध्वनिरिव तीव्रेण गृह सारसानां कूजितेन, तथा च—अतिवेगेन चलितानां सामन्तनृपतीनां चरणतलैस्ताडितस्य सभामण्डपस्य वज्रघोष इव वसुमतीं कम्पयतेव पुष्टध्वनिना, (सभामण्डपं सर्वतः क्षुभितमिवाभवदिति दूरेणान्वयः)।

**टिप्पणी—अवसक्त**—अव+सञ्ज+क्त=रखे हुए। **चामर**=चमरी नाम की पहाड़ी गाय के पूंछ के बालों से बनाया गया एक विशेष प्रकार का व्यजन (पंखा) जो राजदरबारों में राजाओं के ऊपर झला जाता था। इस कार्य के लिए पृथक् स्त्रियाँ नियुक्त होती थीं जिन्हें '**चामरग्राहिणी**' कहा जाता था। "**कमलमधुपानमत्तजरत्कलहंसनादजर्जरितेन**" इस अंश में हंसनाद इव जर्जरितेन—हंसों के स्वर के समान जर्जरित=पृथक्-पृथक् श्रूयमाण इस अर्थ में हंसनाद एवं जर्जरित में उपमानोपमेय भाव होने से लुप्तोपमा अलंकार है। **निनाद**=शब्द "शब्दे निनाद निनद" इत्यमरः। **नूपुर**=यह पैरों में पहनने का एक विशेष आभूषण होता है जो लोक भाषा में 'पायल' कहलाता है। बिछिया को भी नूपुर कहा गया है। **वारविलासिनी**=वेश्या, गणिका—"वारस्त्री गणिका वेश्या" इत्यमरः। **रसित**=ध्वनित होना, बजना। **मेखला**—यह कमर में पहने का करधनी, काञ्ची, रशना आदि नामों वाला आभूषण होता है। **आस्फालन**=आ=समन्तात् स्फालनम् आस्फालनम्=सब ओर से तेजी से घूमना, जोर से हिलना टकराना आदि। **सोपान फलक**=सीढ़ियों के पट्टे। **दीर्घिका**=बावड़ी, छोटा तालाब। **तार तर**=तार (उच्च)+तरप् प्रत्यय अर्थात् अपेक्षाकृत और अधिक उच्च, **विराव**=स्वर, कूजन। **उल्लिख्यमान**=उत्+लिख्+यत्+मतुप् घिसा जाता हुआ। **कांस्यकेङ्कार**=**कांस्य**=कांस्य नामक धातु विशेष, इसे फूल धातु भी कहते हैं। **केङ्कार**=कें कें की ध्वनि—कसेरे आदि के द्वारा कांस्य के बर्तन बनाते समय खराद पर उनको रगड़ने से "कें कें" जैसी ध्वनि होती है। **केङ्कारदीर्घेण**=केङ्कारवत्दीर्घेण कें-कें के समान दीर्घ कूजन—यहाँ लुप्तोपमा अलंकार है। **कूजित**=पंक्षियों की (अस्पष्ट) बोली=कूजितं स्याद्विहङ्गानाम् इत्यमरः"। **निर्घोष गम्भीरेण**=वज्र की गर्जना (निर्घोष) के समान गम्भीर—यहाँ लुप्तोपमा अलंकार है। **कम्पयता इव**—यहाँ क्रिया की सम्भावना होने से क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। अतः लुप्तोपमा एवं उत्प्रेक्षा का अङ्गाङ्गिभावसंकर है। **वसुमती**—वसु+मतुप्+ङीप्=रत्नों को धारण करने वाली पृथ्वी। कुल मिलाकर राजसभा भंग का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है।

**प्रतिहारिणाञ्च पुरः ससम्भ्रममुत्सारितजनानां वण्डिनां समारब्धहेलमुच्चैरुच्चारयतामालोकयतालोकयतेति तारतर दीर्घेण भवन प्रासाद कुञ्जेषूच्चरित प्रतिशब्दतया दीर्घतरतामुपगतेनालोक शब्देन, राज्ञां च ससम्भ्रमसावर्जित मौलिलोल चूडामणीनां प्रणमताममलमणि शलाकादन्तुराभिः किरीट कोटिभिरुल्लिख्यमानस्य मणिकुट्टिमस्य निःस्वनेन, प्रणामपर्य्यस्तानामतिकठिन मणिकुट्टिमनिपतन रणरणायितानाञ्च मणिकर्णपूराणां निनादेन, मङ्गलपाठकानाञ्च पुरोयायिनां जयजीवेति मङ्गलमधुर वचनानयातेन पठतां**

**दिगन्तव्यापिना कलकलेन, प्रचलितजनचरणशतसंक्षोभभयादपहाय कुसुमप्रकरमुत्पतताञ्च मधुलिहां हुङ्कृतेन, संक्षोभादतित्वरितपदप्रवृत्तैरवनिपतिभिः केयूरकोटिताडितानां क्वणित मुखर रत्नदाम्नाञ्च मणिस्तम्भानां रणितेन सर्वतः क्षुभितमिव तदास्थानभवनमभवत् ।**

**शब्दार्थ**—**प्रतीहारिणाञ्च**=और द्वारपालों के, **पुरः**=सामने, **ससम्भ्रमम्**=शीघ्रता से, **उत्सारित जनानाम्**=लोगों को हटाने वाले, **दण्डिनाम्**=दण्डधारी, **प्रमारब्धहेलम्**=खेल आरम्भपूर्वक । **उच्चैः उच्चारयताम्**=ऊँची आवाज में बोलते हुए, **आलोकयतालोकयत इति**=''देखो-देखो'' इस प्रकार, **तारतरदीर्घेण**—और अधिक उच्च, **भवनप्रासादकुञ्जेषु**=साधारण भवन और राजमहलों के कुञ्जों में, **उच्चरितप्रतिशब्दतया**=उत्पन्न प्रतिध्वनि से, **दीर्घतरताम् उपगतेन**=और अधिक दीर्घता (उच्चता) को प्राप्त, **आलोक शब्देन**=जयकारों के निनाद से । **राज्ञाञ्च**=और राजाओं के, **ससम्भ्रमावर्जित मौलिलोल चूडामणीनाम्**—सहसा (ससम्भ्रम) झुकाये गये (आवर्जित) सिर पर (मौलि) चञ्चल चूड़ामणियों वाले, **प्रणमताम्** =प्रणाम करते हुए (राजाओं के), **अमलमणिशलाकावन्धुराभिः** निर्मल (चमकीली) मणियों की सलाइयों से ऊँचे-नीचे, **किरीटकोटिभिः** मुकुटों के किनारे से, **उल्लिख्यमानस्य**=घिसे जाते हुए, **मणिकुट्टिमस्य**=मणिखचित फर्श के, **निःस्वनेन**=स्वर से । **प्रणाम पर्य्यस्तानाम्** =प्रणाम करने से फैल गये (लटक गये), **अतिकठिनमणिकुट्टिमनिपतनरणरणायितानाम्**=अत्यधिक कठोर जो मणियों का फर्श उस पर गिरने के कारण झनझनाने वाले, **मणिकर्णपूराणाम्** =मणियों के कर्णफूलों के, **निनादेन**=शब्द से । **मङ्गलपाठकानाञ्च**=और मङ्गल पाठ करने वाले, **पुरोयायिनाम्** =आगे-आगे चलने वाले, **जयजीवेति**=जय हो, चिरञ्जीव बनो इस प्रकार, **मङ्गलमधुरवचनानुयातेन**=माङ्गलिक मधुर शब्दों से अनुगमन किये जाते हुए, **पठताम्** =मङ्गल पाठकों के, **दिगन्तव्यापिना**=दिशाओं को व्याप्त कर देने वाली, **कलकलेन** ध्वनि से । **प्रचलितजनचरणशत संक्षोभभयात्**=चलने वाले (इधर-उधर आने-जाने वाले) सैकड़ों लोगों के पैरों से कुचले जाने (संक्षोभ) के भय से, **अपहाय**=छोड़कर, **कुसुम प्रकरम्**=फूलों के ढेर को, **उत्पतताञ्च**=उड़ने वाले, **मधुलिहाम्** =भौंरों के, **हुङ्कृतेन**=हुङ्कार से । **संक्षोभात्**=अकुलता वश, **अतित्वरितपदप्रवृत्तैः**=अत्यन्त जल्दी-जल्दी पैर रखने वाले अर्थात् तेज चलने वाले, **अवनिपतिभिः**=राजाओं के, **केयूरकोटिताडितानाम्** =बाजूबन्दों के किनारों से आहत, **क्वणितमुखररत्नदाम्नाञ्च**=टकरा कर (क्वणित) झनझनाने वाली (मुखर) रत्नमालाओं वाले, **मणिस्तम्भानाम्**=मणिमय स्तम्भों (खम्भों) की, **रणितेन**=झङ्कार से, **सर्वतः**=चारों ओर, **क्षुभितम् इव**=क्षुब्ध-सा (अशान्त-सा), **तद् आस्थानमण्डपम्** =वह सभा भवन, **अभवत्**=हो गया ।

**अनुवाद**—(राजा के) सामने से शीघ्रता पूर्वक हटाने वाले, कौतुकारम्भपूर्वक ''देखिये देखिये'' इस प्रकार अत्यन्त उच्च स्वर से (राजा को देख कर चलिये, इस प्रकार का निर्देश देने वाले स्वर से) बोलते हुए दण्डधारी द्वारपालों के, भवनों और राजमहलों के कुञ्जों में उठी हुई प्रतिध्वनि के कारण और अधिक दीर्घता को प्राप्त होने वाले अर्थात् उच्चतर और दीर्घ जय जयकार के शब्द से, शीघ्रता से झुकाये गये मस्तकों की चञ्चल चूड़ामणियों वाले, प्रणाम करते हुए (राजाओं के) निर्मल मणिशलाकाओं से ऊँचे-नीचे मुकुटों के अग्रभागों से घिसे जाते हुए मणिनिर्मित फर्श की

ध्वनि से, (राजा को) प्रणाम करने में स्खलित हुए (अतएव) अतिकठोर मणिनिर्मित फर्श पर गिरने से खनखनाते हुए मणिनिर्मित कर्णा भूषणों के शब्द से, पाठ करते हुए, आगे चलने वाले मङ्गल पाठक चारणों के "महाराज की जय हो, महाराज चिरञ्जीवी हों" इस प्रकार के मङ्गलमय मधुर वचन को लक्ष्य कर प्रवृत्त हुए (अनुयात) सर्वतः प्रसरणशील कोलाहल से, चलते हुए मनुष्यों के सैकड़ों चरणों से कुचल जाने के भय से पुष्प समूह को छोड़कर उड़ते हुए भ्रमरों की गुञ्जार से, हड़बड़ी के कारण अति शीघ्रता से पैर रखकर आगे बढ़ने वाले राजाओं के केयूरों के अग्रभागों से ताडित (अतएव) बज उठने के कारण शब्दायमान रत्नमालाओं वाले, मणिमय मालाओं वाले मणिस्तम्भों के शब्द से, वह सभामण्डप चारों ओर से क्षुब्ध-सा हो उठा।

**भावार्थ**—सभाभङ्ग कर राजा शूद्रक के सिंहासन से उठ जाने पर राजा को प्रणाम करने के लिए इधर-उधर दौड़ने वाले सामन्त राजाओं के आभूषणों उनके पैरों की धमक एवं मङ्गलपाठियों की ध्वनियों से वह सभा भवन अत्यन्त क्षुब्ध-सा हो गया।

**संस्कृत व्याख्या**—**पुरः** नृपतेरग्रतः, **ससम्भ्रमम्** शीघ्रतापूर्वकम्, **समुत्सारितजनानाम्**—समुत्सारिताः दूरीकृताः जनाः तत्रस्थाः मनुष्याः यैस्तेषाम् दूरीकृतलोकानामित्यर्थः, **समारब्धहेलम्**—समारब्धा प्रवर्तिता हेला क्रीडा यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात्तथा आरब्धकौतुकपूर्वकम्, **आलोकयता लोकयत** पश्यन्तु भवन्तः अत्रायं भूपति रागच्छतीति रूपेण **उच्चैः** उच्चस्वरेण **उच्चारयताम्**—ब्रुवताम् दण्डधारिणाम् यष्टिग्राहिणाम्, **प्रतीहारिणाम्**—द्वारपालकानाम्, **तारतरदीर्घेण**—तारतरः शिरः समुत्पन्न ध्वनिस्तेन दीर्घेण अतिविस्तृतेन **भवनप्रासादकुञ्जेषु**—भवनानि साधारणगृहाणि, प्रासादाः राजसद्मानि तेषां कुञ्जेषु लतागुल्मेषु तथोक्तेषु, **उच्चरितप्रतिशब्दतया**—उच्चरितः उत्थितः प्रतिशब्दः प्रतिध्वनिर्यस्य तस्य भावस्तत्ता तया समुत्थित प्रतिशब्दतया, **दीर्घतरताम्** अत्यन्त दीर्घत्वम् **उपगतेन** प्राप्तेन अतिदीर्घत्वं गतेन **आलोक शब्देन** जयकार नादेन, **ससम्भ्रमावर्जित मौलिलोल चूडामणीनाम्**—ससम्भ्रमम् शीघ्रतापूर्वकम् आवर्जितेषु नमस्कारकालेऽवनमितेषु मौलिषु शिरस्सु लोलाः चञ्चलाः चूडामणयः शिरोरत्नानि येषान्तेषाम् प्रणमन कालावनमितशिरश्चञ्चलशिरोरत्नानाम्, **प्रणमताम्** राज्ञे शूद्रकाय नमस्कारं कुर्वताम् राज्ञाम्, **अमलमणिशलाकादन्तुराभिः** अमला स्वच्छा याः मणिशलाकाः रत्नयष्टिकाः ताभिः दन्तुराभिः उन्नतावनताभिः **किरीटकोटिभिः** किरीटानां मुकुटानां कोटिभिरग्रभागैः **उल्लिख्यमानस्य**—प्रणामकाले घर्षणं कुर्वतः, **मणिकुट्टिमस्य** रत्नजटितबद्धभूमेः निःस्वनेन ध्वनिना। **प्रणामपर्यस्तानाम्** प्रणामे प्रणामावसरे पर्यस्तानाम् अधः पतितानाम्, **अतिकठिनमणिकुट्टिमनिपतनरणरणायितानाञ्च**—अतिकठिनम् अतिशयकर्कशं यन् मणिकुट्टिमम् रत्नमयीबद्धभूमिस्तस्यां निपतनेन पातेन (हेतुना) रणरणायितानाम् 'रण-रणेति शब्दं कुर्वतां **मणिकर्णपूराणाम्**—रत्नजटितकर्णभूषाणानाम् **निनादेन** शब्देन। **पुरोयायिनाम्**—पुरो यान्तीति पुरोयायिनस्तेषाम् अग्रे-अग्रे गमनशीलानां, **पठताम्**—राज्ञो यशोगानमुच्चारयताम् **मङ्गलपाठकानाम्**—मङ्गलं पठन्ति ये ते मङ्गलपाठकास्तेषाम् वन्दीजनानां, **जयजीवेति** जयस्व चिरञ्जीवेति, **प्रकारकेण मधुरवचनानु यातेन** मधुर् वचनानुगमनकारिणा, **दिगन्तव्यापिना**—दिशामन्ता दिगन्ताः तान् दिगन्तान् व्याप्तुं शीलमस्येति दिगन्तव्यापी तेन सर्वतः प्रसरण शीलेन, **कलकलेन** कोलाहलेन, **प्रचलित जनचरणशतसंक्षोभभयात्**—प्रचलितानां सभाविसर्जन समये इतस्ततो गन्तुं प्रवृत्तानां जनानां मनुष्याणां चरण शतस्य अनेक नरपा-

दानामित्यर्थः संक्षोभ भयात् प्रहारभीतेः कारणात्, **कुसुमप्रकरम्** पुष्पसमूहम्, **अपहाय** त्यक्त्वा, उत्पतताम् उड्डीयमानानाम्, **मधुलिहाम्** भ्रमराणां, **हुङ्कृतेन** हुङ्कारशब्देन, **संक्षोभात्** आकुलतावशात्, **अतित्वरितपदप्रवृत्तैः** अतित्वरितपदेषु अतिशीघ्रतापूर्वक चरणनिक्षेपेषु प्रवृत्तैः प्रचलितैः शीघ्रतया गमनशीलैरित्यर्थः **अवनिपतिभिः** राजभिः (कर्तृभिः) **केयूरकोटिताडितानाम्** केयूराणाम् अङ्गदानां कोटिभिरग्रभागैः (करणैः) ताडितानाम् आहतानाम् (अतएव) **क्वणितमुखररत्नदाम्नाम्**—क्वणितेन तत्ताडितोत्पन्नेन ध्वनिना मुखराणि शब्दायमानानि रत्नदामानि रत्नमालाः रत्नमयवेष्टनशृङ्खला वा येषु तेषाम् तथोक्तानाम्, **मणिस्तम्भानाम्** मणिघटितस्तम्भानाम् रणितेन मधुरझङ्कारेण तत् राज्ञः शूद्रकस्य **आस्थानभवनम्**—सभा भवनम् **सर्वतः** परितः **क्षुभित-मिव** क्षोभमुपगतमिव अशान्तमिवेत्यर्थः तादृशम्, **अभवत्** संजातम् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—सभाभवनात् राज्ञः प्रस्थानकाले समुत्थितं जनसम्मर्दं ससम्भ्रमं नृपाग्रतः समुत्सारयताम् प्रवर्तितक्रीडं यथा स्यात्तथा "पश्यत नृपतिरयं प्रयातीति पश्यत" इत्युच्चैरेव भाषमाणानां दण्डधारिणां द्वारपालानाञ्च शिरः समुत्पन्नध्वनि वदति विस्तृतेन भवनप्रासादानां लताद्यन्तरित स्थानेषु समुत्थित प्रतिशब्दतयाति विस्तृतत्वं गतेन जयकारनादेन, ससम्भ्रमं नमस्काराय अवनमितेषु शिरस्सु शिरः कम्पेन चञ्चलशिरो रत्नानां राज्ञे नतिं कुर्वतां राज्ञाञ्च निर्मल मणिशलाकाविषमाभिः मुकुटकोटिभिः घृष्यमाणस्य मणिमयकुट्टिमस्य ध्वनिना, नतिकालस्खलिताना मतिकर्कशरत्नमयबद्धभूमिपातेन रणरणेति ध्वनि कुर्वतां राजरत्नकर्णाभरणानां निनादेन, यशोगानं कुर्वता मग्रेगामिनां मङ्गलपाठकानां चारणानाम् जयजीवेति मङ्गलमधुरवचनं लक्ष्यीकृत्य प्रवृत्तेन सर्वतः प्रसरणशीलेन कोलाहलेन, गन्तुं प्रवृत्तानां जनानामनेकपादप्रहार भयात् कुसुमसमूहं विहाय उड्डीयमानानां भ्रमराणां हुङ्कारशब्देन, राज्ञः प्रणामाय मनोवेगवशादतिशीघ्रचरणनिक्षेपेण प्रचलितैं भूपतिभिः (कर्तृभिः) केयूराग्रभागै राहताना मतएव तेषां क्वणनशब्देन मुखरमणिरचितवेष्टनशृङ्खलानां रत्नमयेस्तम्भानां क्वणितेन च नृपोपवेशनमण्डपम् परितः क्षोभमुपगतमिवा भवत् ।

**विशेष**—**दण्डिनः**—दण्डोऽस्त्येषामिति दण्डिनः—दण्ड+इनि=दण्ड धारण करने वाले । **हेला**—खेल । **तारतर**=अपेक्षाकृत और अधिक ऊँचा (स्वर) । **प्रतिशब्द** =प्रतिध्वनि **आलोक शब्द**=आलोक का अर्थ 'जयकार' है। यहाँ मुख्यतः 'आलोकयत आलोकयत्' की प्रतिध्वनि ही अभीष्ट है । **दन्तुर**—दन्त+उरच्=ऊँचा-नीचा **उल्लिख्यमान**—उत्+लिख्+णिच्+शानच्=घिसटने या रगड़ खाने वाले । **पर्यस्त** =गिरे हुए या फैले हुए । **रणरणायितानाम्**—खनकते हुए या "रण रण" इस प्रकार की ध्वनि करते हुए । **पुरोयायिनाम्**—पुरो यान्तीति पुरोयायिनः तेषां=आगे-आगे चलने वाले (राज दरबारों में राजा के आगे चारण भाट आदि बन्दीजन यशोगान, जय-जयकार करते हुए चलते थे, इस परम्परा की सूचना इससे मिलती हैं।) **दिगन्तव्यापिना**—दिशाम् अन्ताः दिगन्ताः, दिगन्तेषु व्याप्तुं शीलमस्य दिगन्त व्यापी तेन= दिशाओं में अर्थात् सर्वत्र व्याप्त हो जाने वाले । **अपहाय**—अप+हा+(क्त्वा) ल्यप् =छोड़कर, त्यागकर । **कुसुमप्रकरम्**=फूलों का ढेर । **मधुलिहाम्**—मधु लेढुं शीलं येषां तेषाम्=भौरों की । **क्वणित**=खनकना । **दाम**=माला, जंजीर । **रणित**= ध्वनि शब्द ।

बाणभट्ट ने राजाओं की समृद्धि और उनकी विलासिता का उत्कृष्ट वर्णन किया है। अनुप्रास अलङ्कार के अतिरिक्त किसी अन्य अलङ्कार का मुख्यतः प्रयोग न करने

पर भी गद्य में स्वाभाविक रमणीयता है एवं शब्दों में माधुर्य है। यह उनकी श्रेष्ठता का परिचायक है।

**अथ विर्सजितराजलोको "विश्रम्यतामिति स्वयमेवाभिधाय तां चाण्डालकन्यकां" वैशम्पायनः प्रवेश्यतामभ्यन्तरम् "इति ताम्बूलकरङ्क-वाहिनी मादिश्य कतिपयाप्तराजपुत्र परिवृतो नरपतिरभ्यन्तरं प्राविशत् अपनीताभरणश्च दिवसकर इव विगलितकिरणजालः चन्द्रतारका समूह शून्य इव गगनाभोगः समुपाहृतसमुचित व्यायामोपकरणां व्यायामभूमिमयासीत्।**

**शब्दार्थ**—**अथ**=सभाविसर्जन के पश्चात्। **विर्सजितराजलोकः**=राजसमुदाय को विदा करके। **विश्रम्यताम्**=विश्राम करो। **इति**=ऐसा। **स्वयमेव**=स्वयं ही। **अभिधाय**=कहकर। **तां चाण्डालकन्यकाम्**=उस चाण्डालकन्या से। **वैशम्पायनः प्रवेश्यताम्**=वैशम्पायन (शुक) को प्रवेश कराओ। **अभ्यन्तरम्**=भीतर (अतःपुर में)। **इति ताम्बूलकरङ्कवाहिनीम्**=ऐसा पान का डिब्बा लेकर चलने वाली (सेविका) को। **आदिश्य**=आदेश देकर। **कतिपय**=कुछ। **आप्तराजपुत्रपरिवृतः**=विश्वासपात्र राजकुमारों से घिरा हुआ। **नरपतिः**=राजा शूद्रक। **अभ्यन्तरम्**=भीतर **प्राविशत्**=प्रविष्ट हुआ, गया। **अपनीताभरणश्च**=और आभूषणों को उतार कर। **दिवसकर इव**=सूर्य के समान। **विगलितकिरण जालः**=किरण समूह से रहित। **चन्द्रतारका-समूहशून्यः**=चन्द्रमा और तारागण से रहित। **गगनाभोग इव**=आकाश के विस्तार के समान, **समुपाहृतसमुचितव्यायामोपकरणाम्**=एकत्रीकृत व्यायाम के योग्य (उचित) साधनों वाले। **व्यायामभूमिम्**=व्यायामशाला (अखाड़ा)। **अयासीत्**=गया।

**अनुवाद**=सभा विसर्जन के पश्चात् राजसमुदाय को विदाकर, स्वयं ही उस चाण्डालकन्या से 'विश्राम करो' ऐसा कह (तथा) पान का डिब्बा लेंकर चलने वाली सेविका को "वैशम्पायन को भीतर प्रवेश कराओ" ऐसा आदेश देकर, कुछ विश्वास पात्र राजकुमारों से घिरा हुआ राजा भीतर गया। और आभूषण उतारकर किरण समूह से रहित सूर्य के समान (तथा) चन्द्रमा एवं तारागण से रहित आकाशमण्डल के विस्तार के समान एकत्रीकृत समस्त उचित साधनों वाली व्यायामशाला में गया।

**संस्कृत व्याख्या**—**अथ** सभाविसर्जनानन्तरम् **विर्सजितराजलोकः**—राज्ञां लोकः राजलोकः विसर्जितो राजलोको येन सः—विसृष्ट समस्त सामन्त मण्डलः, राजा **ताम्** पूर्ववर्णिताम् **चाण्डालकन्यकाम्** मातङ्गकुमारीम्, **विश्रम्यताम्** विश्रामं कुरुष्वे **इति** इत्थम् **स्वयमेवात्मनैव अभिधाय** कथयित्वा, **वैशम्पायनः** पूर्वोक्तो विशिष्टः शुकः, **अभ्यन्तरं** भवनमध्यम् **प्रवेश्यताम्** नीयताम् **इति** इत्थम् **ताम्बूलकरङ्कवाहिनीम्**—ताम्बूलस्य पर्णविशेषस्य करङ्कवीटिकां (बीड़ा इति भाषायाम्) अथवा पेटिकाम् (पानदान इति हिन्द्याम्) वाहयितुं शीलमस्याः सा ताम्बूलकरङ्कवाहिनी ताम्—ताम्बूलपेटिकाधारिणीम् अथवा ताम्बूलपर्णवीटिकाधारिणीम् सेविकाम् **आदिश्य** आज्ञाप्य **कतिपयाप्तराजपुत्रपरिवृतः**—कतिपयैः रल्पसंख्याकैः आप्तैः विश्वस्तैः राजपुत्रैः स्वाधीन-राजकुमारैः परिवृतः परिवारितः **नरपतिः** राजा शूद्रकः **अभ्यन्तरम्** राजभवनमध्यम् **प्राविशत्** प्रवेशं कृतवान्। तत्र **अपनीपाभरणश्च**—अपनीतानि पृथक्कृतानि आभरणानि हाराद्यलङ्कारा येन स तादृशः परित्यक्ताभूषणः अतएव **विगलितकिरणजालः** विगलितानि विच्युतानि किरणजालानि रश्मिसमूहाः यस्य स तादृशो **दिवसकरः सूर्यः**

स इव तथा च **चन्द्रतारकाशून्यः** चन्द्रश्च तारकाश्चेति चन्द्रतारकाः ताभ्यः शून्यः चन्द्रतारकाणां समूहेन शून्यः **गगनाभोग इव** गगनस्याकाशस्याभोगो विस्तारः, स इव शोभमानो राजा शूद्रकः **समुपाहृतसमुचितव्यायामोपकरणाम्**—समुपाहृतानि सर्वत्र एकत्रीकृतानि समुचितानि योग्यानि व्यायामस्य स्वास्थ्यवर्धकपरिश्रमस्य उपकरणानि मुद्गरादीनि साधनानि यस्यां सा तथाविधाम् **व्यायामभूमिम्** व्यायामाय नियतस्थानम् व्यायामशालामित्यर्थः **अयासीत्** अगच्छत्। राजा शूद्रकः स्वमित्रैः परिवृतः सन् व्यायामाय व्यायाम शालामगच्छदिति तात्पर्यम्।

**संस्कृत सरलार्थः**—समस्तसामन्तराजमण्डलं विसृज्य राजा शूद्रकः स्वयमेव चाण्डालकन्यकां विश्रामायादिश्य तथा ताम्बूलपेटिकावाहिनीम् अभ्यन्तरे शुक मानेतु मादिश्य स्वातिविश्वस्त राजपुत्रैः परिवारितः सन् प्रासादाभ्यन्तरं जगाम। तत्र शरीरात् समस्तानि आभूषणानि उत्तार्य एकत्रीकृतसमस्तसमुचित व्यायामोपकरणशोभितां व्यायाम-शालामगच्छत्। आभूषणरहितः स तथा सुशुभे यथा किरणसमूहरहितः सूर्यो भवेत् एवञ्च चन्द्रतारकशून्यः गगन विस्तारो वा भवेत्।

**टिप्पणी**—**अथ**—अनन्तर, बाद में आदि अर्थवाची अव्यय है—**मेदिनीकोश** में कहा गया है—"अथाथो संशये स्यातामधिकारे च मङ्गले, विकल्पानन्तर प्रश्न कार्त्स्न्यारम्भमुच्चये" इति। अमरकोश में—"मङ्गलानन्तरम्भप्रश्न कात्स्न्र्येष्वथो अथ।" **अभिधाय**—अभि + धा + (क्त्वा) ल्यप् = कहकर। यहाँ चाण्डालकन्या से राजा के द्वारा स्वयं विश्राम करने के लिए कथन करने में उसका चाण्डालकन्या के प्रति विशेष आकर्षण ध्वनित होता है। अतः 'स्वयमेव' पदद्योत्य वस्तुध्वनि है। **ताम्बूलकरङ्कवाहिनी**—पान का डिब्बा लाने ले जाने वाली। प्राचीनकाल में राजाओं की विलासिता का इसमें सङ्केत है। राजा लोग जब राजसभा में बैठते थे तब भी स्त्री परिचारिकाएँ अपने-अपने उत्तरदायित्वों का पालन करती थीं जिनमें एक केवल पान का डिब्बा लिए राजा के सपीप खड़ी रहती थी। आप्त = विश्वसनीय **परिवृतः**—परि + वृ + क्त = घिरा हुआ। '**अपनीता शेषाभरणः** से **गगनाभोगः** "अंश में आभूषण उतारे हुए राजा की उपमा क्रमशः सन्ध्याकालीन सूर्य (जिसकी किरणें समाप्त हो गई हैं) एवं चन्द्रतारों से रहित आकाश के विस्तृत स्वरूप से दी गई है। इस प्रकार सूर्य से उपमा देने में राजा के शारीरिक सौन्दर्य की एवं आकाश से उपमा में उसके शारीरिक विस्तार की व्यञ्जना है। अतः दो उपमाओं का आश्रय एक ही राज शरीर होने के कारण मालोपमा अलंकार है। **समुपाहृतः**—सम् + उप + आ + हृ + क्त लाये गये, एकत्र किये गये।

# शूद्रकस्नानवर्णनम्

सः तस्याञ्च समानवयोभिः सह राजपुत्रैः कृतमधुरव्यायामः, श्रमवशादुन्मिषन्तीभिः कपोलयोरीषदवदलित सिन्दुवार कुसुममञ्जरी विभ्रमाभिः, उरसि निर्दयश्रमच्छिन्नहार विगलितमुक्ताफल प्रकरानुकारिणीभिः ललाटपट्टकेऽष्टमी चन्द्रशकलतलोल्ल सदमृतबिन्दु विडम्बिनीभिः स्वेदजल कणिका सन्ततिभिरलङ्क्रियमाणमूर्तिः, इतस्ततः स्नानोपकरणसम्पादन सत्वरेण पुरः प्रधावता परिजनेन तत्कालं विरलजनेऽपि राजकुले समुत्सारणाधिकारमुचितमाचदरद्भि दण्डिभिरुपदिश्यानमार्गः, विततसितवितानाम्, अनेक चारणगणनिवध्यमान मण्डलाम्, गन्धोदकपूर्ण कनकमय द्रोणो सनाथ मध्याम्, उपस्थापित स्फाटिक स्नानपीठाम्, एकान्तनिहितैरतिसुरभिगन्ध सलिल पूर्णैः परिमलावकृष्ट मधुकरकुलान्धकारितमुखैरातपभयान्नीलकर्पटावगुण्ठित मुखैरिव स्नानकलशैरुपशोभितां स्नान भूमिमगच्छत् ।

**शब्दार्थ**—**सः** = वह राजा शूद्रक । **तस्याम्** = उस व्यायाम भूमि में । **समानवयोभिः** समान अवस्था वाले **राजपुत्रैः सह** = राजकुमारों के साथ **कृतमधुरव्यायामः** हलका सा (जिसमें अधिक थकान न हो) व्यायाम करके **श्रमवशात्** = व्यायाम के परिश्रम के कारण **उन्मिषन्तीभिः** उत्पन्न होती हुई **कपोलयोः** गालों पर, **ईषदवदलितसिन्दुवार कुसुममञ्जरी विभ्रमाभिः** = **ईषत्** = कुछ कुछ **अवदलित** = मसली हुई **सिन्दुवार कुसुममञ्जरी** सिन्दुवार (निर्गुण्डी) नामक पुष्प की मञ्जरी (बौर या गुच्छों) का **विभ्रमाभिः** भ्रम उत्पन्न करने वाली । **उरसि** = वक्षःस्थल पर **निर्दयश्रमच्छिन्नहार विगलितमुक्ताफल प्रकरानुकारिणीभिः** **निर्दयश्रम** कठोर परिश्रम (व्यायाम) से **छिन्नहार** टूटे हुए हार से **विगलित** गिरे हुए **मुक्ताफलप्रकर** मोतियों के समूह का **अनुकारिणीभिः** अनुकरण करने वाली अर्थात् मोतियों जैसी प्रतीत होने वाली । **ललाटपट्टके** = मस्तकपटल पर **अष्टमीचन्द्रशकलतलोल्लसदमृतबिन्दु विडम्बिनीभिः** = **अष्टमीचन्द्र शकल** अष्टमी-तिथि के चन्द्रखण्ड के **तल** = पटल या ऊपरी भाग पर **उल्लसत्** = शोभायमान **अमृतबिन्दु** = अमृतबिन्दुओं का **विडम्बिनीभिः** अनुकरण करने वाली अर्थात् मस्तक पर पसीने की बूंदे अष्टमी के चन्द्रखण्ड पर लगी अमृत की बूंदों जैसी लग रही थीं । **स्वेद जलकणिका सन्ततिभिः** पसीने की छोटी-छोटी बूंदों की परम्परा से अर्थात् पसीने की बूंदों की लड़ियों से **अलङ्क्रियमाणमूर्तिः** = विभूषित किये जाते हुए शरीर वाला (राजा शूद्रक) **इतस्ततः** = इधर उधर **स्नानोपकरणसम्पादन सत्वरेण** स्नान की सामग्री (उपकरण) को जुटाने में (सम्पादन) जल्दी करने वाले **पुरः** = आगे **प्रधावता** = दौड़ते हुये । **परिजनेन** = सेवकवर्ग के द्वारा, **तत्कालम्** = उस समय **विरलजनेऽपि** = थोड़े से व्यक्तियों के रहने पर भी **राजकुले** = राजभवन में **समुत्सारण धिकारम्** = (लोगों

को राजा के सामने से) हटाने के नियम का **उचितम्** = भलीभाँति **आचरद्भिः** = पालन करते हुए **दण्डिभिः** = दण्डधारी सेवकों के द्वारा, **उपदिश्यमानमार्गः** = रास्ता दिखाया जाता हुआ (राजा शूद्रक) **विततसित-वितानाम्** = तने हुए श्वेत तम्बू (सामयाना) वाली, **अनेकचारणगणनिबध्यमानमण्डलाम्** = अनेकों बन्दीजनों (चारणों) की टोलियों के द्वारा बनाए जाते हुये घेरे वाली **गन्धोदकपूर्णकनकमयद्रोणीसनाथमध्याम्** = सुगन्धित जल (गन्धोदक) से भरी हुई सुवर्णरचित पानी की कुण्डी (कण्डाल या जंगाल या टब) से युक्त (सनाथ) मध्य भाग वाली अर्थात् जिसके स्नानगृह के मध्य सुगन्धित जल से भरी हुई द्रोणी अर्थात् जंगाल रखी थी ऐसे, **उपस्थापितस्फाटिकस्नानपीठाम्** = रखी हुई (उपस्थापित) श्वेत स्फटिकमणि की बनी हुई स्नान की चौकी (पीठ) वाली **एकान्तनिहितैः** = एक कोने में रखे हुए, **अतिसुरभिगन्धसलिलपूर्णैः** = अत्यन्तसुगन्धित जल से भरे हुए, **परिमलावकृष्टमधुकर कुलान्धकारितमुखैः** = (कलश जल की) सुगन्ध या सुवास से (परिमल) आकर्षित भ्रमर समूह से काले (अन्धकारित) कर दिये गये मुख वाले अतएव **आतपभयात्** = गरम हो जाने के डर से **नीलकर्पटावगुण्ठितमुखैरिव** = मानो नीले (काले) वस्त्रखण्डों (कर्पट) से ढके हुए मुख वाले **स्नानकलशैः** = स्नान करने के लिये कलशों से **उपशोभिताम्** = सुशोभित होने वाने वाली **स्नानभूमिम्** = स्नानागार में **अगच्छत्** = गया या पहुँचा ।

**अनुवाद**—और उस व्यायाम भूमि में समान अवस्था वाले राजकुमारों के साथ हल्का सा व्यायाम करके, थकान के कारण झलकती हुई, कपोलों पर, कुछ मसली हुई, सिन्दुवार पुष्प की बौर या कली का भ्रम उत्पन्न करने वालीं, वक्षःस्थल पर कठोर श्रम के कारण टूटे हुए हार से गिरे हुए मोतियों के समूह का अनुकरण करने वाली (मोतियों के दानों जैसी लगने वाली), मस्तक पटल पर—अष्टमी के चन्द्र खण्ड पर शोभित अमृत की बूंदों सी प्रतीत होने वालीं पसीने की बूंदों की परम्परा (लड़ियों) से शोभायमान शरीर वाला (राजा शूद्रक) स्नान के साधन जुटाने की जल्दी में इधर उधर आगे-आगे दौंड़ने वाले सेवकों के द्वारा, उस समय राजभवन में थोड़े से लोगों के विद्यमान होने पर भी (भीड़ को) हटाने के अपने उत्तरदायित्व का विधिवत् पालन करने वाले दण्डधारियों के द्वारा मार्ग बताया जाता हुआ राजा शूद्रक, तने हुए श्वेत चँदोवा वाले, अनेकों बन्दियों (भाटों) के समुदाय से बनाये गये घेरे वाले, सुगन्धित जल से परिपूर्ण सोने की जंगालों से सुशोभित मध्य भाग वाली, स्फटिकमणि की बनी स्नान के लिये चौकी से युक्त, एक कोने में रखे गये अत्यन्त सुगन्धित गन्ध जल से भरे हुए (अतएव) अपनी सुगन्धि से आकृष्ट किये गये भौरों के समूह से जिनके मुख काले हो गये थे, (अतएव) मानो धूप से गर्म हो जाने के भय से काले वस्त्र खण्डों से आच्छादित मुख वाले स्नान कलशों से सुशोभित स्नानागार में (वह) पहुँचा ।

**भावार्थ**—व्यायामशाला में थोड़ा-सा व्यायाम कर लेने के कारण राजा शूद्रक के गालों, मस्तक एवं वक्षःस्थल पर पसीने की बूंदें छलक आई थीं, जो गालों पर

सिन्दुवार मञ्जरी की, मस्तक पर अष्टमी चन्द्र के तल पर स्थित अमृत बूंदों की एवं वृक्षःस्थल पर मोतियों के दानों की शोभा प्राप्त कर रहीं थीं। इसके बाद वह स्नानागार में पहुँचा जिस स्नानागार के बाहर सेवकगण स्नान सामग्री जुटाने एवं भीड़ हटाने के लिए भागदौड़ कर रहे थे। स्नानागार में एक श्वेत चँदोवा लगा था, बीच में एक सोने के टब या जंगाल में सुगन्धित पानी भरा था, स्नान के लिये एक स्फटिकमणि का पीढ़ा या चौकी रखी थी तथा अनेक घड़ों में सुगन्धित जल रखा था, घड़ों के पानी की सुगन्ध से आकृष्ट भौरों के समूह उनके मुखों पर लिपट गये थे अतः कलशों के काले-काले मुख ऐसे लग रहे थे मानों धूप से बचाने के लिये उन पर काले काले कपड़े डाल दिये गये हों।

**संस्कृत व्याख्या**—स राजा शूद्रकः **तस्याञ्च** व्यायाम भूमौ च **समानवयोभिः** समानं तुल्यं वयः अवस्था येषान्तैः समवयस्कैः, **राजपुत्रैः** राजकुमारैः सह साकम्, **कृतमधुरव्यायामः** कृतो विहितः मधुरः स्वल्पायासजनकः व्यायामः परिश्रमो येन सः तादृशो राजा स्नानभूमिमगच्छदित्युत्तरेणान्वयः। अत्र तृतीयान्त पदानि, स्वेदजल कणिका सन्ततिभिः" पदस्योपमान विशेषणानि, द्वितीयान्तानि पदानि च" स्नानभूमिम्" इति पदस्य विशेषणानीति वेदितव्यम्। **श्रमवशात्** व्यायामजनितायासकारणात् कपोलयोः गण्डस्थलयोरुपरि **उन्मिषन्तीभिः** स्फुरन्तीभिः **ईषदवदलित सिन्दुवारकुसुम मञ्जरी विभ्रमाभिः**—ईषत् स्वल्पम् अवदलितं मर्दितं यत् सिन्दुवार कुसुमं निर्गुण्डी पुष्पं तस्य मञ्जरी बल्लरी कलिका वा तस्या इव विभ्रमो विलासो यासां ताभिः, अथवा तस्याः विभ्रमो भ्रान्तिः यासु ताभिः **उरसि** वक्षःस्थले **निर्दयश्रमच्छिन्नहार विगलितमुक्ताफलप्रकरानुकारिणीभिः**–निर्दयश्रमेण कठिन परिश्रमेण छिन्नो भग्नः, त्रुटितः यो हारः मुक्तामाला तस्मात् विगलितानि प्रच्युतानि यानि मुक्ता फलानि मौक्तिकानि तेषां प्रकरं समूहम् अनुकर्तुं शीलं यासां ताभिः मौक्तिक समूह इव शोभिताभिरित्यभिप्रायः, **ललाटपट्टके** भालपटले तु **अष्टमीचन्द्रशकलतलोल्लसदमृतबिन्दुविडम्बिनीभिः**—अष्टमी चन्द्रः अष्टम्यांतिथौ समुदितः सुधांशुः चन्द्रः तस्य शकलं खण्डं तस्य तले उत्तानस्थले उल्लसन्तो द्योतमानाः ये अमृतबिन्दवः पीयूषकणास्तान् विडम्बयितुम् अनुकर्तुं शीलं यासां ताभिः, अत्र राज्ञः ललाटस्य अष्टमीतिथिचन्द्र खण्डाकारता व्यज्यते, **स्वेदजलकणिकासन्ततिभिः** व्यायाम जनित शरीरजलस्य कणिकाः सूक्ष्म बिन्दव स्तेषां सन्ततयः श्रेणयस्ताभिः **अलङ्क्रियमाणमूर्तिः**—अलङ्क्रियमाणा आभूष्यमाणा मूर्तिः शरीरं यस्य स तथोक्तः (राजा) **इतस्ततः** समन्तात् **स्नानोपकरणसम्पादनसत्वरेण**—स्नानम् आप्लवोऽवगाहनं वा तस्योपकरणानां साधनानां सम्पादने निष्पादने सत्वरेण त्वरायुतेन, अतएव **पुरःप्रधावता** अग्रे अग्रे शीघ्रं ब्रजता परिजनेन सेवक-पुरुषेण, तथा च **तत्कालम्** तस्मिन् समये, मध्याह्नावकाशे इत्यर्थः **विरलजनेऽपि** स्वल्प व्यक्तियुतेऽपि **राजकुले** राजभवने **समुत्सारणाधिकारम्** समुत्सारणं राज्ञः सम्मुखाज्जन सम्मर्द निवारणं तत्र योऽधिकारो नियोगः कर्तव्यमित्यर्थः **तमाचरद्भिः** पालनं कुर्वद्भिः **दण्डिभिः** यष्टिधारिपुरुषैः **उपदिश्यमान मार्गः**—प्रदर्श्यमानः मार्गः स्नानभूमेरध्वा यस्य

स तादृशो राजा **विततसितवितानाम्**—विततम् ऊर्ध्वं प्रसृतं यद् सितं श्वेतवर्णं वितानम् चन्द्रातपः यस्यां ताम्, **अनेकचारणगणनिबध्यमानमण्डलाम्**—अनेके बहवः ये चारणाः स्तुतिपाठकाः वन्दिन स्तेषां गणः समुदायः तेन निबध्यमानं निर्मीयमाणं मण्डलम् मण्डलाकारेणावास्थतिः यस्यां सा तां तादृशीम्, **गन्धोदकपूर्णकनकमयद्रोणी सनाथमध्यभागाम्**—गन्धं च तदुदकं गन्धोदकं सुगन्धिसम्पन्नं जलं तेन गन्धोदकेन सुरभिसलिलेन पूर्णा भृता या कनकमयी सुवर्णरचिता द्रोणी जलकुण्डिका तया द्रोण्या सनाथो युक्तो मध्यः मध्यभागो यस्याः सा तां तादृशीम्, **उपस्थापितस्फाटिकस्नानपीठाम्**—उपस्थापितं विन्यस्तं स्फाटिकं स्फटिकमणिविरचितं स्नानपीठं स्नानाय चतुष्किका यस्यां सा तां तादृशीम्, **एकान्तनिहितैः** एकान्ते स्नानागारस्यैकस्मिन् प्रदेशे निहितैः स्थापितैः स्नानकलशैरिति पदस्य विशेषणम् **अतिसुरभिगन्ध सलिलपूर्णैः**—अतिशयेन सुरभिः घ्राणतृप्तिजनको गन्धो येषां तादृशैः सलिलैः जलैः पूर्णाः भृतास्तैस्तथोक्तैः, अतएव **परिमलावकृष्टमधुकरकुलान्धकारितमुखैः**—परिमलेन सुगन्धिना अवकृष्टाः आकृष्टा ये मधुकराः मधुपास्तेषां कुलैःसमूहैः अन्धकारितानि अन्धकारी कृतानि कृष्णवर्णीकृतानी-त्यर्थः मुखानि वदनानि येषान्तैः, (अतएव) **आतपभयात्** सूर्यकिरण सन्तापत्रासात् **नील-कर्पटावगुण्ठितमुखैरिव** नीलञ्च यत् कर्पटं नीलकर्पटं तैः नीलकर्पटैः श्यामवर्णवस्त्रखण्डैः अवगुण्ठितानि आवृतानि, आच्छादितानि मुखानि येषान्तै स्तादृशैरिव विद्यमानैः **स्नानकलशैः** स्नानार्थं स्थापितैः जलकुम्भैः **उपशोभिताम्** विराजितां **स्नानभूमिम** मज्जन-स्थानम् स्नानागार मित्यर्थः **अगच्छत्** अयासीत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—स राजा शूद्रकः तस्यां व्यायाम भूमौ समवयस्कैः राज-पुत्रैः सह साधारणं मधुरं व्यायामं विधाय, व्यायामजन्यश्रमवशात् कपोलयोः प्रकटी भवन्तीभिः किञ्चिन्मर्दित निर्गुण्डी पुष्पवल्लरी विभ्रमाभिः, वक्षःस्थले कठोर श्रमेण त्रुटित मुक्तामाला विच्युत मौक्तिक समूहानुकरणीभिः, भालस्थले च अष्टमी तिथि चन्द्र खण्ड तले विद्योतमानपीयूषकणानुकारिणीभिः स्वेद जल कणिकाभिः भूष्यमाण शरीरः एवं समन्तात् स्नानोपकरणनिष्पादने त्वरायुतेन अतएव अग्रतः सत्वरं व्रजता सेवक पुरुषेण, तथा तत्र मध्याह्नकाले स्वल्प लोकेऽपि राजगृहे समुचितम् लोकसम्मर्द निवारणात्मकं स्वनियोगं सम्पादयद्भिः यष्टिधारिपुरुषैः प्रदर्श्यमान मार्गः स राजा, विततश्वेत चन्द्रातपाम्, बहुवन्दिजन निर्मीयमाण मण्डलाम्, सुरभि जलभृत सुवर्णमय जल कुण्डिकायुक्तमध्यभागाम्, न्यस्तस्फटिक मणि रचित स्नान पीठाम्, एकस्मिन् भागे संस्थापितैः अतिशय सुरभित जल पूर्णैः अतएव सलिल गन्धा कृष्ट मधुपैरन्ध-कारी कृतमुखैः अतएव सूर्य किरण सन्तापत्रासात् श्यामवर्णवस्त्र खण्डैराच्छादित मुखैरिव प्रतीयेमानैः स्नान घटै विराजतां स्नान भूमिमयासीत् ।

**टिप्पणी**—यहाँ "स स्नान भूमिमगच्छत्" यह मुख्य वाक्य है। प्रथमान्त पद 'स' पद के विशेषण हैं एवं तृतीयान्त पद 'स्वेदजल कणिकासन्ततिभिः के, तथा द्वितीयान्त पद स्नानभूमिम् के विशेषण हैं। **मधुरव्यायामम** साधारण कसरत। **उन्मि-षन्ती** उत्+मिष्+शतृ+ङीप्=झलकती हुई। **सिन्दुवारकुसुममञ्जरीविभ्रमाभिः**

यहाँ वाचकलुप्ता उपमा अलंकार है **विभ्रमः** = भ्रान्ति भ्रम । **मुक्ताफल प्रकरानुकारिणीभिः** एवं **अमृतबिन्दुविडम्बिनीभिः** पदों में आर्थी उपमा अलंकार हैं। **स्वेदजल कणिकासन्तति** = पसीने के जल बिन्दुओं की लड़ी, परम्परा । **विडम्बिनीभिः** = तिरस्कृत कर देने वाली अथवा अनुकरण करने वाली । **समुत्सारणाधिकारः** राजा के सामने से भीड़ हटाने का अधिकार अर्थात् कर्तव्य, दण्डी दण्डोऽस्यास्तीति दण्डी — दण्ड + इनि = दण्ड धारण करने वाला । **वितान** — चंदोवा या साम्याना । **कनकमयद्रोणी** — पानी भरने की टंकी या कुण्डी जो सोने की बनी थी । इससे राजा की सम्पन्नता और विलासिता का परिचय मिलता है । **नीलकर्पटावगुण्ठितमुखैरिव** यहाँ सुगन्ध से आकृष्ट मुख पर बैठे हुए भौंरों से काले हुए घड़ों पर धूप से पानी गरम होने जाने के भय से काले कपड़े से मुख बंधे होने की उत्प्रेक्षा की गई है **कर्पट** = कपड़े का टुकड़ा । **अवगुण्ठित** = ढंके हुए ।

'इस सम्पूर्ण अंश में कवि की कल्पना शक्ति का सुन्दर परिचय मिलता है ।

**अवतीर्णस्य च जलद्रोणीं वारविलासिनीकरमृदितसुगन्धामलकलिप्त शिरसो राज्ञः समन्तात् समुपतस्थुरंशुक निविडनिबद्धस्तनपरिकराः दूर समुत्सारित वलयबाहुलताः, समुत्क्षिप्तकर्णाभरणाः, कर्णोत्सङ्गोत्सारितालकाः, गृहीतजलकलशाः, स्नानार्थमभिषेक देवता इव वारयोषितः। ताभिश्च समुन्नतकुचकुम्भ मण्डलाभिर्वारिमध्य प्रविष्टः कारिणोभिरिव वनकरी परिवृतस्तत्क्षणं रराज राजा ।**

शब्दार्थ—**अवतीर्णस्य** = उतरे हुए **जलद्रोणीम्** = जल कुण्डी में **वारविलासिनी करमृदितसुगन्धामलकलिप्तशिरसः** = वारविलासिनीकर = वेश्याओं के हाथों से **मृदित** = मले गये, **सुगन्धामलक** = सुगन्धित आँवलों से **लिप्तशिरसः** = लिपे हुए शिर वाले, **राज्ञः** = राज शूद्रक के **समन्तात्** = चारों ओर **समुपतस्थुः** = उपस्थित हो गई थी, **अंशुकनिबिडनिबद्धस्तनपरिकराः** = रेशमी कपड़े (की चोली) से दृढ़ ापूर्वक बाँधे हुए स्तनों के फैलाव वाली अर्थात् जिनका स्तनों का विस्तार कसकर कपड़े से वंधा था, **दूरसमुत्सारितवलयबाहुलताः** = (भुजाओं के ऊपर) दूर तक चढ़ाये गये कंगनों से युक्त भुजाओं वाली, **समुत्क्षिप्तकर्णाभरणाः** = ऊपर को बांधे गये कान के आभूषणों वाली, **कर्णोत्सङ्गोत्सारितालकाः** = कानों के समीप से बालों की लटों को हटा लेने वाली, **गृहीतजलकलशाः** = पानी से भरे हुए कलश लिये हुए, **स्नानार्थम्** = राजा को स्नान कराने के लिए **अभिषेकदेवता इव** = (साक्षात्) स्नान की देवियों के समान **वारयोषितः** = वेश्यां स्त्रियाँ । **ताभिश्च** = और उन वेश्याओं से, **समुन्नतकुचकुम्भमण्डलाभिः** = पर्याप्त उन्नत (ऊँचे) स्तन रूपी कलश समूह वाली (वेश्याओं से), **वारिमध्यप्रविष्टः** = वारिमध्य = पानी के बीच में प्रविष्ट हुआ राजा, **करिणीभिरिव** = हथिनियों से, **परिवृतः** = घिरे हुए, **वनकरी** = जंगली हाथी, **तत्क्षणम्** = उस समय, **राजा रराज** = राजा शूद्रक सुशोभित हुआ ।

**अनुवाद**—जल कुण्डिका अर्थात् पानी के टब या हौज में उतरे हुये, वेश्याओं के हाथों से मले हुये सुगन्धित आँवलों से उपलिप्त सिर वाले, राजा के चारों ओर, रेशमी आँचलों से कस कर बाँधे हुए स्तन-विस्तार वालीं, कंगन को दूर ऊपर की ओर हटा देने वाले बाहु लता वालीं, कर्णाभूषण को ऊपर की ओर हटा देने वालीं, कानों के पास से अलकों को ऊपर की ओर हटा लेने वालीं, (हाथों में), जल के घड़ों को लिये हुये, राजा को स्नान कराने के लिये मानो अभिषेक-देवियों के समान, वार वनितायें उपस्थित हो गईं। अत्यन्त उन्नत कुम्भ सदृश स्तन मण्डल वालीं वाराङ्गनाओं से घिरा हुआ राजा, उस समय, जल में प्रविष्ट उच्च कुम्भ स्थल वालीं हथनियों से घिरे हुये वन्यगज के समान शोभा पा रहा था।

**भावार्थ**—पानी के हौज में राजा के घुस जाने पर चारों ओर से वेश्याओं ने घेर लिया, वे वेश्याएँ स्नान की अधिष्ठात्री देवी के समान सुशोभित हो रही थीं। स्नान की सुविधा के अनुकूल वेशभूषा धारण करने के लिये उन्होंने अपने स्तनों को रेशमी कपड़े से कस कर बांध लिया था, हाथ के कंगनों को ऊपर खिसका लिया था एवं कर्णाभूषण तथा बालों को ऊपर खोंस लिया था। पानी में उतर कर राजा को घेर कर स्नान कराते समय क्षणभर को वे हथिनियों की शोभा को तथा राजा जंगली हाथी की शोभा को प्राप्त कर रहा था।

**संस्कृत व्याख्या**—**जलद्रोणीम्** जलकुण्डिकाम्, स्नानाय निर्मित कुण्ड विशेषमित्यर्थः, **अवतीर्णस्य** तन्मध्ये प्रविष्टस्य, **वारविलासिनीकरमृदितसुगन्धितामलकलिप्त शिरसः**—वारविलासिनीनां पण्य स्त्रीणां वेश्यानामित्यर्थः करैः हस्तैः मृदितं मृष्टं यत्, सुगन्धितम् सुरभि समन्वितम् आमलकं धात्रीफलं तेन लिप्तम् शिरो मस्तकं यस्य स तस्य, **राज्ञः** शूद्रकनृपतेः **समन्तात्** परितः, **अंशुकनिबिडनिबद्धस्तनपरिकराः**—अंशुकैः स्वस्वपरिधृत वस्त्रैः निबिडं दृढं यथा स्यात्तथा निबद्धाः संयताः राज्ञः शरीर स्पर्श निवारणायावलोकनभीते र्वा सम्यक् संयताः स्तनपरिकराः कुच विस्ताराः याभिस्ताः तादृश्यः, **दूरसमुत्सारित वलय बाहुलताः** दूरे ऊर्ध्वभागे समुत्सारितानि उत्तोलितानि शरीर घर्षणादि दोषा पहाराय बाहोरुर्ध्व प्रदेशे स्थापितानि वलयानि कङ्कणानि यासु तास्तथोक्ता बाहुलता भुजलता यासां ताः तथोक्ताः, **समुत्क्षिप्तकर्णाभरणाः** समुत्क्षिप्तानि पतनभयात्कर्णयोरुपरि न्यस्तानि कर्णाभरणानि श्रवणभूषणानि याभिस्ताः तादृश्यः **कर्णोत्सङ्गोत्सारितालकाः** कर्णयोः श्रोत्रयोः उत्सङ्गात् समीपात् उत्सारिताः नेत्रोपरि राज्ञः शरीरोपरि च पतन बाधानिवारणायापसार्य उपरिन्यस्ताः अलकाः केशाग्रभागाः चूर्णकुन्तला वा याभिस्ताः तादृश्यः **गृहीतजलकलशाः** ग्रहीता हस्तयो र्धृता जलकलशाः स्नानोदकपूर्णघटा याभिस्ताः तादृश्यः, **अभिषेकदेवता** स्नानाधिष्ठात्र्यो देव्य इव शोभमानाः **वारयोषितः** गणिकाः **स्नानार्थम्**— राज्ञः स्नानाक्रिया सम्पादनाय **समुपतस्थुः** उपस्थिता अभूवन्। **समुन्नतकुचकुम्भमण्डलाभिः**-समुन्नतम् अत्यन्तोच्चं कुचकुम्भ मण्डलं कुचाः स्तना एव कुम्भाः तेषां मण्डलं समूहः यासां ताभिः वेश्याभिः अन्यत्र समु-

न्नतं कुचमिव कुम्भमण्डलं मस्तकस्योन्नतस्थलं यासां ताभिः, **करिणीभिः** हस्तिनीभिः **परिवृतः** परिवेष्टितः **वारिमध्य प्रविष्टः** जल द्रोणी मध्ये कृत प्रवेशः राजा **तत्क्षणं** तस्मिन् स्नानसमये **वनकरी इव** वन्यहस्तीव **रराज** सुशुभे। अयमभिप्रायः-यथा कश्चिद्वनकरी हस्तिनीभिः समं जलावगाहनं कुर्वन् शोभते तथैव ताभिर्वेश्याभिः परिवृतो राजा शोभते स्म।

**संस्कृत सरलार्थ**—यदा राजा शूद्रकः स्नानार्थं जलकुण्डिकां प्रविष्टः तदा तं स्नपयितुं वारविलासिन्यः वस्त्रेण स्वस्तनौ दृढं परिनिबध्य, हस्तयोः कङ्कणे उपरि समुत्सार्य, कर्णाभरणानि अलकाश्च कर्णयोरुपरिभागे केशेष्वित्यर्थः विन्यस्य सुगन्धितामलकद्रवेण राज्ञः शिर उपलिप्य जलकलशान् गृहीत्वा राज्ञः समन्तात् उपस्थिता अभूवन् तास्तदानीं तथाऽशोभन्त यथा साक्षात् स्नानाधिष्ठातृदेवता एव समागताः स्युः। आभिः समुन्नतकुचकुम्भमण्डलाभिः वेश्याभिः परिवृतः जलमध्यगतः राजा तत्क्षणं, तथैव शुशुभे यथा, नद्यादि जल मध्य प्रविष्टः करिणीभिः परिवृतः वन्यगजः शोभां लभते।

**विशेष—अवतीर्ण**—अव+तॄ+क्त=उतरा हुआ। **सुगन्धामलकेति**=सुगन्धित आँवलों से लिप्त शिर वाला। यहाँ यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में केशों को स्वच्छ करने के लिये आँवले का प्रयोग किया जाता था। **वारविलासिनी** =वेश्याएँ; राजाओं की स्नान, उबटन आदि क्रियाओं में वेश्याएँ प्रयुक्त होती थीं, यह राजकीय विलासिता का सूचक है। **अंशुक**=रेशमी दुपट्टा। **निबिड**=दृढ़ता पूर्वक, कसकर। राजा को स्नान कराने में किसी प्रकार का विघ्न न हो एवं राजा के अंगों से उनके अंगों का स्पर्श न हो या वे गोप्य अंग खुल न जाएँ अतः वेश्याओं ने स्तनों को दुपट्टे से कसकर बाँध लिया था, हाथों के कंगन ऊपर चढ़ा लिये थे ताकि राजा को चोट न लगे एवं कानों के आभूषण एवं बालों की लटों को कानों के ऊपर खोंस लिया था ताकि वे आभूषण हिलें नहीं एवं बाल आँखों के सामने न आ जायँ। **समुत्क्षिप्त** -सम्+उत्+क्षिप्+क्त=ऊपर की ओर फेंके गये। **अलक** =बालों की लट। **समुपतस्थुः**=सम्+उप+स्था+लिट् लकार प्रथम पु० बहुवचन=उपस्थित हुई। **ताभिश्च**..........वनकरी-इस अंश में राजा की उपमा वनकरी (जंगली हाथी) से दी गई है जो स्नान करते समय हथिनियों से घिरा हो। वेश्याएँ हथिनियों के समान हैं **समुन्नतकुचकुम्भमण्डलाभिः** यह साधारण धर्म वाच्य है। हथिनियों के पक्ष में—समुन्नत कुच के समान उनके कुम्भ मण्डल (मस्तक का ऊपर उठा हुआ भाग) थे। अतः यहाँ उपमा अलंकार है। स्नान का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन करने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार भी है। अतः इन दोनों अलंकारों का अङ्गाङ्गिभाव संकर अलंकार है।

**द्रोणी सलिलादुत्थाय च स्नानपीठममलस्फटिकधवलं वरुण इव राजहंसमारुरोह। ततस्ताः काश्चिन्मरकतमणि कलस प्रभा श्यामायमाना**

**नलिन्य इव मूर्तिमत्यः पत्रपुटैः, काश्चिद्रजतकलसहस्ता रजन्य इव पूर्णचन्द्रमण्डलविनिर्गतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण, काश्चित् कलसोत्क्षेपश्रमस्वेदार्द्र शरीरा जलदेवता इव स्फाटिकैः कलसै स्तीर्थजलेन, काश्चिन्मलयसरित इव चन्दनरसमिश्रेण सलिलेन, काश्चिदुत्क्षिप्तकलस पार्श्वविन्यस्त हस्तपल्लवा प्रकीर्यमाणनखमयूखजलकाः प्रत्यङ्गुचिलिवरविनिर्गत जलधाराः सलिलयन्त्र देवता इव, काश्चिज्जाड्य मपनेतुमाक्षिप्तबालातपेनेव दिवसश्रिय इव कनककलसहस्ताः कुङ्कुमजलेन वाराङ्गनाः यथायथं राजानमभिषिषिचुः ।**

**शब्दार्थ—द्रोणीसलिलात्** = जल कुण्डी के जल से, **उत्थाय** = उठकर अर्थात् निकल कर, **स्नानपीठम्** = स्नान करने को चौकी, **अमलस्फटिकधवलम्** = स्वच्छ स्फटिक मणि के समान श्वेत वर्ण वाली, **वरुण इव** = जल के अधिष्ठाता देव वरुण के समान, **राजहंसम्** = राजहंस पर, **आरुरोह** = चढ़ गया। **ततः** = इसके पश्चात् **ताः** = उन वेश्याओं में से, **काश्चित्** = कुछ ने, **मरकतमणिकलसप्रभाश्यामायमानाम्** = **मरकत-मणि** = हरे या नीलवर्ण की मणि विशेष के **कलशप्रभा** घड़े की कान्ति से **श्यामायमानाम्** = श्यामवर्ण की प्रतीत होने वाली **नलिन्य इव** = कमलिनियों के समान, **मूर्तिमत्यः** = शरीर धारिणी,**पत्रपुटैः** = पत्तों के दोनों के द्वारा **रजतकलशहस्ताः** चाँदी के कलश हाथ में लिए हुए, **रजन्य इव** = रात्रि के समान, **पूर्णचन्द्रमण्डल विनिर्गतेन** = (पूर्णिमा के) पूर्णचन्द्रमण्डल से निकली हुई, **ज्योत्स्नाप्रवाहेण** = चाँदनी की धाराओं से, **कलसोत्क्षेपश्रमस्वेदार्द्र शरीराः** = कलश को उठाने से थकान के कारण पसीने (स्वेद) से गीले शरीरों वाली, **जलदेवता इव** = पानी की देवियों के समान, **स्फाटिकैः कलशैः** = स्फटिक मणि-रचित कलशों से, **तीर्थजलेन** = तीर्थों के जल से, **मलयसरित इव** = मलय नामक पर्वत की नदियों के समान, **चन्दनरसमिश्रेण** = चन्दन के रस से मिश्रित, **सलिलेन** = जल से, **उत्क्षिप्तकलशपार्श्वविन्यस्तहस्तपल्लवाः** = **उत्क्षिप्त** = उठाये गए कलश **पार्श्व** = कलश के किनारों पर **विन्यस्त** रखे हुए हैं **हस्तपल्लवाः** हाथ रूपी पत्ते जिनके, **प्रकीर्यमाणनखमयूखजालकाः** = **प्रकीर्यमाण** = फैलते हुए, **नखमयूख** = नाखूनों की किरणों का **जालकाः** = जाल, **प्रत्यङ्गुलिविवरविनिर्गत जलधाराः** = प्रत्येक अंगुली के मध्य का जो अन्तर (विवर) अर्थात दो अंगुलियों के बीच का अन्तर उससे निकली हुई जल की धाराओं वालीं **सलिलयन्त्रदेवता इव** = **सलिल यन्त्र** पानी का यन्त्र अर्थात् फव्वारा की **देवता इव** = अधिष्ठात्री देवी के समान, **जाड्यम्** = जड़ता अर्थात् शीतलता या ठण्ड को **अपनेतुम्** = मिटाने के लिये, दूर करने के लिये, **आक्षिप्तबालातपेन इव** = मानों (इव) खींची गई बाल सूर्य की धूप के द्वारा, **दिवसश्रिय इव** = दिन की शोभा अर्थात्, दिवसश्री रूपा स्त्री के समान **कनककलसहस्ताः** = सुवर्ण रचित कलश हाथ में लेकर, **कुङ्कुमजलेन** = केशर के जल से **वाराङ्गना** = वेश्या स्त्रियाँ **यथायथम्** = यथायोग्य , **राजानम्** = राजा शूद्रक को, **अभिषिषिचुः** = स्नान कराया ।

**अनुवाद**—जल कुण्डी के तल से निकल कर (राजा) स्वच्छ स्फटिक मणि के समान श्वेत, स्नान करने की चौकी (पीढ़ा) पर, राजहंस पर वरुण देव के समान आरुढ हो गया (बैठ गया)। इसके पश्चात् उन वेश्याओं में से, मरकतमणि से बने कलशों की कान्ति (पड़ने) से साँवली सी प्रतीत होती हुई अतएव मूर्तिधारिणी कमलिनियों जैसी कुछ वाराङ्गनाओं ने, पत्तों के पुटों अर्थात् दोनों से, हाथों में चाँदी के कलशे धारण करने वाली, रात्रि के समान, कुछ ने पूर्ण चन्द्र मण्डल से निकली हुई चांदनी की धारा से, (जलपूर्ण) कलशों को उठाने से उत्पन्न थकान के कारण पसीने से गीले शरीरों वाली अतएव जलदेवियों सदृश कतिपय (वेश्याओं) ने स्फटिक मणि रचित कलशों के तीर्थ जल से, मलय पर्वत की नदियों के समान कुछ (वेश्याओं) ने, चन्दन के रस से मिश्रित जल से, कतिपय वेश्यायें कलश को ऊपर उठा कर कमर पर रख कर उसके किनारे पर अपने हस्त पल्लव रखे हुए थीं उनके नाखूनों की किरणों का जाल (चारों ओर) फैला हुआ था (एवं) अंगुलियों के मध्यान्तरों से (दो अंगुलियों के बीच के अन्तर से) पानी की धाराएँ निकल रही थीं अतः (वे स्त्रियाँ) सलिलयन्त्र अर्थात् फव्वारों की अधिष्ठात्री देवी सी प्रतीत हो रही थीं; कुछ वेश्याएँ हाथों में स्वर्ण कलश लेकर (उसमें विद्यमान) केशर के पानी से राजा को यथायोग्य स्नान करा रही थीं मानों स्नानातिशय से उत्पन्न राजा की ठण्ड को दूर करने के लिये प्रातःकालीन सूर्य की धूप को (कलश में) डाल कर दिवस श्री (दिन की अधिष्ठात्री देवी) उससे स्नान करा रहीं हों।

**भावार्थ**—जल कुण्डिका से निकल कर राजा शुद्रक स्वच्छ स्फटिक मणि के समान सफेद स्नान करने की चौकी पर बैठ गया जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों साक्षात् वरुण देव ही अपने राजहंस (वाहन) पर बैठे हों। इसके पश्चात् वेश्याओं ने अनेक प्रकार के कलशे लेकर उनसे उसे नहलाया। नहलाने की इस प्रक्रिया में वेश्याओं की विविध रूप चेष्टाओं का काव्यात्मक चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि ने अपनी कल्पना शक्ति को अभिव्यक्ति दी है जैसे—नील या हरित मणि रचित कलश को उठाने से उनकी कान्ति श्याम वर्ण की हो जाने से उनकी हथेलियाँ कमलिनी के पत्ते से बने दोनें एवं वे वेश्याएँ शरीरधारिणी कमलिनी जैसी शोभा पा रही थीं, चांदी के कलशों से स्नान कराने वाली स्त्रियाँ रात्रि जैसी एवं उन कलशों से निःसृत जल धाराएँ चन्द्र मण्डल से निकली चांदनी जैसी प्रतीत हो रही थीं कुछ वेश्याएँ घड़े उठाने से अत्यधिक थक गई थीं अतः पसीने से उनका सारा शरीर भीग जाने के कारण वे साक्षात् जल देवी जैसी लग रही थीं। कुछ चन्दन रस के कलशे उड़ेलने के कारण मलय पर्वत की नदी की शोभा पा रही थीं, कुछ ने कलश के मुख पर हथेली रखकर राजा के ऊपर जल छोड़ा जिससे उनके नाखूनों की लाल प्रभा राजा के ऊपर एवं चारों ओर फैल रही थी, अंगुलियों के बीच से अनेक धाराओं के निकलने के कारण उनके हाथ फव्वारे की एवं वे वेश्याएँ उन फव्वारों (जल यन्त्रों) की अधिष्ठातृ देवता की सम्भावना करा रही थीं। स्वर्ण कलशों से केशर का पानी छोड़ने वाली दिवस

श्री जैसी लग रही थीं मानों अधिक स्नान करने से राजा को लगी ठण्ड को दूर करने के लिये दिवस श्री ने प्रातःकालीन लाल सूर्य की जो धूप घड़े में भरी थी, राजा के ऊपर उड़ेल रही थीं। इस प्रकार विविध रूपों से उन्होंने राजा को स्नान कराया।

संस्कृत व्याख्या —**द्रोणीसलिलात्**-द्रोण्याः जलकुण्डिकायाः सलिलात् जलात् **उत्थाय** उत्थानं विधाय अर्थात् निर्गत्य च राजा **अमलस्फटिकधवलम्** अमलं च तत्स्फटिकम् अमलस्फटिकम् स्वच्छस्फटिकमणिः तद्वत् धवलं श्वेतवर्णम्, **स्नानपीठम्** स्नानकरणाय स्थापितं पीठम् **वरुणः** प्रचेताः **राजहंसम्** स्ववाहनं कलहंसमिव **आरुरोह** आरूढ़वान्। यथा वरुणो राजहंसमारोहति तथैव राजा शूद्रकस्तं शुभ्रवर्णं स्नानपीठमारूरोह इत्युपमानोपमेय भावः। **ततः** तत्पश्चात् स्नानपीठारोहणानन्तरं ताः वाराङ्गनाः **काश्चित्ताः** तासु काश्चन वाराङ्गनाः **मरकतकलशप्रभाश्यामायमानाः** मरकतमणि कलसः मरकत संज्ञक हरितमणि विशेषस्तन्निर्मितो यः कलशो घटस्तस्य प्रभया कान्त्या श्यामायमानाः न श्यामाः अश्यामाः गौर्य्य इत्यर्थः अश्यामाः अपि श्यामवदा चरन्त्यः तथोक्ताः अतएव **मूर्त्तिमत्यः** शरीरधारिण्यः **नलिन्यः** नीलकमलिन्य इव प्रतीयमानाः **पत्रपुटैः** नलिनी पत्रपुटैः, काश्चिद् वाराङ्गनाः **रजतकलश हस्ताः** रुप्य विनिर्मितो घटः हस्तेषु करेषु यासां तास्तथोक्ताः अतएव **रजन्यः** निशाः इव **पूर्णचन्द्रमण्डल विनिर्गतेन** पूर्णश्चासौ चन्द्रः पूर्णचन्द्रः तस्य मण्डलं पूर्ण चन्द्रमण्डलं समग्रशशि विम्वं तस्मात् विनिर्गतेन निःसृतेन, **ज्योत्स्नाप्रवाहेण** ज्योत्स्नायाः चन्द्रिकायाः प्रवाहो ज्योत्स्नाप्रवाहः तेन चन्द्रिका धारयेत्यर्थः इव सलिलेन, **काश्चित्** अन्याः काश्चन वाराङ्गनाः **कलशोत्क्षेपश्रमस्वेदार्द्रशरीराः** कलशानाम् उत्क्षेपात् ऊर्ध्वधारणात् यः श्रमः आयासः तेन ये स्वेदाः धर्म सलिलानि तैरार्द्राणि क्लिन्नानि शरीराणि वपूंषि यासां ताः तयोक्ताः **जलदेवताः** सलिलाधिष्ठात्र्यः देव्य **इव स्फाटिकैः** स्फटिकमणिविरचितैः **कलशैः** घटैः **तीर्थजलेन** राज्ञः स्नानार्थं तीर्थेभ्यः समानीतेन पयसा, **काश्चित्** स्त्रियः **मलयसरित इव** मलयसंज्ञकपर्वतविशेषस्य नद्य इव **चन्दनरसमिश्रेण** चन्दनस्य मलयजस्य रसः द्रवः, चन्दनरसः तेन मिश्रेण संपृक्तेन **सलिलेन** जलेन, काश्चिच्च वारयोषितः **उत्क्षिप्तकलशपार्श्वविन्यस्तहस्तपल्लवाः** उत्क्षिप्ताः हस्तेषु ऊर्ध्वं गृहीताः अथवा उत्तोल्य कक्षं कटिप्रदेशं नीताः ये कलशाः घटाः तेषां पार्श्वेषु वाम दक्षिणप्रान्तभागेषु विन्यस्ताः स्थापिताः हस्तपल्लवाः कर किसलयानि याभिस्ताः **प्रकीर्यमाणनखमयूखजालकाः** प्रकीर्यमाणानि इतस्ततो विपर्यस्तानि नखानां पुनर्भवानां मयूखजालकानि किरणसमुदायाः यासां ताः तयोक्ताः **प्रत्यङ्गुलि विवरविनिर्गतजलधाराः** अङ्गुलि मङ्गुलिं प्रतीति प्रत्यङ्गुलि प्रतिकरशाखं यानि विवराणि अन्तरालप्रदेशाः तेभ्यो विनिर्गताः जलधाराः जलकलशपतितवारिधाराः यासां ताः अतएव **सलिलयन्त्र देवताः** सलिलस्य यन्त्रं सलिलयन्त्रं जलधारावर्षियन्त्र विशेषः (फव्वारा इति हिन्द्याम्) तस्य देवता अधिष्ठातृ देव्य इव अथवा जलधारा वर्षियन्त्र समीपे निर्मिताः देवप्रतिमा **इव** शोभमानास्ताः (राजानमभिषिषिचुः)। **काश्चित्**

काश्चन अन्याः कनककलशहस्ताः कनकस्य सुवर्णस्य कलशाः घटाः हस्तेषु करेषु यासां ताः वाराङ्गनाः वेश्याः स्त्रियः दिवसश्रिय इव दिनलक्ष्म्य इव जाड्यम् अतिस्नाना दुत्पन्नशैत्यम् अपनेतुम् दूरीकर्तुम् आक्षिप्तवालातपेन इव आक्षिप्तः आकर्षितः बालातपः प्रातःकालीनसूर्यस्यारुण प्रकाशः येन तेन इव कुङ्कुमजलेन केसर संयुक्त वारिणा यथायथम् यथायोग्यं यथा सामर्थ्यं वा राजानं शूद्रकम् अभिषिषिचुः स्नानं कारयामासुः ।

**संस्कृत सरलार्थ**—राजा शूद्रकः जल कुण्डिकाया वहिरागत्य स्नानार्थं स्थापितां स्वच्छस्फटिकसमां धवल वर्णां चतुष्किकां तथैवारूढ़वान् यथा वरुण देवः स्ववाहनं राजहंसमारोहति, तदनन्तरं ता वाराङ्गनाः राजानमभिषिषिचुः । तासु वाराङ्गनासु काश्चिद् मरकतमणि निर्मितघटकान्त्या श्यामवदारचन्त्यः अतएव श्यामत्वसाम्याद् पद्मिन्य इव प्रतीयमानाः सत्यः पत्रपुटैः नलिनीपत्र सम्पुटैः, अन्याः काश्चिद् वारयोषितः रूप्यनिर्मितघटकराः समस्त चन्द्रविम्वाद्विनिर्गतेन चन्द्रिकाप्रवाहेण निशा इव तत्सदृशघटस्थजलेन, घटोत्क्षेपणश्रमजन्यस्वेद सलिलस्विन्नशरीरा अतएव जलदेवता इव स्फटिकमणिनिर्मितैः कुम्भैः तीर्थ जलेन, अन्याः काश्चन मलयाचल नद्य इव चन्दन द्रवसंयुक्तेन सलिलेन, काश्चिदन्या उत्तोल्य कक्षमानीत कुम्भानां पार्श्वेषु विन्यस्त करपल्लवाः अतएव इतस्ततः पर्यस्तनखकिरणजलकाः (तया) प्रत्यङ्गुलिच्छिद्रनिः सृतजलधाराः अतएव जलयन्त्राधिष्ठातृ देव्य इव स्थिताः, काश्चिदन्याः सुवर्ण कुम्भकराः दिन लक्ष्म्य इव स्नानजन्य शैत्यं दूरीकर्तुं समाकृष्टनवोदितसूर्यातपेनेव केसर मिश्रित सलिलेन यथायोग्यं स्नानं कारयामासुः ।

**विशेष**—'द्रोणीसलिलात्-आरुरोह' इस वाक्य में राजा की उपमा वरुण से एवं स्नानपीठ की उपमा राजहंस से दी गई है अतः दोनों स्थानों में उपमा अलंकार है । 'आरुरोह' रूप क्रिया साधारण धर्म है । **आरुरोह**—आ + रुह + लिट् प्र. पु. एक वचन = आरूढ़ हुआ । **काश्चिन्मरकत पत्रपुटैः** इस अंश में मरकतमणि के घड़े की छाया से वेश्याओं का रंग नीला हो जाने से ऐसा लग रहा था मानों वे शरीरधारिणी कमलिनियाँ हों एवं उनके नीले हाथ कमलिनी के पत्ते से बने दौने से प्रतीत हो रहे थे, अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है । **श्यामायमानाः**—न श्यामाः अश्यामाः, अश्यामाः श्यामवदाचरन्त्यः = जो श्याम नहीं थीं किन्तु श्याम के समान आचरण करने के कारण श्याम प्रतीत हो रही थीं—(श्याम + क्यङ् + शानच्) अतः श्यामापमानाः में क्यङ् गता उपमा है । **रजतकलश**·······**तीर्थजलेन** इस वाक्य में रजतकलश (चाँदी का कलश) श्वेत होने के कारण उसके जल में भी श्वेतिमा की प्रतीति स्वाभाविक होने से कलश में चन्द्रमण्डल की, जल में चन्द्रिका की एवं वेश्याओं में रात्रि की सम्भावना की गई है । **ज्योत्स्ना**-ज्योति रस्ति अस्यामिति (चाँदनी) ज्योतिष् शब्द से उपधा का लोप "ज्योत्स्ना तमिस्ना" इत्यादि सूत्र से, और न प्रत्यय के विधान से 'ज्योत्स्ना' शब्द बना है । "चन्द्रिका कौमदी ज्योत्स्ना" इत्यमरः । **काश्चित्कलशोत्क्षेप**·········· **तीर्थजल्नेन**" इस वाक्यांश में कलश उठाने से थकान के कारण पसीने से भीगी हुई

वेश्याओं में जलदेवता की सम्भावना की गई है उत्क्षेप—उत+क्षिप्+घञ्=ऊपर उठाना। यहाँ भी उत्प्रेक्षा अलंकार है। स्फाटिकैः—स्फटिकस्येदम् अथवा स्फटिकस्य विकारः स्फाटिकं स्फटिक+अण् तृ. बहुव.=स्फटिक मणि से बने हुए कलशों के द्वारा। 'काश्चन्मलय····सलिलेन' यहाँ कलश में चन्दन का घोल (चन्दनरस) होने के कारण स्त्रियों में 'मलयसरित्' मलय पर्वत की नदी की सम्भावना होने के कारण जात्युत्प्रेक्षा है। मलय पर्वत पर चन्दन वृक्षों की बहुतायत होने के कारण उसकी पर्वतीय नदी में चन्दन रस की चन्दन गन्ध की सत्ता अवश्यम्भावी है अतः चन्दन रस से स्नान कराने वाली वेश्याओं में 'मलयसरित्' की सम्भावना उचित ही है। "काश्चिदुत्क्षिप्त············सलिलयन्त्रदेवता इव" इस वाक्यांश में—राजा को स्नान कराने के लिए ऊपर उठाये गये घड़ों के इस उस ओर हथेलियों का होना स्वाभाविक है अतः उनके नाखूनों की किरणों का उधर-उधर फैलना भी अवश्यम्भावी है। कलश के मुख पर हाथ रख कर पानी गिराने में पानी का अनेक पतली धाराओं में बँट जाना भी स्वाभाविक है अतः कवि ने उन अंगुलियों के बीच से निकलती हुई जल-धाराओं में जलयन्त्र अर्थात् फव्वारा की कल्पना की है। जिससे उन वेश्याओं में उस फव्वारा की अधिष्ठातृ देवी की कल्पना है अथवा लोक में जैसे फव्वारे के नीचे किसी स्त्री की प्रतिमा बनाई जाती है तद्वत् ऊपर से फव्वारे के रूप में पानी गिराने वाली वेश्याओं में मूलस्थित स्त्री प्रतिमा (जलयन्त्र देवता) की कल्पना भी मानी जा सकती है। अतः वेश्याओं में जलयन्त्र देवता की सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि वाणभट्ट के काल में राजाओं के स्नानागारों में फव्वारों की व्यवस्था थी। विन्यस्त—वि+नि+अस्+क्त=रखा हुआ। प्रकीर्य्य-माण=प्र+कृ+शानच्=इधर उधर फैलता हुआ। "जाड्यम्········कुङ्कुमजलेन" इस वाक्य में सोने के कलशस्थित केशर जल से स्नान कराने वाली स्त्रियों में दिवस-श्री की एवं केशर जल में बालसूर्यातप की सम्भावना जाति या द्रव्योत्प्रेक्षा अलंकार की सृष्टि करता है तो जाड्यमपनेतुम् 'ठण्ड दूर करने के लिये' यह कारण कल्पित होने के कारण हेतूत्प्रेक्षा का जनक है। 'आक्षिप्त वालातपेनेव' में क्रिया की उत्प्रेक्षा है इस प्रकार द्रव्योत्प्रेक्षा, क्रियोत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, की एकत्राङ्गाङ्गिभावना के कारण अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर अलंकार है। जाड्यम्—जडस्य भावो जाड्यम् जड+ष्यञ्=ठिठुरन या ठण्ड। आक्षिप्त—आ+क्षिप्+क्त=आकर्षित। बालातपः—बालश्चासौ आतपः बालातपः=सवेरे की हल्की पीली या लाल वर्ण धूप। यथायथम्—(यथायोग्य) यह एक अव्यय है जिसके पास जो जल था उससे उसने स्नान कराया अथवा यथायथं यथासामर्थ्य अपनी सामर्थ्य के अनुरूप थोड़े या अधिक जल से, एक या अनेक भङ्गिमाओं से, स्नान कराया आदि अनेक अर्थ गृहीत हो सकते हैं। अभिषिषिचुः—अभि+सिच्+लिट् प्र० पु० बहुव०=स्नान कराया, इस स्नान करने की प्रक्रिया के वर्णन में कवि की कल्पना शक्ति का एवं उत्प्रेक्षा अलंकार के भरपूर प्रयोग की सामर्थ्य का सुन्दर परिचय मिलता है। ●

**अनन्तरमुदपादि च स्फोटयन्निव श्रुतिपथमनेकप्रहतपटुपटहझल्लरी मृदङ्गवेणुवीणागीतनिनादानुगम्यमानो वन्दिवृन्द कोलाहलाकुलो भुवन विवरव्यापी स्नानशङ्खानामापूर्यमाणानामति मुखरो ध्वनिः ।**

**शब्दार्थ**—अनन्तरम् = राजा के स्नान के पश्चात् उदपादि = उत्पन्न हुई स्फोटयन्निव = फोड़ती हुई सी, श्रुतिपथम् = कर्णकुहर को अर्थात् कानों के मार्ग को। अनेकप्रहतपटुपटहझल्लरीमृदङ्गवेणुवीणागीतनिनादानुगम्यमानः = अनेकों प्रहत = बजाये गये पटुपटह = तीव्र नगाड़ों, झल्लरी = झांझ नामक प्राचीन वाद्य विशेष, मृदङ्ग = मुरज, वेणु = वंशी, वीणा एवं गीतों के निनाद = ध्वनि के द्वारा अनुगम्य मानः = अनुगमन की जाती हुई, वृन्दिवृन्दकोलाहलाकुलः = चारण समूह के कोलाहल से मिश्रित, भुवनविवर व्यापी = पृथ्वी के छिद्र और पृथ्वी लोक में व्याप्त हो जाने वाली, स्नानशङ्खानाम् = स्नान समाप्ति सूचक शङ्खों की आपूर्य्यमाणानाम् = बजाए जाते हुए, अतिमुखरः = अत्यन्त तीखी, ध्वनिः = शब्द ।

**अनुवाद**—राजा के स्नान के पश्चात् बजाए गये अनेक तेज नगाड़ों, झाँझ, मृदङ्ग, बाँसुरी, वीणा एवं गीतों की गूंज से अनुगमन की जाती हुई, चारण समूह के (स्तुतिगान जन्य) कोलाहल से मिश्रित, पृथ्वीलोक को प्राप्त करने वाली कानों को फोड़ती हुई सी, बजाये गये स्नान (समाप्ति सूचक) शङ्खों की अत्यन्त तीखी ध्वनि उत्पन्न हुई।

**भावार्थ**—राजकीय परम्परा के अनुसार राजा के स्नान कर लेने पर उसकी सूचक शङ्खों की तेज ध्वनि उत्पन्न हुई। शङ्ख ध्वनि के साथ ही अनेक प्रकार के अन्य वाद्य नगाड़ा, झाँझ, मृदङ्ग, वीणा, वंशी आदि तथा चारण गणों के स्तुति गीतों से वह ध्वनि इतनी तेज हो गई थी, मानो ऐसा लगता था कि कानों के मार्ग फट जायेंगे।

**संस्कृत व्याख्या**—अनन्तरम् राज्ञः स्नानावसाने, **अनेक प्रहत पटुपटह झल्लरी मृदङ्ग वेणु वीणा गीत निनादानु गम्यमानः**—अनेके च ते प्रहताः वादिताः पटुपटहाः तीव्राः समर्थाः वा दुन्दुभयः, झल्लर्यः वाद्यविशेषाः (हिन्द्यां 'झाँझ' 'झाल' वा) मृदङ्गाः मुरजाः, वेणवो वंश्याः, वीणाः वल्लक्यः तासां गीतानां गानानाञ्च निनादैः ध्वनिभिः अनुगम्यमानः अनुगमनं क्रियमाणः, **वन्दिवृन्द कोलाहलाकुलः**—वन्दिनां वैतालिकानां यद् वृन्दं तत्कृत स्तुतिगीतानां कोलाहलेन अस्पष्ट ध्वनिना अथवा वैतालिकानां सेवा सामग्र्यादि योजने कृत कोलाहलेन आकुलो मिश्रितः **भुवनविवरव्यापी** भुवनम् एव विवरं छिद्रमिति भुवनविवरं तं व्याप्तुं शीलमस्य, समस्त पृथ्वी तल प्रसरण शीलः अतएव **श्रुतिपथम्** कर्णकुहरं **स्फोटयन् इव** द्विधा कुर्वन्निव तीव्रत्वाद् भिन्दन्नि वेत्यभि प्रायः, **आपूर्यमाणानाम्** मुखवायुभि र्वाद्यमानानां **स्नान शङ्खानाम्** स्नानपरिसमाप्ति सूचकानां शङ्खानाम् **अतिमुखरः** अत्यधिकं तीव्रः अतिशयेन तारतरम् इत्यभिप्रायः, **ध्वनिः** शब्दः **उदपादि** उत्पन्नोऽभूत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—राज्ञः शूद्रकस्य स्नानानन्तरमेव तत्सूचकः वाद्यमान शङ्ख ध्वनिः समुत्पन्नः। यश्च अनेक वादित तीव्र दुन्दुभी झल्लरी मृदङ्ग वेणु वीणा गीतानां तथा वैतालिकानां स्तुतिजन्य कोलाहलेन च सम्मिश्रितः समस्त पृथ्वीतले प्रसरणशील तीव्रत्वात् कर्ण विवरं भिन्दन्निव च अतितीव्रः आसीत्।

**विशेष**—इस वाक्य में समस्त प्रथमा एक वचनान्त शब्द ध्वनि के विशेषण हैं। "मुख्य वाक्य है—अनन्तरं स्नान शङ्खानामति मुखरो ध्वनि रुदपादि।" **स्फोटयन्** स्फुट+णिच्+शतृ=फोड़ता हुआ। **प्रहत**—प्र+हन्+क्त=जोर से पीटे गये अर्थात् बजाये गये। **झल्लरी**-झाँझ या झाल नामक वाद्य विशेष। **अनुगम्यमान**-अनु+गम्+यक्+शानच्=अनुसरण किया जाता हुआ। **उदपादि**—उत्+पद् धातु लुङ्लकार प्र० पु० एकवचन उत्पन्न हुआ। **भुवन विवर व्यापी**=भुवन विवर=पृथ्वी का समस्त वायुमण्डल ही पृथ्वी का विवर अर्थात् छिद्र है उसमें व्याप्त होने वाला अर्थात् भर जाने वाला।

यहाँ भुवनविवरव्यापन रूप सम्बन्ध का अभाव होने पर भी सम्बन्ध का कथन करने के कारण अतिशयोक्ति अलंकार स्फोटयन्निव में क्रिया की सम्भावना के कारण क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है और इन दोनों की एक ही वाक्य में पृथक्-पृथक् तिलतण्डुलवत् स्थिति होने के कारण संसृष्टि नामक अलंकार है। ●

## शूद्रक नित्यकृत्यवर्णनम्

**एवञ्च क्रमेण निर्वर्तिताभिषेको विषधरनिर्म्मोक परिलघुनी धवले परिधाय धौतवाससी शरदम्बरैकदेश इव जलक्षालन निर्मल तनुः अति धवल जलधरच्छेदशुचिना दुकूलपटपल्लवेन तुहिन गिरिरिव गगन सरित्स्रोतसा कृतशिरोवेष्टनः सम्पादित पितृजलक्रियो मन्त्रपूतेन तोयाञ्जलिना दिवसकरमभि प्रणम्य देवगृहमगमत्।**

**शब्दार्थ**—एवञ्च=और इसी प्रकार क्रमेण=क्रमशः निर्वर्तिताभिषेकः=स्नान कर चुकने वाला विषधरनिर्मोकपरि लघुनी=सर्प की केंचुली (निर्मोक) के समान अत्यन्त सूक्ष्म पतले (परिलघुनी) धवले=श्वेत परिधाय=धारण कर या पहन कर धौत-वाससी=धुले हुए दो वस्त्रों को शरदम्बरैकदेश इव=शरद ऋतु के आकाश के एक भाग के समान जलक्षालननिर्मलतनुः=जल से धोने के कारण स्वच्छ शरीर वाला अतिधवल जलधरच्छेदशुचिना=अत्यन्त उजले (श्वेत) मेघखण्ड (जलधरच्छेद) के समान पवित्र दुकूल पट्ट पल्लवेन=रेशमी वस्त्र के विस्तार से अर्थात् अति लम्बे रेशमी वस्त्र से, तुहिनगिरिरिव=हिमालय के समान, गगनसरित्स्रोतसा=आकाश-गङ्गा के प्रवाह से कृतशिरोवेष्टनः शिर पर पगड़ी बांधे हुए संपादितपितृजलक्रियः=पितरों को पानी देने का कार्य पूर्णकर मन्त्रपूततोयाञ्जलिना=मन्त्रों से पवित्र किये गये जल की अञ्जलि से, दिवसकरम्=सूर्य को अभिप्रणम्य=प्रणाम कर देवग्रहम्=देवमन्दिर में अगमत्=गया।

**अनुवाद**—और इस प्रकार क्रम से, स्नान कर चुकने वाला, जल से प्रक्षालन के कारण स्वच्छ शरीर वाला अतएव शरद्ऋतु के आकाश खण्ड के समान (वह) सांप की केंचुल के समान अतिसूक्ष्म (पतले) श्वेत धुले हुए दो वस्त्र पहनकर, अतिशुभ्र मेघखण्ड के समान श्वेतरेशमी वस्त्र के विस्तार से, पगड़ी बांधे हुये, (अतएव) गंगा की धारा से लिपटी हुई चोटी वाले हिमालय जैसा, (वह) मन्त्रों से पवित्र जलाञ्जलि से पितरों को जल देने की क्रिया को सम्पन्न किये हुये सूर्य को प्रणाम करके देव मन्दिर में गया।

**भावार्थ**—इस प्रकार स्नान कर लेने पर जल से धुला हुआ उसका स्वच्छ शरीर शरत्कालीन स्वच्छ मेघ खण्ड के समान लग रहा था। इसके बाद उसने सांप के केंचुली के समान श्वेत एवं पतले दो रेशमी वस्त्र पहन लिये थे। और अति शुभ्र मेघ खण्ड के समान श्वेत रेशमी पगड़ी अपने सिर पर बांध ली थी अतएव वह ऐसा लग रहा था कि मानो अपनी चोटी पर गंगा की धाराओं से लपटा हुआ हिमालय हो। इसके बाद मन्त्रपूत जलाञ्जलि से पितृतर्पण क्रिया और सूर्य को प्रणाम करके देव मन्दिर में चला गया।

**संस्कृत व्याख्या—एवञ्च क्रमेण**—पूर्वोक्तरीत्या च, **निर्वर्त्तिताभिषेक**+निर्वर्तितः सम्पादितः अभिषेकः स्नानं येन स तादृशो राजा, **विषधरनिर्म्मोक परिलघुनी**+धरन्तीति धराः, विषस्य धराः विषधराः सर्पाः तेषां निर्म्मोकाः कञ्चुकाः तद्वत् परिलघुनी अत्यन्त सूक्ष्मे **धवले** शुभ्रे च **धौतवाससी** धौते प्रक्षालिते च ते वाससी वस्त्रे **परिधाय** धारणं कृत्वा, **जलक्षालननिर्मल तनुः** जलेन क्षालनं जलक्षालनम्, जलक्षालनेन निर्मला तनुर्यस्य सः जलस्नानेन स्वच्छ शरीरः सः **शरदम्बरैकदेश** इव शरदि वर्षापगमे अम्बरस्य आकाशस्य एकदेश इव एक भाग इव शोभमानः यथाकाशः जलेन क्षालितः सन् शरदि निर्मलतनुर्भवति तथाऽयं राजाऽपि सलिल स्नानेन स्वच्छ शरीरोऽभवत् **अतिधवल जलधरच्छेद शुचिना**—अतिशयेन धवलोऽति धवलः अतीव शुभ्रो यो जलधर च्छेदः मेघखण्ड स्तद्वत् शुचिना धवलेन पवित्रेण वा **दुकूल पटपल्लवेन** दुकूलपटस्य क्षौम-वस्त्रस्य पल्लवेन विस्तरेण अतिविस्तृत क्षौमवस्त्रेणेत्यभिप्रायः (अतएव) **गगनसरित् स्रोतसा** गगनसरितः आकाश गङ्गायाः स्रोतसा प्रवाहेण **तुहिनगिरिः** इव हिमालय इव **कृतशिरोवेष्टनः** कृतं विहितं रचितं वा शिरोवेष्टनं शीर्षाच्छादनं येन सः कृतोष्णीष इत्यर्थः सः **सम्पादित पितृजलक्रियः**—सम्पादिता विहिता वा पितृजलस्य तर्पणस्य क्रिया येन सः, **मन्त्रपूतेन** वेदमन्त्रोच्चारेण पवित्रीभूतेन **तोयाञ्जलिना** जलाञ्जलिना हस्तसम्पुटस्थितेन पवित्रेण जलेने त्यभिप्रायः **दिवसकरम्** सूर्यम् **अभिप्रणम्य** नमस्कृत्य **देवगृहम्** देवमन्दिरम् **अगमत्** अगच्छत्।

**संस्कृत सरलार्थ**—पूर्वोक्त प्रकारेण स्नानविधिं समाप्य सर्प-कञ्चुकवदति सूक्ष्मे स्वच्छे प्रक्षालित वसने परिधाय, स्नानजलप्रक्षालनेन निर्मलशरीरः अतएव शरत्कालीनमेघखण्ड इव दृश्यमानः तथा अतिशुभ्रमेघखण्डवद्धवलेन क्षौमवस्त्र विस्तरेण कृतोष्णीषः अतएव आकाश गङ्गा प्रवाहेण शिखरदेशाश्लिष्टः हिमालय इव

प्रतीयमानः सः कृतपितृतर्पणक्रियः, वेदमन्त्रपवित्रीकृतेन जलञ्जलिना सूर्यम् सम्मुखं प्रणम्य मन्त्रपूत मर्घ्यरूपं जलं तस्मै समर्प्य च देव मन्दिरमगच्छत् ।

विशेष—इसव ाक्य का मुख्यांश इस प्रकार है—"एवञ्च क्रमेण निर्वर्तिताभिषेकः (स) देवगृहमगमत् ।" विषधर निर्मोक परिलघुनी सर्प की केंचुली के समान अत्यन्त हलके फुलके । यहां उपमा अलंकार है । धौतवाससी परिधाय = धुले हुए दो वस्त्र पहन कर, देव पूजा आदि पवित्र कार्यों का सम्पादन करते समय दो वस्त्रों को धारण करने की अनिवार्यता की प्रतीति होती है, आह्निक सूत्रावली में इस नियम का उल्लेख है—

"होम देवार्चनाद्यासु क्रियासु पठने तथा ।
नैकवस्त्रः प्रवर्त्तेत यत्नतः सर्वथा बुधः ॥"

इसी प्रकार यज्ञ-हवनादि कार्यों में पगड़ी का धारण करना भी अनिवार्य था :

"उष्णीषेण बिना राजन् ! होमं चेत्कुरुते नरः ।
होतुश्चक्षुर्विनाशः स्याद् होता च विकलो भवेत् ॥"

अतः राजा शूद्रक ने अपने शिर पर शुभ्र मेघ खण्ड के समान लम्बे श्वेत रेशमी कपड़े से पगड़ी बांध ली थी । उस समय उसकी शोभा आकाश गङ्गा से परिवेष्टित हिमालय जैसी थी । दुकूलपटपल्लवेन इस पद में 'पल्लव' शब्द के विस्तार एवं पत्र (कोंपल) दो अर्थ होने के कारण दो प्रकार की व्याख्या विद्वानों ने की है—१-रेशमी वस्त्र रूपी पल्लव । २—रेशमी वस्त्र का विस्तार अर्थात् पगड़ी के योग्य लम्बा रेशमी वस्त्र । सम्पादित पितृजलक्रियः—सम्पादिता पितृ जलस्य क्रिया येन सः (वह) पूर्ण कर ली है पितृ जल अर्थात् पितरों के तर्पण की क्रिया जिसने ऐसा राजा शूद्रक । हिन्दू धर्माचार में स्नान के पश्चात् तर्पण की व्यवस्था का उल्लेख है—

"स्नात्वा सन्तर्पयेद् देवान् पितृंश्च मानवांस्तथा । इसी प्रकार अर्घ्य देने की विधि में सर्वप्रथम सूर्य को अर्घ्य देने का उल्लेख है—

"अर्घ्यं दद्यात्तु प्रथमं भास्कराय महात्मने ।
ततो विष्णुं शिवं शान्तः शिवाञ्चैव प्रपूजयेत् ॥"

अतः राजा ने तर्पण कार्य के पश्चात् भगवान् सूर्य को अर्घ्य (तोयाञ्जलि) दी पश्चात् देवमन्दिर में पूजार्थ गया ।

'शरदम्बरैक देश इव' में पूर्णोपमा अलंकार है तो अतिधवल जलधरच्छेदशुचिना में लुप्तोपमा पुनः तुहिन गिरिरिव में पूर्णोपमा अलंकार है ।

उपरचितपशुपतिपूजश्च निष्क्रम्यदेव गृहान्निर्वर्त्तिताग्निकार्यो विलेपनभूमौ झङ्कारिभिरलिकदम्बकैरनुबध्यमानपरिमलेन मृगमदकर्पूर कुङ्कुमवाससुरभिणा चन्दनेनानुलिप्तसर्वाङ्गो विरचितामोदि मालतीकुसुम शेखरः कृतवस्त्रपरिवर्तः रत्नकर्णपूरमात्राभरणः समुचितभोजनैः सह भूपतिभिराहारमभिमत रसास्वादजातप्रीतिरवनिपो निर्वर्तयामास ।

**शब्दार्थ**—उपरचित पशुपतिपूजश्च=शिव की पूजा करके, निष्क्रम्य=बाहर निकलकर देवगृहात्=देव मन्दिर से निर्वर्त्तिताग्निकार्यः=यज्ञ (हवन) कार्य को पूर्ण कर, विलेपनभूमौ=प्रसाधन कक्ष में, झङ्कारिभिः=गुञ्जन करने वाले अलिकदम्बकैः =भ्रमर समूह के द्वारा अनुबध्यमानपरिमलेन=सेवन किये जाते हुए सुगन्धि वाले, मृगमदकर्पूर कुङ्कुमवास सुरभिणा=कस्तूरी (मृगमद) कपूर और केशर की सुगन्धि से सुवासित चन्दनेन=चन्दन से अनुलिप्त सर्वाङ्गः=लेप किये समस्त अङ्गों वाले, विरचितामोदिमालती कुसुमशेखरः=सुगन्धित मालती पुष्पों से शिर का आभूषण बना कर अर्थात् शिर में या गले में मालती पुष्प की माला धारण कर कृतवस्त्रपरिवर्तः कपड़े बदल कर रत्नकर्णपूरमात्राभरणः=रत्नों से जटित केवल कान का आभूषण (कर्णफूल) पहने हुए, समुचितभोजनैः=उचित भोजन वाले अर्थात् जिनके साथ भोजन करना राजा के लिए उचित है ऐसे भूपतिभिःसह=सामन्त राजाओं के साथ आहारम् भोजन को यथाभिमतरसास्वादजातप्रीतिः=अपने मनोऽनुकूल रसों का आस्वाद लेते हुए सन्तुष्ट होकर। अवनिपः=पृथ्वीपति राजा शूद्रक निर्वर्तयामास=सम्पन्न किया अर्थात् भोजन किया।

**अनुवाद**—भगवान् शिव की पूजा कर, देव मन्दिर से निकल कर, होमादि अग्नि कार्य सम्पन्न कर, प्रसाधन कक्ष में, गुञ्जन करने वाले भ्रमर समूह के द्वारा सेवन किये जाते हुये सौरभ वाले कस्तूरी कपूर और केशर की सुगन्धि से सुवासित चन्दन से लेप किये गये समस्त अंगों वाले, सुगन्धित मालती पुष्पों से शिरोभूषण बनाये हुये, वस्त्रों को बदले हुये, रत्न जटित केवल कर्ण भूषण धारण किये हुये (साथ में) भोजन के योग्य सामन्त राजाओं के साथ इच्छानुकूल रसों के आस्वाद से परितृप्त होकर राजा ने भोजन सम्पन्न किया।

**भावार्थ**—इसके बाद भगवान् शिव की पूजा की, और मन्दिर से बाहर आकर अग्नि होत्रादि कर प्रसाधन भूमि में गया, वहाँ सुगन्धिवश मंडराते हुये भ्रमरों से सेवित सुगन्धि वाले कस्तूरी कपूर केशर से सुवासित चन्दन से सर्वाङ्ग में लेप किया तथा मालती पुष्पों की माला धारण कर वस्त्रों को बदल कर, केवल रत्न जटित कर्णाभरण धारण कर साथ में भोजन करने योग्य सामन्त राजाओं के साथ इच्छानुकूल रसास्वादन पूर्वक तृप्त होकर भोजन क्रिया समाप्त की।

**संस्कृत व्याख्या**—उपरचित पशुपति पूजश्च उपरचिता पशुपतेः शिवस्य पूजा अर्चना येन स विहित शिवार्चनः, देवगृहात् देवमन्दिरात् निष्क्रम्य बहिरागत्य, निर्वर्त्तिताग्निकार्यः निर्वर्त्तितं सम्पादितम् अग्नेः कार्यं होमादिकार्यं येन स तादृशः, विलेपनभूमौ विलेपनस्याङ्गरागादिधारणस्य भूमौ स्थाने, झङ्कारिभिः गुञ्जनं कुर्वद्भिः अलिकदम्बकैः भ्रमर समूहैः अनुबध्यमानपरिमलेन अनुबध्यमानः सेव्यमानः सुगन्धातिशयाद्भ्रमरगणैरनुगम्यमानः परिमलः सौरभं यस्य तेन तथोक्तेन तथा मृगमद् कर्पूर कुंकुमवास सुरभिणा—मृगमदः कस्तूरी च कर्पूरश्च कुंकुमश्च केशरश्चेति मृगमद कर्पूर कुंकुमाः तेषां वासेन परिमलेन सुरभिणा सुगन्धिना चन्दनेन मलयजेन अनुलिप्त

**सर्वाङ्गः** अनुलिप्तानि सम्यक् लेपितानि सर्वाङ्गानि समस्त शरीरावयवा येन स तादृशः **विरचितामोदि मालती कुसुम शेखरः** विरचितः रचनाविशेषेण निर्मितः आमोदिभिः सुगन्धिमदिभः मालती कुसुमैः जातीपुष्पैः शेखरः शिरोभूषणं येन स तादृशः, **कृतवस्त्रपरिवर्तः** कृतो विहितःवस्त्रयोः परिवर्तः परिवर्तनं येन सः तादृशः, **रत्नकर्णपूरमात्राभरणः** रत्नकर्णपूरमात्रं रत्नजटितं कर्णपूरमेव आभणं यस्य स तादृशः, **समुचित भोजनैः** समुचितं योग्यं समानकुलगुणावस्थादिकारणादेकपंक्तौ भोजनम् अशनं येषां तैस्तयोक्तैः **भूपतिभिः सह** सामन्तनृपतिभिः सार्धम् **अभिमतरसास्वादजातप्रीतिः** अभिमताः अभिलषिताः रसाः मधुराम्लादिरसाः तेषाम् आस्वादेन ग्रहणेन जातप्रीतिः जाता जनिता प्रीतिः सन्तुष्टिर्यस्य स, तादृशः, **अवनिपः** अवनीं पृथ्वीं पाति रक्षतीति अवनिपः राजा शूद्रकः आहारं भोजनविधिं **निर्वर्त्तयामास** सम्पादयामास ।

**संस्कृत सरलार्थ**—विहित शिवार्चनः देव मन्दिराद् वहिरागत्य, सम्पादिताग्निहोत्रादि क्रियः, प्रसाधनभूमिमुपेत्य, गुञ्जदिभः भ्रमरसमूहै रासेवितसौरभेण, कस्तूरिका-कर्पूर केशर सुगन्धि सुरभिमता चन्दनेन कृतसर्वाङ्गाङ्गरागः, परिमलवद्भिः जातीकुसुमैः विचरितशिरोभूषणः, विहितपूर्वपरिहितवस्त्रपरिवर्तः, केवलं रत्नावचितकुण्डलाभरणः, सहभोज योग्यसामन्तनृपतिभिः सह अभिलषितमधुरादि रसास्वादनप्राप्तसन्तुष्टिः स भूपतिः शूद्रकः भोजनं सम्पादयामास ।

**टिप्पणी**—इस वाक्य का मुख्यांश इस प्रकार है—"**अवनिपः आहारं निर्वर्त्तयामास**"=राजा ने भोजन किया । पशुपति=भगवान् शङ्कर—"शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः" इत्यमरः । भारतीय संस्कृति में देवपूजन की परम्परा का विशेष महत्त्व है, इसीलिये भोजन से पूर्व शिवपूजन की अनिवार्यता का कथन किया गया है—

"असंपूज्य शिवं मोहाद्ये नरा भुञ्जतेऽन्वहम् ।
सौख्यं नैवाप्नुवन्तीह भग्नाशाः पर्य्यटन्ति ते" ॥

इसीलिये बाणभट्ट ने राजा शूद्रक से भोजन से पूर्व शिव पूजन कराया है । **निष्क्रम्य**—निस्+क्रम्+(क्त्वा) ल्यप्=निकलकर । **निर्वर्तितेति**—यावज्जीव मग्निहोत्रं जूहुयादिति श्रुतिः अतः अग्नि होत्र कार्यस्य नित्यत्वं प्रतिपाद्यते । **विलेपनभूमि**—विशेषेण लिप्यतेऽनेनेति विलेपनम्=प्रसाधन के उपकरण विलेपस्य भूमिः प्रसाधन क्रियायै नियतं स्थानम् अर्थात् प्रसाधन कक्ष (सज्जागृह) जहाँ शारीरिक शोभा के उपकरण अङ्गराग, आभूषण आदि रखे रहते हैं । **विरचितामोदि मालती कुसुमशेखरः**—विरचितः आमोदिभिः मालती कुसुमैः शेखरो येन सः सुगन्धित मालती फूलों का शिरोभूषण धारण कर । यहाँ प्रायः टीकाकारों ने "शिरोभूषण बनाकर" इस प्रकार का अर्थ किया है, विद्योतिनी टीकाकार ने "मस्तक पर विशेष ढङ्ग से मालती के फूलों की चोटी बनाई" इस प्रकार का अनुवाद किया है । प्राचीनकाल में राजा लोग अनेक प्रकार के आभूषण धारण करते थे इसमें सन्देह नहीं किन्तु वे अपने शिर के बालों में या मस्तक पर फूलों का शृंगार करते थे उचित प्रतीत नहीं होता इस

प्रकार के शृंगार की परम्परा स्त्रियों में ही थी। यहाँ मालती कुसुम शेखरः में 'शेखर' शब्द शिरोभूषण वाची है शिरोभूषण गले में पहनी हुई माला भी हो सकती है। अतः शाब्दिक अनुवाद के स्थान पर भावार्थक प्रयोग ही मानना चाहिए एवं इसका अर्थ इस प्रकार करना चाहिए—"(राजा ने) सुगन्धित मालती पुष्पों की माला गले में (या शिर में) धारण की"। **अनुबध्यमान**—अनु+बन्ध्+यक्+शानच्। **समुचित भोजनैः** यह 'भूपतिभिः' का विशेषण है राजा के साथ सभी लोग भोजन नहीं कर सकते थे अतः 'समुचित भोजनैः' का तात्पर्य है—"**अपने कुल के समान कुलीनः सदाचारी, गुणी एवं समवयस्क होने के कारण एक साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने योग्य**"।

इस वाक्य से तत्कालीन राजाओं के नित्यकर्म का संक्षिप्त परिचय प्राप्त होता है। अनुप्रास अलंकार के प्रयोग से पदों में लालित्य की सृष्टि हुई है। ●

## सभामण्डपगमनम्

**परिपीतधूमवर्त्तिरुपस्पृश्य च गृहीत ताम्बूल स्तस्मात् प्रमृष्टमणि-कुट्टिम प्रदेशादुत्थाय नाति दूर वर्त्तिन्या ससम्भ्रम प्रधावितया प्रतीहार्या प्रसारितं बाहुमवलम्ब्यानवरतवेत्रलताग्रहणप्रसङ्गादतिजरठकिसलयानुकारि करतलं करेण, अभ्यन्तर सञ्चार समुचितेन परिजनेनानुम्यमानः, धवलांशुक परिगतपर्यन्ततया स्फटिकमणिमय भित्ति बद्धमिवोपलक्ष्यमाणम्, अतिसुर-भिणा मृगनाभि परिमलेनामोदिना चन्दनवारिणा सिक्त शिशिर मणिभूमिम्........।**

**शब्दार्थ**—उपस्पृश्य च=और आचमन करके, **परिपीतधूमवर्त्तिः**=धूम्रवर्ति विशिष्ट सुगन्धित औषधियों की बनी वर्तिका, अर्थात् सिगरेट पीकर, **गृहीतताम्बूलः**=पान लिए हुए, **तस्मात्**=उस, **प्रमृष्टमणिकुट्टिमप्रदेशात्**=धुले पुंछे हुए मणि जटित फर्श वाले स्थान से, **उत्थाय**=उठकर, **नातिदूरवर्तिन्या**=बहुत दूर नहीं अपितु समीप ही विद्यमान, **ससम्भ्रम प्रधावितया**=हड़बड़ा कर दौड़ी हुई, **प्रतीहार्य्या**=प्रतीहारी, सेविका के द्वारा **प्रसारितम्**=फैलाई गई, पसारी गई, **बाहूम्**=भुजा को, **अवलम्ब्य**=पकड़ कर अर्थात् हाथ का सहारा लेकर, **अनवरतवेत्रलताग्रहणप्रसङ्गात्**=निरन्तर (राजकीय नियमानुसार) बेंत की छड़ी पकड़े रहने के कारण, **अतिजरठकिसलयानुकारि करतलम्**—अत्यन्त कठोर पत्ते (किसलय) का अनुकरण करने वाली हथेली से युक्त (भुजा को) **करेण**=(अपने) हाथ से। **अभ्यन्तरसञ्चारसमुचितेन**=अभ्यन्तर=भीतर अर्थात् अन्तःपुर में सञ्चार, समुचितेन=जाने के योग्य, **परिजनेन**=सेवकजनों के द्वारा, **अनुगम्यमानः**=अनुगमन किया जाता हुआ (राजा) **धवलांशुकपरिगत-पर्य्यन्ततया**=श्वेत रेशमी वस्त्रों से घिरे हुए किनारों वाले होने के कारण, **स्फटिक-मणिमयभित्तिनिवद्धमिव**=स्फटिक मणियों से बनी दीवारों से निर्मित हुआ सा, **उपालक्ष्यमाणम्**=दृष्टिगोचर होने वाले, **अति सुरभिणा**=अत्यन्त सुगन्धित, **मृगनाभि परिमलेन**=कस्तूरी से सम्मिश्रित, **आमोदिना**=सुगन्धि युक्त, **चन्दनवारिणा**=चन्दन

के जल से, सिक्तशिशिरमणिभूमिम् = धुली होने के कारण शीतल हुई मणिजटित भूमि वाले········(आस्थान मण्डप में गया)।

अनुवाद—(भोजनानन्तर) आचमन करके, तथा ताम्बूल ग्रहण करके और (मुख सुगन्धि के लिये) धूमवर्तिका (सिगरेट या सिगार को) पूर्णतः पीकर, उस (जलादि से) परिष्कृत मणिमय वेदिका से उठकर, थोड़ी दूर पर स्थित, और वेगपूर्वक दौड़कर आई हुई प्रतीहारी द्वारा फैलायी गयी (तथा) निरन्तर बेंत की छड़ी ग्रहण करने के अभ्यास से अति पुराने पत्ते के समान करतल वाली भुजा का (अपने) हाथ से सहारा लेकर, अन्तःपुर में आने जाने योग्य सेवकों से अनुगमित होता हुआ, (वह) शुभ्र रेशमी वस्त्रों से परिवेष्टित किनारों वाला होने के कारण, स्फटिक मणियों से निर्मित भित्तियों से रचित जैसे दिखलाई पड़ने वाले, अति सुगन्धित कस्तूरी की सुगन्धि से सुगन्धित चन्दन मिश्रित जल से सिञ्चित अतएव शीतल मणिमय भूमि वाले ················आस्थान मण्डप में गया।

भावार्थ—भोजन के पश्चात् आचमन कर तथा ताम्बूल लेकर और एक प्रकार की सिगरेट जैसी सुगन्धित द्रव्यों से बनी धूमवर्तिका को पीकर और की उस परिष्कृत मणिमय फर्श से उठकर वह पास ही स्थित और तत्काल दौड़कर उपस्थित हुई प्रतीहारी द्वारा फैलाई गयी भुजा का अपने हाथ से सहारा लेकर तथा अन्तःपुर में आने जाने योग्य सेवकों के द्वारा अनुगमित होकर वह राजा सभा मण्डप की ओर चला गया। प्रतीहारी की वह भुजा, निरन्तर वेत्रलता ग्रहण किये रहने के अभ्यास से अति कठोर पुराने पल्लव के समान हथेलियों वाली थी। उस सभा मण्डप के चारों ओर उजले रेशमी परदे पड़े हुए थे जिससे वह स्फटिक मणि रचित दीवारों से बना हुआ सा प्रतीत हो रहा था और मणि निर्मित वह आस्थान मण्डप की भूमि कस्तूरी मिश्रित अति सुगन्धित चन्दन जल से सिञ्चित होने के कारण अति शीतल थी।

संस्कृत व्याख्या—भोजनानन्तरम् आचमनं कृत्वा ताम्बूलं च गृहीत्वा, **परिपीत धूमवर्त्तिः**—परिपीता मुखसौगन्ध्याय मुखेन परितः पीता धूमवर्त्तिः सुगन्धितद्रव्य विशेषैर्निर्मिता अग्नि संयोगेन धूमयुक्ता वर्त्तिका येन स तथोक्तः, **तस्मात्** पूर्वोल्लिखिताद् भोजन स्थलात् **प्रमृष्टमणिकुट्टिम प्रदेशात्**—प्रमृष्टः सलिलादिना सम्यक् परिमार्जितो यो मणिकुट्टिमप्रदेशः रत्नजटितवद्धभूमिस्तस्मात् **उत्थाय** उत्थानं विधाय **नातिदूरवर्तिन्या** दूरे वर्तते या सा दूरवर्तिनी नातिदूरे वर्तते अपितु समीप एवास्ते या सा तया समीपवर्तिन्या इत्यभिप्रायः, **ससम्भ्रमप्रधावितया**—सम्भ्रमेण सत्रासेन प्रधावितया शीघ्रतया गच्छन्त्या **प्रतीहार्य्या** द्वारपालिकया सेविकया **प्रसारितं** राजानमभि विस्तारितम्, **अनवरत वेत्रलता ग्रहण प्रसङ्गात्**—अनवरतं निरन्तरं यथा स्यात्तथा वेत्रस्य वेतसस्य लता कोमला यष्टिस्तस्या ग्रहणं धारणं तस्य प्रसङ्गात् अभ्यासात् निरन्तरवेत्रयष्टि धारणाभ्यासादित्यर्थः **अतिजरठ किसलयानुकारि करतलम्** अतिजरठमतीव कर्कशं यत्, किसलयं परिणतं पत्रं तनुकर्तुं शीलमस्य तत् तादृशं करतलं पाणितलं यस्य तत्तथोक्तं प्रतीहार्य्याः **बाहुं** भुजम् **करेण** स्व हस्तेन, **अवलम्ब्य**

गृहीत्वा, अभ्यन्तरसञ्चारसमुचितेन अभ्यन्तरं गृहस्यान्तः पुरं सर्वजनगमनायोग्य मित्यर्थः तत्र यः सञ्चारः गमनागमनं तत्र समुचितेन योग्येन **परिजनेन** सेवक वर्गेण **अनुगम्यमानः** अनुस्रियमाणः, **धवलांशुकपरिगतपर्य्यन्ततया** धवलानि शुभ्राणि यानि अंशुकानि क्षौमवस्त्राणि तैः परिगताः परिवेष्टिताः पर्य्यन्ताः प्रान्त भागाः यस्य तस्य भावस्तया **स्फटिकमणिमयभित्तिनिबद्धम्** स्फटिकमणिमयाः शुभ्रस्फटिकमणिनिर्मिताः याः भित्तयस्ताभिर्निबद्धम् निर्मितम् इव **उपलक्ष्यमाणम्** अवलोक्यमानम्, **अतिसुरभिणा** अत्यन्त सुगन्धिमता **मृगनाभि परिमलेन** मृगनाभिः कस्तूरी तस्याः परिमलेन गन्धेन आमोदिना अतिशय घ्राणतर्पणेन सुगन्धिमता **चन्दनवारिण**, चन्दन मिश्रित जलेन **सिक्तशिशिरमणिभूमिम्** सिक्ता सिञ्चिता अतएव शिशिरा शीतला मणि भूमिः रत्ननिर्मिता भूर्यत्र तं तथोक्तम् आस्थान मण्डपमयासीदिति शेषः।

**संस्कृत सरलार्थ**—भोजनानन्तरम् जलेना चमनं विधाय, ताम्बूलञ्च गृहीत्वा मुखसौगन्ध्याय अनेकसुगन्धितद्रव्यविशेषनिर्मितायाः धूम्रवर्तिकायाश्च पानं कृत्वा, तस्मात् सलिलादिना परिष्कृतमणिमयबद्धस्थला दुत्थाय, समीपवर्तिन्या ससत्वरमागतया प्रतीहार्य्या राजाभिमुखं विस्तारितम्, निरन्तरवेत्रयष्टिधारणाभ्याशा दति कर्कश पल्लवानुकारि हस्ततलम् बाहुम् स्वकीयेन करेण समवलम्ब्य, बाह्यजनागम्ये गृहाभ्यन्तरे गमनागमनयोग्येन सेवकलोकेनानुव्रज्यमानः, निर्मलांशुकपरिवेष्टितप्रान्त भागतया स्फटिक मणिमयं कुड्यरचित मिवावलोक्यमानम् अति सुरभिमता कस्तूरिका परिमलेन अत्यन्त सुगन्धिना चन्दन मिश्रित जलेन सिञ्चित शीतल मणि-भूमिम्·······आस्थान मण्डप मयासीत्।

**टिप्पणी = उपस्पृश्य**—आचमन करके, भोजनोत्तर आचमन करना आवश्यक है जैसा कि यह नारद वचन है—

"सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वाऽनृतं वचः।
पीत्वाऽपोऽध्येष्यमाणश्चाचामेत् प्रयतोऽपि सन्॥

"उपस्पर्शस्त्वाचमनम्" इत्यमरः **धूम्रवर्ति**—धुएँ की बत्ती, यह एक प्रकार की आधुनिक सिगरेट का ही प्राचीन नाम है। अगर, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से बनाई जाती है। **प्रमृष्ट**—धोया गया या साफ किया गया। **बद्धमिवोपलक्ष्यमाणम्**—यहाँ क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। राजाओं के अत्यन्त वैभव का वर्णन करने की दृष्टि से सर्वत्र 'मणिकुट्टिम' रत्नजटित भूमि का उल्लेख बारम्बार कवि ने किया है।

**अविरलविप्रकीर्णेन विमलमणिकुट्टिमगगनतल तारागणेनेव कुसुमोपहारेण निरन्तरनिचितम्, उत्कीर्णशालभञ्जिकानिवहेन सन्निहित-गृहदेवतेनेव गन्धसलिलक्षालितेन कलधौतमयेन स्तम्भसञ्चयेन विराजमानम्, अतिबहलागुरूधूपपरिमलम्, अखिलविगलित जलनिवहधवलजलधर-शकलानुकारिणा कुसुमामोदवासित प्रच्छदपटेन, पट्टोपधानाध्यासित शिरोधाम्ना मणिमयप्रतिपादुका प्रतिष्ठितपादेन पार्श्वस्थरत्नपादपीठेन तुहिनगिरि शिलातल सदृशेन शयनेन सनाथीकृतवैदिकं भुक्त्वा ऽऽस्थान-मण्डपमयासीत्।**

**शब्दार्थ**—**अविरलविप्रकीर्णेन**=सघन रूप से बिखरे हुये, **विमलमणिकुट्टिम गगनतलतारागणेन इव**=विमल=स्वच्छ, **मणिकुट्टम्**=रत्नजटित फर्श रूपी, **गगनतल**=आकाशपटल पर, **तारागणेन इव**=नक्षत्र समूह के समान, **कुसुमोपहारेण**=पुष्प समूह से, **निरन्तरनिचितम्**=पूर्णरूपेण भरे हुए, **उत्कीर्णशालभञ्जिका निवेहन**=खुदी हुई (उत्कीर्ण) पुतलियों (शालभञ्जिका) के समूह के कारण मानो, **सन्निहित गृहदेवतेन इव**=समीप स्थित गृहदेवियों से युक्त जैसा, **गन्धसलिल क्षलितेन**=सुगन्धित जल से धोये हुये, **कलधौतमयेन**=सुवर्ण से बनाये गये, **स्तम्भसञ्चयेन**=स्तम्भों के समूह से, **विराजमानम्**=सुशोभित, **अतिबहलागुरुधूपपरिमलम्**=अत्यधिक अगुरु की धूप की सुगन्धि वाले, **अखिलविगलितजलनिवहधवल जलधर शकलानुकारिणा**=सम्पूर्ण जल के पूर्णतः वरस् जाने से (अखिलविगलितजलनिवह) श्वेत मेघखण्ड (धवलजलधरशकल) का अनुकरण करने वाले, (एवं) **कुसुमामोदवासित प्रच्छदपटेन**=फूलों की सुगन्धि से सुवासित (कुसुमामोदवासित) चादर वाले (प्रच्छदपटेन), **पट्टोपधानाध्यासित शिरोधाम्ना**=रेशमी (पट्ट) तकिये (उपधान) से युक्त सिरहाने वाले, **मणिमयप्रतिपादुका प्रतिष्ठितपादेन**=मणियों से बनी (मणिमय) आधार चौकियों (प्रतिपादुकां) पर रखे गये पावों वाले, **पार्श्वस्थरत्नपाद-पीठेन**=इस उस ओर अर्थात् अगल बगल में विद्यमान रत्नजटित पावदान (पादपीठ) वाले, **तुहिनगिरिशिलातल सदृशेन**=हिमालय पर्वत के शिलाखण्ड के समान (शुभ्र), **शयनेन**=पलंग (शय्या) से, **सनाथीकृतवेदिकं**=युक्तवेदिका (मध्य भाग) वाले, **आस्थानमण्डपम्**=सभा भवन में, **अयासीत्** =गया ।

**अनुवाद**—(राजा शूद्रक भोजनानन्तर उस सभा भवन में गया) जो कि, सघन रूप से बिखरे हुये, स्वच्छ रत्नजटित फर्श रूपी आकाश पर (बिखरे हुये) तारागण सदृश, फूलों के समूह से, सघनता से भरे हुये, खुदी हुई पुतलियों के समूह वाले (अतएव) निकटस्थ भवनाधिष्ठात्री देवियों जैसे (तथा) सुगन्धित जल से प्रक्षालित स्वर्णमय स्तम्भों के समूह से सुशोभित, अत्यधिक कृष्णागुरू की धूप की सुगन्धि वाले, समस्त जलराशि के वरस चुकने से श्वेत मेघखण्ड का अनुकरण करने वाले (तथा) फूलों के सुगन्धि से सुवासित् चादर वाले, रेशमी तकिये से युक्त सिरहाने वाले, मणिमय आधार पीठ पर रखे गये (शयन-पलंग) के पावों वाले, वगल में रखे हुए रत्नजटित पावदान वाले, हिमालय की शिलातल के सदृश (शुभ्र) शैय्या से मध्य भाग वाले सभामण्डप में गया ।

**भावार्थ**—राजा भोजनान्तर सभामण्डप में गया जिस सभामण्डप के फर्श पर घने फूल बिछे थे वे ऐसे लग रहे थे जैसे आकाश में तारों का समूह विखरा हुआ हो, चारों ओर अनेक स्वर्ण-स्तम्भों पर अनेक प्रकार की पुत्तलिकाएँ उत्कीर्ण थीं ऐसा लग रहा था मानों गृहदेवियाँ समीप में उपस्थित हो गई हों । बीच में एक पलंग था जिस पर बिछी श्वेत चादर वर्षा के बाद श्वेत मेघखण्ड जैसी लग रही थी जो अनेक पुष्पों की सुगन्ध से सुवासित कर दी गई थी । पलंग के सिरहाने की ओर रेशमी

तकिया रखा था एवं उस पलंग के पाये रत्नों की बनी चार चौकियों पर रखे थे एवं उनके बगल में रत्नमय पावदान थे। अतः वह पलंग हिमालय पर्वत की हिमाच्छादित एक शिला सा शुभ्र प्रतीत हो रहा था।

**संस्कृत व्याख्या—अविरलविप्रकीर्णेन**—अविरलं सान्द्रं सघनरूपेणेत्यर्थः विप्रकीर्णेन मणिकुट्टिमे सर्वतः शोभार्थं विक्षिप्तेन (तथा) **विमलमणिकुट्टिमगगनतलतारागणेनेव**—विगतंमलं यस्य तत् विमलं स्वच्छं यत् मणिकुट्टिमं रत्नबद्धभूमिस्तदेव गगनतलम् आकाशमण्डलं तत्र तारागणेन इव नक्षत्रमण्डलेनेव, **कुसुमोपहारेण** पुष्पसमूहेन, **निरन्तरनिचितम्** निरन्तरम् अनवरतमविच्छिन्नतयेत्यभिप्रायः निचितं व्याप्तम् (आस्थानमण्डपस्य विशेषणम्), **उत्कीर्णशालभञ्जिकानिवहेन** उत्कीर्णाः उत्खननं कृत्वा विनिर्मिताः याः शालभञ्जिकाः पुत्तलिकास्तासां निवहः पुञ्जो यत्र तथाभूतेन अतएव **सन्निहितगृहदेवतेनेव** सन्निहिताः निकटस्थिताः गृहदेवताः भवनाधिष्ठात्र्यो देव्यः यस्मिन् तथाविधेन इव स्थितेन, **गन्धसलिलक्षालितेने** गन्धसलिलैः चन्दनकस्तूर्यादि मिश्रित वारिभिः क्षालितेन धौतेन **कलधौतमयेन** सुवर्णमयेन **स्तम्भनिचयेन** स्तम्भ समूहेन **विराजमानम्** विशेषेण शोभमानम्; **अतिवहलागुरुधूपपरिमलम्** अतिबहलम् अत्यधिकम् योऽगुरूः तस्य धूपस्य परिमलः सौरभं यस्मिस्तत् तादृशम्; **अखिल विगलित जलनिवह धवलजलधरशकलानुकारिणा**—अखिलः सम्पूर्णो विगलितो वर्षणेन निर्गतो जलनिवहः पानीय समुदायो यस्मात् सः अतएव धवलः शुभ्रो यो जलधरो मेघस्तस्य शकलं खण्डमनुकर्तुं शीलं यस्य तेन, तथोक्तेन **कुसुमामोदवासितप्रच्छदपटेन**—कुसुमानां पुष्पाणाम् आमोदेन सौगन्ध्येन वासितः सुरभीकृतः प्रच्छदपटः शय्याच्छादनवस्त्रं यस्य स तेन, तादृशेन **पट्टोपधानाध्यासितशिरोधाम्ना** पट्टस्य क्षौमवस्त्रस्य यत् उपधानम् उच्छीर्षकं तेन पट्टोपधानेन अध्यासितम् आश्रितम् शिरोधाम शिरः स्थापनस्थलम् (सिरहाना इति हिन्द्याम्) यस्य स तेन तादृशेन, **मणिमयप्रतिपादुका प्रतिष्ठितपादेन**—मणिमयीषु रत्नजटितासु प्रतिपादुकासु पर्य्यङ्कपादस्थापनाय निर्मिताधारपीठेषु प्रतिष्ठिताः स्थिताः पादाः पर्य्यङ्कपादा यस्य स तेन, तादृशेन **पार्श्वस्थरत्नपादपीठेन** पार्श्वस्थं निकटस्थं पर्य्यङ्कस्योभयोरपि पार्श्वयो रित्यर्थः, राज्ञः आरोहणावरोहणाय पार्श्वभागे स्थापितं रत्नपादपीठम् मणिपादासनं **रत्नपादपीठे मणिजटित चरणासने** (पावदान इति भाषायाम्) यस्य स तेन, तादृशेन **तुहिनगिरिशिलातलसदृशेन** तुहिनगिरेः हिमालयपर्वतस्य यत् शिलातलं हिमाच्छादित शिलाखण्डम् तत्सदृशेन तन्निभेन **शयनेन** शय्यया **सनाथीकृतवेदिकम्** सनाथीकृता युक्ता वेदिका (आस्थान मण्डपस्य) मध्ये परिष्कुतोच्चभूमिर्यस्य तत्तथोक्तम् **आस्थानमण्डपम्** सभाभवनम् (राजा) **अयासीत्** जगाम।

**संस्कृत सरलार्थ**—भोजनानन्तरं राजा शूद्रकस्तादृशं सभाभवन मगमत्, यत स्वच्छ रत्नबद्धभूमिरुपिगगनतलविप्रकीर्ण नक्षत्र समुदायेनेव निरन्तरविक्षिप्तेन पुष्पसमूहेन सघनतया व्याप्तमासीत्, (तथा) निकटस्थ भवनाधिष्ठातृदेवतेनेव उत्कीर्य विरचित पुत्तलिका पुञ्जेन सुगन्धित जलप्रक्षालितेन कनकमयेन स्तम्भसमूहेन विशेषेण

शोभमानमासीत् । अतिप्रचुर कृष्णागुरुधूप सुगन्धितम्, अथ च सम्पूर्णविनिर्गत जलराशिमता शुभ्रमेघखण्डसदृशेन पुष्पसुगन्धिवासितेन आस्तरणवस्त्रेण, क्षौमवस्त्रविरचितोच्छीर्षकाश्रितमस्तकस्थापनस्थलेन च, तथा रत्नरचिताधारपीठेषु स्थितपर्यङ्कपादेन निकटस्थमणिमय पादासनेन च, अतएव हिमालयशिलाखण्डसदृश शुभ्रवर्णेन शयनेन समन्वितमध्यभागम् चासीत् ।

टिप्पणी—इस वाक्य खण्ड में द्वितीया एकवचनान्त पद 'आस्थानमण्डपम्' के विशेषण है । उत्तरांश में तृतीया एकवचनान्त पद 'शयनेन' के विशेषण हैं । विमलकुट्टिम·······निचितम् इस अंश में मणिकुट्टिम में गगन तल का आरोप होने से रूपक है एवं फूलों के ढेर से युक्त होने की तारागणों से व्याप्त होने से समानता का वर्णन होने के कारण उपमा अलंकार है शालभञ्जिका—रत्नों के खम्भों में खोदकर बनाई गई अनेक मूर्तियां या पुतलियां । 'सन्निहितगृहदेवतेनेव' में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है । प्रच्छदपट=बिस्तर के ऊपर बिछाने की चादर (पलङ्गपोश) । पट्टोपधान=पट्ट—रेशमी कपड़ा । उपधान=तकिया अर्थात् रेशमी कपड़े का बना तकिया । शिरोधाम=शिर रखने का स्थान अर्थात् सिरहाना । प्रतिपादुका=पलङ्ग के पायों को रखने के लिये फर्श पर बनाई गई छोटी चौकियां । पादपीठ=पैर रखने का पावदान । "तुहिनगिरिशिलातल सदृशेन" में उपमा अलंकार है ।

**तत्र च शयने निषण्णः क्षितितलोपविष्टया शनैः शनैरुत्सङ्गनिहितासिलतया खड्गवाहिन्या नवनलिनदलकोमलेन करसम्पुटेन संवाह्यमान चरणस्तत्कालो चितदर्शनैरवनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन् मुहूर्त्तमिवा साञ्चक्रे ।**

शब्दार्थ—तत्र च=और वहाँ सभामण्डप में शयने=पलङ्गपर निषण्णः=बैठे हुए, क्षितितलोपविष्टया=भूमि पर बैठी हुई, शनैः-शनैः=धीरे-धीरे उत्सङ्गनिहितासिलतया=गोद में रखी हुई तलवार वाली खड्गवाहिन्या=राजा की तलवार लेकर चलने वाली (खड्गवाहिनी) के द्वारा, नवनलिनदलकोमलेन=नवीन कमल के पत्ते के समान कोमल करसम्पुटेन=दोनों हाथों से संवाह्यमानचरणः=पैर दबाया जाता हुआ तत्कालोचितदर्शनैः=उस समय मिलने के योग्य अवनिपतिभिः=राजाओं के साथ, अमात्यैः=मन्त्रियों के साथ मित्रैश्च सह=और मित्रों के साथ तास्ताः=विभिन्न प्रकार की कथाः=वार्तालाप कुर्वन्=करता हुआ मुहूर्त्तमिव=कुछ देर तक आसाञ्चक्रे=बैठा या विश्राम किया ।

अनुवाद—उस सभाभवन में पलङ्ग पर बैठा हुआ, (तथा) भूमि पर बैठी हुई और गोद में तलवार रखे हुई खड्गवाहिनी के द्वारा नवीन कमल के पत्ते के समान कोमल करों से धीरे-धीरे दबाये जा रहे चरणों वाला (वह) उस समय मिलने के योग्य राजाओं (सामन्त राजाओं) मन्त्रियों और मित्रों के साथ अनेक प्रकार का वार्तालाप करता हुआ थोड़ी देर तक बैठा रहा या विश्राम करता रहा ।

**भावार्थ**—आस्थान मण्डप में पलङ्ग पर थोड़ी देर तक राजा ने विश्राम किया। उस समय खड्गधारिणी (सेविका) उसके चरण दबा रही थी एवं अन्तरङ्ग सामन्त राजा, मन्त्री और मित्र उससे विविधि वार्तालाप भी कर रहे थे।

**संस्कृत व्याख्या**—तत्र पूर्वोक्ते राजभवनाभ्यन्तर स्थिते सभाभवने शयने पर्य्यङ्के **निषण्णः** उपविष्टः, **क्षितितलोपविष्टया** क्षितितले पृथ्वीतले उपविष्टया समासीनया **उत्सङ्गनिहितासिलतया**—उत्सङ्गे क्रोडे निहिता स्थापिता असिलता खड्गयष्टिर्यया सा तया तथोक्तया **खड्गवाहिन्या** राज्ञः खड्गवहने असिधारणे नियुक्तया सेविकया, **नवनलिनदलकोमलेन**—नवं यत् नलिनं नूतन कमलं तस्य दलानि पत्राणि इव कोमलेन मृदुलेन, अत्यन्त सुकुमारेणेत्यर्थः **करसम्पुटेन** हस्ताग्रयुगलेन **संवाह्यमानचरणः** संवाह्यमानौ सुखं संपीड्यमानौ चरणौ पादौ यस्य सः तादृशो राजा, **तत्कालोचितदर्शनैः** तत्काले विश्राम समये उचितं योग्यं दर्शनं साक्षात्कारो येषान्तैः तादृशैः **अवनिपतिभिः** सामन्तराजभिः **अमात्यैः** मन्त्रिभिः **मित्रैश्च**=सुहृद्भिश्च **सह** सार्धं **तास्ताः** अनेक विधाः **कथाः** वार्ताः **कुर्वन्** विदधत् **मुहूर्तं** स्वल्पकालम् इव **आसाञ्चक्रे** अवतस्थे।

**संस्कृत सरलार्थ**—राजभवनाभ्यन्तरस्थिते सभामण्डपे पर्यङ्के समुपविष्टो राजा क्रोडस्थापितखड्गलतया खड्गवाहिन्या सेविकया नूतनकमलदलाभ्यामिव कोमलकराभ्यां शनैःशनैः सम्पीड्य मानचरणः सन् विश्रामसमये र दर्शनाय योग्यैः सामन्तराजभिः मन्त्रिभिः मित्रैः सह विभिन्ना वार्ताः कुर्वन् क्षणमवतस्थे। विश्रामं कृतवान्।

**टिप्पणी**—**निषण्णः**—नि+सद्+क्त=बैठा हुआ, संवाह्यमान—सम्+वह् +णिच्+शानच्=दबाये जाते हुए। आसाञ्चक्रे आस् (उपवेशने)+लिट् प्र. पु. एकवचन।

**ततो नातिदूरवर्त्तिनीम् अन्तः पुराद् वैशम्पायन मादायागच्छ" इति समुपजात तद् वृत्तान्त प्रश्न कुतूहलो राजा प्रतीहारीमादिदेश.।**

**सा क्षितितल निहितजानुकरतला "यथाज्ञापयति देवः" इति शिरसि कृत्वाज्ञां यथादिष्ट मकरोद्।**

**शब्दार्थ**—ततः=इसके पश्चात् (वार्तालाप के पश्चात्) **नातिदूरवर्त्तिनीम्**= जो बहुत दूर नहीं थी अर्थात् समीप में ही विद्यमान **अन्तः पुरात्**=अन्तः पुर (रनिवास) से **वैशम्पायनम्**=वैशम्पायन नामक शुक को **आदाय**=लेकर आगच्छ= आओ **इति**=इस प्रकार **समुपजाततद्वृत्तान्तप्रश्नकुतूहलः**=उत्पन्न हो गयी है (समुपजात) उस तोते के वृत्तान्त को पूछने की कौतूहल उत्सुकता जिसे ऐसे **राजा**= शूद्रक ने **प्रतीहारीम्**=द्वारपालिका (सेविका) को **आदिदेश**=आदेश दिया। **सा**= उस द्वारपालिका ने **क्षितितल निहितजानुकरतला**=भूमि पर (क्षितितल) घुटने एवं हाथ टिकाकर (निहित) **यथाज्ञापयति**=जो आदेश दे रहे हैं **देवः** महाराजः **इति** इस प्रकार **शिरसि कृत्वाज्ञाम्**=आज्ञा को शिर पर धारण कर अर्थात् राजा के आदेश

को सिर माथे धरकर **यथादिष्टम्** जैसा आदेश था तदनुकूल **अकरोत्** = आचरण किया।

**अनुवाद**—इसके पश्चात् समीप वर्तिनी प्रतीहारी को, "अन्तः पुर से वैशम्पायन (शुक) को लेकर आओ" इस प्रकार उस तोते के विषय में प्रश्न पूंछने के लिये उत्सुक हुये राजा ने आदेश दिया।

प्रतीहारी ने भूमि पर घुटने एवं हथेली टेक कर "जो महाराज की आज्ञा" कहकर आदेश को सिर माथे धर आदेशानुसार कार्य किया।

**भावार्थ**—वैशम्पायन शुक के विषय में बतलाई गई विशेषताओं एवं उसके द्वारा पढ़ी गई आर्या से विस्मित अतएव उसके विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिये राजा ने शुक को रनिवास से लाने का आदेश दिया। प्रतीहारी अनुशासन का पालन करते हुए घुटने टेक कर आज्ञा शिरोधारण कर शुक लाने के लिये चली गई।

**संस्कृत व्याख्या**—**ततः** तत्पश्चात् वार्तालापानन्तर मित्रैः सार्धं **नातिदूरवर्तिनीम्** समीप एव स्थिताम् **प्रतीहारीम्** द्वारपालिकाम्, **समुपजात तद् वृत्तान्त प्रश्न कुतूहलः** समुपजातं समुत्पन्नं तस्य शुकस्य वृत्तान्त प्रश्ने प्रवृत्ति पृच्छायाम् कुतूहलम् आश्चर्य कौतुकमित्यर्थः यस्य स तादृशः **राजा** शूद्रकः "**अन्तःपुरात्** अवरोधात् **वैशम्पायनम्** एतन्नामकं **शुकम्** **आदाय** गृहीत्वा **आगच्छ** एहि" **इति** इत्येवंरूपेण **आदिदेश** आज्ञापयामास।

**सा** = वैशम्पायनमानेतुमादिष्टा प्रतीहारी **क्षितितलनिहितजानुकरतला**—क्षितितले पृथ्वीतले निहितौ राजकीयनियम पालनाय स्थापितौ जानू ऊरुपर्वणी करतले पाणितले यया सा तथोक्ता **यथा** येन प्रकारेण यादृशं वा **आज्ञापयति** आदिशति **देवो** भवान् (स्वामी शूद्रकः) **इति** कथयित्वा **आज्ञाम्**—राज्ञ आदेशं **शिरसि कृत्वा** शिरोधार्यं कृत्वा सादरं स्वीकृत्येत्यभिप्रायः **यथादिष्टं** येन प्रकारेण राज्ञा आदिष्टं तथा **अकरोत्** कृतवती।

**संस्कृत सरलार्थ**—मित्रादिभिः सह वार्तालापं विधाय अतिविचित्र वैशम्पायनस्य वृत्तान्त प्रश्नेच्छया कौतुकाविष्टः स राजा समीपवर्तिनीम् प्रतीहारीम् अन्तः पुराद्वैशम्पायनमानेतुमादिष्टवान्।

सा प्रतीहारी पृथिव्याम् ऊरुपर्वणी संस्थाप्य पाणितलाभ्यां भूमिं संस्पृश्य च 'यथा भवतामाज्ञा' इति सादरं राजाज्ञां शिरोधार्यं आदेशानुकूलमाचरितवती।

**टिप्पणी**—**समुपजाततद्वृत्तान्तप्रश्नकुतूहलः**—समुपजातं तस्य वृत्तान्तस्य प्रश्ने कुतूहलं यस्य सः, उत्पन्न हो गया है उस शुक के वृत्तान्त को पूछने का कौतूहल जिसको ऐसा (राजा) वृत्तान्त = जीवनचरित "वार्ताप्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्" इत्यमरः। प्रश्न = पूछने की इच्छा—"प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च" इत्यमरः। **अन्तःपुरः**—रानियों का निवास स्थल अर्थात् रनिवास। **क्षितितलनिहितजानुकरतला**—क्षितितले निहितौ जानू करतले च यया सा पृथ्वी पर रख लिये हैं (टेक दिये हैं) घुटने और

हाथ जिसने ऐसी (प्रतीहारी)। प्राचीन काल में राजपरम्परा में राजा के आदेश को स्वीकार करने की यह परम्परा थी कि घुटने जमीन में टेक कर हाथों से भूमि का स्पर्श किया जाय। **शिरसि कृत्वा आज्ञाम्**=आज्ञा को शिर पर घर कर अर्थात् आज्ञा शिरोधार्य कर।

**अथ मुहूर्त्तादिव वैशम्पायनः प्रतीहार्य्या गृहीतपञ्जरः कनकवेत्रलतावलम्बिना किञ्चिदवनतपूर्वकायेन सितकञ्चुकाच्छन्नवपुषा जराधवलितमौलिना गद्‌गद्स्वरेण मन्द मन्दसञ्चारिणा विहङ्गजातिप्रीत्या जरत्कलहंसेनेव कञ्चुकिनानुगम्यमानो राजान्तिकमाजगाम।**

**शब्दार्थ**—**अथ**=इसके पश्चात् **मुहूर्तादिव**=थोड़ी ही देर में **प्रतीहार्या गृहीतपञ्जरः** जिसका पिंजड़ा प्रतीहारी लिये हुए थी, **कनकवेत्रलतावलम्बिना**=सोने की छड़ी का सहारा लिये हुए **किञ्चिदवनतपूर्वकायेन**=कुछ झुके हुए शरीर के ऊपरी भाग वाले, **सितकञ्चुकाच्छन्नवपुषा**=श्वेत कञ्चुक (चोंगा) से ढके हुये शरीर वाले, **जराधवलमौलिना**=बुढ़ापे के कारण श्वेत केशों वाले, **गद्‌गदस्वरेण**=अस्पष्ट स्वर वाले, **मन्दमन्दसञ्चारिणा**=धीरे-धीरे चलने वाले, **विहङ्गजातिप्रीत्या**=पक्षी जाति के प्रति ममत्व के कारण **जरत्कलहंसेनेव**=वृद्ध राजहंस सदृश **कञ्चुकिना**=कञ्चुकी (अन्तःपुर का पुरुष कर्मचारी) के द्वारा **अनुगम्यमानः**=अनुसरण किया जाता हुआ **वैशम्पायनः**=वैशम्पायन नामक शुक **राजान्तिकम्**=राजा के पास **आजगाम**=आया।

**अनुवाद**—इसके बाद थोड़ी ही देर में वैशम्पायन नामक शुक, जिसके पिंजड़े को प्रतीहारी लिये हुये थी, सोने के बेंत की छड़ी का सहारा लिये हुये, कुछ झुके हुये शरीर के ऊपरी भाग वाले श्वेत कञ्चुक (चोंगा) से ढके हुए शरीर वाले बुढ़ापे के कारण श्वेत केशों वाले, अस्पष्ट स्वर वाले, धीरे-धीरे चलने वाले, पक्षी जाति के प्रति ममत्व के कारण वृद्ध राजहंस सदृश कञ्चुकी के द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ, राजा शूद्रक के पास आया।

**भावार्थ**—राजा के आदेश के थोड़ी ही देर बाद वृद्ध कञ्चुकी के द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ प्रतीहारी के द्वारा गृहीत पिंजड़े में वैशम्पायन राजा के पास आया।

**संस्कृत व्याख्या**—अथ राज्ञः आदेशानन्तरमेव **मुहूर्त्तादिव** क्षणेनैव **प्रतीहार्य्या** सेविकया **गृहीतपञ्जरः** गृहीतं धारितम् पञ्जरं स्वर्णशलाकानिर्मितपक्षिनिलयः यस्य तथोक्तः **वैशम्पायनः** शुकः **कनकवेत्रलतावलम्बिना** कनकेन सुवर्णेन खचिता या वेत्रलता वेतसयष्टिः ताम् अवलम्बते धारणं करोतीत्येवं शीलो यस्य तेन, तथोक्तेन, **किञ्चिदवनतपूर्वकायेन** किञ्चिदीषत् अवनमितः वार्द्धक्यान्नम्रीभूतः पूर्वकायः शरीरस्योर्ध्वभागो यस्य स तेन तादृशेन, **सितकञ्चुकाच्छन्नवपुषा** सितं श्वेतवर्णं यत् कञ्चुकं कूर्पासकं वस्त्रविशेष इत्यर्थः तेन आच्छन्नमाच्छादितं वपुः शरीरं यस्य स तेन तादृशेन, जराधवलित-

**मौलिना**—जरया वृद्धावस्थया धवलितः श्वेतीभूतो मौलिः शिरो यस्य स तेन पलित-शीर्षेणेत्यर्थः **गद्गदस्वरेण** गद्गदः अष्पष्टः स्वरः कण्ठध्वनिर्यस्य स तेन, **मन्दमन्द सञ्चारिणा** मन्दं मन्दं वृद्धावस्थावशात् शनैः-शनै सञ्चरितुं गन्तुं शीलं यस्य स तेन तादृशेन, **विहङ्गजातिप्रीत्या** पक्षिजातिप्रेम्णा **जरत्कलहंसेनेव** वृद्धराजहंसेन इव प्रतीयमानेन **कञ्चुकिना** वृद्धान्तः पुरचरेण **अनुगम्यमानः** अनुस्रियमाणः **वैशम्पायनः राजान्तिकम्** राज्ञः शूद्रकस्य समीपम् **आजगाम** आययौ।

**संस्कृत सरलार्थ**—नृपस्यादेशानन्तरं क्षणमात्र विलम्बादेव प्रतीहार्य्या हस्तगृहीत्त पञ्जरः स शुको वैशम्पायनः राज्ञः शूद्रककस्य समीप माययौ। यः स्वर्णखचितवेत सयष्टिधारिणा, वार्द्धक्याच्छरीरस्योऽर्ध्वभागेन किञ्चिदानम्रीभूतेन, श्वेत वर्णकूर्पासकेना-वृतशरीरेण, वृद्धावस्थया श्वेतकेशेन, अस्पष्टोच्चारणशीलेन, मन्दमन्दगमनशीलेन अतएव पक्षिजाति प्रेम्णा वृद्ध राजहंसेनेव कञ्चुकिना अनुस्रियमाण आसीत्।

**टिप्पणी**—इस वाक्य का मुख्यांश इस प्रकार है—**वैशम्पायनः** राजान्तिकमाजगाम"। 'कनक वेत्रलतावलम्बिना से मन्दमन्दसंचारिणा तक सभी पद कञ्चुकिना' के विशेषण हैं। कञ्चुकी की वृद्ध राजहंस से उपमा देने के कारण कञ्चुकी के सभी तृतीया एकवचनान्त विशेषण जरत्कलहंस के भी विशेषण हैं जैसे—(१) राजकीय नियमानुसार कञ्चुकी सोने की छड़ी धारण करता है—जरत्कलहंस सुनहरी वेतसलता का आश्रय लेता है। (२) वृद्धावस्था के कारण दोनों के शरीर का ऊपरी भाग झुक गया है। (३) कञ्चुकी श्वेत रंग का वस्त्र विशेष (चोंगा) पहनता है, जरत्कलहंस श्वेत पंख रूपी कंचुक से ढंका रहता है। (४) कंचुकी के सिर के बाल बुढ़ापे से पककर श्वेत हो गये हैं—कलहंस के शिर के वाल (रोम) स्वतः श्वेत होते हैं। (५) वृद्धावस्था के कारण दोनों के स्वरों में अस्पष्टता है। (६) दोनों बुढ़ापे के कारण धीरे-धीरे चलते हैं।

**काञ्चुकी**—यह राजमहलों के अन्तःपुर में नियुक्त वृद्ध, विद्वान् ब्राह्मण जाति का सेवक होता है। जैसा कि कहा गया है—

"अन्तः पुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्व शास्त्रार्थ कुशल. कञ्चुकीत्यभिधीयते॥

'कञ्चुक' नामक एक विशेष वस्त्र जो कन्धे से पैरों तक समस्त शरीर को ढंक लेता है वर्तमान में चोंगा या जामा के रूप वाले इस वस्त्र पहनने के कारण उसे कञ्चुकी कहा जाता था। राजान्तिकम् में 'आजगाम' क्रिया (गत्यर्थक गम् धातु) के योग के कारण द्वितीया विभक्ति हुई है। आजगाम—आ+गम्+लिट् प्र. पु. एक वचन। विहङ्गजातिप्रीत्या में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा है। उत्प्रेक्षा एवं उपमा अलंकारों का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है।

**क्षितितल निहितकरतलस्तु कञ्चुकी राजानं व्यज्ञापयत्—देव। देव्यो विज्ञापयन्ति, देवादेशादेव वैशम्पायनः स्नातः कृताहारश्च देवपादमूलं प्रतीहार्य्या नीत इत्यभिधाय गते च तस्मिन् राजा वैशम्पायनमपृच्छत्—"कच्चित् अभिमत मास्वादितमभ्यन्तरे भवता किञ्चिदशनजातम्? इति।**

**शब्दार्थ**—**क्षितितलनिहित करतलः तु**=पृथ्वी तल पर हथेलियाँ टेक कर, **कञ्चुकी**=कञ्चुकी ने, **राजानम्**=राजा से, **व्यज्ञापयत्**=निवेदन किया, **देव**=हे महाराज ! **देव्यः**=रानियाँ, **विज्ञापयन्ति**=निवेदन कर रही हैं, **देवादेशात् एव**=महाराज के आदेशानुसार ही, **वैशम्पायनः स्नातः**=वैशम्पायन ने स्नान कर लिया है, **कृताहारश्च**=और भोजन कर लिया है, **देवपादमूलम्**=आप (महाराज) के समीप, **प्रतीहार्य्या**—प्रतीहारी के द्वारा, **नीतः**=लाया गया है, **इत्यभिधाय**—ऐसा कहकर, **गते च**=चले जाने पर, **तस्मिन्**=उस कञ्चुकी के; **राजा**=शूद्रक ने, **वैशम्पायनम्**=शुक से, **अपृच्छत्**=पूछा, **कच्चित्**=क्या, **अभिमतम्**=इच्छानुकूल, **आस्वादितम्**=चखा अर्थात् खाया, **अभ्यन्तरे**=अन्तःपुर में, **भवता**=आपके द्वारा, **किञ्चित्**=कुछ, **अशनजातम्**=भोजन ।

**अनुवाद**—भूमि पर हथेलियाँ रखकर कञ्चुकी ने राजा से निवेदन किया—महाराज ! रानियाँ निवेदन कर रहीं हैं कि "आपके आदेशानुसार ही वैशम्पायन स्नान एवं भोजन कर चुका है, प्रतीहारी के द्वारा आपके पास लाया गया है ।" ऐसा कहकर कंचुकी के चले जाने पर राजा ने वैशम्पायन ने पूछा—"आपने अन्तःपुर में कुछ इच्छानुकूल भोजन का आस्वाद लिया क्या ?

**भावार्थ**—स्पष्ट है ।

**संस्कृत व्याख्या**—**क्षितितलनिहितकरतलः** क्षितितले पृथिव्याम् निहितौ स्थापितौ करतलौ हस्ततलौ येन सः तादृशः, **कञ्चुकी** अन्तःपुरवृद्धब्राह्मणसेवकः **राजानम्** शूद्रकं **व्यज्ञापयत्** न्यवेदयत् **देव** ! महाराज ! **देव्यः** महिष्यः **विज्ञापयन्ति** सूचयन्ति यत् **देवादेशादेव** देवस्य भवतः **आदेशात्** आज्ञाया एव, भवदादेशानुसारमेवेत्यभिप्रायः, **वैशम्पायनः** एतन्नामकः शुकः **स्नातः** कृतस्नानः, **कृताहारश्च** विहित भोजनश्च, सम्प्रति **प्रतीहार्य्या** सेविकया **देवपादमूलं** देवस्य स्वामिनो भवतः पादमूलं चरणसमीपम् **आनीतः** प्रापितः **इति** इत्थम् **अभिधाय** कथयित्वा **तस्मिन्** **वृद्धकञ्चुकिनि**, **अपगते च** तत्स्थानात् निष्क्रान्ते सति **राजा** **शूद्रको** **वैशम्पायनं** शुकम् **अपृच्छत्** पृष्टवान्—**अभ्यन्तरे** अन्तःपुरे **भवता** त्वया **अभिमतम्** इच्छानुकूलं **किञ्चित्** **अशनजातम्** किमपि भोजनवस्तु **आस्वादितम्** भुक्तं **कच्चित्** किम् ? न वा इति काक्वा व्यज्यते ।

**संस्कृत सरलार्थः**—पृथ्वीतले पाणितलं निधाय कंचुकी राजानं न्यवेदयत् यत् स्वामिन् ! महिष्यः सूचयन्ति यत् भवदादेशानुसारं कृतस्नानो विहित भोजनश्चायं शुकः प्रतीहार्य्या भवच्चरणसमीपं प्रापितः" इति कथयित्वा कंचुकिनि गते सति राजा वैशम्पायनमपृच्छत् यत् हे वैशम्पायन ! भवताऽस्माकमन्तः पुरे किमपि स्वरुच्यनुकूलं किमपि भोजनवस्तु भुक्तं न वेति ।

**विशेष**—**व्यज्ञापयत्**—वि+ज्ञा+णिच्+लङ् प्र० पु० एकवचन=सूचना दी या निवेदन किया । **कृताहारः** कृत आहारो येन सः कर लिया है भोजन जिसने ऐसा (शुक) । **अभिधाय**—अभि+धा+क्त्वा—ल्यप्=कहकर । **कच्चित्**—जानने

की इच्छा वाचक अव्यय पद "कच्चित् काम प्रवेदने" इत्यमरः । अभिमतम् रुचि या इच्छा के अनुकूल (अभीष्ट) ।

**स प्रत्युवाच देव किं वा नाऽऽस्वादितम् ? आमत्तकोकिललोचनच्छवि र्नीलपाटलः कषायमधुरः प्रकाममापीतो जम्बूफलरसः, हरिनखरभिन्नमत्तमातङ्गकुम्भमुक्तरक्तार्द्रमुक्ताफलत्वींषि खण्डितानि दाडिमबीजानि, नलिनीदलहरिन्ति द्राक्षाफलस्वादूनि च दलितानि स्वेच्छया प्राचीनामलकीफलानि किं वा प्रलपितेन बहुना, सर्वमेव देवीभिः स्वयं करतलोपनीयमानममृतायते इति ।**

**शब्दार्थ**—सः=वैशम्पायन शुक ने, **प्रत्युवाच**=उत्तर दिया, **देव !**=महाराज, **किं वा**=क्या वस्तु, न **आस्वादितम्**=नहीं खायी, **आमत्तकोकिललोचनच्छविः**=मतवाली (आमत्त) कोयल के नेत्रों की कान्ति के समान कान्ति वाले, **नीलपाटलः**=बैंगनी या गुलाबी, **कषायमधुरः**=कसैला और मीठा, **जम्बूफलरसः**=जामुन के फलों का रस, **प्रकामम्**=जी भर कर, आपीतः=पिया हूँ, **हरिनखरभिन्नमत्तमातङ्गकुम्भमुक्तरक्तार्द्रमुक्ताफलत्वींषि** सिंह के नाखूनों से (हरि नखर) विदीर्ण (भिन्न) मतवाले हाथियों के मस्तक से (मत्तमातङ्गकुम्भ) निकले हुए खून से गीले (मुक्त रक्तार्द्र) मोती के दानों की कान्ति वाले (मुक्ताफलत्वींषि), **दाडिमबीजानि**=अनार के दाने, **खण्डितानि**=कुतर कुतर कर खाये, **नलिनीदलहरिन्ति**=कमल के पत्तों के समान हरे हरे, **द्राक्षाफलस्वादूनि च**=और अंगूर के समान सुमधुर, **प्राचीनामलकीफलानि**=पुराने अर्थात् पके हुए आमला के फलों को, **स्वेच्छया**=अपनी इच्छानुसार, **दलितानि**=तोड़े अर्थात् खाये, **किं वा प्रलपितेन बहुना**=अथवा अधिक क्या कहा जाय, **सर्वमेव**=सब कुछ, **देवीभिः**=रानियों के द्वारा, **स्वयं करतलोपनीयमानम्**=स्वयं अपने हाथों से लायी गयी (वस्तु), **अमृतायते**=अमृत जैसी हो जाती है अर्थात् अत्यन्त मीठी हो जाती है ।

**अनुवाद**—वैशम्पायन ने उत्तर दिया—महाराज ! क्या नहीं खाया ? मतवाली कोयल के नेत्रों के समान नीला और लाल अर्थात् गुलाबी रंग का कसैला और मीठा जामुन का रस जी भर कर पिया, सिंह के नखों से विदीर्ण मतवाले हाथी के मस्तक से निकले रक्त से सने हुए मोतियों की चमक वाले अर्थात् मोतियों जैसे लगने वाले अनार के बीजों को कुतरा (कुतर कुतर कर खाया) । कमलिनी के पत्तों के समान हरे-हरे अंगूर जैसे मीठे, पके (पुराने) आमले के फलों को इच्छानुसार खाया । अथवा अधिक क्या कहा जाय रानियों के द्वारा स्वयं अपने हाथों से जो कुछ भी लाया गया (सब) अमृत तुल्य हो गया या अर्थात् अमृत के समान मीठा लग रहा था ।

**भावार्थ**—राजा के पूछने पर कि आपने कुछ खाया पिया वैशम्पायन ने बताया कि उसने जामुन का रस, अनारदानों एवं पके हुए आमलों को खाया तथा उसे वे सभी वस्तुएँ जो रानी के द्वारा स्वयं अपने हाथों प्रस्तुत की गयीं अमृत के समान मीठी लगीं ।

**संस्कृत व्याख्या**—सः वैशम्पायनः प्रत्युवाच उत्तरं ददौ यत् देव! श्रीमन्! किं वा नास्वादितम् मया किं न भक्षितम् अर्थात् सर्वमेव भक्षणीयं भुक्तं मया। यथा—**आमत्तकोकिललोचनच्छविः**—आमत्तो मधुपानेनोन्मत्तो यः कोकिलः पिकस्तस्य लोचनस्य नेत्रस्य या छविः कान्तिस्तद्वत् **नीलपाटलः** नीलश्चासौ पाटल इति नीलपाटलः श्वेतरक्तः, **कषायमधुरः** कषायोऽपि मधुरः इति कषायमधुरोऽम्लमधुरः **जम्बूफलरसः** जम्बूफलानां द्रवः प्रकामम् स्वेच्छानुसारं पर्याप्तमित्यर्थः आपीतः पानविषयीकृतः। **हरिनखरभिन्नमत्तमातङ्गकुम्भमुक्तरक्तार्द्रमुक्ताफलत्वींषि**— हरेः सिंहस्य नखरैः नखैर्भिन्नो यो मत्तमातङ्गस्य उन्मत्तगजस्य कुम्भः गण्डस्थलं तस्मात् मुक्तानि बहिरागतानि रक्तार्द्राणि लोहितक्लिन्नानि यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तेषां त्विट् इव कान्तिरिव कान्तिर्येषां तानि तादृशानि, **दाडिमबीजानि** दाडिमफलबीजानि **खण्डितानि** चञ्चुपुटेन शकलीकृतानि। **नलिनीदलहरिन्ति** नलिन्याः कमलिन्याः दलानि पत्राणीव हरिन्ति हरिद्वर्णानि, **द्राक्षाफलस्वादूनि** मृद्वीकाफलानीव स्वादूनि मधुराणि च **प्राचीनामलकीफलानि** प्राचीनानि पक्वानि आमलकीफलानि क्षीरधात्रीफलानि स्वेच्छया यथेच्छं **दलितानि** स्वचञ्चुपुटेन मर्दयित्वा भुक्तानि। किं वा प्रलपितेन बहुना अथवाऽधिककथनेन किम्? **देवीभिः** राज्ञीभिः **स्वयं** न त्वन्यैः **करतलोपनीयमानम्** हस्ततलैरानीय मह्यं समर्प्यमाणं **सर्वमेव** सकलमपि खाद्यवस्तु **अमृतायते** इति सुधावदाचरति इति।

**संस्कृत सरलार्थ**—राज्ञा शूद्रकेण पृष्टो वैशम्पायन एवमुत्तरं दत्तवान्, स्वामिन्! भवतामन्तःपुरे मया किं वा नास्वादितम् अर्थात् मद्भक्ष्ययोग्यं सर्वमेव मया तत्र भक्षितम्, तथाहि—उन्मत्तपिकस्य नयनकान्तिरिव कान्तिमान् नीलश्वेतरक्तः आम्लमिष्टरसश्च जम्बूफलानां रसः प्रकामं पानविषयीकृतः, सिंहनखविदारितानामुन्मत्तगजानां शिरःस्थमांसपिण्डेभ्योऽपगतानां शोणितस्विन्नमौक्तिकानां कान्तिरिव कान्तिमन्ति दाडिमफलबीजानि चञ्चुपुटेन मया शकलीकृतानि, तथा कमलिनीपत्रवद्धरितवर्णानि मृद्वीकाफलवत्सुमधुराणि पक्वानि क्षीरधात्रीफलानि च स्वेच्छया चञ्चुपुटेन मर्दयित्वा खादितानि, अधिकेन कथितेन किं वा फलम्? राजदारैः स्वयं स्वकरतलैर्मह्यं दीयमानं निखिलमेव वस्तु समधिकस्वादुत्वात् सुधावदाचरति।

**टिप्पणी**—**आमत्तकोकिलच्छविः**—आमत्तश्चासौ कोकिलः इति आमत्तकोकिलः तस्य छविरिव छविर्यस्य सः। **पाटलः**—"श्वेतरक्तस्तु पाटलः" इस अमरकोश के अनुसार श्वेत और लाल रंग के मिश्रण को पाटल रंग कहा गया है सामान्यतः गुलाबी या बैंगनी रंग 'पाटल' होता है। **कषाय**=कषैला (छः रसों में से एक) **हरिनखरभिन्नमत्तमातङ्गकुम्भमुक्तरक्तार्द्रमुक्ताफलत्वींषि**—हरेर्नखरैः भिन्नेभ्यो मत्तमातङ्गानां कुम्भेभ्यो मुक्तानि यानि रक्तेनार्द्राणि मुक्ताफलानि तेषां त्विष इव त्विषः येषान्तानि सिंह के नाखूनों से फाड़े गये हाथियों के मस्तकों से निकले खून से सने (गीले) मोतियों की चमक के समान (पाटल रंग के) **त्वींषि**—त्विट् शब्द का प्रथमा बहुवचन का रूप कान्तियाँ। **दाडिमबीजानि**=अनार के दाने। **नलिनीदलहरिन्ति**—नलिन्याः दलानि

तद्वत् हरिन्ति=कमल पत्र के समान हरे। द्राक्षाफल—अंगूर—"मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा" इत्यमर:। प्राचीनामलकीफलानि=प्राचीनानि च तान्यामलकीफलानि पुराने आंवले अर्थात् पके आंवले। अमृतायते—अमृतमिवाचरतीति—अमृत+क्यङ् अमृत के समान आचरण करता है। कोकिललोचनच्छवि एवं मुक्ताफलत्वींषि तथा नलिनीदलहरिन्ति में लुप्तोपमा अलंकार है। अमृतायते में—क्यङ् गता उपमा अलंकार है।

## राज्ञः शुकं प्रति जिज्ञासा

**एवंवादिनो वचनमाक्षिप्य नरपतिरब्रवीत्—आस्तां तावत् सर्वमेवेदम्, अपनयतु नः कुतूहलम्, आवेदयतु भवानादितः प्रभृति कार्त्स्न्येनात्मनं, जन्म कस्मिन् देशे? भवान् कथं जातः? केन वा नाम कृतम्? का ते माता? कस्ते पिता? कथं वेदानामागमः? कथं शास्त्राणां परिचयः? कुतः कलाः समासादिताः? किं हेतुकं जन्मान्तरानुस्मरणम्? उत वर प्रदानम् अथवा विहगवेशधारी कश्चिच्छन्नो निवससि? क्व पूर्वमुषितम्? कियद्वा वयः? कथं पञ्जरबन्धनम्? कथं चाण्डाल हस्तगमनम्? इह वा कथमागमनम्?**

**शब्दार्थ**—**एवंवादिनः**=इस प्रकार कहने वाले शुक के, **वचनम्**=कथन को, **आक्षिप्य**=बीच में रोककर, **नरपतिः**=राजा शूद्रक, **अब्रवीत्**=बोले, **आस्तां तावत्**= रहने दीजिए, **सर्वमेवेदम्**=यह सब, **अपनयतु**=दूर करो, **नः**=हमारा, **कुतूहलम्**= कौतूहल (जिज्ञासा), **आवेदयतु**=निवेदन कीजिये, **भवान्**=आप, **आदितः प्रभृति**= आदि से अर्थात् जन्म से, **कार्त्स्न्येन**=पूर्णतया अर्थात् सम्पूर्ण, **आत्मनः**=अपना (वृत्तान्त), **जन्म कस्मिन् देशे**=किस देश में (आपका) जन्म हुआ, **भवान् कथं जातः**= आप कैसे उत्पन्न हुए, **केन वा नाम कृतम्**=किसने नाम रखा, **का ते माता**=तुम्हारी माँ कौन है, **कस्ते पिता**=कौन आपका पिता है, **कथं वेदानामागमः**=वेदों का ज्ञान कैसे मिला, **कथं शास्त्राणां परिचयः**=कैसे शास्त्रों का परिचय हुआ, **कुतः कलाः आसादिताः**=कलाएँ कहाँ से सीखीं, **किं हेतुकं जन्मान्तरानुस्मरणम्**=किस कारण से (किं हेतुकं) पूर्वजन्म की स्मृति है, **उत वर प्रदानम्**=अथवा क्या आपको वरदान प्राप्त है, **अथवा**=या, **विहङ्ग-वेषधारी**=पक्षी का वेष धारण किये हुए, **कश्चिच्छन्नो**= किसी छिपे रूप में अर्थात् छद्मवेश में, **निवससि**=रह रहे हो, **क्व वा पूर्वमुषितम्**= पहले कहाँ रहते थे, **कियद्वा वयः**=अथवा उम्र कितनी है, **कथं पञ्जरबन्धनम्**= पिंजड़े में कैसे फँस गये, **कथं चाण्डालहस्तगमनम्**=चाण्डाल के हाथों में कैसे पड़ गये, **इह वा कथमागमनम्**=और यहाँ कैसे आये।

**अनुवाद**—पूर्वोक्त प्रकार से कहने वाले वैशम्पायन को (बीच में ही) रोककर राजा बोला—यह सब रहने दीजिये, (आप) हमारी उत्सुकता को दूर कीजिये। आप अपने जन्म से (अब तक का) सम्पूर्ण वृत्तान्त कहें कि—आपका जन्म किस देश में हुआ? आपने कैसे जन्म लिया? किसने आपका (वैशम्पायन यह) नामकरण किया? कौन तुम्हारी माता है? कौन तुम्हारा पिता है? वेदों का ज्ञान कैसे मिला? शास्त्रों

से परिचय कैसे हुआ ? कलाएँ कहाँ से सीखीं ? पूर्वजन्म के स्मरण का क्या कारण है ? क्या (आपको कोई) वरदान प्राप्त है ? अथवा पक्षी का वेश धारण किये हुए आप कोई छद्म वेशधारी व्यक्ति हैं ? पहले कहाँ रहते थे ? क्या आयु है ? पिंजड़े में कैसे बँध गये ? चाण्डाल के हाथों कैसे पड़ गये ? और यहाँ कैसे आना हुआ ?

**भावार्थ**—जब वैशम्पायन अपने भोजन के विषय में राजा को बतला रहा था तो राजा ने बीच में ही उसे रोक कर उसके जन्म से लेकर अपने पास आने तक के विषय में विविध प्रश्न कर अपने कौतूहल को दूर करना चाहा।

**संस्कृत व्याख्या**— एवं पूर्वोक्त प्रकारेण वादिनः कथयतः शुकस्य **वचनं** कथनम् **आक्षिप्य** मध्ये एव निवार्य **नरपतिः** राजा शूद्रकः **अब्रवीत्** उवाच—**इदं सर्वमेव** पूर्वोक्तं सर्वमेव भोजनवर्णनम् **तावत् आस्ताम्**—आदौ तिष्ठतु नास्ति तेन काप्यभीष्टसिद्धिः, अतो नाधिकं तद्विषये कथनीयम् **नः** अस्माकं **कुतूहलं** कौतुकम् औत्सुक्यं वा **अपनयतु** दूरी करोतु, **भवान्** शुकः, **कार्त्स्न्येन** समग्ररूपेण **आदितः प्रभृति** स्वोत्पत्ति कालादारभ्य **आत्मनः** स्वकीयं **वृत्तान्तम् आवेदयतु** निवेदयतु **कस्मिन् देशे** कुत्र जनपदे **जन्म** उत्पत्तिः ? **कथं जातः** केन प्रकारेण समुत्पन्नो भवान् ? **केन वा** किंनामधेयेन जनेन वा **नाम कृतम्** वैशम्पायन इतिरूपेण नामनिर्धारणं कृतम् ? **ते**=तव **का माता** किन्नामधेया जननी ? **कः** किमाख्यः **ते पिता** तव जनकः ? **कथं** केन विधिना, विहङ्गमजातौ समुत्पन्नोऽपि केन प्रकारेण **वेदानाम्** श्रुतीनाम् **आगमः** प्राप्तिः ? **कथं** केन प्रकारेण **च शास्त्राणाम्** न्यायमीमांसादीनां वेदाङ्गानां वा **परिचयः** विशेष बोधः ? **कुतः** कस्माद्विदुषः **कलाः** संगीत नृत्यादि चतुः षष्टि संख्याकाः विद्याः **समासादिताः** लब्धाः ? अधीता इत्यर्थः, **किं हेतुकं** केन कारणेन **जन्मान्तरानुस्मरणम्** जन्मान्तरस्य पूर्वजन्मनः अनुस्मरणम् स्मृतिः ? उत् किं वा **वरप्रदानम्** कस्यचिन्महात्मनः प्रसादात् वरदान प्राप्तिः ? **अथवा** किं वा **विहङ्ग वेशधारी** विहङ्गस्य पक्षिणः शुकस्य वेषं स्वरूपं धारयतीति विहङ्ग-वेशधारी शुकस्वरूपवान् **कश्चिच्छन्नः** कोऽपि छन्नः गुप्तः **निवससि** वासं करोषि ? **क्व** कुत्र **पूर्वम्** अत्रागमानात् प्राक् **उषितम्** अवस्थितम् **कियद्वा** कियद्वर्षपरिमितं वा **वयः** आयुर्वर्तते ? **कथं** केनप्रकारेण **च पञ्जरबन्धनम्**— पञ्जरमध्ये वन्दिरूपेणाव-स्थानम् ? **कथं** केन विधिना **चाण्डालहस्तगमनम्**— चाण्डालस्यान्त्यजस्य हस्ते करे गमनं प्राप्तिः ? **इह** वा मम राजसभायां मत्पार्श्वे वा **कथं** किमर्थं केन प्रकारेण वा **आगमनम्** उपस्थितिरभूत् ? इति।

**संस्कृत सरलार्थ**—एवं स्वभोजनविषयकं वर्णनं कुर्वतः शुकस्य कथनं मध्य एव निवार्य राजा तमब्रवीत्— इदं सर्वमेव भोजनविषयकं तावत् तिष्ठतु, भवानस्माकं कौतुकं प्रथमं दूरीकरोतु, जन्मसमयादारभ्य सर्वमेवात्मनः वृत्तान्तं साकल्येन निरूपयतु। कुत्र जनपदे भवतः उत्पत्तिर्जाता, केन प्रकारेण भवानुत्पन्नः, केन पुरुषेण भवतः वैशम्पायनेत्यभिधानं कृतम्, का तव जननी, कस्ते जनकः केन प्रकारेण वेदानां प्राप्तिः, कथञ्च तव न्यायमीमांसादि शास्त्राणां विशेषबोधः, कस्माद् पुरुषात् भवता चतुः षष्टि

प्रकाराः नृत्यगीतादि कलाः समुपलब्धाः कस्मात् कारणात् ते पूर्व जन्म वृत्तान्तस्य स्मृतिः, अथवा कस्यचिन्महात्मनः प्रसादात् एतद्विषयिका वर प्राप्तिः, अथवा पक्षि-रूपधारी कश्चन गुप्तः दिव्यपुरुषः त्वयि निवसति, अत्रागमनात् पूर्वं भवता कुत्राव-स्थितम्, कियत्ते वय इदानीम्, केन प्रकारेण पञ्जरबन्धनं प्राप्तम्, कथं वा अन्त्यजहस्त-गमनम्, प्रदेशेऽस्मिन् कथं वागमनम् ।

**टिप्पणी**—**कार्त्स्न्येन**—कृत्स्नस्य भावः कार्त्स्न्यम्—कृत्स्न+ष्यञ् तृ० एक-वचन । समग्ररूप से । **छन्न**—छद्+क्त=छिपा हुआ, **उषितम्**—वस+क्त व को सम्प्रसारण होकर उ हो गया ।

इस गद्य भाग में बाण ने बहुत छोटे-छोटे वाक्यों के माध्यम से प्रश्न किये हैं । प्रश्नों के बाद प्रश्न, इस प्रकार प्रश्न सख्या में बाहुल्य राजा के हृदय में शुकविषयक उत्कण्ठातिशय का द्योतक है। बाण में अप्रतिम प्रतिभा है, यही कारण है कि इन लघु वाक्यों में उनकी व्यास शैली का स्पष्ट परिचय मिलता है **वचनाक्षिप्य**= बीच में ही बात काटकर, चण्डं आ लाति गृह्णाति-चण्ड+आ+ला+क=चण्डालः ततः स्वार्थे अण्=चाण्डालः ।

**वैशम्पायनस्तु स्वयमुपजातकुतूहलेन सबहुमानमवनिपतिना पृष्टो मुहूर्त्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्—देव ! महतीयं कथा, यदि कौतुकमा-कर्ण्यताम् ।**

**शब्दार्थ**—**वैशम्पायनः तु**=वैशम्पायन ने तो, **स्वयम्**=स्वतः **उपजातकुतू-हलेन**=उत्पन्न हुए कौतूहल वाले, **अवनिपतिना**=राजा के द्वारा, **सबहुमानम्**= अत्यन्त सम्मान के साथ, **पृष्टः**=पूछे जाने पर, **मुहूर्त्तमिव**=थोड़ी देर, **ध्यात्वा**= सोचकर, विचार कर, **सादरम्**=आदरपूर्वक **अब्रवीत्**=कहा, **देव !**=महाराज ! **इयं महती कथा**=यह बड़ी लम्बी कहानी है **यदि कौतुकम्**=अगर (सुनने की) उत्सुकता है (तो) **आकर्ण्यताम्**=सुनिये ।

**अनुवाद**—(शुक के विषय में) उत्पन्न उत्सुकता वाले राजा के द्वारा अत्यन्त सम्मान के साथ स्वयं पूछे गये (प्रश्न किये जाने पर) वैशम्पायन ने थोड़ी देर तक सोच-विचार कर आदरपूर्वक कहा हे महाराज ! यह कथा बड़ी लम्बी है; यदि उत्सुकता है तो सुनिये ।

**भावार्थ**—स्पष्ट है ।

**संस्कृत व्याख्या**—**वैशम्पायनः तु** शुकस्तु **उपजातकुतूहलेन** उपजातं समुत्पन्नं कुतूहलं कौतुकं यस्य सः तेन **अवनिपतिना** राजा शूद्रकेण **स्वयं सबहुमानं** स्वयमेवात्यन्त सम्मानपूर्वकं **पृष्टः** कृतप्रश्नः सन् **मुहूर्त्तमिव** स्वल्पकालं यावत् **ध्यात्वा** मनसि विचार्य **सादरं** ससम्मानम् **अब्रवीत्** अवोचत् यत्—**देव !** महाराज ! **इयं कथा** मम विषयिणी वार्ता **महती** अतीव दीर्घा अस्ति । **यदि**—चेत **कौतुकम्** कुतूहलमौत्सुक्याधिक्यमित्यर्थः **आकर्ण्यताम्** श्रूयताम् ।

संस्कृत सरलार्थ—कौतुकाविष्टेन राज्ञा ससम्मानं स्वयमेव पृष्टो वैशम्पायनः क्षणं ध्यानं कृत्वा राजानमब्रवीत्—हे महाराज ! मम जन्मत आरभ्य अत्रागमन पर्यन्तस्य वृत्तान्तस्य कथाऽतीव दीर्घा, तथापि चेत् भवतो हृदि औत्सुक्याधिक्यं तर्हि श्रूयताम् ।

विशेष—पृष्टः पृच्छ् + क्त = पूछा हुआ । शुक अपनी कथा की दीर्घता का कथन कर राजा के हृदय में और अधिक उत्सुकता उत्पन्न कर देता है ।

## विंध्याटवी वर्णनम्

**अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेलावनलग्ना मध्यदेशालंकारभूता मेखलेव भुवः वनकरिकुलमदजल-सेकसम्वर्द्धितै रतिविकचधवलकुसुमनिकर-मत्युच्चतया तारागणमिव शिखरदेशलग्नमुद्वहद्भिः पादपैरुपशोभिता, मदकलकुररकुलदश्यमानमरिचपल्लवा, करिकलभकरमृदिततमालकिसलया-मोदिनी, मधुमदोपरक्तकेरलीकपोलकोमलच्छविना सञ्चरद्वनदेवताचरणा-लक्तकरसरञ्जितेनेव पल्लवचयेन संछादिता ।**

शब्दार्थ—इस गद्य खण्ड के सभी प्रथमान्त पद आगे आने वाले 'विन्ध्याटवी नाम' के विशेषण है । 'अस्ति' इस क्रियापद का कर्ता भी आगे आने वाला विन्ध्याटवी पद है, अर्थात् विन्ध्याटवी नाम अस्ति = विन्ध्यारण्य प्रसिद्ध है, (नाम शब्द का अर्थ यहाँ = प्रसिद्ध है ।)

**पूर्वापरजलनिधिवेलावनलग्ना** = पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के तटों के वनों से लगी हुई, **मध्यदेशालकारभूता**—मध्य देश की आभूषणस्वरूप, **मेखलेव भुवः** = पृथ्वी की करधनी जैसी, **वनकरिकुलमदजलसेकसम्वर्धितैः** = वन्य गजों के मदजल के सिञ्चन से बढ़ाये गये, **अत्युच्चतया** = अत्यधिक ऊँचे होने के कारण, **शिखरदेशलग्नम्** = अपने ऊपरी भाग पर लगे हुए, **अतिविकचधवलकुसुमनिकरम्**—अत्यधिक खिले हुए उज्ज्वल पुष्प समूह को, **तारागणमिव**—तारागण के समान, **उद्वहद्भिः** = धारण करते हुए, **पादपैः** = वृक्षों के द्वारा, **उपशोभिता** = सुशोभित । **मदकलकुररकुलदश्यमानमरिच-पल्लवा** = मदवश मधुर अव्यक्त ध्वनि करने वाले कुररनामक पक्षिसमूह द्वारा (जिसके) काली मिर्च के पत्ते कुतरे जा रहे थे, **करिकलभकरमृदिततमालकिसलयामोदिनी** = गजशावकों के सूड़ों से मसले हुए तमालवृक्षों के पत्तों की सुगन्धि वाली, **मधुमदोपरक्त-केरलीकपोलकोमलच्छविना** = मदिरा (पान) की मत्तता से कुछ-कुछ गुलाबी रंग के, केरल प्रदेश की सुन्दरियों के कपोलों जैसी मृदुल कान्ति वाले (तथा) **सञ्चरद्वनदेवता-चरणालक्तकरसरञ्जितेनेव** = इधर-उधर चलती-फिरती वनदेवियों के चरणों में लगे महावर के रंग से रंगीकृत जैसे, **पल्लवचयेन**—पत्रसमूह से, **संछादिता** = आच्छादित ।

अनुवाद—एक प्रसिद्ध विन्ध्यारण्य, (विन्ध्याटवी) है—जो कि पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के तटों के वनों से लगी हुई अर्थात् पूर्वसमुद्रतट से पश्चिम समुद्र तट तक विस्तृत (है) (मध्य भाग का भूषण होने के कारण) जो कि पृथ्वी की करधनी

के समान मध्यप्रदेश की आभूषणस्वरूपा (है) यह विन्ध्याटवी, उन वृक्षों से सुशोभित (थी जो कि) वन्यगजों के मद जल के सिञ्चन से बढ़ाये गये (तथा) अत्यधिक ऊँचे होने के कारण मानों अपने ऊपरी भाग पर लगे हुए अत्यधिक खिले हुए उज्ज्वल पुष्पसमूह को तारागण के समान धारण किये हुए (थे) (यह विन्ध्याटवी) मद वश मधुर अव्यक्त ध्वनि करने वाले कुरर नामक पक्षियों द्वारा कुतरे गये कालीमिर्च के पल्लवों वाली (थी) अर्थात् विन्ध्याटवी के कालीमिर्च के पत्तों को कुरर नामक पक्षियों ने कुतर डाला था। (यह विन्ध्याटवी) गजशावकों के सूड़ों से मसले गये तमाल वृक्षों के पत्तों की सुगन्धि से सुगन्धित (थी) (तथा यह) मदिरा पान की मत्तता से कुछ-कुछ गुलाबी रंग के केरलप्रदेश की सुन्दरियों के कपोलों जैसे कोमल कान्ति वाले (और) इधर-उधर चलती फिरती वनदेवियों के चरणों में लगे महावर के रंग से रक्तीकृत जैसे पल्लव समूह से आच्छादित थी।

भावार्थ—प्रस्तुत गद्य-खण्ड में विन्ध्याटवी (विन्ध्याचल के वन) का वर्णन किया गया है। इस गद्य-खण्ड की अस्ति क्रिया का कर्ता विन्ध्याटवी है, जिसका इस सम्पूर्ण गद्य-खण्ड के अन्त में प्रयोग किया गया है।

यह विन्ध्याटवी पूर्व समुद्र के किनारे से लेकर पश्चिम समुद्र के तट तक फैली हुई थी। पृथ्वी की करधनी के समान मध्य भाग का भूषण होने के कारण यह मध्यदेश की अलंकारस्वरूप थी। यह उन वृक्षों से सुशोभित थी जो कि अत्यन्त ऊँचे होने के कारण अपने ऊपरी भाग में लगे हुए तारागण जैसे, अत्यधिक विकसित एवं उज्ज्वल पुष्प समूह को धारण किये हुए एवं वन्य गजों के मद जल के सिंचन से बढ़े हुए थे। विन्ध्याटवी के कालीमिर्च के पत्तों को मद के कारण कलध्वनि करने वाले कुरर नामक पक्षियों ने कुतर डाला था, यह अटवी हाथियों के बच्चों के सूड़ों से मसले गये तमाल वृक्षों के किसलयों की सुगन्धि से सुगन्धित थी। यह उस पल्लव-समूह से आच्छादित थी जो कि मदिरापान से कुछ-कुछ गुलाबी रंग के केरल सुन्दरियों के कपोलों जैसी कोमल कान्ति वाले तथा घूमती हुई वनदेवियों के चरणों के महावर के रंग से अनुरञ्जित जैसे थे।

संस्कृत व्याख्या—गद्यखण्डेऽस्मिन् प्रयुक्तस्य अस्तीति क्रियापदस्य वाक्यान्तभागे प्रयुक्तेन विन्ध्याटवीतिकर्तृपदेन संबन्धः। सर्वाण्येव प्रथमान्तानि पदानि विन्ध्याटवी-त्यस्यस्य विशेषणानि।

**पूर्वापरजलनिधिवेलावनलग्ना**—पूर्वश्च अपरश्च पूर्वापरौ तौ यौ जलनिधी समुद्रौ तयोः यद् वेलावनं तटकाननं तावत्पर्यन्तं लग्ना प्रसृता तादृशी, (मध्यभागाभूषण-स्वरूपत्वात्) भुवः पृथिव्याः मेखला रशनेव, **मध्यदेशालंकारभूता**—मध्यप्रदेशाभूषण-स्वरूपा, **वनकरिकुलमदजलसेकसम्वर्धितैः**—वनेऽरण्ये ये करिणः गजाः तेषां कुलानि यूथानि तेषां मदजलस्य दानवारिणः यः सेकः सिञ्चनं तेन सम्वर्धिताः वृद्धिमापन्नास्तैः तादृशैः (एवं) **अत्युच्चतया** अत्यधिकोन्नततया शिखरदेशलग्नम् स्वकीयशिरोभागसंसक्तम्,

**तारागणम्**—नक्षत्रमण्डलमिव, **अतिविकचधवलकुसुमनिकरम्**—अतिविकचानाम् अत्यधिक विकासंगतानाम् धवलानाम् उज्ज्वलानां कुसुमानाम् पुष्पाणाम् निकरम् समूहम् उद्वहद्भिः धारयद्भिः **पादपैः** वृक्षैः **उपशोभिता** समलंकृता, (अथवा) **मदकलकुररकुलदंश्यमानमरिचपल्लवा**—मदकलाः मदेन प्रमादेन कलाः मधुराव्यक्तध्वनिं कुर्वन्तः ये कुरराः कुररेत्याख्यातपक्षिविशेषास्तेषां कुलानि समूहाः तैः दश्यमाना चञ्चुपुटेनास्वाद्यमाना मरिचानां कोलकानां पल्लवाः किसलयानि यस्यां सा, तादृशी, (अथ च) **करिकलभकरमृदिततमालकिसलयामोदिनी**—करिणां गजानां कलभाः शावकाः तेषां करैः शुण्डादण्डैः मृदितानि विमर्दितानि यानि तमालकिसलयानि तापिच्छवृक्षकोमलपत्राणि तेषाम् आमोदः सुगन्धिः यस्यां सा, तादृशी, **मधुमदोपरक्तकेरलीकपोलकोमलच्छविना**—मधुनः मदिरायाः यः मदः पान मत्तता तेन उपरक्ताः किञ्चिल्लोहितीकृताः केरलीनां केरलेत्याख्यातप्रदेशोद्भवसुन्दरीणां ये कपोला, तेषां कोमला मृद्वी छविः कान्तिरिव कान्ति यस्य तेन तादृशेन (एवं) **सञ्चरद्वनदेवताचरणालक्तकरसरञ्जितेनेव** सञ्चरतीना मितस्ततो गच्छन्तीनां वनदेवतानां वनदेवीनां चरणानाम् पादाना **मालक्तकरसेन** यावक—द्रवेण **रञ्जितेन** रक्तीकृतेनेव **पल्लवचयेन** किसलयसमूहेन **संछादिता** समाच्छादिता (एवम्भूता विन्ध्याटवी अस्ति ।

**संस्कृत सरलार्थ**—अस्ति विन्ध्याटवी नाम । या पृथिव्याः रशनेव मध्यप्रदेशाभूषणभूता एवं तै र्वृक्षैरलंकृतास्ति, ये वन्यगजयूथमदवारिणः सिंचनेन वृद्धिं गताः एवं अत्युन्नततया स्वशिरोभागसंसक्तं तारामण्डलमिव अतिविकसितोज्ज्वलपुष्पसमूहं धारयन्तः सन्ति । या च विन्ध्याटवी मदोन्मत्तकुररखगास्वाद्यमानमरिचवृक्षपल्लवा एवं गजशावकशुण्डादण्डविमर्दिततमालवृक्षकिसलयानां सुगन्धिमती चास्ति । अथ च या तादृशेन किसलयसमूहेन समाच्छादितास्ति. यः मदिरापानेषद्रक्तीकृतानां केरलोद्भवसुन्दरीणां कपोलानां कोमलकान्तिरिव कान्तियुक्तः एवं पर्यटद्वनदेवीपादलग्नालक्तकरसेनानुरञ्जित इवास्ति चेति ।

**टिप्पणी**—**पूर्वापरेति** पूर्व समुद्र के तटवन से पश्चिम समुद्र के किनारे के वन तक फैली हुई । **मेखलेति**—करधनी, शरीर के मध्यभाग—कटिप्रदेश की ही शोभा बढ़ाती है, विन्ध्याटवी भी इसी प्रकार मध्य प्रदेश के लिए शोभातिशायिनी थी । (स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा इत्यमरः) **वनकरिकुलेति**—विन्ध्यारण्य के वृक्ष वहाँ के मदस्रावी गजों के मदजल के सिन्चन से बड़े हुए थे, अर्थात् विन्ध्यारण्य में बड़ी संख्या में मदस्रावी गज रहते थे अतएव उनके मदजल का सेक पाकर वृक्ष बढ़ते रहते थे । ये वृक्ष बड़े ऊँचे थे अतएव इनकी चोटियों पर लगे अतिविकसित एवं उज्ज्वल पुष्प लगते थे वे तारा मण्डल की भाँति चमकते दिखलाई पड़ते थे । ऐसे वृक्षों से विन्ध्यारण्य सदा सुशोभित रहता था "**शिखरदेशलग्नम् तारागणमिव**" में सुन्दर उत्प्रेक्षा है । **मदकलेति**—मद से कल अर्थात् मधुर एवं अव्यक्त ध्वनि करने वाले अथवा कल—उन्मत्त जो कुरर नामक पक्षियों का कुल अर्थात् समूह उसके द्वारा जिस विन्ध्यारण्य के मरिच (कालीमिर्चें) के वृक्षों के पत्ते (पल्लव) दश्यमान थे अर्थात्

कुररों द्वारा खुतरे जा रहे थे, इस अरण्य में मरिच के वृक्ष थे और उन पर बैठने वाले कुरर पक्षी उनके पत्तों को स्वभावतः अपनी चोंच से काटते रहते थे। मरिच वृक्षों को कोकल वृक्ष भी कहते हैं—"मरिचं कोकलं कृष्णं मूपणं चर्मपत्तनम् इत्यमरः" "पल्लवोऽस्त्री किसलयम्" दश्यमान दंश कर्मणि शानच्। करिकलभेति "कलभः करिशावकः इत्यमरः" हाथी के लगभग ३० वर्ष के बच्चे को शावक कहा जाता है 'कर' अर्थात् सूँड़ या शुण्डदण्ड, मृदिततमालकिसलय—ये हाथियों के बच्चे तमाल वृक्षों के किसलयों को अपनी सूड से तोड़ दिया करते थे, तोड़ने या मसलने पर इनसे अच्छी सुगन्धि निकलती थी जो कि इस अरण्य में भरकर समस्त वन को सुरभित कर देती थी। "तमालस्तिलके खड्गे तापिच्छे वरुणद्रुमे" आमोदः सुगन्धिः आमोदिनी। **मधुमदोपरक्तेति**—मधु अर्थात् मदिरा के पीने से उत्पन्न जो मद-मत्तता या मस्ती, उससे उपरक्त कुछ-कुछ गुलाबी रंग के, जो केरल प्रदेश निवासिनी सुन्दरियों के कपोल, उन कपोलों के समान कोमल कान्ति (चमक) वाले पल्लवसमूह से वह विन्ध्याटवी आच्छादित थी, यह पल्लवसमूह कपोलों के समान कोमल कान्ति-युक्त होने के साथ-साथ, **सञ्चरदिति**—वन में इधर-उधर घूमती हुई वनदेवियों के चरणों में लगे यावकद्रव—महावर के रंग से मानो लालवर्ण का हो गया था, सद्यःप्रस्फुटित किसलय कुछ लालवर्ण के होते हैं, तथापि कवि ने क्रियोत्प्रेक्षा के द्वारा उन्हें महावर के रंग से अनुरञ्जित बतलाया है। कपोलकोमलच्छविना में लुप्तोपमा और 'रञ्जितेनेव' में सुन्दर उत्प्रेक्षा है।

**शुककुलदलितदाडिमीफलद्रवार्द्रीकृततलैः, अति चपलकपिकुलकम्पित-कम्पिल्लच्युतपल्लवफलशकलैः अनवरतनिपतितकुसुमरेणुपांशुलैः पथिकजन-रचितलवङ्गपल्लवसंस्तरैः, अतिकठोरनारिकेलकेतकीकरीरवकुलपरिगत-प्रान्तैः ताम्बूलीलतावनद्धपूगखण्ड मण्डितैः, वनलक्ष्मीवासभवनैरिव विराजिता लतामण्डपैः, उन्मदमातङ्गकपोलस्थलगलितसलिलसिक्तेनेव निरन्तर-मेलालतावनेन मदगन्धिनान्धकारिता, नखमुखलग्नेभकुम्भमुक्ताफललुब्धैः शबरसेनापतिभिरभिहन्यमानकेशरि शता।**

शब्दार्थ—इस गद्य खण्ड के तृतीया बहुवचनान्त पद, आगे आने वाले 'लतामण्डपैः' के विशेषण हैं, तथा प्रथमान्त पद विन्ध्याटवी के विशेषण हैं। **शुककुलदलित-दाडिमीफलद्रवार्द्रीकृततलैः**=शुककुल के द्वारा कुतरे गये (चोंच से खुतर कर गिराये गये) अनार के फलों के रस से जिनका अधोभाग (तल) भिगो दिया गया था, अर्थात् गीले किये गये अधोभागों वाले, **अतिचपलकपिकुलकम्पितकम्पिल्ल च्युतपल्लवफलशकलैः**=कम्पिल्ल=कङ्कोल नामक वृक्ष, च्युत गिरे हुए, शकल=खण्ड। अतिचंचल वानर समूह के द्वारा हिलाये गये (कम्पित) कङ्कोल वृक्षों से गिरे हुए पत्तों और फलों के टुकड़ों वाले, **अनवरत निपतितकुसुमरेणुपांशुलैः**=अनवरत=लगातार, रेणु=पराग, पांशुल=धूसरित अथवा मलिन=निरन्तर गिरे हुये पुष्पपराग से धूसरित,

**पथिकजनरचितलवङ्गपल्लवसंस्तरैः**=पथिकों द्वारा 'उपवेशनार्थ' निर्मित लवङ्ग के पल्लवों के आसनों या विस्तरों वाले, अति कठोर **नारिकेलकेतकीकरीरवकुलपरिगत-प्रान्तैः**=नारिकेल=नारियल, केतकी=केवड़ा, करीर=करील जिसमें पत्ते नहीं होते हैं, वकुल-मौलश्री के वृक्ष, परिगत=परिगत=घिरे हुए, प्रान्त=किनारे=अतिकठोर नारियल केवड़ा करील तथा मौलश्री के वृक्षों से घिरे हुए किनारों वाले, **ताम्बूलीलता-वनद्धपूगखण्डमण्डितैः**=ताम्बूलीलता=नागवल्ली की लतायें, अवनद्ध=लिपटे हुए, पूगखण्ड=सुपारी के वन, नागवल्ली की लताओं से लिपटे हुए सुपारी के वनों से सुशोभित (अतएव) **वनलक्ष्मीवासभवनैरिव**=वनलक्ष्मी के निवासगृहों जैसे प्रतीत होने वाले, **लतामण्डपैः विराजिता**=लतामण्डपों से सुशोभित (विन्ध्याटवी) **उन्मदमातङ्गकपोलस्थलगलितसलिलसिक्तेनेव**=उन्मद-मदोन्मत्त, मातङ्ग=गज, कपोलस्थल=गण्डप्रदेश, गलित—गिरे हुए, सिक्त सींचे गये से, मदोन्मत्त गजों के गण्डस्थलों से गिरे हुए मदजल से मानो सींचे गये (अतएव) **मदगन्धिना**=मदजल की गंध जैसी सुगन्धि वाले, **निरन्तरम्**=सघनता पूर्वक, **एलालतावनेन**=इलायची की लताओं के वन से, **अन्धकारिता**=श्यामीकृता=सांवले रंग की बनी हुई (विन्ध्याटवी), **नखमुखलग्नेभकुम्भफललुब्धैः**=नखमुख=नखों के अग्रभाग, **इभकुम्भ-मुक्ताफल**=(सिंहों द्वारा विदारित) गजों के कुम्भस्थल से निकलने वाले गजमुक्ता—नखों के अग्रभाग में लगे हुये (सिंहविदीर्ण) गजों के कुम्भस्थलों के मुक्ताओं के लिए लालायित, **शबरसेनापतिभिः**=भीलों के सेनापतियों द्वारा, **अभिहन्यमानकेशरिशता**=जहां सैंकड़ों सिंह मारे जा रहे थे (ऐसी विन्ध्याटवी)।

**अनुवाद**—शुक समूह के द्वारा कुतरे गये अनार के फलों के रस से गीले किये गये अधोभागों वाले, अतिचंचल वानर समूह के द्वारा हिलाये गये, कङ्कोल वृक्षों से गिरे हुए पल्लव और फलों के टुकड़ों वाले, निरन्तर गिरे हुए पुष्पपराग से धूसरित, पथिकों द्वारा निर्मित लवङ्ग के पल्लवों के विस्तरों वाले, अतिकठोर नारियल केवड़ा, करील तथा मौलश्री के वृक्षों से घिरे हुए किनारों वाले, नागवल्ली की लताओं से लिपटे हुए सुपारी के वनों से सुशोभित अतएव वनलक्ष्मी के निवासगृहों जैसे प्रतीत होने वाले लतामण्डपों से सुशोभित (तथा) मदोन्मत्त गजों के गण्डस्थलों से गिरे हुए मदजल की गन्ध जैसी सुगन्धि वाले, सघनतापूर्वक, इलायची की लताओं के वन से श्यामीकृत (और) नखों के अग्रभाग में लगे हुए (सिंह विदारित) गजों के गण्डस्थलों के गजमुक्ताओं के लिए लालायित भीलों के सेनापतियों द्वारा जिसमें सैंकड़ों सिंह मारे जा रहे थे (ऐसी विन्ध्याटवी थी)।

**भावार्थ**– विन्ध्याटवी ऐसे लतामण्डपों से सुशोभित थी जिनके अधोभाग वानरों द्वारा कुतरे गये अनार के फलों के रस से मानो गीले कर दिए गये हों, और जिनमें अतिचंचल वानरों द्वारा हिलाये गये कंकोल के वृक्षों से गिरे हुए पत्ते एवं फलों के टुकड़े पड़े हुए थे। तथा जो कि लगातार गिरे हुए पुष्पपराग से धूसरित थे

तथा जहाँ पर पथिकों ने लवङ्ग के पत्तों से अपने विस्तर बना रखे थे। और जिनके किनारे अतिकठिन नारियल, केवड़ा, करील, मौलश्री के वृक्षों से घिरे हुए थे तथा जो कि नागवल्ली की लताओं से आलिङ्गित सुपारी के वनों से सुशोभित वनलक्ष्मी के निवासगृहों जैसे प्रतीत हो रहे थे। तथा विन्ध्याटवी ऐसे सघन इलायची की लताओं के वन से सांवली बना दी गई थी, जो कि वन, मदोन्मत्त गजों के गण्डस्थल से बहे हुए मद जल से मानो सिंचित था, अतएव वह मद जल के गंध जैसी सुगन्धि वाला था। इस विन्ध्याटवी में भील सेनापतियों द्वारा सैंकड़ों सिंह मारे जा रहे थे क्योंकि ये भील सिंहों द्वारा मारे गये अतएव इनके नखों के अग्रभाग में लगे हुए गजों के गण्डस्थलों के मुक्ताओं को पाने के लिए लालायित थे।

**संस्कृत व्याख्या**—गद्यखण्डेऽस्मिन्-तृतीया बहुवचनान्त पदानि लतामण्डपैरित्यस्य विशेषणानि, सर्वाण्येव प्रथमान्तपदानि विन्ध्याटवीत्यस्य विशेषणानि।

**शुककुलदलितदाडिमीफलद्रवार्द्रीकृततलैः**—शुकानां कीरपक्षिणां कुलेन समूहेन दलितानि स्वकीयचञ्चुपुटेन विदारितानि यानि दाडिमीफलानि तेषां द्रवैः रसैः आर्द्रीकृतानि आर्द्रत्वमानीतानि तलानि अधोभागवर्तिस्थानानि येषान्तैः तादृशैः, **अतिचपलकपिकुलकम्पितकम्पिल्लच्युतपल्लवफलखण्डैः**=अतिचपलैः अत्यन्तचंचलैः विकुलैः वानरसमूहैः कम्पिताः आन्दोलिताः ये कम्पिल्लाः कङ्कोलवृक्षाः तेभ्यः च्युतानि पतितानि पल्लवानां किसलयानां फलानाञ्च शकलानि खण्डानि येषु तैः तादृशैः, **अनवरतनिपतितकुसुमरेणुपांशुलैः**=अनवरतम् निरन्तरं पतितानां, अधश्च्युतानां कुसुमानां पुष्पाणां परागरजोभिः पांशुला धूसरिताः तैः तादृशैः, **पथिकजनरचितलवङ्गपल्लवसंस्तरैः**=पथिकाश्च ते जनाः पथिकजनाः पान्थाः तैः रचिताः समुपवेशनार्थं निर्मिताः संस्तराः प्रस्तराः आसनानि वा येषु तैः तादृशैः, **अतिकठोरनारिकेलकेतकीकरीरबकुलपरिगतप्रान्तैः**=अतिकठोरा ये नारिकेला लाङ्गलिवृक्षाः केतक्यः क्रकचच्छदाः करीराः पत्रविहीनाः कण्टकयुक्ताः करीरवृक्षाः (करीलवृक्षा इति लोके) बकुलाः मौलश्री वृक्षाः च तैः परिगताः परितो व्याप्ताः प्रान्ताः पर्यन्तभूमयः येषान्तैः तथोक्तैः **ताम्बूलीलतावनद्धपूगखण्डमण्डितैः**=ताम्बूली चासौ लता ताम्बूलीलता नागवल्लीलता ताभिः अवनद्धम् आलिङ्गितम् यत् पूगखण्डं क्रमुकवनम् तेन मण्डिता अलंकृताः तैः तादृशैः (अतएव) **वनलक्ष्मीवासभवनैः**=काननश्रीनिवासगृहैः इव प्रतीयमानैः लतामण्डपैः विराजिता सुशोभिता (विन्ध्याटवी) (तथा) **उन्मत्तमातङ्गकपोलस्थलगलितसलिलसिक्तेनेव**—उन्मदाः मदोन्मत्ताः ये मातङ्गा गजा तेषां कपोलस्थलानि गण्डप्रदेशाः तेभ्यः गलितैः निस्सृतैः सलिलैः मदजलैः सिक्तेन सिञ्चितेन तादृशेन इव (अतएव) **मदगन्धिना**=मदस्य गजमदजलस्य गन्ध इव गन्धो यस्मिन् तेन तादृशेन, **एलालतावनेन**=एलानां चन्द्रबालानां लताः वल्लयः तासां वनं काननं तेन तादृशेन निरन्तरं यथास्यात्तथा अन्धकारिता श्यामीकृता (विन्ध्याटवी) तथा **नखमुखलग्नेभकुम्भमुक्ताफललुब्धैः**—नखानां नखराणां मुखेषु अग्रभागेषु लग्नानि संसक्तानि यानि इभकुम्भमुक्ताफलानि सिंहविदलितगजगण्डस्थलोत्पन्नानि मौक्तिकानि तेषु लुब्धाः

लोलुपाः तैः तादृशैः शवरसेनापतिभिः=शवराणां भिल्लानां सेनापतयः सैन्य-नायकास्तैः भिल्लसैन्यनायकैः अभिहन्यमानकेशरिशताः अभिहन्यमानं व्यापाद्यमानं केशरिणां सिंहानां शतं यस्यां सा तथोक्ता (विन्ध्याटवी अस्ति)।

संस्कृत सरलार्थ—गद्यखण्डेऽस्मिन् कविना विन्ध्याटवीवर्णनं कृतम्। इयं विन्ध्याटवी तैः लतामण्डपैः सुशोभिता आसीत् येषामधोवर्तिस्थानानि कीरपक्षिभिः खण्डितानां दाडिमीफलानां रसैः आर्द्रत्वमानीतानि आसन्, एवम् येषु अतिचञ्चलवानरैरान्दोलितेभ्यः कम्पिल्लवृक्षेभ्यः पल्लवानां फलानाञ्च खण्डानि निपतितानि आसन्-अथ चेमे निरन्तरं प्रच्युतानां पुष्पाणां परागधूलिभिः धूसरिता आसन्, एवमेषु पान्थैः लवङ्गवृक्षकिसलयानां संस्तराः समुपवेशनार्थं आस्तृता आसन् 'अथ चैषां' पर्यन्तप्रदेशाः अतिकठोरनारिकेलक्रकचपर्णकरीरवकुलवृक्षैः परितो व्याप्ता आसन् तथा चेमे नागवल्ली लताभिः आलिङ्गितेन पूगवनेन सुशोभिता आसन् अतएवैते वनश्रीनिवासगृहा इव प्रतीयन्ते स्म। अथ चेयं विन्ध्याटवी तेन चन्द्रवालालतानां वनेन सान्द्रं यथा स्यात्तथा श्यामीकृतासीत् यद्वनम् मदोन्मत्तानां गजानां गण्डस्थलेभ्यः प्रसृतेन मदजलेन सिञ्चित मिव प्रतीयमानम् अतएव गजमदगन्धसुरभितमासीत्, अथास्यां विन्ध्याटव्याम्—तैः भिल्लसेनानायकैः केसरिणां शतं व्यापाद्यमानमासीत्, ये सिंहनखराग्रभागेषु संसक्तेषु सिंहविदारितगजगण्डस्थलोद्भवेषु मौक्तिकेषु लोलुपा आसन्।

टिप्पणी—शुकफुलेति ये सब तृतीया बहुवचनान्त पद लतामण्डपैः के विशेषण हैं, इन लतामण्डपों के नीचे की भूमि तोतों के द्वारा काटे गये अनार के फलों के दानों के रस से गीली हो गई थी, वस्तुतः इस कथन में सम्बन्धाभावेऽपि सम्बन्ध-लक्षणातिशयोक्ति है, आर्द्रीकृत-च्विप्रत्ययान्त शब्द है। तल=नीचे की भूमि। अतिचपलेति—वानर स्वभावतः चञ्चल होते ही हैं, जब वे कंकोल वृक्षों को अकारण ही हिला देते थे फलतः लतामण्डपों में उन वृक्षों के पत्ते और फलों के टुकड़े गिर पड़ते थे। अनवरतेति—ये लतामण्डप निरन्तर गिरने वाले पुष्प पराग से धूसरित रहते थे, पथिकेति—इन लतामण्डपों में बैठने या लेटने के लिए थके हुए पथिक लवङ्ग के पत्तों द्वारा अपने आसन या बिछौने बना लेते थे। अतिकठोरेति—इन लतामण्डपों के पास चारों ओर नारियल केवड़ा, करील, बकुल वृक्ष खड़े हुए थे। ताम्बूलीलतेति—ये लतामण्डप नागवल्ली लताओं से आलिंगित सुपारी के वन से शोभित होने से वन की लक्ष्मी के निवासगृह जैसे जान पड़ते थे। वासभवनैरिव में सुन्दर उत्प्रेक्षा है। उन्मदमातङ्गेति विन्ध्याटवी इलायची लता के वन से सांवली सी हो गई थी, लताओं के श्यामले पत्तों से चारों ओर से आच्छादित होने के कारण सांवले रंग की हो गई थी। मतवाले हाथियों के गण्डस्थल से बहे हुए मद जल से मानो यह सिञ्चित अतएव मदजल जैसी सुगन्धि से युक्त, एला लतावन से श्यामीकृत थी। मदस्रावी गजों के गण्डस्थल से मदजल का बहना स्वाभाविक है, पर मदजल से वन के सिञ्चित होने में अतिशयोक्ति है। एलालता वन का मदजल से सुरभित होना स्वाभाविक है। नखमुखेति—विन्ध्याटवी में भीलों के सेनानायकों ने बहुत से

सिंहों को इसलिए मार डाला था क्योंकि वे उनके द्वारा विदीर्ण किये गये हाथियों के गजमुक्ताओं को चाहते थे।

**प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्यतपताकिनीव वाणासनारोपितशिलीमुखा विमुक्तसिंहनादा च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालंकृता च, कर्णीसुतकथेव सन्निहितविपुलाचला शशोपगता च, कल्पान्तप्रदोषसन्ध्येव प्रनृत्यन्नीलकण्ठा पल्लवारुणा च, अमृतमन्थनवेलेव श्रीद्रुमोपशोभिता वारुणीपरिगता च, प्रावृडिव घनश्यामला अनेकशतह्रदालंकृता च।**

शब्दार्थ—प्रेताधिपनगरीव=प्रेताधिप-यमराज की नगरी संयमनी पत्तन के समान, सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च—सन्निहित, समीपवर्ती, मृत्यु—१. यम, २. मृत्युस्वरूप व्याघ्रादि हिंसक जन्तु, भीषणा भयकारिणी, महिष=यमवाहन १. वन्यसैरिभ, अधिष्ठिता=सहित, युक्त। अर्थात् विन्ध्याटवी यमपुरी के समान थी, जैसे यमपुरी यमराज के समीपवर्ती होने से सदा भयकारिणी होती है, उसी प्रकार विन्ध्याटवी समीपवर्ती मृत्युस्वरूप व्याघ्रादि जन्तुओं से भयकारिणी थी और वह यमराज महिष से युक्त यमपुरी के समान वन्यसैरिभों से युक्त थी। समरोद्यतपताकिनीव वाणासनारोपितशिलीमुखा विमुक्तसिंहनादा च=युद्ध के लिए प्रस्तुत सेना के समान धनुष पर चढ़ाये गये वाणों वाली, पक्षे-वाण और असन नामक वृक्षों पर स्थित भ्रमरों वाली, (योधाओं द्वारा) किए गए सिंहनादों (सिंहवत् गर्जना) वाली, पक्षे—सिंहों द्वारा की गई गर्जनाओं वाली, कात्यायनीव-प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालङ्कृता च=सिंहवाहिनी दुर्गा के समान, चलती हुई तलवार से भयानक, पक्षे—घूमते हुए गैंडों से भयानक, रक्तचन्दन के आलेप से आभूषित, पक्षे—लालचंदन के वृक्षों से सुशोभित। कर्णीसुतकथेव सन्निहित विपुलाचला शशोपगता च=कर्णीसुत—चौर्यशास्त्र प्रवर्तक क्षत्रिय विशेष की कथा के समान, समीपवर्ती विस्तृत पर्वतों वाली, पक्षे—विपुल, अचल नामक मित्रों वाली, शश—खरगोस नामक वन्यपशुओं से युक्त, पक्षे—शश नामक मन्त्री से युक्त। कल्पान्तप्रदोषसन्ध्येव=प्रलय की प्रदोष कालीन संध्या के समान, प्रनृत्यन्नीलकण्ठा=ताण्डवनृत्य करते हुए भगवान् शंकर वाली—पक्षे—प्रमोदवश नाचते हुए मयूरों वाली, पल्लवारुणा च=किसलयों के समान रक्त-वर्ण, पक्षे—पल्लवों से रक्तवर्ण। अमृतमन्थनवेलेव=अमृत प्राप्ति के लिए (किए गए) क्षीरसागर के मन्थन की वेला (समय) के समान, श्रीद्रुमोपशोभिता=लक्ष्मी और कल्पद्रुम से सुशोभित, पक्षे—विल्व वृक्षों से शोभित। वारुणीपरिगता च=मदिरा से युक्त पक्षे—पश्चिम दिशा तक फैली हुई। प्रावृडिव=वर्षा ऋतु के समान। घनश्यामला मेघों से श्यामवर्ण वाली, पक्षे—वृक्षादि से सघन अतएव श्यामवर्ण वाली, अनेक-शतह्रदालंकृता च=अनेक बिजलियों से सुशोभित, पक्षे—अनेक भिन्न-भिन्न तालाबों से सुशोभित।

अनुवाद—सदा समीपवर्ती यमराज के कारण भयकारिणी, तथा (यमराज-वाहन) महिष से अधिष्ठता (युक्ता) यमराजपुरी के समान (विन्ध्याटवी) सदा निकटवर्ती मृत्यु स्वरूप (सिंह व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं) के कारण भयदायिनी एवं वन्य सैरिभों (भैंसों) से अधिष्ठित (थी) धनुषों (वाणासन) पर समारोपित किये गये वाणों वाली और सैनिकों द्वारा (विमुक्त) सिंहनादों वाली, युद्ध के लिये प्रस्तुत सेना (पताकिनी) के समान (विन्ध्याटवी) वाण एवं असन नामक वृक्षों पर स्थित भ्रमरों वाली तथा सिंहों द्वारा की गई गर्जनाओं से युक्ता। (थी) चलती हुई तलवार के कारण भयंकर और लाल चन्दन के (अनुलेप से) सुशोभिता, सिंह वाहिनी दुर्गा (कात्यायिनी) के समान (विन्ध्याटवी) घूमते-फिरते गैंडा नामक वन्य जीवों के कारण भयंकर एवं रक्त चन्दन के वृक्षों से सुशोभिता (थी) निकटवर्ती विपुल और अचल नामक मित्रों वाली तथा शश नामक सचिव से युक्ता, (चौर्यशास्त्र प्रवर्तक) कर्णीसुत नामक क्षत्रिय विशेष की कथा (वृत्तान्त) के समान (विन्ध्याटवी) समीपवर्ती विस्तृत पर्वतों वाली तथा खरगोस नामक वन्य जीवों अथवा लोध्र वृक्षों से युक्ता (थी) संसार के संहार के लिये प्रमोद से नाचते हुए भगवान् शंकर से युक्ता और किसलयों के समान रक्तवर्ण, प्रलय की रजनीमुख (प्रदोष) कालीन संध्या के समान (विन्ध्याटवी) प्रमोद से नाचते हुए मयूरों (नीलकण्ठ) वाली तथा किसलयों से रक्त-वर्णा (थी) लक्ष्मी (श्री) और कल्पवृक्ष (द्रुम) से सुशोभिता तथा मदिरा (वारुणी) से समन्विता, अमृत प्राप्त्यर्थ (किये गये) समुद्र मंथन की वेला (समय) के समान (विन्ध्याटवी) विल्व वृक्षों (श्री द्रुम से सुशोभिता एवं पश्चिम दिशा (वारुणी) तक फैली हुई (थी) मेघों से श्यामवर्णा अनेक बिजलियों से सुशोभिता वर्षा ऋतु (प्रावृट्) के समान(विन्ध्याटवी) (वृक्ष लतादि से) घनी (सघन) होने से श्याम वर्ण तथा सैकड़ों (अनेक शत) तालाबों (ह्रद) से सुशोभिता (थी)

भावार्थ—समीपवर्ती मृत्यु स्वरूप सर्प सिंह व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं के कारण भयानक एवं वन्य भैंसों से युक्त विन्ध्याटवी, निकटवर्ती यमराज के कारण भयानक एवं यमवाहन महिष से युक्त यमपुरी के समान थी। वाण और असन नामक वृक्षों पर बैठे हुए भ्रमरों वाली तथा सिंहों द्वारा की गई गर्जनाओं से युक्त विन्ध्याटवी धनुषों पर आरोपित किये गये वाणों वाली एवं सैनिकों द्वारा किये गये सिंहनादों वाली, संग्राम के लिये उद्यत सेना के समान थी। घूमते-फिरते गैंडों के कारण भयानक तथा रक्त चन्दन के वृक्षों से सुशोभित विन्ध्याटवी, प्रचलित तलवार से भयानक एवं रक्त चन्दन से सुशोभित सिंहवाहिनी दुर्गा के समान थी। समीपवर्ती विस्तृत पर्वतों वाली तथा खरगोश या लोध्र वृक्षों से युक्त विन्ध्याटवी, पास में रहने वाले विपुल और अचल नामक मित्रों वाली तथा शश नामक सचिव से युक्त कर्णीसुत (चौर्यशास्त्र प्रवर्तक) की कथा के समान थी। प्रहर्ष से नाचते हुए मयूरों वाली किसलयों से रक्त वर्ण विन्ध्याटवी (संसार संहारार्थ) हर्ष से नाचते हुए शिव से

युक्त एवं किसलयों के समान रक्त वर्णा, प्रलय की प्रदोषकालीन संध्या के समान थी। बिल्व वृक्षों से सुशोभित एवं पश्चिम दिशा तक विस्तृत विंध्याटवी, लक्ष्मी और कल्प वृक्ष से सुशोभित तथा मदिरा से युक्त, अमृतार्थ समुद्र मंथन वेला के समान थी। घनीभूत होने से श्याम वर्णा तथा सैंकड़ों तालाबों से शोभित विन्ध्याटवी, मेघों से श्याम वर्ण तथा अनेक बिजलियों से सुशोभित वर्षा ऋतु के समान थी।

**संस्कृत व्याख्या**—**प्रेताधिपनगरीव**=प्रेतानाम् अधिपः स्वामी यमराजः तस्य नगरी संयमिनी पुरी सेव। **सदा सन्निहित मृत्युभीषणा**=सदा सर्वदा सन्निहितः निकटवर्ती यः मृत्युः यमराजः तेन भीषणा भयप्रदा तथोक्ता, विन्ध्याटवी, पक्षे सदा सन्निहितः च मृत्युः मृत्यु स्वरूपः सर्पव्याघ्रादिहिंसकजन्तुसमूहः तेन भीषणा भयदायिनी। **महिषाधिष्ठिता च**=महिषः यमवाहनः सैरिभः तेन अधिष्ठिता समन्विता तथोक्ता पक्षे महिषाः वन्यलुलायाः तैः अधिष्ठिता सहिता तथोक्ता। **समरोद्यतपताकिनीव**=समराय संग्रामाय उद्यता प्रवृत्ता या पताकिनी सेना तथोक्ता, **बाणासनारोपित शिलीमुखा**=बाणासनेषु शरासनेषु आरोपिताः सम्यक् स्थापिताः शिलीमुखाः शराः यया सा तथोक्ता, पक्षे—बाणाख्यवृक्षेषु असने त्याख्याततरूषु च आरोपिताः स्थापिताः शिलीमुखाः भ्रमराः यया सा तथोक्ता, **विमुक्तसिंहनादा च**=विमुक्तः सैनिकैः कृतः सिंहनाद इव नादः यस्यां सा, पक्षे—विमुक्तः केसरिभिः कृतः सिंहनादः केसरिध्वनिः यस्यां सा च। **कात्यायनीव**=सिंहारूढ़ा दुर्गेव, **प्रचलित खड्ग भीषणा**=प्रचलितः शत्रुवधाय चञ्चलीभूतः यः खड्गः असिः तेन भीषणा, भयदा, **रक्तचन्दनालंकृता च**=रक्तचन्दनम् रक्तचन्दनस्यानुलेपनमु तेन अलंकृता सुशोभिता तथोक्ता, पक्षे—प्रचलिताः इतस्ततः सञ्चरन्तः ये खड्गाः गण्डकेत्याख्याता वन्यपशवः तैः भीषणा भयजनका, रक्तचन्दनाख्यतरुभिः अलंकृता शोभिता च। **कर्णीसुतकथेव**=कर्णीसुतः चौर्यशास्त्रप्रवर्तकः क्षत्रियविशेषः तस्य कथा वृत्तान्तः इव, **सन्निहितविपुलाचला**—सन्निहितौ निकटवर्तिनौ विपुलाचलौ, तदाख्यौ सखायौ यस्यां सा तथोक्ता, **शशोपगता च**=शशेन. शशे 'त्याख्यातेन सचिवेन उपगता समन्विता च तादृशी, पक्षे-सन्निहिताः निकटवर्तिनः विपुलाः विस्तृताः अचलाः पर्वताः यस्यां सा तादृशी, शशैः शशकैः लोध्रवृक्षैर्वा उपगता विशिष्टा च तादृशी। **कल्पान्त प्रदोष सन्ध्येव**=कल्पस्य अन्ते युगान्ते प्रलय इत्यर्थः यः प्रदोषः रजनीमुखम् तस्य या सन्ध्या सेव तथोक्तेव, **प्रनृत्यन्नीलकण्ठा**=संसृतिसंहाराय प्रकर्षेण नृत्यन् नटन् नीलकण्ठो भगवान् शंकरो यस्यां सा तथोक्ता, **पल्लवारुणा च**=पल्लवाः किसलयानि तद्वत्अरुणवर्णा च, पक्षे—प्रकर्षेण नृत्यन्तः मयूराः यस्यां सा, पल्लवैः किसलयैः रक्तवर्णा च। **अमृतमंथनवेलेव**=अमृतस्य पीयूषोपलब्धये यन्मंथनं समुद्र विलोडनं तस्य वेला समय इव तथोक्ता, **श्री द्रुमोपशोभिता**=श्रिया समुद्रमंथनजातया लक्ष्म्या द्रुमेण, कल्पद्रुमेण च उपशोभिता समलंकृता, तथोक्ता। **वारुणीपरिगता च**=मदिरा सहिता च, पक्षे—श्री द्रुमाः बिल्ववृक्षाः तैः उपशोभिता विराजिता वरुणस्येयं वारुणी तां पश्चिमां दिशं परिगता परितोव्याप्ता तथोक्ता

च। प्रावृडिव=वर्षा समय इव, घनश्यामला=घनैः मेघैः श्यामला श्यामवर्णा, अनेकशतह्रदालंकृता=अनेकाभिः शतह्रदाभिः तडिद्भिः अलंकृता सुशोभिता च तथोक्ता, पक्षे—घना वृक्षलतादिभिः सान्द्रा अतएव श्यामला अतिकृष्णवर्णा, अनेके शतसंख्याका ये ह्रदाः क्षुद्राः जलाशयाः तैः अलंकृता विराजिता च।

संस्कृत सरलार्थ—निकटवर्तिमृत्युस्वरूपहिंसकजन्तुभ्यो भयानका वन्य लुलायसहिता च विन्ध्याटवी, समीपवर्तियमराजभयदा, यमराजवाहनमहिषसहिता च यमपुरीवासीत्। वाणासनाख्यवृक्षस्थितभ्रमरा, केसरिनादान्विता च विन्ध्याटवी, शरासनारोपितशरा, सैनिककृतसिंहनादा च, संग्रामप्रवृत्तसेनेवासीत्। इतस्ततो भ्रमद्भ्यो गण्डकाख्यजन्तुभ्यो भयानका रक्तचन्दनाख्यतरुशोभिता विन्ध्याटवी, शत्रुवधाय चाञ्चलीभूतासिभयानका रक्तचन्दनानुलेपविराजिता च सिंहाधिरूढा दुर्गेवासीत्। समीपवर्ति विस्तृतपर्वता शशकजन्तुविशिष्टा च विन्ध्याटवी, सन्निहित विपुलाचल—संज्ञकसखिसहिता, शशाख्य सचिवोपगता, चौर्यशास्त्रप्रवर्तक-कर्णीसुत कथेवासीत्।

प्रमोदनृत्यन्मयूरा किसलयैः रक्तवर्णा विन्ध्याटवी, संसृतिसंहाराय प्रहर्ष नृत्यन्महादेवा किसलयवद्रक्तवर्णा युगान्तप्रदोषकालीनसन्ध्येवासीत्। बिल्ववृक्षोप शोभिता पश्चिमां दिशं यावद् विस्तृता विन्ध्याटवी, श्रीकल्पवृक्षविराजिता मदिरा संयुक्ता च पीयूषोपलब्धये समुद्रमन्थनवेलेवासीत्। वृक्षलतादिभिः सान्द्रा अत श्यामवर्णा अनेकशत संख्याकजलाशयोपशोभिता च विन्ध्याटवी, मेघश्यामला अनेक-क्षणप्रभाभिरलंकृता प्रावृडिवासीत्।

टिप्पणी—प्रेताधिपेति—प्रेताधिपनगरी—यमराज की संयमिनी नामक नगरी। सन्निहितेति १—समीपवर्ती यमराज के कारण भयानक नगरी। २—मृत्यु स्वरूप हिंसक पशुओं से भयानक विन्ध्याटवी, महिषेति १—यम वाहन महिष सहिता नगरी, २— वन्य लुलाय सहिता विन्ध्याटवी। समरेति—पताका विद्यन्ते यस्यां सा पताकिनी सेना, वाणेति १—वाणासन धनुष, शिलीमुख=वाण, २—वाण असन नामक वृक्ष, शिलीमुख=भ्रमर, सेना में तो धनुषों पर वाण चढ़े हुए थे, विन्ध्याटवी में वाण असन नामक वृक्षों पर भ्रमर बैठे हुए थे, विमुक्तेति—सेना में सैनिक सिंह के समान गरज रहे थे, अटवी में सिंह गर्जना कर रहे थे। कात्यायनी=सिंहवाहिनी दुर्गा, प्रचलितेति—१—शत्रुवध के लिये चञ्चल हुई तलवार से भयानक दुर्गा, २—घूमते हुए गैंड़ा नामक पशुओं से भयानक अटवी। रक्तेति—१—लाल चन्दन, २—रक्त चन्दन के वृक्ष। कर्णीसुतेति=चौर्यशास्त्र प्रवर्तक कर्णीसुत की कथा का उल्लेख बृहत्कथा में है, इनके विपुल और अचल नामक दो मित्र, शश नाम का एक मन्त्री था "कर्णीसुतः करटकः स्तेयशास्त्र प्रवर्तकः। तस्य ख्यातौ सखायौ द्वौ विपुला चल संज्ञितौ। शशो मन्त्रिवर स्तस्य।

सन्निहितेति—अचल और विपुल नामक मित्रों एवं शश नामक मन्त्री वाली कथा, विस्तृत पर्वतों वाली तथा शशक पशुओं वाली अटवी थी। शश शब्द का प्रयोग

शशक=खरगोश तथा लोध्र वृक्ष दोनों के लिए होता है—"शशो लोध्रे नृभेदे च पशौ"। कल्पान्तेति—प्रलय की प्रदोष सन्ध्या के समान, प्रनृत्यन्निति १—नीलकण्ठ=भगवान् शिव, २—मयूर। पल्लवेति—पल्लवों जैसी रक्त वर्ण सन्ध्या, २—पल्लवों से रक्त वर्णा अटवी। अमृतेति—वेला=समय, वारुणी=१—मदिरा, २—पश्चिम दिशा। श्रीद्रुमेति—१—लक्ष्मी और कल्प वृक्ष, २—विल्व वृक्ष। अमृत के लिए समुद्र मन्थन से मदिरा, लक्ष्मी और कल्पवृक्ष साथ-साथ निकले थे। प्रावृडिति—वर्षा ऋतु। अटवी तो घनी होने से सांवली थी, वर्षा मेघों से श्यामवर्णा थी अनेकेति—वर्षा तो अनेक शतह्लदा=बिजलियों से शोभित थी, अटवी सैकड़ों विभिन्न जलाशयों (ह्लद) से शोभित थी "जलाशयो जलाधारस्तत्रागाधजलो ह्लदः। शम्पा शतह्लदा ह्लादिन्यैरावत्यः क्षणप्रभा" इत्यमरः॥

**चन्द्रमूर्तिरिव सतत मृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, राज्य स्थितिरिव चमरमृगवालव्यजनोपशोभिता समदगजघटा परिपालिता च, गिरितनयेव स्थाणुसंगता मृगपतिसेविता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च, कामिनीव चन्दनमृगमदपरिमलवाहिनी रुचिरा गुरुतिलकभूषिता च, सोत्कण्ठेव विविधपल्लवानिलवीजिता समदना च, बालग्रीवेव व्याघ्रनखपङ्क्तिमंडिता गण्डकाभरणा च, पानभूमिरिव प्रकटितमधुकोशकशता प्रकीर्णविविध कुसुमा च।**

शब्दार्थ—चन्द्रमूर्तिरिव=चन्द्रमा के स्वरूप या शरीर के समान, सततमृक्षसार्थानुगता=निरन्तर नक्षत्र (ऋक्ष) समूह (सार्थ) से अनुगता=घिरी हुई (चन्द्रमूर्ति) पक्षे—निरन्तर भालुओं के समूह से घिरी हुई (अटवी) हरिणाध्यासिता च=मृगलाञ्छन से आश्रित (चन्द्रमूर्ति) पक्षे—मृगों से अधिष्ठिता (अटवी)। राज्यस्थितिरिव=राज्यमर्यादा के समान, चमरमृगवालव्यजनोपशोभिता=चमर मृगों के बालों अर्थात् चामर पंखों (व्यजन) से शोभिता, समदगजघटापरिपालिता च=समद (मद युक्त) गज घटा=गज समूहों से परिपालिता (राज्यस्थितिः) पक्षे—चामर मृगों के बाल रूपी पंखों से सुशोभिता, और मतवाले गज समूह से रक्षिता (अटवी)। गिरितनयेव=हिमालय पुत्री पार्वती के समान, स्थाणुसंगता=रुद्र (स्थाणु) से मिली हुई, मृगपतिसेविता च=वाहनभूत सिंह से सेविता (पार्वती) पक्षे—शाखापत्रादि शून्य ठूंठ से युक्ता, और सिंहों से आश्रिता (अटवी) जानकीव=जानकी के समान प्रसूतकुशलवा=कुश लव नामक पुत्रों को उत्पन्न करने वाली, निशाचरपरिगृहीता=और निशाचर (रावण) द्वारा अपहृता (जानकी) पक्षे—कुशों के अंकुरों (लव) को उत्पन्न करने वाली तथा निशाचर=रात में घूमने वाले उलूक आदि पक्षियों से आश्रिता (अटवी)। कामिनीव=रतिप्रिया प्रमदा के समान, चन्दन मृगमदपरिमल-वाहिनी=चन्दन, कस्तूरी (मृगमद) की सुगन्धि (परिमल) को धारण करने वाली (वाहिनी) (प्रमदा) रुचिरागुरुतिलकभूषिता च=और सुन्दर अगरु के तिलक से

सुशोभित (प्रमदा) चन्दन और कस्तूरी की सुगन्धि को धारण करने वाली तथा सुन्दर अगरु एवं तिलक वृक्षों से सुशोभिता (अटवी)। सोत्कण्ठेव=प्रिय समागमाभिलाषिणी नायिका के समान, विविधपल्लवानिलवीजिता=अनेक प्रकार के पत्तों की हवाओं से (जिस पर) पंखा किया जा रहा था अर्थात् काम सन्ताप को दूर करने के लिए जिस पर शीतोपचार किया जा रहा था। समदना च=और काम युक्ता (नायिका) पक्षे—अनेक प्रकार के पल्लवों से जिस पर पंखा झला जा रहा है तथा जो मदन नामक वृक्षों से युक्ता है (अटवी)। बालग्रीवेव=बालक (स्तनन्धय-शिशु) की गरदन के समान, व्याघ्रनखपंक्तिमण्डिता=वाघ के नखों की पंक्ति से सुशोभित, गण्डकाभरणा च=और ताजीव (गण्डक) के आभूषण वाली (ग्रीवा) पक्षे—व्याघ्रों के नखों की पंकित से शोभित और गैंडा नामक वन्य पशुओं से अलंकृत (अटवी)। पानभूमिरिव=मधुमाला के समान, प्रकटित मधुकोशकशता=जिसमें सैकड़ों मधुपान पात्र (कोशक) प्रकट हो रहे हैं, प्रकीर्णविविधकुसमा च=और जिसमें अनेक प्रकार के पुष्प बिखरे हुए हैं ऐसी (मधुशाला) जिसमें सैकड़ों मधुमक्खियों के छत्ते (कोशक) दिखाई दे रहे हैं और अनेक प्रकार के फूल बिखरे हुए हैं ऐसी (अटवी)।

अनुवाद—निरन्तर नक्षत्र समूह से परिवेष्टित एवं मृगलाञ्छन से आश्रित, चन्द्रमूर्ति के समान, (विन्ध्याटवी) निरन्तर भालुओं के समूह से परिवेष्टित एवं हरिणों से आश्रित थी। चमर मृगों के वालों अर्थात् चामर के व्यजनों (पंखों) से शोभित तथा मद युक्त गज समूहों से परिरक्षित, राज्यमर्यादा के समान, (विन्ध्याटवी) चमर मृगों के बाल रूपी पंखों से शोभित एवं मतवाले हाथियों के समूह से परिरक्षित थी। भगवान् शंकर (स्थाणु) से संगता एवं सिंह से (वाहन रूप में) सेविता, हिमालय पुत्री पार्वती के समान, (विन्ध्याटवी) पत्रशाखारहित वृक्षों के ठूँठों (स्थाणु) से युक्त एवं सिंहों से सेवित थी। कुश लव नामक पुत्रों को उत्पन्न करने वाली तथा निशाचर रावण द्वारा अपहृत, जानकी के समान, (विन्ध्याटवी) कुशों के अंकुरों को उत्पन्न करने वाली एवं निशाचर (रात में घूमने वाले) उलूक आदि पक्षियों से युक्त थी। चन्दन और कस्तूरी की सुगन्धि को धारण करने वाली तथा सुन्दर अगरु के तिलक से सुशोभित, कामातुरा नायिका के समान, (विन्ध्याटवी) चन्दन वृक्षों एवं कस्तूरी मृगों की सुगन्धि को धारण करने वाली तथा अगरु और तिलक के वृक्षों से शोभित थी। अनेक प्रकार के किसलयों की हवाओं से पंखा झली जाती हुई और कामयुक्ता, रतिप्रिया नायिका के समान, (विन्ध्याटवी) अनेक पल्लवों की हवाओं से वीजित एवं मदनवृक्षों से युक्त थी। व्याघ्र के नखों की पंक्ति से सुशोभित तथा तावीज (गण्डक) के आभूषण वाली, स्तनन्धय शिशु की ग्रीवा के समान (विन्ध्याटवी) व्याघ्रों के नाखूनों की पंक्ति से शोभित एवं गैंडा नामक वन्य पशु रूपी आभूषणों वाली थी। जहाँ सैकड़ों मदिरा के पात्र दिखाई पड़ते हैं और जहाँ विविध प्रकार के पुष्प बिखरे

हुए हैं, ऐसी मधुशाला के समान (विन्ध्याटवी) सैकड़ों मधुमक्खियों के छत्तों को प्रकट करने वाली तथा बिखरे हुए बहुविध पुष्पों वाली थी।

भावार्थ—निरन्तर भालुओं के समूह से परिवेष्टित एवं हरिणों द्वारा आश्रित विन्ध्याटवी, निरन्तर नक्षत्र समूह से परिवेष्टित तथा मृगलाञ्छन से आश्रित, चन्द्रमा की मूर्ति के समान थी। चमरमृगों के बालरूपी पंखों से शोभित एवं मदमत्त हाथियों से परिरक्षित विन्ध्याटवी, चमर मृगों के बाल अर्थात् चामरपंखों से शोभित एवं मतवाले गज समूह से परिरक्षित, राज्यमर्यादा के समान थी। पत्तों एवं शाखाओं से रहित वृक्षों के ठूँठों से युक्त एवं सिंहों से आश्रित विन्ध्याटवी, भगवान शिव (स्थाणु) से युक्त तथा वाहनभूत सिंह से सेवित, हिमालय पुत्री पार्वती के समान थी। कुशों के अंकुरों को उत्पन्न करने वाली तथा रात में घूमने वाले उलूक आदि पक्षियों से आश्रित विन्ध्याटवी, कुश लव नामक पुत्रों को उत्पन्न करने वाली तथा निशाचर रावण के द्वारा अपहृत जानकी के समान थी। चन्दन वृक्षों एवं कस्तूरी मृगों की सुगन्धि को धारण करने वाली एवं सुन्दर अगरु तथा तिलक वृक्षों से शोभित विन्ध्याटवी, चन्दन एवं कस्तूरी की सुगन्धि को धारण करने वाली तथा रुचिकर अगरु के तिलक को धारण करने वाली कामातुरा नायिका के समान थी। विविध प्रकार के किसलयों की हवाओं का जिस पर पंखा झला जा रहा है तथा जो मदन नामक वृक्षों से युक्त है ऐसी विन्ध्याटवी, शीतोपचारार्थ विविध प्रकार के पल्लवों की हवाओं से वीजित एवं कामयुक्ता रतिप्रिया नायिका के समान थी। व्याघ्रों के नखों की श्रेणियों से शोभित एवं गैंडा नामक वन्य पशु रूप आभूषणों वाली विन्ध्याटवी, व्याघ्रनख पंक्ति से शोभित तथा तावीज के आभूषण वाली, स्तनन्धय शिशु की ग्रीवा के समान थी। सैकड़ों मधुमक्खियों के छत्तों को प्रकट करने वाली तथा बिखरे हुए बहुविध पुष्पों वाली, विन्ध्याटवी, सैंकड़ों मदिरापात्रों को प्रकट करने वाली एवं बिखरे हुए अनेकविध पुष्पों वाली, मधुशाला के समान थी।

संस्कृत व्याख्या—चन्द्रमूर्तिरिव=चन्द्रस्य मूर्तिः स्वरूपम् शरीरं वा चन्द्र स्वरूपमिव, सततमृक्षसार्थानुगता सततम्=निरन्तरम् ऋक्षाणि नक्षत्राणि तेषां सार्थः समूहः तेन अनुगता अनुयाता—नक्षत्रसमूहानुयाता, हरिणाध्यासिता च=हरिणेन मृगलाञ्छनेन अध्यासिता समाश्रिता—मृगलाञ्छनाश्रिता, पक्षे—सततं ऋक्षा भल्लूकाः तेषां सार्थेन अनुगता आश्रिता—भल्लूकसमुदायाश्रिता, मृगैराश्रिता च। राज्यस्थितिरिव=राज्यस्य स्थितिः मर्यादा-राज्यमर्यादेव, चमरमृगाणां चमराख्य मृगविशेषाणां वालाः चामराणि व्यजनानि तालवृन्तानि तैः उपशोभिता—चामर व्यजनालंकृता, समदगजघटापरिपालिता च=मदेन सह वर्तमानाभिः गजानां करिणां घटाभिः समूहैः परिपालिता परितः संरक्षिता-मदमत्तहस्तिसमूहसंरक्षिता च, पक्षे—चमर मृगाणां वालाः एव व्यजनानि तैरुपशोभिता, मदयुक्ता गजसमूहाः तैः परिपालिता च। गिरितनयेव=गिरेः हिमालयस्य तनया पुत्री पार्वती सा इव—गिरितनयेव,

**स्थाणुसङ्गता**=स्थाणुना रुद्रेण संगता मिलिता स्थाणुसंगता, **मृगपतिसेविता च**= मृगपतिना वाहनीभूतेन सिंहेन सेविता—वाहनीभूत सिंहशुश्रूषिता, पक्षे—स्थाणुभिः शाखापत्रपुष्पादिरहितशुष्कतरुभिः संगता आश्रिता, मृगपतिभिः सिंहैः सेविता आश्रिता च। **जानकीव**=जनकतनयेव, प्रसूत कुशलवा=प्रसूतौ जनितौ कुशलवाख्यौ सुतौ यया सा तथोक्ता, **निशाचरपरिगृहीता** च=निशाचरेण रावणेन परिगृहीता वनादपहृता तथोक्ता च। पक्षे—प्रसूताः समुत्पादिताः कुशानां दर्भाणां लवाः अङ्कुरा यया सा तथोक्ता, **निशाचरैः** रात्रिञ्चरैः उलुकादिपक्षिभिः **परिगृहीता समाश्रिता च** **कामिनीव**=श्रृङ्गारनायिकेव, चन्दनमृगमदपरिमलवाहिनी=चन्दनं चन्दनानुलेपनं मृगमदः कस्तूरिकानुपलेपनञ्च तयोः परिमलं सौगन्ध्यं वहति धारयतीत्येवं शीलं यस्याः सा तादृशी, **रुचिरागुरुतिलकभूषिता च** =रुचिरस्य सुन्दरस्य अगुरोः काकतुण्डस्य तिलकेन पुण्ड्रकेण भूषिता विशोभिता-मनोहरागुरुतिलकालंकृता च। पक्षे—चन्दन वृक्षाणां कस्तूरीणाञ्च परिमलं सौरभं वहतीत्येवंशीला, रुचिरा मनोहराः ये अगरुवृक्षाः तिलकवृक्षाश्च तैः भूषिता समलंकृता च। **सोत्कण्ठेव**=कान्तसमागमाभिलाषिणी नायिकेव, **विविधपल्लवानिलवीजिता**—विविधानां पल्लवानां किसलयानां अनिलैः पवनैः कामसन्तापापहाराय वीजिता सखीभिः शीतोपचारायोपवीजिता, **समदना च**—मदनेन कामेन सह वर्तमाना च। पक्षे—विविधपल्लव पवनेन स्वभावतः स्पृष्टा, मदनाख्यतरुविशेषैः सह वर्तमाना च। **बालग्रीवेव**=बालस्य स्तनन्धयस्य शिशोः ग्रीवेव, व्याघ्र नखपंक्तिमण्डिता-- व्याघ्रस्य शार्दूलस्य नखानां नखराणां पंक्तिः श्रेणी तया मण्डिता आभूषिता तथोक्ता, **गण्डकाभरणा च**=गण्डस्थलपर्यन्तवर्ति तत्तद्देश विशेष प्रचलितं बालरक्षार्थमावद्धम् आभरणं भूषणं यस्याः सा तथोक्ता च, पक्षे—व्याघ्रनखपंक्तिभिः भ्रमणकालोत्पन्ननखचिह्नावलीभिः सुशोभिता, गण्डका, वर्ध्रीणसाः (गैंड़ा इति लोके) त एव आभरणानि यस्याः सा तथोक्ता। **पानभूमिरिव**—मद्यपानार्थं या भूमिः पानभूमिः मद्यशाला मधुशाला वा सेव, **प्रकटितमधुकोशकशता**—प्रकटितानि पानाय प्रदर्शितानि मधुनः मद्यस्य कोशकानि मधुपानपात्राणि तेषां शतम् यया सा तथोक्ता, **प्रकीर्णविविधकुसुमा च**—प्रकीर्णानि सर्वतः पर्यस्तानि विविधानि अनेक विधानि कुसुमानि पुष्पाणि यस्यां सा तथोक्ता च, पक्षे—प्रकटितं प्रकाशितं मधूनां माक्षिकाणां पुष्परसानां कोशकानां शतं यस्यां सा तथोक्ता, पर्यस्तानेकविधपुष्पा च॥

**संस्कृत सरलार्थ**—निरन्तरं भल्लूकसमूहेन परिवेष्टिता मृगाश्रिता च विन्ध्याटवी, निरन्तरं नक्षत्र समूहेन परिवेष्टिता मृगलाञ्छनेनाश्रिता चन्द्रस्य मूर्तिरिवासीत्। चमरमृगविशेषाणां बालचामरव्यजनाभूषिता मदयुक्तगजसमूह परिपालिता च विन्ध्याटवी, चामरव्यजनालंकृता, मदमत्तहस्ति समूह परिपालिता राज्यमर्यादिवासीत्। पत्रशाखारहितशुष्कवृक्षस्थाणुभिर्युक्ता, सिंहाश्रिता च विन्ध्याटवी, महादेवमिलिता, वाहनभूतसिंह सेविता च पार्वतीवासीत्। जनितदर्भाङ्कुरा रजनीचरोलूकादिखगाश्रिता च विन्ध्याटवी, जनित कुशलवसंज्ञकसुता, निशाचरेण रावणेन वनापहृता जानकीवासीत्। चन्दन वृक्षकस्तूरिकासौगन्ध्यधारिणी मनोहरा-

गुरुतिलक वृक्षविशेष सुगन्धि धारिणी च विन्ध्याटवी, चन्दनकस्तूरिकानुलेप सुगन्धिमती, सुन्दरागुरु पुण्ड्रकालंकृता च शृङ्गारनायिकेवासीत्। विविध किसलयपवनैः स्वभावतः स्पृष्टा, मदनाख्यवृक्ष संयुक्ता विन्ध्याटवी, बहुविध किसलय पवनैः कामसन्तापापहाराय सहचरीभिः स्पर्शिता, सकामा च कान्तसमागमाभिलाषिणी नायिकेवासीत्। वनभ्रमण-काले शार्दूलनखरचिह्नावलीभिः सुशोभिता गण्डकसंज्ञकजन्तुविशेषाभूषिता च विन्ध्याटवी, दैवोत्पातशमनार्थं व्याघ्रनखरपंक्तिभूषिता, गण्डकाभरणवती स्तनन्धय-शिशुग्रीवेवासीत्। प्रकाशितमाक्षिकपुष्परसकोशकशता पर्यस्तबहुविध पुष्पा च विन्ध्याटवी, प्रदर्शितमद्यपानपात्रशता पर्यस्तविविधकुसुमा मद्यपान भूमिरिवासीत्।

**टिप्पणी—ऋक्षसार्थेति**—ऋक्ष="ऋक्षौ नक्षत्रभल्लूकौ" १—नक्षत्र, २—भल्लूक, सार्थ=समूह, हरिण=१—मृग, २—मृगलाञ्छन जो चन्द्रमा में होता है। **राज्यस्थितिरिति**—स्थिति=मर्यादा, राज्यमर्यादा चामर-व्यजनों से शोभित थी और मतवाले हाथियों से परिपालित थी, विन्ध्याटवी में भी अनेक समद गज थे और वहाँ भी चमर मृग थे जिनके बालों से चाँवर बनते हैं। **गिरितनयेति**—स्थाणु=शिव तथा सूखे शाखारहित वृक्ष का ठूँठ। **प्रसूतकुशलवेति**—कुश लव नामक पुत्रों को उत्पन्न करने वाली जानकी, कुशों के अंकुरों को उत्पन्न करने वाली अटवी, **निशाचरेति**—निशाचर=रात में घूमने फिरने वाले राक्षस और उलूक आदि पक्षी। **चन्दनेति**—चन्दनानुलेप और चन्दन वृक्ष, मृगमद=कस्तूरी जो कि कस्तूरी मृग की नाभि से निकलती है। **रुचिरेति**—अगरु और अगरु नामक वृक्ष, दूसरे पक्ष में अगरु का तिलक। सोत्कण्ठा=कान्ताभिलाषिणी। वीजिता=जिस पर पंखा झला जा रहा था। समदना=मदन नामक वृक्ष और सकामा, **व्याघ्रेति**=बच्चे के गले पर दैवोत्पात दूर करने के लिए प्रायः माला में व्याघ्र नख बाँध दिये जाते हैं और उसके गले में मन्त्राभिषिक्त गण्डक या गण्डा भी बाँधा जाता है। अटवी में व्याघ्र के नखों के चिह्न होते ही हैं और गैंडा नामक पशु भी पाया जाता है। **पानभूमिरिति** मद्यशाला में मद्यपान के पात्र दिखलाई पड़ते हैं और इधर-उधर पुष्प भी बिखरे रहते हैं। अटवी में मधुकोशक =मधुमक्खियों के छत्ते देखे जाते हैं और विविध पुष्प भी।

**क्वचित् प्रलयवेलेव महावराहदंष्ट्रासमुत्खातधरणि मण्डला, क्वचिद् दशमुखनगरीव, चटुलवानरवृन्दभज्यमानतुङ्गशालाकुला, क्वचिदचिर-निर्वृत्तविवाहभूमिरिव, हरितकुशसमित् कुसुमशमी पलाशशोभिता, क्वचिदुन्मत्त मृगपतिनादभीतेव कण्टकिता, क्वचिन्मत्तेव कोकिलकुल कल-प्रलापिनी, क्वचिदुन्मत्तेव वायुवेग कृततालशब्दा, क्वचिद्विधवेव उन्मुक्तताल-पत्रा।**

शब्दार्थ—प्रलयवेलेव=प्रलयकाल अर्थात् जलमय समय के समान, महावराहदंष्ट्रासमुत्खातधरणिमण्डला=जिसमें वराहावतारविष्णु द्वारा अपनी दाढ़ों से समस्त पृथिवी मण्डल को जल के ऊपर ले आया गया था, अटवी पक्षे—जिसकी

समस्त भूमि को बड़े-बड़े शूकरों (महावराह) के दाँतों से खोद डाला गया था। **दशमुखनगरीव**=दशमुख रावण की नगरी लंका के समान, **चटुलवानरवृन्दभज्यमानतुङ्गशालाकुला**=चञ्चल वानर समूह द्वारा तोड़े जाते हुए भवनों से व्याकुल, पक्षे—चञ्चल वानर समूह द्वारा तोड़े जाते हुए शालवृक्षों से व्याप्त। **अचिर निवृत्तविवाहभूमिरिव**=तत्काल समाप्त हुए विवाह की भूमि अर्थात् वेदिका के समान, **हरितकुशसमित् कुसुमशमीपलाशशोभिता**=(हवन के लिए एकत्र किये गये) हरे कुश समिधा=हवन की लकड़ियाँ, पुष्प, शमी और पलाश के पत्तों से शोभित, अटवी पक्षे—विन्ध्याटवी भी इन सब वस्तुओं से शोभित थी। **उन्मत्तमृगपतिनादभीतेव**=उन्मत्त सिंह की गर्जना से डरी हुई स्त्री के समान, **कण्टकिता**=रोमाञ्चिता, पक्षे—काटों से युक्त। **मत्ताइव**=मधुपान से मतवाली स्त्री के समान, **कोकिलकुलकलप्रलापिनी**=कोयल समूह के समान मधुर और अस्पष्ट प्रलाप (अनर्थक बात) करने वाली, पक्षे—कोकिल मण्डल की अस्पष्ट मधुर ध्वनियों वाली। **उन्मत्तेव**=(बात व्याधि से) उन्मत्ता=पागल स्त्री के समान, **वायुवेगकृततालशब्दा**=व्याधि रूप बात के आधिक्य से करतल ध्वनियाँ (ताल शब्द=ताली बजाना) करने वाली, पक्षे—वायु के वेग से ताड़ वृक्षों (के पत्तों का) शब्द करने वाली। **विधवेव**=विधवा स्त्री के समान, **उन्मुक्ततालपत्रा**=(पतिमरण वश) ताटङ्क नामक कर्णाभूषण (तालपत्र) को त्याग (उन्मुक्त) देने वाली, पक्षे—(वायु वेग से) ताड़वृक्षों के पत्तों को (ताल पत्र) गिरा चुकने वाली (उन्मुक्त)।

**अनुवाद**—बड़े-बड़े शूकरों के दाँतो से खोद डाले गये भूभाग वाली विन्ध्याटवी कहीं तो वराहावतार विष्णु के दाँतों द्वारा जल के ऊपर ले आये गये पृथ्वी मण्डल वाली, प्रलयकालीन जलमय वेला के समान थी। चञ्चल वानर समूह द्वारा तोड़े जाते हुए ऊँचे शाल नामक वृक्षों से व्याप्ता विन्ध्याटवी, कहीं पर चञ्चल वानर समूह द्वारा तोड़े जाते हुए ऊँचे भवनों से विक्षुब्धा लंकापुरी के समान थी। हरे कुशों, समिधा (हवनीय काष्ठ) पुष्प, शमी तथा पलाश पत्रों से शोभित विन्ध्याटवी कहीं पर हरे कुशों समिधा पुष्प शमी एवं पलाश पत्रों से शोभित, तत्काल समाप्त हुई विवाहवेदिका के समान थी। सिंह की गर्जना से भयभीता अतएव रोमाञ्चिता स्त्री के समान कहीं विन्ध्याटवी, काँटों से भरी हुई थी। कहीं कोकिल समूह की अस्पष्ट मधुर ध्वनियों वाली विन्ध्याटवी, कोकिल समूह के समान अस्पष्ट मधुर (प्रलाप) निरर्थक बातें बकने वाली (मधुपान से) मतवाली स्त्री के समान थी। कहीं वायु के वेग से ताड़वृक्षों के (पत्तों का) शब्द करने वाली विन्ध्याटवी व्याधिभूत—बात के आधिक्य से ताली बजाने वाली पागल स्त्री के समान थी। कहीं ताड़वृक्षों के पत्तों को (वायुवेग वश) गिरा चुकने वाली विन्ध्याटवी, तालपत्र=ताटङ्क नामक कर्णाभूषण का (पति मरणवश) त्यागकर देने वाली विधवा स्त्री के समान थी।

भावार्थ—कहीं विन्ध्याटवी के भूभाग वहाँ रहने वाले बड़े-बड़े शूकरों द्वारा अपने दातों से खोद डाले गये थे जिससे कि वह, वराहावतार विष्णु द्वारा अपने दाँतो से जल के ऊपर ले आये गये पृथ्वी मण्डल वाली, प्रलय कालीन जलमय वेला (समय) के समान थी। कहीं चञ्चल बन्दरों ने ऊँचे-ऊँचे शाल वृक्षों को तोड़ डाला था अतः ऐसे वृक्षों से भरी हुई विन्ध्याटवी, उस लंकापुरी के समान थी जिसके ऊँचे-ऊँचे भवनों को चञ्चल बन्दरों ने तोड़ डाला था। हरे कुश, समिधा पुष्प और शमी तथा पलाश वृक्षों के पत्तों से शोभित विन्ध्याटवी, हरे कुश आदि से शोभित उस विवाह-वेदिका के समान थी जिसमें तत्काल ही विवाह सम्पन्न हुआ हो। काटों से भरी हुई विन्ध्याटवी कहीं सिंह गर्जना से भयभीत अतएव रोमाञ्चिता नायिका जैसी थी। कोयल समूह की अस्पष्ट मधुर ध्वनियों वाली विन्ध्याटवी कहीं कोकिल समूह के समान अस्पष्ट मधुर निरर्थक बातें बकने वाली (मधुपान से) मतवाली स्त्री के समान थी। कहीं वायु के वेग से ताड़ वृक्षों के पत्ते खड़खड़ा रहे थे। जिससे कि कहीं विन्ध्याटवी, व्याधिभूत वातरोग के आधिक्य से करतल ध्वनियाँ करने वाली पागल स्त्री के समान थी। (वायुवेग वश) ताड़ वृक्षों के पत्तों को गिरा चुकने वाली विन्ध्याटवी कहीं उस विधवा स्त्री जैसी थी जिसने कि (पतिमरण वश) ताटङ्क नामक कर्णाभरण (पहनना) छोड़ दिया था।

संस्कृत व्याख्या—क्वचित्=कस्मिंश्चित् प्रदेशे, प्रलयवेला इव—प्रलयस्य जलमयस्य वेला समय इव। महावराहदंष्ट्रासमुत्खातधरणिमण्डला=महावराहस्य वराहावतारधारिणो विष्णोः दंष्ट्रया दन्तेन समुत्खातं जलादूर्ध्वमानीतं धरणि मण्डलं समस्तं भूमण्डलं यस्यां सा तथोक्ता, विन्ध्याटवी पक्षे—महावराहैः विशालकायशूकरैः दंष्ट्राभिः दन्तैः समुत्खातं विदारितं धरणि मण्डलं भूभागः यस्याः सा तथोक्ता। क्वचित् दशमुखनगरीव=दशमुखस्य रावणस्य नगरी लङ्कापुरी तद्वदिव, चटुलवानरवृन्दभज्यमानतुङ्गशालाकुला=चटुलाः चञ्चला ये वानराः कपयः तेषां वृन्देन समुदायेन भज्यमानाः त्रोट्यमानाः तुङ्गा उन्नताः शालाः गृहैकदेशाः ताभिः आकुला व्याकुला तथोक्ता, अटवी पक्षे—चञ्चल वानर समुदाय त्रोट्यमानोन्नत शालाख्य वृक्षा स्तैराकुला व्याप्ता तथोक्ता। क्वचित् अचिरनिर्वृत्तविवाह भूमिरिव=अन्यत्र अचिरं तत्कालं निर्वृत्तः निष्पन्न=यः विवाहः परिणयः तस्य भूमिः स्थानं वेदिकेत्यर्थः तद्वदिव। हरितकुशसमित्कुसुमशमीपलाशशोभिता=हरिता नीलवर्णा ये कुशाः दर्भाः समिधः हवनीय काष्ठानि कुसुमानि पुष्पाणि शमी शिवा पलाशाः ब्रह्मादयः तैः शोभिता भूषिता तथोक्ता, अटवी पक्षेऽपि हरितकुशादिभि स्तत्रोद्भवैराभूषिता तथोक्ता। क्वचिदुन्मत्त मृगपतिनादभीतेव=उन्मत्तो मदमत्तो यो मृगपतिः सिंहः तस्य नादेन गर्जनेन भीता भयत्रस्ता सुन्दरी नायिकेव, कण्टकिता=कण्टकाः रोमाञ्चाः संजाता अस्याः सा कण्टकिता जातरोमाञ्चा, विन्ध्याटवी पक्षे—कण्टकैरावृता। क्वचित् मत्तेव=कस्मिंश्चित् प्रदेशे मधुपानेन उन्मत्ता नायिकेव, कोकिल कुलकल प्रलापिनी—कोकिलकुलं कोकिलसमूहः तद्वत् कलं, अस्पष्ट-मधुरं प्रलपितुं, उन्मादवशात् असम्बद्धम्

अनर्थकञ्च प्रलापं कर्तुं शीलमस्याः सा तथोक्ता, पक्षे कोकिलाकुलस्य कलप्रलापः अस्पष्ट मधुर ध्वनिः अस्याः अस्तीति तथोक्ता। क्वचिदुन्मत्तेव=क्वचित् उन्मत्ता उन्मादाख्यवात व्याधि युक्ता नायिकेव, वायुवेगकृततालशब्दा=वायोः वेगेन= व्याधि-भूत वातबाहुल्येन कृताः सम्पादिताः तालशब्दाः=करतल ध्वनयः यया सा तथोक्ता, पक्षे—वायुवेगेन कृता विहिता तालानां तालाख्य वृक्षाणां शब्दाः यस्यां सा तथोक्ता। क्वचिद् विधवेव=विगतः विनष्टः मृतो वा धवः पतिर्यस्याः सा विधवा स्त्री इव, उन्मुक्त तालपत्रा=उन्मुक्तं पतिमरणात् परित्यक्तं तालपत्रम् ताटङ्-काख्यकर्णाभरणं यया सा तादृशी, पक्षे—उन्मुक्तानि वायुवेगेन अधः पातितानि तालानां तालाख्यतरूणां पत्राणि दलानि यस्यां सा तथोक्ता।

संस्कृत सरलार्थ—कस्मिंश्चित् प्रदेशे विन्ध्याटवी, तत्रत्यमहावराह दंष्ट्राभिः समुत्खातभूभागा अतएव वराहावतारधारि विष्णुना स्वदन्तैर्जलादुपरि समानीता समस्त भूमण्डला प्रलयकालीन वेलेव प्रतीयमानासीत्। कुत्रचित् स्वभावतश्चञ्चलवानरैर्विशाल शाल वृक्षा भग्ना आसन्, एभिः भग्नवृक्षैः सा विन्ध्याटवी, सा लङ्कापुरीवासीत् यस्या विशाल भवनानि रामसेनागत वानरैर्भग्नानि आसन्। हरितकुशसमित् कुसुमशमी-पलाशपत्रैरुपशोभिता विन्ध्याटवी हरित् कुशादिभिरुपशोभिता तत्कालसम्पन्नविवाह वेदिकेवासीत्। कण्टकाकीर्णा विन्ध्याटवी क्वचित् मदमत्तसिंहगर्जितेन भयत्रस्ता अतएव संजातरोमाञ्चा नायिकेवासीत्। पिकमण्डलास्फुटनमधुरध्वनिमती विन्ध्याटवी क्वचित्उन्मत्ता अतएव पिकमण्डलवत् अस्फुटासम्बद्धालापपरा नायिके-वासीत्। वायुवेगवशात् कृततालवृक्षशब्दा विन्ध्याटवी, क्वचित् वातव्याधि बाहुल्येन करतलध्वनिपरा उन्मादवती नायिकेवासीत्। वायुवेगेनाधः पातित तालवृक्ष पत्रा विन्ध्याटवी क्वचित् पतिमरणवशात् परित्यक्तताटङ्काख्य कर्णाभरणा विधवा नायिकेवासीत्।

टिप्पणी—प्रलयवेला—प्रलयकालीन जलमय समय के समान, महावराह= १. बड़े-बड़े विशालकाय जंगली शूकर, २. वराहावतारधारी विष्णु—जिन्होंने अपने दाँतों पर रखकर जल में निमग्न पृथ्वी का उद्धार किया था। विन्ध्याटवी में रहने वाले शूकर भी अपनी दाढ़ों से वहाँ की भूमि को खोद डालते थे। समुत्खात—सम+ उत्+खन+क्त, भली-भाँति ऊपर उठा लाना और खोद डालना। चटुलेति— चटुल=चञ्चल, भज्यमान=त्रोट्यमान, तोड़े जाते हुए, तुङ्ग=ऊँचे, शालवृक्ष और शालायें=भवन। आकुला=विक्षुब्धा। अचिरनिर्वृत्त=जिसमें विवाह विधि शीघ्र ही समाप्त हुई है ऐसी भूमि=वेदिका। विवाह में हरित कुश पलाश आदि वेदी पर काम आते हैं. अटवी में ये सब स्वतः उपजते हैं। मृगपतिनाभीता—सिंह गर्जना से कोमलाङ्गी नायिका का भयभीत होना और फलतः रोमाञ्चित होना स्वाभाविक ही है, अटवी में सिंहनाद का होना और उसका कण्टकाकीर्ण होना भी स्वाभाविक है। मत्तेवेति—उन्मत्त व्यक्ति भी वन्य पिक समूह के समान ही असम्बद्ध प्रलाप करता है। उन्मत्तेव—वातव्याधि जब अधिक बढ़ जाती है तब व्यक्ति पागल

होकर तालियाँ बजा बजाकर गाने नाचने लगता है, अटवी में ताड़वृक्षों के पत्ते वायु वेग से खड़खड़ा रहे थे। विधवेव—विधवा स्त्री ताटङ्क नामक कर्णाभूषण पहनना छोड़ देती है, अटवी में ताड़ वृक्षों के पत्ते वायुवेग से नीचे गिर गये थे—उन्मुक्त=छोड़ देना और नीचे गिरा देना।

**क्वचित् समरभूमिरिव शरशतनिचिता। क्वचिदमरपतितनुरिव नेत्रसहस्रसङ्कुला। क्वचिन्नारायणमूर्तिरिव तमालनीला, क्वचित् पार्थरथ-पताकेव वानराक्रान्ता। क्वचिदवनिपतिद्वारभूमिरिव वेत्रलताशतदुष्प्रवेशा। क्वचित् विराटनगरीव कीचकशतावृता। क्वचिदम्बरश्रीरिव व्याधानुगम्य-मान तरलतारकमृगा। क्वचिद्गृहीतव्रतेव दर्भचीरजटावल्कलधारिणी। अपरिमितवहलपत्र सञ्चयाऽपि सप्तपर्णभूषिता, क्रूरसत्वाऽपि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम।**

शब्दार्थ—शरशतनिचिता=सैकड़ों सरकण्डे के पौधों से भरी हुई, तथा सैकड़ों वाणों से भरी हुई संग्राम भूमि। शर=सरकण्डे के पौधे १. वाण २. अमरपति तनुः=देवेन्द्र इन्द्र का शरीर, नेत्र=वृक्षों की जड़ें अथवा वट आदि वृक्षों से निकलने वाली जटायें। सङ्कुला=व्याप्त, इन्द्र के शरीर में भी हजारों नेत्र माने जाते हैं। नारायण का शरीर श्यामवर्ण का है, विन्ध्याटवी, तमाल वृक्षों से नीलवर्ण की थी, नारायण का शरीर तमाल वृक्षों के समान नील वर्ण का था। पार्थरथपताका=अर्जुन के रथ की पताका पर हनुमान की मूर्ति है, अटवी भी वानरों से अधिष्ठित थी। अवनिपतिद्वारभूमिः=राजा की द्वार भूमि=वेत्रलताशतदुष्प्रवेशा=द्वारपालों के हाथों की सैकड़ों वेत्रयष्टियों के कारण कठिनाई से प्रवेश योग्य होती है, अटवी में सैकड़ों वेतों की लतायें होने के कारण वह भी दुष्प्रवेश थी। कीचक-शतावृता=सैकड़ों कीचकों (विराट के राजश्यालक के सैकड़ों अनुयायिओं) से युक्त अटवी में कीचक नामक अनेक वेणु (बाँस) थे। अम्बरश्रीः=आकाश लक्ष्मी, व्याधानुगम्यमानतरलतारकमृगा=व्याध=१. भील बहेलिया २. व्याधरूपधारी शिव, तरलतारक मृगा=१. भय वश चञ्चल तारक मृग अर्थात् मृगशिरा नामक नक्षत्र, २. भय वश चञ्चल नेत्र पुतलियों वाले मृगों से युक्त। गृहीतव्रता=व्रतधारिणी, दर्भचीर वल्कलधारिणी=कुश, वस्त्रखण्ड—जीर्णवस्त्र या कौपीन, जटा और वल्कलवस्त्र धारण करने वाली। अटवी—कुश चीर नामक घासों, वृक्षों की जटाओं तथा छालों को धारण करने वाली। अपरिमितबहुलपत्रसञ्चयाऽपि=असंख्य घने पत्रों वाली होकर भी, सप्तपर्णभूषिता=सात पत्तों से शोभित, (विरोध परिहारार्थ—सप्तपर्ण नामक वृक्षों से शोभित। क्रूरसत्त्वापि=दुष्ट हृदय वाली फिर भी मुनिजनों से सेवित (विरोध परिहारार्थ) सिंह व्याघ्रादि क्रूरस्वभाव के जीवों वाली। पुष्पवतीअपि=रजोधर्मवती होकर भी पवित्र (विरोध परिहारार्थ—पुष्पवती=फूलों वाली।

अनुवाद—सैकड़ों शरपत्रों (सरकण्डे नामक पौधों) से भरी हुई विन्ध्याटवी कहीं सैकड़ों वाणों से भरी हुई युद्ध भूमि के समान थी। हजारों नेत्र नामक वृक्षों अथवा वृक्षों की जड़ों या जटाओं से व्याप्त विन्ध्याठवी, मानो सहस्र नेत्रों से व्याप्त देवराज इन्द्र के शरीर के समान थी। तमाल वृक्षों से नीलवर्णा विन्ध्याटवी, कहीं तमाल वृक्षवत् श्यामवर्णवाली श्रीनारायण (भगवान कृष्ण) की मूर्ति अर्थात् शरीर जैसी थी। वानरों से अधिष्ठित विन्ध्याटवी, कहीं हनुमान् की मूर्ति से चिह्नित अर्जुन के रथ की पताका के समान थी। सैकड़ों वेंत की लताओं के कारण दुर्गम प्रवेश वाली विन्ध्याटवी, कहीं पर, (द्वारपालों के हाथों की) सैकड़ों वेत्रयष्टियों के कारण दुष्प्रवेशा राजाओं के द्वार भूमि (ड्योढी) के समान थी। सैकड़ों कीचकों—छिद्र युक्त बाँसों-से भरी हुई विन्ध्याटवी, कहीं पर, सैकड़ों कीचकों (राजश्यालक कीचक के अनुयायियों) से भरी हुई विराट नगरी के समान थी। व्याध—बहेलियों द्वारा अनुगम्यमान (अतएव भयवश) चञ्चल कनीनिकाओं वाले मृगों से युक्त विन्ध्याटवी, कहीं, व्याध—व्याधरूपधारी भगवान् शिव के द्वारा अनुगम्यमान अतएव तरल (चञ्चल) तारकमृग=मृगशिरा नामक नक्षत्र वाली आकाश लक्ष्मी के समान थी। कुश और चीर नामक घासों, वृक्षों की जटाओं तथा वृक्षों की छालों को धारण करने वाली विन्ध्याटवी कहीं पर, कुश जीर्ण वस्त्र या कौपीन जटायें तथा वल्कल को धारण करने वाली व्रतधारिणी स्त्री के समान थी। असंख्य सघन पत्तों के समूह वाली होकर भी जो विन्ध्याटवी सात पत्तों से सुशोभित थी (यहाँ विरोध परिहारार्थ—सप्तपर्ण से सप्तपर्ण नामक वृक्षों से आभूषित अर्थ लिया जायेगा) दुष्ट हृदय वाली होकर भी जो मुनिजनों द्वारा सेवित थी (यहाँ विरोध परिहारार्थ, क्रूरसत्त्वा का अर्थ 'सिंह व्याघ्रादि क्रूर जीवों वाली, लिया जायेगा। पुष्पवती अर्थात् रजोधर्मवती होकर भी जो विन्ध्याटवी पवित्र थी (यहाँ विरोध परिहारार्थ— पुष्पवती का अर्थ फूलों वाली लिया जायेगा।

भावार्थ—कहीं सैकड़ों वाणों से भरी हुई युद्ध भूमि के समान विन्ध्याटवी अनेक सरकण्डे के पौधों से भरी हुई थी, (शर=१ सरकण्डे २ वाण) कहीं हजारों नेत्रों से व्याप्त इन्द्र के शरीर के समान विन्ध्याटवी हजारों नेत्र नामक वृक्षों से व्याप्त थी। तमाल वृक्षों के समान नीली श्रीकृष्ण की मूर्ति के समान कहीं वह तमाल वृक्षों से श्यामवर्ण की थी। हनुमान की मूर्ति से अंकित अर्जुन के रथ की ध्वजा के समान कहीं वह वानरों से आक्रान्त थी। द्वारपालों की वेत्रयष्टियों के कारण दुष्प्रवेशा राजद्वार भूमि के समान कहीं वह अनेक वेंतों की लताओं से दुष्प्रवेशा थी। अनेक कीचकानुयायी सेवकों से अधिष्ठित विराट नगर के समान कहीं वह बजने वाले वेणु नामक बांसों से भरी हुई थी। व्याध रूपधारी शिव द्वारा अनुगम्यमान चञ्चल मृगशिरा नक्षत्र वाली आकाश लक्ष्मी के समान कहीं वह बहेलियों द्वारा अनुगम्यमान चञ्चल पुतलियों वाले मृगों से युक्त थी। कुश कोपीन जटा वल्कलधारिणी व्रत करने वाली स्त्री के समान कहीं वह कुश चीर नामक घासों वृक्षों की जटाओं एवं वृक्षों की

छालों से व्याप्त थी। यद्यपि विन्ध्याटवी अनेक सघन पत्र समूह वाली थी फिर भी वह सात पत्तों वाली थी, इस विरोध के परिहार के लिए सप्त र्ण का अर्थ सप्तपर्ण नामक वृक्ष है। दुष्ट हृदय वाली होकर भी वह मुनियों से सेवित थी, विरोध परिहारार्थ क्रूर हृदया का अर्थ सिंहादि दुष्ट जीवों वाली है। पुष्पवती अर्थात् रजोधर्मवती होकर भी वह पवित्र थी, रजोधर्मवती स्त्री अपवित्र ही होती है अतः यहाँ पुष्पवती का अर्थ फूलों वाली—लिया जायेगा।

संस्कृत व्याख्या—क्वचित् कस्मिंश्चित् प्रदेशे, समरभूमिः युद्धस्थानमिव, शरशतनिचिता=शराणां वाणानां शतेन समूहेन निचिता व्याप्ता- पक्षे—शराणां मुञ्जदण्डानाम् शतेन व्याप्ता, अमरपतितनुः—अमराणा देवानां पतिः अधिपतिः देवराजः इन्द्रः तस्य तनुः शरीरमिव, नेत्र सहस्रसंकुला-नेत्राणां लोचनानां सहस्रं तेन सङ्कुला व्याप्ता, पक्षे नेत्राख्यतरुणां तरुमूलानां वृक्षजटानां वा सहस्रेण अभिव्याप्ता। नारायणमूर्तिः=नारायणस्य श्रीकृष्णस्य मूर्तिः शरीरमिव, तमालनीला-तापिच्छतरुवन्नीलवर्णा, पक्षे तमालवृक्षैः श्यामवर्णा। क्वचित् पार्थरथपताकेव=पार्थः अर्जुनः तस्य रथस्य पताकेव, वानराक्रान्ता=वानरेण हनुमता आक्रान्ता अधिष्ठिता हनूमन्मूर्तिचिह्नितेत्यर्थः। पक्षे—वानरैरभिक्रान्ता। क्वचित् अवनिपतिद्वारभूमिः=अवनिपतिः भूपतिः राजा तस्य द्वारभूमिरिव, वेत्रलताशतदुष्प्रवेशा=वेत्रलताः वेत्रयष्टयः द्वारपालहस्तस्थानेकवेत्रयष्टयः तासां शतं समूहः तेन दुःखेन प्रवेष्टुं शक्या, पक्षे—वेत्राणि वेतसा वृक्ष विशेषाः लता वल्ल्यश्च तासां शतेन दुष्प्रवेशा। क्वचित् विराट नगरीव-विराटराजपुरीव, कीचकशतावृता=कीचकशतेन स्वप्रियाबान्धवकीचकाख्यराजश्यालकानुयायिसमूहेन आवृता अधिष्ठिता, पक्षे—कीचकाः सरन्ध्रवेणवः तैः आवृता। क्वचित् अम्बरश्रीः=आकाशलक्ष्मीरिव, व्याधानुगम्यमानतरलतारकमृगा=व्याधेन व्याधरूपधारिणा शिवेन अनुगम्यमानम् अतएव तरलं भयचञ्चलं तारकमृगं मृगशिरोन क्षत्रं यस्यां सा तथोक्ता, पक्षे—व्याधैः वन्यभिल्लैः अनुगम्यमानाः अतएव तरला भयलोलाः तारकाः नेत्रकनीनिका येषां ते तादृशा मृगा हरिणाः यस्यां सा तथोक्ता। क्वचित् गृहीतव्रता गृहीतं स्वीकृतं व्रतं नियमः यया सा तथोक्ता व्रतधारिणीत्यर्थः; दर्भ चीरजटावल्कलधारिणी=दर्भा कुशाः चीराणि जीर्णवस्त्रखण्डानि, जटा=संहृतकेशाः वल्कलानि च धारयितुं शीलं यस्याः सा तथोक्ता, पक्षे—दर्भाः कुशाः चीराः तृण विशेषाः जटाः वृक्षमूलानि वल्कलानि च धारयितुं शीलं यस्याः सा। अपरिमितबहलपत्रसञ्चयाऽपि=अपरिमितानि असंख्येयानि बहलानि सघनानि पत्राणि दलानि तेषां सञ्चयः समुदायः यस्यां सा तथोक्ता अपि विन्ध्याटवी, सप्तपर्णभूषिता=सप्तभिः पर्णैः पत्रैः भूषिता सुशोभिता, अत्र विरोधपरिहारार्थं सप्तपर्णाख्यतरुभिः सुशोभितेत्यर्थः स्वीकार्यः। क्रूरसत्त्वाऽपि=क्रूरं दुष्ट सत्त्वं हृदयं यस्याः सा तथोक्ता दुष्टहृदयेत्यर्थः, तथापि—मुनिजनसेविता=मुनयश्च ते जनाः तैः सेविता आश्रिता तथोक्ता. अत्रास्य विरोधपरिहारार्थं क्रूराः हिंसकाः सत्त्वाः सिंहव्याघ्रादिपशवो यस्यां सा—सिंहव्याघ्रादिहिंसकजीवसङ्कुलेत्यर्थः गृहीतव्यः। पुष्पवत्यपि पवित्रा=पुष्पवती रजोधर्मवती

अपि भूत्वा पवित्रा, रजोवती न कदापि पवित्रा भवति अतोऽत्र विरोधपरिहारार्थं पुष्पवतीत्यस्य पुष्पाणि कुसुमानि सन्त्यस्या इति पुष्पवती—इत्यर्थः स्वीकार्यः।

**संस्कृत सरलार्थ**—मुञ्जदण्डाख्यानेक वृक्षकावृता विन्ध्याटवी क्वचित् शर समूहाभिव्याप्ता युद्धभूमिरिवासीत्, नेत्राख्यात सहस्र वृक्षनिचितेयं क्वापि लोचन-सहस्र-निचितं देवराजेन्द्र शरीर मिवासीत्, क्वचित्तापिच्छतरुभिश्श्याम वर्णेयं तमाल तरुवन्नील वर्णं भगवतः श्रीकृष्णस्य शरीरमिवासीत्। वानरैभिक्रान्ता क्वचिदियं हनूमन्मूर्ति चिह्निता अर्जुनस्य पताकेवासीत्। वेतसवृक्षैर्लताभिश्च दुःखेन प्रवेष्टुं शक्येयं क्वचित् द्वारपाल हस्तस्थ वेत्रयष्टिभिः दुष्प्रवेशा नृपद्वारभूमिरिवासीत्। अनेक कीचकाख्य वेणुवंशावृता क्वचिदियं राजश्यालक कीचकानुयायिसमूहावृता विराटराज नगरीवासीत्। वन्यभिल्लानु व्रज्यमान भयवश चञ्चल तारक मृगेयं क्वचिद् व्याध रूप धारिणा शिवेनानुगम्यमान चञ्चलमृगशिरोनक्षत्रवती वियल्लक्ष्मी रिवासीत्। कुशचीराख्य वृक्षमूल वल्कलवतीयं क्वचित् कुश जीर्ण वस्त्र खण्ड संहृतकेश वल्कलधारिणी स्वीकृत व्रतनियमा तापसीवासीत्। असंख्येय सघन दल समुदाया अपीयं सप्तपत्राभूषितासीत्—अर्थविरोधोऽत्र सप्तपर्णाख्य तरुभिराभूषितेत्यर्थद्वारेण परिहार्यः। दुष्ट हृदयापीयं मुनिजनाश्रितासीत्, विरोधपरिहारायात्र क्रूरसत्त्वैरस्य सिंहव्याघ्रादि हिंसकश्वापदसङ्कुलेत्यर्थोऽवगन्तव्यः। रजोधर्मवती भूत्वापीयं पवित्रासीत्, अर्थविरोधनिवारणार्थमत्र पुष्पवतीत्यस्य प्रसूनवतीत्यर्थः स्वीकार्यः।

**टिप्पणी**—**शरशतेति**—१—शर=वाण, २—शर अथवा सरकण्डे के पौधे। निचिता—नि+चिञ्+क्त टाप्। **नेत्रसहस्रसंकुलेति**—नेत्र=१—लोचन, २—नेत्र नामक वृक्ष, या वृक्षों की जड़ें, अथवा वृक्षों की जटायें "जटाशंकुयोर्नेत्रम्" इत्यमरः, नेत्रं मन्थगुणे वस्त्रभेदे मूले द्रुमस्य च" मेदिनी। **अमरपतिः**—देवराज इन्द्र के शरीर में सहस्र नेत्र माने जाते हैं, पौराणिक कथा के अनुसार गौतम ऋषि के शाप से इन्द्र के शरीर में सहस्र भग हो गये थे, फिर वे ही नेत्र के रूप में परिवर्तित हो गये थे, इसीलिए इन्द्र को सहस्राक्ष भी कहा जाता है। अमर शब्द देवता वाचक है। अमरा निर्जरा देवाः इत्यमरः। **तमालेति**—श्रीकृष्ण का शरीर तमाल वृक्ष के समान श्याम वर्ण का था और अटवी तमाल वृक्षों से श्याम वर्ण की थी। **पार्थरथेति**—अर्जुन के रथ की ध्वजा पर हनुमान की मूर्ति अंकित रहती है अतएव उसे वानराक्रान्त कहा गया है। अटवी में स्वभावतः ही अनेक बन्दर रहते हैं। **अवनिपतीति**—राजद्वार पर नियुक्त द्वारपाल वेत्रयष्टि लिये रहते हैं अतएव वहाँ प्रवेश कठिन होता है, अटवी में वेतस वृक्ष एवं लताओं के कारण प्रवेश कठिन होता है। **कीचक शतावृता**—कीचक विराट नगरी का राजश्यालक था उसके अनेक अनुयायी भी सम्भवतः इसी नाम से जाने जाते थे अतएव यहाँ कीचकशत का प्रयोग है। अटवी में अनेक कीचक अर्थात् वे बांस जिनमें छिद्र होते हैं और उन छिद्रों में हवा भरने से वे वेणु की तरह बजने लगते हैं "वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्य निलोद्धताः।" **व्याधेति**—शिव-

पुराण की एक कथा के अनुसार एक बार प्रजापति अपनी पुत्री सन्ध्या को देखकर उसके पीछे दौड़े, वह भी अपने धर्म की रक्षा के लिए हरिणी का रूप धारण कर भागती हुई शिव की शरण में पहुँची, प्रजापति ने भी हिरण रूप धारण कर उसका पीछा किया, यह देखकर शिवजी ने प्रजापति का शिर काटने के लिए बाण छोड़ा, प्रजापति लज्जित होकर मृग शिरा नक्षत्र मण्डल में प्रविष्ट हो गये शिव का बाण भी आर्द्रा नक्षत्रा के रूप में उसके पीछे लग गया अतएव मृगशिरा और आर्द्रा नक्षत्र आज भी समीपवर्ती हैं। इसी कथा के अनुसार यहाँ व्याघ्ररूपधारी शिव द्वारा अनुगम्यमान भयभीत मृगशिरा नक्षत्र वाली आकाशश्री को बतलाया गया है। अटवी में बहेलिये मृगों का पीछा करते ही हैं, तरल तारक मृग का अर्थ है भयवश चञ्चल पुतलियों वाले मृग जहाँ रहते थे। दर्भेति—कुश चीर जटा वल्कल आदि व्रतधारिणी स्त्री धारण करती ही है, अटवी में ये सब उत्पन्न होते ही हैं। सप्तपर्णेति—१—सात पत्ते २—सप्तवर्ण नामक वृक्ष। क्रूरसत्त्वेति—सत्त्व शब्द के द्रव्य, गुण, चित्त, व्यवसाय, स्वभाव, हृदय, बल, आदि अनेक अर्थ हैं "सत्त्वं द्रव्ये गुणे चित्ते व्यवसाय स्वभावयोः।"

## अगस्त्याश्रम वर्णनम्

तस्याञ्च दण्डकारण्यान्तः पाति सकलभुवनविख्यातम् उत्पत्ति क्षेत्रमिव भगवतो धर्मस्य, सुरपतिप्रार्थनापीतसकल सागरसलिलस्य, मेरुमत्सराम्बरतलप्रसारितशिरः सहस्रेण, दिवसकररथगमनपथमपनेतुमभ्युद्यतेन अवगणित सकलसुरवचसा विन्ध्यगिरिणाप्यनुल्लङ्घिताज्ञस्य जरठानलजीर्ण वातापिदानवस्य सुरासुरमुकुट मकरपत्र कोटि चुम्बित चरणरजसो, दक्षिणाशावधूमुखविशेषकस्य, सुरलोकादेकहुङ्कारनिपातित नहुष प्रकट प्रभावस्य भगवतो महामुनेरगस्त्यस्य............(आश्रमपदमासीत्)।

शब्दार्थ—दण्डकारण्यान्तः पाति=दण्डक वन के मध्य में होने वाला—मध्यवर्ती। उत्पत्ति क्षेत्रम्=जन्मभूमि। सुरपतिप्रार्थनेति=इन्द्र की प्रार्थना से सम्पूर्ण समुद्रों का जल पी लेने वाले, (यहाँ से आगे के सभी षष्ठ्यन्त पद अगस्त्यस्य के विशेषण हैं) मेरुमत्सरात्........सहस्रेण=स्वर्ण पर्वत सुमेरु (की अत्यधिक उच्चता विषयक) ईर्ष्या के कारण, आकाश तल पर (अपनी) हजारों चोटियों (शिरः सहस्र) को फैलाये हुए, दिवसकर.......मभ्युद्यतेन=सूर्य के रथ के गमन मार्ग को रोकने के लिए प्रवृत्त हुए, अवगणित.......वचसा=सभी देवताओं की बात को ठुकराये हुए, विन्ध्यगिरिणा अपि=विन्ध्याचल के द्वारा भी, अनुल्लंघिताज्ञस्य=अनतिक्रान्त आदेश वाले, जठरानल.......दानवस्य=(अपनी) उदराग्नि से वातापि नामक दानव को (भी) पचा लेने वाले, सुरासुर.......चरणरजसः=देवताओं और असुरों के मुकुटों की (स्वर्णरचित) मत्स्याकार पंक्तियों के अग्रभागों द्वारा स्पर्श की हुई चरणधूलियों वाले, दक्षिणाशा.......विशेषकस्य=दक्षिण दिशा रूपी वधू के मुख पर पत्ररचना या

तिलक स्वरूप, सुरलोका········प्रभावस्य=देवलोक से एक हुंकार द्वारा नहुष को गिराने से प्रकट प्रभाव वाले, भगवतो महामुनेः अगस्त्यस्य=भगवान् महामुनि अगस्त्य का········(आश्रमपद था)।

अनुवाद—और उस विन्ध्याटवी में दण्डक वन के मध्यवर्ती, सभी लोकों में प्रसिद्ध, भगवान् धर्म का जन्मस्थान-सा (भगवान अगस्त्य महामुनि का आश्रम था) (जो कि महामुनि अगस्त्य) इन्द्र की प्रार्थना से सम्पूर्ण समुद्रों का जल पी लेने वाले, स्वर्णगिरि सुमेरु की (उच्चता विषयक) ईर्ष्या के कारण आकाश तल पर (अपनी) हजारों चोटियों को फैलाये हुए, सूर्य के रथ के गमन मार्ग को रोकने के लिए प्रवृत्त हुए, सभी देवताओं की बात को ठुकराये हुए विन्ध्याचल के द्वारा भी अनतिक्रान्त आदेश वाले, (अपनी) उदराग्नि से वातापि नामक दानव को पचा लेने वाले, देवताओं और असुरों के मुकटों की मत्स्याकार पंक्तियों के अग्रभागों से स्पर्श की गई चरण-धूलियों वाले, दक्षिण दिशा रूपी वधू के मुख पर तिलक स्वरूप, देवलोक से एक हुंकार के द्वारा नहुष को गिराने से प्रकट प्रभाव वाले, भगवान महामुनि अगस्त्य का।

भावार्थ—भगवान् महामुनि अगस्त्य का तपःस्थान सकल लोकों में प्रसिद्ध तथा दण्डक वन के मध्य में था. यह भगवान् धर्म का उत्पत्ति स्थान जैसा था। अगस्त्य मुनि ने इन्द्र की प्रार्थना पर सभी समुद्रों का जल पी डाला था। वह विन्ध्याचल भी इनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता था जिसने कि सुमेरु पर्वत से ईर्ष्या के कारण अपनी हजारों चोटियों को आकाश पर फैला दिया था और सूर्य के रथ गमन मार्ग को रोकने के लिए उद्यत हो गया था तथा जिसने सभी देवताओं की बात को भी ठुकरा दिया था। अगस्त्य मुनि ने अपनी जठराग्नि से वातापि नामक दानव को भी पचा लिया था, उनके चरणों की धूलि, सुरासुरों के मुकुटों के अग्रभाग से स्पर्श की जाती थी। वे दक्षिण दिशा वधू के मुख पर तिलक जैसे शोभित थे और एक हुंकार मात्र से ही राजा नहुष को स्वर्ग से नीचे गिरा देने के कारण उनका प्रभाव सर्वत्र प्रकट था।

**संस्कृत व्याख्याः**—तस्याञ्च विन्ध्याटव्याम्, (अगस्त्यस्य आश्रमपदमासीदिति वक्ष्यमाणवाक्येन सम्बन्ध) (अत्र प्रथमान्तानि पदानि आश्रमपदस्य; षष्ठ्यन्तानि च पदानि अगस्त्यस्य विशेषणानि) दण्डकारण्यान्तः पाति—दण्डकारण्यस्य दण्डकाख्यवनस्य अन्तः पाति मध्यवर्ति। सकलभुवनविख्यातम्—सकलानि समस्तानि च यानि भुवनानि तेषु विख्यातम् प्रसिद्धम्। भगवतो माहात्म्यवतो, धर्मस्य सुकृतस्य, उत्पत्तिक्षेत्रम् उद्भवस्थानमिव। सुरपतिप्रार्थनापीत सकल सागरसलिलस्य—सुरपतिः देवपतिः इन्द्रः तस्य प्रार्थनया याचनया पीतं चुलुकीकृतं सकल सागराणां समस्त समुद्राणां सलिलानि जलानि येन स तस्य तथोक्तस्य, (इत आरभ्य समस्तानि षष्ठ्यन्तपदानि अगस्त्यस्य विशेषणानि) मेरुमत्सरादम्बरतलप्रसारितशिरः सहस्रेण=मेरोः सुवर्ण पर्वतस्य मत्सरात् तदुन्नति विषयक शुभद्वेषात् अम्बरतले गगने प्रसारितानि विस्तारि-

तानि यानि शिरांसि तेषां सहस्र समूहः येन स तेन तथोक्तेन, दिवसकर रथगमन पथमपनेतुमभ्युद्यतेन=दिवसकरस्य सूर्यस्य रथस्य गमनपथम् गमनमार्गम् अपनेतुम् अवरोद्धुम् अभ्युद्यतः प्रवृत्तः तेन तथोक्तेन, तथा, अवगणित सकल सुरवचसा=अवगणितानि समुपेक्षितानि अनादृतानि वा सकल सुराणां समस्त देवानां वचांसि वचनानि येन स तेन तथोक्तेन, विन्ध्यगिरिणा विन्ध्याचलेनापि, अनुल्लङ्घिताज्ञस्य=अनुल्लङ्घिता अनतिक्रान्ता सम्मानिता वा आज्ञा आदेशः यस्य स तस्य तथोक्तस्य, जठरानलजीर्ण वातापिदानवस्य=जठरानलः उदराग्निः तेन जीर्णः अन्तः परिपाकं नीतः वातापिदानवः वातापि संज्ञकासुरः येन स तस्य तथोक्तस्य, सुरासुरमुकुटमकरपत्रकोटिचुम्बित चरणरजसः=सुराः देवाः असुरा दानवाः तेषां मुकुटेषु किरीटेषु यानि मकरपत्राणि मत्स्याकारपक्षाः तेषां कोटयः अग्रभागाः तैः चुम्बितानि स्पृष्टानि चरणयोः पादयोः रजांसि रेणवः यस्य स तस्य तथोक्तस्य, दक्षिणाशावधू मुखविशेषकस्य=दक्षिणा अवाची या आशा दिक् सैव वधूः तस्याः मुखे आनने विशेषकस्य तिलक स्वरूपस्य तथोक्तस्य, सुरलोकादेकहुङ्कारनिपातित नहुष प्रकटप्रभावस्य=सुरलोकात् स्वर्गात् एक हुङ्कारेण एक हुङ्कृतिमात्रेण निपातितः भ्रंशितः यः नहुषः स्तन्नामकः नृपतिविशेषः तेन प्रकटः स्फुटः प्रभावः माहात्म्यं यस्य स तस्य तथोक्तस्य, भगवतो महिमशालिनो महामुनेः अत्युत्कृष्ट मननशीलस्य अगस्त्यस्य, ...... ....आश्रम पदमासीत् ।

संस्कृत सरलार्थ—तस्याञ्च विन्ध्याटव्यां दण्डक नामकस्य वनस्य मध्यवर्ति, समस्त भुवन प्रसिद्धं भगवतो धर्मस्य जन्मस्थानमिव (अगस्त्यस्य मुनेराश्रमपदमासीदिति वक्ष्यमाणवाक्येन सम्बन्ध) यश्चागस्त्यः इन्द्रयाचनया समस्तसमुद्रजलं पीतवान्, यस्यागस्त्यस्यादेशो न कदापि तेनापि विन्ध्याचलेनापि अतिक्रान्तः यः समस्तदेववचनान्यनादृत्य सुमेरुद्वेषात् स्वशिरांसि गगनतले विस्तारितवान् एवं सूर्यरथ मार्गमवरोद्धुं प्रवृत्तोऽभवत् । महामुनिरगस्त्यः स्वोदराग्निना वातापिदानवं अन्तः परिपाकं नीतवान्, यस्य चरणरेणवः सुरासुरकिरीटलग्न मत्स्याकारपक्षाग्रभागैः स्पृष्टा आसन्, यश्चासीत् दक्षिणदिग्वधूमुखतिलकस्वरूपः, येन च नहुषाख्यो नृपतिः, एकहुङ्कृतिमात्रेणैव स्वर्गादधो निपातितः, कायणानेनास्य महान् प्रभावो जगति विख्यातः, एवम्भूतस्य भगवतोऽगस्त्यस्याश्रमपदमासीत् ।

टिप्पणी – दण्डकेति—दण्डक नामक वन के बीच में स्थित । दण्डकारण्य के विषय में रामायण में उल्लेख है कि किसी सूर्यवंशीय दण्डक नाम के राजा ने एक बार शुक्राचार्य की पुत्री अजरा से बलात्कार की चेष्टा की थी जिसे सुनकर शुक्राचार्य ने राजा को शाप दिया था कि वह एक सप्ताह में मृत्यु को प्राप्त होगा और उसका समस्त राज्य एक महावन के रूप में बदल जायेगा फलतः विन्ध्याचल की चोटी पर बसा हुआ उसका यह राज्य दण्डकारण्य बन गया था । उत्पत्तिक्षेत्रमिव=मानो धर्म का जन्मस्थान हो अर्थात सब प्रकार के धर्मों की उत्पत्ति का एकमात्र

स्थान आगस्त्याश्रम था। सुरपति प्रार्थनेति—महाभारत की कथा के अनुसार प्राचीन काल में कालेयक नाम के दैत्य दिन भर समुद्र के जल में छिपे रहते थे, रात में बाहर आकर दोनों लोकों को उत्पीडित किया करते थे, उनके विनाश के लिए इन्द्र ने अगस्त्य मुनि से प्रार्थना की और अगस्त्य ने समस्त समुद्रों का जल चुल्लू में भरकर पी लिया। मेरुमत्सरादिति—"मत्सरोऽन्यशुभद्वेषः" दूसरे की उन्नति से द्वेष करना मत्सर कहलाता है। शिरांसि=पर्वतीय चोटियाँ, विन्ध्याचल ने अपनी चोटियाँ आकाश मण्डल में फैला दी थीं। दिवसकरेति—सूर्य के रथ मार्ग को रोकने के लिए उद्यत, रथगमन-पथम्—रथ गमनस्य पन्थाः तम् अत्र 'ऋक्पूरब्धूः पथामनक्षे' इति समासान्तोऽच् प्रत्ययः। अवगणितेति—अवगणितानि अनादृतानि सकल सुरवचांसि येन तेन, एवम्भूतेनापि प्रभाव-शालिना विन्ध्यगिरिणा सम्मानितादेशस्य अगस्त्यस्य। स्कन्धपुराणान्तर्गत काशीखण्डीय कथा के अनुसार एक बार नारद जी ने विन्ध्याचल से कहा कि सूर्य प्रतिदिन सुमेरु की तो परिक्रमा करता है पर आपकी नहीं, इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए, नारद के चले जाने पर विन्ध्याचल ने सुमेरु से ईर्ष्यावश अपनी चोटियों को समस्त गगन मण्डल में फैला दिया और सूर्य के रथमार्ग को रोकने के लिए उद्यत हो गया, इसके लिए रोकने वाले देवताओं की बात को भी उसने ठुकरा दिया, फलतः एक ओर घोर ताप से और दूसरी ओर घोर अन्धकार से उत्पीडित होकर लोगों की प्रार्थना पर देवताओं ने काशी में जाकर अगस्त्य मुनि से प्रार्थना की, अगस्त्य मुनि जब विन्ध्याचल के समीप पहुंचे तो उसने अपने गुरु को आया हुआ जानकर शिर झुकाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया, मुनि ने अवसर प्राप्त कर कहा कि पुत्र ! जब तक मैं न लौटूँ तब तक तुम इसी भाँति शिर झुकाये हुये ही बने रहना, फिर वे कभी लौटकर न आये, इस प्रकार सूर्य का संकट दूर हुआ। जठरानलेति—जठरस्य अनलः उदराग्निः तेन जीर्णः अन्तः परिपाकं नीतः पचा लिया—जॄ+क्त। महाभारत की कथा के अनुसार इल्वल और वातापी नाम के दो दानव थे, एक बार इल्वल ने ब्राह्मण का रूप धारण कर बकरे के रूप में स्थित वातापी को मारकर उसके मांस को पकाकर वहाँ उपस्थित ब्राह्मणों को खिला दिया, उनके खा चुकने पर उसने कहा, वातापी बाहर निकल आओ, फलतः वातापी उनके उदरों को फाड़कर बाहर आ गया, तब दोनों ने ब्राह्मणों के धन आदि को चुरा लिया, यह देखकर देवताओं ने अगस्त्य मुनि से प्रार्थना की और मुनि ने उसी रूप में उसका मांस खाकर उसे अपने पेट में ही हजम कर लिया फिर वह कभी बाहर न निकल सका। सुरासुरेति—मुकुटमकरपत्र= मुकुटों में लगे स्वर्ण निर्मित मत्स्याकार पक्ष उनके अग्रभागों द्वारा "पत्रं वाहनपक्षयोः इत्यमरः। इससे स्पष्ट है कि अगस्त्य मुनि सभी सुरासुरों से पूजितचरण थे। दक्षिणेति=दक्षिण दिशारूपी वधू, विशेषक=तिलक "चित्रपुण्ड्र विशेषकाः" आशा अर्थात् दिशा" दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः इत्यमरः। अगस्त्य पर तिलकत्वारोप का कारण है दक्षिण दिशा पर वधूत्वारोप, अतएव यहाँ परम्परित रूपक अलंकार है। सुरलोकादिति—अगस्त्य मुनि ने एक हुंकार मात्र से राजा नहुष

को स्वर्ग से गिरा दिया था। महाभारत की कथा के अनुसार वृत्रासुर को मारने पर इन्द्र को जो ब्रह्म हत्या का पाप लगा था, जिसके कारण वे मान सरोवर में विलीन हो गये थे, अतः इन्द्रसिंहासन को खाली देखकर देवताओं ने चन्द्रवंशीय राजा नहुष को इन्द्रासन पर बैठा दिया था, तब किसी ने उनसे कहा कि इन्द्रसिंहासन पर बैठकर भी आप इन्द्राणी की कामना क्यों नहीं करते ? इस पर नहुष ने इन्द्राणी से प्रार्थना की, किन्तु इन्द्राणी ने गुरु बृहस्पति के परामर्श से नहुष से कहा कि यदि वह महर्षियों द्वारा वाहित पालकी में बैठकर मेरे पास आये तो मैं स्वीकार कर सकती हूँ। राजा ने तुरन्त भृगु आदि महर्षियों से पालकी उठवाकर प्रस्थान किया। मार्ग में शीघ्र पहुँचने के लिए उसने सर्प-सर्प कहकर आगे चलने वाले भृगु के सिर पर लात मारी, इसी बीच भृगु की जंघाओं में छिपे अगस्त्य मुनि ने पाद प्रहार से ताडित होकर 'सर्प होकर तुम नीचे गिर पड़ो" यह शाप दे दिया, फलतः नहुष सर्प बनकर हिमालय की गुफा में गिर पड़ा।

**भार्य्यया लोपामुद्रया स्वयमुपरचितालवालकैः करपुट-सलिलसेक संवर्द्धितैः सुतनिर्विशेषैं रुपशोभितं पादपैः, तत्पुत्रेण च गृहीतव्रतेनाषाढिना पवित्रभस्मविरचित त्रिपुण्ड्काभरणेन कुशचीवरवाससा मौञ्जमेखला कलितमध्येन गृहीतहरितपर्णपुटेन प्रत्युटजमटता भिक्षां दृढदस्युनाम्ना पवित्रीकृतम्, अतिप्रभूतेध्माहरणाच्च यस्येध्मवाह इति पिता द्वितीयं नाम चकार, दिशि दिशि शुकहरितैश्च कदलीवनैः श्यामलीकृतपरिसरम्। सरिता च कलशयोनिपरिपीतसागरमार्गानुगतयेव बद्धवेणिकया गोदावर्या परिगतमाश्रमपदमासीत्।**

शब्दार्थ— भार्यया लोपामुद्रया=लोपामुद्रा नामक अगस्त्य की पत्नी के द्वारा, स्वयमुपरचितालवालकैः=स्वयं जिनके थाल्हे (क्यारियाँ) बनाये गये थे, करपुट-सलिलसेकसम्वर्द्धितैः=हाथों की अञ्जलियों के जल सिंचन से बढ़ाये गये, सुतनिर्विशेषैः=पुत्रसदृश, आषाढिना=पलाश दण्ड धारण करने वाले, पवित्रभस्मविरचित त्रिपुण्ड्काभरणेन=पवित्र भस्म से बनाये गये त्रिपुण्ड्रक (तीन रेखाओं वाला तिलक) रूप आभूषण वाले, कुशचीरवाससा=कुशों के चीर वस्त्र वाले, मौञ्जमेखलाकलित मध्येन=मूँज की बनी मेखला से सुशोभित कटि भाग वाले, हरे पत्तों का दोना लिये हुये, प्रत्युटजं भिक्षाम् अटता=प्रत्येक झोंपड़ी पर भिक्षा के लिये घूमते हुये, दृढ़दस्युनाम्ना=दृढ़दस्यु नामक अगस्त्य पुत्र द्वारा, पवित्री कृतम्=पवित्र किये गये। अतिप्रभूतेध्माहरणात्=बहुत अधिक काष्ठ (ईंधन) ले आने के कारण, पिता ने उसका दूसरा नाम 'इध्मवाह' रख दिया था। दिशि दिशि शुकहरितैश्च कदलीवनैः= प्रत्येक दिशा में शुकवत् हरे वर्ण के केले के वनों द्वारा, श्यामली कृत परिसरम्= जिसकी सीमायें (चारों ओर का भाग) श्यामली कर दी गई थीं। कलश योनि परिपीतसागर मार्गानुगतया=कुम्भज अगस्त्य द्वारा पिये गये (अतएव मृत) समुद्र के

मार्ग का अनुसरण करने वाली (अतएव मानो) बद्धवेणिकया=चोटी बाँधे हुए गोदावरी नामक नदी के द्वारा, परिगतम्=घिरा हुआ आश्रम स्थान था।

अनुवाद—(अगस्त्य मुनि का आश्रम स्थान, उनकी पत्नी लोपा मुद्रा द्वारा स्वयं अञ्जलियों के जल सिञ्चन से बढ़ाये गये, पुत्र सदृश वृक्षों से सुशोभित, और व्रतधारी तथा पलाश दण्ड धारी, पवित्र भस्म ले त्रिपुण्ड्रक रूपी आभरण रचने वाले, कुशों के चीर वस्त्र वाले, तथा मौञ्जी मेखला से सुशोभित कटिप्रदेश वाले हरे पत्तों के दोने को लिये हुए, प्रत्येक झोंपड़ी पर भिक्षार्थ घूमते हुए दृढ़दस्यु नामक उनके पुत्र द्वारा पवित्र बनाया हुआ, अत्यधिक काष्ठ (ईंधन) लाने के कारण पिता ने उसका दूसरा नाम इध्मवाह रख दिया था। तथा अगस्त्य मुनि का वह आश्रम स्थान, प्रत्येक दिशा में शुकों के समान हरे केले के वनों से श्यामल सीमाओं वाला, एवं कुम्भज अगस्त्य मुनि द्वारा पिये गये समुद्र के मार्ग का अनुसरण करने वाली अतएव मानो बँधी हुई चोटी वाली गोदावरी नामक नदी से घिरा हुआ था।

भावार्थ—अगस्त्य मुनि का आश्रम स्थान, उन वृक्षों से सुशोभित था जिनके थलहे उनकी पत्नी लोपमुद्रा ने स्वयं बनाये थे और हाथों की अञ्जुलियों के जल-सिंचन से जिन्हें बढ़ाया था। अतएव जो उनके पुत्र तुल्य थे। और दृढ़दस्यु नामक उनके उस पुत्र द्वारा वह पवित्र बना दिया गया था, जो कि व्रती, पलाश दण्ड धारी, पवित्र भस्म के त्रिपुण्ड रूप भूषण वाले, कुशों के चीर वस्त्र धारी तथा मौञ्जी मेखला से शोभित कटि वाले थे, एवं जो कि हरे पत्तों के दोने को लिये हुये प्रत्येक पर्णशाला में भिक्षा के लिये घूमते रहते थे। पिता अगस्त्य ने अत्यधिक काष्ठ ले आने के कारण इनका दूसरा नाम इध्मवाह रख दिया था। (वह आश्रम) प्रत्येक दिशा में शुकों के समान हरे केले के वनों से श्यामवर्ण की गई सीमाओं वाला तथा कुम्भज मुनि द्वारा पिये गये समुद्र मार्ग का अनुसरण करने वाली अतएव मानो बद्धवेणी गोदावरी नामक नदी से घिरा हुआ था।

संस्कृत व्याख्या—(अगस्त्याश्रम पदम्)—भार्यया पत्न्या लोपा मुद्रया एतन्नामिकया अगस्त्यपत्न्या स्वयमात्मना उपरचितानि विनिर्मितानि आलवालानि आवापाः येषां तैः—उपरचितालबालकैः, करा एव पुटानि तैः अञ्जलिभिरित्यर्थः यः सलिलसेकः जलसिंचनं तेन सम्वर्द्धिता वृद्धिं प्रापिताः तैः करपुटसलिलसेक सम्वर्धितैः, निर्गतो विशेषः येषां ते निर्विशेषाः सुतेभ्यः पुत्रेभ्यः निर्विशेषास्तैः सुत-निर्विशेषैः पुत्रसदृशै रित्यर्थः पादपैः वृक्षैः उपशोभितम् आभूषितम्। दृढ़दस्युरितिनाम यस्य स तेन दृढ़दस्युनाम्ना दृढ़दस्यु नामधेयेन तत्पुत्रेण अगस्त्यमुनिसुतेन च, गृहीतं स्वीकृतं व्रतं ब्रह्मचारिव्रतं येन स तेन गृहीतव्रतेन, आषाढ़ः पलाशदण्डोऽस्यास्तीति तेन आषाढिना पलाशदण्डधारिणेत्यर्थः, पवित्रं पावनं यद् भस्म तेन विचरितं कृतं त्रिपुण्ड्रकं रेखात्रयात्मकः तिलकविशेषः एव आभरणं भूषणं येन स तेन-पवित्रभस्म विरचितत्रिपुण्ड्रकाभरणेन भस्मत्रिपुण्ड्रकधारिणेत्यर्थः, कुशा एव चीवरं चीरं वासः

वस्त्रं यस्य स तेन, कुशचीवरवाससा, मौञ्जमेखलाकलितमध्येन, मौञ्जी मुञ्ज-विरचिता या मेखला तया कलितः आवद्धः मध्यः कटि प्रदेशः येन स तेन-मुञ्जमेखला बद्ध कटि भागेन, गृहीतं भिक्षान्नसंरक्षणार्थं स्वीकृतं हरितं श्यामलं पर्णपुटं पत्रैः विरचित पुटकं येन स तेन-गृहीतहरितपर्णपुटेन-हरितपत्रविरचित पुटकधारिणे-त्यर्थः, प्रस्तुटजम्-उटजम् उटजं प्रति, प्रतिपर्णशालमित्यर्थः; भिक्षाम् अटता=भिक्षार्थं भ्रमता, पवित्री कृतम्। पिता अगस्त्यमुनिरस्य जनकः प्रभूतानि प्रचुराणि यानि इध्मानि काष्ठानि तेषाम् आहरणम् आनयनं तस्मात् प्रभूतेध्माहरणात्, हेतोः, यस्य स्वपुत्रस्य दृढदस्यु संज्ञकस्य इध्मवाहः इति अन्वर्थं द्वितीयम् अपरं नाम अभिधानं चकार कृतवान्। (अथ च तदाश्रमपदम्, दिशिदिशि प्रत्येक दिशि, शुक हरितैः शुकदेह-वन्नील वर्णैः कदलीवनैः रम्भावनैः, श्यामलीकृतः नीलवर्णीकृतः परिसरः प्रान्तभूमिः यस्य तत्-श्यामलीकृतपरिसरम्, (एवम्) च, कलशयोनिना कुम्भजेन परिपीतः चुलुकी कृतः (मृत इत्यर्थः) यः सागरः समुद्रः तस्य मार्गम् अनुगता अनुव्रजिता तया-कुम्भजपीतसमुद्रमार्गानुगामिन्या (अतएव) बद्धवेणिकया इव—बद्धा धृता वेणिका जलधारा पक्षे संयता वेणिका केश रचनाविशेषः यया तया तथोक्तया गोदावर्य्या सरिता—गोदावरीत्याख्यातया नद्या, परिगतम् परिव्याप्तम् आसीत्।

संस्कृत सरलार्थ—अगस्त्यमुनेराश्रमपदम्, तादृशैर्वृक्षैः सुशोभितमासीत्, लोपा-मुद्राख्यया तत्पत्न्या येषामालवालानि आत्मनैव विरचितान्यासन्, अथ च ये तस्याः कराञ्जलिभिर्जलसिञ्चनेन वृद्धिप्रापिताः अतएव तस्याः पुत्रसदृशा आसन्। दृढदस्यु-नामधेयेन तेन अगस्त्यपुत्रेण च तदाश्रमपदम् पवित्रीकृतमासीत्, यः ब्रह्मचारिव्रतचारी, पलाशदण्डधारी, पवित्रभस्मधृतत्रिपुण्ड्रकभूषणः, दर्भचीरवस्त्रधारी, मौञ्जमेखलाशोभित-मध्यभागः, धृतश्यामपत्रपुटः, प्रतिपर्णशालं भिक्षार्थं परिभ्रमन्नासीत्। पुत्रस्यास्यापरं नाम अगस्त्यमुनिः इध्मवाह इति कृतवान् यतो ह्ययं प्रचुरेध्मानयनकर्तासीत्। एवमिद-माश्रमपदम्, प्रत्येकदिशि शुकवन्नीलवर्णैः रम्भाकाननैः नीलवर्णीकृतप्रान्तभागम् अथ च कुम्भजपरिपीतसमुद्रवर्त्मानुगामिन्या अतएव संयतवेणिकयेव गोदावर्य्या नद्या परिव्याप्त-मासीत्।

टिप्पणी—लोपामुद्रया—लोपामुद्रा अगस्त्यमुनि की पत्नी थीं, उपरचिताल-बालकैः—आलवाल आवाप या थलहे जो कि वृक्षों के नीचे जल भरने के लिए बना दिये जाते हैं, इन्हें क्यारी भी कहते हैं "स्यादालवालमावापः इत्यमरः। सेकः=सिच्+घञ् गुण कुत्व। आसमन्तात् लवं जललवम् आलातीत्यर्थे आ+ला+कर्तरि क प्रत्ययः आकार लोपे आलवालम् आवापः। सुतनिर्विशेषैः—अपने पुत्रों की अपेक्षा विशेषता से रहित अर्थात् पुत्रों के समान ही। आषाढिना—आषाढः पलाशदण्डः "आषाढो व्रतिनां दण्डे मासे मलयपर्वते इति विश्वः। ब्राह्मण ब्रह्मचारियों के लिए भगवान् मनु ने पलाशदण्ड धारण करने का विधान किया है "ब्राह्मणो बैल्वपलाशौ" त्रिपुण्ड्रकम्—तीन रेखाओं वाला चन्दन भस्म आदि से निर्मित तिलक, त्रयाणां पुण्ड्रकाणां समाहारः

त्रिपुण्ड्रकम् "ब्राह्मणानां त्रिपुण्ड्रकम्" इस स्मृतिवचन के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्मचारी त्रिपुण्ड तिलक लगाते थे। **मौञ्जेति**—मूँज घास से बनी हुई मेखला जिसे ब्रह्मचारी कमर पर बांधते थे, यह तीन लड़ों की बनती थी आज भी यज्ञोपवीत संस्कार में इसका प्रयोग होता है, मनुस्मृति में इसका विधान है "मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।" **गृहीतेति**—वह हरे पत्तों का दोना लिये हुए था जिसमें कि वह भिक्षा में प्राप्त अन्नादि को सुरक्षित रख सके—पर्णपुट या पत्रपुटक—दोना, इससे पानी भी पिया जा सकता है। **प्रत्युटजम्**—उटजं इटजं प्रति इति प्रत्युटजम् अव्ययीभाव: ; प्रत्येक झोपड़ी में "पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्" इत्यमर:। **भिक्षामटता**—भिक्षा के लिए घूमता हुआ, भिक्षामित्यत्र "अकथितं चेति कर्म संज्ञा, कर्मणि द्वितीया च। **इध्मवाह:** इध्म=ईधन हवन की लकड़ियां, इध्मं वहतीत्यर्थे कर्मणि अण् प्रत्यय: उपधावृद्धि। **प्रभूतेध्माहरणात्**=प्रचुर इध्म लाने के कारण, आ+हृ+ल्युट्। अतएव इध्मवाह यह अन्वर्थक नाम रखा गया था। **शुकहरितै:**=तोते के समान नीले या हरे वर्ण के, यहाँ लुप्तोपमालंकार है। दिशि दिशि इत्यत्र नित्यवीप्सयोरिति द्विर्वचनम्। **कलशयोनीति**—कलश: योनि: उत्पत्तिस्थानमस्य स: अर्थात् कुम्भज मुनि, इनके द्वारा पूर्णतया पीत अर्थात् शोषित, निर्जीव या मृत बना दिये गये अपने पति सागर के मार्ग का विधवा स्त्री की भाँति अनुगमन करने वाली, सती स्त्रियाँ सदा पतिवर्त्मगा होती हैं "प्रमदा: पतिवर्त्मगा: सदा, प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि" नदियों का पति समुद्र ही होता है अतएव उसे सरित्पति: कहा गया है। सती स्त्री का धर्म है कि वह पतिमार्गानुगामिनी बने "मृते म्रियेत या नारी सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता" नदियाँ पतिव्रता हैं अतएव वे पतिवर्त्मानुगामिनी हैं, कवि की यह 'अनुगतयेव' क्रियोत्प्रेक्षा बहुत ही उपयुक्त है, **बद्धवेणिकया**—वेणी या वेणिका का अर्थ जलधारा तथा केश संयमन अर्थात् चोटी गूँथना भी है, वेणी एव वेणिका-स्वार्थे कन् ह्रस्वश्च। विधवा या प्रोषितभर्तृका स्त्री के लिए चोटी बाँधना निषिद्ध है, यहाँ वद्ध का अर्थ धृत है बाँधना नहीं। विधवा या विरहिणी सदा एक वेणीधरा ही रहती है। जैसा कि कहा गया है "न प्रोषिते तु संस्कुर्यान्न वेणीञ्च प्रमोचयेत्" गोदावरी इसीलिए धृतैक वेणी थी। **परिसरम्**—परिसर का अर्थ—प्रान्त भाग या सीमायें आश्रम की सीमायें कदलीवनों से श्यामीकृत हो गई थीं और परिगत का अर्थ है घिरा हुआ अर्थात् गोदावरी इसे मण्डलाकार रूप में घेरे हुए थी। पञ्चवटी वर्णनम्

**यत्र च दशरथवचनमनुपालयन्नुत्सृष्टराज्यो दशवदन लक्ष्मीविभ्रमविरामो रामो महामुनिमगस्त्य मनुचरन् सह सीतया लक्ष्मणोपरचितरुचिरपर्णशाल: पञ्चवट्यां कञ्चित्कालं सुखमुवास। चिरशून्येऽद्यापि यत्र शाखानिलीननिभृतपाण्डुकपोतपङ्क्तयो लग्नतापसाग्निहोत्रधूमराजय इव लक्ष्यन्ते तरव:। बलिकर्मकुसुमान्युद्धरन्त्या: सीताया: करतलादिव सङ्क्रान्तो यत्र राग: स्फुरति लताकिसलयेषु। यत्र च पीतोद्गीर्णजलनिधिजलमिव मुनिना निखिलमाश्रमोपान्तवर्तिषु विभक्तं महाह्रदेषु। यत्र च दशरथ-**

सुतनिशितशरनिकरनिपातनिहतरजनीचरबलबहलरुधिरसिक्तमूलमद्यापि तद्रागाविद्धनिर्गतपलाशमिवाभाति नवकिसलयमरण्यम् ।

शब्दार्थ—उत्सृष्टराज्यः=राज्य को त्यागे हुए, दशवदनलक्ष्मीविभ्रमविरामः=दशवदन—दशमुख रावण की राज्यलक्ष्मी के विलासक्रीडा को समाप्त कर देने वाले, (विराम=अवसान या समाप्ति) अनुचरन्=सेवा करते हुए, लक्ष्मणोपरचितरुचिरपर्णशालः=जिसके लिये लक्ष्मण द्वारा सुन्दर पर्णशाला बनाई गई थी। कञ्चित् कालम्=कुछ समय तक, सुखमुवास=सुखपूर्वक रहे थे। चिरशून्ये=चिरकाल से सूने, शाखानिलीननिभृतपाण्डुकपोतपङ्क्तयः=शाखाओं पर छिपे हुए निःशब्द शान्त श्वेत कबूतरों की पंक्तियों वाले (वृक्ष) लग्नतापसाग्निहोत्रधूमराजय इव=तापसों के अग्नि होत्र की धूम पंक्तियों से लपटे जैसे, लक्ष्यन्ते=दिखाई पड़ते हैं। बलिकर्मकुसुमानि=देवपूजन के कार्य के लिए फूलों को, उद्धरन्त्याः=चुनती हुई, संक्रान्तः=लगी हुई, रागः=लालिमा, स्फुरति=प्रकट हो रही है। पीतोद्गीर्ण जलनिधिजलम्=पीकर उगले हुए समुद्र के जल को, इव=मानो, उपान्तवर्तिषु महाह्रदेषु=समीपवर्ती बड़े-बड़े सरोवरों में। विभक्तम्=बँट गया हो। दशरथ-सुत-निशित-शर-निकर-निपात-निहत-रजनीचर-वल-वहलरुधिरसिक्तमूलम्=दशरथ-पुत्रों के तीक्ष्ण वाण समूहों के वर्षण से विनष्ट हुई राक्षस सेनाओं के प्रचुर रक्त से सींची गई जड़ों वाला, तद्रागाविद्धनिर्गतपलाशमिव=उस रक्त की लालिमा से अनुरञ्जित (होकर) निकले हुए नवपल्लवों वाला सा, आभाति=शोभित होता है।

अनुवाद—और जहाँ (अगस्त्याश्रम में) दशरथ के वचनों का पालन करते हुए, राज्य का परित्याग किये हुए, रावण की राज्यलक्ष्मी के विलास को समाप्त कर देने वाले, महामुनि अगस्त्य की सेवा करते हुए, लक्ष्मण के द्वारा विरचित सुन्दर पर्णकुटी वाले राम ने पञ्चवटी (जनस्थान) में सीता के साथ, कुछ समय तक सुखपूर्वक निवास किया था। चिरकाल से सूने पड़े भी जिस (आश्रम) में आज भी, शाखाओं पर छिपे हुए निःशब्द शान्त श्वेत कबूतरों की पंक्तियों वाले वृक्ष, तापसों के अग्नि होत्र की धूम पंक्तियों से लपटे हुए से दिखाई पड़ते हैं। देवपूजन के काम के लिए फलों को चुनती हुई सीता के हाथों से लता-किसलयों पर संलग्न हुई सी लालिमा जहाँ मानो दीप्त हो रही है। और जहाँ पर मानो मुनि अगस्त्य द्वारा पीकर उगले हुए समुद्र के जल को सम्पूर्ण आश्रम के समीपवर्ती बड़े-बड़े महासरोवरों में विभक्त कर दिया गया हो। और जहाँ दशरथ के पुत्रों के तीक्ष्ण वाण समूहों के वर्षण से विनष्ट हुई राक्षस सेनाओं के प्रचुर रक्त से सींची गई जड़ों वाला, नवपल्लवों वाला वह वन आज भी उस रक्त की लालिमा (राग) से युक्त (आविद्ध) होकर निकले हुए नवीन पत्तों वाला सा शोभित होता है।

भावार्थ—इसी अगस्त्याश्रम में ही, अपने पिता के वचनों का पालन करते हुए, राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ पञ्चवटी में पर्णशाला बनाकर, महामुनि

अगस्त्य के समीप पहुँचकर कुछ दिन तक सुखपूर्वक निवास किया था तथा रावण की राज्य लक्ष्मी का विनाश किया था, यद्यपि चिरकाल से यह वन अब निर्जन पड़ा हुआ है तथापि यहाँ के वे वृक्ष जिन पर श्वेत कबूतर अब भी निवास करते हैं, ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो वे तपस्वियों के दैनिक अग्नि होत्र के धुयें से लपटे हुए हों। कवि की कल्पना है कि जब भगवती सीता देवी यहाँ पर पूजन के लिए वृक्षों से फूल चुनती थीं और उनकी हाथों की लालिमा यहां के लता कुसुमों पर पड़ती थी, वह लालिमा आज भी इन किसलयों पर प्रकट हो रही है, वस्तुत: नवीन पल्लव स्वत: ही लालिमायुक्त होते हैं पर कवि इस लालिमा का कारण सीता के हाथों की लालिमा से इनका अनुरञ्जित होना बतलाता है, वन में जो बड़े-बड़े सरोवर हैं उनके लिए कवि की कल्पना है कि महामुनि अगस्त्य ने जो समुद्र का जल पहले पी लिया था उसे ही मानों उन्होंने पुन: उगल दिया है वही जल बँट कर इन सरोवरों में भरा हुआ है। इस वन के नवीन लालिमायुक्त पल्लवों के लिए कवि की यह दूसरी कल्पना है कि राम लक्ष्मण ने जो अपने तीक्ष्ण वाणों से राक्षस सेना का विनाश किया था और उससे जो रक्त निकला था, उसी रक्त से अनुरञ्जित होकर ये सब किसलय लालिमायुक्त हो गये हैं।

संस्कृत व्याख्या—यत्र च=यस्मिंश्चागस्त्याश्रमे, दशरथ वचन मनुपालयन्=स्वपितु: दशरथस्य वनवासाज्ञाया: पालनम् कुर्वन्, उत्सृष्टराज्य:=उत्सृष्टं परित्यक्त राज्यं येन स तथोक्त:, दशवदनलक्ष्मीविभ्रमविराम:=दशवदनस्य दशमुखस्य रावणस्य लक्ष्म्या: राज्यश्रिय: विभ्रमस्य विलासस्य विराम: अवसानम् यस्मात् स तथोक्त: राम: महामुनिम् मुनिश्रेष्ठम् अगस्त्यम् अनुचरन् सेवमान:, लक्ष्मणोपरचित रुचिर पर्णशाल:—लक्ष्मणेन तदनुजेन उपरचिता निर्मिता रुचिरा मनोज्ञा पर्णशाला उटज: यस्य स: तथोक्त:, पञ्चवट्याम् जनस्थाने सीतया सह, कञ्चित् कालम् सुखम् आनन्द पूर्वकम् उवास-निवासं चकार ! चिरशून्ये—बहो:कालात् मुनिजन विरहिते यत्र अगस्त्याश्रमे अद्यापि इदानीमपि, शाखानिलीननिभृतपाण्डुकपोत पङ्क्तय:=शाखासु तत्रत्य तरु-शाखासु निलीना: सम्यवस्थिता निभृता: नि:शङ्का: शान्ता वा ये पाण्डुकपोता: श्वेतपारवता स्तेषां पङ्क्तय: राजयो येषु ते तथोक्ता: तरव: वृक्षा:, लग्न तापसाग्नि होत्र धूमराजय इव=लग्ना: संसृष्टा: तापसानां तत्रस्य तपस्विनां यदग्निहोत्रं अग्नि-होत्राख्यदैनिक यज्ञ विशेष: तस्य धूमानां पङ्क्तय: राजय: येषु ते तथोक्ता इव लक्ष्यन्ते समवलोक्यन्ते। वलिकर्म कुसमानि-देवपूजनार्थ पुष्पाणि उद्धरन्त्या: चयनं कुर्वन्त्या: सीताया: वैदेह्या: करतलात् हस्ततलात् लताकिसलयेषु तत्रत्यवृतति नवपल्लवेषु संक्रान्त: विनिर्गत: सन् इव राग: तद्धस्त लौहित्यम् यत्राश्रमे स्फुरति प्रदीप्तो भवति। यत्र चाश्रमपदे मुनिना अगस्त्येन निखिलम् समग्रम्, पीतोद्गीर्णजलनिधिजलम्=पूर्वं पीतं पश्चादुद्गीर्णं जलनिधिजलं समुद्र सलिलम्, आश्रमोपान्तवर्तिषु आश्रमसमीप-वर्तिषु महाह्लदेषु महासरोवरेषु विभक्तं विभज्य स्थापितम् इव (प्रतीयते)। यत्र आगस्त्याश्रमे दशरथसुतनिशितशरनिकरनिपातनिहतरजनीचरबलबहलरुधिरसिक्त-

सिक्त मूलम्=दशरथ सुतयोः रामलक्ष्मणयोः निशिताः तीक्ष्णा ये शराः वाणाः तेषां निकरः समूहः तस्य निपातेन वृष्टया निहतानि घातितानि यानि रजनीचराणां राक्षसानां बलानि सैन्यानि तेषां यानि बहलानि प्रचुराणि रुधिराणि रक्तानि तैः सिक्तानि सिञ्चितानि मूलानि यस्य तत्, तथोक्तम्, नवानि किसलयानि यस्मिन् तत्—नव किसलयम् अरण्यम् वनम् अद्यापि इदानीमपि, तद्रागाविद्धनिर्गतपलाशम्-तेषां रुधिराणां रागेण रक्तिम्ना आविद्धानि युक्तानि निर्गतानि विनिःसृतानि पलाशानि पत्राणि यस्मिन् तत् तथोक्तम्, इव आभाति विशोभते ।

**संस्कृत सरलार्थ**—यस्मिंश्चागस्त्याश्रमे पित्राज्ञामनुपालयन्, राज्यं विहाय, रावण राज्य लक्ष्मीविलासञ्च समाप्य, महामुनिमगस्त्यं सेवमानो रामो लक्ष्मणनिर्मित पर्णशालामधिवसन् सीतया सह पञ्चवट्यां कञ्चित् कालं सानन्दं निवासं चक्रे। दहोःकालान्मुनिजन विरहितेऽपि यस्मिन्नाश्रमे तरुशाखावस्थितनिःशब्दश्वेतपारावतराजयो वृक्षा इदानीमपि तत्रत्यतपस्विदैनिकाग्निहोत्रधूमपंक्तिभिः संक्रान्ता इवावलोक्यन्ते । देवपूजनकर्म पुष्पाणां चयनं कुर्वन्त्याः सीताया हस्ततलात् लतानां पल्लवेषु संलग्न इव तद् रागो दीप्तो भवति । यस्मिंश्चाश्रमेऽगस्त्येन मुनिना समग्रं पूर्वं पीतं पश्चादुद्गीर्णं समुद्रजलम्, आश्रमसमीपवर्तिषु महातडागेषु विभज्य स्थापित मिव प्रतीयते । यत्र चाश्रमे रामलक्ष्मणतीक्ष्णवाणसमूह घातितानाम् "राक्षससैन्यानां प्रचुररक्तेन सिञ्चितमूलम् नूतनपल्लववद् वनम् इदानीमपि तद्रुधिररक्तिम्ना युक्त विनिर्गत पत्रमिव विशोभते ।

**टिप्पणी**—दशरथेति—दशसु-दिक्षु अप्रतिहतः रथः यस्य स दशरथस्तस्य वचनं वनगमनाज्ञाम् । उत्सृष्टम्—उत्+सृज्+क्त परित्यक्तम् । विरामः—अवसानम् यस्मात् सः—वि+रम्+घञ् विरामो रामो इत्यत्र यमकालंकारः । लक्ष्मणेति—उपरचिता रुचिरा पर्णशाला यस्मै सः । पर्णशाला=पत्तों की झोंपड़ी । पञ्चवट्याम्=पञ्चवटी स्थान दण्डकारण्य का ही एक भाग था, यह आधुनिक नासिक के समीप माना जाता है । पञ्चानां वटानां समाहारः पञ्चवटी—समाहारः द्विगुः "अकारान्तोत्तर पदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः" के अनुसार स्त्रीलिङ्ग होने से यहाँ 'द्विगोः' सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर पञ्चवटी पद बनता है इसी प्रकार पञ्चमूली त्रिलोकी आदि । वट शब्द यहाँ वृक्ष का उपलक्षक है क्योंकि यहाँ पाँच वट (बरगद के ही नहीं), अपितु वट, अश्वत्थ (पीपल) प्लक्ष (पाकर) उदुम्बर (गूलर) आम्र । इसका उल्लेख रामायण अरण्य काण्ड में भी आया है । यही स्थान सम्भवतः जन स्थान भी था जिसका उल्लेख 'उत्तरराम चरित' में है । उवास—वस+लिट् प्रथमपु०, एक वन । अद्यापि=इस समय भी । लग्न=सम्पृक्त संसृष्ट या युक्त । लग्न तापसाग्निहोत्रधूमराजयइव तरवः लक्ष्यन्ते में धूम राजियों में लग्नत्व की उत्प्रेक्षा होने से क्रियोत्प्रेक्षा एवं पदार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलंकारों का संकर है । इसी प्रकार रागः संक्रान्तः इव स्फुरति में क्रियोत्प्रेक्षा है । पीतोद्गीर्णेति आदौ पीतं पश्चादुद्गीर्णम्=पीतोद्गीर्णाम्-उत्+गॄ निगरणे क्त, पहले पीकर फिर उगला गया । उपान्त—समीप, महाह्रदेषु विभक्तमिव=अत्रापि क्रियोत्प्रेक्षा,

एतेन तेषामगाधसलिलत्वं ध्वन्यते, अतोऽलंकारेणात्रवस्तु ध्वनिः। दशरथ सुतेति= रजनीचरवलम्=राक्षस सैन्यम् "वरुथिनी बलं सैन्यं चक्रं चानीकमस्त्रियाम्" इत्यमरः। वहल इसका अर्थ कई टीकाकारों ने "गाढा' किया है पर इसका अर्थ— प्रभूत या प्रचुर ही यहाँ संगत होता है क्योंकि गाढे रक्त से सींचना सम्भव नहीं है। निहत=घातित मारे गये। तद्रागाविद्ध—उनके रक्त से लिप्त या युक्त होकर निकले पत्ते। आभाति—आ+भा दीप्तौ लट्। अत्रापि क्रियोत्प्रेक्षा।

**अधुनापि यत्र जलधरसमये गम्भीरमभिनव जलधरनिवहनिनाद माकर्ण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवनविवरव्यापिनश्चापघोषस्य स्मरन्तो न गृह्णन्ति शष्पकवलमजस्रमश्रुजललुलितदीनदृष्टयो वीक्ष्य शून्या दश दिशो जराजर्जरितविषाणकोटयो जानकीसम्बर्द्धिता जीर्णमृगाः। यस्मिन्न-वरतमृगयानिहत शेषवनहरिण प्रोत्साहित इव कृतसीताविप्रलम्भः कनकमृगो राघवमतिदूरं जहार। यत्र मैथिली वियोग दुःख दुःखितौ दशवदनविनाश पिशुनौ चन्द्रसूर्याविव कबन्धग्रस्तौ समं रामलक्ष्मणौ त्रिभुवनभयं महच्चक्रतुः। अत्यायतश्च यस्मिन् दशरथसुतशरनिपातितो योजनबाहोर्बाहुरगस्त्य प्रसादनागतनहुषाजगरकायशङ्कां चकार ऋषिगणस्य। जनकतनया भर्त्रा विरहविनोदनार्थं मुटजाभ्यन्तरलिखिता यत्र रामनिवासदर्शनोत्सुका पुनरिव धरणीतलादुल्लसन्तीव वनचरैरद्याप्यालोक्यते।**

शब्दार्थः—जलधर समये=वर्षाकाल में, अभिनव जलधर निवहनिनादम्= नवीन मेघों (जलधर) के समूह (निवह) के गर्जन (निनाद) को, आकर्ण्य=सुनकर, त्रिभुवन विवरव्यापिनः=तीनों लोकों के अन्तराल (विवर) को भर देने वाले, चाप-घोषस्य=धनुष के शब्द का, स्मरन्तः=स्मरण करते हुए, शष्प कवलम्=कोमल घास के ग्रास को, अजस्रम्=लगातार, अश्रुजललुलिता=शोकजन्य आँसुओं से विह्वल, दीनदृष्टयः=कातर दृष्टि वाले, जराजर्जरित विषाण कोटयः=बुढ़ापे से शीर्ण सींगों की नोंक वाले, जानकी सम्बर्द्धिताः=जानकी द्वारा (तृण जलादि देकर) बढ़ाये गये, जीर्णमृगाः=वृद्ध हरिण। अनवरतमृगया निहत शेषवनहरिण प्रोत्साहित इव=मानो निरन्तर शिकार में मारे गये (मृगों से) शेष बचे वन मृगों द्वारा उकसाया गया, कृतसीताविप्रलम्भः=जानकी के साथ धोखा करने वाला, कनकमृगः= स्वर्णमृग रूपधारी मारीच, राघवमतिदूरं जहार=राम को बहुत दूर ले गया था। मैथिली वियोग दुःख दुःखितौ=सीता के वियोग के दुख से दुखी, दशवदन विनाश पिशुनौ=रावण के विनाश के सूचक, कवन्धग्रस्तौ=राहु के द्वारा कवलित, चन्द्रसूर्यौ इव=चन्द्र और सूर्य की तरह, कवन्धग्रस्तौ=कवन्ध नामक राक्षस द्वारा घिरे हुए, रामलक्ष्मणौ=राम और लक्ष्मण ने, समम्=एक साथ ही। अत्यायतः= बहुत लम्बी, अतिविशाल, दशरथसुतशरनिपातितः=राम के बाण से काटकर गिराई गई, योजनबाहोः=योजन बाहु इस अपर नामधारी कवन्ध की भुजा ने, अगस्त्य प्रसादनागत नहुषा जगरकायशङ्काम्=अगस्त्य मुनि को प्रसन्न करने के लिए आये

हुए अजगर रूपी नहुष राजा के शरीर के भ्रम को, भर्त्रा=पति राम द्वारा, विरह विनोदनार्थम् उटजाभ्यन्तर लिखिता, वियोग को हल्का करने के लिये पर्णशाला के भीतर चित्रित की गई, सीता मानो, रामनिवास दर्शनोत्सुका=राम के निवास स्थान को देखने के लिए उत्सुक, धरणीतलात्=पृथिवीतल से, उल्लसन्तीव=ऊपर निकलती हुई सी।

अनुवाद—अब भी जहाँ अगस्त्याश्रम में वर्षा काल में नूतन मेघ समूह की गम्भीर गर्जन को सुनकर भगवान् राम के तीनों लोकों के अन्तराल को व्याप्त कर लेने वाले धनुष के शब्द का स्मरण करते हुए (किन्तु दशों दिशाओं को सूना (अर्थात् राम लक्ष्मण सीता से रहित)· देखकर, (शोक वश) निरन्तर (बहते हुए आँसुओं से विह्वल एवं कातर दृष्टि वाले, सीता द्वारा (तृण जल आदि देकर) बढ़ाये गये, बुढ़ापे से विशीर्ण सींगों की नोकों वाले वृद्ध मृग, कोमल घास के ग्रास को ग्रहण नहीं करते हैं। जहाँ मानो निरन्तर शिकार में मारे गये (मृगों से) शेष बचे हुए वन्य हरिणों द्वारा उकसाया गया, सीता को धोखा देने वाला, स्वर्णमृग रूपधारी मारीच, राम को अतिदूर ले गया था। और जहाँ सीता के वियोग के दुःख से दुःखी, रावण के विनाश की सूचना देने वाले, राहु द्वारा कवलित चन्द्र सूर्य के समान, कवन्ध (दनु कवन्ध) नामक राक्षस से घिरे हुए राम लक्ष्मण ने, एक साथ ही, (इनसे युद्ध करने में) तीनों लोकों के लिए बड़ा भय उत्पन्न कर दिया था। और जहाँ राम के बाण से काटकर गिराई गई योजन बाहु (कवन्ध का दूसरा नाम योजन बाहु भी था) की अति विस्तृत भुजा ने ऋषियों को अगस्त्य मुनि को प्रसन्न करने के लिए आये हुए अजगर रूपी राजा नहुष के शरीर की शंका (भ्रम) उत्पन्न कर दी थी। पति राम द्वारा, वियोग को हल्का करने के लिए पर्णशाला के भीतर चित्रित की गई जानकी, राम के निवास स्थान के दर्शन के लिए, मानो पुनः उत्सुक हुई सी, पृथिवी तल से ऊपर निकलती हुई सी, अब भी वनचरों के द्वारा देखी जाती है।

**भावार्थ**—अब भी इस अगस्त्याश्रम में जब वर्षाकाल में नवीन मेघों की गम्भीर गर्जना होती है तो उसे सुनकर और उससे त्रिलोक व्यापी राम के धनुष के शब्द की याद करते हुए, किन्तु दशों दिशाओं को राम सीता और लक्ष्मण से सूना देखकर, शोकवश आँखों में आँसू भरे हुए कातर दृष्टि वाले, सीता से पालित वे वृद्ध मृग, जिनकी सींगों की नोंकें भी बुढ़ापे के कारण विशीर्ण हो गई हैं, कोमल घास के ग्रासों को नहीं ग्रहण करते हैं। यहीं पर जब पहले पञ्चवटी में निवास करते हुए राम ने शिकार में अनेक वन्य मृगों को मारा था तब शेष बचे हुए मृगों ने स्वर्ण मृग का रूप धारण करने वाले मारीच को राम के विरुद्ध उकसाया था, फलतः वह सीता को धोखा देकर राम को दूर जंगल में ले गया था। यहीं पर सीता के वियोग दुःख से दुःखी और रावण के विनाश के सूचक राम लक्ष्मण ने, जो कि इस समय राहु द्वारा कवलीकृत चन्द्र सूर्य के समान ही कबन्ध नामक राक्षस से घिरे हुए थे,

(उससे युद्ध करते हुए) एक साथ ही त्रिभुवन में महाभय उत्पन्न कर दिया था। यहीं पर, राम के बाण से काटकर गिराई गई, योजनबाहु की (योजनबाहु, कबन्ध का ही दूसरा नाम था) भुजा ने, ऋषियों के मन में, अगस्त्य को प्रसन्न करने के लिए आये हुए अजगर रूप धारी नहुष के शरीर की आशंका उत्पन्न कर दी थी, अर्थात् उसकी विशाल भुजा को देखकर ऋषियों को अजगर नहुष का भ्रम उत्पन्न हो गया था। सीता के वियोग को शांत करने के लिए राम ने अपनी झोपड़ी में सीता को चित्रित किया था, यद्यपि इस समय सीता धरणी में समा चुकी थी तथापि यहाँ के वनचरों को अब भी ऐसा प्रतीत होता था कि मानो सीतादेवी, यहाँ के रामनिवास को देखने के लिए उत्सुक होकर पुनः पृथ्वी तल से ऊपर आ रही है।

संस्कृत व्याख्या :—अधुना इदानीमपि, यत्र यस्मिन्नाश्रमे, जलधरसमये वर्षाकाले, अभिनवजलधरनिवहनिनादम्=अभिनवा नूतना ये जलधराः मेघास्तेषां निवहस्य समूहस्य निनादम् गर्जनम् गम्भीरम् मञ्जुलम्, आकर्ण्य श्रुत्वा, भगवतः—पूजनीयस्य रामस्य, त्रिभुवन विवरव्यापिनः=त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य विवराणि छिद्राणि व्याप्नोति पूरयतीति स तस्य तथोक्तस्य, चाप घोषस्य धनुःशब्दस्य, स्मरन्तः चिन्तयन्तः (परम्) दशदिशः शून्याः रामलक्ष्मणसीतविरहिताः वीक्ष्य अवलोक्य, (शोकवशात्) अजस्रं निरन्तरं, अश्रुजलैः नेत्रजलैः लुलिता व्याकुलीभूता दीना कातरा दृष्टयः नेत्राणि येषां ते अश्रुजललुलितदीनदृष्टयः अश्रुभिर्व्याकुलीकृतकातरलोचनाः। जराजर्जरित विषाणकोटयः—जरया वृद्धावस्थया जर्जरिताः विशीर्णा विषाणानां शृङ्गाणां कोटयः अग्रभागाः येषान्ते तथोक्ताः, जानक्या सम्बर्द्धिताः तृणादिदानेन पुष्टिं नीताः—जानकीपरिबर्द्धिताः, जीर्णमृगाः—वृद्धहरिणाः, शष्पकवलम्—शष्पस्य बालतृणस्य कवलम् ग्रासम्, न गृह्णन्ति माददते। यत्र यस्मिन्, वने अनवरत मृगया-निहत शेषवन हरिणप्रोत्साहित इव—अनवरतम् अविश्रान्तं या मृगया तस्यां निहतेभ्यः रामशरव्यापादितेभ्यः शेषा अवशिष्टा ये वनहरिणाः विपिनमृगाः तैः प्रोत्साहितः सीतावनचनया रामस्य दूरं नयने प्रकृष्टोत्साहं प्रापितः, कनक मृगः स्वर्णमृगरूपधारी, मारीचः, कृत सीता विप्रलम्भः—कृतः विहितः सीतायाः विप्रलम्भः वञ्चना येन सः तथोक्तः, राघवम् रामम् अतिदूरम् जहार नीतवान्। यत्र आश्रमे, मैथिली वियोग दुःखदुःखितौ—मैथिल्याः सीतायाः वियोग दुःखेन विरहजन्यक्लेशेन दुःखितौ क्लेशा-भिभूतौ, दशवदनविनाशपिशुनौ—दशवदनः रावणः तस्य विनाशस्य पिशुनौ सूचकौ, रामलक्ष्मणौ, कवन्धग्रस्तौ—कवन्धेन राहुणाग्रस्तौ कवलितौ तथोक्तौ चन्द्रसूर्यौ इव कवन्धेन दनुकवन्धेन ग्रस्तौ परिवृतौ सन्तौ, समम्—एककालम्, महत् अत्युत्कृष्टम् त्रिभुवनभयम् लोकत्रयातङ्कं चक्रतुः विदधतुः। यस्मिन्नाश्रमे, दशरथसुतशरनिपा-तितः—दशरथसुतस्य रामस्य शरेण बाणेन निपातितः कर्तयित्वाधो निपातितः, योजनबाहोः दनुकवन्धस्य (दनुकवन्धस्य योजनबाहुरित्यपरं नाम आसीत्) अत्यायतः अतिविस्तृतः बाहुः भुजः, ऋषिगणस्य ऋषिमण्डलस्य, अगस्त्यप्रसादनागतनहुषा-जगरकायशङ्काम्—अगस्त्यस्य एतदाख्यस्य मुनेः प्रसादनाय-इन्द्राणीं प्रति गमनकाले

चरणप्रहार जनित कोपस्य शान्तये आगतः मुनिमगस्त्यमुपस्थितः यः नहुषाजगरः अजगररूपधारिनहुषनृपतिः तस्य कायशङ्काम् देह भ्रान्तिम् चकार कृतवान् । भर्त्रा रामेण विरहविनोदार्थम्—सीताविरहस्य व्यथाया लघुत्वसम्पादनार्थम्, उटजाभ्यन्तर-लिखिता, पर्णशालामध्ये चित्रीकृता, यत्राश्रमे जनकतनया जानकी, रामनिवास-दर्शनोत्सुका—रामनिवासस्थानावलोकनोत्कण्ठिता सती, पुनः भूयोऽपि धरणीतलात् पातालात् उल्लसन्ती भूमिदेशमागच्छन्तीव, वनचरैः वनवासिभिर्भिल्लैः अद्यापि इदानीमपि अवलोक्यते ।

**संस्कृत सरलार्थ**—इदानीमपि यत्रागस्त्याश्रमे वर्षाकाले गम्भीरं नूतनमेघगर्जनं-श्रुत्वा रामस्य लोकत्रयव्याप्तस्य चापघोषस्य स्मरन्तः, दश दिशो रामलक्ष्मणसीता-वियुक्ताः समवलोक्य शोकेनाश्रुकातरलोचना जरया विशीर्णश्रङ्गाग्रभागाः सीतापरि-वर्धिता वृद्धमृगा, शोकसन्तप्तहृदयाः कोमलघासकवलं नाददते । यस्मिन्नाश्रमेऽविश्रान्तं मृगयायां व्यापादितावशिष्टवन्यमृगैः प्रकृष्टोत्साहं प्रापितः स्वर्णमृगरूपधारि मारीचः सीतां प्रतार्य राम मतिदूरं निनाय । यत्राश्रमे च जानकी वियोग क्लेशितौ रावणनाश सूचकौ रामलक्ष्मणौ, राहुकवलितौ चन्द्रसूर्यो इव दनुकवन्धपरिवृतौ सन्तौ एककालमेव लोकत्रयेऽपि महतीं भीतिं विदधतुः । यस्मिश्चाश्रमे रामशरेण कर्तयित्वाधः पातितोऽति-विस्तृतो दनुकवन्धस्य भुजः, अगस्त्यस्य चरणप्रहार जनित क्रोधोपशान्तये समागतस्य नहुषाजगरस्य शरीरभ्रमं मुनिमण्डलस्य चक्रे । सीता वियोग दुःखस्य लघुत्वसम्पादनाय रामेण स्वपर्णशालाभ्यन्तरे चित्रीकृता सीता, रामनिवासस्थान दर्शनोत्कण्ठिता सती भूयोऽपि पातालाद् भूमिमायान्तीव तत्रत्यैर्वनचरैरिदानीमप्यवलोक्यते ।

**टिप्पणी—त्रिभुवनेति**—तीनों लोकों के अन्तरालों को व्याप्त करने वाले अर्थात् भर देने वाले, चापघोषस्य स्मरन्तः—धनुः शब्द को स्मरण करने वाले, यहाँ स्मरन्तः के योग में "अधीगर्थदये शांकर्मणि" सूत्र से घोषस्य में कर्म में षष्ठी विभक्ति है और मेघध्वनि के श्रवण से राम के धनुष के शब्द का स्मरण करने में स्मरणालंकार है "सदृशानुभवाद्वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते" तथा सम्बन्धेऽसम्बन्ध लक्षणा अतिशयोक्ति भी है, और दोनों में अङ्गाङ्गिभावसंकर है। **अश्रुजलेति**—आँसुओं से परिपूर्ण (लुलित) और कातर नेत्रों वाले, आँसुओं का कारण है, दश दिशाओं को सूना देखना । **जीर्णमृगाः**—जृ + क्त जीर्ण शीर्ण बुढ्ढे मृग । **निहतशेष**=मारे गये मृगों से शेष बचे हुए । **प्रोत्साहितः**—मानो वह जानकी को धोखा देकर राम को दूर ले जाने के लिए अत्यधिक उकसाया गया था । **विप्रलब्धः**—प्रवञ्चना धोखा । **जहार**—हृ लिट् प्र० पु० एकवचन । **दशवदनेति**—रावण के विनाश के सूचक "पिशुनौ खलसूचकौ" इत्यमरः, **कवन्धग्रस्तौ**—बिना शिर का धड़ कवन्ध कहा जाता है, राहु और दनुकवन्ध नामक राक्षस बिना शिर के धड़ मात्र से ही जीवित थे, अतः यहाँ कवन्ध शब्द दोनों का ही बोधक है, राहु द्वारा चन्द्र सूर्य को कवलित कर लेने पर त्रिभुवन में भय उत्पन्न हो गया था क्योंकि सब कुछ अन्धकाराच्छादित हो गया था

और दनुकबन्ध से घिरे राम लक्ष्मण ने उससे युद्ध करने में त्रिलोक में भय उत्पन्न कर दिया था। अत्यायत:—अति+आ+यम् धातो:क्त—अतिविस्तृत। दशरथ-सुतेति—राम द्वारा काटी गई योजनबाहु (दनुकबन्ध) की भुजा में ऋषियों को अजगर रूप में परिवर्तित हुए नहुष के शरीर की आशंका उत्पन्न हुई थी, क्योंकि अजगर और कबन्ध की भुजा में सादृश्य था, अतएव यहाँ इस कथन में भ्रान्तिमान् अलंकार है "साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थित:" अपने चरण प्रहार से क्रुद्ध अगस्त्य को मनाने के लिए नहुष उनके पास आया था। पुनरिह धरणीतलादुल्लसन्तीव—यहाँ पुनः शब्द से यह सूचित किया गया है कि प्रथम बार तो सीता मिथिला में यज्ञभूमि के हलाकर्षण से धरणीतल से उत्पन्न हुई थीं और फिर जब राम से निर्वासित होकर पुनः धरणी में समा गई थीं, वही सीता अब फिर मानो रामनिवास दर्शनोत्सुका होकर पुनः धारणी तल से ऊपर आ रहीं थीं। उल्लसन्तीव में क्रियोत्प्रेक्षालंकार है।

## पम्पासरो वर्णनम्

**तस्य चैवं विधस्य संप्रत्यपि प्रकटोपलक्ष्यमाणपूर्ववृत्तान्तस्याश्रमस्य नातिदूरे जलनिधिपानकुपितवरुणोत्साहितेन अगस्त्य मत्सरात्तदाश्रमसमीपवर्त्यपर इव वेधसा महाजलनिधिरुत्पादित:, प्रलयकालविघटिताष्टदिग्विभाग सन्धिबन्धं गगनतलमिव भुवि निपतितम्, आदिवराहसमुद्धृतधरामण्डलस्थानमिव सलिलपूरितम्, अनवरतमज्ज दुन्मदशवरकामिनीकुचकलस लुलितजलम्, उत्फुल्ल कुमुद कुवलयं कह्लारम्, उन्निद्रारविन्द मधुबिन्दु बद्धचन्द्रकम्, अलिकुलपटलान्धकारितसौगन्धिकम्, सारसितसमवसारसम्, अम्बुरुहमधु पानमत्तकलहंसकामिनी कृतकोलाहलम् अनेकजलचरपतङ्गशत सञ्चलनचलित वाचालवीचिमालम्, अनिलोल्लासित कल्लोलशिशिर शीकरारब्धदुर्दिनम्………………पम्पाभिधानं सर: (अस्ति)।**

शब्दार्थ—सम्प्रत्यपि=अब भी, प्रकटोपलक्ष्यमाण पूर्ववृत्तान्तस्य=स्पष्ट रूप से पूर्व दर्शित प्रकार से ज्ञायमान पूर्वघटित वृत्तान्त वाले, एवम्विधस्य तस्य च आश्रमस्य=इस प्रकार के उस आश्रम के, नातिदूरे=समीप में ही, जलनिधिपानकुपितवरुणोत्साहितेन=समुद्र के पान से क्रुद्ध हुए वरुणदेव के द्वारा उकसाये गये, वेधसा=ब्रह्मा द्वारा, अगस्त्यमत्सरात्=अगस्त्य के प्रति ईर्ष्या से, तदाश्रमवर्ति=उनके आश्रम के समीप ही, अपर: जलनिधि: इव उत्पादित:=मानो दूसरा समुद्र ही उत्पन्न कर दिया गया हो। प्रलयकाल विघटिताष्टदिग्विभागसन्धिबन्धम्=प्रलयकाल में जिस के आठों दिशाओं के जोड़ के बन्धन खुल गये हों, (अतएव) मानो पृथ्वी तल पर गिरे हुए आकाश जैसा, आदिवराहसमुद्धृतधरामण्डलस्थानमिव सलिलपूरितम्=महावराह रूपधारी विष्णु के द्वारा (जल से) ऊपर लाया गया भूमण्डल का अवकाश मानो जल से भरा हुआ हो। अनवरतमज्जदुन्मदशबरकामिनी कुचकलस लुलितजलम्=लगातार स्नान करती हुई उन्मत्त शबरकामिनियों के स्तनघटों से आलोडित जल वाला, उत्फुल्ल-

कुमुदकुवलयकह्लारम्=विकसित श्वेत नील एवं रक्तकमलों वाला, उन्निद्रारविन्द-मधुबिन्दुबद्धचन्द्रकम्=उन्निद्र-प्रस्फुटित कमलों के मकरन्द बिन्दुओं से रचित मयूर-पिच्छसदृश चन्द्राकृति वाला, अलिकुलपटलान्धकारितसौगन्धिकम्=भ्रमरवृन्द समुदाय से आवृत (अन्धकारित) कह्लारों (सौगन्धिक) वाला, सारसितसमदसारसम्=शब्दायमान (सारसित) (अतएव) मदमत्त सारस पक्षियों वाला, अम्बुरुहमधुपानमत्त-कलहंसकामिनीकृतकोलाहलम्=कमलों के (अम्बुरुह) मकरन्द (मधु) पीने से मतवाली कलहंसों की कामिनियों के कोलाहल वाला, अनेकजलचरपतङ्गशतसञ्चलन-चाचालवीचिमालम्=अनेक नक्र मत्स्यादि जलचरों एवं सैकड़ों पक्षियों के गमनागमन (सञ्चलन) से विक्षुब्ध (चलित) (अतएव) मुखरित (वाचाल) तरंगमालाओं (वीचिमाला) वाला, अनिलोल्लासित कल्लोलशिशिरशीकरारब्धदुर्दिनम्=वायु द्वारा उठाये गये (उल्लासित) महातरंगों (कल्लोल) के शीतल जलकणों (शिशिरशीकर) से मेघाच्छन्न दिवस उत्पन्न करने वाला। आरब्ध दुर्दिनम् (पम्पा नामक कमल सरोवर है)'

अनुवाद—अब भी, स्पष्ट रूप से पूर्वदर्शित प्रकार से ज्ञायमान पूर्वघटित वृत्तान्त वाले, इस प्रकार के, उस आश्रम के समीप ही, समुद्र के पी लेने से कुपित वरुणदेव के द्वारा उकसाये गये ब्रह्मा के द्वारा, अगस्त्य मुनि के प्रति ईर्ष्यावश, उनके आश्रम के समीप ही मानो एक दूसरा समुद्र ही उत्पन्न कर दिया गया हो, (अथवा) प्रलयकाल में जिसकी आठों दिशाओं के जोड़ के बन्धन खुल गये हों, अतएव मानो पृथ्वी तल पर गिरे हुए गगनतल के समान, (अथवा) महावराह रूपधारी विष्णु के द्वारा (जल से) ऊपर लाया गया भूमण्डल का अवकाश ही मानो जल से भरा हुआ हो, (ऐसा तथा) निरन्तर स्नान करती हुई उन्मत्त शवरकामिनियों के स्तनघटों से विलोडित जल वाला, विकसित श्वेत नील एवं रक्त कमलों वाला, प्रस्फुटित कमलों के मकरन्द बिन्दुओं से विरचित मयूरपिच्छ सदृश चन्द्राकृति वाला, भ्रमरवृन्द समूह से आच्छादित रक्त कमलों वाला, शब्दायमान अतएव मदमत्त सारस पक्षियों वाला, कमलों के मकरन्दपान से मदमत्त कलहंसों की कामिनियों के कोलाहल वाला, अनेक (नक्रमत्स्यादि) जलचरों एवं सैकड़ों पक्षियों के गमनागमन से विक्षुब्ध अतएव मुखरित तरंग मालाओं वाला, (तथा) वायु द्वारा उठाये गये महातरंगों के शीतल जल-कणों से रचित मेघाच्छन्न दुर्दिन वाला ......................(पम्पा नामक कमल सरोवर है।)

भावार्थ—जहाँ पूर्वघटित सभी घटनायें अब भी स्पष्ट दिखलाई पड़ रही हैं उस अगस्त्याश्रम के निकट ही एक पम्पा नामक कमल सरोवर है। वह ऐसा प्रतीत होता है कि मानो, समुद्र का जल पी लेने से क्रुद्ध वरुणदेव द्वारा उकसाये गये ब्रह्मा ने अगस्त्य के ईर्ष्यावश, उनके आश्रम के पास ही, एक दूसरा समुद्र ही उत्पन्न कर दिया हो, अथवा वह ऐसा प्रतीत होता है कि मानो, प्रलयकाल में सभी दिशाओं के

जोड़ों के बन्धन टूट जाने से आधारहीन गगनतल ही पृथ्वी पर गिर पड़ा हो, अथवा जल से भरा हुआ वह ऐसा प्रतीत होता है कि मानो महावराहावतार विष्णु द्वारा जल से ऊपर लाया गया भूमण्डल का अवकाश ही हो (विशाल जलराशि से गोलाकार पृथ्वी मण्डल को उठा लेने से स्वभावतः जो मण्डलाकार अवकाश बन जायेगा वही मानो जलपूरित होकर यह सरोवर बन गया था) इन उत्प्रेक्षाओं से निर्मित होने के अतिरिक्त उस सरोवर में जो शबरों (भिल्लों) की मदमस्त स्त्रियाँ नित्य स्नान किया करती थीं इससे उन स्त्रियों के स्थूल स्तनों से उस सरोवर का जल विडोलित (मथ) जाता था। और इस सरोवर में फूले हुए श्वेत नील एवं रक्तकमल शोभित होते थे। खिले हुए कमलों के मकरन्द बिन्दु जो इसके जल में गिरते थे उनसे इसमें मयूरपिच्छ के समान चन्द्राकृति बन जाती थी। इसके रक्तकमल भ्रमरों द्वारा सदा आच्छादित रहते थे, और मदमस्त सारस पक्षी बोलते रहते थे। कमल मकरन्द पी कर मतवाली कलहंसों की वरटायें यहाँ कोलाहल किया करतीं थी (हंस की स्त्री हंसिनी को वरटा कहा जाता है) जो अनेक नक्र मत्स्य आदि जलचर तथा जो अनेक पक्षी यहाँ आते जाते रहते थे इससे विक्षुब्ध हुए इसके जल में अनेक महातरंगें मुखरित हो उठतीं थीं जब वायु इसमें ऊँची-ऊँची तरंगों को उठाता था तब उनके शीतल जलकणों से यहाँ मेघाच्छन्न दुर्दिन जैसा बना दिया जाता था।

संस्कृत व्याख्या—प्रकटोपलक्ष्यमाणपूर्ववृत्तान्तस्य=प्रकटं सुस्पष्टम् उपलक्ष्यमाणा पूर्वदर्शित प्रकारेण ज्ञायमानाः पूर्ववृत्तान्ताः पूर्वघटितोदन्ताः यस्य तस्य तथोक्तस्य, एवम्विधस्य पूर्वोक्त प्रकारेणोपवर्णितस्य तस्य अगस्त्याश्रमस्य, सम्प्रत्यपि इदानीमपि, नातिदूरे समीपमेव (पम्पेत्याख्यातं कमलसरो विद्यते" इति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः इह सर्वाणि प्रथमान्तपदानि पद्मसरोविशेषणानीत्यवधेयम्) जलनिधिपानकुपितवरुणोत्साहितेन=जलनिधीनां समुद्राणां पानेन चुलुकीकृतेन कुपितः (जलाधीश्वरत्वात्) क्रुद्धः यः वरुणः प्रचेताः तेन उत्साहितेन प्रगुणितेन तथोक्तेन, वेधसा ब्रह्मणा, अगस्त्यमत्सरात् अगस्त्यमुनिं प्रतिशुभद्वेषात्, तदाश्रमसमीपवर्ती अगस्त्याश्रमनिकटवर्ती अपरः अन्यः महाजलनिधिः महासागरः इव उत्पादितः विनिर्मितः। (अथवा) प्रलयकालविघटिताष्टदिग्विभागसन्धिबन्धम्=प्रलयकाले विघटिता विस्खलिता ये अष्टानां दिशां विभागाः प्रदेशाः तेषां सन्धयः तत्तत्पर्वतावधिकाः संयोगाः तेषां बन्धाः बन्धनानि यस्मिन् तत्, तथोक्तम्, भुवि पृथिव्यां निपतितम्, गगनतलम् नभस्तलमिव स्थितम्, (अथवा) आदिवराह समुद्धृत धरामण्डलस्थानम्—आदिवराहेण महावराहरूपेण विष्णुना समुद्धृतं जलादुपरि समानीतं यद् धरामण्डलम् भूमण्डलम् तस्य स्थानम् अवकाशः सलिलपूरितमिव जलपूरितमिव (स्थितम्) अनवरतमज्जदुन्मदशबरकामिनीकुचकलसलुलितजलम्=अनवरतम् निरन्तरम् मज्जन्त्यः जलावगाहं कुर्वन्त्यः याः उन्मदा यौवनमदोन्मत्ता शबरकामिन्यः भिल्लप्रमदाः तासां कुचकलसैः स्तनघटैः लुलितानि विलोडितानि जलानि यस्य तत् तथोक्तम्, उत्फुल्लकुमुदकुवलयकह्लारम्=उत्फुल्लानि

विकसितानि कुमुदानि श्वेतकमलानि कुवलयानि नीलकमलानि कह्लाराणि रक्तोत्पलानि यस्मिंस्तत् तथोक्तम्, उन्निद्रारविन्दमधुविन्दुबद्धचन्द्रकम्=उन्निद्राणि प्रस्फुटितानि यानि अरविन्दानि कमलानि तेषां मधुविन्दुभिः मकरन्द कणिकाभिः (जलादुपरि) बद्धाः सम्पादिताः चन्द्रकाः मयूरपिच्छचन्द्राकाराश्चन्द्रका यस्मिंस्तत् तथोक्तम्, अलिकुलपटलान्धकारितसौगन्धिकम्=अलिकुलानां भ्रमरवृन्दानां पटलेन समूहेन अन्धकारितानि समाच्छादितानि सौगन्धिकानि कह्लाराणि यस्मिंस्तत् तथोक्तम्, सारसितसमदसारसम्=सारसितेन शब्दितेन वर्तमाना अतएव समदाः मदोत्कटाः सारसाः सारसाख्यपक्षिविशेषाः अथवा सारसाः सारसयोषितः लक्ष्मणाप्रभृतयः यस्मिंस्तत् तथोक्तम्, अम्बुरुहमधुपानमत्त कलहंसकामिनीकृतकोलाहलम्=अम्बुरुहाणां कमलानां यन्मधु मकरन्दः तस्य पानेन मत्ताः मदोन्मत्ता याः कलहंसानां कामिन्यः योषितः वरटा इत्यर्थः ताभिः कृतः उत्पादितः कोलाहलः कलकलः यस्मिंस्तत् तथोक्तम्, अनेक जलचरपतङ्गशतसञ्चलनचलितवाचालवीचिमालम्—अनेके सहस्रशः ये जलचराः जलचारिणः नक्रमत्स्यादयो जलजन्तवः तेषाम्, पतङ्गानां पक्षिणाञ्च शतस्य मण्डलस्य सञ्चलनेन इतस्ततो गमनागमनेन चलिताः विक्षुब्धा अतएव वाचाला मुखरा या वीचयः लहरिसन्ततयः तासाम् मालाः श्रेण्यः यस्मिंस्तत् तथोक्तम्, अनिलोल्लासित कल्लोलशिशिरशीकरारब्धदुर्दिनम्=अनिलेन वायुना उल्लासिता उत्थानं प्रापिता ये कल्लोलाः महातरङ्गाः तेषां शिशिरशीकरैः शीतलजलकणैः आरब्धं विहितं दुर्दिनम् मेघच्छन्नदिनम् यस्मिंस्तत् तथोक्तम् ।

संस्कृत सरलार्थ—इदानी मपि सुस्पष्टं ज्ञायमानपूर्वघटितवृत्तान्तस्य तस्यागस्त्याश्रमस्य समीपमेव पम्पेत्याख्यातं कमलसरो विद्यते । इतिवक्ष्यमाणेन सम्बन्धः= कमलसरोवरोऽयमेवं प्रतिभाति, यथा समुद्रं पानप्रकुपितेन प्राचेतसा प्रोत्साहितेन ब्रह्मणा अगस्त्यमुनिं प्रति शुभद्वेषात् तदाश्रमसमीपवर्ती महासागरोऽपरो विनिर्मित इव, अथवा, प्रलयकाले विस्खलिताष्टदिग्विभाग सन्धिबन्धन मत एव भुवि निपतितं नभस्तलमिव स्थितम्, अथवा, महावराहावतारधारिणा विष्णुना जलादुपरि समानीतस्य भूमण्डलस्यावकाशः जलपूरितमिव स्थितम्, अथ च सरोवरस्यास्य जलं निरन्तरं मज्जन्तीनां यौवनमदोन्मत्तानां शबर प्रमदानां स्तनघटैरालोडितमासीत्, एवमत्र श्वेत नीलरक्तकमलानि विकसिता न्यासन्, विकसित कमलमकरन्दविन्दुपानेनात्र मयूरपिच्छचन्द्राकाराश्चन्द्रकाः परिदृश्यमाना आसन्, भ्रमरसमूहे नात्र कह्लाराणि समाच्छादितान्यासन्, मदोन्मत्ताः सारसपक्षिणोऽत्रशब्दायमाना आसन्, कमलमकरन्दपानमत्तानां वरटानां कोलाहलेनेदमासीदुपराजितम्, अनेकनक्रादिजलजन्तुपक्षिशतगमनागनेन विक्षुब्धम् अतएव मुखरतरङ्गमालमपीदमासीत्, अथ चास्मिन् सरोवरे पवनोत्थापितानां महातरङ्गाणां शीतलजलकणै र्मेघच्छन्नदुर्दिनं कृतमासीत् ।

टिप्पणी—प्रकटेति—जहाँ पर प्राचीन वृत्तान्त स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रहे थे । 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इत्यमरः । पम्पाभिधानं सरः—पम्पेतिसंज्ञकं

कमलसर: "कासार: सरसी सरः इत्यमरः। जलनिधिपानेति—वरुण, जलाधिपति माने गये हैं अन्त: समुद्र जल के पी लेने से अगस्त्यमुनि के प्रति उनका कुपित होना स्वाभाविक ही था, फलतः उन्होंने ब्रह्मा को उकसाया और ब्रह्मा ने उसी आश्रम के समीप ही मानो सरोवर के रूप में एक दूसरा समुद्र ही बना दिया था। 'प्रचेता वरुण पाशी' इत्यमरः, वेधसा=ब्रह्मणा 'स्रष्टा प्रजापति र्वेधाः' इत्यमरः, मत्सरात् अन्यशुभद्वेषात् 'मत्सरोऽन्यशुभद्वेषः' इत्यमरः। यह सरोवर अतिविस्तृत था अतएव इसकी महाजलनिधि के रूप में कल्पना की गई है। महाजलनिधिरिवेत्यत्र द्रव्योत्प्रेक्षा। प्रलयकालेति—प्रलयकाल में अष्टदिग्विभागों के तत्तत्पर्वतावधिक सन्धिबन्धन खुल गये थे अतएव मानो गगन तल पृथ्वी पर सरोवर के रूप में गिर पड़ा था सरोवर के अतिस्वच्छ और विस्तृत होने के कारण 'गगनतलमिव' में यह द्रव्योत्प्रेक्षा है 'नभोऽन्तरिक्षं गगनम् इत्यमरः। आदिवराहेति—आदिवराह के द्वारा जल से भूमण्डल के ऊपर उठा लेने से बना हुआ गहरा स्थान ही मानो सरोवर के रूप में जलपूरित हो गया था, 'जलपूरितमिव' में क्रियोत्प्रेक्षा है। अनवरतेति—मदमत्त शबरकामिनियों के स्थूल स्तनों से टकराकर सरोवर का जल चञ्चल हो उठा था। कुचा एव कलसा इस विग्रह में रूपक है अथवा कुचाः कलसा इव इस विग्रह में उपमा है, यह सन्देह रहने से यहाँ सन्देहसंकर अलंकार है। उत्फुल्लेति—इस पद में कुमुद से श्वेत कमलों, कुवलय से नीलकमलों एवं कह्लार से रक्तकमलों का ग्रहण है जैसा कि अमरकोश में उल्लेख है "सौगन्धिकं तु कह्लारं, हल्लकं रक्तसन्ध्यकम्। स्यादुत्पलं कुवलय मथ नीलाम्बुजन्म च। इन्दीवरञ्च नीलेऽस्मिन् सिते कुमुदकैरवे।" उन्निद्रेति—उन्निद्र अर्थात् प्रस्फुटित विकसित, विकसित कमलों के मकरन्द के बिन्दु जो जल में टपकते थे उससे जल में मोरपंख के चन्द्रक की तरह की चन्द्राकार चित्र बन जाता था। अलिकुलेति—सौगन्धिक अर्थात् कह्लार पुष्प भ्रमरसमूह से आच्छादित होने से नीलवर्ण जैसे जान पड़ते थे। सारसितेति—शब्दायमान मदोत्कट सारस नामक पक्षी जहाँ पर थे, किन्हीं टीकाकारों ने सारसितेन शब्देन सह वर्तमाना अतएव समदाः सारसाः अर्थात् लक्ष्मणाप्रभृतयः सारसयोषितः भी अर्थ किया है, यह भी ठीक है क्योंकि इसमें यह कोशवचन प्रमाण है "हंसस्ययोषिद्वरटा सारसस्य तु लक्ष्मणा।" यहाँ छेकानुप्रास अलंकार है "छेको व्यञ्जनसङ्घसस्य सकृत्साम्य मनेधा "दर्पण"। अम्बुरुहेति—कमलों के मकरन्द पान से मत्त वरटा वहाँ कोलाहल कर रहीं थीं—वरटा हंसयोषित्। अनेकेति—जलचर=नक्र मत्स्य आदि जल जन्तु, पतङ्गशत=सैकड़ों पक्षी, इनके गमनागमन से चञ्चल अतएव मुखरित, वीचि=लहर, माला-पंक्ति-समूह। यहाँ भी छेकानुप्रास है। अनिलेति—वायु से समुत्थापित महातरंगों के शीतल जलकणों के गिरने से मेघाच्छन्न दुर्दिन जैसा हो गया था, यहाँ वृत्यनुप्रास है। ●

**अशङ्कितावतीर्णाभिररूभः क्रीडारागिणीभिः स्नानसमये वनदेवताभिः केशपाशकुसुमैः सुरभीकृतम्, एकदेशावतीर्ण मुनिजनापूर्यमाण कमण्डलुकलजलध्वनिमनोहरम्, उन्मिषदुत्पलवनमध्यचारिभिः सवर्णतया रसितानुमेयैः**

कादम्बकदम्बकैरासेवितम्, अभिषेकावतीर्णपुलिन्दराजसुन्दरीकुच चन्दन-धूलिधवलिततरङ्गम्, उपान्तजातकेतकीरजः पटलबद्धकूलपुलिनम्, आसन्ना-श्रमागततापसक्षालितार्द्र वल्कलकषाय पाटलतटजलम्, उपतटविटपिपल्ल-वानिलवीजितम्........।

शब्दार्थ—अशङ्कितावतीर्णाभिः=(निर्जन प्रदेश होने के कारण) शङ्कारहित होकर जल में प्रवेश करने वाली, अम्भः क्रीडारागिणीभिः=जलक्रीडा में अनुराग रखने वाली, वनदेवताभिः=वनदेवियों द्वारा, केशपाश कुसुमैः=केशपाशों में लगे पुष्पों से, सुरभितम्=सुगन्धित, एकदेशावतीर्णमुनिजनापूर्यमाणकमण्डलुकलजलध्वनिमनोहरम् =(सरोवर के) एक भाग में उतरे हुए मुनिजनों द्वारा भरे जाते हुए (आपूर्यमाण) कमण्डलुओं के अव्यक्त और मधुर (कल) जलध्वनि से मनोरम, उन्मिषदुत्पलवन-चारिभिः=खिलते हुए श्वेत कमलवन के मध्य विचरण करने वाले, सवर्णतया= एक समान दोनों का रंग होने के कारण, रसितानुमेयैः=शब्दों द्वारा ही अनुमान किये जाने योग्य न कि आँखों से देखने योग्य (कादम्बकदम्बकैः=श्वेत कल हंसों और श्वेत कमलों (उत्पल) का रंग एक समान था अतएव श्वेत कमलों में विचरण करने वाले हंस केवल बोलने पर ही जाने जा सकते थे, देखने पर नहीं) आसेवितम्=चारों ओर से सेवित अर्थात् युक्त। अभिषेकावतीर्णपुलिन्दराज सुन्दरी कुचचन्दनधूलि-धवलिततरङ्गम्=स्नान करने के लिए (अभिषेक) उतरी हुई शबरराज की कामिनियों के स्तनों पर (लगी हुई) चन्दन की धूलियों से श्वेतीकृत तरंगों वाला, उपान्तजात-केतकीरजः पटलबद्ध कूलपुलिनम्=किनारे के जल के पास (उपान्त) उगे हुए (जात) मालती पुष्पों (केतकी) के धूलिसमूहों (रजः पटल) से निर्मित (बद्ध) तटपुलिन (कूलपुलिन) वाला। अर्थात् सरोवर का तट, केतकी पुष्पों के परागसमूह की अधिकता से मानो पुलिन=जल के समीप का रेतीला भाग बन गया था) आसन्नाश्रमागततापस-क्षालितार्द्र वल्कलकषायपाटल तट जलम्=समीपवर्ती (आसन्न) आश्रमों से आये हुए तपस्वियों द्वारा धोये गये गीले वल्कलों से कषैले एवं श्वेतरक्त वर्ण के जल वाला (अर्थात् तपस्विजन तत्क्षण वृक्षों से काटकर लाये गये परिधेय वल्कलों को सरोवर के जल में धोते थे जिससे हाल ही के निर्यास के कारण उसका जल कषैला और श्वेतरक्त रंग का हो जाता था) उपतट-विटपिपल्लवानिल वीजितम्=तट के समीप (उपतट) के वृक्षों (विटपि) के पत्तों की वायु से जिस पर पंखा किया जा रहा था (वीजित)।

अनुवाद—(निर्जन स्थान होने के कारण) शंकारहित होकर जल में प्रवेश करने वाली (तथा) जलक्रीडा में अनुराग रखने वाली वनदेवियों द्वारा स्नान के समय (अपने) केशपाशों (जूड़ों में लगे) फूलों से सुगन्धित, (सरोवर के) एक भाग में उतरे हुए मुनिजनों द्वारा भरे जाते हुए कमण्डलुओं की अस्पष्ट मधुर जल ध्वनि से मनोरम, खिलते हुए श्वेत कमलों के वन में विचरण करने वाले (अतएव) एक समान रंग के

होने के कारण, केवल कूजन द्वारा ही पहचाने जाने योग्य श्वेत कलहंसों के समूहों से चारों ओर से सेवित, स्नान करने के लिए उतरी हुई शबरराज की कामिनियों के स्तनों की चन्दन धूलियों से शुभ्रीकृत तरंगों वाला, किनारे के जल के पास उगे हुए मालतीपुष्पों के धूलिसमूहों से रचित तट सैकत प्रदेश वाला, समीपवर्ती आश्रमों से आये हुए तपस्वियों द्वारा धोये गये गीले वल्कलों से कषैले, (मलिन) एवं श्वेतरक्त वर्ण के तट जल वाला, किनारे के समीप के वृक्षों के पत्तों की वायु से पंखा झला जाता हुआ..................पम्पा नामक सरोवर है।

**भावार्थ**—जलक्रीडा करने की इच्छा से जब वनदेवियाँ शंकारहित होकर सरोवर में उतरती थीं तब स्नान के समय उनके केशपाशों में लगे फूलों से सरोवर का जल सुगन्धित हो जाता था। एक ओर इस सरोवर में उतरकर जब मुनिजन अपने कमण्डलु भरते थे तब जल भरने की मधुर ध्वनि से यह मनोरम लगता था। खिलते हुए श्वेत कमलों के बीच जब श्वेत राजहंस घूमते थे तब श्वेत कमलों के समान ही रंग वाले होने के कारण ये हंस देखकर पहचाने नहीं जा सकते थे, केवल इनकी कूजन से ही इनके वहाँ अस्तित्व का पता चलता था, यह सरोवर ऐसे राजहंसों से चारों ओर से सेवित था। स्नान करने के लिए जब शबरराज की कामिनियाँ जल में उतरती थीं तब इनके स्तनों में लगे शुष्क श्वेत चन्दन की धूलियों से इस सरोवर की तरंगें श्वेतवर्ण की ज्ञात होने लगती थीं। किनारे के पास ही उगे हुए मालती के पुष्पों के पराग समूह से सरोवर का तट पुलिन अर्थात् सैकत प्रदेश सा बन जाता था। समीपवर्ती आश्रमों से आकर और तत्क्षण वृक्षों से काटकर लाये गये अतएव गीले वल्कलों को जब मुनिजन इस सरोवर में धोते थे तब गीले वल्कलों के निर्यास से इसके तट का जल कषैला (मलिन) एवं श्वेतरक्त वर्ण का हो जाता था। किनारे के पास के वृक्षों के पत्ते जब वायु से हिलते थे तो ऐसा लगता था कि मानो इस पर पंखा झला जा रहा हो।

**संस्कृत व्याख्या**—अशङ्कितावतीर्णाभिः=जनशून्यत्वेन शङ्काविरहितं यथा स्यात्तथा अशङ्कितम् अवतीर्णाः जलान्तः प्रवेशं कृतवत्यः ताभिः तथोक्ताभिः, अम्भः क्रीडारागिणीभिः—अम्भः क्रीडा जलकेलयः तासु रागिण्यः अनुरागवत्यः ताभिः तथोक्ताभिः वनदेवताभिः वनदेवीभिः स्नानसमये मज्जनकाले केशपाश कुसुमैः—केशपाशानां केशकलापानां यानि कुसुमानि पुष्पाणि तैः तथोक्तैः सुरभितम् सौगन्ध्यं प्रापितम्। एकदेशावतीर्णमुनिजनापूर्यमाण कमण्डलुकलजलध्वनिमनोहरम्=एक देशे सरोवरस्यैक भागे अवतीर्णाः अन्तः प्रवेशं कृतवन्तः ये मुनिजनाः तपस्विनः तैः आपूर्यमाणाः जलेन भ्रियमाणा ये कमण्डलवः तपस्विजनजलपात्राणि तेषाम् कलैः अस्पष्टमधुरैः जलध्वनिभिः सलिल पूरणशब्दैः मनोहरम्, मनोरमम् तथोक्तम्। उन्मिषदुत्पलवनमध्यचारिभिः=उन्मिषन्ति प्रस्फुटन्ति यानि उत्पलानि श्वेतकमलानि तेषां वनस्य मध्येऽन्तः चारिभिः गामिभिः तथोक्तैः (अतएव) सवर्णतया समानवर्ण

साहश्यतया श्वेतकमल कादम्बकदम्बकयोः समानवर्ण सादृश्येनेत्यर्थः, रसितानुमेयैः= रसितेन कूजितेन अनुमेयैः अनुमातुं शक्यैः पार्थक्येन चाक्षुषप्रत्यक्ष विषयायोग्यैरित्यर्थः तथोक्तैः, कादम्बकदम्बकैः श्वेतकलहंससमुदायैः आसेवितम् समन्तात् पर्युपासितम्, अभिषेकावतीर्ण पुलिन्दराज सुन्दरी कुचचन्दनधूलिधवलित तरङ्गगम्=अभिषेकाय मज्जनाय अवतीर्णाः जलान्तः प्रविष्टाः याः पुलिन्दराजस्य भिल्लस्वामिनः सुन्दर्यः कामिन्यः तासाम् कुचाः उरोजाः तेषां यत् चन्दनम् मलयजं तस्य धूलिभिः पांसुभिः लिप्तशुष्क चन्दनधूलिभिरित्यर्थः, धवलिता शुभ्रीकृताः तरङ्गाः ऊर्मयः यस्य तत् तथोक्तम्, उपान्तजात केतकी रजःपटल बद्धकूलपुलिनम्=उपान्ते जलसमीपे जाताः समुत्पन्नाः या केतक्यः मालत्यः मालतीपुष्पाणीत्यर्थः, तासां रजःपटलैः परागसमूहैः बद्धं विरचितम् कूले तट निकटे पुलिनं सैकतं बालुकामयं स्थानं यस्मिंस्तत् तथोक्तम्, आसन्नाश्रमागततापसक्षालितार्द्रवल्कल कषायपाटल तटजलम्=आसन्नाः समीपवर्तिनः ये आश्रमाः तपस्विजन निवासस्थानानि तेभ्यः आगताः समायाताः ये तापसाः तपस्विनः तैः क्षालितैः धौतैः आर्द्रैः जलाविलैः वल्कलैः परिधानयोगतरुत्विग्भः कषायं तुवरं (मलिनम्) पाटलम् श्वेतरक्तं च तटजलम् तीरसलिलं यस्मिन् तत् तथोक्तम् तत्क्षणं कर्तयित्वा आनयनात् तत्र निर्यासादिसत्वात् तट जलस्य तुवरत्वं पाटलत्वं च । उपतटविटपिपल्लवानिलवीजितम्=तटस्य समीपम् उपतटम् तस्मिन् उपतटे तीरसमीपे ये विटविनः तरवः तेषां पल्लवानाम् किसलयानाम् अनिलेन वायुना वीजितम् व्यजनेनेव आचरितम्—व्यजनवात इवाचरितम् इत्यर्थः यस्मिन् तत् तथोक्तम् ।

संस्कृत सरलार्थ—अशङ्कितं जलान्तः प्रविष्टाभिः जलकेल्यनुरागवतीभिः वनदेवीभिः मज्जनकाले स्वकीय केशपाशसुमनोभिः सौगन्ध्यं प्रापितम्, सरोवरस्यैकभागे जलावतीर्ण मुनिजनानां जलेन भ्रियमाणकमण्डलूनां मधुरास्फुट जलध्वनिभि मनोरमम्, प्रस्फुटतां श्वेतकमलानां मध्ये विचरणशीलैः समानवर्णसादृश्यतया केवलं कूजितेनैवानुमातुं शक्यैः श्वेतकलहंसैरासमन्तात् पर्युपासितम्, स्नानार्थं जलान्तः प्रविष्टानां भिल्लराजसुन्दरीणां कुचलग्न शुष्क चन्दनपांसुभिः शुभ्रीकृततरङ्गमालम्, तटसमीपोत्पन्न मालती कुसुमानां रजः समूहेन विरचिततटसैकतम्, समीपवर्त्याश्रमेभ्यः समागततपस्विभि धौतार्द्रवल्कलैः कषायश्वेतरक्ततीरसलिलम् तटसमीपोपजात तरुकिसलय वायुना यत्र व्यजनवात इवाचरितमासीत् । एवम्भूतं पम्पाभिधानं पद्मसरो विद्यते ।

टिप्पणी :—अशङ्कितेति—वनदेवियाँ यह जानकर कि यह स्थान जनसञ्चार रहित है निःशंक जल में प्रवेशकर जलक्रीडा कर रही थीं जिससे उनके केशों में लगे पुष्पों से सरोवर का जल सुगन्धित हो गया था । एकदेशेति—एक ओर जल में उतरकर जब मुनिजन अपने कमण्डलुओं में जल भरते थे तो जल भरने की मधुर ध्वनि से वह सुन्दर प्रतीत होता था । उन्मिषदिति—खिलते हुए श्वेतकमलों के बीच कलहंस घूमते थे तो एक समान रंग के कारण वे कमलों से पृथक् दिखाई नहीं

कड़ते थे अतः कूजन से ही उनके वहाँ अस्तित्व का पता लगता था। "कादम्बः कलहंसः स्यात्, स्त्रियां तु संहतिवृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम्" इत्यमरः। **आसेवितम्** = समन्तात् उपासितम्। **रसितानि**—कूजितानि तैः अनुमातुं योग्यास्तैः अनुमेयैः। यहाँ वस्तु से मीलितालंकार ध्वनि है "मीलित वस्तुनो गुप्तिः केनचित्तुल्य लक्ष्मणा"। **धवलिततरङ्गम्**—जब शबरराज प्रमदायें स्नानार्थ जल में प्रवेश करती थीं तब उनके स्तनों में लगे शुष्क चन्दन के पराग से सरोवर का जल श्वेत तरंगों वाला हो जाता था। चन्दन पराग से तरंगों के धवलित होने में सम्बन्धाभावेऽपि तत्सम्बन्ध लक्षणा अतिशयोक्ति है। **बद्धकूलपुलिनम्**—किनारे के पास बालुकामय स्थान को सैकत या पुलिन कहा जाता है, सरोवर के तट के समीप के मालती पुष्पों के रजःकणों से वह तट सैकत प्रदेश जैसा बना दिया गया था, इस कथन में भी अतिशयोक्ति ही है "तोयोत्थितं तत्पुलिनं सैकतं सिकतामयम्" इत्यमरः। **आसन्नेति**—आसन्न अर्थात् समीपवर्ती आश्रमों से आकर मुनिजन जब इस सरोवर के जल में अपने नये काटकर ले आये गये वल्कलों को धोते थे तब सरोवर के तट का जल कषायित एवं पाटल वर्ण का हो जाता था क्योंकि उसमें से इस समय निर्यास आदि निकलता था "कषायः सुरभौ रसे रागवस्तुनि निर्यासे क्रोधादिषु विलेपने" श्वेतरक्तस्तु पाटलः इत्यमरः। वीजित अर्थात् जिस पर पंखा झला जा रहा था। ●

**अविरल तमाल वीथिकान्धकारिताभिः वालि निर्वासितेन संचरता प्रतिदिनमृष्यमूक वासिना सुग्रीवेणावलुप्त फललघुलताभिः, उदवासितापसानां देवतार्चनोपयुक्त कुसुमाभिः उत्पतज्जलचरपतङ्गपक्षपुट विगलित जलबिन्दुसेक सुकुमारकिसलयाभिः, लतामण्डपतल शिखण्डिमण्डलारब्ध ताण्डवाभिः, अनेक कुसुमपरिमलवाहिनीभिर्वनदेवताभिः स्वश्वासवासिताभिरिव वनराजिभिरुपरुद्धतीरम्, अपरसागरशाङ्किभिः सलिलमादातुमवतीर्णै जलधरैरिव वहलपङ्कमलिनैर्वनकरिभिरनवारतापीयमानसलिलम्, अगाधमनन्तमप्रतिमम् अपां निधानं पम्पाभिधानं पद्मसरः। अस्ति। यत्र च विकच कुवलयप्रभाश्यामायमान पक्ष पुटान्यद्यापि मूर्तिमद्रामशापप्रस्तानीव मध्यचारिणामालोक्यन्ते चक्रवाकनाम्नां पक्षिणां मिथुनानि।**

शब्दार्थ—अविरलतमालवीथिकान्धकारिताभिः=सघन (अविरल) तमाल वृक्षों की पंक्तियों से (तमाल वीथिका), अन्धकारिताभिः=अन्धकारमय की गईं। (यहाँ आगे के सभी तृतीयान्त बहुवचन स्त्रीलिंग पद 'वनराजिभिः' इस अग्रिम पद के विशेषण हैं। बालिनिर्वासितेन=वालि द्वारा (इन्द्रपुत्र वानराधिपति वालि) राज्य से निष्कासित (अतएव) प्रतिदिन, सञ्चरता=वहाँ आने वाले, ऋष्यमूकवासिना= ऋष्यमूक नामक पर्वत पर रहने वाले, सुग्रीवेण=वालि के अनुज सुग्रीव के द्वारा, अवलुप्त फल लघुलताभिः=तोड़े गये फलो वाली (फलतः फलभार से रहित होने के कारण), लघु=हल्की लताओं वाली, उदवासितापसानाम्=तप करने के लिये जल

में वास करने वाले (उदवासि) तपस्विजनों के लिये, देवतार्चनोपयुक्त कुसुमाभिः= देवताओं की पूजा (अर्चना) के लिये आवश्यक (उपयुक्त) फूलों वाली, उत्पतज्जलचर पतङ्गपक्ष पुटविगलित जलविन्दु सेक सुकुमार किसलयाभिः=उत्पतत्=उड़ कर जाते हुये, जलचारी पक्षियों के (जलचर पतङ्ग) पंख पुटों से (पक्ष पुट) झड़े हुए (विगलित) जल बिन्दुओं के सिञ्चन (सेक) से सुकोमल पल्लवों वाली, लतामण्डपतल शिखण्डि मण्डलारब्ध ताण्डवाभिः=जिनके लता मण्डपों के नीचे (तल) मयूर मण्डल (शिखण्डि मण्डल) नाच कर रहा था । अर्थात् लता मण्डपों के नीचे मयूरों द्वारा किये गये नृत्यों वालीं, (आरब्ध ताण्डवा) अनेक कुसुम परिमल वाहिनीभिः=अनेक प्रकार के फूलों की सुगन्धि (परिमल) को धारण (वाहिनी) करने वालीं, वनदेवताभिः=मानो वनदेवियों द्वारा, चश्वासवासिताभिः=अपने श्वासों से सुगन्धित (परिमल) को धारण (वाहिनी) करने वालीं, वन देवताभिः=मानो वनदेवताभिः=मानों वन देवियों द्वारा, स्वश्वास-वासिताभिः=अपने श्वासों से सुगन्धित (वासित) की गई सी, वनराजिभिः=वन पंक्तियों द्वारा, उपरुद्ध तीरम्=घिरे हुए (उपरुद्ध) किनारों वाला, अपर सागर शङ्किभिः=दूसरे (अपर) समुद्र की शंका (भ्रम) करने वाले (अतएव) जलम् आदान्तुम् अवतीर्णैः जलधरैः इव=जल लेने के लिये (आदातुम) उतरे हुए मेघों जैसे, वहल-पङ्कमलिनैः=(शरीर में लगे हुए) अत्यधिक कीचड़ से मैले, वनकरिभिः=जंगली हाथियों द्वारा, अनवरता-पीयमान सलिलम्=लगातार (अनवरत) पूर्ण रूप से पिये जाते हुए (आपीयमान) जलों वाला, अगाधम् अनन्तम् अप्रतिमम्=अगाध अनन्त और अद्वितीय, अपां निधानम्=जलों का (अपाम्) आकर, पम्पाभिधानम्=पम्पा नामक, पद्मसरः=कमल सरोवर । यत्र च=और जहाँ सरोवर पर, विकच कुवलय प्रभा श्यामायमान पक्ष पुटानि=विकसित (विकच) नील कमलों (कुवलय) की कान्तियों (प्रभा) से नीले से प्रतीत होते हुए (श्यामायमान) पंखों वाले, मध्यचारिणाम्= (सरोवर के) बीच घूमने वाले, चक्रवाक नाम्नाम्=चक्रवाक नामक, पक्षिणां=पक्षियों के, मिथुनानि=जोड़े, अद्यापि=अब भी, मूर्तिमद्रामशाप ग्रस्तानि इव आलोक्यन्ते= राम के मूर्तिमान शाप से ग्रस्त जैसे (लोगों द्वारा) देखे जाते हैं ।

अनुवाद—सघन तमाल वृक्षों की श्रेणियों द्वारा अन्धकारमय कर दी जाने वालीं, वालि द्वारा निष्कासित (अतएव) प्रतिदिन वहाँ आने वाले, ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले सुग्रीव के द्वारा तोड़े गये फलों वालीं अतएव हल्की लताओं वालीं, (तप के लिए) जल में वास करने वाले तपस्वियों के लिए, देवपूजनार्थ आवश्यक फूलों वालीं, उड़कर जाते हुए जलचारी पक्षियों के पंखों से झड़े हुए जल के बूँदों के सिञ्चन से सुकोमल पल्लवों वालीं लतामण्डपों के नीचे मयूरों द्वारा नृत्य किये जाने वालीं, अनेक प्रकार के फूलों की सुगन्धि को धारण करने वालीं मानो वनदेवियों द्वारा अपनी श्वासों से सुगन्धित की गईं सी, वनश्रेणियों द्वारा घिरे हुए किनारों वाला, दूसरे समुद्र का भ्रम करने वाले (अतएव) जल लेने के लिए उतरे हुए मेघों

के समान, अत्यधिक कीचड़ से मैले जंगली हाथियों द्वारा पूर्णतः पिये जाते हुए जलों वाला, अथाह अनन्त एवं अद्वितीय पम्पा नामक कमल सरोवर (है) और जिस सरोवर में खिले हुए नील कमलों की कान्तियों से नीलवर्ण जैसे प्रतीत होने वाले पंख वाले, (सरोवर के) बीच घूमने वाले चक्रवाक नामक पक्षियों के जोड़े अब भी राम के मूर्तिमान् शाप से ग्रस्त जैसे (लोगों द्वारा) देखे जाते हैं।

**भावार्थ**—पम्पा सरोवर के किनारे वन श्रेणियों से घिरे हुए हैं, ये वनपंक्तियां सघन तमाल वृक्षों द्वारा अन्धकारमय दिखाई पड़ती हैं। वाली द्वारा निष्कासित सुग्रीव ने यहाँ के वन के फल तोड़ लिये थे अतएव इनकी लतायें फलों के बोझ से रहित होने के कारण हल्की हो गई हैं। तप के लिए जलवास करने वाले तापसों की देव-पूजा के लिए इनमें उपयुक्त फूल लगते हैं, जलचर पक्षी जब सरोवर के जल से उड़ते हैं तो इसके भीगे पंखों से गिरने वाली जल की बूंदों से इन वनश्रेणियों के पत्ते कोमल हो गये हैं। इनके लतामण्डपों के नीचे मयूर नाचा करते हैं। इनमें अनेक प्रकार के फूलों को सुगन्धि भरी रहती है, ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वनदेवियों ने इनको अपनी श्वासों से सुगन्धित कर दिया हो। अतिविस्तृत इस सरोवर को देखकर जल भरने के लिए आये हुए मेघों के समान सघन कीचड़ से सने हुए जंगली हाथी इसका जल पिया करते हैं। यह आकार में अतिविस्तृत अथाह एवं अद्वितीय है, इस सरोवर में नीलकमल खिलते हैं और इसमें चक्रवाक पक्षियों के जोड़े भी घूमते रहते हैं, अतः नीलकमलों की नीली कान्ति से इनके पंख नीले से प्रतीत होते हैं, चक्रवाक पक्षी रात में जोड़े में न रहकर पृथक-पृथक रहते हैं कवि की उत्प्रेक्षा है कि मानो राम के द्वारा इनको दिया गया शाप मूर्तिमान होकर इनमें देखा जा सकता है, यह बात आज भी इन पक्षियों में सभी लोगों द्वारा दृष्टिगत होती है।

**संस्कृत व्याख्या**—अविरलतमालवीथिकान्धकारिताभिः—अविरलाः सघनाः याः तमालानां तापिच्छवृक्षाणाम् वीथिकाः पङ्क्तयः ताभिः अन्धकारिता कृतान्धकारा-स्ताभिः तथोक्ताभिः। वालिनिर्वासितेन=वालिना इन्द्रपुत्रेण वानरराजेन निर्वासितः राजधानीतो निष्कासितः तेन तथोक्तेन, सञ्चरता=तत्रागच्छता, सुग्रीवेण=एतदाख्येन वाल्यनुजेन, प्रतिदिनम् प्रत्यहम्, ऋष्यमूकवासिना—ऋष्यमूकाख्य गिरिनिवासिना, अवलुप्तफललघुलताभिः=अवलुप्तानि त्रोटितानि दूरीकृतानि वा फलानि याभ्यस्ताः अतएव लघ्व्यः लताः यासु ताभिः तथोक्ताभिः, उदवासितापसानाम्=उदके जले वसन्तीति उदवासिनः ते च ते तापसाः तपस्विनः तेषाम, तपस्यार्थं जलवासितपस्विनाम्, देवार्चनोपयुक्तकुसमाभिः=देवानामर्चनाय उपयुक्तानि आवश्यकानि कुसुमानि पुष्पाणि यासां ताभिः तथोक्ताभिः, उत्पतज्जलचरपतङ्ग पक्षपुट विगलित जलबिन्दुसेक सुकुमार किसलयाभिः=उत्पतन्तः उत्पत्य गच्छन्तः ये जलचरपतङ्गा जलचारिपक्षिणः तेषां पक्षपुटेभ्यः विगलिताः अधश्च्युता ये जलबिन्दवः जलकणाः तेषां सेकेन सिञ्चनेन

सुकुमाराणि अतिकोमलानि सरसाणि च किसलयानि पल्लवानि यासु ताभिः तथोक्ताभिः, लतामण्डपतलशिखण्डिमण्डलारब्धताण्डवाभिः=लतानां ये मण्डपाः पत्रपुष्पसमाच्छादितस्थानानि तेषां तले अधः प्रदेशे शिखण्डिनाम् मयूराणां मण्डलानि समूहास्तैः आरब्धं प्रवर्तितं ताण्डवं नृत्यं यासु ताः ताभिः तथोक्ताभिः, अनेककुसुमपरिमलवाहिनीभिः—अनेकेषां विविधप्रकाराणां कुसुमानां पुष्पाणां परिमलान् गन्धान् वहन्ति धारयन्तीत्येवंशीलास्ताभिः तादृशीभिः, (अतएव) वनदेवताभिः—वनाधिष्ठातृदेवीभिः, स्वश्वासवासिताभिः—स्वश्वासैः स्वकीयश्वासानिलैः वासिताः सौगन्ध्यं प्रापिताः ताभिः तथोक्ताभिः इव, वनराजिभिः=काननश्रेणीभिः, उपरुद्धतीरम्=उपरुद्धं परिवृतं तीरं तटं यस्य तत् तादृशम्। अपरसागरशङ्किभिः 'अयमपरो भिन्नः सागरः' इति शङ्कां भ्रमं जनयद्भिः तथोक्तैः अतएव सलिलम् जलम् आदातुम् ग्रहीतुम् अवतीर्णैः आकाशाज्जल समीपमुत्तरितैः जलधरैः; मेघैः इव, बहलपङ्कमलिनैः=बहलपङ्कैः शरीरलिप्तसघनकर्दमैः मलिनाः श्यामवर्णाः तैः तथोक्तैः वनकरिभिः वनगजैः, आपीयमान सलिलम्=आसमन्तात् पीयमानं सलिलम् जलं यस्य तत् तथोक्तम्, अगाधम्=अलब्धतलम्, अनन्तम्=शेषविरहितम्, अप्रतिमम् अद्वितीयम्, अपाम्=जलानाम्, निधानम्=शेवधिस्वरूपम्, पम्पाभिधानम्=पम्पेति अभिधानं नाम यस्य तत् तादृशम्, पद्मसरः=कमलकासारः। यत्र च=यस्मिन् पम्पासरसि च, विकचकुवलयप्रभाश्यामायमानपक्षपुटानि=विकचानि यानि कुवलयानि नीलकमलानि तेषां प्रभाभिः कान्तिभिः श्यामायमानानि श्यामवदाचरन्ति (सन्निकटसञ्चरणवशात्) पक्षपुटानि येषान्तानि तथोक्तानि, मध्यचारिणाम्=सरोवरान्तः सञ्चरणशीलानाम्, चक्रवाकनाम्नाम्—चक्रवाकाभिधेयानाम् पक्षिणाम् मिथुनानि युगलानि, अद्यापि=इदानीमपि, मूर्तिमद्रामशापग्रस्तानीव=मूर्तिमान्-स्वरूपधारी यः रामस्य शापः तेन ग्रस्तानि परिग्रहीतानि इव आलोक्यन्ते दृश्यन्ते लोकैरिति।

संस्कृत सरलार्थ—सघन तमालतरूणां पङ्क्तिभिः कृतान्धकाराभिः, स्वाग्रजेन वालिना निष्कासितेन अतएव प्रत्यहं तत्रागच्छता ऋष्यमूकगिरिनिवासिना सुग्रीवेण त्रोटितफलत्वाल्लघूकृतलताभिः, तपस्यार्थं जलवास तत्पराणां तपस्विनां देवार्चनावश्यकपुष्पवतीभिः, समुत्पत्य गच्छतां जलचारिपक्षिणां पक्षपुटेभ्यश्च्युतजलबिन्दूनां सिञ्चनेन मृदुलपल्लवाभिः, पत्रपुष्पसमाच्छादितानां लतामण्डपाना मधस्तले मयूरमण्डलेन प्रवर्तितनृत्याभिः, बहुप्रकट पुष्पगन्धधारिणीभिः अतएव वनदेवीभिः स्वश्वासानिलेन सौगन्ध्यं प्रापिताभिः इव वनश्रेणीभिः परिवृततटम्, अयमपरो जलनिधिरिति भ्रमधारिभिः अतएव सलिलं गृहीतुं गगनतलादुत्तरितैर्मेघैरिव, शरीरानुलिप्तात्यधिककर्दममलिनैर्वन्यगजैरासमन्तात् पीयमानजलम्, अप्राप्ततलम् शेवधिरहितं जलानां शेवधिस्वरूपम् पम्पेत्याख्यातं कमलसरोऽस्ति। यस्मिंश्च सरसि विकसितनीलोत्पलानां कान्तिभिः श्यामायमान पक्षपुटानि सरोवरान्तः सञ्चारिणां चक्रवाक संज्ञकानां पक्षिणां युगलानि इदानीमपि मूर्तिधारिणा शापेन गृहीतानीव लोकैरा लोक्यन्ते।

टिप्पणी—अविरलेति—तमालवीथिका=तापिच्छ नामक वृक्षों की पंक्ति "कालस्कन्धस्तमालः तापिच्छोऽपि" वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिः श्रेणी" इत्यमरः। सुग्रीवेणेति—वालि और सुग्रीव के विषय में रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में एक कथा है कि दोनों ही इन्द्रपुत्र थे, एक बार वाली और सुग्रीव के साथ एक मायावी नामक असुर का घोर संग्राम हुआ, इन दोनों के तीक्ष्ण प्रहारों से व्याकुल होकर असुर एक बिल द्वार से नीचे चला गया, तब वाली ने सुग्रीव से कहा कि तुम इसी बिल द्वार पर ठहरकर मेरी प्रतीक्षा करो तब तक मैं इसे मारकर आता हूँ, यह कह वह बिल में प्रविष्ट हो गया, बहुत समय तक प्रतीक्षा करने के बाद सुग्रीव ने बिलमुख से रक्त की धार निकलती हुई देखी, जिससे उसने सोचा कि असुर ने वाली को मार डाला है, अतएव वह बिल द्वार पर एक भारी शिला रखकर और किष्किन्धा में आकर वाली के राज्य पर शासन करने लगा। कुछ समय बाद जब वाली असुर को मारकर उसी मार्ग से लौटा और बिल द्वार को शिला से आच्छादित पाकर और सुग्रीव को राज्य करता देखकर क्रोधित हुआ और उसे राज्य से बाहर निकाल दिया, फलतः सुग्रीव दुखी होकर ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगा।

उदवासीति—उदके वसन्तीत्यर्थे उदक+वस+णिनि, उदकस्योदादेशः उदवासिनः ते च ते तापसाः। लतामण्डपेति—शिखण्डिनः मयूराः, ताण्डवम्=नृत्यम् ताण्डवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्तने इत्यमरः, वाक्येऽस्मिन् वृत्त्यनुप्रासः। अनेकेति—परिमलः=गन्धः "विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे" इत्यमरः, वासिताभिरिवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा। जलधरैरिवेत्यत्रापि उत्प्रेक्षा शापग्रस्तानीवेत्यत्र वाच्या क्रियोत्प्रेक्षा। कहा जाता है कि पम्पासरोवर पर सीता के विरह में विकल राम को देखकर चक्रवाक पक्षी उन पर हँसे थे, इस पर राम ने उन्हें रात में वियुक्त रहने का शाप दिया था, फलतः वे आज भी रात में वियुक्त रहते हैं। ●

## शाल्मलीतरु वर्णनम्

तस्यैव पम्पसरसः पश्चिमे तीरे राघवशरप्रहार जर्जरितजीर्णतालतरुषण्डस्य च समीपे दिग्गजकरदण्डानुकारिणा जरदजगरेण सततमावेष्टितमूलतया बद्धमहालवाल इव तुङ्गस्कन्धावलम्बिभिरनिलवेल्लितै रहिनिर्मोकै र्धृतोत्तरीय इव दिक्चक्रवालपरिमाणमिव गृह्णता भुवनान्तरालविप्रकीर्णेन शाखासंचयेन प्रलयकालताण्डव प्रसारितभुजसहस्रमुडुपतिशेखरमिव विडम्बयितुमुद्यतः पतनभयादिव वायुस्कन्धलग्नः निखिलशरीरव्यापिनीभि रतिदूरोन्नताभि र्जीर्णतया शिराभिरिव परिगतो व्रततिभिः.....................शाल्मलीवृक्ष।

शब्दार्थ—तस्यैव च पद्मसरसः=और उसी कमल सरोवर के, पश्चिमे तीरे=पश्चिमी किनारे पर, राघवशरप्रहारजर्जरित जीर्णतालतरुषण्डस्य समीपे=राम के, बाण के प्रहार से विदारित (जर्जरित) पुराने (जीर्ण) तालतरुषण्डस्य=ताड़ वृक्षों के समूह के पास, दिग्गजकरदण्डानुकारिणा=दिग्गज के सूँड (करदण्ड) का अनुकरण करने वाले अर्थात् सूँड के समान, जरदजगरेण=वृद्ध (जरत्) अजगर सांप के द्वारा, सततम् आवेष्टितमूलतया=निरन्तर लपटी हुई जड़ों वाला होने के कारण, आवद्ध-महालवाल इव=मानो जिसका बहुत बड़ा थाल्हा बना दिया गया हो, तुङ्गस्कन्धावलम्बिभिः=ऊँचे तरुशाखास्कन्धों (१ प्रकाण्ड २ कन्धे) पर लटकती हुई, अनिल-वेल्लितैः=वायु द्वारा हिलाई गई, (वेल्लित), अहिनिर्मोकैः=सर्पों के केंचुलियों (निर्मोक) से, धृतोत्तरीय इव=मानो डुपट्टा (उत्तरीय) धारण किए हुए सा, दिक्-चक्रवालपरिमाणम्=दिङ्मण्डल (दिक्चक्रवाल) के परिमाण अर्थात् विस्तार की नाप को, गृह्णता इव=ग्रहण करते हुए से, भुवनान्तरालविप्रकीर्णेन=संसार के मध्यभाग (अन्तराल) तक फैले हुए, अन्तरिक्ष में विस्तृत, शाखासंचयेन=शाखा अथवा लतासमूह से, प्रलयकाल ताण्डवप्रसारितभुजसहस्रम्=प्रलयकाल में हजारों भुजायें फैलाये हुए, उडुपति शेखरम्=चन्द्रशेखर शिव को, विडम्बयितुम्=अनुकरण करने के लिए, उद्यतः इव=प्रस्तुत सा, पुराणतया पतनभयादिव=प्राचीनता के कारण गिरने (पतन) के भय से मानो, वायुस्कन्धलग्नः=वायु जिसके प्रकाण्डों पर लगा हुआ था अर्थात् वह गिरने के डर से मानो कांप रहा था। (किन्हीं टीकाकारों ने 'वायु के कन्धे पर लगा हुआ था जिससे कि वह गिरने से बच सके' यह व्याख्या की है, पर गिरने वाला वायु का सहारा कभी नहीं लेता पर्वतादि का ही लेता है, अतः यह व्याख्या उचित नहीं जान पड़ती। पतन के भय से कांपना ही स्वाभाविक है, प्रकाण्डों में वायु लगने से वृक्ष हिलते ही हैं अतः वायु वेग से कांपना ही प्रसंगानुसार अर्थ है, निखिलशरीरव्यापिनीभिः=सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त कर लेने वाली, जीर्णतया=बुढ़ापे के कारण, अतिदूरोन्नताभिः=अत्यन्त उभरी हुई, शिराभिः=नाड़ियों या नसों जैसी बहुत ऊपर चढ़ी हुई, वृततिभिः=लताओं द्वारा, परिगतः=व्याप्त।

अनुवाद—उसी कमल सरोवर के पश्चिमी किनारे पर राम के बाण प्रहार से विदारित पुराने ताड़ वृक्षों के समूह के पास, दिग्गज के सूँड के समान (विशाल) वृद्ध अजगर सांप के द्वारा निरन्तर लपटी हुई जड़ों वाला होने के कारण मानो जिसका बहुत बड़ा थाल्हा बना दिया गया हो, ऊँचे प्रकाण्डों पर लटकती हुई वायु द्वारा हिलाई गई सर्प केंचुलों से मानो उत्तरीय धारण किये हुए सा, दिङ्मण्डल के विस्तार की नाप को ग्रहण करते हुए से, अन्तरिक्ष में विस्तृत, शाखा अथवा लता समूह द्वारा, मानो प्रलयकाल में हजारों भुजायें उठाये हुए चन्द्रशेखर शिव का अनुकरण करने के लिए उद्यत सा, पुरातन होने के कारण गिरने के भय से मानो वायु जिसके प्रकाण्डों पर लगा हुआ था अर्थात् वह कांप रहा था। सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त कर

लेने वाली बुढ़ापे के कारण अत्यधिक उभरी हुई शिराओं अथवा नाड़ियों जैसी बहुत ऊपर चढ़ी हुई लताओं द्वारा (चारों ओर से) घिरा हुआ। (शाल्मली वृक्ष है)।

**भावार्थ**—उसी कमल सरोवर के पश्चिमी किनारे पर राम के बाण प्रहार से विदीर्ण ताड़ के वृक्षों के समूह के समीप, एक पुराना शेमल का वृक्ष था। उसकी जड़ों के चारों ओर दिग्गजों के सूँड के समान विशाल बूढ़ा अजगर सर्प निरन्तर लपटा रहता था जिससे ऐसा ज्ञात होता था कि उसकी जड़ों के आस-पास किसी ने बड़ी क्यारी बना दी हो। उसके ऊँचे प्रकाण्डों पर लटकी हुई और वायु द्वारा हिलाई गई सर्पों की केँचुली ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो पेड़ के कंधों पर पड़ा हुआ और हवा से हिलता हुआ उसका डुपट्टा लहरा रहा हो। दिशा मण्डल के विस्तार की नाप के समान आकाश मण्डल तक फैली हुई अपनी शाखाओं को ऊपर उठाये हुए वह ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह प्रलयकाल में अपनी हजारों भुजाओं को फैलाये हुए भगवान् शंकर का अनुकरण करने के लिए उद्यत हो रहा है। पुराना होने के कारण गिरने के डर से मानो वह अपने प्रकाण्डों में लगे वायु से कांप रहा हो। ऊपर दूर तक चढ़ी हुई लताओं से वह चारों ओर से घिरा हुआ था अत: ऐसा प्रतीत होता था कि मानो बुढ़ापे के कारण उसके समस्त शरीर को व्याप्त कर लेने वाली और अत्यधिक उभरी हुई अपनी नाड़ियों से वह घिरा हुआ हो।

**संस्कृत व्याख्या**—**तस्यैव च पद्मसरसः**=पूर्वोक्तस्य तस्यैव पम्पाभिधानस्य कमल सरोवस्य, **पश्चिमे तीरे**=पश्चिमदिग्वर्तिनि तटे, **राघवशरप्रहार जर्जरितजीर्ण-तालतरुषण्डस्य समीपे**=राघवस्य रामचन्द्रस्य ये शरा: बाणाः तेषां प्रहारेण जर्जरितानां विदारितानां जीर्णानां पुरातनानां तालतरुणाम् तालवृक्षाणाम् षण्डस्य समूहस्य तयोक्तस्य, समीपे, (महान् जीर्णः पुरातनः शाल्मली वृक्षः रोचनसंज्ञकस्तरुरस्ति) इति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः, अत्र प्रथमैकवचनान्तपदानि वक्ष्यमाणस्य शाल्मलीवृक्षस्य विशेषणानि) **दिग्गजकरदण्डानुकारिणा**=दिग्गजस्य यः करदण्डः शुण्डादण्डः तमनुकर्तुं शीलमस्य स तेन तथोक्तेन शुण्डादण्डतुल्यविशालेनेत्यर्थः। **जरदजगरेण**=जरन् वद्धतां प्राप्तो यः अजगरः अजगरेत्याख्यातः विशालसर्पः तेन तथोक्तेन, सततम्-निरन्तरम् आवेष्टितं परि-वेष्टितं यन्मूलं मूलस्थलभागः तस्यभावस्तत्तातया=आवेष्टितमूलतया, **बद्धमहालवालः इव**=बद्ध विरचितम् महत् दीर्घम् आलवालम् आवापः यस्य सः तथोक्तः इव, सलिल-पूत्यर्थं बद्धपरिवेष्टिनमित्यर्थः। **तुङ्गस्कन्धावलम्बिभिः**=तुङ्गम् अत्युन्नतम् स्कन्धं वृक्ष प्रकाण्डभागं अंसभागञ्च अवलम्बितुं शीलं येषान्ते तैः तथोक्तैः प्रकाण्डभाग-माश्रित्याधोऽवलम्बनशीलैरित्यर्थः, **अनिलवेल्लितैः**=वायुसञ्चालितैः, **अहिनिर्मोकैः**=सर्पकञ्चुलैः, **धृतोत्तरीयः इव**=परिधृतोपसंव्यानवस्त्र इव। **दिक्चक्रवालपरिमाणं गृह्णता इव**=दिक्चक्रवालस्य दिङ्मण्डलस्य परिमाणम् विस्तारमापं तयोक्तम्, गृह्णता कुर्वता इव, **भुवनान्तरालविप्रकीर्णेन**=भुवनानाम् अन्तरालं मध्यभागस्तत्र विप्रकीर्णेन परितः पर्यस्तेन तथोक्तेन, **शाखासञ्चयेन**=शाखानां सञ्चयः सन्दोहस्तेन

तथोक्तेन, प्रलयकालताण्डवप्रसारितभुजसहस्रम्=प्रलयकाले कल्पान्ते यत् ताण्डवं शिवकृतोद्धतनृत्यन् तत्र प्रसारितम् ऊर्ध्वीकृत्य सर्वतः पर्यस्तं भुजानां सहस्रं बाहुसहस्रं येन तम् तथोक्तम्, उडुपतिशेखरम्=उडुपतिस्तारापतिः चन्द्रः सोऽस्ति शेखरे यस्य, शेखरो मस्तकालङ्कारो यस्य वा, तम्-उडुपतिशेखरम् शिवम्, विडम्बयितुम् अनुकर्तुम्, उद्यतः प्रस्तुतः इव । पुराणतया प्राचीनतया, पतनभयात्—अधः पातभयात्, इव, वायुस्कन्धलग्नः=वायुः पवनः स्कन्धे प्रकाण्डे लग्नः यस्य सः तथोक्तः अनेन तस्य प्रकाण्डेषु वायुवेगवशात् प्रकम्पः सूचितः वृद्धत्वे वातव्याधिना प्रकम्पो जायत एव, फलतोऽधः पातो विनाशो वा सम्भवत्येव । निखिलशरीरव्यापिनीभिः=निखिलं समस्तं शरीरं व्याप्तुं शीलं यासां ताभिः तथोक्ताभिः, जीर्णतया—पुरातनतया वृद्धावस्थया वा, अतिदूरोन्नताभिः—अतिदूरमुत्थिताभिः, शिराभिः अस्थिबन्धनैः इव, वृततिभिः—वल्लीभिः, परिगतः परिवेष्टितः । (एवम्भूतः शाल्मलीवृक्षोऽस्ति) ।

**संस्कृत सरलार्थ**—पूर्वोक्तस्य तस्यैव पम्पाभिधानस्य कमल सरोवरस्य पश्चिमदिग्वर्तिनि तटे, रामबाणप्रहार विदारितानां जीर्णतालवृक्षाणां समूहस्य समीपे, (महान् जीर्णः शाल्मलीवृक्षोऽस्ति) यश्च दिग्गजशुण्डादण्डवद्विशालेन वृद्धेन अजगरसर्पेण निरन्तरम् परिवेष्टितमूलस्थलभागतया विरचितदीर्घालवाल इव प्रतीयते स्म । अत्युन्नतप्रकाण्डभागमाश्रित्याधोऽवलम्बनशीलैर्वायुवेगसञ्चालितैः सर्पकञ्चुलैः परिधृतोत्तरीयवस्त्र इवालक्ष्यते स्म । दिङ्मण्डलविस्तारमापन्नं कुर्वतेव भुवनान्तराल पर्यस्तेन शाखासमूहेन कल्पान्तकाले स्वकीयोद्धतनृत्ये विस्तारित बाहुसहस्रम् चन्द्रशेखरं शिवमनुकर्तुं कृतप्रयत्न इव प्रतीयते स्म । पुरातनतया चाधः पातशङ्कयेव वायुप्रकाण्डलग्नः, एवं समस्त शरीर व्यापनशीलाभिः अत्युत्थिताभिः शरीरास्थिबन्धनैरिव प्रतीयमानाभिर्लताभिः परिवेष्टित इव प्रतीयते स्म ।

**टिप्पणी**—राघवेति=रामायण की कथानुसार वाली द्वारा निष्कासित और ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले सुग्रीव की जब हनुमान से मित्रता हो गई तब उसने वाली से अपने अपमान का बदला लेने के लिए उसके वध का उपाय सोचा, इसी बीच सीता हरण से दुखी राम की भेंट हनुमान से हुई और हनुमान द्वारा राम ने सुग्रीव से भी मित्रता स्थापित की, तब दोनों ने उन्हें सीता का पता लगाने का वचन दिया, पर सुग्रीव को इसमें सन्देह था कि राम भी वाली को मार सकेंगे, साथ ही वह यह भी जानता था कि जो व्यक्ति पंक्तिबद्ध खड़े हुए सात ताड़ वृक्षों को एक ही बाण से विदीर्ण कर देगा वह वाली का वध कर सकता है अतः राम की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए सुग्रीव ने उन ताड़ के वृक्षों को राम को दिखलाया, राम ने एक ही बाण से उन ताड़ वृक्षों को विद्ध कर दिया, इसी कथा की ओर यहाँ संकेत है । षण्ड का अर्थ समुदाय या समूह अथवा झुरमुट है "अब्जादिकदम्बे षण्डमस्त्रियाम् ।" दिग्गजेति—अष्ट दिग्गज हैं जो कि आठों दिशाओं में माने जाते हैं "ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः । पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः" दिक्षु स्थिता गजाः दिग्गजाः ।

दिग्गजों की सूँड़ के समान ही वह जीर्ण अजगर लम्बा और विशाल था यहाँ आर्थी लुप्तोपमा है। इस अजगर के वृक्ष मूल में चारों ओर लपट जाने से ही मानो उसके चारों ओर जल भरने की क्यारी बन गई थी, इस कथन में यहाँ वाच्या क्रियोत्प्रेक्षा है दोनों में अङ्गाङ्गिभाव संकर हैं। तुङ्गेति—वृक्ष की शाखाओं पर से जो सर्पों की केंचुली लटकती थीं इससे ऐसा ज्ञात होता था कि मानो किसी के कंधों से लटकता हुआ दुपट्टा फहरा रहा हो। उपसंव्यान=दुपट्टा। दिक्चक्रेति=वृक्ष की शाखायें उसी प्रकार ऊँची और दिशाओं के छोरों तक फैली हुई थीं अतएव वह मानो ताण्डव नृत्य में अपनी हजारों भुजाओं को ऊँची करके चारों ओर फैला देने वाले शिव का अनुकरण करने का प्रयत्न कर रहा था। शाखा का अर्थ लता भी होता है। शिखा शाखालताः समा इत्यमरः। विडम्बयितुमिव में आर्थी उपमा तथा गृहणतेव में वाच्या क्रियोत्प्रेक्षा के बीच अङ्गाङ्गिभाव संकर है। वायुस्कन्धलग्न इत्यत्र समासोक्ति हेतूत्प्रेक्षयोः संकरः। व्रततिभिः लताभिः 'वल्लीतु व्रततिर्लता इत्यमरः। जिस प्रकार वृद्ध के शरीर पर अनेक नाड़ियाँ उभरकर साफ दिखलाई देने लगती हैं उसी प्रकार वृक्ष पर ऊँचीं फैली हुई अनेक लतायें स्पष्ट दिखलाई पड़ती थीं। ●

**"जरातिलकविन्दुभिरिव कण्टकैराचिततनुः, इतस्ततः परिपीतसागरसलिलैर्गगनागतैः पत्ररथैरिव शाखान्तरेषु निलीयमानैः क्षणमम्बुधारालसैराद्रीकृतपल्लवैर्जलधरपटलैरप्यदृष्टशिरः, तुङ्गतया नन्दनवनश्रियमिवावलोकयितुमभ्युद्यतः, स्वसमीपवर्त्तिनामुपरिसञ्चरतां गगनतलगमनखेदायासितानां रविरथतुरङ्गमाणां सृक्कपरिस्रुतैः फेनपटलैः सन्देहिततूलराशिभि र्धवलीकृतशिखरशाखः, वनगजकपोलकण्डूयनलग्नमदनिलीनमत्तमधुकरमालेन लोहशृङ्खलाबन्धननिश्चलेनेव कल्पस्थायिना मूलेन समुपेतः।"**

शब्दार्थ—**जरातिलकविन्दुभिरिव**=वृद्धावस्था में उत्पन्न होने वाले काले चिह्नों के समान, **कण्टकैः**=काँटों से, **आचित तनुः**=व्याप्तशरीर वाला, **परिपीतसागरसलिलैः**=समुद्र के जल को पी चुकने वाले, **इतस्ततः गगनागतैः**=इधर-उधर से आकाश मार्ग से आये हुए, **पत्ररथैरिव**=पक्षियों के समान, **शाखान्तरेषु**=शाखाओं के बीच, **क्षणं निलीयमानैः**=क्षण भर को छिपते हुए, **अम्बुभारालसैः**=जल के भार से थके हुए, **आर्द्रीकृतपल्लवैः**=पत्तों को भिगो चुकने वाले, **जलधरपटलैरपि**=मेघसमूहों द्वारा भी, **अदृष्टशिरः**=न देखे गये शिर वाला, **तुङ्गतया**=अत्यधिक ऊँचाई के कारण, **नन्दनवनश्रियम्**=इन्द्रोपवन की शोभा को, **अवलोकयितुम् इव**=देखने के लिए मानो, **अभ्युद्यतः**=तत्पर। **स्वसमीपवर्तिनाम्**=अपने निकटवर्ती, **उपरिसञ्चरताम्**=ऊपर चलते हुए, **गगनतलगमनखेदायासितानाम्**=आकाश तल पर चलने के परिश्रम (खेद) से थके हुए (आयासित) **रविरथतुरङ्गमाणाम्**=सूर्य के रथ के घोड़ों के, **सृक्कपरिस्रुतैः**=ओठों के प्रान्त भागों से (सृक्क) गिरे हुए (परिस्रुतैः)

**सन्देहिततूलराशिभिः**=तूल राशि (रुई का ढेर) का सन्देह उत्पन्न करने वाले, **फेनपटलैः**=झागसमूह से, **धवलीकृतशिखरशाखः**=धवलित ऊपरी शाखाओं वाला। **वनगजकपोलकण्डूयनलग्नमदनिलीनमत्तमधुकरमालेन**=जंगली हाथियों के गण्डस्थल (कपोल) खुजलाने से (कण्डूयन) लगे हुए मद में लीन मतवाले भ्रमरों की पंक्तियों वाले (अतएव) **लोहश्रृंङ्खलाबन्धननिश्चलेन इव**=लोहे की जंजीरों के बन्धन से निश्चल-सा प्रतीत होने वाले, **कल्पान्तस्थायिना मूलेन**=प्रलयकाल तक रहने वाले मूल (जड़) से, **समुपेतः**=युक्त।

**अनुवाद**—वृद्धावस्था में (प्रायः उत्पन्न होने वाले) काले चिह्नों जैसे कांटों से व्याप्त शरीर वाला, समुद्र का जल पी चुकने वाले, इधर-उधर से आकाश मार्ग से आये हुए पक्षियों के समान, शाखाओं के बीच, क्षण भर को छिपे हुए, जल के भार से थके हुए, पत्तों को भिगो चुकने वाले मेघसमूहों से भी अदृष्ट चोटी वाला, ऊँचाई के कारण इन्द्रोपवन की शोभा को देखने के लिए मानो तत्पर, अपने निकटवर्ती, ऊपर चलते हुए, आकाश तल पर गमन के परिश्रम से थके हुए, सूर्य के रथ के घोड़ों के, ओठों के प्रान्त भागों से गिरे हुए, तूलराशि का सन्देह उत्पन्न करने वाले झाग-समूह से, धवलित ऊपरी शाखाओं वाला, जंगली गजों के गण्डस्थलों के खुजलाने से लगे हुए मद में निलीन भ्रमर पंक्तियों वाले (अतएव) लोहे की जंजीरों के बन्धन से निश्चल-सा प्रतीत होने वाले, प्रलयकाल तक रहने वाले, मूल से समन्वित, (शाल्मली वृक्ष है)।

**भावार्थ**—शाल्मली वृक्ष के शरीर पर जो काँटे थे, वे वृद्धावस्था में प्रायः शरीर पर उत्पन्न हुए काले चिह्नों या मस्सों के समान प्रतीत होते थे। समुद्र का जल पीकर आकाश मार्ग से आने वाले पक्षियों के समान मेघ भी उसकी चोटी तक नहीं पहुँच पाते थे अतएव वे इधर-उधर उसकी डालियों पर ही अटक जाते थे और जलभार से थके होने के कारण कुछ देर ठहर कर उसके पत्तों को गीला कर जाते थे। वह अपनी ऊँचाई के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह इन्द्रोपवन की शोभा देखने के लिए प्रयत्नशील है। उसकी चोटी की शाखायें रुई की तहों सी सफेद हो गई हैं, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसके समीप होकर आकाश मार्ग से चलने वाले अतएव थके हुए सूर्य के रथ के घोड़ों के ओष्ठप्रान्त से गिरे हुए झागसमूह हों। जंगली हाथियों द्वारा अपने गण्डस्थल खुजलाने से उसकी जड़ों पर मद चिपक गया है उस पर मत्त भ्रमर बैठे रहते हैं उससे ऐसा मालूम होता है कि मानो उसकी जड़ लोहे की जंजीरों से बाँधने से निश्चल हो गई है और अब वह प्रलयकाल तक बनी रहेगी।

**संस्कृत व्याख्या**—**जरातिलकबिन्दुभिरिव**=जरायां वृद्धावस्थायां ये तिलक बिन्दवः शरीरेषु प्रायः समुत्पद्यमानाः श्यामवर्णाः चिह्नविशेषाः तैः इव, **कण्टकैः** क्षुद्रशत्रुभिः आचिता व्याप्ता तनुः शरीरं यस्य स तथोक्तः। **परिपीतसागरसलिलैः**—परिपीतं सागरस्य समुद्रस्य सलिलं जलं यैस्तैः तथोक्तैः, **इतस्ततः गगनागतैः**=समन्तात् आकाश मार्गेण

समायातैः, पत्ररथैः पक्षिभिः इव, शाखान्तरेषु=शाखानाम् स्कन्धानाम् अन्तरेषु मध्यमागेषु तथोक्तेषु, क्षणम्=क्षणमात्रम्, निलीयमानैः=गुप्ततया तिष्ठद्भिः, अम्बुभारालसैः=अम्बुभारेण परिपीतजलभारेण, अलसैः मन्दगामिभिः तथोक्तैः, आर्द्रीकृतपल्लवैः=आर्द्रीकृताः वर्षेण जलेन क्लिन्नाः पल्लवाः किसलयानि यैस्ते तैः तथोक्तैः, जलधरपटलैः=मेघसमूहैः, अपि, अदृष्टशिरः=अत्युन्नततया नावलोकितं शिरः प्रान्तप्रदेशः यस्य स तथोक्तः। तुङ्गतया—अत्युन्नततया, नन्दनवनश्रियम्=नन्दनवनम् इन्द्रोपवनम् तस्य श्रीः शोभा ताम्—नन्दनवनश्रियम्, अवलोकयितुम् द्रष्टुम् इव अभ्युद्यतः तत्परः। स्वसमीपवर्तिनाम्=निजनिकटवर्तिनाम्, उपरिसंचरताम्, ऊर्ध्वं गच्छताम्, गगनतलगमनखेदायासितानाम्=गगनतले आकाशतले गमनेन चलनेन यः खेदः श्रमः तेन आयासिताः श्रान्तिं प्राप्तास्तेषाम्, रविरथतुरङ्गमाणाम्=सूर्यरथाश्वानाम्, सृक्कपरिस्रुतैः=सृक्काभ्याम् ओष्ठप्रान्ताभ्याम् परिस्रुतैः अधोगलितैः तथोक्तैः, सन्देहिततूलराशिभिः=सन्देहितः सन्देहविषयीकृतः तूलराशिः कार्पासकपिण्डः यैस्तैः तथोक्तैः इव, फेनपटलैः फेनसमूहैः, धवलीकृतशिखरशाखः=धवलीकृताः श्वेतीकृताः शिखरस्य अग्रभागस्य शाखाः यस्य स तथोक्तः। वनगजकपोलकण्डूयनलग्नमदनिलीनमत्तमधुकरमालेन=वनगजानाम् काननहस्तिनां कपोलयोः गण्डस्थलयोः कण्डूयनेन खर्जनेन लग्नेषु संसक्तेषु मदेषु गजमदजलेषु निलीनाः समवस्थिताः मत्ताः मधुपानमत्ता ये मधुकराः भ्रमराः तेषां मालाः पङ्क्तयः यत्र तेन तथोक्तेन, लोहशृङ्खलाबन्धननिश्चलेन=(अतएव) लोहशृङ्खलया लोहनिगडेन यद् बन्धनं नियन्त्रणं तेन निश्चलेन स्थिरेण इव, (अतएव) कल्पस्थायिना=कल्पान्तं तिष्ठता, मूलेन समुपेतः समन्वितः।………………शाल्मलीवृक्षोऽस्ति।

**संस्कृत सरलार्थः**—स शाल्मलीवृक्षः, वृद्धावस्थायां प्रायः शरीरेषु समुत्पद्यमान कृष्णवर्णचिन्हैरिव प्रतीयमानैः कण्टकैः व्याप्तदेहः, सागरजलम् पीत्वा इतस्ततो गगनमार्गेणागतैः पक्षिभिरिव, शाखामध्यभागेषु क्षणमवतिष्ठद्भिः परिपीतजलभारेण मन्दगामिभिः वर्षणक्लिन्नकिसलयैर्मेघैरप्यनवलोकितशिखरः, अत्युन्नततया देवराजोद्यानशोभां वीक्षितुमिव कृतप्रयत्नः, स्वनिकटस्थानामुपरिगच्छतामाकाशतलगमन श्रमेण परिश्रान्तानां सूर्यरथाश्वानां मोष्ठप्रान्तनिपतितैः सन्देहविषयीकृतकार्पासकपिण्डैरिव श्वेतीकृतोन्नतशाखः, वनचारिहस्तिगण्डस्थलयोः खर्जनेन संसक्तगजमदावस्थितमत्तभ्रमरमालेन अतएव लोहनिगडयन्त्रणस्थिरेणेव कल्पान्तस्थायिना मूलेन संयुक्तः।

**टिप्पणी**—जरेति—प्रायः वृद्धावस्था में शरीर पर काले चिन्ह या मस्से निकल आते हैं, इन्हीं को यहाँ तिलक बिन्दु कहा गया है, कण्टकैः=काँटों से, काँटों को क्षुद्रशत्रु भी कहा गया है "कण्टकः क्षुद्रशत्रौ च इति विश्वः। पत्ररथैः=पक्षिभिः" पतत्पत्ररथाण्डजाः इत्यमरः, अदृष्टशिरः—अत्युन्नत होने के कारण जिसकी चोटी मेघों द्वारा भी नहीं देखी जाती थी, वस्तुतः यहाँ सम्बन्धेऽपि असम्बन्धलक्षणातिशयोक्ति अलंकार है और पत्ररथैरिव में वाच्योपमा है, दोनों में संकर है। तुङ्गता=

अत्युच्चता, उच्चप्रांशून्नतोदग्रोच्छ्रितास्तुङ्गे इत्यमरः । नन्दनवनम्=इन्द्रोद्यानम् 'अथ नन्दनम् इन्द्रोद्याने नन्दनस्तु तनये हर्षकारिणि" श्रियमवलोकयितुमिवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा । आयासितानाम्—श्रान्तिमुपगतानाम्, सृक्क=ओष्ठों के किनारे "प्रान्ताबोष्ठस्य 'सृक्कणी' इत्यमरः सन्देहित=सन्देहविषयीकृत, जिसमें तूलराशि होने का सन्देह उत्पन्न कर दिया गया था । शिखरशाखा—ऊँची चोटी । वनगजेति—वन्य गज स्वभावतः अपने गण्डस्थलों की खुजली मिटाने के लिए उन्हें वृक्षमूलों पर रगड़ते हैं अतएव उनका मदजल चू पड़ता है जिसकी सुगन्धि से भ्रमर एकत्रित हो जाते हैं, कृष्णवर्ण होने के कारण भ्रमरों को लोहशृङ्खला से उपमित किया गया है, मालेन में माला शब्द का समस्त पद होने से 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य" से उपसर्जन ह्रस्व हो गया है । अथ शृङ्खला बन्दुको निगडोऽस्त्रीस्यात्:' स्थिरेणेवेत्यत्र उत्प्रेक्षा ।

**"कोटराभ्यन्तरनिविष्टैः स्फुरद्भिः सजीव इव मधुकर पटलैः, दुर्योधन इवोपलक्षितशकुनिपक्षपातः, नलिननाभ इव वनमालोपगूढः, नवजलधरव्यूह इव नभसि दर्शितोन्नतिः, अखिलभुवनतलावलोकनप्रासाद इव वनदेवतानाम्, अधिपतिरिव दण्डकारण्यस्य, नायक इव सर्ववनस्पतीनाम्, सखेव विन्ध्यस्य, शाखाबाहुभिरुपगुह्य व विन्ध्याटवी मवस्थितो महान् जीर्णः शाल्मलीवृक्षः ।**

शब्दार्थ—कोटराभ्यन्तरनिविष्टैः=कोटरों के भीतर प्रविष्ट, स्फुरद्भिः=चमकते हुए, मधुकरपटलैः=भ्रमर समूह से, सजीवः इव=जीवनधारी जैसा प्रतीत होता हुआ, दुर्योधन इव उपलक्षितशकुनिपक्षपातः=गान्धाराधिपति अपने मातुल शकुनि पर प्रणय (पक्षपात) प्रदर्शित करने वाले दुर्योधन के समान, जिस पर पक्षियों के पंखों का (पक्ष) गिरना (पात) देखा गया है (उपलक्षितः) वनमालोपगूढः नलिननाभः इव=आजानुलम्बिनी वनमाला से आश्लिष्ट (धारण किये हुए अर्थात् वनमालाधारी), नलिन=कमल, नाभ अर्थात् कमल जिसकी नाभि में है ऐसे विष्णु के समान, वनमाला अर्थात् वनपंक्तियों से घिरा हुआ, श्रावण मास में (नभसि) अपनी वृद्धि (उन्नति) प्रदर्शित करने वाले, नवजलधरव्यूहः=नवीन मेघों के मण्डल के समान, आकाश में (नभसि) अपनी उच्चता (उन्नतिः) को प्रदर्शित करने वाला, वनदेवतानाम् =वनदेवियों के लिए, अखिलभुवनतलावलोकनप्रासादः इव=सम्पूर्ण भुवनतलों को देखने के लिए (निर्मित) प्रासाद=महल के समान (अत्यन्त ऊँचा होने के कारण)। दण्डकारण्यस्य अधिपतिरिव=दण्डकारण्य का मानो स्वामी, सर्वं वनस्पतीनां नायक इव=सब वृक्षों का मानो नायक, विन्ध्यस्य सखेव=विन्ध्याचल का मानो मित्र (उसी के समान ऊँचा होने के कारण) शाखाबाहुभिः=शाखारूपी भुजाओं से, विन्ध्याटवीम् उपगुह्य इव अवस्थितः=विन्ध्याटवी का आलिंगन करके स्थित-विद्यमान सा, महान्=महनीय, जीर्णः=पुराना, शाल्मलीवृक्षः=सेमल का वृक्ष ।

अनुवाद—कोटरों के भीतर प्रविष्ट हुए (और) चमकते हुए भ्रमर समूहसे जीवनधारी-सा प्रतीत होता हुआ, अपने मातुल शकुनि पर प्रणय प्रदर्शित करने वाले

दुर्योधन के समान पक्षियों के पंखों का गिरना जिस पर देखा गया है, ऐसा, वनमाला से आलिङ्गित विष्णु के समान वन की पंक्तियों से घिरा हुआ, श्रावण मास में (अपनी) वृद्धि दिखलाने वाले नवीन मेघों के मण्डल के समान, आकाश में अपनी उच्चता प्रदर्शित करने वाला, वनदेवियों का सम्पूर्ण भुवनतलों को देखने के लिए महल सा, दण्डकारण्य का स्वामी सा, सब वृक्षों का अध्यक्ष सा, विन्ध्याचल का मित्र सा, शाखा रूपी भुजाओं से विन्ध्याटवी का आलिङ्गन करके विद्यमान सा, महनीय, पुराना सेमल वृक्ष है।

**भावार्थ**—वृक्ष के खोखलों में रहने वाले चञ्चल भौरों से वह वृक्ष जीवन-धारी-सा प्रतीत होता था। अपने मामा शकुनि पर पक्षपात दिखलाने वाले दुर्योधन के समान उस वृक्ष पर पक्षियों के पंख गिरे हुए देखे जाते हैं। वनमाला धारण करने वाले कमलनाभ विष्णु के समान वह वनपंक्तियों से घिरा हुआ था, श्रावणमास में अपनी वृद्धि दिखलाने वाले मेघों के समान वह आकाश में अपनी उच्चता दिखलाने वाला है, समस्त भुवनों को देखने के लिए मानो वह वनदेवियों का प्रासाद है, दण्डकारण्य का वह मानो स्वामी है, सब वृक्षों का मानो वह नायक है, विन्ध्याचल का मानो वह मित्र है और अपनी शाखा रूप भुजाओं से मानो विन्ध्याटदी का आलिङ्गन करके विद्यमान है, ऐसा एक महनीय पुराना सेमल का वृक्ष है।

**संस्कृत व्याख्या**—**कोटराभ्यन्तरनिविष्टैः**=कोटराणां वृक्षस्थछिद्राणाम् अभ्यन्तरेषु मध्यभागेषु निविष्टाः निलीनाः तैः तथोक्तैः **स्फुरद्भिः** दीप्यमानैः, **मधुकरपटलैः** भ्रमर समूहैः **सजीवः** इन्द्रियप्राणसमायुक्तः इव, **दुर्योधनः इव**, उपलक्षितः अवलोकितः (लोकैः) शकुनौ गान्धाराधिपतौ स्वकीये मातुले पक्षपातः प्रणयः यस्य स तथोक्तः, पक्षे—उपलक्षितः जनैरवलोकितः शकुनीनां पक्षिणां पक्षाणां छदानां पातः पतनं यस्मिन् स तादृशः। **वनमालोपगूढः** आजानुलम्बिन्या प्रसिद्धया वनमालया उपगूढः आलिङ्गितः तथोक्तः, **नलिननाभः**=नलिनं कमलं नाभौ यस्य तथोक्तः विष्णुः इव **वनमालया** कानन पङ्क्तया उपगूढः समाच्छादितः, **नभसि** श्रावणे मासि **दर्शिता** प्रकटिता उन्नतिः वृद्धिः येन स तादृशः, **नवाः** नूतनाः ये जलधराः मेघाः तेषाम् व्यूहः समूहः इव, नभसि आकाशे दर्शिता प्रदर्शिता उन्नतिः उच्चत्वं येन तादृशः, **अखिल-भुवनतलावलोकनप्रासाद इव** वनदेवतानाम्, वनाधिष्ठातृदेवानाम्, अखिलभुवनतलानां निखिलजगताम् अवलोकनाय निरीक्षणाय प्रासादः राजभवनम्, इव (विद्यमानः) दण्डकारण्यस्य दण्डकवनस्य अधिपतिः स्वामीव, सर्ववनस्पतीनां समस्तवृक्षाणां नायकः अध्यक्ष इव, **विन्ध्यस्य** विन्ध्याचलस्य सखा मित्रमिव, **शाखाबाहुभिः** शाखा एव बाहवो भुजाः तैः तथोक्तैः, **विन्ध्याटवीम**, विन्ध्यवनम्, उपगुह्य आलिङ्ग्य इव **अवस्थितः** विद्यमान महान् महनीयः जीर्णः पुरातनः शाल्मलीवृक्षः (अस्ति)

**संस्कृत सरलार्थ**—कोटराणां मध्यभागेषु निलीनैः दीप्यमानैश्च भ्रमर समूहैः स वृक्षो जीवनधारीव प्रतीयते, परिलक्षितशकुनि संशकस्वमातुलप्रणयः दुर्योधन इव

स वृक्षः वनैरवलोकितपक्षिछदपातः, एवं वनमालयालिङ्गितः पद्मनाभः विष्णुरिव स वनपङ्क्तिभिः समाच्छादितः अथ च श्रावणे मासि सन्दर्शितवृद्धिः नवमेघसमूह इव स आकाशे प्रकटितोन्नतिः, वनदेवीनां निखिल जगता मवलोकनाय राजभवनमिव, दण्डकवनस्य स्वामीव, सर्ववृक्षणामध्यक्ष इव, विन्ध्याचलस्य मित्रमिव, शाखावाहुभि र्विन्ध्याटवीमालिङ्ग्य इव समवस्थितः महनीयः पुरातनः शाल्मलीवृक्षः।

टिप्पणी—कोटरेति—कोटर-वृक्षों के खोखले जिनमें प्रायः पक्षी रहा करते हैं, स्फुरद्भिः=चञ्चल या चमकते हुए। उपलक्षितेति—शकुनिः=गान्धाराधिपति शकुनि नामक दुर्योधन का मामा, २—शकुनि=पक्षी, पक्षपातः=१ प्रेम, २—पंखों का गिरना। वनमाला=एक विशिष्ट प्रकार की माला "आजानुलम्बिनी माला, सर्वर्तु कुसुमोज्वला। मध्ये स्थूलकदम्बाढ्या वनमालेति कीर्तिता" जानुओं तक लम्बी सभी ऋतुओं के पुष्पों से ग्रथित और बीच में मोटे कदम्बपुष्पों वाली माला वनमाला कही जाती है इसे विष्णु धारण करते हैं, अथवा "तुलसीकुन्दमन्दारपारिजातसरोरुहैः पञ्चभिर्ग्रथिता माला वनमाला प्रकीर्तिता। वृक्ष के पक्ष में वनपंक्तियों से घिरा हुआ। नवेति व्यूहः=समूहः मण्डलं वा। नभसि=आकाशे, श्रावणे मासि च "नभः=खं श्रावणो नभाः इत्यमरः, यहाँ सर्वत्र उपमालंकार है पर कुछ लोग इन द्व्यर्थक शब्दों में अभङ्गश्लेष भी माने हैं। वनस्पतीनाम्=विना फल और पुष्पों वाले वृक्ष वनस्पति कहे जाते हैं "वनस्पति वृंक्षमात्रे विनापुष्पफलद्रुमे।" यहाँ उत्प्रेक्षा है। शाखावाहुभिः शाखाएव वाहवः तैः तथोक्तैः आश्लिष्येव अवस्थितः अत्र क्रियोत्प्रेक्षा।

## शुकजन्मादि वर्णनम्

**तत्र च शाखाग्रेषु कोटरोदरेषु पल्लवान्तरेषु स्कन्धसन्धिषु जीर्णवल्कलविवरेषु च महावकाशतया विश्रब्धविरचितकुलायसहस्राणि दुरारोहतया विगलितविनाशभयानि नानादेशसमागतानि शुकशकुनिकुलानि प्रतिवसन्ति स्म। यैः परिणामविरलदलसंहतिरपि स वनस्पति रविरलदलनिचयश्यामल इवोपलक्ष्यते दिवानिशं निलीनैः।**

शब्दार्थ—तत्र च=और वहाँ उस वृक्ष पर, शाखाग्रेषु=शाखाओं के ऊपरी भागों पर, कोटरोदरेषु=कोटरों (खोखलों) के भीतर (उदरेषु) पल्लवान्तरेषु= पत्तों के बीच में, स्कन्धसन्धिषु=प्रकाण्डों के जोड़ों पर, जीर्णवल्कलविवरेषु च= और पुराने छालों के छेदों में, महावकाशतया=बहुत बड़ा स्थान होने के कारण, विश्रब्धविरचितकुलायसहस्राणि=निःसन्देहपूर्वक (विश्रब्धम्) हजारों घोंसले (कुलाय) बनाये हुए, दुरारोहतया=बड़ी कठिनाई से चढ़ने योग्य होने के कारण, विगलितविनाशभयानि=विनाश (मृत्यु) के भय से मुक्त हुए (विगलित) नानादेशसमागतानि =अनेक देशों से आये हुए, शुकशकुनिकुलानि=तोतों और अन्य पक्षियों के समूह प्रतिवसन्ति स्म=रहते थे। दिवानिशं निलीनैः यैः=रात दिन रहने वाले (निलीन)

जिन पक्षियों के द्वारा, **परिणामविरलदलसंहतिः अपि**=पुराने होने के कारण (परिणाम) अत्यल्प पत्र समूह वाला (विरल……संहति) भी, **स वनस्पतिः**=वह वृक्ष, **अविरलदलनिचयश्यामलः**=सघन (अविरल) पत्तों के समूह (निचय) वाला, **इव**=जैसा, **उपलक्ष्यते**=दिखाई पड़ता है।

**अनुवाद**—और वहाँ उस वृक्ष पर शाखाओं के ऊपरी भागों पर, खोखलों के भीतर, पत्रों के बीच, प्रकाण्डों के जोड़ों पर तथा पुरानी छालों के छिद्रों में, बहुत बड़ा स्थान होने के कारण, निःसन्देहपूर्वक हजारों घोंसले बनाये हुए, कठिनाई से चढ़ने योग्य होने के कारण, मृत्यु के भय से मुक्त हुए, अनेकों देशों से आये हुए, तोतों तथान्य पक्षियों के समूह रहते थे। रात दिन रहने वाले जिन पक्षियों के कारण, पुरातनतावश अतिस्वल्प पत्तों के समूह वाला भी वह वृक्ष सघन पत्तों के समूह से श्यामवर्ण जैसा दिखाई पड़ता है।

**भावार्थ**—स्थान अधिक होने के कारण नानादेशों से आये हुए तोतों तथान्य पक्षियों के परिवार उस वृक्ष की डालियों के ऊपरी भागों पर, खोखलों के भीतर, पत्तों के बीच, प्रकाण्डों के जोड़ों पर तथा पुरानी छालों के छेदों में, हजारों घोंसले बनाकर, रहते थे, ऊँचाई के कारण वृक्ष पर चढ़ना अति कठिन था इसलिए वे सब मृत्यु के भय से निश्चिन्त थे, यद्यपि पुराना होने के कारण वह वृक्ष पत्तों से रहित हो गया था तथापि रात दिन उस पर बसने वाले इन पक्षियों के कारण वह सघन पत्तों से श्यामवर्ण-सा दिखाई देता है।

**संस्कृत व्याख्याः**—तत्र च तस्मिंश्च शाल्मली वृक्षे, **शाखाग्रेषु**=शाखानां प्रान्तभागेषु, **कोटरोदरेषु**=वृक्षच्छिद्राभ्यन्तरेषु, **पल्लवान्तरेषु**—किसलयानां मध्य-भागेषु, **स्कन्धसन्धिषु**=स्कन्धानां प्रकाण्डानां सन्धयः बन्धाः तेषु प्रकाण्डबन्धेषु, **जीर्णवल्कल विवरेषु**=जीर्णानि पुरातनानि यानि वल्कलानि वृक्षत्वचः तेषां विवरेषु छिद्रेषु च तथोक्तेषु, **महावकाशतया**=महान् अतिदीर्घः यः अवकाशः अन्तर्विस्तारः तस्य भावस्तत्ता तया महावकाशतया, **विश्रब्धविरचितकुलायसहस्राणि**=विश्रब्धं सविश्वासं यथा स्यात्तथा विरचितानि निर्मितानि कुलायानां नीडानां सहस्राणि यैस्तानि तथोक्तानि, **दुरारोहतया**=दुःखेन अत्युन्नत्वात् क्लेशेन आरुह्यते इति दुरारोहः तस्य भावस्तत्ता तया दुरारोहतया, **विगलितविनाशभयानि**=विगलितानि हृदयादपगतानि विनाशस्य मृत्योः भयानि येषान्तानि तथोक्तानि, **नानादेशागतानि**=नानादेशेभ्यः अनेकदेशेभ्यः आगतानि समायातानि तथोक्तानि, **शुकशकुनिकुलानि**=शुकानां कीराणां शकुनीनां तदतिरिक्तपक्षिणाञ्च कुलानि समूहाः इति शुकशकुनिकुलानि, **प्रतिवसन्ति स्म**। **दिवानिशम्**=रात्रिन्दिवम्, **निलीनैः** तत्रस्थितैः यैः पक्षिभिः, **परिणामविरल-दलसंहतिः अपि**=परिणामेन पुरातनतया विरला स्वल्पा दलानां पत्राणां संहतिः समूहः यस्मिन् स तथोक्तः '**अपि स वनस्पतिः** शाल्मली वृक्षः, **अविरलदलनिचय-श्यामलः**=अविरलानां सघनानाम् दलानां पत्राणां निचयः समूहः तेन श्यामलः कृष्णवर्णः तथोक्तः **इव आलक्ष्यते**—दृश्यते।

**संस्कृत सरलार्थ**—तस्मिंश्च शाल्मलीवृक्षे तदीयशाखाग्रभागेषु, तच्छिद्राभ्यन्तरेषु किसलयमध्यभागेषु प्रकाण्डानां वन्धेषु पुरातनवल्कलच्छिद्रेषु च, अतिदीर्घावकाशतया सविश्वासं निर्मितनीडसहस्राणि, अत्युन्नतत्वाद् दुरारोहणतया व्यपगत मृत्युभयानि विभिन्नदेशसमायातानि शुकपक्षिवृन्दानि प्रतिवसन्ति स्म। रात्रिन्दिवं तत्रावस्थितैं यैः पक्षिभिः पुरातनत्वात् स्वल्पपत्रोऽपि स वृक्षः सघनपत्रसमूहैः श्यामवर्ण इव दृश्यते।

**टिप्पणी**—**कोटरोदरेषु**=खोखलों के भीतर, **महावकाशतया**=भीतर पर्याप्त स्थान होने के कारण, **विश्रब्धम्** विश्वासपूर्वक या निःसन्देह, **परिणामेति**, परिणाम= परिपाक, पकने के कारण जीर्ण हो जाने से झड़ जाने से विरल पत्तों वाला भी, पक्षियों के रहने के कारण वह वृक्ष सघन पत्तों वाला अतएव श्यामवर्ण सा दिखलाई पड़ता है, यहाँ उत्प्रेक्षा है।

**ते च तस्मिन् वनस्पतावतिवाह्य निशामात्मनीडेषु प्रतिदिन मुत्थायोत्थायाहारान्वेषणाय नभसि विरचितपङ्क्तयो मदकलहलधरहलमुखोत्क्षेपविकीर्ण बहुस्रोतसमम्बरतले कलिन्दकन्यामिव दर्शयन्तः, सुरगजोन्मूलितविगलदाकाशगङ्गाकमलिनी शङ्कामुपजनयन्तः, दिवसकररथतुरगप्रभा नुलिप्तमिव गगनतलमुपपादयन्तः, सञ्चारिणीमिव मरकतस्थलीं विडम्बयन्तः, शैवलपल्लवावली मिवाम्बरसरसि प्रसारयन्तः, गगनविततैः पक्षपुटैः कदलीदलैरिव दिनकरखरकरनिकर परिखेदिता न्याशामुखानि वीजयन्तः, वियति विसारिणीं शष्पवीथीमिवारचयन्तः, सेन्द्रायुधमिवान्तरिक्ष मादधाना विचरन्ति स्म शुकशकुनयः।**

**शब्दार्थ**—**ते च तस्मिन् वनस्पतौ**=और वे उस वृक्ष पर, **आत्मनीडेषु निशाम् अतिवाह्य**=अपने घोसलों में रात को बिताकर, **प्रतिदिनम् उत्थाय उत्थाय**=प्रतिदिन उठ उठकर, **आहारान्वेषणाय**=आहार खोजने के लिए, **नभसि विरचितपङ्क्तयः**= आकाश में पङ्क्तिबद्ध होकर, **मदकलहलधरहलमुखोत्क्षेपविकीर्णबहुस्रोतसम्**= मद से सुन्दर बलराम (हलधर) के हल के अग्रभाग से (हलमुख) ऊपर फेंकने के कारण, (उत्क्षेप) फैली हुई अनेक धाराओं (स्रोतस्) वाली, **इव**=मानो, **कलिन्द कन्याम्**= यमुना को, **अम्बरतले**=आकाश तल में, **दर्शयन्तः**=दिखलाते हुए, **सुरगजोन्मूलितविगलदाकाशगङ्गाकमलिनीशङ्काम् उपजनयन्तः**=ऐरावत (सुरगज) के द्वारा उखाड़ी गई (उन्मूलित) (अतएव) नीचे गिरती हुई (विगलत्) आकाशगङ्गा की कमलिनी की शङ्का को उत्पन्न करते हुए, **दिवसकररथतुरगप्रभानुलिप्तम्**= **गगनतलम् उपपादयन्तः**=आकाश तल को मानो सूर्य (दिवसकर) के रथ के घोड़ों की कान्ति (प्रभा) से अनुलिप्त करते हुए, **सञ्चारिणीमिव मरकतस्थलीं विडम्बयन्तः**= मानो चलती फिरती (सञ्चारिणी) मरकत (मणिरचित) भूमि (स्थली) का अनुकरण करते हुए (विडम्बयन्तः), **शैवलपल्लवावलीमिव अम्बरसरसि प्रसारयन्तः**=आकाशरूपी

सरोवर में मानो शैवाल (सिवार घास) के किसलय समूह को (पल्लवावलीम्) फैलाते हुए, (प्रसारयन्तः) **गगनविततैः**=आकाश में फैले हुए (वितत) **कदलीदलैरिव**=केले के पत्तों जैसे, **पक्षपुटैः**=पंखों द्वारा, **दिनकरखरकरनिकरपरिखेदितानि**=सूर्य के (दिनकर) प्रखर (खर) किरण समूह (करनिकर) से मुरझाये हुए (खेदितानि) **आशामुखानि**=दिग्वधुओं के मुखों पर, **वीजयन्तः**=पंखा झलते हुए, **वियति**=आकाश में मानो, **विसारिणीम्**=फैलने वाली, **शष्पपङ्क्तिम्**=हरी कोमल घासों का मार्ग, **आरचयन्तः इव**=बनाते हुए से, **अन्तरिक्षम्**=आकाश को, **सेन्द्रायुधमिव आदधानाः**=इन्द्रधनुष से युक्त (सेन्द्रायुध) **आवधानाः**=करते हुए से, **शुकशकुनयः विचरन्ति स्म**=तोते और पक्षी विचरण करते थे।

**अनुवाद**—और वे उस वृक्ष पर अपने घोसलों में रात बिताकर प्रतिदिन उठ उठकर आहार खोजने के लिए आकाश में पंक्तिवद्ध होकर मानो मद से सुन्दर बलराम के हल के अग्रभाग से ऊपर फेंकने के कारण बिखरी हुई अनेक धाराओं वाली यमुना को आकाश तल में दिखलाते हुए, ऐरावत के द्वारा उखाड़ी गई (अतएव) नीचे गिरती हुई आकाश गंगा की कमलिनी का भ्रम उत्पन्न करते हुए, आकाश तल को सूर्य के रथ के घोड़ों की कान्ति से मानो अनुलिप्त करते हुए, मानो चलती फिरती मरकत (मणिनिर्मित) भूमि का अनुकरण करते हुए, आकाशरूपी सरोवर में मानो सिवार घास के पत्तों की पंक्तियाँ फैलाते हुए, केले के पत्तों के समान, आकाश में फैले हुए अपने पंखों से सूर्य की प्रखर किरण समूह से मुर्झाये हुए दिग्वधुओं के मुखों पर पंखा झलते हुए, मानो आकाश में फैलने वाली हरी कोमल घासों का मार्ग बनाते हुए, आकाश को इन्द्रधनुष से युक्त करते हुए से, शुक पक्षिसमूह विचरण करते थे।

**भावार्थ**—उस वृक्ष पर बनाये गये अपने घोंसलों में रात बिताकर, प्रतिदिन प्रातःकाल भोजन की खोज में आकाश में पंक्तिवद्ध होकर उड़ते हुए वे पक्षी ऐसे प्रतीत होते थे मानो बलराम के हल की नोंक से आकाश में फेंकी गई यमुना की इधर-उधर बिखरी हुई धारायें हों अथवा ऐरावत हाथी द्वारा उखाड़कर फेंकी गई आकाश गंगा की कमलिनियाँ हों। अथवा सूर्य के रथ के घोड़ों की हरी-हरी कान्तियों से आकाशमण्डल ही अनुलिप्त हो गया हो, अथवा पक्षिपंक्तियों के नीलवर्ण होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे सञ्चरणशील मरकतमणिनिर्मित स्थल हों। अथवा आकाशरूपी सरोवर में फैली हुई सिवार घास की पंक्तियाँ हों। आकाश में उड़ते हुए, केले के पत्तों के समान हरे-हरे वे अपने पंखों को चलाते हुए ऐसे लगते थे कि मानो वे सूर्य की कड़ी धूप से मुरझाये हुए दिशारूपी वधुओं के मुख पर पंखे झल रहे हों अथवा वे मानो आकाश में हरी कोमल घासों की पट्टियाँ बिछा रहे हों अथवा वे अपनी विविध रंग वाली पंक्तियों से आकाश में इन्द्रधनुषों को बना रहे हों, इस प्रकार वे शुक और अन्य पक्षी घूम रहे थे।

संस्कृत व्याख्या—ते च=ते पूर्वोक्ताः पक्षिणश्च, तस्मिन् वनस्पतौ=तस्मिन् शाल्मलीवृक्षे, आत्मनीडेषु-स्व-स्वकुलायेषु, निशाम्=रात्रिम्, अतिवाह्य=अतिक्रम्य, प्रतिदिनम्=प्रत्यहम्, उत्थायोत्थाय=प्रातरुत्थानं कृत्वा, आहारान्वेषणाय=स्वभक्ष्यपदार्थावलोकनाय, नभसि=आकाशे, विरचितपङ्क्तयः=विरचिता बद्धा पङ्क्तिःश्रेणी यैस्ते तथोक्ताः, मदकलहलधरहलमुखोत्क्षेपविकीर्ण बहुस्रोतसम्=मदेन मधुपानेन कलःमत्तः यः हलधरः बलरामः तस्य हलमुखेन सीराग्रप्रदेशेन यः आक्षेपः ऊर्ध्वभागे प्रक्षेपणं तेन विकीर्णानि पर्यस्तानि बहूनि स्रोतांसि प्रवाहाः यस्यास्तां तथोक्ताम्, कलिन्दकन्याम् यमुनाम् इव अम्बरतले=आकाश तले दर्शयन्तः=अवलोकनीयतां प्रापयन्तः। सुरगजोन्मूलितविगलदाकाशगङ्गाकमलिनीशङ्काम्=सुरगजेन देवहस्तिना ऐरावतेन उन्मूलिता उत्पाटिता (अतएव) विगलन्ती अधःपतन्ती या आकाशगङ्गा मन्दाकिनी तस्याः कमलिनी नलिनी तस्याः शङ्काम् भ्रान्तिम् उपजनयन्तः परेषां समुत्पादयन्तः, दिवसकररथतुरगप्रभानुलिप्तमिव=दिवसकरस्य सूर्यस्य ये रथस्य स्यन्दनस्य तुरगाः अश्वाः रथयोजितसप्तहरिताश्वाः तेषां प्रभाभिः नीलकान्तिभिः अनुलिप्तम् लेपनविषयीकृतम् इव गगनतलमाकाशतलम्, उपपादयन्तः ज्ञापयन्तः, सञ्चारिणीं भ्रमणशीलां मरकतस्थलीं नीलमणिभूमिमिव विडम्बयन्तः अनुकुर्वन्तः, अम्बरसरसि=अम्बरम् गगनम् एव सरः तस्मिन् अम्बरसरसि, शैवल-पल्लवावलीम्—शैवलस्य शैवालस्य या पल्लवानाम् आवली श्रेणी ताम् तथोक्ताम्, प्रसारयन्तः विस्तारयन्तः इव, कदलीदलैः श्यामरूपत्वात् रम्भापत्रैरिव गगनविततैः—गगने आकाशे विततैः विस्तृतैः प्रसारितैरित्यर्थ पक्षपुटैः स्वकीयपक्षच्छदैः, दिनकर-खरकरनिकरपरिखेदितानि=दिनकरस्य सूर्यस्य ये खराः तीक्ष्णाः कराणां किरणानां निकराः समूहाः तैः परिखेदितानि पीडितानि तथोक्तानि आशामुखानि दिग्वदनानि वीजयन्तः व्यजनवातं सञ्चारयन्तः, वियति आकाशे विसारिणीम् विस्तारिणीम् शष्पवीथीम् बालतृणोपयुक्तपद्धतिम् आरचयन्तः विरचयन्तः इव, अन्तरिक्ष माकाशम् सेन्द्रायुधम् इन्द्रचापमिव आदधानाः कुर्वाणाः शुकशकुनयः विचरन्ति परिभ्रमन्ति स्म।

संस्कृत सरलार्थ—ते च पूर्वोक्ताः शुकशकुनयः तस्मिन् शाल्मलीवृक्षे आत्म-निर्मितनीडेषु रात्रिं समतीत्य प्रातः प्रतिदिनं समुत्थाय स्वाहारमार्गणाय आकाशे पंक्ति-बद्धा इतस्ततो विचरन्ति स्म, आकाशतले परिभ्रमन्तस्ते क्वचित् मधुपानमत्तस्य बलरामस्य हलाग्रभागेनोर्ध्वदेशे प्रक्षेपेण विक्षिप्तबहुप्रवाहवतीं यमुनामिवात्मानं दर्शनीयतां प्रापयन्तः, क्वचिदैरावतोत्पाटिताधो निपतन्त्याः मन्दाकिन्याः पद्मिनीभ्रान्तिमुत्पाद-यन्तः, क्वचिदाकाश तलं सूर्यरथाश्वनीलकान्तिभि रनुलिप्तमिव विदधानाः समवलोक्यन्ते स्म। अथ च क्वचिदेते सञ्चरणशीलां नीलमणिरचितभूमि मनुकुर्वन्तः, क्वचिद् गगनसरोवरे शैवालकिसलय श्रेणीमिव विस्तारयन्तः, क्वचिच्च रम्भापत्रैरिव प्रसारितै रात्मपक्षच्छदैः सूर्यतीक्ष्णकिरणसमूहैः परिपीडितानि दिङ्मुखानि वीजयन्त इवोपलक्ष्यन्ते स्म। एवं माकाशे विस्तारिणीं बालतृणश्रेणी मारचयन्त इव, क्वचिदाकाशं सेन्द्र-चापमिव कुर्वाणाः परिभ्रमन्ति स्म।

टिप्पणी—अतिवाह्य=अति+ण्यन्त वह धातोः क्त्वा ल्यप्। मदकलेति—मदेन मधुपानेन कलः मत्तः, उत्क्षेपः—उत्+क्षिप्+घञ्, उठाकर ऊपर फेंकना, हलमुख=हल की नोक, स्रोतस्=धारा, बहुधाराओं वाली यमुना की भाँति, अत्र द्रव्योत्प्रेक्षालंकारः। उन्मूलिता=उखाड़ी गई अतएव विगलन्ती—नीचे गिरती हुई, आकाशगङ्गा=मन्दाकिनी 'मन्दाकिनी वियद्गङ्गा' इत्यमरः यहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार है। अम्बरसरसि=अम्बरमेव सरः 'कासारः सरसी सरः' इत्यमरः। निरङ्ग रूपकालंकार है प्रसारयन्तः इवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा, द्वयोः, संकरः। कदलीदलैरिवेत्यत्रोपमालंकारः। आरचयन्त इवेत्यत्रापि क्रियोत्प्रेक्षा। सेन्द्रायुधमित्यत्र गुणोत्प्रेक्षा। ●

**कृताहाराश्च पुनः प्रतिनिवृत्यात्मकुलायावस्थितेभ्यः शावकेभ्यो विविधान् फलरसान् कलममञ्जरीविकारांश्च प्रहतहरिणरुधिरानुरक्त-शार्दूल नखकोटिपाटलेन चञ्चुपुटेन दत्त्वा दत्त्वा अधरीकृतसर्वस्नेहेना-साधारणेन गुरुणापत्यप्रेम्णा तस्मिन्नेव क्रोडान्तर्निहिततनयाः क्षपाः क्षपयन्ति स्म।**

शब्दार्थ—कृताहाराश्च=आहार कर चुकने वाले, प्रतिनिवृत्य=लौटकर, आत्मकुलायावस्थितेभ्यः=अपने घोंसलों (कुलाय) में रहने वाले, शावकेभ्यः=बच्चों को, प्रहतहरिणरुधिरानुरक्तशार्दूलनखकोटिपाटलेन=मारे गये (निहत) हरिण के खून से लालवर्ण (अनुरक्त) सिंह (शार्दूल) के नखों के अग्रभाग के समान गुलाबी, चञ्चुपुटेन=चोंच से, विविधान् फलरसान्=अनेक प्रकार के फलों के रसों को, कलममञ्जरी-विकारान् च=धान (कलम) की (मञ्जरी) बालियों के दानों अर्थात् अधपके दानों को (विकारान्) दत्त्वा दत्त्वा=दे देकर, अधरीकृतसर्वस्नेहेन=सभी स्नेहों को तिरस्कृत (अधरीकृत) कर देने वाले, असाधारणेन गुरुणा अपत्यप्रेम्णा=असाधारण बहुत बड़े सन्तान प्रेम से, क्रोडान्तर्निहिततनयाः=बच्चों को (तनयाः) गोदी में (क्रोडान्तः) रखे हुए (निहित) क्षपाः=रात्रियों को, क्षपयन्ति स्म=बिताते थे।

अनुवाद—आहार करके पुनः लौट करके। (वे पक्षी) अपने घोंसलों में स्थित बच्चों को, मारे गये हरिण के रुधिर से लालवर्ण के, सिंह के नखों के अग्रभाग के समान गुलाबी रंग के चोंच से अनेक प्रकार के फलों के रसों को तथा धानों की बालियों के अधपके दानों को दे देकर सभी स्नेहों को तिरस्कृत पर देने वाले असाधारण सन्तान प्रेम से बच्चों को गोद में रखे हुए उसी वृक्ष पर रात्रियाँ बिताते थे।

भावार्थ—वे पक्षी अपना चारा चुगकर पुनः लौटकर अपने-अपने घोंसलों में स्थित अपने बच्चों को, मारे गये मृग के रुधिर से लाल रंग के, सिंह के नखाग्रभाग के समान गुलाबी रंग के चोंच से, विविध प्रकार के फलों के रस तथा धानों की बालियों के अधपके दानों को दे देकर सर्वातिशायी बहुत अधिक सन्तान प्रेम के कारण उन्हें अपने गोद में लिए हुए वहीं पर रातें बिताते थे।

संस्कृत व्याख्या—कृताहाराश्च=कृता विहिता आहाराः भोजनानि यैस्ते तथोक्ताः, पुनः=आहारानन्तरम्, प्रतिनिवृत्य=प्रत्यागत्य, आत्मकुलायावस्थितेभ्यः=

आत्मीयाः स्वकीया ये कुलायाः नीडानि 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्' 'इत्यमरः' तत्र अवस्थितेभ्यः उषितेभ्यः तथोक्तेभ्यः **शावकेभ्यः** पृथुकेभ्यः, **विविधान्** अनेक प्रकारान् **फलरसान्** **कलममञ्जरीविकारान्** च=कलमानाम् धान्यविशेषाणां मञ्जर्यः वल्लयः तासां विकाराः परिपाकविशेषपरिणताः कणाः तान् च, **प्रहतहरिण-रुधिरानुरक्तशार्दूलनखकोटिपाटलेन**=प्रहतस्य व्यापादितस्य हरिणस्य मृगस्य रुधिरेण रक्तेन अनुरक्ता अरुणीकृता या शार्दूलस्य सिंहस्य नखकोटिः नखाग्रभागः तद्वत् पाटलेन श्वेतरक्तेन (श्वेतरक्तस्तु पाटलः इत्यमरः) तथोक्तेन, **चञ्चपुटेन** त्रोटीसम्पुटेन, **दत्त्वा दत्त्वा**=मुहु र्मुहुः तेभ्यः आहारं प्रदाय, **अधरीकृतसर्वस्नेहेन**= अधरीकृतः तिरस्कृतः सर्वस्नेहः अपत्यभिन्नवर्ति समस्त प्रेम येन तेन तादृशेन **असाधारणेन** अनन्येन **गुरुणा** महता **अपत्यप्रेम्णा** सन्तान स्नेहेन, **क्रोडान्तर्निहिततनयाः**= क्रोडानाम् उत्सङ्गानाम् अन्तर्निहिता मध्यभागेषु संरक्षिताः तनयाः अपत्यानि यैस्ते तथोक्ताः ते तस्मिन्नेव पूर्वोक्त एव **शाल्मलीवृक्षे**, **क्षपाः**=रात्रीः, गमयन्ति स्म ।

**संस्कृत सरलार्थ**—ते च पक्षिणः स्वाहारं सम्पाद्य पुनः प्रत्यागत्य स्वकीयनीडेषु वर्तमानेभ्यः स्वपृथुकेभ्यः, व्यापादितमृगरुधिरेण रक्तीकृतस्य सिंहस्य नखाग्रभागवच्छ्वेत-रक्तेन चञ्चुसम्पुटेन, विविधफलरसान् धान्यविशेषाणां मञ्जरीणामर्धपक्व कणांश्च भूयो भूयः दत्त्वा, तिरस्कृतान्यसमस्तस्नेहेन महता सन्तानस्नेहेन स्वकीयोत्सङ्ग संरक्षितशिशवः ते तस्मिन्नेव पूर्वोक्ते शाल्मलीवृक्षे क्षपाः गमयन्ति स्म ।

टिप्पणी—शावकेभ्यः—शिशुभ्यः "पृथुकः शावकः शिशुः इत्यमरः, कलमेति= कलम एक प्रकार के धान्य जिन्हें साठी धान्य कहते हैं; मञ्जरी=धान्य की वालें, विकार=अधपके चावलों के दाने । प्रहतेति—प्रहत=सिंह द्वारा व्यापादित, अतएव मृग के खून से लाल सिंह के नखों के अग्रभाग से श्वेतरक्त अर्थात् गुलाबी रंग के, 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः इस वाक्य में लुप्तोपमालंकार है । चञ्चुपुटेन=चोंच के सम्पुट से "चञ्चुः पञ्चाङ्गुले त्रोट्याम् कोशवचन । अधरीकृत=निम्नता को प्राप्त कराया गया । क्षपाः रात्रियों को "त्रियामाः क्षणदा-क्षपाः" इत्यमरः क्षपयन्ति= अतिवाहयन्ति । णिजन्त क्षिप् प्रेरणे प्रथमा बहुवचने रूपम् ।

**एकस्मिंश्च जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात् सुनुरभवम् । अतिप्रबलया ममैव जायमानस्य प्रसववेदनया जननी मे लोकान्तरमगमत् । अभिमत-जायाविनाशदुःखितोऽपि खलु तातः सुतस्नेहादन्तर्निगृह्य पटुप्रसरमपि शोक मेकाकी मत्संवर्धनपर एवाभवत् । अतिपरिणत वयाश्च कुशचीरानुकारिणी मल्पावशिष्टजीर्ण पिच्छजालजर्जराम् अवस्रस्तांसदेशशिथिलाम् अपगतो-त्पतन संस्कारां पक्षसन्ततिम् उद्वहन्, उपारूढकम्पतया सन्तापकारिणी मङ्गलग्नां जरामिव विधुन्वन्, अकठोरशेफालिकाकुसुमनालपिञ्जरेण कलममञ्जरीदलनमसृणितक्षीणोपान्तलेखेन स्फुटिताग्रकोटिना चञ्चुपुटेन,**

**परनीडनिपतिताभ्यः शालिवल्लरीभ्यस्तण्डुलकणानादायादाय तरुमूलनिपतितानि च शुककुलावदलितानि फलशकलानि समाहृत्य परिभ्रमितुमशक्तो मह्यमदात् । प्रतिदिवसमात्मना च मदुपभुक्तशेषम् अकरोदशनम् ।**

शब्दार्थ—और एक पुराने (जीर्ण) खोखले में, पत्नी (जायया) के साथ रहते हुए (निवसतः) वृद्धावस्था (पश्चिमे वयसि) में वर्तमान पिता का, किसी भी प्रकार (कथमपि) विधिवशात् (भाग्यवश) में ही अकेला (अहमेवैकः) पुत्र (सूनुः) हुआ । और मेरे ही उत्पन्न होने की (ममैव जायमानस्य) (अतिप्रबलया प्रसववेदनया) अति असहनीय प्रसवकालीन पीडा से, आक्रान्त हुई (अभिभूता च) मेरी माता परलोक (लोकान्तरम्) चली गई । अभीष्ट पत्नी (अभिमतजाया) की मृत्यु (विनाश) से दुःखी हुए भी पिता, निश्चयरूप से (खलु) पुत्र प्रेम के कारण (सुतस्नेहात्) अत्यधिक वेगशाली भी (पटुप्रसरमपि) शोक को भीतर ही दबा कर (अन्तर्निगृह्य) अकेले ही, (एकाकी) मेरे पालन पोषण में ही तत्पर (मत्संवर्धनपर एव) हो गये । और बहुत पकी हुई आयु वाले अर्थात् अतिवृद्ध (वे) (अतिपरिणातवयाश्च) कुशों के चिथड़ों का अनुकरण करने वाली (कुशचीरानुकारिणीम्) (अतिवृद्धता के कारण गिर जाने से) बहुत थोड़े बचे जीर्ण पंख समूह से विशीर्ण (अल्पावशिष्टजीर्णपिच्छजालजर्जराम्) (अतिवृद्धता के कारण) नीचे झुके हुए कन्धे पर शिथिल (अवस्रस्तांसदेशशिथिलाम्) उड़ने की शक्ति से रहित (अपगतोत्पतनसंस्काराम्) ऐसे पंख समूह को धारण करते हुए (पक्षसन्तति मुद्धहन्न्) (वृद्धावस्था से) उत्पन्न हुए (शरीर के) कम्पन के द्वारा मानो (वह) अतिदुःख देने वाली, शरीर से चिपटी हुई (अङ्गलग्नाम्) वृद्धावस्था को ही झाड़ते हुए (विधुन्वन्) इधर-उधर चलने में असमर्थ (अतएव) सुकुमार (अकठोर) हरसिंगार (शेफालिका) के पुष्प की डंडी या वृन्त (कुसुमनाल) के समान (अब कुछ) पीले वर्ण के (पिञ्जरेण) धान की बालों के तोड़ने से (कलममञ्जरीदलन) चिकनी (मसृणित) और घिसी हुई (क्षीण) किनारे की रेखा वाले (उपान्त लेखेन) (तथा) टूटी हुई अगली नोंक वाले (स्फुटिताग्रकोटिना) चञ्चुसम्पुट से (चञ्चुपुटेन) दूसरों के घोंसलों से गिरी हुई (परनीडनिपतिताभ्यः) धान की बालों से (शालिमञ्जराभ्यः) चावल के कणों को ला लाकर, और तोतों के समूहों द्वारा कुतरे गये (शुककुलावदलितानि) फलों के टुकड़ों को (फलशकलानि च) बटोर कर (समाहृत्य) मुझे देते थे (मह्यमदात्) और प्रतिदिन मेरे खाने से बचे हुए (मदुपभुक्तशेषम्) को स्वयं (आत्मना) खाते थे (अशनमकरोत्) ।

अनुवाद—और एक पुराने खोखले में, पत्नी के साथ रहते हुए, वृद्धावस्था में वर्तमान, पिता का, किसी भी प्रकार मैं ही अकेला पुत्र हुआ । और मेरे ही उत्पन्न होने की अत्यसहनीय प्रसूति कालीन पीड़ा से आक्रान्त हुई मेरी माता परलोक चली गई अर्थात् मर गई । अभीष्ट पत्नी की मृत्यु से दुःखी हुए भी पिता, निश्चय रूप से, पुत्र प्रेम के कारण अत्यधिक वेगशाली भी शोक को भीतर ही दबा कर, अकेले ही

मेरे पालन पोषण में ही तत्पर हो गये। और बहुत पकी हुई आयु वाले अर्थात् अतिवृद्ध (वे) (अतिवृद्धता के कारण झड़ जाने से) बहुत थोड़े बचे जीर्ण पंख समूह से छिन्न-भिन्न (अतएव) कुशों के (बने) चिथड़ों का अनुकरण करने वाले, (अतिवृद्धतावश) नीचे झुके हुए कन्धे पर शिथिलित, और उड़ने की शक्ति से रहित, पंख समूह को धारण करते हुए, (वृद्धावस्थावश) उत्पन्न हुए (शरीर के) कम्पन के द्वारा मानो अतिदुःखदायिनी और शरीर से चिपकी हुई वृद्धता को ही झाड़ते हुए, इधर-उधर चलने में असमर्थ हुए (वे) सुकुमार हर सिंगार के पुष्प वृन्त के समान (अब कुछ) पीले वर्ण के, धान की बालों के कुतरने से चिकनी और घिसी हुई निकारे की लेखा वाले, (तथा) टूटी हुई आगे की नोंक वाले चोंच के सम्पुट से, दूसरों के घोंसलों से गिरी हुई धान की बालों से चावल के कणों को ला लाकर और वृक्ष के नीचे गिरे हुए तोतों के समूहों द्वारा कुतरे गये फलों के टुकड़ों को बटोर कर मुझे देते थे। और प्रतिदिन मेरे खाने से बचे हुए को वे स्वयं खाते थे।

भावार्थ—उसी वृक्ष के एक पुराने खोखले में मेरे वृद्ध पिता अपनी पत्नी के साथ रहते थे। विधिवश किसी भी प्रकार उनका मैं अकेला ही पुत्र हुआ। मेरे उत्पन्न होने की असह्य पीड़ा से मेरी माता मर गई। प्रिय पत्नी की मृत्यु से दुःखी भी मेरे पिता, पुत्र प्रेम के कारण, अतिवेगशाली भी शोक को भीतर ही दबा कर मेरे पालन पोषण में ही तत्पर हो गये। अतिवृद्धतावश उनके दोनों पंखों में बहुत थोड़े पंख शेष रह गये थे अतएव वे कुशों के बने चिथड़ों की तरह जीर्ण शीर्ण एवं रूखे हो गये थे तथा उनके वे पंख वृद्धतावश कन्धों के नीचे झुक जाने के कारण शिथिल हो गये थे तथा अब उनमें उड़ने की शक्ति नहीं रह गई थी। वृद्धतावश उनका शरीर हिलता रहता था जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे अपने शरीर में चिपकी हुई और दुःखदायिनी वृद्धता को झाड़कर गिरा देना चाहते हों। वृद्धतावश उनकी चोंच, कोमल हरसिंगार के फूल के वृन्त के समान अब कुछ पीलिमा-युक्त लाल रंग की हो चली थी और जिसके किनारे अब धान की बालियों को कुतरते कुतरते घिस गये थे और चिकने पड़ गये थे उसका आगे का नुकीला भाग भी टूट चुका था, इधर उधर जाने में असमर्थ होने से वे ऐसी ही अपनी चोंच से, दूसरों के घोंसलों के नीचे गिरी हुई धान की बालों से चावल के कणों को ला लाकर मुझे खिलाते थे और तोतों द्वारा कुतर कुतर कर नीचे गिराये गये फलों के टुकड़ों को लाकर भी मुझे देते थे, मुझे खिलाने के बाद अर्थात् मेरे खाने से बचे हुए को ही वे स्वयं खाते थे।

संस्कृत व्याख्या—एकस्मिन् जीर्णकोटरे=चिरकालीनकोटरे, जायया पत्न्या सह निवसतः निवासं कुर्वतः, पश्चिमे वयसि अन्तिमावस्थायां वार्धक्य इत्यर्थः वर्तमानस्य विद्यमानस्य, कथमपि महता दुःखेनेत्यर्थः पितुः स्वजनकस्य विधिवशात् भाग्यसंयोगात् अहमेवैकः=अहमेव केवलं नान्यः कश्चिदपरः सूनुः पुत्रः अभवम् अजनिषम्।

मम जायमानस्यैव उत्पद्यमानस्यैव अतिप्रबलया अत्यसह्यया प्रसववेदनया प्रसूतिपीडया अभिभूता समाक्रान्ता सती मे मम जननी माता लोकान्तरम् परलोकम् अगमत् अयासीत् ।

अभिमत जायाविनाशदुःखितः=अभिमतायाः अभीष्टायाः जयाया भार्यायाः विनाशेन मृत्युना दुःखितः तथोक्तः अपि, खलु निश्चयेन, तातः=पिता सुतस्नेहात् पुत्रवात्सल्यात् पटुप्रसरम् पटुः स्पष्टः प्रबलो वा प्रसरः विस्तारः यस्य तम् तथोक्तम् शोकम् जायाविनाश दुःखम् अन्तर्निगृह्य स्वहृदयाभ्यन्तर एव अवरुध्य एकाकी एकक एव मत्संवर्धनपरः मम यत् संवर्धनं पोषणं तस्मिन् परः तत्परः एव अभवत् ।

अतिपरिणतवयाश्च=अतिपरिणतम् अत्यन्तपरिपक्वम् वयः अवस्था यस्य स तादृशः अतिवृद्ध इत्यर्थः च, कुशचीरानुकारिणीम्=कुशः दर्भः चीरम् जीर्णवस्त्रखण्डम् तदनुकरोति तत्सादृश्यं भजति या सा ताम् तथोक्ताम्, अल्पावशिष्ट जीर्ण पिच्छजाल-जर्जराम्=अल्पानि वार्धक्येन स्तोकानि अवशिष्टानि जीर्णानि पुरातनानि यानि पिच्छानि तेषां जालं समुदायः तेन जर्जराम् विशीर्णाम् तथोक्ताम्, अवस्रस्तांसदेशशिथिलाम्=अवस्रस्ते वार्धक्यवशादधोऽवलम्बिते असंदेशे स्कन्धभागे शिथिला अस्थिरावयवसंयोगा ताम् तथोक्ताम्, अपगतोत्पतनसंस्काराम्=अपगतः दूरीभूतः उत्पतनस्य उड्डीयाकाश-विहरणस्य संस्कारः सामर्थ्यविशेषः यस्याः सा ताम् तथोक्ताम्, पक्षसन्ततिम् पक्ष-समुदायम् उद्वहन् धारयन् ।

उपारूढकम्पतया=उपारूढः वार्धक्यवशात् स्वभावतः एव समुद्भूतः यः कम्पः शरीरसञ्चलनं यत्र सा उपारूढकम्पता तस्या भावस्तया प्राप्तशरीरकम्पतया, सन्तापकारिणीम् दुःखदायिनीम्, अङ्गलग्नाम् सर्वशरीरव्यापिनीम् जराम् वृद्धावस्थाम् विधुन्वन् किञ्चित्संचालयन् परित्यन्निवेत्यर्थः । अकठोरशेफालिकाकुसुमनाल-पिञ्जरेण=अकठोरं कोमलम् यच्छेफालिकायाः निर्गुण्डीत्याख्यातायाः कुसुमं पुष्पं तस्य यन्नालं वृन्तं तद्वत् पिञ्जरेण पिङ्गलवर्णेन तथोक्तेन, कलमस्य एतदाख्यस्य धान्यविशेषस्य या मञ्जर्यः शिखाः वल्लर्यः वा तासां दलनेन चञ्चुभिः निरन्तरं विदारणं कर्तनम् वा तेन मसृणिता चिक्कणीकृता क्षीणा घृष्टा च उपान्तलेखा प्रान्त-स्थलवर्तिनी रेखा यस्य स तादृशेन, (तथा) स्फुटिताग्रकोटिना=स्फुटिता श्रमवशात् क्षयंगता अग्रकोटिः अग्रिमतीक्ष्णतामागः यस्य तेन तादृशेन चञ्चुपुटेन चञ्चसम्पुटेन ।

परनीडनिपतिताभ्यः—परेषा मपरेषां पक्षिणां नीडेभ्यः कुलायेभ्यः निपतिताः ताभ्यः, शालिवल्लरीभ्यः धान्यमञ्जरीभ्यः, तण्डुलकणान् आदाय आदाय आनीय आनीय, तरुमूलनिपतितानि च=वृक्षमूलभागे निपतितानि च, शुककुलावदलितानि= शुकानां कीराणां कुलेन समुदायेन अवदलितानि चञ्चुभिः विदीर्य भूमौ निपातितानि फलशकलानि फलखण्डानि, समाहृत्य एकीकृत्य, परिभ्रमितुम् इतस्ततो गमनं विधातुम् अशक्तः असमर्थः स मत्पिता मह्यम् वैशम्पायनसंज्ञकाय शुकाय अदात् भक्षणाय दत्तवान् । प्रतिदिवसम् प्रतिदिनम् च आत्मना स्वयम्, मदुपभुक्तशेषम्—

मया उपभुक्तस्य भक्षितस्य शेषम् अवशिष्टम् मदुपभुक्तशेषम् अशनम् भोजनम् अकरोत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—तस्य शाल्मलीवृक्षस्य एकस्मिन् चिरकालीनकोटरे, स्वभार्यया सह निवासं कुर्वतः अतिवृद्धस्य मम पितुः कथमपि भाग्यवशात् अहमेव केवलमेकएव पुत्रोऽभवम् । ममोत्पद्यमानस्यैव अत्यसह्यया प्रसूतिकालपीडयाऽतिक्रान्ता सती मे जननी परलोकमयासीत् । अभीष्टभार्याया मृत्युना दुःखितोऽपि मे तातः पुत्रवात्सल्यात् प्रबलवेगशालिनमपि तच्छोकं स्वहृदयाभ्यन्तर एवावरुध्य एकक एव मम भरण-पोषण तत्परोऽभवत् । अतिवृद्धः अतएवेतस्ततो गन्तुमसमर्थः स मे तातः कुशजीर्णवस्त्रखण्डानुकारिणीम् वार्धक्येन स्तोकावशिष्ट पुरातनपिच्छ समुदायेन विशीर्णाम्, वार्धक्यवशादधोऽवलम्बिते स्कन्धभागे शैथिल्यमनुगताम् अतएव दूरीभूतोत्पतनसामर्थ्याम् स्वपक्षसन्ततिं धारयन् तथा वार्धक्यवशात् स्वभावत एव समुद्भूत शरीरकम्पतयातिदुःखदायिनीं सर्वशरीरव्यापिनीं वृद्धावस्थां परित्यजन्निव, कोमलनिर्गुण्डीपुष्पवृन्तवत् पिङ्गलवर्णेन, कलमाख्यधान्यवल्लरीकर्तनेन चिक्कणीकृतेन घृष्टप्रान्तस्थलवर्तिलेखेन श्रमवशात् क्षीणाग्रिमतीक्ष्णतरभागेन चञ्चुपुटेन, परपक्षिकुलायनिपतिताभ्यः धान्यमञ्जरीभ्यः तण्डुलकणा नानीयानीय वृक्ष मूलपतितानि शुककुलावदलितानि फलखण्डानि चैकीकृत्य मह्यं भक्षणाय प्रददौ, प्रतिदिनञ्च मदुपभुक्तावशिष्ट मेवाशन स्वय मकरोत् ।

**टिप्पणी**—कुशचीरेति—कुशनिर्मित चिथड़ों जैसी, **पश्चिमे वयसि**=वृद्धावस्था में, **अल्पावशिष्टेति**—थोड़े बचे हुए पुराने पंखों के कारण जीर्ण शीर्ण, वृद्धावस्था में पंख अपने आप ही झड़ने लगते हैं और कुछ ही शेष रह जाते हैं, **अवस्रस्तेति**—वृद्धावस्था में कन्धे नीचे को झुक जाते हैं **अपगतेति**—बुढ़ापे में उड़ने की शक्ति भी क्षीण हो गई थी। **पक्षेति**—पक्षसन्ततिः=पंखों का समूह । **उपारूढेति**—वृद्धतावश शरीर में स्वभावतः कम उत्पन्न हो जाने के कारण, धुन्वन् इव=मानो वह शरीर में व्याप्त बुढ़ापे को ही झाड़कर दूर फेंकना चाहता हो । **अकठोरेति**—तोते की चोंच स्वभावतः लाल होती है पर अब वह वृद्धतावश कुछ पीली पड़ गई थी । **मसृणित**—चिकना । **अग्रकोटि**=चोंच की नोंक, **समाहृत्य**—एकत्र करके ।

## प्रभात वर्णनम्

**एकदा तु प्रभातसन्ध्यारागलोहिते गगने च कमलिनीमधुरक्तपक्षसम्पुटे वृद्धहंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि, परिणतरङ्कुरोमपाण्डुनि व्रजति विशालतामाशाचक्रवाले गजरुधिररक्तहरिसटालोहिनीभिः प्रतप्तलाक्षिकतन्तुपाटलाभि रायामिनीभिः अशिशिरकिरण दीधितिभिः पद्मरागशलाकासम्मार्जनीभिरिव समुत्सार्यमाणे गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे, सन्ध्यामुपासितु मुत्तराशावलम्बिनि मानससरस्तीरमिवावतरति सप्तर्षिमण्डले.........मृगयाकोलाहलध्वनिरुदचरत् ।**

**शब्दार्थ**—**एकदा तु गगने च**=और एक बार तो आकाश के, **प्रभातसन्ध्यारागलोहिते**=प्रातःकालीन सन्ध्या की लालिमा (राग) से लाल हो जाने पर (लोहिते), **कमलिनीमधुरक्तपक्षसम्पुटे**=कमलिनी के (लाल वर्ण के) पुष्प रस से (मधु) अनुरञ्जित (रक्त) पक्षद्वय (पक्षसम्पुट) वाले, **वृद्ध हंस इव**=वृद्धकलहंस के समान, **चन्द्रमसि**=चन्द्रमा के, **मन्दाकिनीपुलिनात्**=आकाश-गंगा के रेतीले तट (पुलिन) से, **अपरजलनिधितटम्**=दूसरे अर्थात् पश्चिम समुद्र के तट पर, **अवतरति**=उतरने पर, **परिणतरङ्कुरोमपाण्डुनि**=वृद्ध (परिणत) रङ्कुनामक मृग के रोओं (रोम) के समान, हल्के पीले रंग वाले (**पाण्डुनि**) **आशाचक्रवाले**=दिङ्मण्डल के, **विशालतां व्रजति**=(अन्धकार के नष्ट हो जाने से) विस्तीर्णता को प्राप्त कर लेने पर (व्रजति), **गजरुधिररक्तहरिसटालोहिनीभिः**=हाथी के रुधिर से लाल (रक्त) सिंह (हरि) की गर्दन के बालों (सटा) के समान लाल वर्ण की (**लोहिनीभिः**) **प्रतप्तलाक्षिकतन्तुपाटलाभिः**=गर्म किये हुए (प्रतप्त) लाख के तारों (लाक्षिक तन्तु) के समान श्वेत रक्त वर्ण वाली अर्थात् कुछ गुलाबी (पाटलाभिः) **आयामिनीभिः**=(तथा) लम्बी, **अशिशिरकिरणदीधितिभिः**=सूर्य (अशिशिर किरण) की किरणों से (दीधितिभिः) मानो, **पद्मरागशलाकासम्मार्जनीभिः इव**=पद्मराग (लालमणि) मणि की सींकों से (शलाका) (निर्मित) झाड़ुओं से (सम्मार्जनीभिः) **गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे**=आकाशरूपी फर्श पर (कुट्टिम) (फैले हुए) पुष्पसमूहरूपी (कुसुमप्रकरे) तारागणों के, **समुत्सार्यमाणे**=दूर कर दिये जाने पर अर्थात् झाड़कर फेंक दिये जाने पर, **उत्तराशावलम्बिनि**=उत्तर दिशा (आशा) में स्थित, **सप्तर्षिमण्डले**=सप्तर्षिमण्डल के, **सन्ध्यामुपासितुम् इव**=मानो सन्ध्योपासना के लिए, **मानससरस्तीरम्**=मानसरोवर के तट पर, **अवतरति**=उतरने पर...............।

**अनुवाद**—एक बार तो आकाश के प्रातःकालीन सन्ध्या की लालिमा से लाल हो जाने पर, और कमलिनी के पुष्प रस से अनुरञ्जित पक्षद्वय वाले वृद्ध कलहंस के समान चन्द्रमा के आकाशगंगा के रेतीले तट से पश्चिम समुद्र के तट पर उतर जाने पर, वृद्ध रंकु नामक मृग के रोओं के समान हल्के पीले रंग वाले दिङ्मण्डल के विस्तीर्णता को प्राप्त कर लेने पर, हाथी के रुधिर से लाल सिंह की गर्दन के बालों के समान लाल वर्ण की तथा गर्म किये हुए लाख के तारों के समान कुछ गुलाबी रंग की लम्बी-लम्बी सूर्य की किरणों से मानो पद्मराग मणि की सींकों से (निर्मित) झाड़ुओं से, आकाशरूपी फर्श पर (बिखरे हुए) पुष्पसमूहरूपी तारागणों के (झाड़कर) दूर कर दिये जाने पर, उत्तर दिशा में स्थित सप्तर्षिमण्डल के मानो सन्ध्योपासना के लिए मानसरोवर के तट पर उतर जाने पर...............।

**भावार्थ**—एक बार प्रातःकाल ही उस वन में शिकार का कोलाहल उत्पन्न हुआ। उस समय प्रातःकालीन सन्ध्या की लालिमा से आकाश लाल हो गया था और चन्द्रमा पश्चिम दिशा की ओर धीरे-धीरे ढल रहा था अर्थात् डूबने ही वाला

था, उसे देख ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाशरूपी कमलिनी के लाल वर्ण के पुष्परस से अनुरञ्जित हुआ लाल पंखों वाला कोई बूढ़ा हंस आकाशगंगा के रेतीले तट से पश्चिम समुद्र तट पर उतर रहा हो। दिङ्मण्डल के छोर तक (फैला हुआ क्षितिज) जो कि इस समय बूढ़े रंकु नामक मृग के रोओं के समान हल्के पीले रंग का हो गया था, क्रमशः स्पष्ट दिखाई पड़ने के कारण विस्तृत-सा जान पड़ने लगा था। हाथी के रक्त में सने हुए सिंह के अयाल (गर्दन के बाल) के समान लाल तथा तपायी गयी लाख की सलाइयों के समान श्वेत और पीले रंग की सूर्य की किरणें अब आकाश पर से तारागणों को समेटने लगी थीं, अतः वे देखने पर ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो सूर्य पद्मराग की मणियों की सलाइयों से बनी हुई झाड़ू से आकाशरूपी फर्श पर बिखरे हुए पुष्पसमूहरूपी तारागणों को झाड़कर समेट रहा हो। अब इस समय सप्तर्षिमण्डल आकाश के उत्तरी छोर पर स्थित हो रहा था अतः वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह मानसरोवर के तट पर प्रातः सन्ध्या की उपासना के लिए उतरकर आ गया हो।

**संस्कृत व्याख्या—एकदा**=एकस्मिन् समये.........मृगयाकोलाहलध्वनिरुदचरत् इति दूरेणान्वयः। **प्रभातसन्ध्यारागलोहिते**=प्रभातस्य प्रातःकालस्य या सन्ध्या तस्या यो रागः रक्तिमा तेन लोहिते रक्तवर्णे तथोक्ते, **गगने** आकाशतले (अतएव) कमलिन्या आकाशगङ्गानलिन्याः यत् मधु पुष्परसस्तेन रक्तम् अनुरञ्जितं पक्षसम्पुटं छदसम्पुटम् पक्षद्वयमित्यर्थः यस्य स तस्मिन् **कमलिनीमधुरक्तपक्षसम्पुटे, वृद्ध हंस इव**, जरत्कलहंस इव, **चन्द्रमसि** चन्द्रे **मन्दाकिनी पुलिनात्**=आकाशगङ्गायाः सकत प्रदेशात्, **अपरजलनिधितटम्**=अपरः पश्चिमः यः जलनिधिः समुद्रः तस्य तटम् तीरम् तथोक्तम्, **अवतरति** अवतीर्णे सति, **परिणतरङ्कुरोमपाण्डुनि**=परिणतः वृद्धः यः रंकुः मृगविशेषः तस्य रोमाणि तनूरुहाणि तद्वत् पाण्डुनि पीतशुभ्रे, **आशाचक्रवाले**, दिङ्मण्डले **विशालताम्** विस्तीर्णतां **व्रजति** गच्छति सति, **गजरुधिररक्तहरिसटा-लोहिनीभिः**=गजरुधिरेण हस्तिरक्तेन रक्ताः रक्तवर्णा या हरेः=सिंहस्य सटाः स्कन्धकेसराः तद्वत् लोहिनीभिः रक्तवर्णाभिः तथोक्ताभिः, **प्रतप्तलाक्षिकतन्तुपाटलाभिः**=प्रतप्ताः उष्णीकृता ये लाक्षिकतन्तवः जतुविकारोत्पन्नसूत्राणि तद्वत् पाटलाभिः श्वेतरक्ताभिः तथोक्ताभिः, **आयामिनीभिः**=विस्तारवतीभिः, **अशिशिरकिरणदीधितिभिः**=अशिशिराः उष्णाः किरणाः रश्मयः यस्य सः अशिशिरकिरणः सूर्यः तस्य दीधितिभिः रश्मिभिः, **पद्मरागशलाका सम्मार्जनीभिः इव**=पद्मरागाः लोहितकमणयः तेषां शलाका इषीकाः तासां सम्मार्जनीभिः गृहादिशोधनीभिः बहुकरीभिर्वा इव विद्यमानाभिः, **गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे**=गगनम् आकाशतलमेव कुटिटमम् बहिर्द्वारम् बद्धभूमिर्वा तत्र यः कुसुमानां पुष्पाणां प्रकरः समूहः तस्मिन् इव **विद्यमाने तारागणे** नक्षत्रमण्डले **समुत्सार्यमाणे** दूरीक्रियमाणे सति, **उत्तराशा उदीची** दिशा तामवलम्बते यः स तस्मिन् **उत्तरावलम्बिनि सप्तर्षिमण्डले**=सप्तर्षिसमूहे ताराभूते मरीच्यादि

सप्तदेवर्षिमण्डले इत्यर्थः **सन्ध्याम्** प्रातः सन्ध्याम् **उपासितुं** कर्तुम् **मानससरस्तीरम्** मानसरोवरतटम् **अवतरति** अवरोहति सति ।

**संस्कृत सरलार्थ**—एकदा स्पष्टे जाते प्रत्युषसि, **मृगयाकोलाहलध्वनिरुदचरदिति** दूरेणास्य वाक्यस्यान्वयः । यदा गगनतलं प्रातःकालीन सन्ध्यायाः रागेण रक्तवर्णमासीत्, आकाशनलिन्या लोहितवर्णपुष्परसेन अनुरञ्जित पक्षद्वयवान् जरत्कलहंस इव चन्द्रश्च आकाशगङ्गासैकतप्रदेशात् पश्चिमसमुद्रतीरमवतरन्नासीत्, अथ च यदा वृद्धरङ्कुसंज्ञकस्य मृगविशेषस्य लोमवत् पीतशुभ्रं दिङ्मण्डलम् अन्धकारापगमात् विस्तीर्णतामाप्नुवदासीत् । एवञ्च यदा व्यापादितगजशोणितेन रक्तवर्णसिंहस्कन्धकेसरवद्रक्तवर्णाभिः उष्णीकृत जतुविकारोत्पन्न सूत्रवच्छ्वेतरक्ताभिः इतस्ततो विस्तारवतीभिः लोहितकमणिशलाकाशोधिनीभिरिव विद्यमानाभिः सूर्यदीधितिभिः गगनमेव कुट्टिमं तत्र प्रसृतकुसुमसमूहरुपितारामण्डलं दूरीक्रियमाणमासीत्, एवञ्च यदा उत्तरदिगवलम्बिसप्तर्षिमण्डलं प्रातःसन्ध्यां विधातुमिव मानसरोवरतीरमवतरदासीत् ।

**टिप्पणी—प्रभातेति**—प्रातःकालीन सन्ध्या की लालिमा से आकाश के लाल हो जाने पर, यह विशेषण गगन और चन्द्रमा दोनों का ही है, इस प्रकार के आकाश में, आकाश-कमलिनी के लाल पुष्परस से लाल पंखों वाले वृद्ध हंस के समान चन्द्रमा आकाशगंगा के रेतीले तट से उतर कर पश्चिम दिशा में अस्त हो रहा था, चन्द्रमा को वृद्ध हंस से उपमित करने में, वर्णसाम्य एवं गतिसाम्य भी है, यद्यपि चन्द्र और हंस दोनों ही श्वेत वर्ण के हैं तथापि लोहित गगन से चन्द्रमा और कमलिनी के पराग से हंस दोनों लाल हो गये हैं, वृद्ध होने के कारण हंस और उतरने के कारण अस्तोन्मुख चन्द्र दोनों मन्द गति वाले भी हैं, **परिणतेति**—परिणत का अर्थ है वयः परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था को प्राप्त, रङ्कु नामक मृग के रोओं के समान पीतशुभ्र रंग का "पाण्डुस्तु पीतभागार्धं केतकीधूलिसन्निभं" कोश । **आशाचक्रवाले**—आशा=दिशा, चक्रवाल=मण्डल, दिशास्तु ककुभः काष्ठाः आशाश्च हरितश्च ताः, चक्रवालन्तु मण्डलम् इत्यमरः । विशालताम्=विस्तीर्णताम् । अन्धकार के दूर हो जाने से दिशाओं के छोर स्पष्टया दृष्टिगत होने लगे थे, यही उनकी विशालता थी । **गजरुधिरेति**—इस पद में रुधिर और रक्त यद्यपि एकार्थवाची हैं अतः प्रथमतः पुनरुक्ति की प्रतीति होती है पर उक्त प्रकार से अर्थ करने पर दोनों की पृथकता भी स्पष्ट हो जाती है, रुधिर=रक्त, रक्त=लाल वर्ण का, इस प्रकार यहाँ पुनरुक्तवदाभास नामक अलंकार है । "आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्येन भासनम्, पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दगः (सा. द.) **हरिसटालोहिनीभिः**=हरिसटावल्लोहिनीभिः लुप्तोपमालंकार है, इस प्रकार यहाँ इन दोनों अलंकारों का संकर है । **प्रतप्तेति**—तपाये गये, लाक्षिक तन्तु=जतुविकारोत्पन्न सूत्र, इनके समान पाटल अर्थात् श्वेत रक्त वर्ण की "श्वेतरक्तस्तु पाटलः" अत्र लुप्तोपमालंकारः । **आयामिनीभिः**=यह दीधितिभिः का विशेषण है. आयामिनी=लम्बी, दूर तक फैली हुई, आ+यम्+घञ्=आयामः,

तदनु इन् आयामिन् ततः ङीप् । **सम्मार्जनी**=शोधिनी या झाड़ू जो कि पद्मरागमणि की सींकों से मानो बनायी गयी थीं "सम्मार्जनी शोधिनी स्यात् इत्यमरः" । यहाँ इव जात्युत्प्रेक्षाबोधक है । **गगन कुट्टिमेति**=आकाशरूपी फर्श=आकाश ही मानों फर्श था जिस पर तारागणरूपी पुष्प बिखरे थे जिन्हें शोधिनी से झाड़कर एकत्र किया गया था । यहाँ तारामण्डल पर कुसुमप्रकरत्व के आरोप का, आकाश पर कुटिट्म-मत्वारोप निमित्त है अतः यहाँ परम्परित रूपक अलंकार है । "यत्र कस्यचिदारोपः परारोपस्य कारणम् तत्परम्परितम्" **समुत्सार्यमाणे**—झाड़कर साफ कर दिये जाने पर, सम्+उत्+सृ+णिच्=सारि+शानच् सप्तम्येकवचने । **सप्तर्षिमण्डले**—इस मण्डल में सात निम्नलिखित ऋषि रहते हैं और यह प्रातःकाल उत्तर दिशा में दिखलाई पड़ते हैं । "मरीचि रङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः वसिष्ठश्चेति सप्तैते ज्ञेयाश्चित्र शिखण्डिनः" । कविकल्पना है कि मानो ये सप्तर्षि प्रातः सन्ध्योपासना के लिए मानसरोवर के तट पर, जो कि उत्तर दिशा में ही है, पहुंच गये हों ।

**तटगतविघटितशुक्तिसम्पुटविप्रकीर्णमरुणकरप्रेरणाधोगलितमुडगण-मिव मुक्ताफलनिकरमुद्वहति धवलितपुलिन मुदन्वति पूर्वेतरे, तुषार-विन्दुवर्षिणि विबुद्धशिखिकुले विजृम्भमाणकेशरिणि करिणीकदम्बक-प्रबोध्यमानसमदकरिणि क्षपाजलजडकेशरं कुसुमनिकरमदयगिरिशिखर-स्थितं सवितारमिवोद्दिश्य पल्लवाञ्जलिभिः समुत्सृजति कानने, रासभरोम-धूसरासु वनदेवताप्रासादानां तरूणां शिखरेषु पारावतमालायमानासु धर्म-पताकास्विव समुन्मिषन्तीषु तपोवनाग्निहोत्रधूमलेखासु, अवश्यायशीकरिणि लुलितकमलवने रतिखिन्नशबरसीमन्तिनीस्वेदजलापहारिणि वनमहिष रोमन्थफेनविन्दुवाहिनि चलितपल्लवलतालास्योपदेशव्यसनिनि विघटमान-कमलखण्डमधुशीकरासारवर्षिणि कुसुमामोदतर्पितालिजाले निशावसानजात-जडिम्नि मन्दमन्दसञ्चारिणि प्रवाति प्राभातिके मातरिश्वनि,........।**

शब्दार्थ—**पूर्वेतरे उदन्वति**=पश्चिम (पूर्वेतर) समुद्र (उदन्वान्) के, **तटगत-विघटित शुक्तिसम्पुटविप्रकीर्णम्**=किनारे पर स्थित (तटगत) फूटी हुई (विघटित) सीपियों (शुक्ति) के सम्पुटों से बिखरे हुए (विप्रकीर्ण) (तथा) **धवलितपुलिनम्**= वालुकामय तट को (पुलिन) (अपनी कान्तियों से) श्वेत कर देने वाले, (धवलित) **अरुणकरप्रेरणाधोगलितम्**=सूर्य (अरुण) की किरणों (कर) की प्रेरणा से नीचे गिरे हुए (अधोगलितम्) **उडुगणम् इव**=मानो तारों का समूह हो, अर्थात् सूर्य किरणों की प्रेरणा से नीचे गिरे हुए तारागण जैसे, **मुक्ताफलनिकरम्**=मोतियों के समूह को, **उद्वहति**=धारण करने पर । जहाँ ओस के बिन्दुओं की वर्षा हो रही थी, (**तुषार-विन्दुवर्षिणि**) **विबुद्धशिखिकुले**=जहाँ मयूर (शिखि) समूह (कुल) जाग गया था । (विबुद्ध) **विजृम्भमाणकेशरिणि**=जहाँ सिंह (केशरी) जम्हाई ले रहे थे, (विजृम्भमाण) **करिणीकदम्बकप्रबोध्यमानसमदकरिणि**=जहाँ हथिनियों (करिणी) के समूह (कदम्बक) द्वारा, मतवाले हाथी (समदकरी) जगाये जा रहे थे (प्रबोध्यमान) (एता-

दृशे) कानने=वन में, अर्थात् ऐसे वन के द्वारा, **क्षपाजलजडकेशरम्**=रात्रि (क्षपा) के जल अर्थात् रात में गिरने वाली ओस के द्वारा निश्चल (जड) किञ्जल्कों (केशर) वाले, **कुसुमनिकरम्**=पुष्पसमूह को, **उदयगिरिशिखरस्थितम्**=उदयाचल की चोटी पर स्थित, **सवितारम्**=सूर्य को, **उद्दिश्य इव**=उद्देश्य करके अर्थात् निमित्त बनाकर मानो, **पल्लवाञ्जलिभिः**=किसलयरूपी अञ्जलियों द्वारा, **समुत्सृजति**=चढ़ाये जाने पर। **रासभरोमधूसरासु**=गर्दभ (गदहा) के रोओं के समान मटमैले रंग वाली (धूसरा), **वनदेवताप्रासादानां तरुणां शिखरेषु**=वनदेवियों के प्रासाद (महल) रूप वृक्षों की चोटियों पर, **पारावतमालायमानासु**=कबूतरों की पंक्तियों के समान (पारावतमालायमानासु) पारावत=कबूतर, माला=पंक्ति, मालायमान=माला जैसी, प्रतीत होने वाली, (तथा) **धर्मपताकासु इव**=धर्मपताकाओं जैसी, **तपोवनाग्निहोत्रधूमलेखासु**=तपोवन के अग्निहोत्रों के धुयें की रेखाओं के, **समुन्मिषन्तीषु**=ऊपर उठने पर। **अवश्यायशीकरिणि**=ओस (अवश्याय) की बूंदों वाले (शीकरिन्) **लुलितकमलवने**=कमल वनों को कँपाने या हिलाने वाले (लुलित), **रतिखिन्नशबरसीमन्तिनीस्वेदजलकणापहारिणि**=सम्भोग (रति) से थकी हुई (खिन्न) भिल्लों की कामिनियों के (शबरमन्तिनी) पसीने की बूंदों (स्वेदजलकण) को दूर करने वाले (अपहारिणि), **वनमहिषरोमन्थफेनबिन्दुवाहिनि**=जंगली भैंसों (वनमहिष) की जुगलियों के (रोमन्थ) झागों (फेन) की बूंदों को वहन करने वाले (वाहिनि), **चलितपल्लवलतालास्योपदेशव्यसनिनि**=चंचल किसलयों वाली लताओं को (चलितपल्लवलता) नृत्य की शिक्षा (लास्योपदेश) देने में आसक्ति रखने वाले, **विघटमानकमलखण्डमधुशीकरासारवर्षिणि**=खिलते हुए (विघटमान) कमल वनों के (कमलखण्ड) पुष्पपराग की बूंदों की (मधुशीकर) धारावाहिनी (आसार) वर्षा करने वाले, **कुसुमामोदतर्पितालिजाले**=फूलों की सुगन्धि से (कुसुमामोद) भ्रमरसमूह को (अलिजाल) तृप्त करने वाले (तर्पित), **निशावसानजातजडिम्नि**=रात के अन्त में (निशावसान) उत्पन्न (जात) जडता वाले (जडिमा=भारीपन) (अतएव) **मन्द-मन्द सञ्चारिणि**= मन्द मन्द चलने वाले, **प्राभातिके**=प्रातःकालीन, **मातरिश्वनि**=वायु के, **प्रवाति**= **चलने पर** ।

**अनुवाद**—पश्चिम समुद्र के, किनारे पर स्थित फूटी हुई सीपियों के संम्पुटों से बिखरे हुये (तथा) वालुकामय तट को (अपनी कान्तियों से) श्वेत कर देने वाले, सूर्य की किरणों की प्रेरणा से नीचे गिरे हुए तारागण जैसे, मोतियों के समूह धारण करने पर। जहाँ ओस बिन्दुओं की वर्षा हो रही थी, मयूर समूह जाग गया था, सिंह जम्हाई ले रहे थे, और जहाँ हथनियों के समूह द्वारा मतवाले हाथी जगाये जा रहे थे (ऐसे वन में) अर्थात् ऐसे वन के द्वारा, रात्रि के जल अर्थात् रात में गिरने वाली ओस के द्वारा निश्चल किञ्जलकों वाले पुष्पसमूह को, उदयाचल की चोटी पर स्थित सूर्य को उद्देश्य करके मानों किसलयरूपी अञ्जलियों द्वारा चढ़ाये जाने पर। गर्दभ के रोओं के समान मटमैले रंग वाली, वनदेवियों के प्रासादरूप वृक्षों

की चोटियों पर, कबूतरों की पंक्तियों के समान प्रतीत होने वाली, धर्मपताकाओं जैसी तपोवन के अग्निहोत्रों के धुयें की रेखाओं के ऊपर उठने पर। ओस की बूंदों वाले कमल वनों को हिलाने वाले, सम्भोग से थकी हुई भिल्लों की कामिनियों के पसीने की बूंदों को दूर करने वाले, जंगली भैंसों की जुगालियों के झागों के बूंदों को वहन करने वाले, चंचल किसलयों वाली लताओं को नृत्य की शिक्षा देने में आसक्ति रखने वाले, खिलते हुये कमल वनों के पुष्प-पराग की बूंदों की धारावाहिनी वर्षा करने वाले, फूलों की सुगन्धि से भ्रमर समूह को तृप्त करने वाले, रात के अन्त में उत्पन्न जड़ता (भारीपन) वाले (अतएव) मन्द-मन्द बहने वाले, प्रातःकालीन वायु के चलने पर।

**भावार्थ**—किनारे पर आकर फूटी हुई सीपियों के सम्पुटों से निकलकर बाहर बिखरे हुये मोतियों के बहुत से दानों से पश्चिमी समुद्र का रेतीला तट सफेद हो गया था, इसे देख कर ऐसा प्रतीत होता था कि मानो सूर्य की किरणों ने आकाश के तारों को समेट कर नीचे पश्चिम की ओर गिरा दिया हो। वन के वृक्षों से ओस की बूंदें टपक रही थीं, मोर जाग गये थे, सिंह जमुहाई ले रहे थे, हथिनियाँ मदमत्त हाथियों को जगा रही थीं, और वह वन स्वयं, रात की ओस से ठिठुरे हुए केशर वाले फूलों को अपनी पल्लव रूपी अञ्जलियों से, उदयाचल पर स्थित सूर्य देव को मानो अर्पित सा करने लगा था। गदहे के रोमों के समान धुमैली तपोवन के अग्निहोत्र की धूमरेखायें वृक्षों की चोटियों पर जाकर टिकने लगी थीं जिन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वनदेवियों के महलों की चोटियों पर मटमैले कबूतरों की पंक्तियाँ बैठी हों अथवा धर्म की पताकायें फहरा रही हों। ओस कणों से शीतल प्रातःकालीन हवा धीरे-धीरे चलने लगी थी, वह कहीं कमल वनों को हिला देती थी, तो कहीं काम क्रीड़ा से थकी हुई भीलिनियों के पसीने की बूंदों को सुखाती थीं, कहीं जंगली भैंसों के जुगाली के झाग को उड़ा ले जाती थी और कहीं वह लता रूपी नर्तकियों के पल्लव रूपी उनके वस्त्रों को फहराकर उन्हें नृत्य का पाठ पढ़ाती थी, कहीं खिले हुए कमलों के पुष्परस की फुहारें बरसाने लगती थीं और फूलों की सुगन्धि उड़ाकर भौंरों को तृप्त कर देती थीं और रात्रि के अन्त में मानो वह स्वयं शीतलता से सिकुड़ गई थीं।

**संस्कृत व्याख्या—पूर्वेतरे**=पूर्वः इतरो यस्मात् तस्मिन् पूर्वेतरे=पश्चिमे **उदन्वति**=समुद्रे, **तटगतविघटितशुक्तिसम्पुटविप्रकीर्णम्**=तटगतानि समुद्रतटसमीपस्थितानि विघटितानि स्फुटितानि यानि शुक्तीनामब्धिमण्डूकीनां सम्पुटानि तेभ्यः विप्रकीर्णम् पर्यस्तम् तथोक्तम्, **धवलितपुलिनम्**=धवलितं स्वकान्तिभिः श्वेतीकृतम् पुलिनं जलोज्झितं सैकतं तटम् येन तम् तथोक्तम्, **अरुणकरप्रेरणाधोगलितम्**= अरुणस्य सूर्यस्य ये कराः किरणाः तेषां या प्रेरणा नोदना तया अधोगलितम् भूमिनिपतितम् तथोक्तम्, **उडुगणम्** नक्षत्रमण्डलम् इव, **मुक्ताफलनिकरम्**=मौक्तिकसमुदायम्, **उद्वहति** धारयति सति, **तुषारबिन्दुवर्षिणि**=तुषारस्य रात्रिकालीनतुहिनस्य ये

विन्दवः कणास्तान् वर्षति वृक्षपत्राग्रभागेभ्योऽधोनिपातयतीति तस्मिन् तथोक्ते, **विबुद्धशिखिकुले**—विबुद्धम् जागरितं शिखिकुलम् मयूरगणः यस्मिन् तस्मिन् तथोक्ते, **विजृम्भमाणकेशरिणि**=विजृम्भमाणाः तत्क्षणनिद्रात्यागेन जृम्भां कुर्वाणाः केशरिणः सिंहाः यस्मिन् तस्मिन् तथोक्ते, **करिणीकदम्बकप्रबोध्यमानसमदकरिणि**=करिणीनां हस्तिनीनां कदम्बकम् समूहः तेन प्रबोध्यमानाः क्रीडार्थं शुण्डाकर्षणेन जागरणं प्राप्यमाणाः समदाः मदजलस्राविणः करिणः गजाः यस्मिन् तस्मिन् तादृशे, एतादृशे **कानने** वने, **क्षपाजलजडकेशरम्**=क्षपायाः रात्रेः जलेन तुषारसलिलेन जडा निश्चला केशराः, किञ्जल्काः यस्य तं तथोक्तम्, **कुसुमनिकरम्**=पुष्पसमूहम्, **उदयगिरिशिखरस्थितम्**=उदयाचलशृङ्गस्थितम् **सवितारम्** सूर्यम् **उद्दिश्य**=उद्देश्यं कृत्वा इव, **पल्लवाञ्जलिभिः**=पल्लवानि किसलयान्येव अञ्जलयः तैः तथोक्तैः, **समुत्सृजति**=समर्पयति सति, **रासभरोमधूसरासु**=रासभस्य गर्दभस्य रोमाणि तनूरुहाणि तद्वत् धूसरासु धूम्रवर्णासु तथोक्तासु, **वनदेवताप्रासादानाम्**=वनाधिष्ठात्रीणां देवीनाम् प्रासादानां—उन्नतभवनरूपाणाम् **तरूणां** वृक्षाणाम् **शिखरेषु** अग्रप्रान्तेषु, **पारावतमालायमानासु**=पारावतानां कपोतानां मालाः पङ्क्तयः तद्वदा चरन्त्यः तासु तथोक्तासु, **धर्मपताकासु**=धर्मे यज्ञादिकर्मणि याः पताकाः वैजयन्त्यः तासु तथोक्तासु इव, **तपोवनाग्निहोत्रधूमलेखासु**=तपोवनेषु यानि अग्निहोत्राणि अग्न्याधानानि तेषां धूमस्य लेखाः स्तोमपङ्क्तयः तासु तथोक्तासु, **समुन्मिषन्तीषु**=समुत्सर्पन्तीषु। **अवश्यायशीकरिणि**=अवश्यायः तुहिनः तस्य शीकराः अम्बुकणाः तेऽस्य सन्तीति तस्मिन् तथोक्ते, **लुलितकमलवने**=लुलितं कम्पितं कमलवनम् पद्मवनम् येन तस्मिन् तथोक्ते, **रतिखिन्नशबरसीमन्तिनीस्वेदजलकणापहारिणि**=रतिखिन्नानाम् कामक्रीडाश्रान्तानाम् शबरसीमन्तिनीनाम् किरातवधूनाम् स्वेदजलस्य प्रस्वेदवारिणः कणाः विन्दवः तेषाम् अपहारिणि हरणशीले तथोक्ते, **वनमहिषरोमन्थफेनविन्दुवाहिनि**=वनमहिषाणां वन्यसैरिभाणाम्, रोमन्थे चर्वितचर्वणे ये फेनविन्दवः फेनकणाः तान् वहतीत्येवंशीलः स तस्मिन् तथोक्ते, **चलितपल्लवलतालास्योपदेशव्यसनिनि**=चलिताः आन्दोलिताः पल्लवाः किसलयानि यासां ताः चलितपल्लवाः ताश्च ताः लताः चलितपल्लवलताः तासां लास्यम् चाञ्चल्यरूपं नृत्यम् तस्य उपदेशे शिक्षणे व्यसनम् आसक्तिः अस्यास्तीति तस्मिन् तथोक्ते, **विघटमानकमलखण्डमधुशीकरासारवर्षिणि**=विघटमानानि विकाशं प्राप्यमाणानि यानि कमलखण्डानि नलिनवनानि तेषां मधुनः पुष्परसस्य शीकराणाम् विन्दूनाम् आसारम् धारासम्पातं वर्षति यः स तस्मिन् तथोक्ते, **कुसुमामोदतर्पितालिजाले**—कुसुमानाम् आमोदेन सौरभेण तर्पितम् प्रीणितम् अलीनाम् भ्रमराणाम् जालं समूहः येन तस्मिन् तथोक्ते, **निशावसानजातजडिम्नि**=निशायाः रात्रेः यदवसानम् समाप्तिः तेन जातः समुत्पन्नः जडिमा जडत्वम् शैत्यसलिलामोदवहनहेतुना भारवत्त्वम् यस्य तस्मिन् तथोक्ते, (अतएव) **मन्दमन्दसञ्चारिणि**=मन्दं मन्दं संचरते इत्येवंशीलः यः स तस्मिन् तथोक्ते, **प्राभातिके**=प्रातःकालीने, **मातरिश्वनि**—वायौ, **प्रवाति**=प्रवहति सति।

**संस्कृत सरलार्थ**—यदा च पश्चिमसमुद्रः, स्वतटसमीपस्थितेभ्यः स्फुटित शुक्तिसम्पुटेभ्यः विपर्यस्तम्, स्वकान्तिभिः श्वेतीकृत वालुकामयतटम्, सूर्यकिरणनोदना भूमिनिपतितं नक्षत्रमण्डलमिव मौक्तिकसमुदायं धारयन्नासीत्। यदा च तस्मिन् कानने वृक्षाणां दलाग्रभागेभ्यस्तुहिनविन्दवोऽधोनिपतन्त आसन्, मयूराश्च विनिद्रिता आसन्, सिंहास्तत्क्षणनिद्रात्यागेन जृम्भां कुर्वाणाः, हस्तिनीभिश्च क्रीडार्थ शुण्डाकर्षणेन मदस्राविणो गजा जागरणं प्राप्यमाणा आसन् तदैतत्प्रतीयतेस्म यत्तद् वनमेव, उदयाचलशृङ्गस्थितं सूर्यमुद्दिश्य किसलयाञ्जलिभिः, रात्रिकालीनतुहिनसलिलेन निश्चलकेशरम् कुसुमसमूहं समर्पयन्निवासीत्। यदा च तपोवनाग्निहोत्राणां धूमस्य लेखाः ऊर्ध्वमुत्सर्पन्त्य आसन्, याश्च धूमलेखाः गर्दभरोमवद्धूसरवर्णाः, वनाधिष्ठात्रीणां देवीनां प्रासादरूपाणां वृक्षाणां शिखरेषु कपोतपङ्क्तिवदाचरन्त्यः यज्ञादिकर्मवैजयन्त्य इव च प्रतीयन्ते स्म। यदा च तत्र तुहिनाम्बुकणवाही, कम्पित कमलकाननः, सम्भोगश्रान्तानां किरातकामिनीनां प्रस्वेदजलापहारी, वन्यसैरिभाणां रोमन्थोद्भव फेनविन्दुधारी, पवनान्दोलितकिसलयलतानां नृत्यशिक्षाणव्यसनी, विघटमानानां कमलवनानां पुष्परस विन्दूना धारासम्पातवर्षणपरः, पुष्पसौरभेण प्रीणित भ्रमरसमूहः रात्रिशेषे जडत्वं प्राप्य मन्दं मन्दं साचरणशीलः प्राभातिकः पवनः प्रवहन्नासीत्।

**टिप्पणी**—**पूर्वेतरे**=पूर्वः इतरो यस्मात् तस्मिन् अर्थात् पश्चिम, "इतरस्त्वन्यनीचयोः इत्यमरः, **उदन्वति**=समुद्रे "उदन्वानुदधिः सिन्धुः"। उडुगणभिवेत्यत्र स्वरूपोत्प्रेक्षालंकारः। **विबुद्धशिखिकुले**=जहाँ मयूर समूह जाग चुका था। वि+वुध+क्त। **विजृम्भमाणः**=जमुहाई लेता हुआ, **कदम्बक**=समूह, **प्रबोध्यमान**=जगाया जाता हुआ—प्र+वुध+णिच् शानच्। **करिणी**=हथिनी। **क्षपाजलेति**—क्षपाजल अर्थात् रात को ओस के गिरने से जिनके केशर (किञ्जल्क) भारी होने के कारण निश्चल हो गये थे। **सवितारमुद्दिश्येव**—यहाँ पर क्रियोत्प्रेक्षा तथा **पल्लवाञ्जलिभिः** में निरङ्गरूपक अलंकार है। **रासभेति**—यहाँ लुप्तोपमालंकार है। मालायमानाम्=माला अथवा पंक्ति के समान आचरण करती हुई, अतः यहाँ व्यङ्गगतोपमालंकार है। धर्मपताकाम् इव अत्र स्वरूपोत्प्रेक्षा। अवश्यायः=ओस "अवश्यायस्तु नीहारस्तुषार इत्यमरः। **लुलितेति**=आन्दोलित हिलाये गये, **स्वेदजलकणापहारिण**—प्रस्वेदकणापहारी=अप+हृ+णिनि. उक्त तीन विशेषणों द्वारा यहाँ वायु का त्रिविध गुण विशिष्ट होना व्यञ्जित किया गया है। **वनमहिषेति**—रोमन्थ=खाये हुये को पुनः चबाना—चर्वित चर्वण रोमन्थ कहा जाता है, रोमन्थ में झाग निकलता है जिसके कण वायु में मिल गये थे। **शीकरासारवर्षी**—पुष्प रस के कणों की धारासम्पात वर्षा करने वाले, "धारासम्पात आसारः इत्यमरः। **जातजडिम्नि** जिसमें जड़ना अर्थात् भारवत्ता उत्पन्न हो गई थी क्योंकि वह शैत्य सलिल एवं सुगन्धि सभी का एक साथ वहन कर रहा था। यही कारण था कि वह बोझ के कारण धीरे-धीरे चल रहा था। मातरिश्वा=वायुः, मातरिश्वा सदागतिः इत्यमरः ?

**कमलवनप्रबोधमङ्गलपाठकानाम् इभगण्डडिण्डिमानां मधुलिहां कुमुदोदरेषु विघटमानदलपुटनिरुद्धपक्षसंहतीनामुच्चरत्सु हुंकारेषु, प्रभातशिशिरमरुताहतमुत्तप्तजतुरसाश्लिष्टं पक्ष्ममालमिव सशेषनिद्राजिह्मिततारं चक्षुरुन्मीलयत्सु शनैः शनैरुषरशय्याधूसरक्रोडरोमराजिषु वनमृगेषु, इतस्ततः सञ्चरत्सु वनचरेषु, विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि पम्पासरःकलहंसकोलाहले, समुल्लसति नर्तितशिखण्डिमण्डले मनोहरे वनगजकर्णतालशब्दे, क्रमेण च गगनतलमवतरतो दिवसकरवारणस्यावचूडचामरकलाप इवोपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठारागलोहिते किरणजाले, शनैः शनैरुदिते भगवति सवितरि, पम्पासरः पर्यन्ततरुशिखरसञ्चारिणि अध्यासितगिरिशिखरे दिवसकरजन्मनि हृततारे पुनरिव कपीश्वरे वनमभिपतति बालातपे स्पष्टे जाते प्रत्युषसि ।**

**शब्दार्थ—कमलवनप्रबोधमङ्गलपाठकानाम्**=कमलवनों को जगाने में (प्रबोध) मंगल पाठ-स्तुति या प्रशस्ति गाने वाले चारणस्वरूप, **इभगण्डडिण्डिमानाम्**=हाथियों के (इभ) कपोल स्थलों पर अर्थात् मद भरे हुये गण्डस्थलों पर नगाड़ों स्वरूप अर्थात् उन्हें जगाने के लिए मानो नगाड़े (डिण्डिम) बजाने वाले, **कुमुदोदरेषु**=कुमुदों के मध्य भाग में, **विघटमानदलपुटनिरुद्धपक्षसंहतीनाम्**=(प्रातः सूर्योदय के कारण) संकुचित होती हुई (विघटमान) पंखुड़ियों में (दलपुट) फँसे हुए (निरुद्ध) पंख समूह वाले (पक्षसंहति) **मधुलिहाम्**=भ्रमरों के, **हुङ्कारेषु उच्चरत्सु**=हुँकार शब्द का उच्चारण करने पर ।

**ऊषरशय्याधूसरक्रोडरोमराजिषु**=ऊषर=तृणरहित भूमि पर शयन (शय्या) से धूसरित (धूसर) वक्षःस्थल की (क्रोड) रोमावली वाले (रोमराजि) **वनमृगेषु**=वन्यमृगों के, **प्रभातशिशिरमरुताहतम्**=प्रातःकालीन शीतल (शिशिर) वायु द्वारा (मरुत्) पीडित (आहत) **उत्तप्तजतुरसाश्लिष्टम् इव**=मानो तपाये हुए (उत्तप्त) लाक्षारस से (जतुरस) जुड़े हुए (आश्लिष्ट) **पक्ष्ममालम्**=पलकों की (पक्ष्म) पंक्ति वाले (मालम्) **सशेषनिद्राजिह्मिततारम्**=(और) अवशिष्ट निद्रा के कारण (सशेषनिद्रा) चढ़ी हुई या टेढ़ी (जिह्मित) पुतलियों वाले (तारा या अक्षिकनीनिका) **चक्षुः**=नेत्रों को, **शनैः शनैः उन्मीलयत्सु**=धीरे-धीरे खोलने पर। **इतस्ततः सञ्चरत्सु वनचरेषु**=वनचरों के इधर-उधर घूमने पर, **श्रोत्रहारिणि**=कानों को आकृष्ट करने वाले, **पम्पासरःकलहंसकोलाहले**=पम्पासरोवर के राजहंसों के कोलाहल के, **विजृम्भमाणे**=बढ़ जाने पर, **नर्तितशिखण्डिमण्डले**=मयूरों (शिखण्डि) के झुण्ड (मण्डल) को नचाने वाले, **मनोहरे वनगजकर्णतालशब्दे**=मनोरम, जंगली हाथियों के कानों की करतलध्वनि के समान (ताल) ध्वनि के उठने पर ।

**क्रमेण**=क्रमशः, **गगनतलम्** =आकाश मार्ग पर, **अवतरतः**=उतरते हुए, **दिवसकरवारणस्य**=सूर्य रूपी हाथी के (दिवसकर=सूर्य, वारण=हाथी)

**मञ्जिष्ठारागलोहिते**=मजीठ की लालिमा के समान लाल, **किरणजाले**=किरण समूह के, **अवचूडचामरकलाप इव उपलक्ष्यमाणे**=अधोमुख अग्रभाग वाले (अवचूड=अव=अवनत=अधोमुख, चूड=चूड़ा अग्रभाग या चोटी) चँवरसमूह के समान (चामरकलाप इव) दिखाई पड़ने पर (उपलक्ष्यमाणे) शनैः शनैरुदिते भगवति सवितरि=धीरे-धीरे भगवान् सूर्य के उदित होने पर।

**पम्पासरःपर्यन्ततरुशिखरसञ्चारिणि**=पम्पासरोवर के सीमावृक्षों की चोटियों पर आश्रय लेने वाले, **अध्यासितगिरिशिखरे**=पहले किष्किन्धा पर्वत शिखर पर रहने वाले, **दिवसकरजन्मनि**=सूर्य से उत्पन्न होने वाले, **हृततारे**=तारा नामक वालि की पत्नी का हरण करने वाले, **पुनः कपीश्वरे इव**=फिर सुग्रीव (कपीश्वर) के समान, पम्पासरोवर के सीमावृक्षों की चोटियों पर फैलने वाले, उदयपर्वत के (गिरि) शिखर पर पहले आश्रय लेने वाले, सूर्य से उत्पन्न होने वाले तथा तारागणों को छिपा देने वाले, **बालातपे**=प्रातःकालीन धूप के, **वनम् अभिपतति**=वन में फैलने पर (यहाँ) बालातप को सुग्रीव से उपमित करने के कारण 'पम्पासरः पर्यन्तेत्यादि से लेकर 'हृततारे' तक के सभी विशेषणवाची पद द्वयर्थक हैं—(१) सुग्रीव पक्ष में, (२) बालातप पक्ष में, फिर भी दोनों के अर्थ में बहुत कम अन्तर है। **स्पष्टे जाते प्रत्युषसि**=प्रभातकाल (प्रत्युषसि) के स्पष्ट हो जाने पर।

**अनुवाद**—कमलवनों को जगाने के लिए मंगलगान करने वाले चारणस्वरूप, हाथियों के (मदभरे) गण्ड स्थलों पर नगाड़ेस्वरूप अर्थात् उन्हें जगाने के लिए नगाड़े बजाने वाले, कुमुदों के मध्यभाग में (सूर्योदय के कारण) संकुचित होती हुई पंखड़ियों में फँसे हुए पंखसमूह वाले भ्रमरों के हुंकार शब्द का उच्चारण करने पर,

ऊपर भूमि पर शयन करने से धूसरित वक्षःस्थल की रोमावली वाले वन्य-मृगों के, प्रातःकालीन शीतल वायु द्वारा पीड़ित (और) मानो तपाये गये लाक्षारस से जुड़े हुए पलकों की पंक्ति वाले, (तथा) अवशिष्ट निद्रा के कारण टेढ़ी पुतलियों वाले नेत्रों को धीरे-धीरे खोलने पर। वनचरों के इधर-उधर घूमने पर, कानों को आकृष्ट करने वाले पम्पासरोवर के राजहंसों के कोलाहल के बढ़ जाने पर, मयूरों के झुण्ड को नचाने वाले, मनोरम, वन्यगजों के कानों की करतलध्वनि के समान ध्वनि के उठने पर,

क्रमशः आकाश मार्ग पर उतरते हुये सूर्य रूपी हाथी के मजीठ की रक्तिमा के समान लाल किरण समूह के अधोमुख अग्रभाग वाले चंवर समूह के समान दिखाई पड़ने पर, धीरे-धीरे भगवान् सूर्य के उदित होने पर,

पम्पा सरोवर के सीमावृक्षों की चोटियों पर आश्रय लेने वाले, पहले किष्किन्धा पर्वत पर रहने वाले, सूर्य से उत्पन्न, तारा नामक वालि-पत्नी का हरण करने वाले फिर सुग्रीव के समान, पम्पा सरोवर के सीमा वृक्षों की चोटियों पर फैलने वाले, उदय पर्वत के शिखर पर पहले आश्रय लेने वाले, सूर्य से उत्पन्न होने वाले

तथा तारागणों को छिपा देने वाले प्रातःकालीन धूप के वन में फैलने पर और प्रातः-काल के स्पष्ट हो जाने पर।

भावार्थ—जबकि कमल वनों में गुञ्जार करते हुये भ्रमर ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों वे उन्हें जगाने के लिये चारणों की तरह मंगलगान कर रहे हों और कहीं हाथियों के मद भरे गण्डस्थलों पर गुञ्जार करते हुये भ्रमर ऐसे मालूम पड़ते थे कि मानो वे उन्हें जगाने के लिए नगाड़ा बजा रहे हों, तथा कहीं पर वे सूर्य के सम्पर्क से सिकुड़ी हुई पंखड़ियों वालीं कुमुदिनियों में अपने पंखों के फँस जाने के कारण कुपित होकर हुँकार कर रहे हों। ऊषर भूमि पर सोने के कारण धूलि से भरे हुये वक्षःस्थल के रोओं वाले जंगली मृग कहीं धीरे-धीरे, निद्रा पूरी न होने के कारण टेढ़ी एवं अलसायी हुई पुतलियों वाली आँखें खोल रहे थे। प्रातःकालीन शीतल वायु के लगने से उनकी आँखें ऐसी लगती थीं कि मानों उनके पलकों को तपाये गये लाक्षारस से जोड़ दिया गया हो। वनचर इधर-उधर घूमने लगे थे। पम्पा सरोवर में श्रोत्रप्रिय राजहंसों का कलकल बढ़ने लगा था। मयूरमण्डल नाचने लगा था, हाथी अपने कान फड़फड़ा रहे थे मानो वे मयूरों के नृत्य में ताल दे रहे हों। मजीठ के रंग के समान लाल सूर्य किरणें, आकाश मार्ग पर धीरे-धीरे उतरने वाले सूर्य रूपी हाथी के मस्तक पर हिलाये जाते हुये चँवरों के समान प्रतीत हो रही थीं, अब सूर्य धीरे-धीरे उदित होने लगा था। पम्पा सरोवर के निकटवर्ती वृक्षों की तथा उदयाचल की चोटियों पर फैली हुई, सूर्य से उत्पन्न तारागणों को छिपा देने वाली प्रातःकालीन मधुर हल्की धूप ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो, पहले किष्किन्धा पर्वत पर रहने वाले और अब पम्पा सरोवर के निकटवर्ती वृक्षों पर ही विहार करने वाले सूर्य पुत्र तथा बालि की पत्नी का हरण करने वाले सुग्रीव पुनः यहाँ आ गये हों, और अब प्रातःकाल स्पष्ट हो गया था।

संस्कृत व्याख्या—**कमलवनप्रबोधमङ्गलपाठकानाम्**=कमलवनस्य पद्म वनस्य प्रबोधे जागरणे विकसन इत्यर्थः मङ्गलपाठकाः मङ्गलस्तुतिविधायिनस्तेषाम् तथोक्तानाम्, नृपतिप्रबोधे तदीयचारणानामिवेत्याशयः। **इभगण्डडिण्डिमानाम्**= इभगण्डेषु समदहस्तिगण्डस्थलेषु डिण्डिमानाम् डिण्डिमसंज्ञकवाद्यविशेषस्वरूपाणाम् किञ्चिद्विशेषं सूचयितुं यथा कश्चित् डिण्डिमं वाद्यं (डुग्गीति लोके) वादयति तथैव ते भ्रमरा हस्तिजागरणार्थं तेषां गण्डस्थलेषु गुञ्जन्ति स्मेति भावः। (तथा) **कुमुदोदरेषु**= कुमुदानाम् कैरवाणाम् उदरेषु अभ्यन्तरेषु तथोक्तेषु, **विघटमान दलपुटनिरुद्धपक्षसंहतो-नाम्**=विघटमानैः—सूर्यकिरण सम्पर्कमवाप्यं सङ्कोचं प्राप्यमाणैः दलानां पत्राणां पुटैः कोशैः निरुद्धा अवरुद्धाः पक्षाणां छदानां संहतिः समूहः येषां तेषां तथोक्तानाम् **मधुलिहाम्**=भ्रमराणाम् **हुंकारेषु** अव्यक्त शब्देषु उच्चरत्सु=उत्तिष्ठत्सु सत्सु।

**ऊषरशय्याधूसरक्रोडरोमराजिषु**=ऊपरा तृणशून्या या शय्या शयनस्थलं तया धूसराः धूम्रवर्णा मलिना वा क्रोडस्य वक्षःस्थलस्य रोम्णां राजयः लोमपङ्क्तयः

येषान्तेषु, तथोक्तेषु, **वनमृगेषु**—काननहरिणेषु, **प्रभातशिशिरमरुताहतम्**—प्रभातम् प्रातःकालः तस्य यः शिशिरः शीतलः मरुत् वायुः तेन आहतम् पीडितम् तथोक्तम्, **उत्तप्तजतुरसाश्लिष्टम्**=उत्तप्तः उष्णीकृतः यः जतुरसः लाक्षाद्रवः तेन आश्लिष्टम् मिथः संयोजकभावेन आश्लेषितम् तथोक्तम्, **पक्ष्ममालम्**=पक्ष्मणाम् नेत्रलोम्नां माला पंक्तिः यस्य तत्, इव, **सशेषनिद्राजिह्मितारम्**=सशेषा किञ्चिदवशिष्टा या निद्रा स्वापः तया जिह्मिता वक्रीकृता तारा अक्षिकनीनिका यस्य तत् तथोक्तम् **चक्षुः** लोचनम् **शनैः शनैः** मन्दं मन्दं—**उन्मीलयत्सु**, उन्मीलनं प्रापयत्सु सत्सु । **इतस्ततः सञ्चरत्सु वनचरेषु**=काननचारिषु चतुर्दिक्षु भ्रमत्सु सत्सु । **श्रोत्रहारिणि**=मनोरमतया कर्णाकर्षणकारिणि, **पम्पासरः कलहंसकोलाहले**=पम्पासरसः पम्पासंज्ञक सरोवरस्य कलहंसानां राजहंसानां कोलाहले कलकले, **विजृम्भमाणे विस्तृते** सति, **नर्तितशिखण्डिमण्डले**=नर्तिता नाटिता शिखण्डिनां मयूराणां मण्डलं समूहः येन तस्मिन् तथोक्ते, **मनोहरे रुचिकरे वनगजकर्णतालशब्दे**—वनगजानामरण्यहस्तीनाम् कर्णयोः श्रोत्रयोः यः तालवत् करतलध्वनिवत् शब्दः रवः तस्मिन् तथोक्ते **समुल्लसति** सम्यक् प्रसरति सति ।

**क्रमेण** क्रमशः **गगनतलम्** आकाशमार्गम् **अवतरतः** अधिरोहतः **दिवसकरवारणस्य** दिवसकरः सूर्यः वारणः गजः इव तस्य तथोक्तस्य, **मञ्जिष्ठारागलोहिते**= मञ्जिष्ठाया औषधिविशेषस्य यः रागः रक्तिमा तेन लोहिते रक्तीभूते तथोक्ते, **किरणजाले** रश्मिसमूहे, **अवचूडचामरकलाप इव**=अवनता अधोमुखीभूता चूडा अग्रभागः यस्य सः अवचूडः, स चासौ चामराणां कलापः गणः तस्मिन् तथोक्ते **इव उपलक्ष्यमाणे** संदृश्यमाने सति—**गगनपथमारोहतो गजस्य कर्णान्तिक लम्बिनि** अवनत चामरगण इव आकाशमारोहतः सूर्यस्यावनतरश्मिसमूहेऽवलोक्यमाने सतीत्याशयः । **शनैः शनैः उदिते भगवति सवितरि**=मन्दं मन्दमुदयं प्राप्ते महामहिमशालिनि सूर्ये ।

**पम्पासरः पर्यन्ततरुशिखरसञ्चारिणि**=पम्पासरसः ये पर्यन्ततरवः प्रान्तस्थितवृक्षाः तेषां शिखरेषु ऊर्ध्वभागेषु सञ्चारिणि सञ्चरणशीले पक्षे आश्रिते च, तथोक्ते, **अध्यासितगिरिशिखरे**=अध्यासितम् पूर्वमाश्रितम् पूर्वमुषितञ्च गिरेः उदयपर्वतस्य किष्किन्धापर्वतस्य च शिखरम् ऊर्ध्वप्रदेशः येन तस्मिन् तथोक्ते, **दिवसकरजन्मनि**=दिवसकरात् सूर्यात् जन्म उत्पत्तिः यस्य तस्मिन् (उभयपक्षेऽपि समानार्थ एव) **हृततारे**=हृता निजप्रभावेण विलोपिता अपहृता च तारानक्षत्राणि स्वज्येष्ठभ्रातुः ताराभिधाना बालिभार्या च येन स तस्मिन् तथोक्ते, **बालातपे**—अभिनवोदितसूर्यस्य मधुरकोमलातपे, **कपीश्वरे** सुग्रीवे, **इव पुनः वनम् अरण्यम् अभिपतति** व्याप्नुवति समागच्छतिच सति । **प्रत्युषसि** प्रात.काले **स्पष्टे** सुव्यक्ते जाते समुत्पन्ने सति ।

**संस्कृत सरलार्थ**—यदा च तत्र तृणविहीनशयनस्थलेन धूसरितक्रोडलोमपङ्क्तयो वन्यहरिणाः प्रातःकालीनशीतलवातपीडितम् उष्णीकृतलाक्षारसेनाश्लेषित

नेत्रलोममालमिव अवशिष्टस्वापवशाद् वक्रीकृततारं लोचनं मन्दं मन्दं विकासयन्त आसन् । वनचारिणश्चेतस्ततो भ्रमन्त आसन् । मनोरमतया श्रोत्राकर्षणकारिणः पम्पासरसः राजहंसानां कलकलशब्दाः प्रसरन्त आसन्, नर्तितमयूराः रुचिकरा अरण्यहस्तिश्रोत्रयोः करतलध्वनिवच्छब्दाश्च समुल्लसन्त आसन् ।

अथ च यदा क्रमशः गगनपथमारोहतो गजस्य कर्णान्तिकलम्बिनोऽवनत चामरगणा इव आकाशमारोहतः सूर्यस्य मञ्जिष्ठारागरक्तीभूता अवनतरश्मिसमूहा अवलोक्यमाना आसन्, एवं मन्दं मन्दं भगवानादित्य उदयं प्राप्नुवन्नास्तीत् । तथा च यदा, पम्पासरसः प्रान्तस्थिततरूर्ध्वभागकृत निवासः पूर्वमाध्यासित किष्किन्धापर्वतोर्ध्व प्रदेशः आदित्यजातः अपहृततारः सुग्रीव इव पम्पासरः पर्यन्त वृक्षोर्ध्वभाग सञ्चरणशीलः समध्यासितोदयगिरि शिखरः सूयोत्पन्नः स्वप्रभावसंछादिततारः नवोदित सूर्यस्य मधुरकोमलातपो वनं व्याप्नुवन्नासीत्, एवं प्रातःकालश्च सुव्यक्तआसीत् ।

**टिप्पणी—कमलवनप्रवोधेति** मानो कमल वनों को विकसित करने के लिये भ्रमर उसी प्रकार प्रशस्तिगान कर रहे हों जैसे राजाओं को जगाने के लिये उनके वन्दीजन उनकी प्रशस्तियाँ गाते हैं । **इभगण्डेति** हाथियों के मदभरे कपोल स्थलों पर भ्रमर उसी प्रकार गुञ्जन कर रहे थे जैसे कि कोई डुग्गी पीट-पीटकर किसी को किसी विशेष बात की सूचना देता है । **कुमुदोदरेस्यित**—प्रातःकाल सूर्यकिरणों के सम्पर्क से कुमुदों की पंखड़ियाँ सिमिट गई थीं अतएव इनमें बैठे भ्रमरों के पंख उनमें फँस गये थे, यही कारण था कि वे क्रुद्ध होकर हुँकार भरने लगे थे । यहाँ भ्रमरों पर मंगलपाठकत्व का आरोप शब्दतः तथा कमलवन पर नृपत्वारोप अर्थतः होने से एकदेशविर्वातिरूपकालंकार है और इभगण्डडिण्डिम में यह निरङ्ग केवल रूपक है, दोनों के परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि है "मिथोऽनपेक्ष्यमेतेषां स्थितिः संसृष्टि रुच्यते" सा. द. । **उत्तप्तजतुरसेति**—वनमृग; धीरे-धीरे आँखें खोल रहे थे, ऐसा मालूम होता था कि मानो उनकी आँखों की पलकें गरम किये हुये लाक्षारस से चिपका दी गई हों । **सशेषेति**—सशेष अर्थात् थोड़ी-सी अवशिष्ट नींद "स्यान्निद्राशयनंस्वाप इत्यमरः" इससे जिह्मिततारम् अर्थात् चढ़ी हुई या टेढ़ी पुतलियों वाले । **विजृम्भमाणे** वढ़ जाने पर वि+जृम्भ+शानच् । **कर्णतालशब्दे**—वनगजों के कानों की करतलध्वनिवत् ध्वनि होने पर, हाथी जब अपने कान फड़फड़ाते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे मयूर नृत्य में ताली बजाकर ताल दे रहे हों । यहाँ 'ताल शब्द' में लुप्तोपमा है । **मञ्जिष्ठा**—मञ्जिष्ठा एक प्रकार का रंग का पौधा होता है जिससे लाल रंग निकलता है । **अवचूड**—जिसका अग्रभाग नीचे की ओर झुका हुआ था । ऐसा चामरकलाप, आकाश पर चढ़ते हुए गज के कानों पर लगे चामर स्वभावतः नीचे की ओर झुक जाते हैं । जब सूर्य ऊपर को चढ़ता है तब उसकी किरणें नीचे फैलने लगती हैं; यहाँ उपमा और लुप्तोपमा का संकर है । **कपीश्वरे**—सुग्रीव पहले किष्किन्धा पर्वत पर रहते थे, बालि द्वारा निष्कासित होने पर वे पम्पा सरोवर के पास वृक्षों पर रहने लगे थे । इनकी उत्पत्ति सूर्य से हुई थी, यह

कथा रामायण के उत्तरकाण्ड में है। इन्होंने बालि की पत्नी तारा को अपनी पत्नी के रूप में रख लिया था। सूर्य की किरणों के प्रभाव से तारागण आच्छादित हो जाते हैं, अतएव वे दिन में दिखाई नहीं पड़ते हैं—तारा=बालिपत्नी और तारागण। ●

**न चिरादिव दिवसाष्टमभागभाजि स्पष्टभासि भास्वति भूते, प्रयातेषु यथाभिमतानि दिगन्तराणि शुककुलेषु, कुलायनिलीननिभृतशुकशावकसनाथेऽपि निःशब्दतया शून्य इव तस्मिन् वनस्पतौ, स्वनीडावस्थित एव ताते, मयि च शैशवादसंजातबले समुद्भिद्यमानपक्षपुटे पितुः समीपवर्तिनि कोटरगते, सहसैव तस्मिन् महावने संत्रासितसकलवनचरः सरभसमुत्पतत्पतत्रिपक्षपुटसन्ततः भीतकरिपोतचीत्कारपीवरः प्रचलितमत्तालिकुलक्वणितमांसलः परिभ्रमदुद्घोणवनवराहरवघर्घरः गिरिगुहासुप्तप्रबुद्धसिंहनादोपबृंहितः कम्पयन्निव तरून् भगीरथावतार्यमाणगङ्गाप्रवाहकलकलबहलो भीतवनदेवताकर्णितो मृगयाकोलाहलध्वनिरुद चरत्।**

शब्दार्थ—**नचिरादिव**=थोड़ी ही देर में, **दिवसाष्टमभागभाजि**=दिन के आठवें भाग को अर्थात् आधा प्रहर या चार घड़ी, प्राप्त कर लेने वाले, अर्थात् सूर्य के आधा प्रहर चढ़ जाने पर, **भास्वति**=सूर्य के, **स्पष्टभासि भूते**=सब ओर स्पष्ट कान्ति वाले होने पर, **शुककुलेषु**=शुकों के समूहों के **यथाभिमतानि दिगन्तराणि**=अभीष्ट दिशाओं के भागों में, **प्रयातेषु**=चले जाने पर, **कुलायनिलीननिभृतशुक शावकसनाथेऽपि**=घोंसलों में छिपे हुये (कुलाय निलीन) शान्त निःशब्द (निभृत) शुकों के बच्चों से (शुक शावक) युक्त होने पर भी (सनाथेऽपि), **निःशब्दतया शुन्य इव तस्मिन् वनस्पतौ**=शब्दरहित होने से उस वृक्ष के सूने जैसे प्रतीत होने पर, **स्वनीडावस्थिते एव ताते**=पिता के (ताते) अपने घोंसले में ही विराजमान होने पर, **शैशवादसंजातबले**=बचपन (शैशव) के कारण निर्बल, (असंजात बले) **समुद्भिद्यमानपक्षपुटे**=(तथा) निकलते हुये पंखों के सम्पुट वाले, **मयि च**=और मेरे, **पितुः समीपवर्तिनि कोटरगते**=पिता के समीपवर्ती कोटर में रहने पर, **सहसैव तस्मिन् महावने**=सहसा ही उस बहुत बड़े जंगल में, **सत्रासितसंकलवनचरः**=जिसने सभी वनवासियों को भयभीत कर दिया था, **सरभसम् उत्पतत्पतत्रिपक्षपुटसन्ततः**=(जो कि) घबड़ाहट से वेगपूर्वक (सरभसम्) उड़ते हुये पक्षियों (पतत्रि) के पक्षपुटों से (अर्थात् पंखों के शब्द से) सन्ततः अर्थात् विस्तृत हो रहा था, **भीतकरिपोतचीत्कारपीवरः**=(जो कि) डरे हुये हाथियों के बच्चों (पोत) के (भय और व्यथा सूचक) चीत्कार अर्थात् चिङ्घाड से पुष्ट हो रहा था, (पीवरः) **प्रचलितमत्तालिकुलक्वणितमांसलः**=जो कि चञ्चल तथा मतवाले भ्रमरों के झुण्ड के गुञ्जार (क्वणित) से और अधिक परिपुष्ट हो रहा था, **परिभ्रमदुद्घोणवनवराहरवघर्घरः**=जो कि घूमते हुए (परिभ्रमत्) उद्घोण=ऊँची नासिका वाले जंगली शूकरों के घूं घूं शब्द (रव) से कठोर (घर्घरः) हो रहा था, **गिरिगुहासुप्तप्रबुद्धसिंहनादोपबृंहितः**=(जो कि) पर्वतीय गुफाओं में

सोकर जगे हुए (प्रबुद्ध) सिंहों की दहाड़ (नाद) से बढ़ रहा था (उपवृंहितः) (इस प्रकार का) तरून् कम्पयन्निव=मानों वृक्षों को कँपाता हुआ, **भगीरथावतार्यमाण-गङ्गाप्रवाहकलकलबहलः**=भगीरथ के द्वारा उतारी जाती हुई (अवतार्यमाण) गंगा के प्रवाह के कलकल ध्वनि के समान गम्भीर और बढ़ा हुआ (वहलः) **भीतवनदेवताकर्णितः**=भयभीत वनदेवियों द्वारा सुना गया, **मृगयाकोलाहलध्वनि.**= शिकार के कोलाहल का शब्द, **उदचरत्**=उत्पन्न हुआ।

**अनुवाद**—थोड़ी ही देर में, दिन के आठवें भाग अर्थात् आधा प्रहर को प्राप्त कर लेने वाले (अर्थात् आधा प्रहर चढ़ जाने पर) सूर्य के सब ओर स्पष्ट कान्ति वाले हो जाने पर, शुकों के समूहों के अभीष्ट दिशाओं के भागों में चले जाने पर, घोंसलों में छिपे हुए शान्त एवं निःशब्द शुकों के बच्चों से युक्त होने पर भी, शब्द रहित होने से, उस वृक्ष के सूने जैसे प्रतीत होने पर, पिता के अपने घोंसले में ही विराजमान होने पर, बचपन के कारण निर्बल, तथा निकलते हुए पंखों के सम्पुट वाले मेरे, पिता के निकटवर्ती कोटर में स्थित होने पर, सहसा ही उस बड़े जंगल में, जिसने सभी वनवासियों को भयभीत कर दिया था, जो कि (घबड़ाहट के कारण) वेगपूर्वक उड़ते हुए पक्षियों के पक्ष पुटों से विस्तृत हो रहा था अर्थात् पक्षियों के उड़ने से उनके पंखों की फड़फड़ाहट से जो कि और अधिक फैल गया था। (तथा जो कि) डरे हुए हाथियों के बच्चों की चिङ्घाड़ से और अधिक गहरा हो गया था, (एवं जो कि) चञ्चल तथा मतवाले भ्रमरों के झुण्ड की गुञ्जार से अधिक पुष्ट हो रहा था, घूमते हुए ऊँची नासिका वाले जंगली शूकरों के घूं घूं शब्द से कठोर हो गया था, (तथा जो कि) पर्वतीय गुफाओं में सोकर जगे हुए सिंहों की दहाड़ से बढ़ रहा था, (इस प्रकार का) मानो वृक्षों को कँपाता हुआ, भगीरथ के द्वारा उतारी जाती हुई गंगा के प्रवाह की कलकल ध्वनि के समान गम्भीर और बढ़ा हुआ था, भयभीत वनदेवियों द्वारा सुना गया था ऐसा शिकार के कोलाहल का शब्द उत्पन्न हुआ।

**भावार्थ**—थोड़े ही देर में जबकि दिन के आठवें प्रहर में सूर्य विशेषरूप से चमक उठा था और तोते अपने-अपने आहार के लिए स्वाभिमत दिशाओं में उड़ गये थे, यद्यपि उनके बच्चे अब भी उनके घोंसलों में ही थे तथापि उनके भयवश निश्चल एवं निःशब्द होने के कारण वह वृक्ष भी निःशब्द एवं सूना-सा लग रहा था। वैशम्पायन नामक शुक राजा से आत्मकथा सुनाता हुआ कह रहा है कि मेरे पिता अब भी अपने घोंसले में ही थे, और मैं भी, जिसके कि पंख अभी निकल ही रहे थे और बचपन के कारण जो कि शक्तिहीन था, पिता के समीप में ही खोखले में पड़ा था। ऐसे ही समय सहसा ही उस बड़े वन में शिकार के कोलाहल का शब्द उत्पन्न हुआ जिससे सकल वनवासी भयभीत हो गये थे, घबराहट से पक्षी अपने पंखों को फड़फड़ाते हुए उड़ने लगे थे जिससे वह शब्द और भी दूर तक फैल गया था। डरे

हुए हाथियों के बच्चे चीत्कार करने लगे थे जिससे वह शब्द और भी भयावह बन गया था, चञ्चल और मतवाले भ्रमरों की गुञ्जार ने उसे और भी गम्भीर बना दिया था, इधर-उधर घूमते हुए ऊँची नाक वाले वन्य शूकर घुरघुराने लगे थे, पहाड़ी गुफाओं में सोते हुए सिंह जागकर दहाड़ने लगे थे, और जंगल के सारे वृक्ष मानो काँपकर हरहराने लगे थे। ये सब ध्वनियाँ मिलकर ऐसी प्रतीत होती थीं कि मानो भगीरथ के पीछे उतरती हुई गंगा की प्रवाह की यह भयानक और अति घनी हरहराहट हो, इस भीषण ध्वनि को भयभीत हुई वनदेवियाँ भी सुन रही थीं।

**संस्कृत व्याख्या—नचिरादिव** स्वल्पकालेनेव, दिवसस्य दिनस्य अष्टमभाग चतुर्घटिकात्मकं कालं भजत इति तस्मिन् **साष्टमभागभाजि,** (अतएव) **स्पष्टभासि**= स्पष्टाः चतुर्षु दिक्षु स्फुटाः भासः कान्तयः यस्य तस्मिन् तथोक्ते, **भास्वति** सूर्ये **भूते** जाते सति, **शुककुलेषु**=कीरसमुदायेषु **यथाभिमतानि** यथाभीष्टानि **दिगन्तराणि** दिग्विभागान् **प्रयातेषु** गतेषु सत्सु, **कुलायनिलीननिभृतशुकशावकसनाथेऽपि कुलायेषु नीडेषु** निलीनाः प्रच्छन्नाः निभृता निःशब्दा ये शुकशावकाः कीरशिशवः तैः सनाथे युक्ते तथोक्ते अपि, **निःशब्दतया** शिशूनां भयवशान्निः शब्दभावेन **तस्मिन् वनस्पतौ** शाल्मलीवृक्षे **शून्य इव** प्राणिवर्ग विरहिते इव विद्यमाने सति, **तत्र ताते** मम पितरि **स्वनीडावस्थित इव** आत्मकुलायावस्थित एव, **शैशवादसंजातबले**=शैशववशाच्छक्तिहीने, **समुद्भिद्यमानपक्षपुटे**=समुद्भिद्यमानं क्रमेण जायमानं पक्षपुटं पक्षद्वयं यस्य तस्मिन् तथोक्ते **मयि** वैशम्पायने **च पितुः समीपवर्तिनि** जनकस्य निकटवर्तिनि कोटरगते कोटरमध्यस्थिते सति।

**सहसैव** अकस्मादेव **तस्मिन् महावने** पूर्वोक्ते महारण्ये, **संत्रासितसकल वनचरः**= संत्रासिता भयं प्राप्ताः सकलाः समस्ता वनचरा अरण्यचारिणः येन स तथोक्तः, **सरभसमुत्पतत्पतत्रिपक्षपुट सन्ततः**=सरभसम् भयवशाद् वेगपूर्वकम् उत्पतन्तः ये पतत्रिणः पक्षिणः तेषां पक्षपुटानि छदपुटानि तैः सन्ततः सम्यक् विस्तीर्णः तथोक्तः, **भीतकरिपोतचीत्कारपीवरः**=भीतानां त्रस्तानां करिपोतानां गजकलभानां चीत्कारैः भयव्यथा सूचकध्वनिभिः पीवरः स्थूलः तथोक्तः, **प्रचलितमत्तालिकुल क्वणित मांसलः**=प्रचलिताः चञ्चलाः मत्ताः मधुपानमत्ताश्च ये अलयः भ्रमराः तेषां कुलस्य समूहस्य क्वणितेन गुञ्जितेन अस्पष्ट शब्देन वा मांसलः पीवरः तथोक्तः, **परिभ्रमताम्** भयवशादितस्ततो धावताम् **उद्घोणानाम्** उन्नतनासिकावताम् **वनवराहाणाम्** अरण्यवासिनां शूकराणाम् यः रवः शब्दः तेन घर्घरः कठिनः भयप्रदश्च इति **परिभ्रमदुद्घोणवनवराहरवघर्घरः, गिरिगुहासुप्तप्रबुद्धसिंहनादोपबृंहितः**=गिरीणां पर्वतानां गुहासु कन्दरासु सुप्ताः पूर्वं निद्रिताः पश्चात् मृगया कोलाहलेन जागरणं प्राप्योत्थिता ये सिंहाः तेषां नादेन गर्जनध्वनिना उपबृंहितः वृद्धिं प्राप्तः तथोक्तः **तरून्**=वृक्षान् **कम्पयन्** चालयन् इव (अतएव) **भगीरथावतार्यमाणगङ्गाप्रवाहकलकलबहलः**=भगीरथेन भगीरथसंज्ञकेन राज्ञा अवतार्यमाणा हिमालयात् पृथिव्यां नीयमाना या गङ्गा

भागीरथी तस्यां यः प्रवाहः स्रोतः.तस्य कलकलः कलकलध्वनिः तद्वत् बहुलः प्रभूतः तथोक्तः, **मृगया कोलाहलध्वनिः** आखेटकलकलनिनादः **उदचरत्** उत्पन्नोऽभूत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—यदा च तस्मिन् वने, अल्पकालेनैव, दिवसस्य चतुर्घटिकात्मकं कालं प्राप्य भगवान् भास्करः स्फुटकान्तिर्जातः, शुकसमूहाश्चाभीष्टदिग्विभागान् प्रयाताः, एवञ्च स च शाल्मलीवृक्षः स्वनीडस्थितनिःशब्दशुक शिशुयुक्तोऽपि शिशूनां भयवशा न्निःशब्दभावेन निखिल प्राणिविरहितः शून्य इव प्रतीयमान आसीत् एवं यदा मम तातः स्वकीयनीड एव स्थितः, अहञ्च शैशववशाच्छक्तिहीनः क्रमशः समुत्पद्यमानपक्षसंहतिः तातसमीपवर्तिनि कोटर एव समवस्थित आसम्, तदैव तस्मिन् महारण्येऽकस्मादेव आखेटकलकलनिनादः समुत्पन्नोऽभवद्, स च निनादः समस्तवनचारिणां त्रासदः आसीत्, अथ चायं भयवशाद्वेगपूर्वकमुत्पततां पक्षिणां पक्षपुटरवेण सम्यक् विस्तीर्णः, त्रस्तगजशावकचीत्कारपुष्टः, त्रासेन स्वस्थानेभ्यः प्रयातानां पुष्परसपानोन्मत्तानां मधुकराणां गुञ्जितेन पीवरः, भयेनेतस्ततोधावतामुन्नतनासिकावतां वन्यशूकराणामार्तरवेण कठोरः, एवं पर्वतीयकन्दरासु पूर्वं निद्रितानां पश्चादाखेटकोलाहलमाकर्ण्य प्रबुद्धानां सिंहानां गर्जनध्वनिना वृद्धिगतं आसीत् । भयभीतवनदेवीभिश्चाकर्णितोऽयं निनादः तत्रत्यवृक्षान् चालयन्निव भगीरथाख्यराजानमनुगच्छन्त्या भागीरथ्याः प्रवाहस्य कल्लोल इव बहुलीकृतश्च आसीत् ।

**टिप्पणी**—नचिरादिवेत्यत्रोत्प्रेक्षा । शून्यइवेत्यत्रवाच्या क्रियोत्प्रेक्षा । ●

**आकर्ण्य च तमहमश्रुतपूर्वमुपजातवेपथुरर्भकतया जर्जरितकर्णविवरो भयविह्वलः समीपवर्तिनः पितुः प्रतीकारबुद्ध्या जराशिथिलपक्षपुटान्तरमविशम् ।**

**शब्दार्थ**—**आकर्ण्य च अश्रुतपूर्वम् तम्**=और पहले कभी न सुने गये उस शब्द को सुनकर, **उपजातवेपथुः**=जिसे कम्पन उत्पन्न हो गया था, **जर्जरितकर्णविवरः**=और जिसके कानों के छिद्र विदीर्ण हो रहे थे, **अर्भकतया**=बच्चा होने के कारण, **भयविह्वलः**=भय से व्याकुल मैं, **प्रतीकारबुद्ध्या**=उस भय की निवृत्ति के विचार से, **समीपवर्तिनः पितुः**=निकटवर्ती पिता के, **जराशिथिलपक्षपुटान्तरम्**=वृद्धता के कारण शिथिल पक्षपुट के भीतर, **अविशम्**=प्रविष्ट हो गया ।

**अनुवाद**—और पहले कभी न सुने गये उस शब्द को सुनकर जिसे कम्पन उत्पन्न हो गया था और जिसके कानों के छिद्र विदीर्ण हो रहे थे, तथा बच्चा होने के कारण भय से व्याकुल मैं उस भय की निवृत्ति के विचार से समीपवर्ती पिता के वृद्धतावश शिथिल पक्षपुटों के भीतर प्रविष्ट हो गया ।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि उस अश्रुतपूर्व शब्द को सुनकर मैं कांप उठा, बचपन के कारण उस ध्वनि से मेरे कान फटे जा रहे थे, अतः भय से व्याकुल

होकर उससे बचने के विचार से मैं समीप स्थित पिता के वृद्धतावश शिथिल पंखों के बीच ही घुस गया।

**संस्कृत व्याख्या—अश्रुतपूर्वम्**=अनाकर्णितपूर्वम् तम् आखेटकोलाहलशब्दम् आकर्ण्य श्रुत्वा च, उपजातवेपथुः त्रासवशात् समुत्पन्नकम्पः अर्भकतया शिशुत्वेन, जर्जरितकर्णविवरः जर्जरितम् विदीर्णम् कर्णयोः श्रोत्रयोः विवरं रन्ध्रं यस्यः स तथोक्तः भयविह्वलः=भयेन त्रासेन विह्वलः व्याकुलः तथोक्तः अहम् वैशम्पायनः, **प्रतीकारबुद्धया**=त्रासनिवृत्तिविचारेण, समीपवर्तिनः निकटवर्तिनः पितुः जनकस्य जराशिथिल-पक्षपुटान्तरम्=जरया वृद्धतया शिथिलम् यत् पक्षपुटम् पक्षद्वयम् तस्य अन्तरं मध्यम् तथोक्तम् अविशम् प्रविष्टोऽभवम्।

**संस्कृत सरलार्थ**—अनाकर्णितपूर्वं तम् मृगयाकोलाहलशब्दं श्रुत्वा त्रासवशात् समुत्पन्नकम्पः शिशुत्वेन विदीर्णश्रोत्रविवरः भयव्याकुलोऽहं त्रासनिवृत्तिविचारेण निकट स्थपितुः जराशिथिल पक्षद्वयाभ्यन्तरमेव प्रविष्टोऽभवम्।

**टिप्पणी—वेपथुः**=कम्पन, **अर्भकतया**=अर्भक=बच्चा, अर्भकतया=बच्चा होने के कारण, प्रतीकारबुद्ध्या=त्रास निवृत्ति के विचार से।

## शबर मृगया वर्णनम्

**अनन्तरञ्च सरभसमितो गजयूथपतिलुलितकमलिनीपरिमलः, इतः क्रोडकुलदश्यमानभद्रमुस्तारसामोदः, इतः करिकलभभज्यमानशल्लकीकषायगन्धः, इतो निपतित शुष्कपत्रमर्मरध्वनिः, इतो वनमहिषविषाणकोटिकुलिशभिद्यमानवल्मीकधूलिः, इतो मृगकदम्बकम्, इतो वनगजकुलम् इतो वनवराहयूथम्, इतोवनमहिषवृन्दम्, इतः शिखण्डिमण्डलविरुतम्, इतः कपिञ्जलकुलकलकूजितम्, इतः कुररकुलक्वणितम्, इतो मृगपतिनखभिद्यमानकुम्भकुञ्जररसितम्, इयमार्द्र पङ्कमलिना वराहपद्धतिः, इदमभिनवशष्पकवलरसश्यामला हरिणरोमन्थफेनसंहतिः, इयमुन्मदगन्धगजगण्डकण्डूयनपरिमलनिलीनमुखरमधुकरविरुतिः।**

**शब्दार्थ**—**अनन्तरञ्च**=और इसके बाद, **सरभसम्**=वेगपूर्वक, **इतः**=इधर से, **गजयूथपतिलुलितकमलिनीपरिमलः**=हाथियों के झुण्ड (यूथ) के स्वामी द्वारा कुचली गई (लुलित) कमलिनी की सुगन्धि (परिमल) **इतः**=इधर से, **क्रोडकुलदश्यमानभद्रमुस्तारसामोदः**=वराहों के समूह द्वारा (क्रोडकुल) काटकर खाये जाते हुये (दश्यमान) नागरमोथा के (भद्रमुस्ता) रस की गन्ध (आमोदः), **इतः करिकलभभज्यमानशल्लकीकषायगन्धः**=इधर से, हाथियों के बच्चों द्वारा (करिकलभ) तोड़ी जाती हुई (भज्यमान) शल्लकी की (गजभक्ष्य वृक्षविशेष) कसैली गन्ध, **इतोनिपतितशुष्कपत्रमर्मरध्वनिः**=इधर गिरे हुए सूखे पत्तों की मर्मर ध्वनि, **इतो वनमहिषविषाणकोटिकुलिशभिद्यमानवल्मीकधूलिः**=इधर जंगली महिषों (भैंसों) के सींगों (विषाण) की वज्र के समान तीक्ष्ण नोकों से (कोटि=नोंक, कुलिश=वज्र) विदीर्ण की जाती हुई (भिद्यमान) बाँबियों की धूलि (वल्मीक=बाँबी), **इतो मृगकदम्बकम्**=

इधर मृगों का झुण्ड (कदम्बक), **इतोवनगजकुलम्**=इधर जंगली हाथियों का झुण्ड (कुल) **इतो वनवराहयूथम्**=इधर जंगली वराहों का झुण्ड (यूथ), **इतो वनमहिषवृन्दम्**=इधर जंगली महिषों का समूह, **इतः शिखण्डिमण्डलविरुतम्**=इधर मयूरों के समूह की ध्वनि, **इतः कपिञ्जलकुलकलकूजितम्**=इधर चातक पक्षियों के समूह (कपिञ्जल) का मधुर (कल) कूजन, **इतः कुररकुलक्वणितम्**=इधर कुरर पक्षियों के समूह (कुरर=मत्स्यनाशक विशेष प्रकार के पक्षी) की ध्वनि (क्वणित), **इतो मृगपतिनखभिद्यमानकुम्भकुञ्जररसितम्**=इधर सिंहों (मृगपति) के नखों से विदीर्ण किये जाते हुए (भिद्यमान) कुम्भस्थलों वाले (कुम्भ=गण्डस्थल) हाथियों (कुञ्जर) की चिङ्घाड़ (रसितम्), **इयमार्द्रपङ्कमलिनावराहपद्धतिः**=यह (प्रत्यक्ष दृश्यमान) गीले कीचड़ से (आर्द्र पङ्क) मलिन (कृष्ण वर्ण) वराहों का मार्ग (पद्धति=मार्ग) **इयमभिनवशष्पकवलरसश्यामला हरिणरोमन्थफेनसंहतिः**=यह नई (अभिनव) कोमल घास (शष्प) के ग्रासों (कवल) के रस से श्यामल, हरिणों की जुगाली (रोमन्थ) का फेनसमूह (संहतिः) **इयमुन्मदगन्धगजगण्डकण्डूयनपरिमलनिलीनमुखरमधुकरविरुतिः**= यह उन्मत्त गन्ध गजों के गण्डस्थलों के खुजलाने से (कण्डूयन) (उत्पन्न) सुगन्ध (परिमल) पर संश्लिष्ट (निलीन) भनभनाते हुए (मुखर) भ्रमरों की (मधुकर) गुञ्जार (विरुतिः) है।

**अनुवाद**—(शुक कहता है कि और इसके बाद अर्थात् मेरे पंखों में प्रविष्ट हो जाने के बाद, ......... कोलाहलमश्रृण्वम्=मैंने कोलाहल सुना ............... इस वाक्य के अन्त में इस गद्यांश का सम्बन्ध है)

और इसके बाद इस स्थान पर (इस गद्यांश में सर्वत्र इतः का प्रासंगिक अर्थ "इस स्थान पर" ही है) हाथियों के झुण्ड के स्वामी (गजपति) द्वारा कुचली गई कमलिनी की सुगन्धि (फैल रही है), इस स्थान पर जंगली वराहों के झुण्ड द्वारा काटकर खाये जाते हुए नागरमोथा के रस की गन्ध (उठ रही है), इस स्थान पर हाथियों के बच्चों द्वारा तोड़ी जाती हुई सल्लकी के रस की कसैली गन्ध (है), इस स्थान पर गिरे हुए सूखे पत्तों की मर्मर ध्वनि (है), इस स्थान पर जंगली महिषों के सींगों की वज्रवत् कठोर नोकों से खोदी जाती हुई बाँबियों की धूलि (उड़ रही है), यहाँ हरिणों का झुण्ड (है), यहाँ जंगली हाथियों का झुण्ड (है), यहाँ जंगली वराहों का झुण्ड (है), यहाँ जंगली महिषों का समूह (है), यहाँ मयूरों के समूह की ध्वनि (है), यहाँ चातकों के झुण्ड का मधुर कूजन (है), यहाँ कुरर पक्षियों के समूह का निनाद (है), यहाँ सिंहों के नखों के द्वारा विदीर्ण किये जाते हुए गण्डस्थलों वाले हाथियों की चिङ्घाड़ (है), यह (प्रत्यक्ष दृश्यमान) (इस गद्यभाग में सर्वत्र "इयम्" का तात्पर्य "यह प्रत्यक्षतः दृश्यमान" है) नई कोमल घास के कवलों के रस से श्यामल, हरिणों की जुगाली के फेन का समूह (है), यह गीले कीचड़ से मलिन (श्यामवर्ण का) वराहों का मार्ग (है), यह उन्मत्त गन्ध गजों के गण्डस्थलों के खुजलाने से (उत्पन्न) सुगन्ध में संश्लिष्ट भनभनाते हुए भ्रमरों की गुञ्जार (है)।

**भावार्थ**—शुक कहता है कि जब मैं पंखों के बीच छिप गया तभी मैंने बड़ा कोलाहल सुना, जिसमें लोग इस प्रकार कहते हुए चिल्ला रहे थे कि देखो यहाँ पर बड़े-बड़े गजों द्वारा रौंदी गई कमलिनियों की सुगन्धि उठ रही है, यहाँ पर वन्य शूकरों के द्वारा काट-काटकर खाये गये नागरमोथा से गन्ध आ रही है, यहां करिशावकों द्वारा तोड़ी गई सल्लकी वृक्षों की डालियों से कसैली गन्ध निकल रही है, गिरे हुए सूखे पत्तों से मर्मर ध्वनि निकल रही है, यहां जो जंगली भैंसों ने अपने वज्रवत् कठोर सींगों की नोकों से बाँबियों को खोद डाला है इससे धूल उड़ रही है। यह मृगों का झुण्ड है, यह जंगली हाथियों का झुण्ड है, यह जंगली वराहों का और यह जंगली भैंसों का समूह है, यहाँ मयूर बोल रहे हैं, यहाँ चातकों का और यहाँ कुरर पक्षियों का कलरव है, इधर सिंहों के नखों से विदीर्ण गण्डस्थलों वाले हाथियों की चिङ्घाड़ है, यह गीली कीचड़ से सना हुआ शूकरों का मार्ग है, यह नई कोमल घास के कवलों के रस से श्यामल मृगरोमन्थ का फेन समूह है और यह मतवाले गन्ध गजों के गण्डस्थल के खुजलाने से उत्पन्न गन्ध में लिपटे मुखरित भ्रमरों की गुञ्जार है।

**संस्कृत व्याख्या—अनन्तरञ्च**=पक्षपुटमध्यप्रवेशानन्तरञ्च (कोलाहलमशृण्वम् इति दूरस्थ क्रियथान्वयः) **इतः** अस्मिन् स्थाने, **सरभसम्** सवेगम्, **गजयूथपतिना** लुलिता मर्दिता याः कमलिन्यः तासां परिमलः सुगन्धिः (प्रसरतीति शेषः) इतः **क्रोडकुलदश्यमानभद्रमुस्तारसामोदः**=अस्मिन् प्रदेशे, क्रोडानां वन्यवराहाणां कुलेन समूहेन दश्यमाना दष्ट्वा भक्ष्यमाणा या भद्रमुस्ता गुन्द्राः तासां रसः द्रवः तस्य आमोदः सौरभम् (प्रसरति) **इतः करिकलभभज्यमानशल्लकीकषायगन्धः**=अत्र करिकलभैः गजशावकैः भज्यमाना आमर्द्यमाना याः शल्लक्यः गजभक्ष्यतरुविशेषाः तासां कषायगन्धः निर्यासगन्धः (आयाति) **इतोनिपतितशुष्कपत्रमर्मरध्वनिः**=अत्र वृक्षेभ्यश्च्युतानां शुष्क पत्राणां नीरसदलानां मर्मरध्वनिः मर्मर इत्येवं रवः (उत्तिष्ठति) **इतोवनमहिषविषाणाकोटिकुलिशभिद्यमानवल्मीकधूलिः**=अस्मिन् स्थले वनमहिषाणाम् अरण्य सैरिभाणाम् विषाणकोटयः शृङ्गाग्राणि कुलिशानि वज्राणीव तैः भिद्यमानानां छिद्यमानानां वल्मीकानाम् ऊधीकाकृतमृत्तिकास्तूपानाम् धूलिः रजः (प्रसरति) **इतो मृगकदम्बकम्**=अत्र हरिणसमूहः, **इतो वनगजकुलम्**=अस्मिन् स्थाने अरण्यगजसमूहः, **इतोवनवराहयूथम्**=अत्र वन्यशूकरमण्डलम्, **इतोवनमहिषवृन्दम्**=अत्र वन्यसैरिभकदम्बकम्, इतः **शिखण्डिमण्डलविरुतम्=अत्र मयूरमण्डलध्वनिः**, इतः **कपिञ्जलकुलकलकूजितम्**=कपिञ्जलानां चातकपक्षिणां कुलस्य समूहस्य कलकूजितम् मधुरकूजनम्, **इतः कुररकुलक्वणितम्**=कुररकुलस्य मत्स्यनाशकपक्षिसमूहस्य क्वणितम् कूजितम्, **इतो मृगपतिनखभिद्यमानकुम्भकुञ्जररसितम्**=अस्मिन् स्थले मृगपतीनां सिंहानां नखैः भिद्यमाना विदीर्यमाणाः कुम्भाः शिरःस्थमांसपिण्डाः येषां तथोक्तानां कुञ्जराणां गजानां रसितम् आक्रन्दितम्, **इयमार्द्रपङ्कमलिनावराहपद्धतिः**=इयं प्रत्यक्षदृश्यमानो आर्द्रः क्लिन्नः यः पङ्कः कर्दमः तेन मलिना

श्यामवर्णा वराहाणां शूकराणां पद्धतिः मार्गः, **इयमभिनवशष्पकवलरसश्यामलां हरिणरोमन्थफेनसंहतिः**=इयं प्रत्यक्षतः दृश्यमाना=अभिनवानि नूतनानि यानि शष्पाणि वालतृणानि तेषां ये कवलाः ग्रासाः तेषां रसेन द्रवेण श्यामला कृष्णवर्णा हरिणानां मृगाणां यो रोमन्थः चर्वितचर्वणम् तस्य फेनस्य कफस्य संहतिः समूहः, **इयमुन्मदगन्धगजगण्डकण्डूयनपरिमलनिलीनमुखरमधुकरविरुतिः**=इयं प्रत्यक्षः दृश्यमाना, उन्मदानां मदमत्तानां गन्धगजानां सुरभिमदयुक्तहस्तिनाम् यद् गण्ड-कण्डूयनम् कपोलस्थलघर्षणं तेन यः परिमलः आमोदः तत्र निलीना आश्लिष्टा मुखरा वाचालाश्च ये मधुकराः भ्रमराः तेषां विरुतिः झङ्कारः, यत्रास्ति च ।

**संस्कृत सरलार्थ**—पक्षपुटमध्यप्रवेशानन्तरं स शुकः कोलाहलमशृणोत्, कोलाहलमेव विशेषयन् कविरत्र कथयति—प्रदेशेऽस्मिन् सवेगं करिकुलोत्तमैर्मर्दित-कमलिनीनां सौरभं (सञ्चरति) । अत्र वन्य शूकरसमूहेन दष्ट्वा भक्ष्यमाणानां भद्र-मुस्तानां रसस्य सौरभं (प्रसरति) । अत्र गजशावकैरामर्द्यमानानां शल्लकीनां निर्यासा मोदः (समुत्तिष्ठति) वृक्षेभ्यश्च्युतानां नीरसदलानां मर्मरध्वनिः (जायते) अरण्यसैरि-भाणां कुलिशवद्विषाणाग्रभागैः छिद्यमानवल्मीकानां धूलिः (प्रसरति) अत्र च मृग-समूहः, इतोऽरण्यहस्तिसमूहः, अत्र चारण्यमहिषकदम्बकम, अत्र वनशूकरसमूहः, इतः मयूरसमूहध्वनिः (श्रूयते), अत्र चातकपक्षिसमूहमधुरकूजनम्, अत्र च कुररपक्षिसमूहकूजितंम्, अत्र च सिंहनखविदीर्यमाण शिरःस्थमांसपिण्डानां गजा-नामाक्रन्दितम्, अयं पुरोदृश्यमानः क्लिन्नपङ्कश्यामवर्णशूकरमार्गः, अयञ्च नूतन वालतृणकवलानां रसेन श्यामलः मृगरोमन्थफेनसमूहः, एवमयं मदमत्तगन्धगजानां कपोलस्थककण्डूयनसमुत्थितामोदाश्लिष्टानां वाचालानां भ्रमराणां झङ्कारो विद्यतेऽत्र ।

**टिप्पणी**—पक्ष पुटों में प्रवेश करने के बाद शुक ने जो कोलाहल सुना वह अनेकविध ध्वनियों से मिश्रित था, इन्हीं विविध ध्वनियों का वर्णन प्रस्तुत गद्यांश में किया गया है । यहाँ सर्वत्र इत का अर्थ अस्मिन् प्रदेशे और इयम् का अर्थ इयं पुरो दृश्य माना है । **लुलित**—मसली हुई, **परिमलः** विमर्दन से उठी हुई सुगन्धि, इस वाक्यांश से उस स्थान पर गजों के अस्तित्व की सम्भावना की गई है, **दश्यमाना**—दंश धातु से यक् शानच् दाँतों से काटकर खाई जाती हुई, **भद्रमुस्ता**= नागरमोथा नाम से हिन्दी में प्रचलित है, यह एक प्रकार की घास जलगर्तों में उत्पन्न होती है जिसे शूकर बड़े चाव से खाते हैं "गुन्द्रस्ते जनके स्त्री तु प्रियङ्गौ भद्रमुस्तके" कोश, इससे वहाँ शूकरों के अस्तित्व को बताया गया है । **भज्यमान**= तोड़ी जाती हुई । **शल्लकी** एक विशेष प्रकार का वृक्ष होता है जिसे गज बड़े चाव से तोड़कर खाते हैं, इससे उस स्थान पर गजों की उपस्थिति बताई गई है । **निपतितेति**— सूखे पत्तों के ढेर पर जब कोई जीव चलता है तब उनसे मर्मर ध्वनि निकलती है "मर्मरो वस्त्रभेदे च शुष्कपत्रध्वनौ तथा" कोशः । **वनमहिषेति**—विषाण कोटि

कुलिशैः—इसमें दो तरह से विग्रह हो सकता है—विषाणकोटयः शृङ्गाग्राणि कुलिशानि वज्राणीव तैः अथवा विषाणकोटय एव कुलिशानि तैः इस प्रकार यहाँ लुप्तोपमा और रूपक दोनों ही अलंकारों की सम्भावना होने से सन्देह संकरालंकार है। **कदम्बक**=समूह। कुरर एक मत्स्यनाशक पक्षी होता है। **रसितम्**=चिङ्घाड़। **आर्द्रपङ्केति**=जलगर्तों से जब शूकर उठते थे तब उनके शरीर पर लगी गीली कीचड़ से उनका मार्ग भी मलिन हो जाता था। **अभिनवेति**—यद्यपि मृगों के रोमन्थ से निकलने वाला फेन सफेद होता है पर हरी घास के रस से वह श्यामला हो गया था। **उन्मदेति**—गन्धगज वे गज विशेष कहे जाते हैं जिनके मद की सुगन्धि दूर तक फैलती है, इस सुगन्धि से आकृष्ट होकर भ्रमर उनके कपोलस्थलों पर बैठकर गुञ्जार करते थे।

**एषा निपतित रुधिरबिन्दुसिक्त शुष्कपत्रपाटला रुरुपदवी, एतद्द्विरदवीचरणमृदितविटपपल्लवपटलम्, एतत् खड्गिकुलक्रीडितम्, एष नखकोटिविलिखितविकटपत्रलेखो रुधिरपाटलः करिमौक्तिकदन्तुरो मृगपतिमार्गः, एषा प्रत्यग्रप्रसूत वनमृगी गर्भरुधिरलोहिनी भूमिः, इयमटवी वेणिकानुसारिणी पक्षचरस्य यूथपतेर्मदजलमलिना, सञ्चारवीथी चमरीपङ्क्तिरियमनुगम्यताम्, उच्छुष्कमृगकरीष पांसुला त्वरिततरमध्यास्तामियं वनस्थली, तरुशिखरमारुह्यताम्, आलोक्यतां दिगियम्, आकर्ण्यतामयं शब्दः, गृह्यतां धनुः, अवहितैः स्थीयताम, विमुच्यन्तां श्वानः, इत्यन्योन्यमभिदधतो मृगयासक्तस्य महतो जनसमूहस्य तरुगहनान्तरितविग्रहस्य क्षोभितकाननं कोलाहलमशृण्वम।**

शब्दार्थ—**एष**=यह (**निपतितरुधिरबिन्दुसिक्तशुष्कपत्रपाटला**=हमारे अस्त्र प्रहार के कारण शरीर से) गिरे हुए रक्त की बूंदों से गीले किये (सिक्त) गये, सूखे पत्तों से श्वेतरक्तवर्ण (पाटला) रुरु नामक मृगों का मार्ग (पदवी) है। **एतद्द्विरदचरणमृदितविटपपल्लवपटलम्**=एतद्=यह, हाथियों के (द्विरद) पैरों से रौंदा गया (मृदित) शाखाओं (विटप) और किसलयों (पल्लव) का समूह (पटल) है। **एतत्**=यह, **खड्गिकुलक्रीडितम्**=गण्डकों के समूह (गैंडा पशुओं का) का क्रीडा स्थल (क्रीडितम्) है। **एष नखकोटिविलिखितविकट पत्रलेखो रुधिरपाटलः करिमौक्तिकदन्तुरो मृगपतिमार्गः**=यह नखों के अग्रभागों से (नखकोटि) अर्थात् नखों के अग्रभागों से निकले हुए रक्त से, चित्रीकृत (विलिखित=चित्र जैसे खींच गया) भयानक (विकट) पत्राकार चिह्नों (पत्रलेख) वाला, खून से श्वेतरक्त वर्ण का, (पाटल) गजमुक्ताओं से ऊँचा-नीचा (कटिमौक्तिकदन्तुरः) सिंहों का सञ्चरण मार्ग (है)। **एषा प्रत्यग्रप्रसूतवनमृगीगर्भरुधिरलोहिनी भूमिः**=यह अचिर प्रसूता (प्रत्यग्रप्रसूत) जंगली हरिणी के गर्भ के रक्त से लाल (लोहिनी) भूमि है। **इयमटवी वेणिकानुसारिणी, पक्षचरस्य यूथपते मंदजलमलिना**=यह केशवेणी का अनुसरण करने

वाली अर्थात् केशवेणी के समान ऊँची-नीची, अपने मण्डल के साथ घूमने वाले (पक्षचरस्य) गजराज (यूथपतेः) के मदजल से कृष्णवर्ण (मलिना) अरण्यस्थली (अटवी) है। **सञ्चारवीथीचमरीपङ्क्तिरियमनुगम्यताम्**=इस सञ्चरण मार्ग में चमरी मृगों की पंक्ति के पीछे चलो, **उच्छुष्कमृगकरीषपांसुला त्वरिततरमध्यास्यतामियं वनस्थली**=अत्यधिक सूखे हुए (उच्छुष्क) मृगों के पुरीषों से (मृगकरीष) धूलि भरी हुई (पांसुला) इस वनस्थली पर (इयं वनस्थली) अति शीघ्र (त्वरिततरम्) बैठ जाओ (अध्यास्यताम्) **तरुशिखरमारुह्यताम्**=वृक्ष की चोटी पर चढ़ जाओ, **आलोक्यतां दिगियम्**=इस दिशा को देखो, **आकर्ण्यतामयं शब्दः**=इस शब्द को सुनो, **गृह्यतां धनुः**=धनुष को ले लो, **अवहितैः स्थीयताम्**=सावधान होकर (अवहितैः) बैठ जाओ, **विमुच्यन्तां श्वानः**=कुत्तों को छोड़ दो, **इत्यन्योन्यमभिदधतः**=इस प्रकार एक दूसरे से कहते हुए, **मृगयासक्तस्य**=शिकार खेलने में लगे हुए, **तरुगहनान्तरितविग्रहस्य**=वृक्षों के झुरमुटों में छिपे हुए शरीरों वाले (गहन, अन्तरित विग्रह) **महतो जनसमूहस्य**=विशाल जनसमूह का, **क्षोभित काननम्**=वन को विक्षुब्ध कर देने वाला, **कोलाहलमशृण्वम्**=कोलाहल (मैंने) सुना।

**अनुवाद**—यह (सामने दिखलाई पड़ने वाला) (हमारे अस्त्र प्रहार के कारण शरीर से) गिरे हुए रक्त की बूँदों से गीले किये गये सूखे पत्तों से श्वेतरक्त वर्ण का, रुरु नामक मृगों का मार्ग है। यह हाथियों के पैरों से रौंदा गया, शाखाओं और किसलयों का समूह है। यह गण्डकों के समूह का क्रीडास्थल है। यह नखों के अग्रभागों से चित्रीकृत भयानक पत्राकारचिह्नों वाला, खून से श्वेतरक्त वर्ण का, गजमुक्ताओं से ऊँचा नीचा सिंहों का सञ्चरण मार्ग है। यह अचिर प्रसूत जंगली मृगी के गर्भ के रक्त से लाल भूमि है। यह केशवेणी के समान ऊँची-नीची, अपने मण्डल के साथ घूमने वाले गजराज के मदजल से कृष्णवर्ण अरण्यस्थली है। इस सञ्चरण मार्ग में चमरी मृगों के पीछे चलो, अत्यधिक सूखे हुए मृगों के पुरीषों से धूलिभरी हुई, इस वनस्थली पर अतिशीघ्र बैठ जाओ, वृक्षों की चोटियों पर चढ़ जाओ, इस दिशा की ओर देखो, इस शब्द को सुनो, धनुष् को उठा लो, सावधान होकर बैठ जाओ, कुत्तों को छोड़ दो, इस प्रकार एक दूसरे से कहते हुए, शिकार खेलने में लगे हुए, वृक्षों के झुरमुटों में छिपे हुए शरीर वाले, विशाल जनसमूह का, वन को विक्षुब्ध कर देने वाला कोलाहल (मैंने) सुना।

**भावार्थ**—शुक कहता है कि जब मैं भयवश पंखों में प्रविष्ट हो गया उसी समय मैंने शिकारियों का बहुत बड़ा कोलाहल सुना, जिसमें निम्नलिखित बातें कही जा रही थीं। देखो यह टपकते हुए खून की बूँदों से सने हुए सूखे पत्तों से श्वेतरक्त वर्ण का घायल रुरु मृगों के भागने का मार्ग है। यह हाथियों के पैरों से रौंदे हुए वृक्ष की डालियों एवं पत्तों का ढेर है। यहाँ पर गैंड़े खेल रहे थे। यह हाथियों को मारकर लौटे हुए सिंहों का मार्ग है जो कि उनके खून से लाल हो गया है तथा भयंकर

पंजों की छापों से भरा हुआ है और मारे गये हाथियों के गजमुक्ताओं से भरकर ऊँचा-नीचा हो गया है। यह स्थान किसी जंगली मृगी के गर्भ के खून से लाल हो गया है। यह देखो वह वनस्थली है जो अपने मण्डल के साथ घूमने वाले गजराज के मद जल से मलिन तथा वेणी के समान ऊँची-नीची है। यह चमरी मृगों के आने-जाने का मार्ग है, इसी रास्ते से उनका पीछा करो, यह वनभूमि मृगों के सूखे कडों की धूलि से भरी हुई है, हरिणों की खोज के लिए यहीं बैठ जाओ। वृक्षों की चोटियों पर चढ़कर देखो, इस दिशा की ओर देखो, यह शब्द सुनो, धनुष उठा लो, सावधान होकर बैठ जाओ, कुत्तों को छोड़ दो, शिकारियों की यह भीड़ यद्यपि वृक्षों में छिपी हुई थी फिर भी इसने समस्त वन को विक्षुब्ध कर दिया था।

**संस्कृत व्याख्या—एषा**=अग्रे द्रश्यमाना, **निपतितरुधिरबिन्दुसिक्तशुष्क पाटला रुरुपदवी**=निपतिताः अस्माकं शस्त्रप्रहारेण व्रणितदेहविनिःसृताः ये रुधिर बिन्दवः तैः सिक्तानि आर्द्रीकृतानि यानि शुष्कपत्राणि तैः पाटला श्वेतरक्तवर्णा, रुरुपदवी रुरुसंज्ञकमृगसञ्चरणमार्गः, **एष नखकोटिविलिखितविकटपत्रलेखो रुधिरपाटलः करिमौक्तिकदन्तुरो मृगपतिमार्गः**=एष पुरोदृश्यमानः नख-कोटिभिः नखाग्रभागैः तच्च्युतशोणितैरित्यर्थः विलिखिता चित्रीकृताः विकटाः पत्रलेखाः पत्राकार चिह्नानि यस्मिन् स तथोक्तः, **रुधिरपाटलः**=रुधिरेण पाटलः श्वेतरक्तवर्णः, **करिमौक्तिकदन्तुरः**=करिणां गजानां मौक्तिकैः मुक्ताभिः व्यापादित गजमुक्ताभिरित्यर्थः दन्तुरः नतोन्नतः **मृगपतिमार्गः**=गजराज सञ्चरणपद्धतिः, एतद **द्विरदचरण-मृदितविटपपल्लवपटलम्**—एतत् पुरोदृश्यमानम्, द्विरदानां गजानां चरणैः पादैः मृदितानां मर्दितानां विटपानां तरुस्कन्धानां पल्लवानां किसलयानाञ्च पटलम् वृन्दम् यत्र एवं विधं स्थानम्, एतत् **खडिगकुलक्रीडितम्**=एतद् पुरोवर्ति खडिगनाम् गण्डकानां कुलस्य समूहस्य क्रीडितम् क्रीडाचिह्नितं स्थानम्, **एषा प्रत्यग्रप्रसूतवनमृगीगर्भ-रुधिरलोहिनीभूमिः**=एषा पुरोवर्तिनी, प्रत्यग्रप्रसूतायाः अचिरप्रसूतवत्याः वनमृग्या गर्भरुधिरेण भ्रूणशोणितेन लोहिनी रक्तवर्णा भूमिः, **इयमटवी वेणिकानुसारिणी पक्ष चरस्य यूथपते मदजलमलिना**=इयम् पुरो वर्तमाना वेणिकानुसारिणी वेणिकां केश-वेणीम् अनुसर्तुं शीलमस्या अस्तीति केशवेणीसमा नतोन्नता, पक्षचरस्य स्वमण्डलेन सह भ्रमतः यूथपतेः गजराजस्य मदजलेन दानवारिणा मलिना कृष्णवर्णा अटवी अरण्यम्, **सञ्चारवीथीचमरीपङ्क्तिरियमनुगम्यताम्**=सञ्चारवीथ्यां गमना-गमन मार्गे चमरी पंक्ति चमर्याख्यमृगाणां राजिः **इयम् अनुगम्यताम् अनुव्रज्यताम्, उच्छुष्कमृगकरीषपांसुला त्वरिततरमध्यास्यतामियं वनस्थली**=उच्छुष्कैः अति-नीरसैः मृगकरीषैः हरिणपुरीषैः पांसुला धूलिव्याप्ता तथोक्ता इयं पुरोवर्तिनी वनस्थली अरण्यभूमिः त्वरिततरम् अतिवेगवत्तरम् अध्यास्यताम् अधिश्रियताम्) **तरु-शिखरमारुह्यताम्**=तरूणां शिखरेषु ऊर्ध्वदेशेषु आरुह्यताम् पक्षिहननाय समारुह्यताम्, **आलोक्यतां दिगियम्**=इयम् अभिमुखी दिक् दिशा आलोक्यताम् 'पशवोऽत्र विद्यन्ते

नवेति बोधनाय परिदृश्यताम्, **आकर्ण्यतामयं शब्दः**=शब्दोऽयं श्रूयताम्, गतो ह्ययं शब्द उदेति तद्देशे गन्तव्यमित्याशयः, **गृह्यतां धनुः**=पशुवधाय झटिति चाप आदीयताम्, **अवहितैः** सावधानैः **स्थीयताम्** उपविश्यताम् अन्यथा पशवः पलायिष्यन्त इति भावः। **विमुच्यन्ताम्** परिप्रेष्यन्ताम् पशुमार्गणाय **श्वानः** स्वपालितकुक्कुराः, इति अन्योन्यं परस्परम् **अभिदधतः** कथयतः **मृगयासक्तस्य आखेटतत्परस्य, तरुगहनान्तरित विग्रहस्य**=तरूणां गहनं वनं तेन अन्तरिता आच्छादिता विग्रहाः शरीराणि यस्य तस्य तथोक्तस्य **महतः** विशालस्य **जनसमूहस्य, क्षुभितकाननम्** व्याकुलीकृतवनम् **कोलाहलं** कलकलम् **अशृण्वम्**।

**संस्कृत सरलार्थ**—अस्त्रप्रहारव्रणितपशुशरीरेभ्यो भूमौ निपतितरुधिर विन्दुभिः आर्द्रीकृतनीरसदलैः श्वेतरक्तवर्णोऽयं रुरुसंज्ञकमृगसञ्चरणमार्गः पुरो वर्तते। गजपादमर्दितानां तरुस्कन्धानां किसलयानाञ्च वृन्दम् यत्रैवंविधमेतत् स्थानम्, गण्डकाख्यपशु समूहस्यै तत्क्रीडास्थलम्, नखाग्रभागैश्चित्रीकृतभयावहपत्राकारलक्षणान्वितः रुधिरेण श्वेतरक्तीकृतः गजमुक्ताभिर्नतोन्नतः गजराजसञ्चरण मार्ग एव पुरोदृश्यते, अचिरप्रसूताया वनमृग्या गर्भरुधिरेण रक्तवर्णेयं भूमिः पुरतो वर्तते, केशवेणीसमा नतोन्नता स्वमण्डलेन सह परिभ्रमतः गजराजस्य दानवारिणा मलिनीकृतेयमटवी, सञ्चरणमार्गस्था चमर्याख्यमृगपङ्क्तिरियमनुव्रज्यताम्, अतिनीरसमृगपुरीपधूसरिता वनस्थलीयं वेगवत्तरमधिश्रियताम्, समारुह्यतां वृक्षशिखरम्, दिशेयं परिदृश्यताम्, श्रूयतामयं शब्दः, समादीयतां चापः, सावधानैः समुपविश्यताम्, परिप्रेष्यन्ताम् स्वपालितकुक्कुराः, इत्येवं परस्परं कथयतः मृगयातत्परस्य वृक्षवनाच्छादितशरीरस्य विशालस्य जनसमूहस्य व्याकुलीकृतवनं कलकलमशृण्वम्।

**टिप्पणी**—**निपतितेति**=घायल हुये रुरु मृगों के भागने का मार्ग उनके गिरे हुये खून की बूंदों से भीगे हुए सूखे पत्तों का रंग गुलाबी हो गया था। **द्विरदेति**—एक स्थान पर गजपादमर्दित शाखाओं एवं पत्तों का समूह था, **खड्गिकुलेति**—"गण्डके खडिगखडिगनौ" इत्यमरः। **नखेति**—नखों की नोकों से जिसमें पत्राकार भयानक चित्र बनाये गये थे, यह फैले हुये गजमुक्ताओं से नतोन्नत था। **प्रत्यग्रेति**—शीघ्र ही प्रसूता मृगी के गर्भ के खून से, लोहिनी लालवर्ण की। अटवी=अरण्य, अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम् इत्यमरः। वेणिका=केशवेणी। पक्ष=मण्डल या झुण्ड, सञ्चारवीथी=संचरणमार्ग। करीष=मलपिण्ड, विग्रह=शरीर।

●

**अथ नातिचिरादेवानुलेपनार्द्रमृदङ्गध्वनिधीरेण, गिरिविवरविजृम्भितप्रतिनिनादगम्भीरेण, शबरशरताडितानां केशरिणां निनादेन, संत्रस्तयूथमुक्तानामेकाकिनाञ्च सञ्चरतामनवरतकरास्फोटमिश्रेण जलधररसितानुकारिणा गजयूथपतीनां कण्ठगर्जितेन, सरभससारमेयविलुप्यमानावयवाना-**

**मालोलकातरतरलतरतारकाणामेणकानाञ्च करुणकूजितेन, निहतयूथ-पतीनां वियोगिनीनामनुगतकलभानञ्च स्थित्वा स्थित्वा च समाकर्ण्य कलकलमुत्कर्णपल्लवानामितस्ततः परिभ्रमन्तीनां प्रत्यग्रपतिविनाशशोक-दीर्घेण करिणीनां चीत्कृतेन,……।**

**शब्दार्थ**—**अथ**=कोलाहल सुनने के बाद, **नातिचिरादेव**=थोड़े ही समय में अर्थात् शीघ्र ही, **शबरशरताडितानाम् केशरिणाम्**=किरातों के बाणों से आहत (ताडित) हुए, सिंहों के, **अनुलेपनार्द्र मृदङ्गध्वनिधीरेण**=(दोनों मुखों पर लगाये गये एक विशेष प्रकार के द्रवद्रव्य के) लेप से (अनुलेप) गीले (आर्द्र) मृदङ्ग नामक वाद्य की ध्वनि के समान गम्भीर (धीर) (तथा) **गिरिविवरविजृम्भितप्रतिनिना-दगम्भीरेण निनादेन**=पर्वतकन्दराओं में (गिरिविवर) फैली हुई (विजृम्भित) प्रति-ध्वनि के कारण (प्रतिनिनाद) बढ़े हुए (गम्भीर) गर्जन से (निनाद)। **संत्रस्तयूथ-मुक्तानाम्**=भयभीत (संत्रस्त) हुए अपने वर्ग से परित्यक्त, **एकाकिनाम्**=च सञ्चरतां गजयूथपतीनाम्=(अतएव) अकेले घूमने वाले गजराजों के, **अनवरतकरास्फोटमिश्रेण**=लगातार सूँड़ों के आघात के शब्द से मिश्रित, **जलधररसितानुकारिणा**=मेघों की गर्जन (रसित) का अनुकरण करने वाले, **कण्ठगर्जितेन**=कण्ठ से निकले विस्तृत चिङ्घाड़ से, **सरभससारमेयविलुप्यमानावयवानाम्**=वेगशाली (सरभस) कुत्तों द्वारा (सारमेय) काटे जाते हुए (विलुप्यमान) अंगों वाले (अवयव), **आलोलकातरतरलतर-तारकाणाम्**=(अतएव) अश्रुपूरित (आलोल) दीन (कातर) एवं (भयवश) अति-चञ्चल पुतलियों वाले (तारका कनीनिका या पुतली), **एणकानाञ्च**=एणक नामक मृगों के, **करुणकूजितेन**=करुणोत्पादक ध्वनि से, **निहतयूथपतीनाम्**=मारे गये गजराजों की, **वियोगिनीनाम् करिणीनाम्**=वियोगिनी (उन) हथनियों के, **अनुगत-कलभानाञ्च**=और जिनके पीछे गजशावक चल रहे थे, **स्थित्वा स्थित्वा समाकर्ण्य कलकलम्** (तथा जो) रुक-रुक कर कोलाहल को सुनकर, **उत्कर्णपल्लवानाम् इतस्ततः परिभ्रमन्तीनाम्**=पल्लवों के आकार वाले कानों को खड़ा किये हुए, इधर-उधर घूम रही थी, **प्रत्यग्रपतिविनाशशोकदीर्घेण**=अचिर पतिविनाश के शोक के कारण बढ़े हुए (दीर्घेण) **चीत्कृतेन**=चीत्कार से……। सर्वतः प्रचलितमिव तदरण्यमभवत्।

**अनुवाद**—कोलाहल सुनने के बाद, शीघ्र ही, किरातों के बाणों से आहत किये गये, सिंहों के, लेप के द्वारा गीले मृदङ्ग की ध्वनि के समान गम्भीर (तथा) पर्वत-कन्दराओं में फैली हुई प्रतिध्वनि के कारण बढ़े हुए गर्जन से, भयभीत हुए अपने वर्ग से परित्यक्त (अतएव) अकेले घूमने वाले गजराजों के लगातार सूँडों के आघात के शब्द से मिश्रित, मेघों के गर्जनतुल्य कण्ठनिःसृत विस्तृत चिङ्घाड़ से, वेगशाली कुत्तों द्वारा काटे जाते हुए अंगों वाले (अतएव) अश्रुपूरित कातर एवं भयवश अतिचञ्चल पुतलियों वाले एणक नामक मृगों के करुणोत्पादक शब्द से, मारे गये गजराजों की वियोगिनी उन हथिनियों के, जिनके पीछे गजशावक चल रहे

थे तथा जो रुक-रुककर कोलाहल को सुनकर पल्लवों के आकार वाले कानों को खड़ा किये हुए इधर-उधर घूम रही थीं, अचिर पतिविनाश के शोक के कारण बढ़े हुए चीत्कार से·······(वह वन काँप उठा)।

**भावार्थ**—थोड़ी ही देर में चारों ओर होने वाली ध्वनियों से वह जंगल काँप उठा था, इन ध्वनियों में, कहीं भीलों के बाणों से विद्ध सिंहों की दहाड़ पर्वतीय गुफाओं में प्रतिध्वनित हो रही थी अतएव अतिभयानक वह ध्वनि, लेप से गीले मृदंग की ध्वनि के समान गहरी थी। कहीं भयभीत हुए अपने झुण्डों से बिछुड़े हुए अकेले भटकने वाले गजराज अपनी सूड़ें पटक-पटककर मेघगर्जना के समान दहाड़ रहे थे। कहीं पर मृगों के शरीर को कुत्ते नोंच रहे थे, जिससे उनके आँखों की पुतलियाँ कातर, अत्यन्त चञ्चल और आँसुओं से भरी हुई थीं, अतएव पीड़ावश वे कराहते हुए चिल्ला रहे थे। कहीं मरे हुए गजराजों की वियोगिनी हथिनियाँ अपने बच्चों को पीछे-पीछे लिए हुए भटक रही थीं, और रुक-रुककर अपने कान खड़े कर उस कोलाहल को सुन रही थीं एवं वे अपने पति के विनाश के शोक में व्याकुल होकर चिङ्घाड़ रही थीं।

**संस्कृत व्याख्या**—अथ=कोलाहलश्रवणानन्तरम्, **नातिचिरादेव**=अत्यल्पकालेनैव, "सर्वतः प्रचलितमिव तदरण्यमभवदिति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः"। **शबरशरताडितानाम्**=शबराः किरातास्तेषां शरैः वाणैः ताडिताः आहतास्तेषाम् तथोक्तानाम् **केसरिणाम्** सिंहानाम्, **गिरिविवरविजृम्भितप्रतिनादगम्भीरेण**=गिरयः पर्वतास्तेषां विवरेषु कन्दरासु विजृम्भितेन विस्तृतेन प्रतिनादेन प्रतिध्वनिना गम्भीरः विपुलस्तेन ताहशेन (तथा) **अनुलेपनार्द्रमृदङ्गध्वनिधीरेण**=अनुलेपेन मुखद्वयेऽपि द्रव्यविशेषलेपेन आर्द्रः क्लिन्नः यः मृदङ्गः मृदङ्गसंज्ञकवाद्यविशेषः तस्य यो ध्वनिः शब्दः तद्वत् धीरेण गम्भीरेण ताहशेन, **निनादेन** शब्देन, **संत्रस्तयूथमुक्तानाम्**=संत्रस्तेन भिल्लाक्रमणभयभीतेन यूथेन स्वमण्डलेन मुक्ताः परित्यक्तास्तेषाम् तथोक्तानाम् (अतएव) **एकाकिनाम्** असहायानाम् **सञ्चरताम्** परिभ्रमताम् **यूथपतीनां** करिमण्डलस्वामिनाम्, **अनवरतकरास्फोटमिश्रेण**=अनवरतम् निरन्तरम् यः कराणां शुण्डादण्डानाम् आस्फोटः आघातः तेन मिश्रेण सम्वलितेन ताहशेन, **जलधररसितानुकारिणा**=मेघगर्जनसमेन कण्ठगर्जितेन=**कण्ठनिःसृतविस्तृतध्वनिना**, **सरभससारमेयविलुप्यमानावयवानाम्**= **सरभसैः** वेगवत्तरैः **सारमेयैः** किरातपालितश्वभिः **विलुप्यमानाः** दष्ट्वा भक्ष्यमाणाः अवयवाः शरीराङ्गानि येषां तेषां ताहशानाम्, **आलोलकातरतरलतरतारकाणाम्**= (अतएव) आलोलाः पीडावशादश्रुपूरिताः कातरा दीना दयनीया वा तरलतरा भयवशादतिचञ्चलाः तारकाः कनीनिकाः येषां तेषाम् ताहशानाम् **एणकानाम्** एणकाख्यमृगविशेषाणाम्, **करुणकूजितेन** करुणोत्पादकध्वनिना, **निहतयूथपतीनाम्**=निहताः शबरशरव्यापादिताः यूथपतयः आत्ममण्डलीयस्वामिनः गजा यासां तासाम् ताहशानाम्

(अतएव) **वियोगिनीनाम्** पतिवियुक्तानाम् **अनुगतकलभानाम्** च=अनुगता: पश्चात् संलग्ना: कलभा: गजशिशव: यासां तासां तादृशानाम्, **स्थित्वा स्थित्वा यत्र कुत्रापि** अवस्थाय अवस्थाय, कलकलम् कोलाहलम् **समाकर्ण्य** श्रुत्वा **उत्कर्णपल्लवानाम्** ऊर्ध्वीकृतपल्लवाकारकर्णानाम् **इतस्ततः परिभ्रमन्तीनाम्** परिभ्रमणं कुर्वतीनाम् **करिणीनाम्** हस्तिनीनाम्, **प्रत्यग्रपतिविनाशशोकदीर्घेण**=प्रत्यग्रेण नूतनेन पतिविनाशेन स्वामिमरणेन यः शोकः तेन दीर्घेण विस्तृतेन तादृशेन चीत्कृतेन आर्तिजन्यचीत्कारशब्देन········ (प्रचलितमिव तदरण्यमभवत्)।

**संस्कृत सरलार्थ**—कोलाहलानन्तरं सर्वतः समुत्थितविविधध्वनिभिस्तदरण्यं स्वल्पकालेनैव प्रचलितमिवाभवत्। एषु ध्वनिषु कुत्रचित् किरातबाणाहतसिंहानाम् पर्वतीय गुहासु विस्तीर्ण प्रतिध्वनिना विपुलेन तथा विशेषद्रव्यानुलेपेन स्विन्नमृदङ्ग ध्वनिवद्गम्भीरेण निनादेन, कुत्रचिच्च किराताक्रमणभयभीतात्ममण्डल परित्यक्तानाम् (अतएव) असहायानां परिभ्रमतां करिमण्डलस्वामिनां निरन्तर शुण्डादण्डाघातसम्वलितेन मेघगर्जनसमेन कण्ठविनिःसृतविस्तृतनिनादेन, क्वचिच्च वेगवत्तरैः किरातपालितश्वभिः दष्ट्वा भक्ष्यमाणाङ्गानाम् (अतएव) पीडावशादश्रूपूरितकातरातिचञ्चलतारकाणाम् मृगकाख्यमृगविशेषाणाम् करुणोत्पादकध्वनिना, शबरशरव्यापादितानां गजयूथपतीनां पतिवियुक्तानां पश्चाल्लग्नकलभानाम् यत्र कुत्रापि अवस्थाय कोलाहलमाकर्ण्य ऊर्ध्वीकृतपल्लवाकारकर्णाना मितस्ततः परिभ्रमन्तीनां हस्तिनीनाम् अभिनव स्वामिमरणजन्यशोकेन विस्तृतेन आर्तिजन्यचीत्कारशब्देन च········ तदरण्यं प्रचलितमिवाभवत्।

**टिप्पणी**—अथ "मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ" इत्यमरः कोलाहल सुनने के बाद, **नातिचिरादेव**=थोड़े ही समय में, **अनुलेपेनेति**—**मृदङ्ग**-वाद्य के दोनों मुखों पर अनुलेप लगाने से उसमें गम्भीर ध्वनि निकलने लगती है, ऐसी प्रसिद्धि है। **गिरोति**—किरातों के बाणों से घायल गजों की चिङ्घाड़, पर्वतीय गुफाओं में फैलकर प्रतिध्वनित होने से और अधिक गहरी हो जाती थी। **संत्रस्तेति**—भयभीत हुये अपने झुण्डों से बिछुड़ कर अकेले घूमने वाले। **करास्फोटेति**—अपनी सूँड़ों के लगातार पटकने से उत्पन्न शब्द से सम्वलित **रसितानुकारिणा**—मेघगर्जन के समान, **कण्ठर्गाजतेनि**=कण्ठों की गड़गड़ाहट से, **सारमेय**=कुत्ता, शिकारी शबर कुत्ते पालते थे जो उन्हें शिकार पकड़ने में सहायता देते थे, **विलुप्यमान**=वि+लुप+यक् शानच् दाँतों से काट कर खाये जाते हुये, **आलोल**—आँसुओं से भरे हुये, **कातर**=अधीर, तरलतर=अतिचञ्चल, **अनुगतकलभानाम्**=जिनके पीछे उनके ३० वर्ष के बच्चे चल रहे थे "दशवर्षः पोतः स्यात्, त्रिंशद्वर्षो गजः कलभः" इत्यमरः। **उत्कर्णपल्लवानाम्**—उत्=ऊर्ध्वीकृत ऊपर को उठाये हुये पल्लवों की आकृति वाले कानों को, **करिणी**=हथिनी, करिणी धेनुकावशा इत्यमरः।

**कतिपयदिवसप्रसूतानाञ्च खड्गिधेनुकानां त्रासपरिभ्रष्टपोतकान्वेषिणीनामुन्मुक्तकण्ठमारसन्तीनामाक्रन्दितेन, तरुशिखरसमुत्पतितानामाकुलाकुलचारिणाञ्च पत्ररथानां कोलाहलेन, रूपानुसारप्रधावितानाञ्च मगयूणां युगपदतिरभसपादपाताभिहताया भुवः कम्पमिव जनयता चरणशब्देन, कर्णान्ताकृष्टज्यानाञ्च मदकलकुररकामिनीकण्ठकूजितकलेन शरनिकरवर्षिणां धनुषां निनादेन, पवनाहतिक्वणितधाराणामसीनाञ्च कठिनमहिषस्कन्धपीठपातिनां रणितेन, शुनाञ्च सरभसविमुक्तघर्घरध्वनीनां वनान्तरव्यापिना ध्वानेन सर्वतः, प्रचलितमिव तदरण्यमभवत् ।**

शब्दार्थ—**कतिपयदिवसप्रसूतानाम् च**=कुछ ही दिन (पूर्व) प्रसव कर चुकने वाली, **खड्गिधेनुकानाम्**=गण्डक पशुओं की स्त्रियों के. **त्रासपरिभ्रष्टपोतकान्वेषिणीनाम्**-भय के कारण बिछुड़े हुए बच्चों को खोजने वाली, **उन्मुक्तकण्ठमारसन्तीनाम्**=खुले हुए कण्ठ से विलाप करती हुई, **आक्रन्दितेन**=आर्तनाद से, **तरुशिखरसमुत्पतितानाम्**= वृक्षों की चोटियों से उड़े हुए, **आकुलाकुलचारिणाम् च**=अतिव्याकुलतापूर्वक (आकुलाकुल) मड़राने वाले (चारिणाम्), **पत्ररथानाम्**=पक्षियों के, **कोलाहलेन**=कलकल से, **रूपानुसारप्रधावितानाम्**=मृगों (रुप) के पीछे दौड़ने वाले (अनुसार प्रधावित) **मगयूणाम्**=शिकारियों के, **युगपदतिरभसपादपाताभिहतायाः**= एक साथ (युगपत्) बड़े वेग से (अतिरभस) पैरों के रखने से (पादपात) ताडित हुई (आहत) पृथ्वी में कम्पन-सा उत्पन्न करते हुए (**भुवः कम्पमिव जनयता**) पैरों की ध्वनि से (**चरणशब्देन**), **कर्णान्ताकृष्टज्यानाञ्च**=कानों तक (कर्णान्त) खींची गई प्रत्यञ्चाओं वाले (आकृष्ट ज्यानाम्) (तथा) **शरनिकरवर्षिणाम्**=बाणसमूह (निकर) को वर्षा करने वाले, **धनुषाम्**=धनुषों के, **मदकलकुररकामिनीकण्ठकूजितकलेन**= मद से सुन्दर (मदकल) कुररियों (कुरर् पक्षियों की स्त्रियों) की कण्ठध्वनि (कण्ठकूजित) के समान अव्यक्त मधुर ध्वनि से (निनादेन), **पवनाहतिक्वणितधाराणाम्**= वायु के आघात से (पवन आहति) सनसनाती हुई (क्वणित) धार वाली (धाराणाम्) **असीनाम् च**=तलवारों की, **कठिनमहिषस्कन्धपीठपातिनाम्**=भैंसों के कठोर स्कन्ध स्थल (बाहुशिरःप्रदेश) पर गिरने वाली, **रणितेन**=शब्द से, **सरभसविमुक्तघर्घरध्वनीनाम्**=जोर से (सरभस) गुर्राहट करने वाले (विमुक्तघर्घरध्वनि) **शुनाञ्च**= कुत्तों के, **वनान्तरव्यापिना ध्वानेन**=वन के मध्य फैल जाने वाले शब्द से (ध्वानेन), **तदरण्यम्**=वह जंगल, **सर्वतः**=चारों ओर से, **प्रचलितम् इव अभवत्**=काँप-सा उठा ।

**अनुवाद**—और भयवश बिछुड़े हुये बच्चों को खोजने वालीं, खुले गले से विलाप करती हुई, कुछ ही दिन (पूर्व) प्रसव कर चुकने वाली, गण्डक नामक पशुओं की स्त्रियों के आर्तनाद से, (तथा) वृक्षों की चोटियों से उड़े हुए, अत्यधिक व्याकुलता से मड़राते हुए पक्षियों के कलकल से, और मृगों के पीछे दौड़े हुए शबर-

शिकारियों के एक साथ ही बड़े वेग से पैरों के रखने से ताड़ित हुई पृथ्वी में कम्पन उत्पन्न करते हुए से पैरों की ध्वनि से, कानों तक खींची गई प्रत्यञ्चा वाले तथा बाणसमूह के वर्षा करने वाले धनुषों के, मद से सुन्दर कुरर पक्षियों की स्त्रियों की कण्ठध्वनि के समान अव्यक्त मधुर ध्वनि से, वायु के आघात से सनसनाती हुई धार वाली (तथा) भैंसों के कठोर स्कन्ध प्रदेशों (बाहुमूलों) पर गिरने वाली तलवारों की ध्वनि से, और जोर-जोर से घुर्-घुर् शब्द करने वाले कुत्तों के, वन के भीतर फैल जाने वाले शब्द से, वह जंगल चारों ओर से कांप-सा उठा था।

**भावार्थ**—कुछ ही दिनों की ब्याई हुई गैंडों की मादायें डर कर बिछुड़ जाने वाले अपने छोटे-छोटे बच्चों को खोज रही थीं और गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रही थीं। कहीं वृक्षों से उड़-उड़कर, घबराहट में इधर-उधर मड़राने वाले पक्षी चें-चें कर रहे थे, कहीं जंगली मृग भय के कारण भाग रहे थे और शबर शिकारी उनका पीछा कर रहे थे। इन सबके पैरों के आघात से पृथ्वी कांप-सी रही थी, कहीं शिकारी कान तक खींचकर लगातार धनुषों से बाणवर्षा कर रहे थे जिससे कुररियों की कण्ठध्वनि के समान अव्यक्त टंकार निकल रही थी। कहीं हवा के झोंकों से सनसनाती हुई तलवारें भैंसों के कंधों पर पड़ रही थीं और कहीं कुत्ते घुरघुरा रहे थे, इन शब्दों ने मिलकर वन को कम्पित-सा कर दिया था।

**संस्कृत व्याख्या**—**कतिपयदिवसप्रसूतानाम्**=कतिपये कियन्तः ये दिवसाः दिनानि तत्र प्रसूतम् उत्पादितम् याभिस्तासाम् तादृशीनाम्, **त्रासपरिभ्रष्टपोतकान्वेषिणीनाम्**=त्रासेन शबराक्रमणभयेन परिभ्रष्टान् स्वमण्डलाद् वियुक्तान् पोतकान् स्वस्वार्भकान् अन्वेष्टुं मार्गयितुं शीलं यासां तासां तादृशीनाम् (अतएव) **आमुक्तकण्ठमारसन्तीनाम्**=उन्मुक्तकण्ठम् यथास्यात्तथा आरसन्त्यः शोकव्यञ्जकोच्चशब्दैरारटन्त्यः तासाम् तादृशीनाम, **खड्गिधेनुकानाम्**=दुग्धवतीनां गण्डकाख्यवन्यपशुस्त्रीणाम्, **आक्रन्दितेन**=आर्त्तध्वनिना, **तरुशिखरसमुत्पतितानाम्**=तरुणाम् वृक्षाणाम् शिखराणि प्रान्तभागाः तेभ्यः समुत्पतिता उड्डीनाः तेषाम् तादृशानाम्, **आकुलाकुलचारिणाम्**=आकुलाकुलम् आकुलाकुलं यथा स्यात्तथा चारिणः गामिनः तेषाम् तादृशानाम्, **पत्ररथानाम्**=पक्षिणाम्, **कोलाहलेन**=कलकलनिनादेन, **रुपानुसारप्रधावितानाम्**=रुपानुसारेण हरिणानुगमनेन प्रधाविताः प्रचलिताः तेषाम् तादृशानाम्, **मृगयूणाम्**=**आखेटकारिणां** शबराणाम् च, **युगपदतिरभसपादपाताभिहतायाः**=युगपत् एकस्मिन्नेव काले अतिरभसेन अतिवेगेन ये पादानाम् चरणानां पाताः न्यासाः तैः अभिहताः, ताडिता तस्याः, **भुवः**=पृथिव्याः **कम्पमिव** प्रचलनमिव **जनयता** समुत्पादयिता **चरणशब्देन**—चरणनिक्षेपध्वनिना, **कर्णान्ताकृष्टज्यानाम्**=कर्णान्ते श्रोत्रपर्यन्ते आकृष्टा आकर्षिता ज्याः गुणाः येषां तेषां तथोक्तानाम्, **शरनिकरवर्षिणाम्**=शराणां वाणानां निकरः समूहः तं वर्षन्तीत्येवं शीलानि येषां तेषाम् **बाणसमूहपातिनाम् धनुषां** चापानाम्, **मदकलकुररकामिनीकण्ठकूजितकलेन**=मदेन कलाः मनोज्ञाः याः कुरराणां मत्स्यादन-

पक्षिणाम् कामिन्यः स्त्रियः तासां कण्ठकूजितं गलध्वनिः तद्वद् कलेन अव्यक्त मधुरेण तादृशेन **निनादेन** ध्वनिना, **पवनाहतिक्वणितधाराणाम्**=पवनस्य वातस्य आहत्या संघट्टनेन क्वणिताः शब्दिताः धाराः तीक्ष्णांशाः येषान्ते तेषाम्, **कठिनमहिषस्कन्धपीठ-पातिनाम्**=कठिने कठोरे महिषाणां सैरिभाणां **स्कन्धपीठे** भुजशिरः स्थले **पातिनाम्** पतनशीलानाम् तादृशानाम, **आसीनाम्** खड्गानाम्, **रणितेन** शब्देन, **सरभसविमुक्त-घर्घरध्वनीनाम्**=सरभसम् सवेगम् विमुक्ताः विहिताः घर्घरध्वनयः 'घरं घरं' इति निनादाः यैस्ते तेषाम् तथाभूतानाम् **शुनाम्** सारमेयाणाम् च, **वनान्तरव्यापिना**=वनान्तरे वनमध्ये व्यापिना प्रसरणशीलेन **ध्वानेन** निनादेन, **सर्वतः** समन्तात् **प्रचलितम्** कम्पितम इव **तदरण्यम्** तद्वनम् **अभवत्**—अभूत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—अचिरप्रसूतानां भयत्रस्तार्भकान्वेषणपराणा मतएवोन्मुक्त-गलमारटन्तीनां गण्डकाख्यपशुविशेषस्त्रीणामार्तशब्देन, वृक्षप्रान्तेभ्य उड्डीनानाम् अत्याकुलं सञ्चरणशीलानां च पक्षिणां कलकलध्वनिना, मृगानुगमनप्रचलितानाम् आखेटकारिणां शबराणाम् एकस्मिन्नेव कालेऽतिवेगेन पादन्यासैस्ताडितायाः पृथिव्याः कम्पमिव समुत्पादयिता पादनिक्षेपध्वनिना, श्रोत्रान्ताकृष्टगुणानां बाणसमूहपातिनां धनुषाम् मदमनोज्ञानां कुररेत्याख्यातमत्स्यादनपक्षिणीनां गलनिनादवदव्यक्त-मधुरेण ध्वनिना, वातसंघट्टनेन शब्दिततीक्ष्णांशानां कठोरसैरिभवाहुशिर स्थल-निपतनशीलानां खड्गानां शब्देन, वेगवत्तरं कृतघर्घरेति निनादानां सारमेयाणां काननमध्यप्रसरणशीलेन ध्वनिना च समन्तात् कम्पितमिव तद्वनमभूत् ।

**टिप्पणी—पोतकान्वेषणीनाम्**=अपने स्तन्धय बच्चों को खोजने वाली। **उन्मुक्तकण्ठम्**=खुले हुये गले से अर्थात् गला फाड़ कर, **आरसन्तीनाम्**=शोक-व्यञ्जक स्वरों में चिंघाड़ने वाली, **खड्गिधेनुकानाम्**=गैंडों की स्त्रियों के, धेनुका तु करेण्वाञ्च इत्यमरः। **आकुलाकुलम्**=अति व्याकुलतापूर्वक, **चारिणाम्**=गमन-शीलानाम् घूमने वाले, **रुपानुसारेति**=रुपं मृगेऽपिविज्ञेयम् इति हलायुधः **मृगयूणाम्** =शिकारियों के, मृगान् यान्ति ये ते मृगयवः तेषाम् मृग+या धातुः कु प्रत्ययः। **पत्र-रथानाम्** पत्रं पक्षो रथो येषां तेषाम् पक्षिणाम्, **मदकलेति**—मद के कारण सुन्दर, **कल**=अव्यक्त मधुर, **पवनेति**=वायु कें आघात से, धारा=तीक्ष्ण अग्रभाग, **महिष-स्कन्धपीठ**=महिषाणां स्कन्धः स एव पीठः स्थलम् अर्थात् स्कन्धरूपपीठ। **पातिनान्** =पतनशीलानाम्—गिरने वाली। **सरभसेति** सरभसम्=वेगपूर्वक, विमुक्त=छोड़े गये या किये गये घर् घर् शब्दों वाले। **ध्वानेन**—शब्द से। ●

**अचिराच्च प्रशान्ते तस्मिन् मृगयाकलकले, निर्वृष्ट मूकजलधर-वृन्दानुकारिणि मथनावसानोपशान्तवारिणि सागर इव स्तिमिततामुपगते कानने, मन्दीभूतभयोऽहमुपजातकुतूहलः पितुरुत्सङ्गावीषदिव निष्क्रम्य कोटरस्थ एव शिरोधरां प्रसार्य्य सन्त्रासतरलतारिकः शैशवात् किमिदमिति सञ्जातदिदृक्षः तामेव दिशं चक्षुः प्राहिणवम् ।**

**शब्दार्थ—अचिराच्च**=और शीघ्र ही, **तस्मिन् मृगयाकलकले प्रशान्ते**—उस शिकार के कोलाहल के शान्त हो जाने पर, **निर्वृष्टमूकजलधरवृन्दानुकारिणि**= पूर्णतया बरस चुकने वाले (निर्वृष्ट) (अतएव) गर्जन रहित (मूक) मेघ समूह का (जलधरवृन्द) अनुकरण करने वाले (अनुकारिणि) **मथनावसानोपशान्तवारिणि सागर इव**=(तथा) मन्थन की समाप्ति पर (मथनावसान) निश्चल जल वाले (उपशान्तवारिणि) समुद्र के समान, **कानने स्तिमिततामुपगते**=जंगल के निःस्तब्धता को (स्तिमितताम्) प्राप्त हो जाने पर (उपगते)। **मन्दीभूतभयः**=कुछ कम हुए भय वाले, **उपजातकुतूहलः**=(तथा) उत्पन्न हुए कुतूहल (उत्सुकता) वाले, **अहम्**=मैंने, **पितुरुत्सङ्गात्**=पिता की गोद से, **ईषदिव**=थोड़ा-सा, **निष्क्रम्य**=निकलकर, **कोटरस्थ एव**=कोटर में स्थित रहते ही, **शिरोधरां प्रसार्य्य**=गर्दन को फैलाकर, **सन्त्रासतरलतारकः**=भय के कारण (सन्त्रास) चञ्चल (तरल) पुतलियों (तारकाः) वाला, (तथा) **शैशवात्**=बचपन के कारण, **किमिदमिति सञ्जातदिदृक्षः**="यह सब क्या हो रहा है" यह देखने की जिसमें इच्छा उत्पन्न हो गई थी (दिदृक्षा=देखने की इच्छा) **तामेव दिशम्**=उसी दिशा में, **चक्षुः प्राहिणवम्**=दृष्टि दौड़ाई।

**अनुवाद**—और शीघ्र ही उस शिकार के कोलाहल के शान्त हो जाने पर, पूर्णतया बरस चुकने वाले (अतएव) गर्जनरहित मेघ समूह के समान (तथा) मन्थन की समाप्ति पर निश्चल जल वाले समुद्र के समान जंगल के निःस्तब्धता को प्राप्त हो जाने पर, कुछ कम हुए भय वाले एवं उत्सुकता को प्राप्त हुए मैंने पिता की गोद से थोड़ा-सा निकलकर, कोटर में स्थित ही, गर्दन को फैलाकर, भयवश चञ्चल पुतलियों वाले बचपन के कारण 'यह क्या हो रहा है' यह देखने की इच्छा वाले होकर, उस दिशा की ओर दृष्टि दौड़ाई।

**भावार्थ**—थोड़ी ही देर बाद शिकार का वह कोलाहल शान्त हो गया, फलतः वह जंगल भी उसी प्रकार शान्त हो गया जैसे बरस चुकने के बाद मेघसमूह शान्त हो जाता है और मन्थन क्रिया के समाप्त हो जाने पर जैसे समुद्र प्रशान्त जल वाला हो जाता है। अतएव मेरा भी भय कुछ कम हो गया था तब मैंने उत्सुकतावश पिता की गोद से कुछ निकलकर कोटर से ही गर्दन फैलाकर, भयवश चञ्चल आँखों से, बचपन के कारण 'यह क्या हो रहा है' यह देखने की इच्छा से उसी ओर अपनी दृष्टि डाली।

**संस्कृत व्याख्या—अचिराच्च** अल्पकालेनैव च, **तस्मिन् मृगयाकलकले**—पूर्वोक्ते आखेटकोलाहले, **प्रशान्ते**—शान्तिमुपगते सति, **निर्वृष्टमूकजलधरवृन्दानुकारिणि**=निर्वृष्टं निःशेषेण कृतवर्षम् (अतएव) मूकम् गर्जनरहितं यत् जलधरवृन्दम् मेघसमूहः तदनुकर्तुं शीलं यस्य तस्मिन् तादृशे, कानने वने, **मथनावसानोपशान्तवारिणि**=मथनस्य सुरासुरकृतमन्थनक्रियायाः अवसाने समाप्तौ उपशान्तं शान्तिं प्राप्तं वारि सलिलम् यस्य तस्मिन् तादृशे **सागरे** समुद्रे इव **स्तिमितताम्** निःस्तब्धताम्,

उपगते—प्राप्ते सति, मन्दीभूतभयः—मन्दीभूतं मन्दतामुपगतं भयं भीति यस्य स तादृशः, उपजातं समुत्पन्नं कुतूहलं कौतुकं यस्य स तादृशश्च अहम् वैशम्पायनः, पितु जनकस्य उत्सङ्गात् क्रोडात् ईषदिव किञ्चिदिव निष्क्रम्यं बहिरागत्य कोटरस्थ एव वृक्षविवरस्थित एव, शिरोधराम् ग्रीवां प्रसार्य्य विस्तीर्य, सन्त्रासतरलतारकः=सन्त्रासेन भयेन तरले चञ्चले तारके कनीनिके यस्य स तादृशः शैशवात् बाल्यभावात् इदम् किमिति इदम् पुरोवर्ति आश्चर्यभूतम् किमिति सञ्जातदिदृक्षः समुत्पन्नावलोकनेच्छः तामेव दिश माशां प्रति चक्षुर्लोचनं प्राहिणवम् संप्रैषयम् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदल्पकालेनैव तदाखेटकोलाहल-प्रशान्त्यनन्तरम्, वर्षानन्तरं गर्जनरहितमेघसमूहतुल्ये मन्थनक्रियान्ते प्रशान्तजले सागर इव च शान्तिमुपगते तस्मिन् कानने, मन्दीभूतसन्त्रासः समुत्पन्न कौतुकश्चाहं स्वजनक क्रोडात् किञ्चिदिव बहिरागत्य कोटरगतएव ग्रीवां विस्तीर्य भयचञ्चलतारको बाल्यात् किमिदमिति समुत्पन्नावलोकनेच्छस्तमेव दिशं नेत्रं संप्रैषयम् ।

**टिप्पणी**—अचिरात्=शीघ्र, निर्वृष्ट=पूर्ण रूप से बरस चुकने वाला, वृन्द=समूह, स्तिमितताम्=निस्पन्दताम् निःस्तब्धताम् । शिरोधरां=गर्दन, प्रसार्य्य= फैलाकर प्र+सृ+णिच् क्त्वा ल्यप् । दिदृक्षा=देखने की इच्छा । द्रष्टु मिच्छा दिदृक्षा, सञ्जाता दिदृक्षा यस्य स सञ्जातदिदृक्षः जिसमें देखने की इच्छा उत्पन्न हो गई थी । शैशवात्—शिशो भावः शैशवम् शिशु+अण् तस्मात् ।

## शवरसैन्य वर्णनम्

**अभिमुख मापतच्च तस्माद् वनान्तरा दर्जुनभुजदण्डसहस्रविप्रकीर्ण-मिव नर्मदाप्रवाहम्, अनिलचलितमिव तमालकाननम्, एकीभूतमिव काल-रात्रीणां यामसङ्घातम्, अञ्जनशिलास्तम्भसम्भारमिव क्षितिकम्प-विघूर्णितम्, अन्धकारपूरमिव रविकिरणाकुलितम्, अन्तकपरिवारमिव परि-धारमिव परिभ्रमन्तम्, अवदारित रसातलोद्भूतमिव दानवलोकम्, अशुभ-कर्मसमूहमिवैकत्रसमागतम्, अनेकदण्डकारण्यवासिमुनिजनशापसार्थमिव सञ्चरन्तम्, अनवरतशरनिकरवर्षिरामनिहतखरदूषणबलमिव तदपध्यानात् पिशाचतामुपगतम्, कलिकालबन्धुवर्गमिव सङ्गतम्, अवगाह प्रस्थितमिव वनमहिषयूथम्, अचलशिखरस्थित केसरिकराकृष्टिपतनशीर्णमिव कालमेघ-पटलम्, अखिलरूपविनाशाय धूमकेतु जालमिव समुद्गतम्, अन्धकारिता-शेषकाननम्, अनेकसहस्रसंख्यम्, अतिभयजनकम्, उत्पातवेतालव्रातमिव शबरसैन्यमद्राक्षम् ।**

**शब्दार्थ**—तस्माद् वनान्तरात् अभिमुख मापतत् च=और (मैंने) उस वन के मध्य (अन्तरात्) से सामने की ओर (अभिमुखम्) आती हुई (आपतत्), अर्जुन भुजदण्डसहस्रविप्रकीर्णम्=कार्त्त वीर्यार्जुन (अर्जुन) की सहस्रों दण्डसदृश भुजाओं द्वारा (भुजदण्ड सहस्र) इधर-उधर फैलाये गये (विप्रकीर्णम्) नर्मदा नदी के प्रवाह के

समान (नर्मदा प्रवाहमिव), **अनिलचलितं तमालकाननमिव**=वायु से संचालित या उत्पाटित तमाल वन के समान, **कालरात्रीणाम् एकीभूतं यामसङ्घातमिव**=काल-रात्रियों के अर्थात् प्रलयकालीन रात्रियों के एकत्र मिले हुए, प्रहर समुदाय के समान, **क्षितिकम्पविघूर्णितम् अञ्जनशिलास्तम्भसम्भारमिव**=भूकम्प से (क्षितिकम्प) हिलाये गये (विघूर्णित) कज्जलवत् श्यामवर्ण (अञ्जन) पाषाणरचित खम्भों के (शिलास्तम्भ) संघात-समूह के समान (सम्भारमिव) **रविकिरणाकुलितम् अन्धकारपूरमिव**=सूर्य की किरणों से व्याकुलीकृत (आकुलितम्) अन्धकार के पुञ्ज (पूर) के समान, **परिभ्रमन्तम् अन्तकपरिवारमिव**=घूमते हुए यमराज के परिजनवर्ग के समान (परिवारम्) **अवदारितरसातलोद्भूतं दानवलोकमिव**=विदीर्ण किये गये (अवदारित) पृथिवी तल से (रसातल) अर्थात् पाताल से, निकले हुए (उद्भूतम्) दानवसमूह के समान, **एकत्रसमागतम् अशुभकर्मसमूहमिव**=एक ही स्थान पर मिले हुए अधर्म कार्यों के समूह के समान, **सञ्चरन्तम् अनेकदण्डकारण्यवासि मुनिजनशाप सार्थमिव**=चलते फिरते हुए दण्डकारण्यवासी अनेक मुनिजनों के शाप समूह जैसी, **तदपध्यानात् पिशाचतामुपगतम् अनवरतशरनिकरवर्षिरामनिहतखरदूषणबलमिव**=राम के विषय में (तद्) अशुभ चिन्तन रूप पाप से (अपध्यानात्) पिशाचता को प्राप्त हुई, निरन्तर बाणसमूह की वर्षा करने वाले राम के द्वारा मारे गये खरदूषण की सेना (बल) के समान, **सङ्गतं कलिकालबन्धुवर्गमिव**=एक ही स्थान पर मिले हुए (संगतम्) कलियुग के मित्रमण्डल (बन्धुवर्गम्) के समान, **अवगाहप्रस्थितं वनमहिषयूथमिव**=स्नान के लिए चले हुए वन्य महिषों के झुण्ड के समान, **अचलशिखरस्थितके-सरिकराकृष्टिपतन शीर्णं कालमेघपटलमिव**=पर्वत की चोटी पर स्थित सिंह के पञ्जों (कर) द्वारा खींचने से (पृथिवी पर) गिरने से बिखरे हुए (आकृष्टि=खींचना, शीर्ण बिखरे हुए) प्रलयकालीन (काल) मेघसमूह (पटल) के समान, **अखिल-रूपविनाशायसमुद्गतं धूमकेतुजालमिव**=सम्पूर्ण वन्य पशु (रूप) विनाश के लिए निकले हुए (समुद्गतम्) उत्पातग्रहों के समूह के समान (धूमकेतु जालम्) **अन्धकारिता-शेषकाननम्**=समस्त (अशेष) वन को अन्धकारमय कर झुकने वाली, **अनेकसहस्र-संख्यम्**=कई सहस्र की संख्या वाली, **अतिभयजनकम्**=अतिभय उत्पन्न करने वाली, **उत्पातवेतालव्रातमिव**=उत्पातकारी प्रेत (वेताल) समूह (व्रात) के समान, **शबरसैन्यम्**=भीलों की सेना को, **अद्राक्षम्**=देखा।

**अनुवाद**—और उस वन के मध्य से सामने की ओर आती हुई, कार्त्तवीर्य अर्जुन की सहस्रों दण्ड सदृश भुजाओं द्वारा इधर-उधर फैलाये गये नर्मदा नदी के प्रवाह के समान, वायु के द्वारा सञ्चालित तमाल वन के समान, प्रलयकालीन रात्रियों के एकत्र मिश्रित प्रहर समुदाय के समान, भूकम्प से हिलाये गये कज्जलवत् श्यामवर्ण पाषणरचित खम्भों के समूह के समान, सूर्य की किरणों से व्याकुलीकृत अन्धकार के पुञ्ज के समान, घूमते हुए यमराज के परिजन वर्ग (दूतवर्ग) के समान, विदीर्ण किये गये पृथिवी तल से निकले हुए दानव समूह के समान, **एक ही स्थान पर**

मिश्रित अधर्म कर्मों के समूह के समान, चलते फिरते, दण्डकारण्यवासी मुनिजनों के शाप समूह जैसी, राम के विषय में अशुभ चिन्तन रूप पाप से पिशाचता को प्राप्त हुई, निरन्तर बाणसमूह की वर्षा करने वाले राम के द्वारा मारे गये खरदूषण की सेना के समान, एकत्र मिश्रित कलियुग के मित्रमण्डल के समान, स्नान के लिए चले हुए वन्यमहिषों के झुण्ड के समान, पर्वत की चोटी पर स्थित सिंह के पञ्जों द्वारा खींचने से (पृथिवी पर) गिरने से बिखरे हुए प्रलयकालीन मेघसमूह के समान, सम्पूर्ण वन्य पशु विनाश के लिए निकले हुए उत्पातग्रहों के समूह के समान, समस्त वन को अन्धकारमय कर चुकने वाली, कई सहस्र की संख्या वाली, अतिभय उत्पन्न करने वाली, उत्पात के लिए प्रेतों के समूह के समान, भीलों की सेना को, मैंने देखा ।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि तब मैंने वन के भीतर से अपनी ही ओर आती हुई, कई हजार भीलों वाली, अतिभयदायिनी, उपद्रवी प्रेतों के समूह के समान भीलों की सेना को देखा । जो कि सैन्यदल ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो वह सहस्रबाहु अर्जुन की भुजाओं द्वारा कई धाराओं में बिखरा हुआ नर्मदा का प्रवाह हो, अथवा वायु से कांपते हुए तमाल वृक्षों का वन हो, कालरात्रियों के एकत्रित प्रहरों का समूह हो अथवा भूचाल से हिले हुए काले पत्थरों के खम्भों का ढेर हो अथवा सूर्य किरणों से व्याकुल अन्धकार समूह हो, अथवा भटकता हुआ यमराज का परिवार हो, अथवा पृथिवी तल को फाड़कर निकला हुआ दानवों का समूह हो अथवा अशुभ कर्म ही एक साथ आ गये हों अथवा दण्डकारण्य के मुनिजनों का शापसमूह एक साथ घूम रहा हो, अथवा राम ने तीखे बाणों की वर्षा से जो खरदूषण की सेना का विनाश कर दिया था वही मानो अब राम के अशुभ चिन्तन के पाप से पिशाचों के रूप में प्रकट हुआ है, अथवा कलियुग के भाई-बन्धु एकत्र हो गये हों, अथवा जंगली भैंसों का झुण्ड स्नान के लिए जा रहा हो, अथवा पर्वतशिखर पर खड़े सिंह के पंजों से खींच लेने से गिरकर बिखरे हुए प्रलयकालीन मेघों का समूह हो, अथवा वन्य पशु विनाशार्थ समुदित धूमकेतु समूह हो जिसने कि समस्त वन को अन्धकारमय कर दिया था ।

**संस्कृत व्याख्या**—तस्माद् वनान्तरात् अभिमुखमापतत्······ शबरसैन्य मद्राक्षमित्यग्रिमक्रिययासम्बन्धः । गद्यांशेऽस्मिन् द्वितीयान्तपदानि शबरसैन्य विशेषणानि । **वनान्तरात्** वनमध्यभागात् **अभिमुखं** स्वसंमुखम् **आपतत्** आगच्छत्, **अर्जुनभुजदण्डसहस्रविप्रकीर्णं नर्मदाप्रवाहमिव**=अर्जुनस्य कार्तवीर्यार्जुनस्य भुजदण्डसहस्रेण सहस्रसंख्यकदण्डसदृश बाहुभिः विप्रकीर्णम् इतस्ततः पर्यस्तम् नर्मदाप्रवाहम् नर्मदायाः नद्याः स्रोत इव, **अनिलचलितं तमालकाननमिव**—अनिलेन वायुना चलितं प्रकम्पितं तमालानां तापिच्छवृक्षाणां काननम् वनमिव, **कालरात्रीणाम्** प्रलयरात्रीणाम्, **एकीभूतम्** मिश्रीभूतम् **यामसंघातम्** प्रहरसमुदायम् इव, **क्षितिकम्पविघूर्णितम् अञ्जनशिलास्तम्भसम्भारमिव**—क्षितिकम्पेन भूकम्पेन विघूर्णितम् प्रकम्पितम् अञ्जनशिला-

स्तम्भानाम् कज्जलवत् श्यामवर्णानां पाषाणनिर्मितस्थूणानाम् सम्भारम् सङ्घातमिव, **रविकिरणकुलितम्**=सूर्यरश्मिभिर्व्याकुलीकृतम् **अन्धकारपूरम्** तमः पटलमिव, **परिभ्रमन्तम्** इतस्ततः पर्यटन्तम् **अन्तकपरिवारमिव** अन्तकस्य यमराजस्य परिवारम् परिजनवर्गमिव, **अविदारितरसातलोद्भूतम्** अविदारितेन विदीर्णेन रसायाः पृथिव्यास्तलेन तन्मार्गेणेत्यर्थः उद्भूतम् पातालादुद्गतमित्यर्थः दानवलोकम् दैत्यजनमिव, एकत्र **समागतम्** एकत्रमिलितम् **अशुभकर्मसमूहम्** अधर्मकार्याणां समूहमिव, **सञ्चरन्तम्** गच्छन्तम्, **अनेकदण्डकारण्यवासिमुनिजनशापसार्थम्**=अनेकेषाम् दण्डकारण्यवासिनां मुनिजनानां तपस्विजनानाम् शापसार्थम् शापसमूहमिव, **अनवरतशरनिकरवर्षिराम-निहतखरदूषणवलम्**=अनवरतं निरन्तरं शरनिकरं बाणसमूहं वर्षति एवंशीलः यः रामः तेन निहतं मारितं यत् खरदूषणयोः एतन्नामकयो र्दैत्ययोः बलं सैन्यम् तदिव, **तदपध्यानात्** तस्मिन् रामे यत् अपध्यानम् अशुभचिन्तनम् तस्मात् तदपध्यानात् रामविषयकाशुभचिन्तनापराधादित्यर्थः **पिशाचताम्** भूतताम् **उपगतं** प्राप्तं सत् आगतमित्यर्थः। **सङ्गतम्** एकस्मिन्नेव स्थाने सम्मिलितम् **कलिकालबन्धुवर्गम्** कलियुग-मित्रमण्डलमिव, **अवगाहप्रस्थितम्** अवगाहाय स्नानाय प्रस्थितं प्रयातम्, **वनमहिषयूथम्** अरण्यसैरिभसमूहमिव, **अचलशिखरस्थितकेसरिकराकृष्टिपतनशीर्णम्**=अचलस्य पर्वतस्य शिखरे शृङ्गे स्थितस्य विद्यमानस्य केसरिणः सिंहस्य कराभ्यां या आकृष्टिः आकर्षणं तया यत् पतनं भूमौ निपतनम् तेन शीर्णम् खण्डीभूतम् तथोक्तम् **कालमेघ-पटलम्** श्याममेघमण्डलम् अथवा प्रलयकालीनमेघमण्डलमिव, **अखिलरूपविनाशाय**= अखिलानां समग्राणां रूपाणाम् वन्यपशूनां विनाशस्तस्मै सम्पूर्ण वन्यपशुनाशाय **समुद्गतम्** समुत्पन्नम् **धूमकेतुजालम्**=धूमकेतूनाम् उत्पातग्रहाणाम् जालम् वृन्दमिव, **अन्धकारिताशेषकाननम्** अन्धकारितम् सञ्जातान्धकारम् अशेषम् समग्रं काननं वनम् येन तत् तथोक्तम्, **अनेकसहस्रसंख्यम्**—अनेकानि बहूनि सहस्राणि संख्या यस्य तत् तादृशम् **अतिभयजनकम्** अतिभीतिकारकम्, **उत्पातवेतालव्रातम्**—उत्पाताय अशुभ-कर्मणे यः वेतालव्रातः प्रेतसमूहः तमिव, **शबरसैन्यम्** भिल्लसैन्यम् **अद्राक्षम्** अहन् अपश्यम्।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यत्तदाहं तादृशं भिल्लसैन्यमपश्यम्, यत् तस्मात्कानन मध्यभागात्सम्मुखमागच्छत् आसीत् यच्च कार्त्तवीर्यार्जुनस्य सहस्र-संख्यक दण्डसदृशबाहुभिरितस्ततः पर्यस्तं नर्मदाया नद्याः स्रोत इवासीत्, अथवा वायुप्रकम्पितं तापिच्छवृक्षवनमिव, अथवा प्रलयरात्रीणां मिश्रीभूतं प्रहरसमुदायमिव, अथवा भूकम्पेन प्रकम्पितं कज्जलवत् श्यामवर्णानां पाषाणनिर्मित स्तम्भानां सङ्घात-मिव, सूर्यरश्मिभिर्व्याकुलीकृतं तमः पटलमिव अथवा इतस्ततः पर्यटन्तं यमराज-परिजनवर्गमिव, अथवा विदीर्णरसातलोद्गतं दैत्यजनमिव अथवा एकत्रमिलितं शुभेतर-कर्मसमूहमिव, अथवा इतस्ततः परिभ्रमन्तं दण्डकारण्यनिवासिनां मुनिजनानां शापसमूहमिव, अथवा रामविषयकाशुभचिन्तनापराधात् पिशाचतां प्राप्तम्, निरन्तरं

बाणसमूहवर्षणशीलेन रामेण मारितं खरदूषणसैन्यमिव, अथवा एकस्मिन्नेव स्थाने सम्मिलितं कलियुगस्य मित्रमण्डलमिव अथवा स्नानाय प्रयातं वनसैरिभसमूहमिव, अथवा पर्वतशृङ्गस्थितस्य सिंहस्य कराकर्षणेन भूमिनिपतनेन खण्डीभूतं श्याममेघ-मण्डलमिव अथवा समग्रवन्यपशुव्यापादनाय समुत्पन्न मुत्पातग्रहवृन्दमिव अथवा अशुभकर्मणे समुद्भूतं प्रेतसमूहमिव अन्धकारितसमग्रवनम् अतिभीतिकरम् बहुसहस्र-संख्यं भिल्लसैन्यमपश्यम् ।

टिप्पणी—अर्जुनभुजेति—वन के मध्य भाग से सामने आता हुआ शबरसैन्य दल धारावाहिक पङ्क्तिबद्ध होने के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह सहस्रार्जुन की भुजाओं से विभक्त नर्मदा का स्रोत हो, उपमालंकार, रामायण कथा के अनुसार हैहयाधिपति कार्त्तवीर्य अर्जुन जिसे सहस्रों भुजाओं के होने के कारण सहस्रार्जुन भी कहा जाता था, अपनी सहस्रभुजाओं से नर्मदा-प्रवाह को रोककर जलक्रीडा किया करता था । अनिलेति—अत्यधिक कृष्ण वर्ण और विशाल होने के कारण शबरसैन्य वायुप्रकम्पित तमालवन जैसी थी यहाँ उपमालंकार है । यामसङ्घात मिवेत्यत्रोत्प्रेक्षालंकारः, अञ्जनेति इस वाक्यांश में लुप्तोपमा और उपमालंकारों का संकर है । अन्धारपूरमिवे त्यत्रोत्प्रेक्षालंकारः । अवदारितेति पृथिवी तल को फोड़कर मानो दानवों का समूह ऊपर निकल आया हो उत्प्रेक्षालंकार । मुनिशापसार्थमिव—मुनिशाप का समूह "सार्थो वाणिक् समूहेन स्यादपि सङ्घातमात्रके ।" उत्प्रेक्षा । अनवरतेति—कविकल्पना है कि खरदूषण की सेना जिसका राम ने वध किया था मानो वह इसलिए पिशाचता को प्राप्त हो गई थी क्योंकि उसने राम के विषय में अशुभचिन्तन रूप अपराध किया था, साधुजनाशुभचिन्तन से अनिष्ट होना अवश्य-म्भावी होता है—अपध्यान=अनिष्टचिन्तन । अखिलरूपेति "रूपं मृगेऽपि विज्ञेयम्" इस कोशवचन के अनुसार रूप का अर्थ मृग भी है, और मृग शब्द सभी वन्यपशुओं के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जैसा कि मृगपति में देखा जाता है । धूमकेतुजालम्—धूमकेतु का अर्थ पुच्छल तारे के अतिरिक्त उत्पातग्रह के अर्थ में भी होता है "धूमकेतुः स्मृतो वह्नौ उत्पातग्रहभेदयोः" कोश । व्रातम्=समूह ।

## शबरसेनापति वर्णनम्

**मध्ये च तस्यातिमहतः शबरसैन्यस्य प्रथमे वयसि वर्तमानम् अति-कर्कशत्वादायसमयमिव, एकलव्यमिव जन्मान्तरादागतम्, उद्भिद्यमान-श्मश्रुराजितया प्रथममदलेखामण्ड्यमानगण्डभित्तिमिव गजयूथपतिकुमारम्, असितकुवलयश्यामलेन देहप्रभाप्रवाहेण कालिन्दीजलेनेव पूरयन्तमरण्यम्, आकुटिलाग्रेण स्कन्धावलम्बिना कुन्तलभारेण केसरिणमिव गजमदमलिनी-कृतेन केसरकलापेनोपेतम्, आयतललाटम्, अतितुङ्गघोरघोणम् ।**

शब्दार्थ—मध्ये च तस्यातिमहतः शबरसैन्यस्य=और उस अतिविशाल भीलों के सेना के बीच, प्रथमे वयसि वर्तमानम्=युवावस्था में वर्तमान, अतिकर्कशत्वादाया-

समयमिव=अतिकठोर होने के कारण मानो लौहनिर्मित, जन्मान्तरागतम् एकलव्यमिव=मानो जन्मान्तर को प्राप्त हुए एकलव्य जैसा, उद्भिद्यमानश्मश्रु-राजितया=निकलती हुई दाढी की पंक्ति के कारण, प्रथम मदलेखामण्ड्यमानगण्ड-भित्तिम्=प्रथम मदलेखा से शोभमान कपोलस्थलों वाले, गजयूथपतिकुमारमिव=गजराजशावक के समान, असितकुवलयश्यामलेन=नीलकमल के समान श्यामल, देहप्रभाप्रवाहेण=शरीर की कान्ति के प्रवाह से, कालिन्दीजलेनेव अरण्यं पूरयन्तम्=मानो यमुना जल से वन को पूरित करता हुआ, गजमदमलिनीकृतेन=गज के मद से मलिन किये गये, केसरकलापेन=केसर समूह से, उपेतम्=युक्त, केसरिणमिव=सिंह के समान, स्कन्धावलम्बिना=कन्धों पर लटके हुए, आकुटिलाग्रेण=(तथा) कुछ टेढ़े अग्रभाग वाले, कुन्तलभारेण=केशों के भार से (युक्त), आयतललाटम्=चौड़े ललाट वाले, अतितुङ्गघोरघोणम्=अति ऊँची तथा भयानक नाक वाले········ (मातङ्गनामक शवरसेनापति को देखा)।

अनुवाद—और उस अतिविशाल शबरसेना के बीच, युवावस्था में वर्तमान, अतिकठोर होने के कारण मानो लौहनिर्मित, मानो जन्मान्तर को प्राप्त हुए एकलव्य जैसे, निकलती हुई दाढी की पंक्ति के कारण प्रथम मदलेखा से शोभमान कपोलस्थलों वाले गजराज शावक जैसे, नीलकमल के समान श्यामल शरीर की कान्ति के प्रवाह से मानो यमुना जल से वन को पूरित करता हुआ, गज के मद से मलिन किये गये केसर समूह से युक्त, सिंह के समान, कन्धों पर लटके हुए तथा कुछ टेढ़े अग्रभाग वाले केशों के भार से युक्त, चौड़े ललाट वाले (तथा) अति ऊँची एवं भयानक नाक वाले।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि मैंने उस अतिविशाल भीलों की सेना के बीच मातङ्ग नामक शवरसेनापति को देखा, जो नई अवस्था वाला या युवक था, उसका शरीर बड़ा कठोर था, मानो लोहे का बना हुआ हो, अथवा मानो दूसरा जन्म लेने वाला एकलव्य ही हो। निकलती हुई दाढी से वह ऐसा शोभित हो रहा था मानो पहली मदलेखा से सुशोभमान कपोलस्थलों वाला गजेन्द्रशावक हो, उसके शरीर का रंग नीलकमल जैसा साँवला था और उससे निकलकर जंगल में चारों ओर फैलने वाली उसकी नीली कान्ति की धारा, यमुना जल की धार के समान लग रही थी। उसके कन्धों तक लटके हुए घुंघराले बाल, गजमद से मलिन सिंह के केसरों जैसे लग रहे थे। माथा चौड़ा और नाक ऊँची तथा भयानक थी।

संस्कृत व्याख्या—मध्ये च तस्यातिमहतः शबरसैन्यस्य=तस्य पूर्वोक्तस्य अतिविशालस्य भिल्लानीकस्य च प्रथमे वयसि वर्तमानम्=वार्धक्यापेक्षया पूर्वे वयसि यौवनावस्थायां तारुण्ये वर्तमानम् स्थितम्, अतिकर्कशत्वात् अतिकठोरदेहत्वात् आयसमिव लौहनिर्मितमिव, जन्मान्तरागतम् जन्मान्तरे अन्यजन्मनि आगतं समायातम् एकलव्यम् एतन्नामकं द्रोणशिष्यमिव, उद्भिद्यमानश्मश्रुराजितया=उद्भिद्यमानानि अचिरा-दुत्पद्यमानानि यानि श्मश्रूणि मुखलोमानि तेषां राजिः पङ्क्तिः यस्य तस्य भावस्तया

हेतुना, प्रथममदलेखामण्ड्यमानगण्डभित्तिम्=प्रथमा आद्या या मदलेखा श्यामल-मदरेखा तया मण्ड्यमाने अलंक्रियमाणे गण्डभित्ती कपोलदेशौ यस्य तम् तादृशम्, गजयूथपतिकुमारम् इव गजराजशावकमिव, असितकुवलश्यामलेन—असितं नीलं यत् कुवलयम् कमलं तद्वत् श्यामलेन कृष्ण वर्णेन, देहप्रभाप्रवाहेन=देहस्यं शरीरस्य प्रभाप्रवाहेण कान्तिस्रोतसा, कालिन्दीजलेन यमुनासलिलेन अरण्यम् वनम् पूरयन्तम् पूर्णं कुर्वन्तम् इव, गजमदमलिनीकृतेन=गजानां हस्तिनाम् मदेन मदजलेन मलिनीकृतेन कृष्णावर्णीकृतेन, केसरकलापेन=सटासमूहेन उपेतम् युक्तम् केसरिणम् सिंहम् इव, स्कन्धावलम्बिना=बाहुमूलावलम्बनशीलेन (तथा) आकुटिलाग्रेण किञ्चित्कुञ्चिता-ग्रभागेन कुन्तलभारेण केशसमूहेन उपेतम् युक्तम्। आयतललाटम्=विस्तीर्णभालदेशम्, अतितुङ्गघोरघोणम्=अतितुङ्गा अत्युन्नता घोरा भयावहा च घोणा नासिका यस्य तम् तथोक्तम् ............ मातङ्गनामानं शवरसेनापतिमपश्यम्।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यत्तस्यातिविशालस्य शबरानीकस्य च मध्ये तारुण्ये वर्तमानम् मातङ्गनामानं शवरसेनापतिमहमपश्यम्, यः स्वशरीरस्याति-कठोरत्वाल्लौहनिर्मित इव, अन्यजन्मानि समागतः एकलव्याभिधानः द्रोणाचार्यस्य शबरशिष्य इवासीत्। समुत्पद्यमानमुखलोमपंक्तितया आद्यमदजलरेखाशोभमानकपोलदेशः गजेन्द्रशावक इव, नीलकमलवत्कृष्णवर्णेन समस्तारण्यव्यापिना शरीरकान्तिप्रवाहेण यमुनजलेनेव वनं पूरयन् स्थित आसीत्। गजमदजलेन कृष्णवर्णीकृतेन सटासमूहेन समन्वितः सिंह इव स बाहुमूलावलम्बिना किञ्चित्कुञ्चिताग्रभागेन केशभारेणोपेतः, विस्तीर्णभालदेशः, अत्युन्नतभयावहनासिकावान् चासीत्।

**टिप्पणी**—"आयसम् लोहम्" **आयसमिव**—लौहनिर्मिता इव, **प्रथमे वयसि** वृद्धता से पूर्व की अवस्था अर्थात् तारुण्य, शवर का शरीर अति पुष्ट एवं कठोर होने से ऐसा प्रतीत होता था मानो वह लोहे का बना हुआ हो, यहाँ क्रियोत्प्रेक्षालंकार है: **जन्मान्तरागतमिति** मानो एकलव्य ने ही दूसरा जन्म धारण कर लिया हो, एकलव्य भी भिल्ल ही था जो कि द्रोणाचार्य द्वारा शिष्य बनाने के लिए मना कर देने पर निराश हो गया था और उसने उनकी मूर्ति स्थापित कर उन्हें गुरु मानकर धनुर्विद्या का अभ्यास किया था। **उद्भिद्यमान**—उद्+भिद्+यक् शानच्—निकलते हुए, **श्मश्रु**=मुख पर दाढ़ी के बाल—मुख पर हाल ही निकले हुए काले-काले दाढ़ी के बालों की रेखा से वह उस गज शावक-सा था जिसके अभी ही मदरेखा निकली हो। यहाँ उपमालंकार है। **असितेति**—कालिन्दी का जल स्वभावतः नीला होता है, शबर के शरीर की कान्ति भी नीली या काली थी। **कुवलयश्यामलेन** में लुप्तोपमा तथा कालिन्दी जलेनेव में द्रव्योत्प्रेक्षा है, कान्तिप्रवाह से वनपूरत्व में असम्बन्धाभावेऽपि सम्बन्धप्रतिपादन रूप अतिशयोक्ति है अतः इन सभी का अङ्गाङ्गिभाव संकर है। **आकुटिलाग्रेणेति**—यहाँ उपमालंकार है। **अतितुङ्गेति**—शबरसेनापति की नासिका अत्यन्त ऊँची एवं उसके बड़े-बड़े छिद्रों के कारण वह भयानक भी थी। 'घोणा नासा च नासिका' इत्यमरः।

उपनीतस्यैक कर्णाभरणतां भुजगफणामणेरापाटलैरंशुभि रालोहितीकृतेन पर्णशयनाभ्यासाल्लग्नपल्लवरागेणेव वामपार्श्वेन विराजमानम्, अचिरहतगजकपोलगृहीतेन सप्तच्छदपरिमलवाहिना कृष्णागुरूपङ्केनेव सुरभिणा मदेन कृताङ्गरागम् उपरि तत्परिमलान्धेन परिभ्रमता मायूरपिच्छातपत्रानुकारिणा मधुकरकुलेन तमालपल्लवेनेव निवारितातपम्, आलोलपल्लवव्याजेन भुजबलनिर्जितया भयप्रयुक्तसेवया विन्ध्याटव्येव करतलेनापमृज्यमान गण्डस्थलस्वेदलेखम् ।

शब्दार्थ—एककर्णाभरणताम् उपनीतस्य=एक कान में (अर्थात् बायें कान में) आभूषण रूप में धारण की गई, भुजगफणामणेः=सर्प के फन की मणि को, आपाटलैः अंशुभिः=कुछ-कुछ श्वेतरक्त वर्ण की अर्थात गुलाबी किरणों से, आलोहितीकृतेन=किञ्चित् लाल वर्ण के किये हुए, (अतएव) पर्णशयनाभ्यासात्=पत्तों पर सोने के अभ्यास के कारण, लग्नपल्लवरागेणेव=मानो लगी हुई पत्तों की लालिमा वाले, वामपार्श्वेन विराजमानम्=बायें पार्श्व से सुशोभमान, अचिरहतगजकपोलगृहीतेन=शीघ्र ही मारे गये हाथी के कपोलस्थलों से ग्रहण किये गये, सप्तच्छद वृक्ष की सुगन्धि के समान सुगन्धि को धारण करने वाले, कृष्णागुरुपङ्क्तेनेव=काले अगुरु के द्रव के समान, सुरभिणा मदेन=सुगन्धित मद से, कृताङ्गरागम्=अङ्गराग लगाये हुए, तत्परिमलान्धेन=उस (मद) की सुगन्धि से अन्धे अर्थात् विह्वल हुए, (अतएव) उपरि=शिर के ऊर्ध्व भाग पर, परिभ्रमता=मँडराते हुए, मयूरपिच्छातपत्रानुकारिणा=मयूरपंखनिर्मितछत्र (मायूरपिच्छातपत्र) का अनुकरण करने वाले, तमालपल्लवेनेव=तमालपत्रों के समान, मधुकरकुलेन=भ्रमरसमूह द्वारा, निवारितातपम्=जिसकी धूप को रोका जा रहा था। भुजबलनिर्जितया=मानो (शबरसेनापति के) बाहुबल से स्वाधीनीकृता (निर्जिता) (अतएव) भयप्रयुक्तसेवया=भयवश सेवा तत्परा, विन्ध्याटव्या=विन्ध्याटवी के द्वारा, आलोलपल्लवव्याजेन=(वायु वेग से) भलीभाँति हिलते हुए किसलयों के बहाने से, करतलेन=हाथ से, अपमृज्यमानगण्डस्थलस्वेदलेखम्=पोंछे जाते हुए कपोल स्थलों के पसीने की रेखा वाले।

अनुवाद—एक कान में (अर्थात् बायें कान में). आभूषण रूप में धारण की गई, सर्प के फन की मणि की, कुछ-कुछ श्वेतरक्त (गुलाबी) वर्ण की किरणों से, किञ्चित् लालवर्ण के किये हुए (अतएव) पत्तों पर सोने के अभ्यास के कारण, मानो लगी हुई किसलयों की लालिमा वाले वामपार्श्व (शरीर के बायें भाग) से सुशोभित, शीघ्र ही मारे गये हाथी के कपोलस्थलों से ग्रहण किये गये, सप्तच्छदतरु की सुगन्धि के समान सुगन्धि को धारण करने वाले, काले अगरु के द्रव के समान सुगन्धित मद से अंगराग लगाये हुए, उस (मद) की सुगन्धि से विह्वल (अतएव) शिर के ऊर्ध्व भाग पर मँडराते हुए, मयूर पंख निर्मित छाते का अनुकरण करने वाले तमाल पत्रों के समान भ्रमरसमूह द्वारा रोकी गई धूप वाले, मानो (शबरसेनापति के) बाहुबल से

स्वाधीनीकृता (अतएव) भयवश सेवातत्परा विन्ध्याटवी के द्वारा, (वायुवेग से) भलीभाँति हिलने वाले किसलयों के बहाने से हाथ से पोंछे जाते हुए कपोलस्थलों के पसीने की रेखा वाले········ ······ शबरसेनापति को देखा।

**भावार्थ**—शबरसेनापति ने अपने बायें कान में नागमणि को आभूषण के रूप में पहिन रखा था, इस मणि की लाल-लाल किरणों से उसका बायाँ अंग कुछ लालवर्ण का हो गया था जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि किसलयों को बिछाकर सोने का अभ्यासी होने के कारण नवकिसलयों का कुछ-कुछ लाल रंग उसके शरीर के बायें अंग में लग गया हो। उसने अपने शरीर पर काले अगरु के लेप के समान सुगन्धित, अचिर निहत गज के कपोलस्थलों के मद का लेप कर रखा था, इस मद से सप्तच्छद जैसी सुगन्धि निकल रही थी। उस मद की सुगन्धि से विह्वल होकर उसके सिर पर मँडराने वाले मोर पंखों से बने छाते के समान, भ्रमरों के झुण्ड ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वे तमाल के पत्तों से उसकी धूप रोक रहे हों। वायु के वेग से हिलने वाले कोमल किसलय जिसे उसने अपने कानों पर लगा रखा था, उसके कपोलों पर बहते हुए पसीने की बूँदों को पोंछ देते थे जिसे देख ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उसके बाहुबल से वशीकृता अतएव भयवश सेवा में तत्परा स्वयं विन्ध्याटवी अपने पल्लव रूपी हाथ से उसका पसीना पोंछ रही थी।

**संस्कृत व्याख्या**—एककर्णाभरणताम् उपनीतस्य=एकस्य कर्णस्य श्रोत्रस्य आभरणताम् अलङ्करणताम् उपनीतस्य प्रापितस्य सव्यश्रोत्रे भूषणत्वेन धृतस्येत्यर्थः, भुजगफणामणेः=भुजगस्य सर्पस्य फणामणेः फणास्थितरत्नस्य तथोक्तस्य, आपटलैः ईषच्छ्वेतरक्तैः अंशुभिः किरणैः, आलोहितीकृतेन किञ्चिद्रक्तवर्णीकृतेन (अतएव) पर्णशायनाभ्यासात्=पर्णेषु तरुपत्रेषु यच्छयनम् तरुपर्णान्याच्छाद्य यः स्वापः तस्य यः अभ्यासः तस्मात्, लग्नपल्लवरागेण—संसक्तनवकोमलकिसलयारुण्येन तादृशेन वामपार्श्वेन शरीरस्य सव्याङ्गेन विराजमानम्, सुशोभमानम्, अचिरनिहतगजकपोल-गृहीतेन=अचिरं तत्कालं निहतः मारितः यः गजः तस्य कपोलाभ्याम् गण्डस्थलाभ्याम् गृहीतः समानीतस्तेन तथोक्तेन, सप्तच्छदपरिमलवाहिना=सप्तच्छदस्य सप्तपर्ण-संज्ञकस्य तरोः परिमलं सुगन्धिम् इव परिमलं वहतिधारयतीत्येवंशीलेन सप्तपर्णतरु-सुगन्धिवत्सौरभवहनशीलेन, कृष्णागुरुपङ्केनेव—कृष्णस्य कृष्णवर्णस्य अगुरोः एतन्नामकसुगन्धिपदार्थस्य पङ्केन द्रवेण इव; सुरभिणा सौरभवता मदेन गजमदेन, कृताङ्गरागम्=कृतः सम्पादितः अङ्गरागः शरीरविलेपनम् येन स तम् तादृशम्, तत्परिमलान्धेन=तस्य मदस्य यः परिमलः सौरभं तेन अन्धेन विह्वलीभूतेन तथोक्तेन, (अतएव) उपरि=शिर ऊर्ध्वदेशे, परिभ्रमता परिभ्रमणं विदधता, मायूरपिच्छातपत्रानु-कारिणा=मायूरस्य मयूरसम्बन्धिनः पिच्छस्य बर्हस्य यत् आतपत्रम् मायूरपिच्छ-रचितच्छत्रम् तदनुकर्तुं शीलमस्येति तेन मयूरपिच्छनिर्मितछत्रानुकरणशीलेन मधुकर-कुलेन भ्रमरसमूहेन, तमालपल्लवेन तापिच्छकिसलयेन इव निवारितातपम्=निवारितः अपसारितः आतपः सूर्यकिरणतापः यस्य तम् तादृशम्, भुजबलनिर्जितया=भुजबलेन

शबरसेनापतिबाहुबलेन निर्जिता वशीकृता तया (अतएव) भयप्रयुक्तसेवया=भयेन त्रासेन प्रयुक्तासमारब्धा सेवा यया तया त्रासवशात्सेवातत्परया विन्ध्याटव्या विन्ध्यगिरि-वनस्थल्या, आलोलपल्लवव्याजेन-आलोलाः वायुवेगेन समन्ताच्चञ्चला ये पल्लवाः किसलयानि तेषां व्याजेन कपटेन करतलेन हस्तेनेव, अपमृज्यमानगण्डस्थलस्वेद लेखम्=अपमृज्यमाना प्रोञ्छ्यमाना या गण्डस्थलयोः कपोलस्थलयोः स्वेदस्य लेखा पङ्क्तिः घर्मबिन्दुरेखा यस्य तम् तादृशम् ।....... मातङ्गनामानं शबरसेनापतिमपश्यम् ।

संस्कृत सरलार्थ—(वैशम्पायनः कथयति यत्तदनु तादृशमहं शबरसेनापति-मपश्यम्) यः स्वकीयसव्यश्रोत्रस्यालङ्करणतामानीतस्य सर्पफणास्थितरत्नस्य ईषच्छवेतरक्तैः किरणैः किञ्चिद्रक्तवर्णीकृतेन अतएव तरुपर्णान्याच्छाद्य शयनाभ्यामात् संसक्तकोमलतरुकिसलयारुण्येनेव स्वशरीरस्य सव्यपार्श्वेन सुशोभमानः, तत्कालं व्यापादितस्य गजस्य गण्डस्थलाभ्यामानीतेन सप्तपर्णतरु सौरभवत्सौरभवहनशीलेन कृष्णवर्णागुरुद्रवेणेव सौरभवता मदेन कृतशरीरानुलेपनः, मदसौरभातिकृष्टेन तच्छिर ऊर्ध्वभागे परिभ्रमता, मयूरबर्हनिर्मितच्छत्रानुकरणशीलेन भ्रमरगणेन तापिच्छ-किसलयेनेव अपसारितातपः, शबरसेनापतिबाहुबलेन स्वाधीनीकृतया अतएव त्रास-वशात्तत्सेवापरया विन्ध्यगिरिवनस्थल्येव वायुवेगातिचञ्चलकिसलयकपटेन हस्तेनेव प्रोञ्छ्यमानकपोलस्थलघर्मजलबिन्दुरेखश्चासीत् ।

टिप्पणी—वामपार्श्वेन विराजमानम् शरीर के बायें अंग से सुशोभमान यहाँ क्रियोत्प्रेक्षालंकार है। अचिरेति—तत्काल मारे गये हाथी के गण्डस्थल से निकाले गये मद से, सप्तच्छदेति—सप्तपर्णतरु की सुगन्धि के समान सुगन्धि वहन करने वाले, लुप्तोपमा, कृष्णागुरुपङ्केनेव— पङ्क द्रव लेप यहाँ उपमा है, दोनों की परस्पर निरपेक्ष स्थिति के कारण यहाँ संसृष्टि है। मायूरेति=मयूरस्येदं मायूरम् मयूर-सम्बन्धी, पिच्छ=बर्ह या पंख उससे रचित आतपत्र=छत्र, अनुकारिणा=अनुकरण करने वाले अर्थात् तत्सदृश, अतः यहाँ आर्थी उपमा है। तमालपल्लवेनेव—यहाँ शाब्दी उपमा है अतः संसृष्टि है। आलोलपल्लवव्याजेन—अत्यधिक हिलते हुए पत्तों के व्याज से मानो हाथ, अपमृज्यमानेति उसके कपोलस्थल का पसीना पोंछा जा रहा था, इस प्रकार यहाँ अपह्नवोत्प्रेक्षालंकार है।

**आपाटलया हरिणकुलकालरात्रिसन्ध्यायमानया शोणितार्द्रयेव दृष्ट्या रञ्जयन्तमिवाशात्रिभागान्, आजानुलम्बिना दिक्कुञ्जरकरप्रमाणमिव गृहीत्वा निर्मितेन चण्डिकारुधिरबलिप्रदानार्थमसकृन्निशित शस्त्रोल्लेखविष-मितशिखरेण भुजयुगलेनोपशोभितम्, अन्तरान्तरा लग्नाश्यानहरिणरुधिर-बिन्दुना स्वेदजलकणिकाचितेन गुञ्जाफलमिश्रैः करिकुम्भमुक्ताफलैरिव विरचिताभरणेन विन्ध्यशिलातलविशालेन वक्षःस्थलेनोद्भासमानम् अविरतश्रमाभ्यासादुल्लिखितोदरम्, इभमदमलिनमालानस्तम्भयुगलमुप-हसन्तमिवोरुदण्डद्वयेन, लाक्षालोहित कौशेयपरिधानम् ।**

शब्दार्थ—आपाटलया=कुछ-कुछ श्वेतरक्त वर्ण वाली, हरिणकुलकालरात्रिसन्ध्यायमानया=मृगसमूह की कालरात्रि की सन्ध्या के समान प्रतीत होने वाली, शोणितार्द्रया=मानो रक्त से गीली, दृष्ट्या=दृष्टि से, आशाविभागान्=दिग्विभागों को, रञ्जयन्तम् इव=रञ्जित करता हुआ सा, आजानुलम्बिना=घुटनों तक लम्बे, दिक्कुञ्जरकरप्रमाणमिव गृहीत्वा निर्मितेन=मानो दिग्गज की सूँड की नाप लेकर बनाये गये (तथा) चण्डिकारुधिरबलिप्रदानार्थम्=चण्डिका को रक्त की बलि देने के लिए, असकृन्निशितशस्त्रोल्लेखविषमितशिखरेण=बार-बार (असकृत) तीक्ष्ण किये गये निशित शस्त्रों के घर्षण से (उल्लेख) नतोन्नत अग्रभाग (विषमित शिखरेण) वाले, भुजयुगलेनोपशोभितम्=बाहुद्वय से सुशोभित, अन्तरान्तरा=बीच-बीच में, लग्नाश्यानहरिणरुधिरबिन्दुना=लगे हुए मृगों के सूखे (आश्यान) रक्त विन्दुओं वाले, (और) स्वेद जल के बिन्दुओं से व्याप्त, स्वेदजलकणिकाचितेन (कणिका=बिन्दु, चित=व्याप्त)। (अतएव) गुञ्जाफलमिश्रैः=घुंघची के दानों से मिश्रित, करिकुम्भमुक्ताफलैः=हाथियों के कुम्भस्थल के मोतियों से, विरचिताभरणेन=निर्मित आभूषण वाले, विन्ध्यशिलातलविशालेन=विन्ध्याचल की शिला के समान विशाल, वक्षःस्थलेनोद्भासमानम्=वक्षःस्थल से शोभायमान, अविरतश्रमाभ्यासादुल्लिखितोदरम्=निरन्तर परिश्रम के अभ्यास से कृश उदर वाले, ऊरुदण्डद्वयेन=दण्डसदृश जंघाद्वय से, इभमदमलिनम्=हाथी के मद से मलिन, आलानस्तम्भयुगलम्=हाथियों के बाँधने के दो खम्भों का, उपहसन्तमिव=उपहास करता हुआ सा, लाक्षालोहितकौशेयपरिधानम्=लाक्षा (लाख) से लाल किये गये रेशमी (कौशेय) अधोवस्त्र पहने हुए।

अनुवाद—कुछ-कुछ श्वेतरक्त वर्ण वाली, मृगसमूह की विनाशरात्रि की सन्ध्या के समान प्रतीत होने वाली, मानो रक्त से गीली दृष्टि से दिग्विभागों को रञ्जित करता हुआ सा, घुटनों तक लम्बे, मानो दिग्गज की सूँड के नाप को लेकर (ब्रह्मा द्वारा) बनाये गये, (तथा) चण्डिका को रक्त की बलि देने के लिए, बार-बार तीक्ष्ण किये गये शस्त्रों के घर्षण से नतोन्नत अग्रभाग वाले, बाहुयुगल से सुशोभित, बीच-बीच में लगे हुए मृगों के सूखे रक्त बिन्दुओं वाले (अतएव) घुंघुची के दानों से मिश्रित, हाथियों के कुम्भस्थल के मोतियों से निर्मित आभूषण वाले, विन्ध्याचल की शिला के समान विशाल वक्षःस्थल से शोभायमान, लगातार श्रम के अभ्यास से कृश उदर वाले, दण्ड सदृश दो जंघाओं से, हाथी के मद से मलिन गजबन्धन के दो स्तम्भों का उपहास करता हुआ सा, लाक्षारस से लाल किये हुए रेशमी अधोवस्त्र को पहने हुए ······ ······ शबरसेनापति को देखा।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि उस शबरसेनापति की दृष्टि रक्तवर्ण की थी मानो वह रक्त से तर हो, ऐसी दृष्टि से चारों ओर देखने के कारण मानो समस्त दिशायें भी लाल हो उठीं हों, कुछ-कुछ श्वेतरक्तवर्ण वाली उसकी ऐसी दृष्टि मृगसमूह की विनाशकारिणी कालरात्रि की सन्ध्या के समान जान पड़ती थी। उसकी बाहें

घुटनों तक लटक रही थीं, जो कि ऐसी प्रतीत होती थीं कि मानो ब्रह्मा ने दिग्गज के सूँड की नाप लेकर उन्हें बनाया हो, और उसकी बाहों के अग्रभाग अर्थात् हथेलियाँ भगवती चण्डिका को रक्त की भेंट समर्पण के लिए (पशु के काटने के लिए) बार-बार शस्त्रों के (पत्थर आदि पर) घिसने के कारण अर्थात् उन पर सान चढ़ाने के लिए घिसने के कारण, ऊँची-नीची और कठोर हो गईं थीं, इस प्रकार के बाहुद्वय से वह सुशोभित था। विन्ध्याचल की चट्टान के समान कठोर और चौड़ा उसका वक्षःस्थल था, उस वक्षःस्थल के बीच-बीच में हरिणों के जमे हुए रक्त के छींटे पड़े हुए थे, फलतः जब परिश्रमवश निकले हुए पसीने की बूँदें उस पर पड़ती थीं तो वे ऐसी शोभित होती थीं कि मानो घुंघची के लाल दानों के साथ श्वेत गजमोतियों को पिरो दिया गया हो। निरन्तर श्रम के अभ्यास के कारण उसका पेट पहला, कृश हो गया था मानो उसे खराद पर चढ़ाकर घिसा गया हो। दण्ड के समान दृढ़ एवं स्थूल उसकी दोनों जांघें, गजमद से काले पड़े हुए गज बन्धन के दो खम्भों की हँसी उड़ा रही थी अर्थात् वे खम्भों से भी दृढ़ और स्थूल थीं। वह लाक्षारस से रंगे हुए रेशमी अधोवस्त्र को पहने था।

**संस्कृत व्याख्या**—आपाटलया=किञ्चिच्छ्वेतरक्तवर्णया, (अतएव) हरिणकुलकालरात्रिसन्ध्यायमानया=हरिणानां मृगाणां कुलस्य समूहस्य कालरात्रेः विनाशरात्रेः या सन्ध्या अस्तोन्मुखसूर्यरश्मिलोहितीकृतः सायंकालः तद्वदाचरन्तीति सन्ध्यायमाना तया तादृश्या शोणितार्द्रया रक्तलिप्तया इव दृष्ट्या नेत्रेण आशाविभागान् दिग्विभागान् रञ्जयन्तम् रक्तवर्णोत्पादनात् शोभयन्तम् इव। आजानुलम्बिना=जानुः नलकीलः तत्पर्यन्तं लम्बिना आयतेन अतिदीर्घेणेत्यर्थः, दिक्कुञ्जरकरप्रमाणमिव गृहीत्वा=दिक्कुञ्जरस्य दिग्गजस्य करस्य शुण्डादण्डस्य प्रमाणं परिमाणमिव आदाय निर्मितेन प्रजापतिना रचितेन, तथोक्तेन, चण्डिकारुधिरबलिदानार्थम्=चण्डिकायै कालिकायै या रुधिरबलिः रक्तोपहारः तस्य प्रदानार्थं समर्पणार्थम्, बलिपशुकर्त्तनार्थमित्यर्थः, असकृन्निशितशस्त्रोल्लेखविषमितशिखरेण=असकृत् मुहुर्मुहुर्निशितानि तीक्ष्णधारोत्पादनाय सुदृढपाषाणखण्डादौ घर्षणेन तेजितानि यानि शस्त्राणि खड्गादीनि तेषाम् उल्लेखनं संघर्षणं तेन विषमितम् उच्चावचीकृतम् शिखरम् अग्रभागः यस्य तेन तादृशेन, भुजयुगलेन बाहुद्वयेन उपशोभितम् विराजमानम्, अन्तरान्तरा=मध्ये मध्ये, लग्नाश्यानहरिणरुधिरबिन्दुना=लग्नाः संसक्ताः आश्याना आशुष्का हरिणरुधिरबिन्दवः मृगशोणितकणा यस्मिन् तेन तथोक्तेन, स्वेदजलकणिकाचितेन=स्वेदजलस्य धर्मजलस्य याः कणिकाः बिन्दवः ताभिः चितेन व्याप्तेन (अतएव) गुञ्जाफलमिश्रैः=गुञ्जाफलैः मिश्राणि सम्मिलितानि तैः तथोक्तैः, करिकुम्भमुक्ताफलैः गजशिरः पिण्डोद्भवमौक्तिकैः इव, विरचिताभरणेन=विचरितं निर्मितम् आभरणं भूषणं यस्य तेन तादृशेन इव विद्यमानेन, विन्ध्यशिलातलविशालेन=विन्ध्यस्य विन्ध्याचलस्य शिलातलवत् पृथुलेन वक्षःस्थललेन उद्भासमानम् शोभमानम्, अविरतश्रमाभ्यासात्=अविरतं निरन्तरं यः श्रमः बलातिशयार्थं व्यायामः तस्य अभ्यासः=तस्मात्, उल्लिखितोदरम् उल्लिखितं

शार्णोल्लखितमिव कृशम् उदरं यस्य स तम् तथोक्तम्, उरुदण्डद्वयेन=उर्वोः जङ्घयोः यद् दण्डद्वयम् दण्डयुगलं तेन जङ्घादण्डद्वयेन, इभमदमलिनम्-इभस्य गजस्य मदेन दानवारिणा मलिनम् श्यामवर्णम्, तादृशम्, आलानस्तम्भयुगलम् गजबन्धनस्तम्भद्वयम् उपहसन्तम् तिरस्कुर्वन्तमिव, लाक्षालोहित कौशेयपरिधानम्=लाक्षया जतुना जतुरसेनेत्यर्थः लोहितं रक्तवर्णीकृतम् कौशेयं क्षौमवसनं परिधानम् अधोवस्त्रं यस्य तम् तादृशम् । शबरसेनापतिमपश्यम् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशं मातङ्गनामानं शबरसेनापति मपश्यम्, यः ईषच्छ्वेतारुणया (अतएव) मृगसमूहविनाशरात्रेः सायङ्कालवदाचरन्त्य, इव रुधिरलिप्तयेव दृष्ट्या दिग्विभागान् रक्तवर्णोत्पादनाच्छोभयन्निव विद्यमान आसीत् । जानुपर्यन्तलम्बिना दिग्गजशुण्डादण्डपरिमाणमादायेव प्रजापतिना रचितेन, चण्डिकायै शोणितोपहारसमर्पणार्थम् निरन्तरं तीक्ष्णधारोत्पादनाय तेजितखड्गादिशस्त्राणां घर्षणेनोच्चावचीकृताप्रदेशेन बाहुद्वयेन विराजमानः, मध्ये, मध्ये संसक्ताशुष्क मृगशोणितबिन्दुमता धर्मजलबिन्दुव्याप्तेन (अतएव) गुञ्जाफलमिश्रैः गजशिरःपिण्डोद्भवै मौक्तिकैरिव रचितभूषणेनेव विद्यमानेन, विन्ध्यगिरेः शिलातलवत्पृथुलेन वक्षःस्थलेन शोभमानः, निरन्तरं शारीरिकश्रमाभ्यासात् शाणोल्लिखितमिव कृशोदरं दधानः, गजमदेन कृष्णवर्णम् गजबन्धनस्तम्भद्वयमपि स्वकीयोरुदण्डद्वयेन तिरस्कुर्वन् इव विद्यमानः, जतुरसलोहितीकृतक्षौमवसनाधोवस्त्रञ्च दधान आसीत् ।

**टिप्पणी—आपाटलया**—कुछ गुलाबी रंग की, **हरिणकुलेति**—मृगों के विनाश की रात्रि की सन्ध्या के समान प्रतीत होने वाली, सन्ध्यामिवाचरतीति सन्ध्यायमाना अत्र क्यङ्गतोपमालंकारः । **शोणिताद्रयेव** रक्तरञ्जितयेव अत्र गुणोत्प्रेक्षालंकारः, **रञ्जयन्तमिव** मानो दिग्विभागों में लालिमा उत्पन्न करने से शोभायमान यहाँ क्रियोत्प्रेक्षा है, और इन सबका यहाँ अङ्गाङ्गिभाव संकर है । **आजानुलम्बिना**=जानुपर्यन्त लम्बे, **दिक्कुञ्जरेति** मानो दिग्गज की सूँड की नाप लेकर ब्रह्मा द्वारा बनाये गये । **अन्तरान्तरा** बीच बीच में, **गुञ्जाफलमिश्रैः**—काकचिञ्चागुञ्जे तु कृष्णला इत्यमरः । **आलान**—हाथी के बाँधने का खम्भा । **उल्लिखितोदरम्**—नित्य श्रम से उसका उदर इतना कृश हो गया था मानो उसे शाण पर रखकर घिस दिया गया हो । **उपहसन्तमिवेत्यत्र** क्रियोत्प्रेक्षा उपहास का यहाँ अर्थ तिरस्कार करना है । उसके काले-काले उरुदण्डद्वय आलानस्तम्भों से भी अधिक सुदृढ़ थे अतएव वे इसके द्वारा उपहासास्पद थे । **कौशेयपरिधानम्** कौशेय=रेशमीवस्त्र, परिधान=अधोवस्त्र, कुछ टीकाकारों ने परिधान का अर्थ वस्त्रमात्र ही लेकर कौशेय परिधान का अर्थ केवल रेशमी वस्त्र लिया है, पर मेरी दृष्टि से यहाँ रेशमी अधोवस्त्र अर्थ ही अधिक प्रासंगिक है । ●

**अकारणेऽपि क्रूरजातितया बद्धत्रिपताकोदग्रभ्रुकुटीकराले ललाटपट्टे प्रबलभक्त्याराधितया "मत्परिग्रहोऽयम्" इति कात्यायन्या त्रिशूलेनेवाङ्कितम्, उपजातपरिचयैरनुगच्छद्भिः, श्रमवशाद्दूरविनिर्गताभिः**

स्वभावपाटलया शुष्काभिरपि हरिणशोणितमिव क्षरन्तीभिर्जिह्वाभिरावेद्यमानखेदैः, विवृतमुखतया स्पष्टदृष्टदन्तांशून् दंष्ट्रान्तरालग्नकेसरिसटानिव सृक्कभागानुद्वहद्भिः, स्थूलवराटकमालिकापरिगतकण्ठैः महावराहप्रहारजर्जरैः अल्पकायैरपि महाशक्तित्वादनुपजातकेसरैरिव केसरिकिशोरकैः, मृगवधूवैधव्यदीक्षादानदक्षैरनेकवर्णैः श्वभिः, अतिप्रमाणाभिश्च केसरिणामभयप्रदानयाचनार्थमागताभिः सिंहीभिरिव कौलेयककुटुम्बिनीभिरनुगम्यमानम् ।

शब्दार्थ—अकारणेऽपि=क्रोधसूचक भ्रुकुटी टेढ़ी करने का कोई कारण न होते हुए भी, क्रूरजातितया=केवल दुष्ट जाति होने के कारण, बद्धत्रिपताकोदग्रभ्रुकुटीकराले ललाटपट्टे=पताका सदृश तीन रेखायें धारण करने वाली (बद्धत्रिपताका) उन्नत (उदग्र) भ्रुकुटी (भौंहों से) अर्थात् भ्रुकुटी की वक्रता से भीषण (कराल) पट्टवत् विशाल ललाट पर, प्रबलभक्त्या=अत्युत्कृष्ट प्रेम से, आराधितया=सेविता होने वाली, कात्यायिन्या=भगवती गौरी के द्वारा, "मत्परिग्रहोऽयम्" इति (कृत्वा) 'यह मेरा कृपापात्र है' यह मानकर, त्रिशूलेन=अपने त्रिशूल नामक अस्त्र से, अङ्कितम् इव=मानो चिह्नित किया हुआ सा, उपजातपरिचयैः अनुगच्छद्भिः=(बहुत दिनों तक साथ रहने के कारण) परिचित हुए (अतएव) पीछे-पीछे दौड़ने वाले (यह पद तथा इसी प्रकार के अन्य पुल्लिङ्ग तृतीयान्त सभी पद, आगे आने वाले (श्वभिः) के विशेषण हैं तथा इन सबका अन्वय 'अनुगम्यमानम्' से है) श्रमवशाद्दूरविनिर्गताभिः=थकावट के कारण (मुख से) बहुत बाहर निकली हुई, स्वभावपाटलतया=स्वभावतः श्वेतरक्त अथवा गुलाबी होने के कारण, शुष्काभिरपि=(इस समय) सूखी होने पर भी, हरिणशोणितमिव क्षरन्तीभिः=मानो मृग के रुधिर को टपकाती हुई सीं, जिह्वाभिः=अपनी जीभों से, आवेद्यमानखेदैः=खिन्नता प्रकट करते हुए, विवृतमुखतया=खुले हुए (विवृत) मुख होने के कारण, स्पष्टदृष्टदन्तांशून्=स्पष्टतया दृष्टिगत दन्त किरणों वाले (अतएव) दंष्ट्रान्तरालग्नकेसरिसटानिव=मानो दाढों के भीतर लगे हुए (व्यापादित) सिंहों के (केसरि) गर्दन के बालों जैसे प्रतीत होने वाले, सृक्कभागान्=ओष्ठों के प्रान्तभागों को, उदवहद्भिः=धारण करते हुए, स्थूलवराटकमालिकापरिगतकण्ठैः=बड़ी-बड़ी (स्थूल) कौड़ियों की (वराटक) मालाओं (मालिका) से वेष्टित (परिगत) कण्ठ वाले (अर्थात् जिनके गले में कौड़ियों की मालायें पहनाई गईं थीं) महावराहप्रहारजर्जरैः=बड़े-बड़े शूकरों के (दाँतों) के प्रहार से जर्जरित (शिथिल) शरीर वाले, अल्पकायैरपि=छोटे शरीर वाले होते हुए भी, महाशक्तित्वात्=महाशक्ति सम्पन्न होने के कारण, अनुपजातकेसरैः=मानो अनुत्पन्न केसर वाले। अर्थात् जिनके अभी स्कन्ध पर बाल (सटा या अयाल) नहीं उगे हैं, केसरिकिशोरकैः=सिंह के बच्चों जैसे, मृगवधूवैधव्यदीक्षादानदक्षैः=मृगियों को विधवापन की दीक्षा देने में निपुण, अनेकवर्णैः=अनेक रंगों वाले, श्वभिः=कुत्तों द्वारा, (तथा) अतिप्रमाणाभिः=विस्तृत शरीर वाली, केसरिणाम्=

सिंहों को, **अभयप्रदानयाचनार्थम्**=अभय देने की याचना के लिए, **आगताभिः**= आई हुईं, **सिंहीभिरिव**=मानो सिंहनी जैसी, **कौलेयककुटुम्बिनीभिः**=कुत्तों की (कौलेयक) स्त्रियों अर्थात् कुत्तियों द्वारा, **अनुगम्यमानम्**=अनुगमन किया जाता हुआ। ............... ऐसे शबरसेनापति को देखा।

**अनुवाद**—क्रोधसूचक भ्रुकुटी टेढी करने का कोई कारण न रहते हुए भी, केवल दुष्ट जाति होने के कारण, पताकासदृश तीन रेखायें धारण करने वाली, उन्नत भ्रुकुटी से अर्थात् भ्रुकुटी की वक्रता से, भीषण, पट्टवत् विशाल ललाट पर, अत्युत्कृष्ट प्रेम से सेवित होने वाली भगवती गौरी के द्वारा, 'यह मेरा कृपापात्र है' यह मानकर मानो अपने त्रिशूल नामक अस्त्र से चिह्नित किया हुआ सा, (बहुत दिनों तक साथ रहने के कारण) परिचित हुए (अतएव) पीछे-पीछे दौड़ने वाले, थकावट के कारण (मुख से) बहुत बाहर निकली हुईं, स्वभावतः श्वेतरक्त अथवा गुलाबी होने के कारण, (इस समय) सूखी होने पर भी, मानो मृग के रुधिर को टपकाती हुईं, अपनी जीभों से, खिन्नता प्रकट करते हुए, खुले हुए मुख होने के कारण, स्पष्टतया दृष्टिगत दन्त-किरणों वाले (अतएव) मानो दाढ़ों के भीतर लगे हुए (व्यापादित) सिंहों के गर्दन के बालों जैसे प्रतीत होने वाले, ओठों के प्रान्तभागों को धारण करते हुए, बड़ी बड़ी कौड़ियों की मालाओं से वेष्टित कण्ठ वाले, बड़े-बड़े शूकरों के (दांतों) के प्रहार से शिथिल शरीर वाले, छोटे शरीर वाले होते हुए भी, महाशक्ति सम्पन्न होने के कारण, मानो अनुत्पन्न केसर वाले सिंह के बच्चों जैसे, मृगियों को विधवापन की दीक्षा देने में निपुण, अनेक रंगों वाले कुत्तों द्वारा, (तथा) विस्तृत शरीर वाली, सिंहों को अभय देने की याचना के लिए आई हुईं, मानो सिंहिनियों जैसी कुत्तियों द्वारा अनुगमन किये जाते हुए ............... शबरसेनापति को देखा।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि तब मैंने उग्र शबरसेनापति को देखा जिसके उन्नत भीषण और विशाल भाल पर, क्रोध के कारण के न होते हुए भी केवल उसकी जातिगत क्रूरता के कारण ही, टेढ़ी भौंहों के बीच स्थित त्रिपाता (पताका सदृश तीन रेखायें) ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो उसके अतिप्रेम से आराधिता भगवती दुर्गा ने उसे अपना कृपा पात्र समझकर अपने त्रिशूल से चिह्नित कर दिया हो। वह उन कुत्तों और कुत्तियों से अनुगमन किया जा रहा था जो कि चिरसहवास से परिचित हो गये थे अतएव उसके पीछे-पीछे चल रहे थे, ये अनेक रंगों के थे। दौड़ने में थकावट के कारण उनकी स्वभावतः लाल लाल जीभें मुख से बहुत अधिक बाहर लटक रही थीं यद्यपि वे इस समय सूखी थीं फिर भी रक्तवर्ण होने के कारण ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो वे हिरणों के रक्त की बूंदें टपका रही हों और इस प्रकार अपनी थकावट प्रकट कर रही हों। उनका मुंह खुला हुआ था अतएव उनके दांतों की किरणें उनके मुंह के दोनों छोरों पर स्पष्ट दिखाई पड़ रही थीं जो कि ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो सिंह के दाढ़ों में फँसी हुई उसकी अयाल

हों। उनके गले में बड़ी-बड़ी कौड़ियों की मालायें बँधी हुई थीं और जंगली शूकरों के दांतों के आघातों से वे घायल हो गये थे, यद्यपि वे कद में छोटे थे फिर भी शक्तिशाली होने के कारण वे आयालरहित सिंहशावकों जैसे लगते थे। वे हरिणियों को वैधव्य की दीक्षा में चतुर अर्थात् मृगों के मारने में कुशल थे, उनके पीछे-पीछे कुत्तियों का भी समूह चल रहा था वे ऊँचे कद की थीं तथा ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो सिंहिनियाँ सिंहों के प्राणों की रक्षा की भीख माँगने आई हों।

**संस्कृत व्याख्या**—अकारणेऽपि=क्रोधसूचकभ्रुकुटीवक्रतारूपकारणस्याभावेऽपि, क्रूरजातितया=केवलं जातिगतक्रूरतयैव, बद्धत्रिपताकोदग्रभ्रुकुटीकराले ललाटपट्टे= बद्धाः धृताः त्रिपताकाः पताकावत्, त्रिवलि र्यया तया बद्धत्रिपताकया, उदग्रया अत्युन्नतया भ्रुकुट्या भ्रुवोः वक्रतया कराले भीषणे तयोक्ते पट्टवद् विशाले भालदेशे, प्रबलभक्त्या अतिप्रेम्णा आराधितया सेवितया कात्यायिन्या भगवत्या गौर्या 'मत्परिग्रहोऽयमिति' मातङ्गोऽयं मदीयकृपापात्रम् इति कृत्वा, त्रिशूलेन त्रिशूलाख्येन स्वकीयेन अस्त्रेण अङ्कितम् चिह्नितमिव स्थितम्, उपजातपरिचयैः=चिरसहवासेन परिचयमुपगतैः (अतएव) अनुगच्छदिभः अनुसरद्भिः, श्रमवशात्=अनुधावनखेदवशात्, दूरविनिर्गताभिः =मुखादत्यन्तं बहिर्निसृताभिः, स्वभावपाटलतया=जातिगतस्वभावतः श्वेतरक्ततया, शुष्काभिरपि=नीरसाभिरपि, हरिणशोणितम्=मृगरुधिरम्, क्षरन्तीभिः=स्रवन्तीभिरिव जिह्वाभिः रसनाभिः, आवेद्यमानखेदैः=आवेद्यमानः अन्येभ्योऽपि बोध्यमानः खेदः क्लान्तिः यैस्ते तैः तादृशैः, विवृतमुखतया=विदीर्णाननतया, स्पष्टदृष्टदन्तांशून्—स्पष्टं स्फुटं यथास्यात्तथा दृष्टाः विलोकिता दन्तांशवः दन्तकिरणाः येषु तान् तादृशान् (अतएव) दंष्ट्रान्तराललग्नकेसरिसटानिव=दंष्ट्राणां दशनानाम् अन्तरालेषु मध्यभागेषु लग्नाः संसक्ताः केसरिणां व्यापादितसिंहानां सटाः स्कन्धकेसराः येषु तान् तादृशान् इव, सृक्कभागान्=ओष्ठप्रान्तान्, उद्वहद्भिः धारयदिभिः, स्थूलवराटकमालिकापरिगतकण्ठैः=स्थूलाः पीवराः ये वराटकाः कपर्दकाः तेषां मालिकाभिः मालाभिः परिगताः परिवेष्टिताः कण्ठाः येषान्ते तैः तादृशैः (तथा) महावराहप्रहारजर्जरैः=महावराहाः वनशूकराः तेषां प्रहारेण दशनाघातेन जर्जराः शिथिलदेहाः तैः तादृशैः, अल्पकायैरपि= स्वल्पशरीरैरपि, महाशक्तित्वात्=प्रबल पराक्रमत्वात्, अनुपजातकेसरैः—अनुत्पन्नस्कन्धसटैः केउरिकिशोरकैः=सिंहशावकैरिव स्थितैः, मृगवधूवैधव्यदानदक्षैः—मृगाणां वध्वः हरिणानां स्त्रियः मृग्यः तासां वैधव्यस्य दीक्षाया दाने मृतभर्तृकत्वव्रतशिक्षणे दक्षैः चतुरैः मृगविनाशकुशलैरित्यर्थः, अनेकवर्णैः—अनेके बहवः वर्णाः रक्तपीतादयः येषु तैः तादृशैः श्वभिः सारमेयैः, अतिप्रमाणाभिः=प्रचण्डदेहाभिः, केसरिणाम्= सिंहानाम्, अभयदानयाचनार्थम्=अभयदानं जीवरक्षणम् तस्य याचना प्रार्थना तदर्थम्, आगताभिः=समागताभिः, सिंहीभिरिव=सिंहपत्नीभिरिव, कौलेयककुटुम्बिनीभिः= कुक्कुरभार्याभिः अनुगम्यमानम् अनुव्रज्यमानम्..............शबरसेनापति महमपश्यम्।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशं मातङ्गनामानं शबरसेनापतिमपश्यम् यः क्रोधसूचक भ्रुकुटीवक्रतारूपकारणाभावेऽपि स्वकीयजातिगतक्रूरतया

धृतपताकावत् त्रिवलिवत्या अत्युन्नतया भ्रुवोः वक्रतया भीषणे विशाले भालदेशे, तस्य प्रबलप्रेम्णा समाराधितया भगवत्या गौर्य्या "मातङ्गोऽयं मदीयकृपापात्रम्" इति कृत्वा स्वत्रिशूलेन चिह्नित इव, तथा तादृशैः श्वभिः सारमेयभार्याभिश्चानुगम्यमान आसीत्, ये श्वानः चिरसहवासपरिचिता अतएव तमनुव्रजन्त आसन्, एवञ्च ये धावने खेदवशात् मुखादत्यन्तं वहिर्निःसृताभिः जातिगतस्वभावतः श्वेतरक्ततया नीरसाभिरपि मृगशोणितं स्रवन्तीभिरिव रसनाभिः बोध्यमानखेदाः, विदीर्णाननतया स्फुटदृष्टिगतदशनकिरणाः (अतएव) दशनमध्यसंसक्तसिंहस्कन्धकेसरान् ओष्ठप्रान्तान् धारयन्तः, स्थूलकर्पदकमालाभिः परिवेष्टितकण्ठाः, वनशूकरदशनाघातेन शिथिलाङ्गाः अल्पकाया अपि प्रबलपराक्रमत्वात् असंजातकेसराः केसरिशावका इव विद्यमानाः, मृगीणां गतभर्तृकत्वव्रतशिक्षणे चतुराः बहुवर्णाश्चासन्, ताः सारमेयभार्याश्च, प्रचण्डदेहाः सिंहानां जीवनरक्षण प्रार्थनार्थम् समायाताः सिंहभार्या इवासन् ।

**टिप्पणी—अकारणेऽपि—**यद्यपि इस समय क्रोधसूचनार्थ भौहें चढ़ाने का कोई कारण न था तथापि क्रूरजाति के स्वभाव से ही उस समय भी उसकी पताका सदृश तीन रेखाओं वाली उन्नत भौहें चढ़ी होने से उसका ललाट बड़ा भयानक लग रहा था। **परिग्रह—**कृपापात्र, **त्रिशूलेनअङ्कितमिव—**मानो उसके माथे पर त्रिशूल की छाप लगा दी थी जिससे उसे भगवती का कृपापात्र जानकर देवता भी उसका आदर करें। लोक में भी जब कोई राजा या विशिष्ट पुरुष किसी को अपना कृपापात्र बनाता है तो उसे स्वनामाङ्कित कोई वस्तु दे देता है जिससे कि अन्य लोग भी उसका आदर करते हैं। अङ्कितमिव में क्रियोत्प्रेक्षालंकार है। **क्षरन्तीभिरिव** में भी क्रियोत्प्रेक्षा है, कुत्ते जब तेज दौड़ते हुए थक जाते हैं तब उनकी जीभ मुख से काफी बाहर निकल आती है और उससे झाग जैसा रस टपकने लगता है। **स्फुटेति—**मुख खुला होने से कुत्तों के दांत बाहर चमक रहे थे। **सृक्कभागान्—**दन्तवक्त्रं च तत्प्रान्तौ सृक्कणी कोश। अथवा प्रान्तावोष्ठस्य सृक्कणी इत्यमरः। **स्थूलेति** कुत्तों के गले में बड़ी-बड़ी कौड़ियों की मालायें बँधी थीं, **केसरिकिशोरकैरिव—**यहां उपमालंकार है। कुत्ते उन सिंहशावकों जैसे थे जिनके अभी अयाल नहीं निकले थे।

**कैश्चिद्गृहीतचमरबालगजदन्तभारैः कैश्चिदच्छिद्रपर्ण बद्धमधुपटैः, कैश्चिन्मृगपतिभिरिव गजकुम्भमुक्ताफलनिकरसनाथपाणिभिः, कैश्चिद्यातुधानैरिव गृहीतपिशितभारैः, कैश्चित् प्रमथैरिव केसरिकृत्तिधारिभिः कैश्चित् क्षपणकैरिव मयूरपिच्छवाहिभिः, कैश्चिच्छिशुभिरिव काकपक्षधरैः, कैश्चित् कृष्णचरितमिव दर्शयदिभः समुत्खातविधृतगजदन्तैः, कैश्चिज्जलदागमदिवसैरिव जलधरच्छायामलिनाम्बरैः, अनेकवृत्तान्तैः शबरवृन्दैः परिवृतम् ।**

**शब्दार्थ—कैश्चिद् गृहीत चमरवालगजदन्तभारैः**=कुछ चमर मृगों के बालों को (अर्थात् पूँछ के बालों को) तथा हाथी के दांतों के भार को लिए हुए, **कैश्चित**

**अच्छिद्रपर्णबद्धमधुपुटैः**=कुछ छिद्र रहित पत्तों से निर्मित (अच्छिद्रपर्णबद्ध) मधु के दोनों (मधुपुट=शहद रखने के लिए पत्तों के सम्पुट या दोने) वाले, **कैश्चिन्मृगपतिभिरिव**=कुछ सिंहों के समान, **गजकुम्भमुक्ताफलनिकरसनाथपाणिभिः**=गजों के कुम्भस्थल के मौत्तिकों के समूह से संयुक्त हाथों वाले, (अर्थात् हाथों में गजमोतियों को लिए हुए सनाथ=संयुक्त) **कैश्चिद्यातुधानैरिव**=कुछ यातुधान अर्थात् राक्षसों के समान, **गृहीतपिशितभारैः**=माँस (पिशित) के बोझ को लिए हुए, **कैश्चित् प्रमथैरिव**=कुछ शंकर के गणों के समान, **केसरिकृत्तिधारिभिः**=सिंह चर्म धारण किये हुए, **कैश्चित् क्षपणकैरिव मयूरपिच्छवाहिभिः**=कुछ दिगम्बर जैन साधुओं के समान मयूरपंखों को लिए हुए, **कैश्चिच्छिशुभिरि काकपक्षधरैः**=कुछ शिशुओं के समान कौवों के पंख धारण किये हुए, **कैश्चित् कृष्णचरितमिव दर्शयद्भिः समुत्खातविधृतगजदन्तैः**=कुछ (पहले) भलीभाँति उखाड़े गये पुनः ग्रहण किये गये (समुत्खात विधृत) गजदन्तों वाले (अर्थात् पहले उखाड़कर फिर ग्रहण किये गये गजदाँतों को लिए हुए) (अतएव) कृष्ण चरित को दिखाते हुए से, **कैश्चिज्जलदागमदिवसैरिव जलधरच्छायामलिनाम्बरैः**=कुछ मेघों की छाया से (जलधरच्छाया) आकाश (अम्बर) को मलिन करने वाले वर्षाकाल (जलदागम) के दिनों के समान, मेघों की छाया के समान (जलधरच्छाया) मलिन वस्त्र (मलिनाम्वर) वाले, **अनेकवृत्तान्तैः**=अनेक प्रकार के वृत्तान्तों अर्थात् आचरणों वाले, **शबरवृन्दैः**=भीलों के समूह से, **परिवृतम्**=घिरे हुए..........शवरसेनापति को देखा।

**अनुवाद**—कुछ चमरमृगों के पुच्छ वालों को और हाथियों के दाँतों के भार को लिए हुए, कुछ छिद्ररहित पत्तों से निर्मित, मधु के सम्पुटों (दोनों) वाले, कुछ सिंहों के समान, गजों के कुम्भस्थलों के मौत्तिकों के समूह से संयुक्त हाथों वाले, कुछ राक्षसों के समान माँस के बोझ को लिए हुए, कुछ शंकर के गणों के समान सिंह चर्म धारण किये हुए, कुछ दिगम्वर जैन साधुओं के समान मयूर पंखों को लिए हुए, कुछ शिशुओं के समान कौवों के पंख धारण किये हुए, कुछ पहले भलीभाँति उखाड़े गये पुनः ग्रहण किये गये गजदन्तों वाले अतएव कृष्णचरित को दिखाते हुए से, कुछ मेघों की छाया से आकाश को मलिन कर देने वाले वर्षाकाल के दिनों जैसे मेघों की छाया के समान मलिन वस्त्र वाले, अनेक प्रकार के आचरणों वाले भीलों के समूह से घिरे हुए...............शवरसेनापति को देखा।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि वह शबरसेनापति उन विविध प्रकार के आचरणों वाले भीलों के झुण्डों से घिरा हुआ था जिनमें से कि कुछ तो चमर मृगों के पुच्छबालों को और गजों के दाँतों को लिये हुए थे, कुछ बिना छेद के पत्तों से बने हुए दोनों में मधु लिए हुए थे, कुछ अपने हाथों में गजमोतियों को उसी प्रकार लिए हुए थे जैसे सिंह गजों को मारकर गजमुक्ताओं को अपने पञ्जों में भर लेते हैं। कुछ राक्षसों की तरह माँस का बोझ लादे हुए थे, कुछ शिवगणों के समान सिंह चर्म धारण किये हुए थे, कुछ दिगम्वर साधुओं के समान मोरपंख लिये हुए थे, कुछ अपने

बालों में कौवों के पंख लगाये हुए थे अतएव वे शिखण्डकधारी बालकों जैसे लग रहे थे, कुछ हाथियों के दाँतों को उखाड़कर अपने हाथों में लटकाये हुए चल रहे थे अतः वे ऐसे लग रहे थे कि मानो कुवलयापीड हाथी के दाँतों को उखाड़ लेने वाले कृष्ण के चरित का अनुकरण कर रहे हों, कुछ मैले कपड़े पहने हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो बादलों के छाया से मलिन वाले वर्षा के दिन हों।

संस्कृत व्याख्या—कैश्चिद् गृहीतचमरवालगजदन्तभारैः=गृहीताः स्वीकृता धृता वा चमराणां चमराख्यमृगाणाम् बालाः पुच्छकेशाः गजदन्तानाम् गजदशनानां च भाराः समूहाः यैस्ते तैः तादृशैः कैश्चित्, कैश्चिदच्छिद्रपर्णबद्धमधुपुटैः=अच्छिद्राणि छिद्ररहितानि यानि पर्णानि तरुदलानि तैः बद्धानि संयोजितानि मधुनः मधुस्थापनार्थमित्यर्थः पुटानि सम्पुटकानि यैस्तैः तादृशैः कैश्चित्, एवम्भूतमधुसम्पुटकादायिभिरित्यर्थः, कैश्चिन्मृगपतिभिरिव गजकुम्भमुक्ताफलनिकरसनाथपाणिभिः=मृगपतिभिः सिंहैरिव गजकुम्भानां हस्तिशिरःपिण्डानां यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तेषां निकरेण समूहेन सनाथाः सहिताः पाणयः हस्ता येषान्ते तैः तादृशैः कैश्चित्, कैश्चिद्यातुधानैरिव गृहीतपिशितभारैः=यातुधानैः राक्षसैरिव गृहीतः धृतः पिशितस्य मांसस्य भारः समूहः यैस्ते तैः तादृशैः कैश्चित्, कैश्चित् प्रमथैरिव केसरिकृत्तिधारिभिः=प्रमथैः शिवपार्षदैः इव केसरिणां सिंहानाम् कृत्तयः चर्माणि हस्ते परिधाने च धर्तुं शीलं येषान्ते तैः सिंह चर्मधरणशीलैः कैश्चित्, कैश्चित् क्षपणकैः इव=दिगम्बरैः साधुभिरिव, मयूरपिच्छवाहिभिः=मयूराणाम् पिच्छानि छदानि वोढुं शीलं येषान्ते तैः मयूरच्छदवहनशीलैः कैश्चित्, कैश्चिच्छिशुभिरिव काकपक्षधरैः=शिशुभिः अल्पवयस्कबालकैः इव काकानां सकृत्प्रजानाम् पक्षाः छदाः तद्धारिभिः पक्षे काकपक्षः शिखण्डकः तद्धारिभिः कैश्चित्, कैश्चित् समुत्खातविधृतगजदन्तैः कृष्णचरितमिव दर्शयद्भिः=समुत्खाताः पूर्वं सम्यगुत्पाटिताः पश्चात् विधृता गृहीता गजदन्ताः यैस्तैः गजदन्तानुत्पाट्य धारयद्भिरित्यर्थः (अतएव) कृष्णचरितम् वासुदेवाचरणमिव दर्शयद्भिः प्रकाशयदिभरिव कैश्चित्, कैश्चिज्जलदागमदिवसैरिव जलधरच्छायामलिनाम्बरैः=जलधराणां मेघानाम् छायया-मलिनम् अम्बरम् गगनम् येषु तैः तादृशैः, जलदानाम् मेघानां आगमः समुत्पत्तिः येषु एवम्भूतैः दिवसैर्दिनैः इव, जलधरच्छायामलिनाम्बरैः—जलधराणां या छाया तद्वद् मलिनानि मलीमसानि अम्बराणि वसनानि येषान्तैः तथोक्तैः, अनेकवृत्तान्तैः अनेके बहुविधाः वृत्तान्ताः व्यवहाराः आचरणानि वा येषान्तैः तादृशैः, शबरवृन्दैः भिल्लगणैः, परिवृतम् परिवेष्टितम्..............शबरसेनापतिमपश्यम्।

संस्कृत सरलार्थ—वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशं शबरसेनापतिमपश्यम् यः बहुविधैर्भिल्लगणैः परिवेष्टितः आसीत्, एषु भिल्लेषु केचन गृहीतचमरमृगपुच्छकेशहस्तिदशनसमूहाः, केचन रन्ध्ररहिततरुदलैः संयोजितमधुसम्पुटकाः, केचन केसरिण इव हस्तिशिरः पिण्डानां मौक्तिकसमूहसंयुक्तकराः, केचन राक्षसा इव धृतमांसभाराः, केचन शिवपार्षदा इव सिंहचर्मधारिणः केचन दिगम्बरसाधव इव मयूरच्छदवहनशीलाः, केचन शिशव इव काकपक्षधराः, केचन समुत्पाटितगृहीतहस्तिदन्ताः अतएव वासुदेव

व्यवहारमिव प्रकाशयन्तः, केचन मेघच्छायया मलिनगगना जलदोत्पत्तिदिवसा इव मेघच्छायामलीमसवसनाश्चासन् ।

**टिप्पणी—चमरवालेति**—चमरी मृगों के पूँछ के बाल, **गजदन्तभारैः**—मारे गये हाथियों के दाँतों को उखाड़कर उनके बोझ को लिए हुए । **मधुपुटैः**—शहद से भरे हुए पत्तों के दोनों को लिये हुए । **गजकुम्भेति**--मारे गये गजों के मस्तकों की मौक्तिकों को उसी प्रकार अपने हाथों में लिए हुए जैसे सिंह गजों को मारकर उनके मुक्ताओं को अपने पञ्जों में भर लेते हैं । यहाँ पूर्णोपमा और अभङ्गश्लेष अलंकारों का एकाश्रयानुप्रवेश रूप संकर है । **प्रमथैः** "प्रमथाः स्युः पारिषदाः" इत्यमरः । **केसरिकृत्तिधारिभिः** शिवपार्षद व्याघ्र चर्मधारण करते हैं सिंह चर्म नहीं अतः यहाँ केसरि के स्थान पर व्याघ्र होना चाहिए अन्यथा ख्यातिविरुद्धत्व दोष होगा, शबर सिंह चर्म हाथों में लिए हुए थे जबकि शिवगण व्याघ्रचर्म पहने हुए होते हैं । यहाँ पर भी उक्तालंकार ही है । **क्षपणकैः**—दिगम्बर साधु मयूरपंखों का चंवर लिए रहते हैं जिससे कि वे मक्खी आदि दंशक जीवों को भगा सकें, शबर मयूर पंखों को हाथों में लिए हुए थे । **शिशुभिः**—बालक शिखण्डक (घुँघराले बाल) धारण करते हैं, शबर कौवों के पंख अपने बालों में लगाए हुए थे "काकपक्षस्तु शिखण्डकः" इत्यमरः "काके तु करिटारिष्ट वलिपुष्टसकृत्प्रजाः" इत्यमरः । अत्राप्युक्तालंकारः । **समुत्खातेति**—गजदाँतों को उखाड़कर लिए हुए, अतएव वे मानो कृष्ण का चरित दिखला रहे थे, कृष्ण ने भी कुवलयापीड हाथी को जीतकर उसके दाँत उखाड़कर उसे मार डाला था । **जलदागमेति**—मेघों की छाया से आकाश को मलिन करने वाले वर्षाकालीन दिनों के समान मेघों के छाया के समान मैले वस्त्रों वाले । यहाँ उपमालंकार है । ●

**अरण्यमिव सखड्गधेनुकम्, अभिनवजलधरमिव मयूरपिच्छचित्रचापधारिणम्, बकराक्षसमिव गृहीतैकचक्रम्, अरुणानुजमिवोद्धृतानेकमहानागदशनम्, भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम्, निदाघदिवसमिव सततविभ्रान्तमृगतृष्णम्, विद्याधरमिव मानसवेगम्, पराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम्, घटोत्कचमिव भीमरूपधारिणम्, अचलराजकन्यकाकेशपाशमिव नीलकण्ठचन्द्रकाभरणम्, हिरण्याक्षदानवमिव महावराहदंष्ट्राविभिन्नवक्षः स्थलम्, अतिरागिणमिव कृतबहुबन्दीपरिग्रहम्, पिशिताशनमिव रक्तलुब्धकम्, गीतकलाविलासमिव निषादानुगतम्, अम्बिकात्रिशूलमिव महिषरुधिरार्द्रकायम्……………।**

**शब्दार्थ—सखड्गधेनुकम्**—खड्गधेनुका=छुरी या कटार, २—खड्ग=गैंडा नामक वन्यपशु, **धेनुकां**=हथिनी । गैंड़े और हथिनियों से युक्त जंगल (अरण्य) के समान कटार के युक्त, **अभिनवजलधरमिव मयूरपिच्छचित्रचापधारिणाम्**=मोर पंखों जैसे रंग-बिरंगे (चित्र) इन्द्रधनुष् (चाप) को धारण करने वाले नवीन मेघ के समान मयूरपंखों से चित्रित धनुष् को धारण करने वाले, **बकराक्षसमिव गृहीतैकचक्रम्**= एकचक्रा नामक नगरी को स्वाधीन कर चुकने वाले बकासुर की भाँति एक

(अद्वितीय) चक्र नामक अस्त्र को धारण करने वाले, **अरुणानुजमिवोद्धृतानेकनागदशनम्**=अनेक महासर्पों (महानाग) के दाँतों (दशनम्) को उखाड़ने वाले (उद्धृत) अरुण (सूर्यसारथि) के अनुज अर्थात् गरुड़ के समान अनेक विशाल हाथियों (महानाग) के दाँतों को उखाड़ने वाले, **भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम्**=शिखण्डीनामक पाण्डवपक्षीय योद्धा के शत्रु, भीष्मपितामह के समान शिखण्डियों=मयूरों का शत्रु अर्थात् चिरकाल से मयूरों को मारने वाले, **निदाघमिव सततविभूंतमृगतृष्णम्**=निरन्तर (सतत) प्रकरीभूत (वन से उत्पन्न हुई) मृगतृष्णा (मृगमरीचिका=सूर्य की रश्मियों में सलिल-भ्रान्ति) वाले ग्रीष्म (निदाघ) कालीन दिन के समान, निरन्तर उत्पन्न मृगों के (वध के लिए) तृष्णा (इच्छा या लालच) वाले, **विद्याधरमिव मानसवेगम्**=मानसरोवर की ओर (मानस) वेगपूर्वक जाने वाले (मानसरोवर में मज्जनादि के लिए तीव्र गति से जाने वाले) विद्याधर (देवयोनि विशेष) के समान, मन के समान (मानस) वेग (तीव्रगति) वाले, **पराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम्**=योजनगन्धा (सत्यवती) नामक धीवरकन्या का अनुसरण करने वाले पराशर मुनि (व्यासदेव के पिता) के समान, योजनगन्ध (कस्तूरी मृग) का पीछा करने वाले, **अचलराजकन्यकाकेशपाशमिव नीलकण्ठचन्द्रकाभरणम्**=शिव के (नीलकण्ठ) (ललाटस्थ) चन्द्ररूपी (चन्द्रक) आभूषण वाले पार्वती अचलराज=हिमालय, कन्यका पुत्री (पार्वती) के केशपाश (जूड़ा) के समान, मयूरों के (नीलकण्ठ) के चन्द्राकार पंखों (पूँछ के पंखों) के आभूषण वाले, **घटोत्कचमिव भीमरूपधारिणम्**=भीमसेन के समान आकृति को (भीमरूप) धारण करने वाले घटोत्कच के (भीमसेन से उत्पन्न हिडम्बा का पुत्र घटोत्कच) समान, भयंकर (भीम) रूप धारण करने वाले, **हिरण्याक्षदानवमिव महावराहदंष्ट्राविभिन्नवक्षःस्थलम्**=महावराह (महावराहावतारधारी विष्णु) के दाँतों (दंष्ट्रा) से विदीर्ण (विभिन्न) वक्षःस्थल वाले हिरण्य नामक (हिरण्यकशिपु का भाई) दैत्य के समान, बड़े-बड़े शूकरों (महावराह) के दाँतों से क्षतविक्षत घायल (विभिन्न) वक्षःस्थल वाले, **अतिरागिणमिव कृतबहुबन्दीपरिग्रहम्**=अनेक अपहृत वधुओं को (बहुबन्दी) रखने वाले (परिग्रह—कृत, स्त्रीरूप में स्वीकार कर स्वाधीन रखने वाले अतिविषयासक्त (अतिरागी) धनवान् मनुष्य के समान, बहुत से मंगलपाठक बन्दीजनों को एकत्रित (परिग्रह) करने वाले, **पिशिताशनमिव रक्तलुब्धकम्**=रक्त के लिए लालायित (रक्तलुब्धक) मांसभक्षक (पिशित अशन) के समान अनुरक्त (रक्त) बहेलियों (लुब्धक व्याध बहेलिया) वाले, **गीतकलाविलासमिव निषादानुगतम्**=निषाद नामक स्वरविशेष (निषादर्षभगान्धार आदि स्वर) से सहित (अनुगत) गानविद्या (गीतकला) के विन्यास (विलास=व्यापार) के समान निषादों (निषाद नामक जाति विशेष के लोगों से) अनुगत होने वाले (अर्थात् निषादों से अनुगम्यमान) **अम्बिकात्रिशूलमिव महिषरुधिरार्द्रकायम्**=महिषासुर (महिष) के रक्त से गीले (आर्द्र) शरीर वाले चण्डिका (अम्बिका) के त्रिशूल के समान वन्य भैंसों (महिष) के रक्त से भीगे शरीर वाले..............(सेनापति को देखा)।

अनुवाद—(वैशम्पायन कहता है कि मैंने) गैंडा नामक जंगली पशुओं एवं हथिनियों से युक्त जंगल के समान कटार से युक्त, मोर पंखों जैसे रंग-विरंगे इन्द्रधनुष् को धारण करने वाले नवीन मेघ के समान मयूर पंखों से चित्रीकृत धनुष् को धारण करने वाले, एकचक्रा नामक नगरी को स्वाधीन कर लेने वाले वकासुर के समान, एक अद्वितीय चक्र नामक अस्त्र को धारण करने वाले, अनेक महासर्पों के दाँतों को उखाड़ने, वाले गरुड़ के समान अनेक विशाल गजों के दाँतों को उखाड़ लेने वाले, शिखण्डी नामक पाण्डव पक्षीय द्रुपदपुत्र के शत्रु भीष्मपितामह के समान मयूरों के शत्रु अर्थात् अनेक मयूरों का वध करने वाले, निरन्तर (वन से) उत्पन्न हुई मृग-मरीचिका वाले ग्रीष्मकालीन दिन के समान, निरन्तर उत्पन्न मृगों के (वध की) लालसा वाले, मानसरोवर को वेगपूर्वक जाने वाले विद्याधर के समान, मन की भाँति तीव्र गति से जाने वाले, सत्यवती (योजनगन्धा) नामक धीवरकन्या का अनुसरण करने वाले पराशर मुनि के समान, कस्तूरी मृग (योजनगन्ध) का पीछा करने वाले, भीमसेन के समान आकृति को धारण करने वाले घटोत्कच के समान भयानक रूप धारण करने वाले, शिव के चन्द्र रूपी आभूषण वाले पार्वती के केशपाश के समान मयूरों के चन्द्राकार पंखों के आभूषण वाले, महावराहावतारधारी विष्णु के दाँतों से विदीर्ण वक्षःस्थल वाले हिरण्याक्षनामक दैत्य के समान बड़े-बड़े शूकरों के दाँतों से क्षत-विक्षत वक्षःस्थल वाले, अनेक अपहृत वधुओं को पत्नी रूप में स्वीकार कर स्वाधीन रखने वाले अतिविषयासक्त धनवान् मनुष्य के समान, बहुत से मंगल पाठक बन्दीजनों को एकत्रित करने वाले, रक्त के लिए लालायित मांसभक्षक के समान, अनुरक्त बहेलियों वाले, निषाद नामक स्वरविशेष के साथ गानविद्या के विन्यास के समान, निषादों से अनुगत होने वाले, महिषासुर के रक्त से गीले शरीर वाले चण्डिका के त्रिशूल के समान, वन्यमहिषों के रक्त से गीले शरीर वाले..... ..... शबरसेनापति को देखा।

भावार्थ—अपनी कमर में कटार बाँधे हुए सेनापति गैंडा और हथनियों से भरे जंगल के समान लग रहा था। उसका धनुष् मोर पंखों से सजा हुआ था अतएव वह इन्द्रधनुष से अलंकृत नवीन मेघ-सा लगता था। वह एक अद्वितीय चक्र नामक अस्त्र लिये था अतः वह एकचक्रा नगरी पर आधिपत्य करने वाले वकासुर जैसा था, उसने बड़े-बड़े हाथियों के दाँत उखाड़ लिए थे अतएव वह बड़े-बड़े नागों के दाँत उखाड़ने वाले गरुड़ जैसा था। मोरों का शत्रु वह शिखण्डी के शत्रु भीष्म जैसा था, उसमें मृगों के वध की इच्छा निरन्तर जाग्रत रहती थी अतएव वह मानो मृगमरीचिका वाला ग्रीष्म दिन था, मन की गति के समान तीव्र गति वाला वह तीव्र गति से मानसरोवर को जाने वाले विद्याधर के समान था। कस्तूरी मृग का पीछा करने वाला वह योजनगन्धा का अनुसरण करने वाले पराशर मुनि के समान था। भयानक रूपधारी वह भीमसेन की आकृतिधारी घटोत्कच के समान था। मयूर पंखों के

चक्राकार आभूषण धारण करने वाला वह शिव के चन्द्ररूपी आभूषण धारण करने वाले पार्वती के केशपाश के समान था। बड़े-बड़े जंगली शूकरों के दाँतों से उसका वक्षःस्थल घायल था अतएव वह मानो महावराहावतार विष्णु के दाँतों से विदीर्ण वक्षःस्थल वाला हिरण्याक्ष था। उसने बहुत से मंगलपाठक वन्दीजनों को अपने पास एकत्रित कर रखा था अतः वह उस धनवान एवं विषयासक्त मनुष्य के समान था जिसने अनेक अपहृत स्त्रियों को बन्दी बनाकर पत्नी रूप में अपने पास रख लिया हो। अनुरक्त बहेलियों वाला वह रक्त के लिए लालायित मांसभक्षक जैसा था। निषादों से अनुगत वह निषाद नामक स्वर से मिश्रित गानविद्या के समान था। वन्यमहिषों के रक्त से रञ्जित वह महिषासुर के रक्त से गीले चण्डिका के त्रिशूल के समान था।

**संस्कृत व्याख्या**—खड्गः कौक्षेयकः धेनुका कृपाणिका ताभ्यां सह वर्तमानम् अथवा खड्गधेनुका छुरिका तया सहेति सखड्गधेनुकम् पक्षे खड्गैः गण्डकाख्यवन्यपशुभिः धेनुकाभिः वन्यकरिणीभिश्च सहेति सखड्गधेनुकम् अरण्यम् वनमिव। अभिनवजलधरमिव=अभिनवः नूतनः यः जलधरः मेघस्तमिव, मयूरपिच्छचित्रचापधारिणम्=मयूराणां पिच्छानि छदाः तद्वत् चित्रं विविधवर्णम् चापं धनुः इन्द्रधनुश्च धारयितुं शीलं यस्य तम् तादृशम्, वकराक्षसमिव=वकः तन्नामकः राक्षसः तमिव, गृहीतैक चक्रम्=गृहीतं धृतम् एकम् अद्वितीयम् चक्रम् चक्राख्यास्त्रविशेषः येन स तम्, अन्यपक्षे— गृहीता स्ववशीकृता एकचक्रा एतत्संज्ञका नगरी येन तम् तादृशम्, अरुणानुजमिव=अरुणानुजः गरुड़ः तमिव, उद्धृतानेक महानागदशनम्=उद्धृता उत्पाटिता अनेकेषां महानागानाम् बहूनाम् महागजानाम् दशनाः दन्ता येन तम्, पक्षे— उद्धृता मुखान्निष्कासिता अनेकेषां महानागानाम् विशालसर्पाणां दशनाः दन्ता येन तम् तादृशम्, भीष्ममिव=गाङ्गेयं भीष्मपितामहमिव, शिखण्डिशत्रुम्=शिखण्डिनां मयूराणाम् शत्रुं व्यापादयितारम्, पक्षे—शिखण्डिनः एतन्नामकस्य पाण्डवपक्षीयस्य द्रुपदपुत्रस्य शत्रुम्, निदाघदिवसमिव=निदाघः ग्रीष्मकालस्तस्य दिवसं दिनमिव, सततातिविर्भूतमृगतृष्णम्=सततं निरन्तरम् आविर्भूता प्रकटीभूता मृगेषु तृष्णा हननेच्छा यस्य स तम्, पक्षे—सततमाविर्भूता मृगतृष्णा मृगमरीचिका सूर्यकिरणेषु जलभ्रान्तिः यस्मिन् स तम् तादृशम्, विद्याधरमिव=विद्याधरः देवयोनिविशेषः तमिव, मानसवेगम्=मानेन अहंकारेण सवेगः तीव्रगतिः तम् पक्षे—मानसे मानसरोवरे वेगः वेगेन गतिः यस्य स तम्, पराशरमिव=पराशरः एतत्संज्ञकः व्यासजनकः मुनिस्तमिव, योजनगन्धानुसारिणम्=योजनं गन्धः सौरभः अस्तिअस्येति योजनगन्धः कस्तूरीमृगः तमनुसरतीत्येवंशीलः तम् पक्षे योजनगन्धाम् एतदाख्यां धीवरकन्यामनुसरतीत्येवं शीलम्, घटोत्कचमिव=घटोत्कचः हिडिम्बायां भीमसेनाज्जातोऽसुरः तमिव, भीमरूपधारिणम्=भीमं भयानकं यद्रूपं तद्धारिणम्, पक्षे—भीमं भीमसेनतुल्यं रूपम् आकृतिं धारयितुं शीलं यस्य तम्, अचलराजकन्यकाकेशपाशमिव=अचलराजः पर्वताधिपति हिमालयः तस्य कन्यका पार्वती तस्याः केशपाशः केशकलापः तमिव, नीलकण्ठचन्द्रका-

भरणम्=नीलकण्ठानां मयूराणां चन्द्रकाः मेचका बर्हिचन्द्रकाः एव आभरणानि आभूषणानि यस्य तम्, पक्षे—नीलकण्ठस्य भगवतः शङ्करस्य चन्द्र एव चन्द्रकः ललाटस्थश्चन्द्रः स एव आभरणं भूषणं यस्य तम्। हिरण्याक्षदानवमिव—हिरण्याक्षः तत्संज्ञकः हिरण्यकशिपुभ्राता दानवः दैत्यः तमिव, महावराहदंष्ट्राविभिन्नवक्षःस्थलम्= महावराहैः विशालैः वनशूकरैः दंष्ट्राभिः दशनैः विभिन्नं विक्षतं वक्षःस्थलं भुजान्तरं यस्य तम्, पक्षे—महावराहेण महावराहरूपधारिणा भगवता विष्णुना दंष्ट्रया दन्तेन विभिन्नं विदारितं वक्षःस्थलं यस्य तम्, अतिरागिणमिव—अतिविषयासक्तं घनवन्तं जनमिव, कृतबहुवन्दीपरिग्रहम्=कृतः विहितः बहूनाम् अनेकेषाम् वन्दिनाम् मङ्गलपाठकानां परिग्रहः एकत्रीकरणं येन तम्, पक्षे—कृतः विहितः अनेकवन्दीनाम् बलादपहृतानाम् अनेकवधूनाम् परिग्रहः पत्नीत्वेन स्वीकारः येन तम्, पिशिताशनमिव= पिशिताशनः मांसभक्षकः तमिव, रक्तलुब्धकम्=रक्ताः अनुरक्ता लुब्धका व्याधाः यस्मिन् तम्, पक्षे—रक्ते रुधिरे लुब्धकः सामिलाषस्तम्, गीतकलाविलासमिव= गीतकला गानविद्या तस्याः विलासः विन्यासः व्यापारो वा तमिव, निषादानुगतम्= निषादैः एतत्संज्ञकैः वनवासिभिः अनुगतम् अनुसृतम्, पक्षे—निषादः निषादर्षभगान्धारेत्याख्यातेषु सप्तस्वरेषु एकः स्वरः तेन अनुगतं सहितम् मिश्रितं वा, अम्बिकात्रिशूलमिव=अम्बिका चण्डिका तस्याः त्रिशूलम् अस्त्रविशेषः तमिव, महिषरुधिरार्द्रकायम्=महिषाणां वनसैरिभाणां रुधिरेण आर्द्रः क्लिन्नः कायः शरीरं यस्य तम्, पक्षे महिषस्य महिषासुरस्य रुधिरेण रक्तेन आर्द्रः कायः शरीरं यस्य तम् तादृशम्। शबरसेनापतिमहमपश्यम्।

संस्कृत सरलार्थ—वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशं शबरसेनापतिमपश्यम्, कौक्षेयककृपाणिकाधारी यः गण्डकाख्यपशुकरिणीयुक्तम् वनमिवासीत्, मयूरच्छदचित्रितधनुर्धरः यः मयूरपिच्छवच्चित्रेन्द्रधनुर्धरणशीलः नूतनमेघ इवासीत्, धृताद्वितीयचक्राख्यास्त्रविशेषः यः, स्वाधीनीकृतैक चक्राख्यनगरीविशेषः वकराक्षस इवासीत्, उत्पाटितानेकविशालगजदन्तः यः मुखान्निःसारितानेकविशालसर्पदन्तः गरुडः इवासीत्, मयूरहननशीलः यः शिखण्डिनः एतन्नामकस्य द्रुपदपुत्रस्य शत्रुः भीष्मपितामह इवासीत्, निरन्तरं प्रकटीभूतमृगहननाभिलाषः यः सततमाविर्भूतसूर्यरश्मिसलिलभ्रमः ग्रीष्मदिवस इवासीत्, अहङ्कारेण तीव्रगतिमान् यः मानसरोवरे मज्जनादिकार्याय तीव्रगतिः विद्याधर इवासीत्, कस्तूरीमृगानुसारी यः योजनगन्धाख्यधीवरकन्यानुसारी पराशरमुनिरिवासीत्, भयावहाकृतिधारी यः भीमसेनतुल्यरूपधारी घटोत्कच इवासीत्, मयूरचन्द्रकाभरणः यः शिवभालस्थचन्द्रभूषणः पार्वतीकेशसमूह इवासीत्, विशालवनशूकरदशनविक्षतोरःस्थलः यः महावराहरूपधारिविष्णुदशनविदीर्ण वक्षःस्थलः हिरण्याक्षदानव इवासीत्, कृतानेकमङ्गलपाठकजनसंग्रहः यः कृतानेकापहृतवधूपरिग्रहः अतिविषयासक्त जन इवासीत्, अनुरक्तव्याधः यः शोणिताभिलाषः मांसभक्षक इवासीत्, निषादाख्यवनवासिभिरनुगतः यः निषादाख्यस्वरमिश्रितः गानविद्याविन्यास इवासीत्,

वनसैरिभरुधिरक्लिन्नशरीरः यः महिषासुरशोणितलिप्तकायः चण्डिकात्रिशूलाख्यास्त्र-विशेष इवासीत् ।

टिप्पणी—सखड्गधेनुकम्=१—कटार या छुरी के साथ, २—गैंडा नामक पशु और हथिनियों से युक्त, "क्षुरिका चासिधेनुका" इत्यमरः अथवा खड्ग=असि, धेनुका=कृपाणिका, धेनुका च करेण्वाञ्च इत्यमरः । अत्रोपमालंकारः । **अभिनवे-त्यत्राप्युपमा, गृहीतैकचक्रम्**=१— चक्र नामक अद्वितीय अस्त्र, २—एकचक्रा नामक नगरी । महाभारत के अनुसार एकचक्रा नामक नगरी में वकासुर नाम का एक नरभक्षी असुर रहता था उसने नरसंहार द्वारा वहाँ बड़ा उपद्रव मचा रखा था, तब वहाँ के राजा ने प्रतिदिन एक मनुष्य को खाने के लिए उसके पास बारी-बारी से एक मनुष्य को भेजने की शर्त करके सर्वनाश से लोगों की रक्षा की, उसी समय लाक्षाभवन से भागे हुए पाण्डव इस नगरी में एक ब्राह्मण के यहाँ आकर रहने लगे, जब इस ब्राह्मण की भी वकासुर के पास जाने की बारी आई तब वह पारिवारिक स्थिति को देखकर बड़ा दुःखी हुआ, कुन्ती ने यह देखकर उसे सान्त्वना देकर अपने पुत्र भीमसेन को उसके पास भेज दिया, और भीमसेन ने उसे मार डाला था । **अरुणानुजेति** अरुणसूर्यसारथि के लघुभ्राता अर्थात् गरुड़, नाग=गज, तथा नाग सर्प । **शिखण्डिशत्रुमिति** १—शिखण्डी नामक पाण्डवपक्षीय द्रुपदपुत्र, मयूर, २—महाभारत के अनुसार काशिराजपुत्री अम्बालिका भीष्म पर अनुरक्त थी पर जब भीष्म ने अस्वीकार कर दिया तब उनका प्राणान्त करने के ही उद्देश्य से उसने अपना प्राण त्यागकर द्रुपदराज की पुत्री के रूप में जन्म लिया और गन्धर्वराज से पुंस्त्व प्राप्त कर और शिखण्डी नाम से महाभारत युद्ध में भाग लेकर भीष्म की मृत्यु का कारण बनी । मृगतृष्णा १—मृगमरीचिका २—मृगों के वध की इच्छा, **मानसवेगम्** १—अहंकार से वेगपूर्वक जाने वाला २—मानसरोवर को वेगपूर्वक जाने वाला । **योजन-गन्धानुसारिणम्**=१—योजनगन्धा धीवरकन्या थी, जिसके शरीर की गन्ध चार कोश तक फैलती थी, पराशर मुनि ने उस पर मुग्ध होकर उससे व्यासदेव को जन्म दिया, यही सत्यवती नाम से कुरुवंश की माता थी, योजनं परमात्मनि, चतुष्क्रोश्यां च योगे च—कोश, २ कस्तूरीमृग "योजनगन्धा शीता कस्तूरी व्यासमाता च", **भीमरूपम्**—१—भीमसेन का रूप धारण करने वाले २—भयानक रूपधारी । घटोत्कच हिडम्बा से उत्पन्न भीमसेन का पुत्र था अतएव वह "आत्मैव वीर्यरूपेण स्त्रीयूनो प्रविशतीति" सिद्धान्त के अनुसार वह भीमसेन जैसी आकृति का था । **अचलेति** १—नीलकण्ठ=मयूर, २—शिव, मयूरों के चन्द्रक अर्थात् मेचक रूप आभूषण वाले, २—शिव के ललाटस्थ चन्द्ररूपी आभूषण वाले, मेचकः श्यामले कृष्णे तिमिरे बर्हिचन्द्रके" कोश । भगवान शिव के अर्धनारीश्वर रूप के कारण एक के ललाट पर स्थित चन्द्र दोनों का ही भूषण बन गया था । **महावराहेति** १—विष्णु २—विशालशूकर । हिरण्याक्ष ने पृथिवी को जल में डुबो दिया था तब विष्णु ने महावराह रूप धारण कर पृथिवी का समुद्र से उद्धार किया था इसके बाद वे पर्वत कन्दरा में बैठ गये थे जब हिरण्याक्ष

को पता लगा तब उसने उन पर गदा से प्रहार किया फलतः उन्होंने अपने दाँतों से उसका उरःस्थल विदीर्ण कर उसे मार डाला था। अतिरागिणम् अतिविषयासक्त मनुष्य, वन्दी=१—वन्दीजन चारण, २—बलात् अपहृत कर वन्दी बनाई गई स्त्रियाँ, परिग्रह=स्वीकार करना—संग्रह करना। रक्त=अनुरक्त—रुधिर। लुब्धक – लोभी–बहेलिया। निषाद—गीतस्वर निषाद—भीलजाति। निषादः स्वर-भेदेऽपि चाण्डाले धीवरान्तरे" कोश।

**अभिनवयौवनमपि क्षपितबहुवयसम्, कृतसारमेयसंग्रहमपि फलमूलाशनम्, कृष्णमप्यसुदर्शनम्, स्वच्छन्दप्रचारमपि दुर्गैकशरणम्, क्षितिभृत्पादानुवर्तिनमपि राजसेवानभिज्ञम्, अपत्यमिव विन्ध्याचलस्य, अंशावतारमिव कृतान्तस्य, सहोदरमिव पापस्य, सारथिमिव कलिकालस्य, भीषणमपि महासत्त्वतया गम्भीरमिवोपलक्ष्यमाणम्, अनभिभवनीयाकृतिम्, मातङ्गनामानं शबरसेनापतिमपश्यम्। अभिधानन्तु तस्य पश्चादहमश्रौषम्।**

**शब्दार्थ**—अभिनवयौवनमपि=नवीन या मनोहर तारुण्य वाला होकर भी, **क्षपितबहुवयसम्**=बहुत ही शैशवतारुण्यादि 'वयांसि' अर्थात् अवस्थाओं को व्यतीत कर चुकने वाला (इस कथन के विरोध का परिहार 'वयांसि' का अर्थ पक्षी और 'क्षपित' का अर्थ "व्यापादित" करके हो जायेगा) **कृतसारमेयसंग्रहमपि**=सार अर्थात् धन, मेय अर्थात् नाप तौल करने योग्य धान्यादि का संग्रह करने वाला होकर भी, **फलमूलाशनम्**=फल मूल खाने वाला (इस कथन के विरोध का परिहार "सारमेय" का अर्थ 'कुत्ता' करने से हो जाता है) **कृष्णम् अपिअसुदर्शनम्**=कृष्ण भगवान् होकर भी सुदर्शन चक्र से रहित (इस कथन के विरोध का परिहार "कृष्ण" का अर्थ "काला" करके हो जायेगा अर्थात् वह काला होने से कुरूप असुदर्शन भयानक था। **स्वच्छन्दप्रचारमपि**=स्वच्छन्दविचरण करने वाला होकर भी, **दुर्गैकशरणम्**=दुर्गम नगर ही जिसका एकमात्र गृह था (इस विरोध का परिहार "दुर्गा देवी ही जिसकी एकमात्र रक्षिका थी" इस अर्थ से हो जायेगा) **क्षितिभृत्पादानुवर्तिनमपि**=राजा के चरणों की अनुवर्तन अर्थात् सेवा करने वाला होकर भी, **राजसेवानभिज्ञम्**=राजा की परिचर्या को न जानने वाला, (इस विरोध का परिहार "क्षितिभृत्=पर्वत, पाद=तलहटी के पास रहते हुए भी राजसेवा को न जानने वाला" अर्थ करके हो जायेगा।) **अपत्यमिव विन्ध्याचलस्य**=(अति कठोर शरीर वाला होने के कारण) मानो विन्ध्याचल की सन्तान हो, **अंशावतारमिव कृतान्तस्य**=(जीवों का संहार करने के कारण) मानो वह यमराज का एकदेशावतार हो, **सहोदरमिव पापस्य**=जीवों को घोरयातना देने के कारण) मानो वह पाप का सहोदर भाई हो। **सारथिमिव कलिकालस्य**=(निरन्तर अधर्म बढ़ाने वाला होने के कारण) मानो वह कलियुग का सारथि हो। **भीषणमपि महासत्त्वतया गम्भीरमिवोपलक्ष्यमाणम्**=भयानक होते हुए भी अतिशक्तिशाली होने के कारण गम्भीर सा दिखाई देने वाले, **अनभिभवनीयाकृतिम्**=

(अतिकर्कश होने के कारण) दुर्धर्ष आकृति वाले, **मातङ्गनामानम्**=मातङ्गनाम वाले, **शबरसेनापतिम्**=भीलों के सेनापति को, **अपश्यम्**=देखा, **अभिधानन्तु तस्य पश्चादहमश्रौषम्**=उसके नाम को तो मैंने बाद में सुना।

**अनुवाद**—नवीन अवस्था वाला अर्थात् तरुण होकर भी वह बहुत से पक्षियों को मार चुकने वाला था। कुत्तों का संग्रह करने वाला होकर भी वह फल मूल खाने वाला था, काला होकर भी वह कुरूप अर्थात् अच्छा न दिखाई पड़ने वाला था स्वच्छन्द विचरण करने वाले होकर भी उसकी दुर्गा देवी ही एक मात्र रक्षिका थी, पर्वत की तलहटी के समीप रहने वाला वह राजसेवा से अपरिचित था, विन्ध्याचल की सन्तान के समान, यमराज के एकदेशावतार के समान, पाप का सहोदर जैसा, कलियुग के सारथि जैसा, भयानक भी अतिशक्तिशाली होने से गम्भीर जैसे दिखलाई पड़ने वाले, अतिरस्करणीय आकृति वाले मातङ्गनामक शबरसेनापति को देखा उसका नाम तो मैंने बाद में सुना।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि मैंने उस शबरसेनापति को देखा जो कि सुन्दर युवक होकर भी बहुत अधिक वयस् (अवस्था—पक्षी) नष्ट कर चुका था, सारमेयों (धनधान्य–कुत्तों) का संग्रह करने वाला होकर भी फलमूल खाने वाला था, काला और कुरूप था स्वच्छन्दगामी भी एकमात्र (दुर्गमस्थान—दुर्गा देवी) के स्थान में रहने वाला था, वह पर्वत की तलहटी में रहता था और राजसेवा को नहीं जानता था, वह विन्ध्याचल की सन्तान जैसा, यमराज का अंशावतार जैसा, पाप का सहोदर जैसा, कलियुग का सारथि जैसा था, यद्यपि वह भयामक था फिर भी अतिबलवान् होने से वह गम्भीर-सा दिखलाई पड़ता था, वह किसी के द्वारा तिरस्करणीय आकृति वाला न था, ऐसे मातङ्ग नामक भीलों के सेना को मैंने देखा और उसका यह नाम तो मैंने बाद में सुना।

**संस्कृत व्याख्या**—अभिनवयौवनमपि=अभिनवं नूतनं सुन्दरं वा यौवनं तारुण्यं यस्य स तम् तादृशमपि क्षपितबहुवयसम्—क्षपितानि व्यतीतानि बहूनि अनेक विधानि वयांसि शैशवादीनि येन स तम्, अत्र विरोधपरिहारस्तु—क्षपितानि व्यापादितानि बहूनि वयांसि पक्षिणः येन तम् इत्यर्थग्रहणात् साध्यः। कृतसारमेयसंग्रहमपि कृतः सारस्य धनस्य मेयानां परिमातुं योग्यानां धान्यादीनां च संग्रहः येन तम् तादृशमपि, फलमूलाशनम्—फलमूलान्येव अशनं भक्षणं यस्य तम्, विरोधपरिहारस्तु—कृतः सारमेयाणां शुनां संग्रहः येन तमित्यर्थग्रहणात्। कृष्णमप्यसुदर्शनम्-कृष्णम्-भगवन्तं श्रीकृष्णचन्द्रम् असुदर्शनम् सुदर्शनचक्रेण रहितम्, अत्र विरोधपरिहारस्तु कृष्णम् कृष्णवर्णम् अतएव असुदर्शनम् अतिभयावहदर्शनम् इत्यर्थग्रहणात्, स्वच्छन्दप्रचारमपि—स्वच्छन्देन स्वाभिप्रायेण प्रचारः परिभ्रमणं यस्य तम् तादृशमपि, दुर्गैकशरणम्-दुर्गं दुर्गमं स्थानं नगरम् वा एकमद्वितीयं शरणं गृहं यस्य तं तादृशम्—अत्र विरोधपरिहारस्तु दुर्गा भगवती भवानी एकमद्वितीयं शरणं रक्षिका यस्य तमित्यर्थग्रहणात्, क्षितिभृत्पादानुवर्तिनमपि=क्षितिभृत् राजा तस्य पादौ चरणौ तयोः अनुवर्तिनम्

सेवाकारिणम् तादृशमपि, राजसेवानभिज्ञम्—राज्ञः सेवा परिचर्या तस्या अनभिज्ञः अज्ञाता तम्, विरोध परिहारस्तु 'क्षितिभृत् पर्वतः तस्य पादे प्रत्यन्तपर्वते अनुवर्तते अवतिष्ठते यः तम् तादृशमित्यर्थग्रहणात्। अपत्यमिव विन्ध्याचलस्य विन्ध्यपर्वतस्य सन्तानमिव शरीरकाठिन्यादित्यर्थः, अंशावतारमिव कृतान्तस्य-यमस्य एकदेशावतारमिव जीवसंहारादित्यर्थः, सहोदरमिव पापस्य-अधर्मस्य सोदरमिव, सारथिमिव कलिकालस्य-कलियुगस्य यन्तारमिव अधर्मस्य सञ्चालकत्वादित्यर्थः भीषणम् भयानक मपि महासत्त्वतया प्रबलशक्तिसम्पन्नतया, गम्भीरं धैर्यगुणान्वितमिव उपलक्ष्यमाणम् परिदृश्यमानम्, अनभिभवनीयाकृतिम्-अनभिभवनीया अतिरस्करणीया आकृतिः स्वरूपं यस्य तम् तादृशम् मातङ्गनामानम् मातङ्गाभिधानं शबराणां भिल्लानां सेनापतिम् सैन्यस्वामिनम् अपश्यम्, तस्य सैन्यस्वामिनः अभिधानन्तु नाम तु पश्चाद् अनन्तरम् अहं वैशम्पायनः अश्रौषम्।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशं शबरसेनापतिमपश्यम्, यः नवतारुण्ययुक्तोऽपि व्यापादितानेकखगः, कृतकुक्कुरसंग्रहोऽपि फलमूलभक्षकः, कृष्ण-वर्णोऽपि भीमदर्शनः, स्वाभिप्रायेण विचरणशीलोऽपि भवान्येकशरणः, पर्वतपादावस्थोऽपि नृपपरिचर्यानभिज्ञः, विन्ध्यपर्वतस्यात्मज इव, यमस्यैकदेशावतार इव, अधर्मस्य सोदर इव, कलियुगस्य यन्ता इव, भयानकोऽपि महाशक्तिसम्पन्नतया धैर्यगुणान्वित इवो-पलक्ष्यमाणः अतिरस्करणीयाकृतिश्चासीत्, एवम्भूतं मातङ्गभिधानं भिल्लसैन्य-स्वामिन मपश्यम्, तस्य नाम तु पश्चादहम् अश्रौषम्।

**टिप्पणी**—अभिनवेति—यहाँ से लेकर "राजसेवानभिज्ञम्' तक सभी वाक्यांशों में विरोधाभास अलंकार है, प्रथम वाक्यांश में वयस् का अर्थ 'पक्षी' ग्रहण करने से विरोध का परिहार हो जाता है। कृतसारमेयेति—धन धान्य संग्रह अर्थ करने से विरोध भासित होता है, सारमेय='कुत्ता' अर्थग्रहण से परिहार होता है। स्वच्छन्देति दुर्ग=किला अर्थ करने पर विरोध होता है, दुर्गा-भवानी अर्थ करने पर परिहार होता है। शरण का अर्थ गृह और रक्षक दोनों ही है "शरणं गृहरक्षित्रोः इत्यमरः। कृष्णेति=कृष्ण वर्ण वाला अर्थग्रहण करने से विरोध का परिहार होता है। क्षितिभृत्=१—राजा २—पर्वत, पाद—१ चरण, २—तलहटी, प्रथम अर्थ से विरोध और द्वितीय अर्थ से परिहार होता है। अपत्यमिव—यहाँ से 'कलिकालस्य' तक उत्प्रेक्षालंकार है। कृतान्त=यमराज "कृतान्तो यमुनाभ्राता शमनो यमराड् यमः इत्यमरः।

## शबरचरित्र वर्णनम्

**आसीच्च मे मनसि-अहो। मोहप्रायमेषां जीवितम्, साधुजनविगर्हि-तञ्च चरितम्, तथाहि-पुरुषपिशितोपहारे धर्मबुद्धिः, आहारः साधुजन-विगर्हितो मधुमांसादिः, श्रमो मृगया, शास्त्रं शिवारुतम्, उपदेष्टारः सदसवतां कौशिकाः, प्रज्ञा शकुनिज्ञानम्, परिचिताः श्वानः, राज्यं शून्याटवीषु,**

आपानकमुत्सवः, मित्राणि क्रूरकर्मसाधनानि धनूंषि, सहाया विषदिग्धमुखा भुजङ्गा इव सायकाः, गीतमुत्सादकारिमुग्धमृगाणाम्, कलत्राणि बन्दि-गृहीताः परयोषितः, क्रूरात्मभिः शार्दूलैः सह संवासः, पशुरुधिरेण देवतार्चनम्, मांसेन बलिकर्म, चौर्य्येण जीवनम्, भूषणानि भुजङ्गमणयः, वनगजमदैरङ्गरागः, यस्मिन्नेव कानने निवसन्ति तदेवोत्खातमूलमशेषतः कुर्वन्ति ।

इति चिन्तयत्येव मयि स शबरसेनापतिरटवीपरिभ्रमणसमुद्भवं श्रममपनिनीषुरागत्य तस्यैव शाल्मलीतरोरधश्छायायामवतारितकोदण्ड-स्त्वरित परिजनोपनीतपल्लवासने समुपाविशत् ।

शब्दार्थ— आसीच्च मे मनसि=और मेरे मन में (यह विचार) हुआ, अहो= ओह, एषां जीवितम् मोहप्रायम्=इनका जीवन अज्ञानाधिक्य पूर्ण है (मोहप्राय-मोह अज्ञान प्राय=बहुल) चरितञ्च साधुजनविगर्हितम्=और आचरण साधुजनों द्वारा निन्दित (विगर्हित) है। तथाहि=क्योंकि, पुरुषपिशितोपहारे धर्मबुद्धिः=नरमांस (पुरुषपिशित) के बलि चढ़ाने में (उपहारे) धर्मबुद्धि है=अर्थात् इसे धर्म समझते हैं। आहारः साधुजनविगर्हितः मधुमांसादिः=साधुजनों द्वारा निन्दित मदिरा मांस आदि भोजन (आहार) है। मृगया श्रमः=शिकार खेलना व्यायाम (श्रमः) है। शिवारुतम् शास्त्रम्=गीदड़ियों का (शिवा) रोना (रुतम्) (इनका) शास्त्र है। सदसदताम् उपदेष्टारः कौशिकाः=भले बुरे (सत् असत्) का उपदेश देने वाले उल्लू हैं (कौशिक) प्रज्ञा शकुनिज्ञानम्=पक्षियों (शकुनि) का ज्ञान (पता लगा लेना) (इनकी) विवेक बुद्धि (प्रज्ञा) है, परिचिताः श्वानः=कुत्ते विश्वस्त परिचितजन हैं । राज्यं शून्याटवीषु=निर्जन वनों में (शून्याटवीषु) (इनका) राज्य है, आपानकमुत्सवः= मदिरापान गोष्ठी (इनका) उत्सव है। क्रूरकर्मसाधनानि धनूंषि मित्राणि=हिंसादि दुष्ट कर्म के साधन धनुष् ही (इनके) मित्र हैं। विषदिग्धमुखा भुजङ्गा इव सायकाः सहायाः=सर्पों के समान विष से लिप्त मुख वाले बाण (इनके) सहायक हैं। मुग्धमृगाणाम् उत्सादकारिगीतम्=भोले भाले (मुग्ध) मृगों का विनाश (उत्साद) करने वाला (इनका) गान है। बन्दिगृहीताः परयोषितः कलत्राणि=बलात् अपहृत पराई स्त्रियाँ (परियोषितः) (इनकी) पत्नियाँ हैं। क्रूरात्मभिः शार्दूलैः सह संवासः= क्रूरस्वभाव वाले (क्रूरात्मा) सिंहों के साथ (इनका) निवास है। पशुरुधिरेण देवता-र्चनम्=पशुओं के रक्त से देवपूजन है। मांसेन बलिकर्म=मांस से बलिकर्म-भूतबलि या भूतयज्ञ है। चौर्य्येण जीवनम्=चोरी से जीवन निर्वाह करना है। भूषणानि भुजङ्गमणयः=सर्पमणियाँ ही आभूषण हैं, वनगजमदैरङ्गरागः=जंगली गजों के मद से अङ्गराग लगाना है, यस्मिन्नेव कानने निवसन्ति=जिस ही वन में रहते हैं, तदेवोत्खातमूलमशेषतः कुर्वन्ति=उसी को पूर्ण रूप से (अशेषतः) निर्मूल (उत्खात= उखाड़े गये मूल=जड़) कर देते हैं।

**एवं चिन्तयत्येव मयि**=मेरे इस प्रकार सोचते हुए ही, **स शबरसेनापतिः**= वह भिल्लसैन्यस्वामी, **अटवीपरिभ्रमणसमुद्भवम्**=वन भ्रमण से उत्पन्न, **श्रमम्**= थकावट को, **अपनिनीषुः**=दूर करने की इच्छा वाला, **आगत्य**=आकर, **तस्यैव**= उसी, **शाल्मलीतरोरधः**=शाल्मलीवृक्ष के नीचे, **छायायाम्**=छाया में, **अवतारित-कोदण्डः**=धनुष को (कन्धे से) उतार कर, **त्वरितपरिजनोपनीतपल्लवासने**=त्वरित ही सेवकों द्वारा लाये गये पल्लवों के आसन पर, **समुपाविशत्**=बैठ गया।

**अनुवाद**—और मेरे मन में (यह विचार) हुआ, ओह! इनका जीवन अज्ञानाधिक्य पूर्ण है, और आचरण साधुजनों द्वारा निन्दित है, क्योंकि, नरमांस के बलि चढ़ाने में (इनकी) धर्मबुद्धि है, साधुजनों द्वारा निन्दित मदिरा मांस आदि भोजन है, शिकार खेलना व्यायाम है, गीदड़ियों का रोना शास्त्र है, भले बुरे का उपदेश देने वाले उल्लू हैं, पक्षियों का पता लगा लेना (इनकी) विवेक बुद्धि है, कुत्ते विश्वस्त परिचितजन हैं, निर्जन वनों में (इनका) राज्य है, मदिरापान गोष्ठी उत्सव है, हिंसादि क्रूर कर्म के साधन धनुष् ही मित्र हैं, सर्पों के समान विष से लिप्त मुख वाले वाण (इनके) सहायक हैं, भोले भाले मृगों का विनाश करने वाला (इनका) गान है, बलात् अपहृत दूसरों की स्त्रियाँ (इनकी) पत्नियाँ हैं। क्रूर स्वभाव वाले सिंहों के साथ (इनका) निवास है, पशुओं के रक्त से देवपूजन है, मांस से बलिकर्म या भूतयज्ञ है, चोरी से जीवन निर्वाह करना है, सर्पमणियाँ ही आभूषण हैं, जंगली गजों के मद से (इनका) अंगराग लगाना है, जिस ही वन में ये रहते हैं उसी को पूर्ण रूप से निर्मूल कर देते हैं।

मेरे इस प्रकार सोचते हुए ही, वह शबरसेनापति, वनभ्रमण से उत्पन्न थकावट को दूर करने की इच्छा वाला होकर, आकर, उसी शालमली वृक्ष के नीचे छाया में धनुष् को कन्धे से उतार कर तुरन्त ही सेवकों द्वारा लाये गये पल्लवों के आसन पर बैठ गया।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि उस शबरसैन्य को देखकर मैंने मन में सोचा कि इनका जीवन कितना घृणित एवं आचरण कितना निन्दनीय है, नरमांस की बलि देना ये धर्म समझते हैं, निन्दनीय मदिरा मांसादि इनका भोजन है, शिकार खेलना ही व्यायाम है, गीदड़ियों का अशुभंकर रोना ही इनका वेदपाठ श्रवण है, उल्लू पक्षी ही इनके भले बुरे के उपदेशक हैं, पक्षियों का पता लगाना ही विवेक बुद्धि है, कुत्ते ही इनके विश्वासपात्र मित्र हैं, सूने जंगल में ही इनका राज्य है, मदिरापान ही उत्सव है, क्रूर कर्म करने वाले धनुष् मित्र हैं, सर्पों की तरह विष से लिप्त मुख वाले वाण ही इनके सहायक हैं, रागमुग्ध मृगों का वध ही इनका गान है, बलात् अपहृत पर स्त्रियाँ ही पत्नियाँ हैं, ये हिंसक सिंहों के साथ रहते हैं, पशु रक्त से देवार्चन करते हैं, चोरी ही जीविका है, सर्पमणियाँ आभूषण हैं, गजमद ही अंगराग है, जिस वन में ये रहते हैं उसे ही जड़मूल से उजाड़ देते हैं।

मैं अभी यह सब सोच ही रहा था कि वनभ्रमण की थकाव को मिटाने के लिए वह शबरसेनापति उसी सेमल पेड़ की छाया में आकर, कंधे से धनुष उतार कर, सेवकों द्वारा बिछाये गये पत्तों के आसन पर बैठ गया।

**संस्कृत व्याख्या**—मे मम मनसि हृदये (विचारोऽयम्) आसीत् अभूत्, अहो, इत्याश्चर्ये, मोह प्राय मेषां जीवितम्—मोहः अविवेकः प्रायः बहुलं यत्र तथोक्तम् एषाम् शबराणां जीवितम् प्राणितम्, चरितम् आचरणम् साधुजनविगर्हितम्=साधुजनैः शिष्टजनैः विगर्हितं निन्दितम्, तथाहि-तदेव विशिष्य समर्थयति-पुरुषपिशितोपहारे धर्मबुद्धिः-पुरुषस्य नरस्य यत् पिशितं मांसम् तस्य यः उपहारः भगवत्यै नैवेद्यसमर्पणं तस्मिन् तथोक्ते धर्मबुद्धिः-धर्मोऽयमिति ज्ञानम्, आहारः भोजनम् साधुजनगर्हितः शिष्टजननिन्दितः मधुमांसादि=मदिरामांसादिः, श्रमः व्यायामः मृगया-आखेटकः, शास्त्रम् उच्चस्वरैः वेदपाठः शिवारुतम् शृगालीरुदितम्, सदसदताम् शुभाशुभानाम् उपदेष्टारः बोधकाः कौशिकाः उलूकाः, शकुनिज्ञानम्-शकुनयः पक्षिणस्तेषाम् स्थूलमहत्त्वादिज्ञानम् प्रज्ञा विवेकबुद्धिः, श्वानः सारमेयाः परिचिताः विश्वासपात्राणि, शून्याटवीषु निर्जनवनेषु राज्यम् आधिपत्यम्, उत्सवः प्रमोदव्यापारः आपानकम् मद्यपानगोष्ठी, मित्राणि सुहृदः क्रूरकर्मसाधनानि क्रूरं हिंसादिकं यत् कर्म तत्साधनानि प्रयोजकानि धनूंषि चापानि, सहायाः=साहाय्यकर्तारः भुजङ्गाः सर्पाः इव विषदिग्धमुखाः विषेण गरलेन दिग्धं लिप्तं मुखम् अग्रभागः येषान्ते तथोक्ताः साधकाः वाणाः, गीतं गानम्, मुग्धमृगाणाम् अनभिज्ञहरिणानाम् उत्सादकारि विनाशविधायि, कलत्राणि-स्वपत्न्यः वन्दिगृहीताः परयोषितः=बलादपहृत्य बन्दीभावेन स्वीकृताः परस्त्रियः, क्रूरात्मभिः दुष्टस्वभावैः शार्दूलैः व्याघ्रैः सह संवासः सहावस्थानम्, पशुरुधिरेण महिषादिपशुरक्तेन देवतार्चनम् देवपूजनम्, मांसेन पिशितेन बलिकर्म भूतयज्ञः, चौर्येण परधनापहरणेन जीवनम् स्वजीविकानिर्वाहः, भूषणानि आभरणानि भुजङ्गमणयः नागरत्नानि, वनगजमदैः अरण्यगजदानवारिभिः अङ्गरागः शरीराङ्गानुलेपनम्, यस्मिन्नेव कानने निवसन्ति एते शबरा यस्मिन्नेव वने निवासं कुर्वन्ति, तदेव तद्वनमेव अशेषतः समस्ततः उत्खातमूलम् समुत्पाटितमूलभागम् कुर्वन्ति।

इति चिन्तयत्येव मयि-इति पूर्वोक्त प्रकारेण मयि वैशम्पायने चिन्तयति ध्यायत्येव सति, अटवीपरिभ्रमणसमुद्भवम्=अटव्याम् वने यत्परिभ्रमणम् इतस्ततः पर्यटनम् तस्मात् समुद्भवं सजातम्, श्रमम् खेदम् अपनिनीषुः अपनेतुमिच्छुः स शवरसेनापतिः स पूर्वोक्तः भिल्लसैन्यस्वामी तस्यैव पूर्वोक्तस्यैव शाल्मलीतरोः शाल्मलीत्याख्यातस्य वृक्षस्याधः छायायाम् आगत्य अवतारितकोदण्डः अवतारितं स्वस्कन्धादपनीतं कोदण्डं कार्मुकं येन स तथोक्तः सन्, त्वरितपरिजनोपनीतपल्लवासने-त्वरितेन तीव्रगतिमता परिजनेन सेवकेन उपनीतम् तत्समीपं प्रापितम् यत् पल्लवानां पत्राणामासनं तस्मिन् तथोक्ते समुपाविशत् तस्थिवान्।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यच्छबरसैन्यमवलोक्य मनस्यह मचिन्तयम् यदेतेषां जीवनं कीदृश मविवेकप्रचुरम् आचरणञ्चैतेषां कीदृशं शिष्टजन-निन्दितमस्ति, तथाहि, नरमांसस्य भगवत्यै नैवेद्यनिवेदने धर्मोऽयमित्येषां ज्ञानम्, शिष्टजननिन्दितो मदिरामांसाद्यात्मकः एषामाहारः, व्यायामः आखेटकः, शृगालीनां रुदितमेतेषामुच्चस्वरवेदपाठः, शुभाशुभकर्मणामुपबोधकाः उलूकाः, पक्षिणां स्थूल-महत्त्वादिपरिज्ञानमेतेषां विवेकबुद्धिः, सारमेया विश्वासस्थानानि, आधिपत्यमेषां निर्जनवनेषु, प्रमोदव्यापारः मद्यपानगोष्ठी, हिंसादिक्रूरकर्मप्रयोजकानि चापानि मित्राणि, सर्पा इव गरललिप्ताग्रभागाः बाणा एव साहाय्यकारिणः, मूढमृगाणां विनाशकारकं गानम्, पत्न्यश्चैतेषां बलादपहृता बन्दीभावेन स्वीकृताः परस्त्रियः, दुष्टस्वभावैर्व्याघ्रैः सहावस्थानम्, महिषादिपशुरक्तेन देवार्चनम्, मांसेन बलिकर्म, परधनापहरणेन जीविकानिर्वाहः, सर्परत्नान्येषामाभूषणानि, अरण्यगजदानवारिभिरङ्ग-रागानुलेपनम्, एते यस्मिन्नेव वने निवासं कुर्वन्ति तदेव समस्ततः समुत्पाटितमूलभागं विदधति ।

एवं मयि ध्यायति सत्येव, वनपरिभ्रमणेन समुपजातखेद मपनेतुमिच्छुः स भिल्लसैन्यस्वामी स्वस्कन्धदेशादपनीतकामुकः तस्यैव शाल्मलीवृक्षस्याधश्छायायामागत्य वेगवता सेवकेन समुपनीतपल्लवासने तस्थिवान् ।

**टिप्पणी**—**अहो**=इत्याश्चर्ये 'आहोउताहोकिमुत इत्यमरः' **मोहप्रायम्**—मोहः अविवेकः प्रायः बहुलं प्रचुरं वा यत्र । **चरितम्**=आचरणम्, **उपहारः**—देवता के लिए नैवेद्य देना, भोग लगाना, **धर्मबुद्धिः**—यह धर्म कार्य है ऐसा ज्ञान होना, **मधुमांसादिः**=मधु=मदिरा, यहाँ आदि पद से मत्स्यादि के मांस का ग्रहण है, मनु ने मांस भक्षण का निषेध किया है पर मत्स्य मांस का विशेषतः परिवर्जन किया है "यो यस्य मांसमश्नाति, स तन्मांसाद उच्यते । मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मा-न्मत्स्यान् विवर्जयेत्" **शास्त्रम्**—इसका अर्थ यहाँ उच्चस्वर से वेदपाठ है । **शिवारुतम्**—लोमड़ी का रोना अशुभसूचक माना गया है । **सदसत्ताम्**—शुभ अशुभ कर्मों का, **कौशिकाः**—'महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः' इत्यमरः । **आपानकम्**—मद्यपान-गोष्ठी, **मुग्धमृगाणाम्**—मूढ हरिणों के, "मुग्धः सुन्दरमूढयोः" **उत्सादकारि**—उत्सादः विनाशः त करोति, जब मृग इनका गान सुनकर निश्चल हो जाते हैं तब ये उनको मार देते हैं । इसीलिए इनका गान विनाशकारी होता है । **बन्दिगृहीताः**—बलात् अपहृत कर स्वाधीन की गईं, **संवासः** एक साथ रहना, **बलिकर्म**=बलिदान, **अशेषतः** पूर्ण रूप से, **अपनिनीषुः** अपनेतुमिच्छुः—सन्नन्त अप+नी धातु से उप्रत्यय । **कोदण्ड**=धनुष् ।

**अन्यतमस्तु शबरयुवा ससंभ्रममवतीर्य तस्मात् करयुगलपरिक्षो-भिताम्भसः सरसो वैदूर्यद्रवानुकारि प्रलयदिवसकरकिरणोपतापादम्बरैक-देशमिव विलीनम्, इन्दुमण्डलादिव प्रस्यन्दितम्, द्रुतमिव मुक्ताफलनिकरम्,**

अत्यच्छतया स्पर्शानुमेयं हिमजडम्, अरविन्दकोश रजः कषायमम्भः कमलिनी पत्रपुटेन प्रत्यग्रोद्धृताश्च धौतपङ्कनिर्मला मृणालिकाः समुपाहरत्। आपीतसलिलश्च सेनापतिस्ता मृणालिकाः शशिकला इव सैंहिकेयः क्रमेणादशत्। अपगतश्रमश्चोत्थाय परिपीताम्भसा सकलेन तेन शबरसैन्येनानुगम्यमानः शनैः शनै रभिमतं दिगन्तरमयासीत्।

शब्दार्थ—अन्यतमस्तु शबरयुवा=(उनमें से) कोई एक युवक भील, ससम्भ्रमम्=शीघ्रतापूर्वक, अवतीर्य=भीतर प्रवेश करके, करयुगलपरिक्षोभिताम्भसः=दोनों हाथों से हिलाये गये (परिक्षोभित=घासादि हटाने के लिए विलोडित किये गये) जल वाले (अम्भसः) तस्मात्=उस पम्पा सरोवर से, कमलिनीपत्रपुटेन=कमलिनी के पत्ते के दोने से (पत्रपुटकेन) वैदूर्यद्रवानुकारि=वैदूर्यमणि के तरल पदार्थ (द्रव) का अनुकरण करने वाले (अर्थात् तत्सदृश) प्रलयदिवसकरकिरणोपतापात् अम्बरैकदेशमिव विलीनम्=प्रलयकालीन सूर्य (दिवसकर) की किरणों के प्रखर ताप (उपताप) से, द्रवित होकर क्षरित हुए (विलीनम्) अम्बरैकदेशम्=आकाश के खण्ड, इव=जैसा, इन्दुमण्डलादिव प्रस्यन्दितम्=मानो चन्द्रमण्डल से द्रवित होकर गिरे हुए (प्रस्यन्दितम्), द्रुतामिव मुक्ताफलनिकरम्=पिघले हुए (द्रुतम्) मोतियों (मुक्ताफल) के समूह जैसे, अत्यच्छतया=बहुत ही स्वच्छ होने के कारण, स्पर्शानुमेयं हिमजडम्=(केवल) स्पर्श के द्वारा ही अनुमान करने योग्य (तथा) बर्फ के समान शीतल (हिमजडम्) अरविन्दकोशरजः कषायम् अम्भः=कमलकोश के पराग (रजः) से कषैला, अम्भः=जल, प्रत्यग्रोद्धृताः च=और तत्क्षण उखाड़ी गई (उद्धृताः) धौतपङ्कनिर्मलाः=धुली हुई (धौत) कीचड़ (पङ्क) वाली अतएव स्वच्छ, मृणालिकाः=कमल नाल, समुपाहरत्=ले आया अर्थात् शबरसेनापति को समर्पित किया। आपीतसलिलश्च सेनापतिः=और भलीभाँति जल पी चुकने वाले सेनापति ने, ताः मृणालिकाः=उन कमल नालों को, क्रमेण=बारी-बारी से, शशिकलाः सैंहिकेय इवादशत्=उसी प्रकार खाया जैसे राहु (सैंहिकेय) चन्द्रकलाओं को खाता है। अपगतश्रमश्चोत्थाय=और थकावट रहित होकर उठकर, परिपीताम्भसा सकलेन तेन शबरसैन्येन=जल पी चुकने वाली उस समस्त शबरसेना से, अनुगम्यमानः=अनुगत होता हुआ, शनैः शनैः=धीरे-धीरे, अभिमतं दिगन्तरम् अयासीत्=स्वाभीष्ट अन्य दिशा की ओर चला गया।

अनुवाद—(उनमें से) कोई एक भील युवक शीघ्रतापूर्वक, भीतर प्रवेश करके, दोनों हाथों से हिलाये गये जल वाले उस पम्पासरोवर से, कमलिनी के पत्ते के दोने से, वैदूर्यमणि के तरल पदार्थ जैसे, प्रलयकालीन सूर्य की किरणों के प्रखर ताप से द्रवित होकर क्षरित हुए आकाश खण्ड सदृश, मानो चन्द्रमण्डल से, द्रवित होकर गिरे हुए, पिघले हुए मोतियों के समूह जैसे, बहुत ही स्वच्छ होने के कारण केवल स्पर्श के द्वारा ही अनुमान करने योग्य तथा बर्फ के समान शीतल, कमलकोश के पराग से कषैले जल को, तत्क्षण उखाड़ी गई, धुली हुई कीचड़ वाली अतएव स्वच्छ

कमल नालों को लाकर उसे समर्पित किया। और भलीभांति जल पी चुकने वाले सेनापति ने उन कमल नालों को बारी-बारी से उसी प्रकार खाया जैसे राहु चन्द्रकलाओं को खाता है। और थकावट रहित होकर उठकर जल पी चुकने वाली उस समस्त शबरसेना से अनुगत होता हुआ धीरे-धीरे स्वाभीष्ट अन्य दिशा की ओर चला गया।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि तब उन भीलों के झुण्ड में से एक भील युवक जल में उतरा और दोनों हाथों से घासादि हटाने के लिए जल को विडोलित कर, कमलिनी के पत्तों के दोने में उस पम्पासरोवर से जल को तथा कुछ कमल नालों को लाकर सेनापति को दिया। वह जल वैदूर्यमणि के द्रव के समान, प्रलय कालीन सूर्य की किरणों के प्रखर ताप से पिघले हुए आकाश खण्ड के समान, चन्द्र-मण्डल से टपके हुए अमृत के समान, और पिघले हुए मोतियों के समान लगता था, वह इतना निर्मल था कि छूने पर ही यह अनुमान किया जा सकता था कि यह जल है, वह बर्फ जैसा शीतल तथा कमल पराग से कषैले स्वाद वाला था, वे कमल नालें भी तत्क्षण उखाड़ी गई थीं और उन पर लगी कीचड़ को धोकर उन्हें साफ कर लिया गया था। सेनापति ने जल पीकर उन कमल नालों को क्रम-क्रम से उसी प्रकार खाया जैसे राहु चन्द्रकलाओं को निगलता है। थोड़ी देर तक थकान मिटाकर वह उठा और जल पीकर निश्चिन्त हुई उस समस्त शबरसेना के साथ-साथ धीरे-धीरे अपनी मनोवाञ्छित दिशा की ओर चला गया।

संस्कृत व्याख्या—अन्यतमस्तु शबरयुवा=तेष्वेकः कश्चिद् भिल्लतरुणः, ससम्भ्रमश् सत्वरम् अवतीर्य जलान्तः प्रविश्य, करयुगलपरिक्षोभिताम्भसः-करयुगलेन पाणिद्वयेन परिक्षोभितं घासाद्यपनयनाय विलोडितम् अम्भः सलिलम् यस्य तस्माद् तादृशाद्, तस्मात् पूर्वोक्तात् सरसः पम्पाख्यसरोवरात्, कमलिनीपत्रपुटेन कमलिनी-दलसम्पुटकेन, वैदूर्य्यं, द्रवानुकारि=वैदूर्य्यस्य वैदूर्य्याख्यमणेः द्रवं गलितांशम् अनुक-रोतीति तद् तादृशम्, प्रलयदिवसकरकिरणोपतापात्=प्रलये कल्पान्तकाले दिवसकरस्य प्रचण्डसूर्यस्य किरणैः उपतापाद् प्रखरसन्तापात्, विलीनम् द्रवीभूय क्षरितम् अम्बरैक-देशम् गगनस्यैकप्रविभागमिव, इन्दुमण्डलात् चन्द्रविम्बात् प्रस्यन्दितं द्रवीभूय पतितमिव, द्रुतम् स्यन्दितम् मुक्ताफलानां मौक्तिकानाम् निकरम् वृन्दमिव, अत्यच्छतया-अतिस्वच्छतया, स्पर्शानुमेयम्=शीतस्पर्शेन सलिल तयानुमातुं योग्यम्, हिमजडम्= तुहिनवद् शीतलम्, अरविन्दकोशरजः कषायम्=अरविन्दस्य कमलस्य यः कोशः कर्णिकाधारः तस्य रजसा परागेण कषायं तुवरम् अम्भः=जलम्, प्रत्यग्रोद्धृताः तत्कालोत्पाटिताः, धौतपङ्कनिर्मलाः प्रक्षालितकर्दमस्वच्छाः मृणालिकाः क्षुद्रविस-तन्तूनि च, समुपाहरत् सेनापतये समर्पितवान्।

आपीतसलिलश्च=आपीतं सम्यक्-पीतं सलिलं जलं येन स तथोक्तः सेनापतिः शबरसैन्यस्वामी, ताः मृणालिकाः-ताः=पूर्वोक्ताः शबरयुवकानीताः मृणालिकाः क्रमेण जलपानानन्तरं तथैव अदशत् दशनैरभक्षयद् यथा सैंहिकेयः सिंहिकायाः सूनुः राहुः

चन्द्रकलाः अभनाति । अपगतश्रमः च—अपगतः दूरीभूतः श्रमः परिभ्रमणजन्यः खेदः यस्य स तथोक्तः च उत्थाय परिपीताम्भसा परिपीतम् अम्भः येन तेन तादृशेन सकलेन समस्तेन तेन पूर्वोक्तेन शवरसैन्येन किरातानीकेन अनुगम्यमानः शनैः शनैः मन्दं मन्दम् अभिमतम् स्वाभीष्टं दिगन्तरम् अन्यां दिशम् प्रति अयासीत् अगमत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यत्तदनन्तरं तेषु भिल्लेष्वेकः कश्चिद् भिल्लतरुणः जलान्तः प्रविश्य पाणिद्वयविलोडित जलात् पूर्वोक्तात् तस्मात् पम्पाख्य-सरोवरात् कमलिनीदलसम्पुटकेन तादृशं सलिलम्, तत्क्षणमुत्पाटिताः क्षालितकर्दम-स्वच्छा मृणालिकाश्चादाय तस्मै शवरसेनापतये समर्पितवान् यच्च सलिलं वैदूर्य्यमणेः गलितांशानुकारि, कल्पान्तकाले प्रचण्ड सूर्य रश्मि प्रखरतापेन द्रवीभूय क्षरितं गगनैक-प्रविभागमिव, चन्द्रबिम्बाद् द्रवीभूय पतितमिव, प्रस्यन्दितं मौक्तिकवृन्दमिव, अतिस्वच्छतया स्पर्शनैव सलिलतयानुमातुं योग्यम्, तुहिनवत् शीतलम्, कमलकर्णिका-धाररजसा तुवरञ्चासीत्, सम्यक्तया पीतजलः स सैन्यस्वामी राहुश्चन्द्रकला इव ताः मृणालिकाः क्रमेण दशनैरभक्षयत् दूरीभूतखेदश्चोत्थाय पीतजलेन तेन सकलेन शबरसैन्येनानुगम्यमानः शनैः शनैः स्वाभीष्टदिशमगमत् ।

**टिप्पणी**—**अन्यतमः**—उनमें से कोई एक, **परिक्षोभित**—परि+क्षुभ् णिच् क्त—घासादि को हटाने के लिए दोनों हाथों से विलोडित जल वाले, **विलीनम्**—प्रचण्ड-सूर्यरश्मियों से पिघले हुए आकाश खण्ड के समान, 'अम्भः' का विशेषण है। और यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है। प्रस्यन्दितम्=टपके हुए, **द्रुतम्**=पिघले हुए—उत्प्रेक्षा, **स्पर्शानुमेयम्**—अतिस्वच्छ होने के कारण केवल छू करके ही जल होने का अनुमान किया जा सकता था। **हिमजडम्**=वर्फ के समान शीतल, लुप्तोपमालंकार, **प्रत्यग्रोद्धृताः**=तत्काल ही उत्पाटित, **मृणालिकाः**—कमलमृणाल-विसतन्तु । **समुपाहरत**—सम्+उप+हृ—लङ् लकार समर्पित किया, **सैंहिकेयः**—सिंहिकाया अपत्यं पुमान् सैंहिकेयः राहुः "सैंहिकेयो विधुन्तुदः" अदशत्—दाँतों से काटकर खाया ।

## शुकशावकनिपात वर्णनम्

**एकतमस्तु जरच्छबरस्तस्मात् पुलिन्दवृन्दादनासादितहरिणपिशितः पिशिताशन इव विकृतदर्शनः पिशितार्थी तस्मिन्नेव तरूमूले मुहूर्तमिव व्यलम्बत। अन्तरिते च तस्मिन् शवरसेनापतौ स जीर्णशबरः पिबन्निवास्मा-कमायूंषि रुधिरबिन्दुपाटलया कपिलभ्रूलतापरिवेषभीषणया दृष्ट्या गणयन्निव शुककुलकुलायस्थानानि श्येन इव विहगामिषास्वादलालसः सुचिरमारूढक्षुस्तं वनस्पतिं मामूलादपश्यत्। उत्क्रान्तमिव तस्मिन् क्षणे तदालोकनभीतानां शुककुलानामसुभिः। किमिव हि दुष्करमकरुणानाम्, यतः स तमनेकतालतुङ्गमभ्रंकषशाखाशिखरमपि सोपानैरिवायत्नेनैव पादपमारुह्य ताननुपजातोत्पतनशक्तीन् कांश्चिदल्पदिवसजातान् गर्भच्छ-विपाटलान् शाल्मलीकुसुमशङ्कामुपजनयतः, कांश्चिदुद्भिद्यमानपक्षतया**

नलिनसंवर्तिकानुकारिणः, कांश्चिदर्कफलसदृशान् कांश्चिल्लोहितायमानचञ्चुकोटीन्, ईषद्विघटितदलपुटपाटलमुखानां कमलमुकुलानां श्रियमुद्वहतः, कांश्चिदनवरतशिरः कम्पव्याजेन निवारयत इव प्रतीकारासमर्थान्, एकैकशः फलानीव तस्य वनस्पतेः शाखासन्धिभ्यः कोटरान्तरेभ्यश्च शुकशावकानग्रहीत्, अपगतासूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत् ।

शब्दार्थ—एकतमस्तु=उनमें से कोई एक, तस्मात् पुलिन्दवृन्दात्=उस शवरमण्डल से, अनासादितहरिणपिशितः=मृग मांस को न पाने वाला, पिशिताशनः इव=मांसभक्षी व्याघ्रादि के समान, विकृतदर्शनः=भयानक दृष्टि वाला, पिशितार्थी=मांस चाहने वाला, जरच्छबरः=बूढ़ा भील, तस्मिन्नेव तरुमूले=उसी वृक्ष के नीचे, मुहूर्तमिव व्यलम्बत=थोड़ी देर तक रुका रहा। अन्तरिते च तस्मिन् शबरसेनापतौ=और उस शबरसेनापति के आँखों से ओझल हो जाने पर, स जीर्णशबरः=वह बूढ़ा भील, पिबन्निवास्माकमायूंषि=हमारी (अस्माकम्) आयु को पीता हुआ सा, रुधिरबिन्दुपाटलया=(क्रोधवश) रुधिरकणों से श्वेतरक्त वर्ण की, (तथा) कपिलभ्रूलतापरिवेषभीषणया=पीली लताकार भौंहों की परिधि से भयानक, दृष्ट्या=दृष्टि से, गणयन्निव शुककुलकुलायस्थानानि=शुकसमूह के घोसलों (कुलाय) के स्थानों को गिनता हुआ सा, श्येन इव=बाज पक्षी के समान, विहगामिषास्वादलालसः=पक्षियों के मांस (आमिष) के स्वाद के लिए लालायित, आरुरुक्षुः=चढ़ने के लिए इच्छुक, सुचिरम्=बहुत देर तक, तं वनस्पतिम् आमूलात् अपश्यत्=उस वृक्ष को जड़ से लेकर (ऊपर तक) देखता रहा।

तस्मिन् क्षणे तदालोकनभीतानां शुककुलानाम् असुभिः उत्क्रान्तमिव=उस समय, उसके देखने से भयभीत हुए शुक समूह के (तो) मानो प्राण ही (असुभिः) निकल गये (उत्क्रान्तम्) किमिव हि दुष्करम् अकरुणानाम्=क्योंकि निर्दय लोगों के लिए क्या दुष्कर (कठिन) है अर्थात् कुछ नहीं वे सब कुछ कर सकते हैं। यतः सः=क्योंकि उस बूढ़े भील ने, अनेकतालतुङ्गम्=अनेक ताड़ वृक्षों के समान ऊँचे, (और) गगनचुम्बी डालों के अग्रभाग वाले, (अभ्रंकषशाखाशिखरम्) अपि=भी, तम्=उस, पादपम्=वृक्ष पर, सोपानैरिव अयत्नेनैव=सीढ़ियों के समान, बिना ही प्रयास के, आरुह्य=चढ़कर, तान् अनुपजातोत्पतनशक्तीन्=उन उड़ने की शक्ति जिनमें उत्पन्न नहीं हुई थी ऐसे, कांश्चित् अल्पदिवसजातान्=किन्हीं थोड़े ही दिन (पूर्व) उत्पन्न हुए, गर्भच्छविपाटलान्=गर्भ (से तत्क्षण निकले हुए बच्चे) की छवि (कान्ति) से श्वेतरक्त वर्ण वाले (अतएव) शाल्मलीकुसुमशङ्काम् उपजनयतः=शाल्मली वृक्ष के फूल की भ्रान्ति को उत्पन्न करने वाले, कांश्चित् उद्भिद्यमानपक्षतया=किन्हीं निकलते हुए पंखों के कारण, नलिनसंवर्तिकानुकारिणः=कमलों के नवदलों (संवर्तिका) का अनुकरण करने वाले, कांश्चिदर्कफलसदृशान्=किन्हीं मन्दार के फलों के सदृश, कांश्चित् लोहितायमानचञ्चुकोटीन्=किन्हीं लाल होती हुई चोचों की नोंक वाले (अतएव) ईषद्विघटितदल पुटपाटलमुखानां कमलमुकुलानाम्=किञ्चित्

विकसित पुटकाकार के पत्तों से श्वेतरक्त मुख वाले कमलकलियों की, **श्रियम् उदवहतः** शोभा धारण करते हुए, **कांश्चित् अनवरतशिरः कम्पव्याजेन निवारयतः इव प्रतीकारासमर्थान्**=किन्हीं प्रतीकार करने मे असमर्थ (अतएव निरन्तर शिर के कम्पन के बहाने टोकते हुए से, **शुकशावकान्**=शुकों के बच्चों को, **एकैकशः फलानीव तस्य वनस्पतेः शाखासन्धिभ्यः कोटरान्तरेभ्यश्च अग्रहीत्**=एक एक करके, उस वृक्ष की शाखाओं की सन्धियों से और कोटरों के भीतर से, फलों की तरह पकड़ लिया। **अपगतासूंश्च कृत्वा**=और प्राणरहित (अपगतासून्) करके, **क्षितौ अपातयत्**=पृथिवी पर डाल दिया।

**अनुवाद**—उस शबरमण्डल से कोई एक, मृग मांस को न पाने वाला, मांस भक्षी व्याघ्रादि के समान, भयानक दृष्टि वाला, मांस का इच्छुक बूढ़ा भील, उसी वृक्ष के नीचे थोड़ी देर तक रुका रहा। और उस सेनापति के आंखों से ओझल हो जाने पर, वह भील हमारी आयु को पीता हुआ सा, (क्रोधवश) रुधिर कणों से श्वेतरक्त वर्ण की (तथा) पीली लताकार भौहों की परिधि से भयानक दृष्टि से, शुकसमूह के घोसलों के स्थानों को गिनता हुआ सा, बाज पक्षी के समान, पक्षियों के मांस के स्वाद के लिए लालायित, चढ़ने के लिए इच्छुक, बहुत देर तक उस वृक्ष को जड़ से लेकर ऊपर तक देखता रहा। उस समय उसके देखने से भयभीत हुए शुक समूह के (तो) मानो प्राण ही निकल गये थे। क्योंकि निर्दय लोगों के लिए क्या कठिन है अर्थात् कुछ नहीं वे सब कुछ कर सकते हैं। क्योंकि उस बूढ़े भील ने, अनेक ताल वृक्षों के समान ऊँचे और गगनचुम्बी डालों के अग्रभाग वाले भी उस वृक्ष पर सीढ़ियों की तरह बिना ही प्रयास के, चढ़कर, जिनमें उड़ने की शक्ति नहीं उत्पन्न हुई थी ऐसे, कुछ थोड़े ही दिन (पूर्व) उत्पन्न हुए, गर्भ से तत्क्षण निकले हुए बच्चे) की कान्ति से श्वेतरक्त वर्ण वाले अतएव शाल्मली वृक्ष के फूलों की भ्रान्ति उत्पन्न करने वाले, कुछ निकलते हुए पंखों के कारण, कमलों के नवदलों का अनुकरण करने वाले, कुछ मन्दार के फूलों सदृश, कुछ लाल होती हुई चोंचों की नोंक वाले अतएव किञ्चित् विकसित पुटकाकार के पत्तों से श्वेतरक्त मुख वाली कमलकलियों की शोभा को धारण करते हुए, कुछ प्रतीकार करने में असमर्थ अतएव निरन्तर शिर के कम्पन के बहाने मानो रोकते हुए उन शुकों के बच्चों को, एक-एक करके, उस वृक्ष की शाखाओं की सन्धियो से और कोटरों के भीतर से फलों की तरह पकड़ लिया और प्राण रहित करके पृथिवी पर डाल दिया।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि उन भीलों में से एक बूढ़ा भील, जिसे मृग मांस नहीं मिला था और जिसकी आकृति मांस भक्षी व्याघ्र जैसी भयानक थी, मांस पाने की इच्छा से उसी वृक्ष के नीचे कुछ देर तक रुका रहा। जब सेनापति आँखों से दूर हो गया तब वह उस पेड़ पर चढ़ने की इच्छा से बहुत देर तक उस पर नीचे से ऊपर तक देखता रहा, वह बाज के समान ही पक्षियों के मांस के स्वाद के लिये लालायित था, वह अपनी सफेद भौंहों से घिरी हुई रक्तकण जैसी लाल-

लाल दृष्टि से देख रहा था मानो वह हमारी आयु को सोख लेना चाहता था। इस प्रकार वह शुकों के घोसलों के स्थानों को गिन रहा था। उसे इस प्रकार देखते हुए देखकर पक्षी इतने भयभीत हो गये थे कि मानो उसी क्षण उनके प्राण निकल गये हों। सच है निर्दयी लोगों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं होता। इसके बाद वह ताड़ जैसे ऊँचे और गगनचुम्बी शाखाग्र भाग वाले भी उस वृक्ष पर वह इतनी सरलता से चढ़ गया मानो वह सीढ़ियों से चढ़ रहा हो। ऊपर पहुँच कर उसने उन सभी शुकशावकों को एक-एक करके वृक्ष की शाखाओं की सन्धियों से और खोखलों के भीतर से फलों के समान निकालकर पकड़कर जमीन पर मार कर डाल दिया, उन बच्चों में से कुछ तो अभी उड़ने में भी असमर्थ थे, कुछ अभी कुछ दिन पूर्व ही उत्पन्न हुए थे अतएव उन पर अभी भी गर्भ की लालिमा बनी हुई थी। जिससे वे अभी भी सेमल के फूल जैसे लग रहे थे। कुछ बच्चों के पंख अभी निकल ही रहे थे जिससे वे रक्तमुख कमलकलियों जैसे लग रहे थे, कुछ मन्दार फल जैसे और कुछ लाल-लाल नुकीली चोंच वाले थे, वे न तो उड़ सकते थे और न चोंच से काट ही सकते थे अतएव सब प्रकार से प्रतीकार करने में असमर्थ थे अतएव वे अपना शिर हिलाकर मानों उसे ऐसा करने से रोक रहे थे।

संस्कृत व्याख्या—एकतमस्तु=तेषु कश्चिदेकः जरच्छबरः वृद्धकिरातः, तस्मात् पुलिन्दवृन्दात् भिल्लमण्डलात्, अनासादितहरिणपिशितः—अनासादितम् अलब्धम् हरिणपिशितं मृगमांसं येन स तादृशः, पिशिताशन इव विकृतदर्शनः मांसभक्षकव्याघ्र इव विकृतं भयावहं दर्शनं अवलोकनं यस्य स तादृशः, पिशितार्थी मांसार्थी, तस्मिन्नेव तरुमूले पूर्वोक्त एव शाल्मलीवृक्षमूले मुहूर्तमिव किञ्चित्कालमिव विलम्बं चक्रे। अन्तरिते च तस्मिन् शबरसेनापतौ—तस्मिन् पूर्वोक्ते शबरसैन्यस्वामिनि वृक्षादिना व्यवहिते सति च, स जीर्णशबरः—स पूर्वोक्तः वृद्धकिरातः अस्माकं पक्षिणाम् आयूंषि जीवनसमयान् पिबन्निव पानेन विलुप्तप्रायं कुर्वन्निव, रुधिरबिन्दुपाटलया—शोणितकणैः श्वेतरक्तवर्णया (तथा) कपिलभ्रूलतापरिवेषभीषणया—कपिले पिङ्गले ये भ्रूलते ताभ्यां यः परिवेषः परिधिः तेन भीषणा भयकारिणी तया तादृश्या दृष्ट्या, शुककुलकुलायस्थानानि, शुककुलस्य कीरसमूहस्य कुलायस्थानानि नीडाधारस्थलविशेषान् गणयन् इव—तत्संख्यां कुर्वन्निव, श्येनः शशादनाख्यः मांसभक्षी पक्षिविशेषः स इव, विहगामिषास्वादलालसः—विहगानां पक्षिणाम् आमिषस्य मांसस्य आस्वादे भक्षणे लालसः लोलुपः=तथोक्तः, तं वनस्पतिम्—पूर्वोक्तं शाल्मलीतरुम् आरुरुक्षुः आरोढुमिच्छुः, आमूलात्—मूलं मर्यादीकृत्य तस्मात् मूलभागात् प्रान्तपर्यन्तम् सुचिरम् चिरकालम् अपश्यत व्यलोकयत्। तस्मिन् क्षणे काले, तदालोकनभीतानाम्-तस्य आलोकनेन भीतास्तेषाम् शुककुलानाम् शुकसमूहानाम् असुभिः प्राणैः उत्क्रान्तम् निर्गतमिव, किमिव हि दुष्करमकरुणानाम्—हि—यतः निर्दयानां जीवानां किमिव दुष्करं कठिनं न किमपीत्यर्थः। यतः स वृद्धकिरातः, अनेकतालतुङ्गम्=अनेके ये तालाः तालवृक्षाः तद्वत् तुङ्गम् उन्नतम् (तथा) अभ्रंकषशाखाशिखरम्=अभ्रं मेघं

कषन्ति विलिखन्ति इति अभ्रंकषाणि अभ्रलिहानि शाखानां वृक्षस्कन्धानां शिखराणि अग्रभागाः यस्य तं तादृशमपि तं पादपम्, सोपानैरारोहणानि तैरिव अयत्नेनैव अनायासेनैव आरुह्य, अनुपजातोत्पतनशक्तीन्=अनुपजाता अनुत्पन्ना उत्पतनस्य आकाशगमनस्य शक्तिः सामर्थ्यं येषान्तान् तादृशान्, कांश्चित् अल्पदिवसजातान्—स्वल्पदिनोत्पन्नान्, गर्भच्छविपाटलान्—गर्भस्य तत्क्षणविनिर्गतभ्रूणस्य या छविः कान्तिः तया पाटलान् श्वेतरक्तवर्णान्, अतएव 'शाल्मलीकुसुमशङ्काम्=शाल्मलीतरुपुष्पभ्रान्तिम् उपजनयतः समुत्पादयतः, कांश्चित् उद्भिद्यमानपक्षतया=उद्भिद्यमानौ प्रादुर्भूयमानौ यौ पक्षौ येषाम् तेषां भावः तया, नलिनानां कमलानां संवर्तिका नवदलानि तानि अनुकर्तुं शीलं येषां तान् तादृशान्, कांश्चित् अर्कफलसदृशान्—अर्को मन्दारस्तस्य फलानि तैः सदृशान् तत्तुल्यान्, कांश्चित् लोहितायमानचञ्चुकोटीन्=लोहितायमानाः रक्तायमानाः चञ्चूनां कोट्यः अग्रभागा येषान्तान् तादृशान् अतएव, ईषद्विघटितदलपुटपाटलमुखानाम्=ईषत् किञ्चित् विघटितैः विकसितैः दलपुटैः पुटकाकारपत्रैः पाटलानि श्वेतरक्तवर्णानि मुखानि अग्रभागा येषां तेषां तादृशानाम् कमलमुकुलानाम् कमलकलिकानाम् श्रियं शोभाम्, उद्वहतः धारयतः, कांश्चित् अनवरतशिरः कम्पव्याजेन निरन्तरं यः शिरः कम्पः तस्य व्याजेन मिषेण निवारयतः इव—मास्मान्जहीति निवारणं कुर्वतः=इव प्रतीकारासमर्थान्—प्रतीकारः स्ववधनिवृत्त्युपायः तत्र असमर्थान् शक्तिरहितान्, एवम्भूतान् तान् शुकशावकान्, तस्य पूर्वोक्तस्य वनस्पतेः शाल्मलीवृक्षस्य शाखासन्धिभ्यः स्कन्धग्रन्थिभ्यः कोटरान्तरेभ्यः विपटमध्येभ्यश्च, एकैकशः प्रत्येकं फलानीव अग्रहीत् आदत्त, अपगतासूंश्च कृत्वा विगतप्राणान् विधाय क्षितौ भूमौ अपातयत् अक्षिपत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यत्तेषु किरातेषु कश्चिदेकः, तच्छबरमण्डलादलब्धमृगमांसः मांसभक्षकव्याघ्र इव भीमदर्शनः मांसार्थी वृद्धकिरातः तस्मिन्नेव शाल्मलीतरुमूले घटिकाद्वयमिव विलम्बं चक्रे । तस्मिन् शवरसैन्यस्वामिनि वृक्षादिभिर्व्यवहिते च सति स वृद्धकिरातः अस्माकं जीवनसमयान् पानेन विलुप्तं कुर्वन्निव, शोणितकणैः श्वेतरक्तया पिङ्गलभ्रूलतापरिधिभयकारिण्या दृष्ट्या शुकसमूहस्य नीडाधारस्थानानि गणयन्निव, मांसभक्षी श्येनाख्यपक्षिविशेष इव पक्षिमांसभक्षण लोलुपः स तं तरुमारोढमिच्छुः तं शाल्मलीतरुमामूलात्सुचिरं व्यलोकयत् । तदानीं तस्यालोकनभयत्रस्तानां शुककुलानां प्राणैः विनिर्गतमिव । यतो निर्दयानां जनानां न किमपि जायतेऽसाध्यम् अतः स वृद्धकिरातः बहुतालवृक्षवदुन्नतम् अभ्रंलिहशाखाग्रभागमपि तं तरुम् आरोहणैरिव अनायासेनैवारुह्य, तान् तादृशानपि शुकशावकान् तस्य वृक्षस्य स्कन्धग्रन्थिभ्यः विवरमध्येभ्यश्चाकृष्य एकैकशः फलानीवाग्रहीत् एवं विगतप्राणान् विधाय भूमावक्षिपत् । येषु केचन स्वल्पदिनसमुद्भवाः सद्योजातभ्रूणच्छविश्वेतरक्तवर्णा अतएव शाल्मलीतरुपुष्पभ्रान्तिं जनयन्तः, केचन प्रादुर्भूयमानपक्षतया कमलनवदलानुकारिणः, केचन मन्दारफलसदृशः, केचन रक्तायमान चञ्चुकोटिमन्तः किञ्चिद्विकसितैः पुटकाकारपत्रैः श्वेतरक्ताग्रभागानां कमलकलिकाना

शोभां धारयन्तः, केचन निरन्तरं शिरः कम्पमिषेण मास्माञ्जहीति निवारणं कुर्वन्तः इव स्वदशनिवृत्त्युपायाशक्ताश्चासन् ।

टिप्पणी—कपिलभ्रूलतेति—कुछ-कुछ श्वेतपीत रंग की भौंहों की परिधि के कारण भयानक, 'परिवेषस्तु परिधिः इत्यमरः। श्येन इव—श्येन का दूसरा नाम शशादन भी है। मुहूर्तमिव—"मुहूर्तञ्च घटिकाद्वयम्" लालसः—ललचाया हुआ "लोलुपो लोलुभो लोलो लम्पटो लालसोऽपि सः" कोश। आरुरुक्षुः—सन्नन्त आ+रुह्+उ प्रत्ययः। असुभिः उत्क्रान्तमिव, मानो प्राण निकल गये—उत्प्रेक्षालंकार। अभ्रंकषशाखेति अभ्रंकष=गगनचुम्बी अभ्रंलिह-अत्यधिक ऊँचे। अभ्र+कष् धातु खच् प्रत्यय। गर्भेति—गर्भ से तत्काल निकले हुए बच्चे की कान्ति के समान, नलिनसंवर्तिका—'संवर्तिका नवदलम् इत्यमरः' सोपानैः "आरोहणं स्यात् सोपानम्" सीढ़ियाँ, अर्क=मन्दार आक, पत्रपुट=पुटकाकार पत्ते। सोपानैरिव—उत्प्रेक्षा, ज्जिमिव दुष्करम्—अत्रार्थापत्तिः।

## शुकावस्था वर्णनम्

तातस्तु तं महान्तमकाण्ड एव प्राणहरमप्रतीकार मुपप्लव मुपनतम् अवलोक्य द्विगुणतरोपजातवेपथु र्मरणभयादुद्भ्रान्त तरलतारकां विषादशून्या मश्रुजलप्लुतां दृशमितस्ततो दिक्षु विक्षिपन्, उच्छुष्कतालुरात्मप्रतीकाराक्षमः त्रासस्रस्तसन्धिशिथिलेन पक्षपुटेनाच्छाद्य मां तत्कालोचितप्रतीकारं मन्यमानः स्नेहपरवशो मद्रक्षणाकुलः किंकर्तव्यविमूढः क्रोडभागेन मामवष्टभ्य तस्थौ।

शब्दार्थ—तातस्तु (मेरे) पिता, तं महान्तम्—उस महान्, प्राणहरम्—प्राण नाशक, अप्रतीकारम्=प्रतीकार रहित, उपप्लवम्=उपद्रव या विपत्ति को, अकाण्ड एव=अनवसर पर ही, उपनतम्=आया हुआ, अवलोक्य=देखकर, द्विगुणतरोपजातवेपथुः—द्विगुणित कंपन को प्राप्त होकर, मरणभयात्=मृत्यु के भय से, उद्भ्रान्ततरलतारकाम्=भ्रमित चञ्चल पुतलियों वाली, विषादशून्याम्=शोक के कारण लक्ष्य रहित, अश्रुजलप्लुताम्=आँसुओं से भरी हुई, दृशम्=दृष्टि को, इतस्ततो दिक्षु विक्षिपन्=इधर-उधर दिशाओं में डालते हुए, उच्छुष्कतालुः=बिल्कुल सूखे हुए तालु वाले, आत्मप्रतीकाराक्षमः=अपनी रक्षा के उपाय में असमर्थ, (होकर) त्रासस्रस्तसन्धिशिथिलेन=भय से विदीर्ण (स्रस्त) अस्थिबन्धनों (सन्धि) के कारण शिथिल, पक्षपुटेन=दोनों पंखों से, माम् आच्छाद्य=मुझे ढककर, तत्कालोचितप्रतीकारं मन्यमानः=इसी को उस समय का रक्षोपाय मानते हुए, स्नेहपरवशः मद्रक्षणाकुलः=प्रेम से पराधीन मेरी रक्षा में व्यग्र, किंकर्तव्यविमूढः=इस समय क्या करना चाहिए यह न जानने वाले, क्रोडभागेन माम् अवष्टभ्य=उत्सङ्गभाग से मुझे दबा कर, तस्थौ=बैठ गये।

अनुवाद—मेरे पिता उस महान प्राणनाशक, प्रतीकार रहित विपत्ति को अनवसर पर ही आया हुआ देखकर, द्विगुणित कम्पन को प्राप्त होकर, मृत्यु के भय

से भ्रमित चञ्चल पुतलियों वाली, शोक के कारण लक्ष्यरहित, आंसुओं से भरी हुई दृष्टि को इधर-उधर दिशाओं में डालते हुए, बिल्कुल सूखे हुए तालु वाले अपनी रक्षा के उपाय में असमर्थ, भय से विदीर्ण अस्थिबन्धनों के कारण शिथिल, दोनो पंखों से मुझे ढककर, इसी को उस समय का रक्षोपाय मानते हुए, प्रेमपरवश, मेरी रक्षा में व्यग्र, इस समय क्या करना चाहिए, यह न जानने वाले उत्सङ्ग भाग से मुझे दबाकर बैठ गये।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि मेरे पिता ने यह समझ लिया था कि इस आकस्मिक प्राणनाशक विपत्ति से बचने का कोई उपाय नहीं है, इस मृत्यु के भय से उनके शरीर का कम्पन दूना हो गया था, आंखों की पुतलियां घूमने लगी थीं और वे दुःख से सूनी अश्रुपूरित दृष्टि से इधर-उधर देखने लगे थे उनका तालु सूख गया था और अब उनमें अपने को बचा पाने की शक्ति न रह गई थी, भय के कारण उनके सभी अस्थिबन्ध ढीले पड़ गये थे फिर भी उन्होंने मुझे अपने पंखों से छिपा लिया था और अब वे केवल मेरी रक्षा के लिए व्याकुल हो रहे थे, वे यह न जानते थे कि इसकी रक्षा का और क्या उपाय हो सकता है अतः वे मुझे स्नेहवश अपनी छाती से चिपकाकर और इसे ही रक्षोपाय जानकर चुपचाप बैठ गये।

संस्कृत व्याख्या—तातस्तु मज्जनकस्तु तं महान्तं दीर्घतरम् प्राणहरं जीवित-नाशकम् अप्रतीकारम् रक्षोपायशून्यम् अकाण्ड एव असमय एव उपनतं प्राप्तम् उपप्लवम् उपद्रवम् अवलोक्य निरीक्ष्य, द्विगुणतरोपजातवेपथुः=वृद्धतया सहज शरीर कम्पाद् द्विगुणतरः उपजातः समुत्पन्नः वेपथुः कम्पः यस्य स तथोक्तः मरणभयात् मृत्युत्रासात् उद्भ्रान्ततरलतारकाम्—उद्भ्रान्ते उद्भ्रमिते तरले चञ्चले तारके कनीनिके यस्यास्ताम्, विषादशून्याम्=विषादेन शोकेन शून्या लक्ष्यरहिता, ताम् तथोक्ताम्, अश्रुजलप्लुताम्—अश्रुजलेन नेत्राम्बुना प्लुता प्लाविता ताम् तादृशीम् दृशम् दृष्टिम् इतस्ततः समन्ततः दिक्षु विक्षिपन् विस्तारयन्, उच्छुष्कतालुः—उच्छुष्कं प्राबल्येनानार्द्रं तालु काकुदं यस्य स तादृशः, आत्मप्रतीकाराक्षमः आत्मनः यः प्रतीकारः रक्षणोपायः तत्र अक्षमः असमर्थः तथोक्तः, त्रासस्रस्तसन्धिशिथिलेन=त्रासेनभयेन स्रस्तैः विदीर्णैः सन्धिभिः अस्थिबन्धैः शिथिलेन तथोक्तेन पक्षपुटेन छदद्वयेन माम् वैशम्पायनम् आच्छाद्य आवृत्य, तत्कालोचितप्रतीकारं मन्यमानः-तत्कालं तत्क्षणं उचितप्रतीकारं समुचितरक्षोपायं जानन्, स्नेहपरवशः प्रेमपराधीनः मद्रक्षणाकुलः मत्त्राणव्याकुलः किंकर्तव्यविमूढः—किमिदानीं विधेय मित्यत्रविषये सन्दिग्धबुद्धिः क्रोडभागेन स्वोत्सङ्गभागेन माम् वैशम्पायनम् अवष्टभ्य आवृत्य तस्थौ।

संस्कृत सरलार्थ—वैशम्पायनः कथयति यत्तदानीं मज्जनकस्तु तादृशं प्राण-नाशकं दीर्घतरं प्रतीकारशून्य मनवसर एवोपस्थित मुपद्रवमालक्ष्य द्विगुणतरोत्पन्नकम्पः मृत्युत्रासादुद्भ्रमितचञ्चलतारकां शोकेन लक्ष्यशून्या मश्रुप्लावितां दृष्टिं समन्ततोदिक्षु विस्तारयन्, अत्यधिकामार्द्रतालुः स्वरक्षोपायासमर्थः भयविदीर्णास्थिबन्धैः शिथिलेन

पक्षद्वयेन मामावृत्य तत्क्षणे रक्षोपायं जानन् प्रेमपराधीनः मद्रक्षाव्याकुलः किमत्रविधेय-मित्यत्रविषये संदिग्धबुद्धिः स मामुत्सङ्गभागेनावृत्य तस्थिवान् ।

टिप्पणी—अकाण्डे—अनवसर पर ही अचानक ही, अप्रतीकारम्=जिसका कोई उपाय न हो, उपप्लव=उपद्रव या संकट, उपप्लवः सैंहिकेये विप्लवोत्पातयोरपि इत्यमरः तरलतारका=चञ्चल पुतली, त्रासस्रस्तेति—भयवश शरीर के अस्थिबन्धों के टूट जाने से शिथिल, अवष्टभ्य=चिपकाकर ।

**असावपि पापः क्रमेण शाखान्तरैः सञ्चरमाणः कोटरद्वारमागत्य जीर्णासितभुजङ्गभोगभीषणं प्रसार्य विविधवनवराहवसाविस्रगन्धि करतलम् अनवरत कोदण्डगुणा कर्षण व्रणाङ्कितप्रकोष्ठम्, अन्तकदण्डानुकारिणं वामबाहु मति नृशंसो मुहुर्मुहुर्दत्तचञ्चुप्रहारम् उत्कूजन्तमाकृष्य तातमप-गतासुमकरोत् । माम्तु स्वल्पशरीरत्वाद् भयसंपीडिताङ्गत्वात् सावशेषत्वा-च्चायुषः कथमपि तत्पक्षपुटान्तरगतं नालक्षयत् । उपरतञ्च तमवनितले शिथिलशिरोधर मधोमुखममुञ्चत् ।**

**अहमपि तच्चरणान्तरे निवेशितशिरोधरो निभृतमङ्कनिलीनस्तेनैव । सहापतम् । आयुषोऽवशिष्टतया तु पवनवशात् पुञ्जितस्य महतः शुष्कपत्र-राशेरुपरि पतितमात्मानमपश्यम् । अङ्गानि येन मे नाशीर्य्यन्त ।**

शब्दार्थ—अतिनृशंसः—अतिक्रूर, असौ अपि पापः=उस पापी (पापः) ने भी, क्रमेण=क्रम क्रम से, शाखान्तरैः सञ्चरमाणः=दूसरी डालियों से चलते हुए, कोटरद्वारमागत्य (मेरे) कोटर के द्वार पर आकर, जीर्णासितभुजङ्गभोगभीषणम्=पुराने (जीर्ण) काले (असित) सर्प के शरीर (भोग) के समान भयानक, विविधवन-वराहवसाविस्रगन्धि करतलम्=बहुत से जंगली शूकरों की चर्बी (वसा) के कारण कच्चे मांस की गन्ध से युक्त (विस्रगन्धि) हथेली वाला (करतल) अनवरतकोदण्ड-गुणाकर्षणव्रणाङ्कितप्रकोष्ठम्=लगातार धनुष् की (कोदण्ड) प्रत्यञ्चा (गुण) के खींचने (आकर्षण) से (उत्पन्न) घावों (व्रण) से चिह्नित (अंकित) प्रकोष्ठ (पहुँचा—कलाई और कुहनी के बीच का भाग) वाली, अन्तकदण्डानुकारिणम्=यमराज के दण्ड का अनुकरण करने वाली, वामबाहुम्=बांई भुजा को, प्रसार्य्य=फैलाकर, मुहुर्मुहुर्दत्तचञ्चुप्रहारम्=बार-बार चोंच से प्रहार करने वाले, उत्कूजन्तम्=जोर से चीखते हुए, तातमाकृष्य=(मेरे) पिता को खींचकर, अपगतासुम् अकरोत्=गतप्राण कर दिया । माम्तु—मुझे तो, स्वल्पशरीरत्वात्=छोटे शरीर वाला होने के कारण, भयसंपीडिताङ्गत्वात्=भय के कारण सिकुड़े अंगों वाला होने के कारण, साव-शेषत्वाच्चायुषः=और आयु के शेष होने के कारण, कथमपि=किसी तरह, तत्पक्षपुटान्तर्गतम्=पिता के दोनों पंखों के भीतर छिपे हुए (मुझको) नालक्षयत्—नहीं देखा । उपरतम्—मरे हुए, शिथिलशिरोधरम्=शिथिल गरदन वाले, अधोमुखम्=नीचे लटके हुए मुख वाले, तम्=उस मेरे पिता को, अवनितले=भूमि पर, अमुञ्चत्=गिरा दिया ।

तच्चरणान्तरे निवेशितशिरोधरः=उनके (पिता के) पैरों के बीच (अपनी) गरदन (शिरोधरः) डाले हुए (निवेशित) निभृतम्=चुपचाप, अङ्कनिलीनः=गोदी में छिपे हुए, अहमपि=मैं भी, तेनैव सह=उनके ही साथ, अपतम्=गिर पड़ा। आयुषोऽवशिष्टतया तु=किन्तु आयु के शेष रहने के कारण, पवनवशात्=वायु के संयोग से, पुञ्जितस्य=एकत्रित हुए, महतः=बहुत बड़े, शुष्कपत्रराशेः उपरि=सूखे पत्तों के ढेर पर, (मैंने) पतितम्=गिरा हुआ, आत्मानम्=अपने को, अपश्यम्=देखा। येन मे अङ्गानि न अशीर्य्यन्त=जिससे मेरे अंग नहीं टूटे।

अनुवाद—अति क्रूर उस पापी ने भी क्रम क्रम से दूसरी डालियों से चलते हुए, मेरे कोटर के द्वार पर आकर, पुराने काले सर्प के शरीर के समान भयानक, बहुत से जंगली शूकरों के चर्बी के कारण कच्चे मांस की गन्ध से युक्त हथेली वाले, लगातार धनुष् की डोरी खींचने से (उत्पन्न) घावों से चिह्नित प्रकोष्ठ वाले, यमदण्ड का अनुकरण करने वाले बायें हाथ को फैलाकर बार-बार चोंच प्रहार करने वाले, जोर से चीखते हुए (मेरे) पिता को खींचकर गत प्राण कर दिया। परन्तु उनके दोनों पंखों के बीच (छिप कर) पड़े हुए मुझको तो छोटे शरीर वाला होने के कारण, भयवश सिकुड़े हुए अंगों वाला होने के कारण, और आयु के शेष होने के कारण, किसी तरह न देख पाया और शिथिल गरदन वाले, नीचे लटके हुए मुख वाले मरे हुए (पिता को) भूमि पर गिरा दिया।

उनके पैरों के बीच अपनी गरदन डाले हुए, चुपचाप उनकी गोद में छिपा हुआ मैं भी उनके साथ ही गिर पड़ा। किन्तु आयु के अवशेष होने के कारण, वायु के संयोग से एकत्रित हुए बहुत बड़े सूखे पत्तों के ढेर पर मैंने अपने को गिरा हुआ देखा। जिससे मेरे अंग नहीं टूटे।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि वह पापी वृद्ध भील, क्रम क्रम से दूसरी डालियों से होता हुआ मेरे कोटर के द्वार पर आ पहुँचा। और उसने बूढ़े काले सांप के शरीर जैसी भयानक बाईं भुजा को फैलाकर उस अति क्रूर ने, बार-बार चोंच से मारते हुए तथा जोर-जोर चीखते हुए भी पिता को खींचकर मार डाला, उसकी हथेलियों से बहुत से वन्य शूकरों की चर्बी की गन्ध आ रही थी, उसके प्रकोष्ठ पर धनुष् की डोरी खींचते रहने से घाव के चिह्न बन गये थे। और उसकी भुजा यमराज के दण्ड के समान लग रही थी। मेरा शरीर छोटा था, और भय के कारण सिकुड़ा हुआ था तथा अभी मेरी आयु शेष थी और मैं पिता के पंखों के भीतर छिपा हुआ था इसीलिए किसी भी प्रकार उसने मुझे नहीं देख पाया। इसके बाद उसने नीचे लटके हुए मुख वाले तथा शिथिल गरदन वाले मरे हुए मेरे पिता को भूमि पर गिरा दिया।

चूँकि मैं भी पिता के पैरों के बीच अपनी गरदन डाले हुए चुपचाप उसकी गोद में छिपा हुआ था अतएव उनके साथ ही गिर पड़ा। मेरी आयु अभी शेष थी

अतएव वायु के संयोग से एकत्रित हुए बहुत बड़े सूखे पत्तों के ढेर पर मैंने अपने को पड़ा हुआ देखा, इसी कारण मेरे अंग नहीं टूटे और मैं बच गया।

संस्कृत व्याख्या—असौ अपि पापः=सोऽपि पापिष्ठः अतिनृशंसः=अतिक्रूरः वृद्धकिरातः, क्रमेण पर्यायेण, शाखान्तरैः-स्कन्धान्तरैः सञ्चरमाणः-प्रवर्तमानः, कोटर-द्वारमागत्य=ममनिष्कुह द्वारदेशं प्राप्य, जीर्णासितभुजङ्गभोगभीषणम्—जीर्णस्य परिणतवयसः असितस्य कृष्णवर्णस्य भुजङ्गस्य सर्पस्य भोगः शरीरम् तद्वत् भीषणम् भयानकम् तादृशम्, विविधवनवराहविस्रगन्धि करतलम्—विविधा अनेके ये वनवराहाः अरण्यशूकरा स्तेषां वसा स्नायुस्तया विस्रगन्धि आमगन्धि करतलम् हस्ततलं यस्य तम् तथोक्तम्, अनवरतकोदण्डगुणाकर्षण व्रणाङ्कित प्रकोष्ठम्=अनवरतं निरन्तरं कोदण्डस्य धनुषः ये गुणाः प्रत्यञ्चाः तेषाम् आकर्षणेन आक्षेपेण ये व्रणाः किणाः तैः अङ्कितः चिह्नितः प्रकोष्ठः यस्य स तम् तथोक्तम्, अन्तकदण्डानुकारिणम्—यमदण्ड तुल्यम्, वामबाहुम्—सव्यभुजम्, प्रसार्य—विवरमध्ये विस्तार्य, मुहुर्मुहुः बारं बारं दत्तचञ्चुप्रहारम्—दतः कृतः चञ्चुप्रहारः चञ्चुघातः येन तम् तादृशम्, उत्कूजन्तम्—उच्चस्वरेण शब्दं कुर्वन्तम् तातम् मज्जनकम् आकृष्य कोटराद् बहिरानीय अपगतासुम् विगतप्राणम् अकरोत्। स्वल्पशरीरत्वात् अत्यल्पदेहत्वात्, भयसंपीडिताङ्गत्वात्—भयेन त्रासेन संपीडितानि सङ्कुचितानि अङ्गानि शरीरावयवाः यस्य स तस्य भावस्तस्मात् त्राससङ्कुचितगात्रत्वात्, सावशेषत्वाच्चायुषः=आयुषः जीवितव्यस्य सावशेषत्वात् अवशिष्टत्वात् च, तत्पक्षपुटान्तर्गतम्=तस्य तातस्य पक्षपुटान्तरे छदपुटमध्ये गतं प्राप्तम् माम् वैशम्पायनम् तु (स) कथमपि न अलक्षयत् नापश्यत्। उपरतम्=प्राणरहितं मृतम् अतएव शिथिलशिरोधरम्—शिथिला शिरोधरा ग्रीवा यस्य तम् तादृशम्, अधोमुखं च तम् अवनितले भूमितले अमुञ्चत् न्यपातयत्।

तच्चरणान्तरे—तस्य जनकस्य चरणान्तरे पादमध्ये निवेशितशिरोधरः—निवेशिता स्थापिता शिरोधरा=ग्रीवा येन स तथोक्तः, निभृतम् निःशब्दम्, अङ्कविलीनः उत्सङ्गान्तर्हितः अहम् वैशम्पायनः अपि तेनैव जनकेन सहैव अपतम्। आयुषोऽवशिष्टतया तु=आयुषः जीवनसमयः अवशिष्टतया सावशेषत्वेन, पवनवशात् वायुसंयोगात् पुञ्जितस्य एकत्रीभूतस्य महतः विशालस्य शुष्कपत्रराशेः उपरि शुष्क-दलसमूहस्योपरि (अहम्) आत्मानं पतितम् स्रस्तम् अपश्यम्, येन हेतुना मे मम अङ्गानि शरीरावयवाः न अशीर्यन्त विगलितानि खण्डितानि वा नाभवन्।

संस्कृत सरलार्थ—वैशम्पायनः कथयति यत्तदनन्तरम् अतिक्रूरः पापिष्ठः सोऽपि वृद्धकिरातः पर्यायेण तत्तत्स्कन्धान्तरैः प्रवर्तमानः मम कोटरद्वारमुपेत्य, पुरातन-कृष्णसर्पस्य शरीरमिव भयानकम्, निरन्तरधनुः प्रत्यञ्चाकर्षणोत्पन्नव्रणचिह्नित-प्रकोष्ठम्, अनेकारण्यशूकराणां स्नायुभिः आमगन्धि हस्ततलम्, यमदण्डतुल्यञ्च सव्य-भुजम् विवरमध्ये विस्तार्य, बारं बारं कृतचञ्चुघातम् उच्चस्वरेण कूजन्तम् मम जनकं कोटराद् बहिरानीय विगतप्राणमकरोत्। अत्यल्पदेहत्वात् त्राससङ्कुञ्चित-गात्रत्वात् जीवनसमयस्यावशिष्टत्वाच्च पितृपक्षपुटमध्यगतं मान्तु कथमपि नापश्यत्।

मृत मतएव शिथिलग्रीवम् अधोमुखं तं मम पितरं भूमौ न्यपातयत् पितृपादमध्ये स्थापितग्रीवः निःशब्दम् पित्रुत्सङ्गान्तर्हितः अहं वैशम्पायनोऽपि तेनैव सह न्यपतम्। जीवनसमयस्य सावशेषतया वायुसंयोगात् एकत्रीभूतस्य विशालस्य शुष्कपत्रसमूहस्योपरि निपतितमात्मानमहमपश्यम्, येन हेतुना मम गात्राणि न विखण्डितानि।

**टिप्पणी—पापः**—पापी पापिष्ठ, **क्रमेण**=बारी-बारी से, **जीर्णेति**—पुरातन या वृद्ध जो (असित) काला **भुजङ्ग**=सर्प, उसके भोग=शरीर अथवा फन "सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गः इत्यमरः, "अहेः शरीरं भोगः स्यात्" भोगः सुखे स्त्र्यादिभृता वहेश्च फणकाययोः इत्यमरः। **प्रसार्य**—प्र+सृ+णिच्+त्वा-ल्यप्। वसा=चर्बी स्नायु, **विस्रगन्धि**=कच्चे मांस की गन्ध वाला 'विस्रं स्यादामगन्धि यत्' इत्यमरः। केवल विस्र का ही अर्थ कच्चे मांस की गन्ध वाला है जैसा कि ऊपर कोश में बतलाया गया है—अतः 'स्रिकरतलम्' इतना ही पाठ उचित है, गन्धिपद प्रयोग से अधिकपदत्व दोष हो सकता है। **अनवरेतति**=कोदण्ड=धनुष्, गुण=प्रत्यञ्चा, प्रण=किण; डोरी की (रगण से पड़ने वाला काला चिह्न, **प्रकोष्ठः**—कूर्पराधः प्रदेश, कक्षान्तरे प्रकोष्ठः स्यात् प्रकोष्ठः कूर्परादधः, कूर्परश्च कफोणिस्तु कूर्परः—कोश। चञ्चु=त्रोणी, प्रहार=आघात। जीर्णेत्यादि वाक्यांश में लुप्तोपमालंकार है इसी प्रकार अन्तकेत्यादि में आर्थीलुप्तोपमा है। **निवेशितशिरोधरः** गरदन को छिपाये हुए।

## शुकेन स्वावस्थावर्णनम्

**यावच्चासौ तस्मात्तरुशिखरान्नावतरति तावदहमवशीर्ण पर्णसवर्णत्वा दस्फुटोपलक्ष्यमाणमूर्तिः पितरमुपरतमुत्सृज्य नृशंस इव प्राणपरित्यागयोग्येऽपि काले बालतया कालान्तरभुवः स्नेहरसस्यानभिज्ञः जन्मसहभुवा भयेनैव केवल मभिभूयमानः किञ्चिदुपजाताभ्यां पक्षाभ्यामीषत्कृतावष्टम्भौ लुठन्नितस्ततः कृतान्तमुखकुहराविव विनिर्गत मात्मानं मन्यमानः नातिदूरवर्तिनः, शबर-सुन्दरी कर्णपूर रचनोपयुक्तपल्लवस्य, सङ्कर्षण पट नीलच्छाययोपहसत इव गदाधरदेहच्छविं, अच्छैः कालिन्दीजलच्छेदैरिव विरचितच्छदस्य, वनकरिम-दोपसिक्तकिसलयस्य, विन्ध्याटवीकेशपाशश्रियमुद्वहतः, दिवाप्यन्धकारित शाखान्तरस्य, अप्रविष्ट सूर्यकिरणमतिगहन मपरस्येव पितुरुत्सङ्ग मतिमहतस्तमालविटपिनो मूलदेशमविशम्।**

**शब्दार्थ—यावच्चासौ**=और जब तक कि वह (भील) **तस्मात् तरुशिखरात्**—उस वृक्ष की चोटी से, **न अवतरति**=नहीं उतरता है, **तावत्**=तब तक, **अवशीर्ण-पर्णसवर्णत्वात्**=गिरे हुए (अवशीर्ण) पत्तों के (पर्ण) समान रंग वाला होने के कारण (सवर्णत्वात्) **अस्फुटोपलक्ष्यमाणमूर्तिः**=स्पष्ट रूप से न दिखाई पड़ती हुई (अस्फुटो-पलक्ष्यमाण, आकृति वाला, (मूर्तिः) **पितरमुपरतमुत्सृज्य**=मरे हुए पिता को छोड़कर, **नृशंस इव**=निर्दय की तरह, **प्राणपरित्यागयोग्येऽपि काले**=प्राणों के परित्याग के

**योग्य भी समय** में भी, **बालतया**=बचपन के कारण, **(कालान्तरभुवः) स्नेहरसस्यानभिज्ञः**=कालान्तर में होने वाले (भुवः) प्रेम विषयक रस को न जानने वाला, **जन्मसहभुवा भयेनैव**=जन्म के साथ ही उत्पन्न होने वाले भय से ही, **केवलमभिभूयमानः**=केवल पराभूत होता हुआ, **किञ्चिदुपजाताभ्यां (पक्षाभ्याम्)** कुछ-कुछ निकले हुए पंखों से, **ईषत्कृतावष्टम्भः**=थोड़ा-सा सहारा लिये हुए, **इतस्ततः लुठन्**=इधर-उधर लुढकता हुआ, (और) **कृतान्तमुखकुहरादिव विनिर्गतमात्मानं मन्यमानः**=अपने को मानो यमराज के (मुख विवर) कुहर से निकला हुआ सा मानता हुआ, **अहम्**=मैं, **समीपवर्तिनः**=पास वाले, **शबरसुन्दरीकर्णपूर रचनोपयुक्तपल्लवस्य**=भीलों की स्त्रियों के कर्णपूरों की रचना के लिए उपयुक्त पल्लवों वाले, **सङ्कर्षणपटनीलच्छायया उपहसतः इव गदाधरदेहच्छविम्**=मानो बलराम (सङ्कर्षण) के वस्त्र के समान नीली कान्ति से गदाधारी विष्णु के शरीर की शोभा का उपहास करते हुए जैसा, **अच्छैः कालिन्दीजलच्छेदैरिव विरचितच्छदस्य**=मानो स्वच्छ (अच्छैः) यमुना जल के टुकड़ों से छेदैः (निर्मित) पत्तों वाले, **वनकरिमदोपसिक्तकिसलयस्य**=वन के गजों के मद से सिञ्चित (उपसिक्त) पल्लवों वाले, **विन्ध्याटवीकेशपाशश्रियमुद्वहतः**=दण्डकारण्य के केशसमूह की कान्ति को धारण करते हुए, **दिवाप्यन्धकारित शाखान्तरस्य**=दिन में भी (दिवापि) अन्धकारयुक्त शाखाओं के मध्यभाग वाले, **अप्रविष्टसूर्य किरणम्**=सूर्य किरणों के प्रवेश से रहित, **अतिगहनम्**=बहुत घने, **अपरस्येव पितुः उत्सङ्गम्**=दूसरे पिता की गोदी जैसे, **अतिमहतः तमालविटपिनः**=अतिविशाल तमालवृक्ष के, **मूलदेशम् अविशम्**=जड़ भाग में घुस गया।

**अनुवाद**—और जब तक कि वह (भील) उस वृक्ष की चोटी से नहीं उतरता है तब तक ही, गिरे हुए पत्तों के समान वर्णवाला होने के कारण, स्पष्ट रूप से न दिखाई पड़ती हुई आकृति वाला, मरे हुए पिता को छोड़कर निर्दय की तरह, प्राणों के परित्याग के योग्य समय पर भी, बचपन के कारण, कालान्तर में होने वाले प्रेम विषयक रस को न जानने वाला, जन्म के साथ उत्पन्न होने वाले भय से ही केवल पराभूत होता हुआ, कुछ-कुछ निकले हुए पंखों से थोड़ा-सा सहारा लिये हुए, इधर-उधर लुढ़कता हुआ, अपने को मानो यमराज के मुख विवर से निकला-सा मानता हुआ, मैं, पास वाले, भीलों की स्त्रियों के कर्णाभूषणों की रचना के लिए उपयुक्त पल्लवों वाले, मानो बलराम के वस्त्र के समान नीलकान्ति गदाधारी विष्णु के शरीर की शोभा का उपहास करने वाले, मानो स्वच्छ यमुना जल के टुकड़ों से निर्मित पत्तों वाले, वन के गजों के मद से सिञ्चित पल्लवों वाले, विन्ध्याटवी के केशकलाप की कान्ति को धारण करते हुए, दिन में भी अन्धकारयुक्त शाखाओं के मध्यभाग वाले, सूर्य किरणों के प्रवेश से रहित, अतिसघन, दूसरे पिता की गोदी जैसे, उस अतिविशाल तमालवृक्ष के मूलभाग में प्रविष्ट हो गया।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि जब तक वह भील उस वृक्ष की चोटी से नहीं उतरता है तब तक ही मैं मरे हुए पिता को छोड़कर उनकी गोद से

निकलकर, एक विशाल और समीपवर्ती तमाल वृक्ष के मूलभाग में घुस गया, यह वृक्षमूल सघन एवं सूर्य किरणों से रहित होने से शीतल था इसीलिए मानो वह दूसरे पिता की गोद ही था। इस समय मेरा रंग भी सूखे पत्तों के समान ही था, इसीलिए उस पत्तों के ढेर पर मेरा शरीर स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ रहा था। यद्यपि पिता के मरने पर उस समय मुझे भी मर जाना ही उचित था, उसे छोड़कर अपनी रक्षा के लिए वहाँ से जाना उचित न था फिर भी बचपन के कारण उस समय मुझे उस प्रेम का आभास न था जो कि कालान्तर में सभी में उत्पन्न होता है, उस समय तो मैं उस सहजात भय से ही आक्रान्त था, अतएव कुछ-कुछ निकले हुए ही पंखों का सहारा लेकर इधर उधर लुढकता हुआ मैंने उस समय अपने को यम के मुख से निकला हुआ समझकर उस वृक्ष के मूल में घुसकर अपनी रक्षा की। उस तमाल वृक्ष के अभिनव किसलय भीलिनियों के कानों के आभूषण बनने योग्य थे। उसके नीले पत्ते थे जिससे ऐसा लगता था कि मानो वह बलराम के नील वस्त्र के समान अपनी नीली कान्ति से भगवान् के नीले शरीर की हँसी उड़ा रहा हो, उसके गहरे नीले पत्ते ऐसे मालूम पड़ते थे कि मानो वे यमुना के नीले जल के टुकड़ों से बने हुए हों, और उनसे जो सुगन्धि निकल रही थी उससे ऐसा लगता था कि मानो वे मदजल से सींचे गये हों और वह विन्ध्याटवी रूपी नायिका के जूड़े के समान था, वह इतना घना था कि सूर्य की किरणें उसमें प्रवेश नहीं कर पातीं थीं, दिन में अन्धकार छाया रहता था।

**संस्कृत व्याख्या**—यावच्चासौ—यावता कालेन असौ जीर्णशबरः तस्मात् तरुशिखरात्=पूर्वोक्तात् शाल्मलीवृक्षस्याग्रभागात्, न अवतरति—न उत्तरति, तावत्=तावता समयेन, अवशीर्णपर्णसवर्णत्वात्—अवशीर्णानाम् तत्क्षणविगलितानाम् अशुष्कानामित्यर्थः पर्णानां तरुदलानां सवर्णत्वात् तुल्यवर्णत्वात् हरितवर्णत्वादित्यर्थः, अस्फुटोपलक्ष्यमाणमूर्तिः, अस्फुटम् अस्पष्टं उपलक्ष्यमाणा समवलोक्यमाना मूर्तिः आकृतिः यस्य स तादृशः, नृशंसः इव—निष्ठुर इव, उपरतम् विगतप्राणं मृतमित्यर्थः पितरं जनकं, उत्सृज्य—परित्यज्य, प्राणत्यागयोग्येऽपि काले—जीवनोत्संगोचितेऽपि समये, बालतया शिशुभावेन, कालान्तरभुवः स्नेहरसस्यानभिज्ञः=कालान्तरभुवः—बाल्यातिरिक्तवयसि जननशीलस्य स्नेहरसस्य शय्यासनभोजनादिषु प्रेमविषयकरसस्य अनभिज्ञः अज्ञाता, जन्मसहभुवा—उत्पत्तिकालादारम्य सम्भवेन भयेनैव त्रासेनैव, केवलं समन्ततः अभिभूयमानः—पीड्यमानः, किञ्चिदुपजाताभ्याम्—ईषदुत्पन्नाभ्याम् पक्षाभ्याम् छदाभ्याम्, ईषत्कृतावष्टम्भः—ईषत् किञ्चित् कृतः विहितः अवष्टम्भः आधारः आश्रयो वा यस्य स तादृशः, इतस्ततः लुठन्=पृथिव्यामितस्ततः निपतन् कृतान्तमुखकुहरादिव—कृतान्तस्य यमस्य मुखमिव मुखं यस्य तथाविधात् कुहरात्, विवरात्, विनिर्गतम् बहिरागतम्, आत्मानं मन्यमानः—निजं बुध्यमानः, अहम् वैशम्पायनः, नातिदूरवर्तिनः—समीपस्थायिनः, शबरसुन्दरीकर्णपूररचनोपयुक्तपल्लवस्य-शबराणां भिल्लानां सुन्दर्यः स्त्रियः तासाम् कर्णपूराणि कर्णाभरणानि तेषां रचना

निर्मितिः तत्र उपयुक्ता उपयोगिनः पल्लवाः किसलयाः यस्य तस्य तादृशस्य, सङ्कर्षण-पटनीलच्छाययोपहस त इव गदाधरदेहच्छविम्—सङ्कर्षणः बलभद्रः तस्य पटम् वस्त्रं तद्वत् नीलच्छायया नीलकान्त्या, गदाधरस्य श्रीकृष्णस्य देहच्छविम् शरीरकान्तिम् उपहसतः उपहासं कुर्वत इव विद्यमानस्य, अच्छैः-स्वच्छैः, कालिन्दीजलच्छेदैः यमुना-जलखण्डैरिव, विरचितच्छदस्य निर्मितवस्त्रस्य तादृशस्य, वनकरिमदोपसिक्तकिसलयस्य-वनकारिणः अरण्यगजस्य मदेन दानवारिणः उपसिक्तानि सिञ्चितानि किसलयानि यस्य तस्य तादृशस्य, विन्ध्याटवीकेशपाशश्रियमुद्वहतः=विन्ध्याटवी दण्डकारण्यम् तस्याः केशपाशः केशकलापः तस्य श्रियम् शोभाम् उद्वहतः धारयतः, दिवापि—दिनेऽपि, अन्धकारितशाखान्तरस्य, अन्धकारितानि जनितान्धकाराणि शाखान्तराणि स्कन्धाभ्यन्तरप्रदेशा यस्य तस्य तथोक्तस्य, अतिमहतः अतिविशालस्य तमालविटपिनः तमालवृक्षस्य अपरस्य अन्यस्य पितुः जनकस्य उत्सङ्ग् क्रोडमिव, अप्रविष्टसूर्य-किरणम्—अप्रविष्टानान्तर्गतः सूर्यकिरणाः रविरश्मयः यस्मिन् स तम् तादृशम्, अतिगहनम् अतिसघनम् मूलदेशम् मूलभागम् अविशम् प्रविष्टवान् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदसौ वृद्धकिरातः यावता कालेन तस्मात् शाल्मलीवृक्षाग्रभागात् नोत्तरति तावता कालेन तत्क्षणविगलिततरुपत्रतुल्य-हरितवर्णत्वात् अस्पष्टावलोक्यमानाकृतिः, अतिनिष्ठुर इव मृतं स्वजनकं परित्यज्य, प्राणोत्सर्गोचितकालेऽपि शिशुत्वेन बाल्यातिरिक्तवयसि जननशीलस्य प्रेमविषयकरसस्य अज्ञाता उत्पत्तिकालादारभ्य सम्भवेन त्रासेनैव केवलं स्वाधीनीक्रियमाणः ईषदुत्पन्न-पक्षाभ्याम् किञ्चिद्विहिताधारः पृथिव्यामितस्ततो निपतन्, यममुखविवरादिव बहिरागतमात्मानं बुध्यमानोऽहम् समीपवर्तिनः, भिल्लस्त्रीकर्णाभरणनिर्मित्युपयोगि-किसलयस्य, बलरामवस्त्रवन्नीलकान्त्या श्रीकृष्णशरीरशोभामुपहसत इव विद्यमानस्य, स्वच्छैः यमुनाजलखण्डैरिव निर्मितपल्लवस्य, अरण्यगजमदवारिणा सिञ्चितपल्लवस्य, विन्ध्याटवीकेशकलापशोभां धारयतः, दिनेऽपि अन्धकारावृतस्कन्धाभ्यन्तर प्रदेशस्य अतिविशालस्य तमालवृक्षस्य अन्यस्य जनकस्य क्रोडमिव नान्तर्गत सूर्यकिरणम् अतिसघनम् मूलदेशम् प्रविष्टवान् ।

**टिप्पणी**—**अवशीर्णेति** अव+शॄ+क्त—तत्क्षण विगलित हुए अतएव न सूखे हुए अपितु सरस, **सवर्णत्वात्**—समान रंग वाला होने के कारण, अतएव जिसका स्वरूप साफ दिखाई नहीं पड़ रहा था। **कृतावष्टम्भः**=कुछ सहारा लेकर, विनिर्गत-मिवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षालंकारः, **सङ्कर्षणेति**—सङ्कर्षण=बलभद्र "सङ्कर्षणः सीरपाणिः कालिन्दीभेदनो बलः इत्यमरः **पटनीलच्छायया**—पटवन्नीलच्छायया—लुप्तोपमा, **उपहसतः इव**—क्रियोत्प्रेक्षा। **अच्छैः**—निर्मल स्वच्छ, **जलच्छेदैः**—जल के खण्डों से मानो जिसके वस्त्र बने हो, **विन्ध्याटवीति**—विन्ध्याटवी रूपी नायिका के केशकलाप को शोभा को धारण करता हुआ। **शाखान्तर**—शाखाओं के भीतर का अवकाश, केशपाशश्रियमिवेत्यत्र निदर्शना, उत्सङ्गमिवेत्यत्र उत्प्रेक्षा।

अवतीर्य च स तेन समयेन क्षितितलविप्रकीर्णान् संहृत्य तान् शुकशिशून् अनेकलतापाशसंयतानाबद्ध्य पर्णपुटेऽतित्वरितगमनः सेनापतिगतेनैव वर्त्मना तामेव दिशमगच्छत् ।

मान्तु लब्धजीविताशं प्रत्यग्रपितृमरणशोकशुष्कहृदयम् अतिदूरापातादायासितशरीरं सन्त्रासजातवेपथुं सर्वाङ्गोपतापिनी बलवती पिपासा परवश मकरोत् ।

अनया च कालकलया सुदूरमतिक्रान्तः स पापकृदिति परिकलय्य किञ्चिदुन्नमितकन्धरो भयचकितया दृशा दिशोऽवलोक्य तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्तः इति तमेव पदे पदे पापकारिणमुत्प्रेक्षमाणः निष्क्रम्य तस्मात्तमालतरूमूलात् सलिलसमीप मुपसर्तुं प्रयत्नमकरवम् ।

अजातपक्षतया च नातिस्थिरतरचरणसञ्चारस्य मुहुर्मुहुः मुखेन पततो मुहुस्तिर्यङ् निपतन्तमात्मानमेकया पक्षपाल्या सन्धारयतः क्षितितलसंसर्पण श्रमातुरस्य अनभ्यासवशादेकमपि दत्त्वा पदमनवरतमुन्मुखस्य, स्थूलस्थूलं श्वसतो धूलिधूसरस्य संसर्पतो ममामून्मनसि....................।

शब्दार्थ—अवतीर्य च स तेन समयेन=और उस समय तक उसने (पेड़ से) उतरकर, क्षितितलविप्रकीर्णान् तान् शुकशिशून् संहृत्य=पृथिवी पर बिखरे हुए उन शुकों के बच्चों को एकत्र करके, अनेकलतापाशसंभयान्=बहुत से वल्ली रूप बन्धन रस्सियों द्वारा बन्धनगत करके, पत्रपुटे आबद्ध्य=पत्तों से निर्मित पात्र में रखकर, अतित्वरितगमनः=अतिशीघ्रगति से चलता हुआ, सेनापतिगतेनैव वर्त्मना=सेनापति द्वारा गये हुए मार्ग से ही, तामेव दिशमगच्छत्=उसी दिशा की ओर चला गया ।

लब्धजीविताशम्=जीवन की आशा को प्राप्त हुए, प्रत्यग्रपितृमरणशोकशुष्कहृदयम्=पितृमरण के नये शोक से सूखे अर्थात सङ्कुचित हृदय वाले, अतिदूरापातात्=बहुत दूर से गिरने के कारण, आयासितशरीरम्=श्रान्त शरीर वाले, सन्त्रासजातवेपथुम्=भयवश उत्पन्न कम्प वाले, मान्तु=मुझे तो, सर्वाङ्गोपतापिनी बलवती पिपासा=सभी अंगों को सन्तप्त करने वाली बलवती पिपासा ने, परवशमकरोत्=पराधीन कर दिया ।

अनया च कालकलया=और इस घड़ी तक, स पापकृत् सुदूरमतिक्रान्तः=वह पापी बहुत दूर चला गया होगा, इति परिकलय्य=यह सोचकर, किञ्चिदुन्नमितकन्धरः=थोड़ी सी गरदन को उठाये हुए, भयचकितया दृशा दिशोऽवलोक्य=भय से चकित दृष्टि से दिशाओं की ओर देखकर, तृणेऽपि चलति=तिनके के हिलने पर भी, पुनः प्रतिनिवृत्तः=वह फिर लौट आया, इति तमेव पदे पदे पापकारिण मुत्प्रेक्षमाणः=इस प्रकार पग पग पर उसी पापकारी की सम्भावना करता हुआ, तस्मात्तमालतरूमूलात् निष्क्रम्य=उस तमाल वृक्ष के मूलभाग से निकलकर,

सलिलसमीप मुपसर्तुं प्रयत्नमकरवम्=पानी के पास पहुँचने के लिए (उपसर्तुम्) प्रयत्न करने लगा।

अजातपक्षतया च=और पंखों के न निकलने के कारण, नातिस्थिरतर चरणसंचारस्य=न अधिक स्थिर पद सञ्चार वाले, मुहु र्मुहु र्मुखेन पतितः= बार-बार मुँह के बल लुढ़कने वाले, मुहुस्तिर्यङ् निपतन्तम् आत्मानम्=बार बार तिरछे गिरते हुए अपने को, एकया पक्षपाल्या सन्धारयतः=एक ओर के पंख से ही सम्भालते हुए, क्षितितल संसर्पणश्रमातुरस्य=भूमि पर सरकने के कारण थकावट से व्याकुल, अनभ्यासवशादेकमपि दत्त्वा पदम्=अभ्यास न होने के कारण एक पग रखकर ही, अनवरतमुन्मुखस्य=निरन्तर ऊपर मुख किये हुए, स्थूलस्थूलं श्वसतः= लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए, धूलिधूसरस्य=धूलिधूसरित होकर, संसर्पतः=सरकते हुए, ममाधून्मनसि=मेरे मन में (यह विचार) आया।

अनुवाद—और उस समय तक उसने (पेड़ से) उतरकर, पृथिवी पर बिखरे हुए उन शुकों के बच्चों को एकत्र करके, बहुत-सी बल्ली रूपबन्धन रस्सियों द्वारा बन्धनगत (संयतान्) करके, पत्तों से निर्मित पात्र में रखकर, अतिशीघ्र गति से चलकर सेनापति द्वारा गये हुए मार्ग से ही उसी दिशा की ओर चला गया।

जीवन की आशा को प्राप्त हुए, पितृमरण के नये शोक से सूखे हुए हृदय वाले, बहुत दूर से गिरने के कारण श्रान्त शरीर वाले मुझे तो सभी अंगों के सन्तप्त करने वाली बलवती प्यास ने पराधीन कर दिया।

और इस घड़ी तक वह पापी बहुत दूर तक चला गया होगा यह सोचकर, थोड़ी-सी गरदन को उठाये हुए, भय से चञ्चल दृष्टि से दिशाओं की ओर देखकर, तिनके के हिलने पर भी 'वह फिर लौट आया' इस प्रकार पग-पग पर उसी पापी की सम्भावना करता हुआ, उस तमाल वृक्ष के मूल भाग से निकलकर जल के पास पहुँचने के लिए प्रयत्न करने लगा।

और पंखों के न निकलने के कारण, न अधिक स्थिर पाद सञ्चार वाले, बार-बार मुँह के बल लुढ़कने वाले, फिर तिरछे गिरते हुए अपने को, एक ओर के पंख से ही सम्भालते हुए, भूमि पर सरकने के कारण थकावट से व्याकुल, अभ्यास न होने के कारण एक पग रखकर ही, निरन्तर ऊपर मुख किये हुए, लम्बी-लम्बी साँसें भरते हुए, सरकते हुए धूलिधूसरित मेरे मन में (यह विचार) आया।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि इस समय तक उसने पेड़ से उतरकर भूमि पर बिखरे हुए शुकों के बच्चों को एकत्रित किया और उन्हें लताओं के रेशों की रस्सियों से बाँधकर तथा पत्तों के दोनों में रखकर, शीघ्रता से उसी मार्ग से उसी ओर चला गया जिस मार्ग से सेनापति गया था।

अब मुझे जीवन की आशा प्राप्त हो गई थी फिर भी पिता के मरण के नये शोक से मेरा हृदय सूख गया था। मैं बहुत दूर से गिरा था अतएव शरीर भी श्रान्त

हो गया था सम्भवतः इसीलिए अब मुझे बड़ी प्यास लग रही थी यह मेरे सभी अंगों को संतप्त कर रही थी।

मैंने सोचा कि अब तक तो वह पापी बहुत दूर निकल गया होगा, इसलिए मैंने अपनी गरदन को थोड़ा-सा ऊपर उठाया, और भय से चञ्चल दृष्टि से चारों ओर देखा किन्तु मैं इतना भयभीत था कि एक तिनके के भी हिलने पर 'वही लौट आया है' ऐसी मुझे शंका उत्पन्न होने लगती थी, इस प्रकार कदम कदम पर उसी पापी की मैं सम्भावना करता हुआ वृक्ष की मूल से बाहर निकलकर पानी के पास पहुंचने का प्रयत्न करने लगा।

अब तक मेरे पंख पूर्णरूप से नहीं निकल पाये थे अतः डगमगाते हुए ही पैर रखकर मैं चल रहा था, यही कारण था कि मैं बार-बार मुंह के बल लुढ़क पड़ता था, कभी तिरछा गिर पड़ता था और तब मैं एक पंख से ही अपने को सम्भाल कर फिर रेंगने लगता था इस प्रकार चलता हुआ मैं अत्यधिक थक गया था। अभ्यास न होने से एक कदम रखकर ही मैं ऊपर मुंह करके जोर से हाँफने लगता था, मेरा शरीर धूलि से भर गया था फिर भी मैं रेंगता हुआ चल रहा था, उसी समय मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ।

**संस्कृत व्याख्या**—अवतीर्य च स तेन समयेन=स वृद्धकिरातः तावता कालेन वृक्षा दवतीर्य, क्षितितलविप्रकीर्णान्=क्षितितले भूतले विप्रकीर्णा इतस्ततो विक्षिप्तास्तान्, तान् शुकशिशून्=पूर्ववर्णितान् कीरशावकान्, संहृत्य-एकीकृत्य, अनेकलतापाशसंयतान्=अनेका याः लताः तल्लक्षणा ये पाशाः बन्धनरज्जवः तैः संयतान् बद्धान् बन्धनगतान् विधायेत्यर्थः, पर्णपुटे आबद्ध्य=पत्रनिर्मितपात्रे संस्थाप्य निधाय, अतित्वरितगमनः—अतित्वरितम् अतिशीघ्रं गमनं गतिः यस्य स तादृशः, सेनापतिगतेनैव वर्त्मना/येन सेनापतिर्गतः तेनैव मार्गेण, तामेव दिशम्=सेनापति-गृहीतामेवाशाम् अगच्छत्।

लब्धजीविताशम्—लब्धा प्राप्ता जीवनस्य प्राणधारणस्य आशा सम्भावना येन स तं तादृशम्, प्रत्यग्रपितृमरणशोकशुष्कहृदयम्—प्रत्यग्रः अभिनवः यः पितृमरण-शोकः जनकमृत्युविषादः तेन शुष्कं सङ्कुचितं हृदयं मनः यस्य स तम् तादृशम्, अतिदूरापातात्—अत्युन्नतमागतः निपतनात्, आयासितशरीरम्=आयासितं श्रान्तं शरीरं देहः यस्य स तम् तादृशम्, सन्त्रासजातवेपथुम्—सन्त्रासेन अतिभयेन जातः उत्पन्नः वेपथुः कम्पः यस्य स तम् तादृशम् माम्—वैशम्पायनम् तु, सर्वाङ्गोपतापिनी—सर्वाणि च तानि अङ्गानि, हस्तपादादीनि तानि उपतापिनी व्यथाकारिणी, बलवती-अतिप्रबला, पिपासा जलपानेच्छा परवशम् पराधीनम् अकरोत्।

अनया कालकलया घटिकया च स पापकृत् पापकारो वृद्धकिरातः सुदूरम् अतिदूरम् अतिक्रान्तः समतीतः इति परिकलय्य मनसि विचिन्त्य, किञ्चिदुन्नमित-कन्धरः—किञ्चित् ईषत् उन्नमिता ऊर्ध्वीकृता कन्धरा ग्रीवा येन स तादृशः भय-चकितया—भयेन भीतया चकिता चञ्चला तया, दृशा दृष्ट्या, दिशः आशाः अवलोक्य

निरीक्ष्य, तृणेऽपि चलति कम्पमाने सति, पुनः प्रतिनिवृत्तः—"भूयोऽपि स एव प्रत्यागतः इति तमेव पदे पदे पापकारिण—मुत्प्रेक्षमाणः—एवं तमेव पापविधायिनं वीचे शबरमेव प्रतिपदम् उत्पश्यन्, तस्मात्तमालतरुमूलात्—तस्मादेव पूर्वोक्तात् तमालविटपिनो मूलदेशात्, निष्क्रम्य बहिरागत्य, सलिलसमीपम्—जलनिकटम् उपसर्तुं म् सत्वरं प्रयातुम् प्रयत्नम् प्रयासम्—अकरवम् कृतवान् ।

अजातपक्षतया च=अजातौ अनुत्पन्नौ यौ पक्षौ छदौ तयो र्भावस्तया, नातिस्थिरतरचरणसञ्चारस्य=न विद्यते अतिस्थिरतरः अतिदृढतरः चरणयोः पादयोः सञ्चारः स्थापनसामर्थ्यं यस्य तस्य तादृशस्य, मुहु र्मुहुः बारं बारं मुखेनाननेन पततः भूतले लुण्ठनं कुर्वतः, मुहुः बारं बारं तिर्यक् तिरश्चीनं निपतन्तम् भ्रश्यन्तम् आत्मानम् स्वम् एकया केवलया पक्षपाल्या पक्षभागेन सन्धारयतः पतनाद्रक्षणं कुर्वतः, क्षितितलसंसर्पणश्रमातुरस्य-क्षितितले भूतले यत् संसर्पणं शनैः शनैः गमनं तेन यः श्रमः खेदः तेन आतुरः व्यथितः तस्य तादृशस्य, अनभ्यासवशात्, अभ्यासः पुनः पुनः करणं तदभाववशात्, एकमपि दत्त्वा पदम्—एकसंख्याकमपि चरणं निवेश्य, अनवरत-मुन्मुखस्य बहुवारम् ऊर्ध्वाननस्य, स्थूलस्थूलम्—दीर्घदीर्घम्, श्वसतः श्वासमोक्षणं कुर्वतः, धूलिधूसरस्य—धूलिः रेणुः तया धूसरस्य धूम्रवर्णस्य, संसर्पतः प्रचलतः मम वैशम्पायनस्य मनसि हृदये, अभूत्-वृत्तिरेषा समजायत ।

संस्कृत सरलार्थं—वैशम्पायनः कथयति यत्तावता कालेन स वृद्धकिरातः वृक्षादवतीर्य भूतले-इतस्ततो विक्षिप्तान् तान् शुकशावकान् एकीकृत्य बहुलतारूपि-बन्धनरज्जुभिस्तान् बन्धनगतान् विधाय पादपपत्रनिर्मितपुटके तान् संस्थाप्य च तीव्रगतिः स येन सेनापतिर्गतः तेनैव पथा सेनापतिगृहीतामेवाशामगच्छत् ।

संप्राप्त प्राणधारणाशम्, अभिनवजनक मृत्युजेन विषादेन सङ्कुचितमानसम् अत्युन्नतप्रदेशनिपतनात् श्रान्तदेहम् त्रासाधिक्योत्पन्नकम्पम् माम् वैशम्पायनम् सर्वगात्रोत्पीडनकरी शक्तिमती पिपासा पराधीनता मनयत् ।

अनया च कालघटिकया स पापिष्ठः वृद्धकिरातः सुदूरदेशमतीत इति मनस्याधाय दिगवलोकनाय किञ्चिदूर्ध्वीकृतग्रीवः त्रासचञ्चलया दृशा दिशो निरीक्ष्य तृणेऽपि कम्पमाने सति "भूयः स पापः प्रत्यागतः" इति तमेव पापिष्ठं वृद्धकिरातं प्रतिपदं प्रतिस्थानञ्च भयेनोत्पश्यन्, तस्मात्तमालवृक्षाधः स्थलात् बहिरागत्य जलान्तिकमुपगन्तुं प्रयत्नं कृतवान् ।

अनुत्पन्नच्छदतया नातिदृढतरपादस्थापनसामर्थ्यवतः बारं वार माननेनाधो-निपतितः मुहुस्तिरश्चीनं भ्रश्यन्तमात्मानम् केवलेनैकेन पक्षप्रदेशवलेन पतनात् सन्धारयतः, भूतलसंसर्पणजेन खेदेन व्यथितस्य, अभ्यासाभाववशात् एकमपि चरणं निवेश्य निरन्तरमूर्ध्वाननस्य, दीर्घदीर्घं श्वासमोक्षणं कुर्वतः क्षितितलपांसुभि र्धूम्रवर्णस्य सलिलान्तिकं गच्छतो मम मनस्येवं समभूत् ।

टिप्पणी—अनेकलतापाशसंयतान्—अनेक लताओं के पाश रूप बन्धनरज्जु से बांधे गये अर्थात् बांधकर, पर्णपुटे—पत्तों के दोने में, आबद्ध्य=रखकर,

कालकलया=घटिका का भाग, पापकृत्—पापकारी—पाप=कृ+क्विप्+तुक्—परिकलय्य=सोचकर, किञ्चिदुन्नमितेति—चारों ओर देखने के लिए गरदन ऊँची करके, तृणेऽपि चलति—तिनके के भी हिलने पर, उत्प्रेक्षमाणः सम्भावना करता हुआ। एकया पक्षपाल्या=एकया केवलया "एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा एके मुख्यान्यकेवला:" पालि—पक्षप्रदेश "पालिः कर्णलतायां स्यात् प्रदेशे पङ्क्तिहल्यो:" स्थूलस्थूलं श्वसतः—लम्बी लम्बी सांसें भरता हुआ। उन्मुखस्य ऊपर मुँह किये हुए।

अतिकष्टासु दशास्वपि जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति प्राणिनां वृत्तयः। नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्। एवमुपरतेऽपि सुगृहीतनाम्नि ताते यदहमविकलेन्द्रियः पुनरेव प्राणिमि। धिङ् मामकरुणमतिनिष्ठुरमकृतज्ञम्। अहो! सोढपितृमरणशोकदारुणं येन मया जीव्यते। उपकृतमपि नापेक्ष्यते। खलं हि खलु मे हृदयम्। अहं हि लोकान्तरमुपगतायामम्बायां नियम्य शोकावेगमाप्रसवदिवसात् परिणतवयसापि सता तातेन तैस्तैरुपायैः संवर्द्धनक्लेशमतिमहान्तमपि स्नेहवशादगणयता यत् परिपालितः, तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्। अतिकृपणाः खल्वमी प्राणाः, यदुपकारिणमपि तातमद्यापि गच्छन्तं नानुगच्छन्ति। सर्वथा न कञ्चित् न खलीकरोति जीवित तृष्णा, यदीदृशावस्थमपि मामायासयति जलाभिलाषः।

शब्दार्थ—जगति प्राणिनां वृत्तयः खलु=निश्चयतः संसार में जीवनधारियों की विविध कार्यों में प्रवर्तनरूप क्रियायें (वृत्तयः) अतिकष्टासु दशास्वपि=अति दुःखदायिनी अवस्थाओं में भी, जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति=जीवन के मोह से रहित नहीं होती हैं। इह जगति=इस संसार में, सर्वजन्तूनाम्=सभी प्राणियों को, जीवितात् अन्यत् अभिमततरं नास्ति=अपने जीवन के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ (अन्यत्) अधिकप्रिय (अभिमततर) नहीं होता है। यत्=यतः क्योंकि, एवमुपरतेऽपि सुगृहीतनाम्नि ताते=उक्त प्रकार से (एवम्) प्रातः स्मरणीय (सुगृहीतनाम्नि) पिता के मर जाने पर भी (उपरते) अविकलेन्द्रियः—अविकल (स्व स्व स्वविषयग्रहण करने में समर्थ) इन्द्रियों वाला, अहम्=मैं, पुनरेव=अब भी, प्राणिमि=जीता हूँ। अकरुणम् अति निष्ठुरम् अकृतज्ञम् माम् धिक्=निर्दय, अति कठोर, और कृतघ्न मुझको धिक्कार है। अहो! आश्चर्य है, (सोढपितृमरणशोकदारुणं येन मया जीव्यते, उपकृतमपि नापेक्ष्यते=जो कि मैं सहन किये गये पिता के मरण के विषाद के कारण कठोरतापूर्वक जी रहा हूँ और पिता के द्वारा उपकृत होकर भी उसकी अपेक्षा नहीं कर रहा हूँ (इसलिए भी मुझे धिक्कार है) खलं हि खलु में हृदयम्=निश्चय ही मेरा हृदय अधम (खलं) है। अहम् हि लोकान्तरमुपगतायामम्बायां नियम्य शोकावेगम् आप्रसवदिवसात् परिणतवयसापि सता तातेन तैस्तैरुपायैः संवर्धन क्लेशम् अतिमहान्तमपि स्नेहवशादगणयता यत् परिपालितः, तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्=

क्योंकि माता के (अम्बायाम्) परलोक चले जाने पर, विषाद के प्रवाह को (शोकावेगम्) रोककर (नियम्य) जन्म दिन से लेकर (आप्रसवदिवसात्) (अब तक) परिपक्व आयु वाला होकर भी (परिणतवयसापि सता) पिता के द्वारा उन सब विविध उपायों से, बहुत बड़े भी (अतिमहान्तमपि) संवर्द्धनक्लेशम्=पालन-पोषण में होने वाले कष्ट को भी, स्नेहवशात्=सन्तान प्रेम के कारण, न गिनते हुए (अगणयता) यत् अहं परिपालितः=जो कि मेरा पालन पोषण किया गया था। तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्=वह सब मैंने एक साथ ही भुला दिया। अतिकृपणाः खल्वमी प्राणाः=निश्चय ही ये प्राण बहुत ही तुच्छ है, यत् उपकारिणमपि तातम् अद्य अतिगच्छन्तम् न अनुगच्छन्ति=जो कि सदा के लिए जाते हुए (अतिगच्छन्तम्) उपकारी भी पिता का अब भी अनुगमन नहीं कर रहे हैं। सर्वथा जीविततृष्णा= सब प्रकार से जीवन की लालसा, कञ्चित् न खली करोति इति न=किसको अधम नहीं बना देती अर्थात् सभी को अधम बना देती है। ईदृशावस्थमपि मामायासयति जलाभिलाषः=जो कि ऐसी अवस्था में विद्यमान मुझको भी जल पीने की इच्छा सता रही है।

अनुवाद—संसार में निश्चयतः जीवनधारियों की विविध कार्यों में प्रवर्तन रूप क्रियायें अति दुःखदायिनी अवस्थाओं में भी जीवन के मोह से रहित नहीं होती हैं। इस संसार में सभी प्राणियों को अपने जीवन के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ अधिक प्रिय नहीं होता है। क्योंकि, उक्त प्रकार से प्रातः स्मरणीय पिता के मर जाने पर भी स्वस्थ इन्द्रियों वाला मैं अब भी जी रहा हूँ। निर्दय अतिकठोर और कृतघ्न मुझको धिक्कार है, आश्चर्य है कि, जो कि मैं, पिता के मरण के विषाद के कारण कठोरतापूर्वक जी रहा हूँ, और पिता के द्वारा उपकृत होकर भी उसकी अपेक्षा नहीं कर रहा हूँ। (इसलिए भी मुझे धिक्कार है) निश्चय ही मेरा हृदय अधम है, क्योंकि माता के परलोक चले जाने पर शोक के प्रवाह को रोककर, जन्म दिन से लेकर (अब तक) परिपक्व आयु वाला होकर भी पिता के द्वारा उन उन विविध उपायों से, बहुत बड़े भी, पालन-पोषण में होने वाले कष्टों को भी, सन्तान विषयक स्नेह के कारण न गिनते हुए, जो कि मेरा पालन-पोषण किया गया था वह सब मैंने एक साथ ही भुला दिया। निश्चय ही ये प्राण बहुत ही तुच्छ हैं जो कि सदा के लिए जाते हुए उपकारी भी पिता का अब भी अनुगमन नहीं कर रहे हैं। सब प्रकार से जीवन की लालसा किसको अधम नहीं बना देती अर्थात् सब को अधम बना देती है। जो कि ऐसी अवस्था में विद्यमान मुझको भी जल पीने की इच्छा सता रही है।

भावार्थ—अपनी स्थिति पर विचार करता हुआ वैशम्पायन (शुक) सांसारिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में कहता है कि अतिकष्टादायक अवस्थाओं में रहकर भी जीव साधारण की प्रवृत्तियां जीवन की आशा का त्याग नहीं करती हैं, इस संसार में प्राणियों के लिए अपने जीवन से अधिक प्रिय और कोई भी पदार्थ नहीं है, यही

कारण है कि अपने ऐसे पिता के मरने पर भी मैं अब भी जी रहा हूँ। और अपनी सभी इन्द्रियों से भी स्वस्थ हूँ। मेरे जैसे कृतघ्न कठोर और निर्दय को धिक्कार है। पिता के मरण के अपार शोक को सहकर भी मैं जी रहा हूँ, और मैंने अब तक के उनके सभी उपकारों को सर्वथा भुला दिया है। वस्तुतः मेरा हृदय अति अधम है, माता के मरने के बाद से लेकर अब तक पिता ने वृद्ध होते हुए भी, मेरे जन्म के दिन से ही, सारे शोक को भुलाकर और पालन-पोषण में होने वाले कष्टों को भी न गिनते हुए स्नेहवश विविध उपायों से मेरा पालन-पोषण किया था किन्तु आज मैंने उन सब बातों को एक साथ ही भुला दिया है। सचमुच ये प्राण अति कृपण है जो इतने उपकारी पिता के चले जाने पर भी आज उनके साथ नहीं जा रहे हैं। अपने जीवन की तृष्णा किसे नहीं तुच्छ बना डालती है, यही कारण है कि इस अवस्था को प्राप्त हुए भी मुझे जल की प्यास सता रही है।

**संस्कृत व्याख्या**—अतिकष्टासु दशासु अपि=अतिदुःखप्रदासु अवस्थासु अपि, प्राणिनां जीवानां, प्रवृत्तयः प्रवर्तनरूपाः क्रियाः जीवितनिरपेक्षा-जीवनधारणे गतस्पृहाः न भवन्ति-न जायन्ते। इह जगति-संसारे अस्मिन् सर्वजन्तूनाम् सर्वविध-प्राणिनाम्, जीवितात् जीवनात् अन्यत् इतरत् वस्तु अभिमततरम् प्रियतरम् नास्ति। यत्-यस्मात् कारणात्, एवं पूर्वोक्त प्रकारेण, सुगृहीतनाम्नि-प्रातः स्मरणीये ताते पितरि उपरते मृतेऽपि अविकलेन्द्रियः—अविकलानि स्वस्वविषयग्रहणसमर्थानि इन्द्रियाणि यस्य सः तथोक्तः अहम् वैशम्पायनः पुनरेव साम्प्रतमपि प्राणिमि श्वसिमि। अतः अकरणम् निर्दयम् अतिनिष्ठुरम् अतिकठोरम् (तथा) अकृतज्ञम्—कृतघ्नं च माम् धिक् धिक्कारः। अहो-आश्चर्यम्, येन मया वैशम्पायनेन, सोढपितृमरणशोक-दारुणाम्—सोढः अनुभूतः यः पितृमरणशोकः तातमरणविषादः तेन दारुणं भीषणं यथास्यात्तथा जीव्यते जीवनं धार्य्यते, उपकृतमपि नापेक्ष्यते—पितृकृतोपकारोऽपि नापेक्ष्यते स्मृतिपथेऽपि नानीयते। खलं हि खलु मे हृदयम्—निश्चयेन मम मनः उपकाराज्ञत्वात् अधमम्, अहं हि लोकान्तरमुपगतायामम्बायाम्—यस्मात् कारणात् परलोकं प्राप्तायां जनन्याम्, शोकावेगं शोकप्रवाहं नियम्य अन्तर्निगूह्य, आप्रसव-दिवसात्-ममजन्मदिनादारभ्य, परिणतवयसापि वृद्धत्वंगतेनापि सता तातेन पित्रा तैः तैः—विविधैरुपायैः, अतिमहान्तमपि अत्यायतमपि संवर्द्धनक्लेशम् मत्परिपालनदुःखम् स्नेहवशात् पुत्रप्रेम्णा अगणयता क्लेशगणनामकुर्वता अहं परिपालितः परिपोषितः। तत्सर्वमेव एकपदे तत्काल एव मया विस्मृतम् स्मृतिपथादपसारितम्। अतिकृपणाः खल्वमी प्राणाः—एते ममासवः निश्चयेन अतितुच्छाः एव, यदुपकारिणमपि तातं मद्यःतिगच्छन्तं नानुगच्छन्ति—यस्मात् कारणा दुपकृतिकारिणमपि पितरम् अद्य अतिगच्छन्तम् मामतिक्रम्य प्रयान्तं नानुव्रजन्ति। सर्वथा न कञ्चित् न खलीकरोति जीविततृष्णा—सर्वप्रकारेण जीवनलालसा कमपि जनं न अधमीकरोति इति न, अपितु सर्वं खलीकरोत्येव। यत् यस्मात् कारणात्, ईदृशावस्थम् पितृमरणशोकव्यग्रमपि माम् जलपानेच्छा (जलाभिलाषः) आयासयति क्लिश्नाति।

संस्कृत सरलार्थ—स्वकीयां स्थिति मनुचिन्तयन् वैशम्पायनः कथयति—अतिदुःखदायिनीष्वपि दशासु जीवानां प्रवर्तनरूपाः क्रियाः जीवनधारणे गतस्पृहा न जायन्ते। संसारेऽस्मिन् सर्वविधप्राणिनां जीवनादितरत् प्रियतरं वस्तु न विद्यते, यस्मात् कारणात पूर्वोक्त प्रकारेण प्रातः स्मरणीये पितरि मृतेऽपि स्वस्थेन्द्रियोऽह—मिदानीमपि श्वसिमि। अतः निर्दय मतिकठोर मतिकृतघ्नं मां धिक्, आश्चर्यविषयोऽयं यद्येन मयानुभूतपितृमरणविषादेन भीषणं यथास्यात्तथा जीवनं धार्यते। एवञ्च पितृकृतोपकारोऽपि स्मृतिपथे नानीयते। नात्र सन्देहः मम मन उपकाराज्ञत्वादत्यधमम्, यतोहि परलोकं प्राप्तायां जनन्याम् शोकप्रवाहमन्तर्निगृह्य मम जन्म दिनादारभ्य, वृद्धत्वं गतेनापि पित्रा पुत्रप्रेम्णा अत्यधिकमपि मत्परिपालनदुःखमगणयता तैस्तै विविधैरुपायैरहं परिपोषितः तत्सर्वमेव मय. =हसैव स्मृतिपथादपसारितम्। ममैतेऽसवो-निश्चयेनातितुच्छा एव, यतः उपकृतिविधायिनमपि पितरमद्य मामतिक्रम्य प्रयान्तमेते नानुगच्छन्ति। जीवनलालसा सर्वप्रकारेण कमपि जनं नाधमी करोतीति न, अपितु सर्वं खलीकरोत्येव। यतः पितृमरणदु.खव्यग्रमपि मामेषा जलपानेच्छा क्लिश्नाति।

टिप्पणी—जीवितनिरपेक्षाः जीवनधारण की इच्छा से रहित, वृत्तयः=चेष्टायें। यद्यपि लोक अनेक असह्य कष्ट भोगते हैं तथापि जीवन का मोह नहीं छोड़ते। सुगृहीतनाम्नि, प्रातः स्मरणीय "स सुगृहीतनामा स्याद् यः प्रात रनुचिन्त्यते" प्राणिमि=जीवामि, स्वप्राणरिरक्षिषां न त्यजामि। धिङ्मान्—अत्र उभसर्वतसोः कार्येत्यादि नियमात् धिग् योग में द्वितीया है। खलम् "खलं कल्के भुवि स्थाने क्रूरे कर्णजपेऽधमे" खलीकरोति—च्विप्रत्ययान्त—दुष्ट बना देती है। अतिगच्छन्तम्—मुझे छोड़कर जाते हुए।

मन्ये चागणितपितृमरणशोकस्य निर्घृणतैव केवलमियं मम सलिल-पानबुद्धिः। अद्यापि दूरत एव सरस्तीरम्। तथाहि, जलदेवतानूपुररवानुकारि दूरेऽद्यापि कलहंसविरुतमेतत्. अस्फुटानि श्रूयन्ते सारसरसितानि, विप्रकर्षा-दाशामुखविसर्पणविरलः सञ्चरति नलिनीषण्डपरिमलः। दिवसस्येयमति-कष्टा दशा वर्तते। तथाहि—रविरम्बरतलमध्यवर्ती स्फुरन्त मातपमनवरत-मनलधूलिनिकरमिव विकिरति करैः, अधिकामुपजनयति तृषाम्। आतप-सन्तप्तपांसुपटल दुर्गमा भूः, अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गानि, अप्रभुरस्म्यात्मनः सीदति मे हृदयम्, अन्धकारतामुपयाति-चक्षुः, अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैव उपपादयेत्।

शब्दार्थ—मन्ये च=और मैं यह समझता हूँ कि, अगणितपितृमरणशोकस्य=पिता के मरण के शोक को न गिनने वाले, मम इयं सलिलपानबुद्धिः=मेरी यह जल पीने की इच्छा, केवलं निर्घृणता एव=केवल निर्दयता ही है। अद्यापि दूरत एव सरस्तीरम्=सरोवर का किनारा अब भी दूर ही है, तथाहि—क्योंकि, जलदेवता-नूपुररवानुकारि=जल देवी के नूपुरों की ध्वनि (रव) का अनुकरण करने वाली,

दूरेऽद्यापि कलहंस विरुतमेतत्=राजहंसों की यह ध्वनि (विरुत) अब भी दूर है। अस्फुटानि श्रूयन्ते सारसरसितानि=सारसों के कूजन अस्पष्ट ही सुनाई पड़ रहे हैं। विप्रकर्षादाशामुख विसर्पणविरलः=दूर होने के कारण (विप्रकर्षात्) दिशाओं के अन्तराल में (आशामुख) फैल जाने के कारण स्वल्प (होकर) (विसर्पण विरल) नलिनीषण्डपरिमलः सञ्चरति=कमलिनी वनों की (नलिनीषण्ड) सुगन्धि (परिमलः) फैल रही है। दिवसस्येयमतिकष्टावस्थावर्तते=दिन की यह अतिकष्टदायक अवस्था है, तथाहि=क्योंकि—अम्बरतलमध्यवर्ती रविः=आकाशतल के मध्य में वर्तमान सूर्य, करैः=अपनी किरणों से, अनवरतमनलधूलिनिकरमिव=निरन्तर अग्नि की चिनगारियों के (अनलधूलि) समूह (निकरम्) के समान, स्फुरन्तम् आतपम्=चमचमाती हुई धूप को, विकिरति=फैला रहा है। अधिकामुपजनयति तृषाम्=और अधिक प्यास उत्पन्न कर रहा है। तृषाम्=प्यास, आतपसन्तप्तपांसु पाटल-दुर्गमा भूः=पृथिवी (भूः) धूप से तपे हुए धूलिसमूह के कारण (पांसुपाटल) दुःख से ही चलने योग्य (दुर्गमा) (हो गई है)। अतिप्रबलपिपासावसन्नानि मे अङ्कानि अल्पमपि गन्तुं न अलम्=अत्यन्त प्रबल प्यास से (अवसन्न) शून्य या शिथिल हुए मेरे छोटे-छोटे अंग (अङ्गकानि) थोड़ा भी चलने में समर्थ नहीं हैं। अप्रभुः अस्मि आत्मनः=अपने ऊपर अर्थात् शरीर पर मेरा वश नहीं रह गया है (अप्रभु.=असमर्थ, आत्मनः अपने ऊपर, अस्मि=हूँ) सीदति मे हृदयम्=मेरा हृदय खिन्न हो रहा है, अन्धकारिता मुपयाति चक्षुः—नेत्र अन्धकारिता को प्राप्त हो रहा है अर्थात् आँखों में अंधेरा छा रहा है। अपि नाम खलो विधिः—क्या ही अच्छा होता यदि (अपि नाम) दुष्ट विधाता, अनिच्छतः अपि मे मरणम् अद्यैव उपपादयेत्=न चाहते हुए भी मेरी मृत्यु आज ही ला देता।

अनुवाद—और मैं यह समझता हूँ कि पिता के मरण के शोक की उपेक्षा करने वाले मेरी यह जल पीने की इच्छा केवल यह (मेरी) निर्दयता ही है। सरोवर का किनारा अब भी दूर ही है। क्योंकि जल देवी के नूपुरों की ध्वनि का अनुकरण करने वाला, राजहंसों का यह कूजन अब भी दूर है। सारसों के कूजन अस्पष्ट ही सुनाई पड़ रहे हैं। दूर होने के कारण दिशाओं के अन्तराल में फैल जाने के कारण स्वल्प (होकर) कमलिनी वनों की सुगन्धि फैल रही है। दिन की यह अतिकष्ट-दायक अवस्था है, क्योंकि आकाशतल के मध्य में वर्तमान सूर्य, अपनी किरणों से, लगातार अग्नि की चिनगारियों के समान चमचमाती हुई धूप को फैला रहा है। और अधिक प्यास उत्पन्न कर रहा है। पृथिवी, धूप से तपे हुए धूलि समूह के कारण दुःख से ही चलने योग्य हो गई है। अत्यन्त प्यास से शून्य या शिथिल हुए मेरे छोटे छोटे अंग थोड़ा भी चलने में समर्थ नहीं हैं। अपने ऊपर मेरा वश नहीं रह गया है। मेरा हृदय खिन्न हो रहा है। नेत्र अन्धकारिता को प्राप्त हो रहा है अर्थात् आँखों में अंधेरा छा रहा है। क्या ही अच्छा होता यदि दुष्ट विधाता न चाहते हुए भी मेरी मृत्यु आज ही ला देता।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि इस स्थिति में तो मैं समझता हूँ कि पिता की मृत्यु की वेदना को भी दबा देने वाली मेरी यह जल पीने की इच्छा, केवल मेरी निष्ठुरता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सरोवर तो अभी दूर है क्योंकि जल देवी के नूपुरों की ध्वनि के समान राजहंसों की यह कूजन दूर होने के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ रहा है। तथा दूर होने के कारण दिशाओं में फैलकर हल्की हो जाने के कारण कमलवनों की गन्ध भी कम ही फैल रही है। दिन की दशा तो अतिकष्टदायिनी हो गई है। आकाश के मध्य में स्थित सूर्य अब भी किरणों से जो चमकती हुई धूप फैला रहा है वह मानो आग की चिनगारियाँ बरसा रहा है। इससे प्यास और बढ़ रही है। धूप से तपे हुए धूलिसमूह के कारण पृथिवी कठिनाई से ही चलने योग्य रह गई है। प्यास से मेरे सभी कोमल अंग थोड़ा-सा चलने में भी असमर्थ हो गये हैं। अपने ऊपर अब मेरा कोई वश नहीं चलता हृदय बैठा जा रहा है। आँखों पर अंधेरा छा रहा है। अच्छा होता कि दुष्ट विधाता, न चाहते हुए भी अब मेरी मृत्यु ला देता और मैं मर जाता।

संस्कृत व्याख्या—मन्ये च—जाने चाहम्, अगणितपितृमरणशोकस्य=अगणितः उपेक्षितः पितृमरणशोकः तातमृत्युविषादः येन तस्य तादृशस्य, मम इयं सलिलपानबुद्धिः—ममैषा जलपानेच्छा, केवलं निर्घृणताएव=केवलं जनकोपरि मे निष्ठुरतैव। अद्यापि दूरत एव सरस्तीरम्=सरोवरतटन्तु साम्प्रतमपि दूरत एव वर्तते। तथाहि जलदेवतानूपुर रवानुकारि=जलदेवतानां जलाधिष्ठात्रीणां देवीनां नूपुराणां मञ्जीराणाम् रवम् ध्वनिम् अनुकर्तुं शीलं यस्य तत् तादृशम्, एतत् कलहंस-विरुतम्=पुरः श्रूयमाणं राजहंसानां कूजितम्, अद्यापि साम्प्रतमपि, दूरे विप्रकर्षे (वर्तते) सारसरसितानि=सारसाख्यपक्षिविशेष—कूजितानि अस्फुटानि नातिव्यक्तानि श्रूयन्ते आकर्ण्यन्ते। विप्रकर्षाद् दूराद्धेतोः आशामुखेषु दिगन्तरेषु विसर्पणेन प्रसरणेन विरलः स्वल्पः तथोक्तः, नलिनीषण्डपरिमलः=कमलिनीवनानां सौरभम्, सञ्चरति इतस्ततः प्रसरति। दिवसस्य दिनस्य इय मेषा अतिकष्टा अतिक्लेशदायिनी दशा अवस्था (वर्तते) अम्बरतलमध्यवर्ती-आकाशतल मध्यगामी, रविः—सूर्यः करैः किरणैः भुजैश्च, अनवरतमविच्छन्नं, अनलधूलिनिकरमिव=अग्निकणिकासमूहमिव स्फुरन्तं देदीप्यमानम् आतपम् सूर्यतेजः विकिरति विक्षिपति। अधिकां तृषाम्=समधिक-पिपासाम् उपजनयति निष्पादयति। आतपसन्तप्त पांसुपटलदुर्गमा भूः—आतपेन रवितेजसा सन्तप्ताः उष्णा ये पांसवः धूलयः तेषां पटलं समूहस्तेन दुर्गमा दुःखेन गन्तुं क्षमा भूः पृथिवी (वर्तते) अतिप्रबलपिपासावसन्नानि=अतिप्रबला अत्यधिका या पिपासा जलपानेच्छा तया अवसन्नानि खिन्नानि शिथिलानि वा मे मम वैशम्पायनस्य अङ्गकानि शरीरस्य क्षुद्रावयवाः अल्पमपि स्वल्पमपि गन्तुम् चलितुम् नालम् न समर्थानि। अप्रभुरस्मि आत्मनः=नप्रभवामि आत्मनः, स्वेच्छया चलनासमर्थोऽस्मि इत्याशयः। सीदति मे हृदयम्—मे मम हृदयं मनः सीदति अवशीर्य्यते। चक्षुः मेऽमम् अन्धकारिताम् तिमिरताम् उपयाति प्राप्नोति। अपि नाम खलः विधिः—

अपीति प्रश्ने, नामेति सम्भावनायाम्, खलः अशुभकारित्वाद् दुर्जनः विधिः विधाता, अनिच्छतः अनभिलषतः अपि मे मम मरणं मृत्युम् अद्यैव उपपादयेत् कुर्यात् ।

संस्कृत सरलार्थ—वैशम्पायनः कथयति—जाने चाहं समुपेक्षिततातमरणविषादस्य ममैषा जलपानेच्छा केवलं जनकोपरि मे निष्ठुरतैव, सरोवरतटन्तु साम्प्रतमपि दूरत एव वर्तते, तथाहि जलाधिष्ठात्रीणां देवीनाम् मञ्जीररवानुकरणशीलं मेतच्छ्रूयमाणं राजहंसकूजितं साम्प्रतमपि दूरे वर्तते । सारसाख्यपक्षिविशेषकूजितानि च नातिव्यक्तानि श्रूयन्ते । दूराद्धेतोः दिगन्तरेषु प्रसरणेन स्वल्पीभूतः कमलिनीवनगन्ध इतस्ततः प्रसरति । दिनस्यैपातिकष्टप्रदावस्था वर्तते । गगनतलमध्यगामी सूर्यः स्वरश्मिभिः अनवरतमग्निकणिका समूहमिव देदीप्यमानमातपं विक्षिपति । अत्यधिकां पिपासाञ्च निष्पादयति । सूर्यतेजसा सन्तप्तधूलिसमूहेन पृथिवी दुःखेनैव चलितुं योग्यास्ति । अत्यधिकपिपासया खिन्नानि मम अङ्गकानि स्वल्पमपि चलितुं न पारयन्ति । अवशीर्य्यते च मम मनः नेत्रञ्च तिमिरतां प्राप्नोति । अपि नाम दुष्टो विधाता अनभिलषतोऽपि मम मृत्युम् अद्यैवोपनयेत् ।

**टिप्पणी—निर्घृणता**=निर्दयता निष्ठुरता 'घृणा दायानुकम्पा स्यात् इत्यमरः । यहां निघृणता और जलाभिलाषा में हेतु और हेतुमान का तादात्म्य होने से हेत्वलंकार है "अभेदेनाभिधा हेतु र्हेतो हेतुमता सह" सा. द.) **अद्यापि**—इस समय भी । **नूपुर**=मञ्जीर "पादाङ्गदं तुलाकोटि मंञ्जीरो नूपुरे स्त्रियाम् इत्यमरः । **विप्रकर्ष**=दूर, **आशामुखेषु**—दिशाओं के अन्तराल में अर्थात् सभी दिशाओं में, **षण्ड**=वन, **निकरमिव**—उपमालंकार, **अवसन्न**=शिथिल खिन्न या शून्य, **अंगकानि**—छोटे-छोटे अंग, **अप्रभुः**—असमर्थ, **आत्मनः**—अपने पर अर्थात् अपने शरीर पर । **अपि नाम**—अपि शब्दः प्रश्ने नामेति सम्भावनायाम् "अपिः सम्भावना प्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये । तथा युक्तपदार्थे च कामचारक्रियासु च' इति विश्वः । नाम कामे कोपेऽभ्युपगमे विस्मये स्मरणेऽपि च । सम्भाव्यकुत्साप्रकाश्यविकल्पेष्वपि दृश्यते । **खलः**—पिशुनो दुर्जनः खलः" इत्यमरः ।

## हारीत वर्णनम्

**इत्येवं चिन्तयत्येव मयि, तस्मात् सरसोऽदूरवर्तिनि तपोवने जाबालिर्नाम महातपा मुनिः प्रतिवसति स्म । तत्तनयश्च हारीतनामा मुनिकुमारकः सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः, समानवयोभि रपरैस्तपोधनकुमारकैरनुगम्यमानस्तेनैव पथा द्वितीय इव भगवान् विभावसुः अतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमूर्तिः, उद्यतो विवसकरमण्डलादिवोत्कीर्णः तडिद्भिरिव विरचितावयवः, तप्तकनकद्रवेणेव बहिरूपलिप्तमूर्तिः, आपिशङ्गावदातया देहप्रभया स्फुरन्त्या सबालातपमिव दिवसं सदावानलमिव वनमुपदर्शयन्, उत्तप्तलौहलोहिनीना मनेकतीर्थाभिषेकपूताना मंसस्थलावलम्बिनीनां जटानां विकरेणोपेतः.............।**

शब्दार्थ—एवं चिन्तयत्येव मयि=मेरे इस प्रकार सोचते हुए ही, तस्मात् सरसः अदूरवर्तिनि तपोवने=उस सरोवर के समीपवर्ती तपोवन में, जाबालि नाम महातपा मुनिः प्रतिवसति स्म=जावालि नामक महातपस्वी मुनि रहते थे। तत्तनयश्च हारीतनामा मुनिकुमारकः=और उनके पुत्र हारीत नामक मुनि कुमार, (जो कि) सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः=ब्रह्म पुत्र सनत्कुमार के समान सभी विद्याओं से निर्मल (अवदात) हृदय वाला, समानवयोभिः अपरैः तपोधनकुमारकैः अनुगम्यमानः=समान अवस्था वाले दूसरे तपस्विकुमारों द्वारा अनुगत होता हुआ, तेनैव पथा=उसी मार्ग से, द्वितीय इव भगवान् विभावसुः=दूसरे भगवान् अग्नि सदृश, (विभावसुः) अतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमूर्तिः=अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण दुःख से ही देखने योग्य आकृति वाले, उद्यतो दिवसकरमण्डलात्=मानो उदय होते हुए सूर्य बिम्ब से गढ़कर निकाले हुए (उत्कीर्ण) तडिद्भिरिव विरचितावयवः=मानो बिजलियों से निर्मित अंगों वाले, तप्तकनकद्रवेणेव बहिरुपलिप्तमूर्तिः=तपाये हुए स्वर्णद्रव से मानो बाहर से उपलिप्त किये गये शरीर वाले, आपिशङ्गावदातया देहप्रभया स्फुरन्त्या=किञ्चित् पीत और धवल वर्ण की (आपिशङ्ग अवदात) चमकती हुई (स्फुरन्त्या) शरीरकान्ति से, सबालातपमिव दिवसम्=दिन को प्रातः कालीन धूप से युक्त, सदावानलमिव वनम्=और वन को दावानल से युक्त सा, उपदर्शयन्=दिखलाता हुआ, उत्तप्तलोहलोहिनीनाम् अनेकतीर्थाभिषेकपूतानाम् अंसस्थलावलम्बिनीनां जटानां निकरेणोपेतः=तपाये हुए लोहे के समान लाल, अनेकतीर्थ जलों में स्नान करने से पवित्र, और कन्धों पर लटकने वाली जटाओं के समूह से युक्त ..................।

अनुवाद—मेरे इस प्रकार सोचते हुए ही, उस सरोवर के समीपवर्ती तपोवन में जाबालि नामक महातपस्वी मुनि रहते थे, उनके पुत्र हारीत नाम मुनिकुमार, (जो कि) ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार के समान सभी विद्याओं से निर्मल मन वाले, समान अवस्था वाले अन्य तपस्विकुमारों द्वारा अनुगम्यमान, उसी मार्ग से, दूसरे भगवान् अग्निसदृश, अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण कठिनाई से देखने योग्य आकृति वाले, मानो उदय होते हुए सूर्य बिम्ब से गढ़कर निकाले हुए, मानो बिजलियों से निर्मित अंगों वाले, तपाये हुए स्वर्णद्रव से मानो बाहर से उपलिप्त किये गये शरीर वाले, कुछ-कुछ पीत और श्वेतवर्ण की चमकती हुई शरीर कान्ति से, दिन को प्रातःकालीन धूप से युक्त और वन को वनाग्नि से युक्त सा दिखलाते हुए, तपाये हुए लोहे के समान लाल, अनेक तीर्थजलों में स्नान करने से पवित्र, और कन्धों पर लटकने वाली जटाओं के समूह से युक्त थे..................।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि उस सरोवर के समीपवर्ती वन में एक जाबालि नामक बड़े तपस्वी मुनि रहते थे, जबकि मैं वहाँ इस प्रकार सोच ही रहा था तभी हारीत नामक उनका पुत्र मुनि कुमार, समवयस्क अन्य मुनि कुमारों से अनुगत उसी मार्ग से, (उसी कमल सरोवर में स्नान की इच्छा से आया) वह

मुनिकुमार हारीत, सनत्कुमार के समान सभी विद्याओं से निर्मल चित्त वाला था। वह अत्यधिक तेजस्वी था अतः उसकी ओर देखना भी कठिन था, वह दूसरे अग्निदेव जैसा प्रतीत होता था। उसकी आकृति ऐसे लग रही थी कि मानो उसे सूर्यबिम्ब को गढ़कर बनाया गया हो, उसके अंग प्रत्यङ्गों में इतनी चमक थी कि ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उसके अंग बिजली से बने हों और शरीर का रंग ऐसा चमकता था कि मानो उस पर सोने का द्रव पोत दिया गया हो, वह अपनी चमकती हुई कुछ पीली और धवल शरीर की कान्ति से मानो दिन को प्रातः सूर्यातप से और वन को वनाग्नि से युक्त कर रहे हों, तप्त लोहे के समान लाल, तीर्थजल स्नान से पवित्र उनकी जटायें उनके कन्धों पर लटक रहीं थीं।

**संस्कृत व्याख्या**—इत्येवं चिन्तयत्येव मयि-मयि वैशम्पायने एवमुक्तविधिना विचारयत्येव सति, तस्माद् सरसः अदूरवर्तिनि तपोवने—तस्मात् पूर्वोक्तात् सरोवरात् समीपस्थायिनि तपस्विजनविपिने, जावालि नाम महातपा मुनिः प्रतिवसतिस्म= जावालिसंज्ञकः महान् तपस्वी मुनिः निवसतिस्म। तत्तनयश्च हारीतनामा मुनि-कुमारकः=तस्य तपोनिधेः जावालिमुनेः पुत्रः हारीतसंज्ञकः तापसबालकः, (तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागमत्) इति अन्तिम वाक्येन सम्बन्धः। स तापसकुमारकः, सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः—ब्रह्मपुत्रसनत्कुमार इव सर्वाधीतविद्याभि निर्मलहृदयः, समानवयोभिः समवयस्कैः अपरै रन्यैः तपोधनकुमारकैः तपोनिधिदारकैः अनुगम्यमानः तेनैव पथा मार्गेण, द्वितीय इव भगवान् विभावसुः—तदपरः भगवान् अग्निरिव, अतितेजस्वितया—अत्युत्कृष्टं तेजो विद्यते यस्यासौ अतितेजस्वी तस्य भावस्तत्ता तया अत्युत्कृष्टदीप्तिमत्तया दुर्निरीक्ष्यमूर्तिः—दुःखेनावलोकयितुं शक्या मूर्तिः स्वरूपं यस्य स तादृशः, उद्यतः उदयं कुर्वतः दिवसकरमण्डलात् सूर्यबिम्बात् उत्कीर्णः उल्लिख्योद्धृत इव, तडिद्भिरिव विरचितावयवः—तडिदिभः सौदामिनीभिः विरचिता निर्मिता अवयवा अङ्गानि यस्य स तथोक्तः, तप्तकनकद्रवेणेव बहिरुपलिप्तमूर्तिः—तप्तः उष्णः यः कनकस्य सुवर्णस्य द्रवः रसः तेन इव बहिः उपलिप्ता लिम्पिता मूर्तिः शरीरं यस्य स तादृशः, आपिशङ्गावदाततया—आपिशङ्गा ईषत्पिङ्गलवर्णा अवदाता 'धवला च तया एवंविधया स्फुरन्त्या दीप्यमानया देहप्रभया शरीरकान्त्या दिवसम् दिनम् सबालातपमिव बालातपेन सह वर्तमानमिव, वनं काननम्, सदावानलमिव दावानलेन वनाग्निना सह वर्तमानमिव उपदर्शयन् प्रकाशयन्, उत्तप्तलोहलोहिनीनाम्—उत्तप्तम् उष्णीकृतं यल्लौहं कालायसम् तद्वल्लोहिनीनाम् रक्तवर्णानाम्, अनेकतीर्थाभिषेकपूतानाम्—अनेकानि विविधानि यानि तीर्थानि गङ्गादीनि तेषु अभिषेकेण स्नानेन पूतानां पवित्रीकृतानाम्, अंसस्थलावलम्बिनीनाम् अंसस्थलं भुजशिरः स्थानम् तत्र अवलम्बिनीनाम् अवलम्बमानानाम् जटानां निकरेण समूहेन उपेतः समन्वितः तादृशः...... ......।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायन. कथयति यत्तस्मात् सरोवरात् समीपस्थायिनि तपस्विजनवने जावालिसंज्ञकः महान् तपस्वी मुनिः निवसति स्म। तस्य तपोनिधेः

जावालिमुनेः पुत्रः हारीतसंज्ञकः तापसबालकः (तदेवकमलसरसि सिस्नासुरुपागमत् "इति बन्तिम वाक्येन सम्बन्धः) स तापस कुमारकः ब्रह्मपुत्रसनत्कुमार इव सर्वाधीतविद्याभिः निर्मलहृदयः, समवयस्कैरन्यै स्तपोनिविदारकै रनुगम्यमानः तेनैव मार्गेण, तदपरो भगवान् अग्निदेव इव अत्युत्कृष्टदीप्तिमत्तया दुरवलोकनीयस्वरूपः, उदयंगच्छतः सूर्य-बिम्बादुल्लिख्योद्धृत इव, सौदामिनीभि र्निमितावयवः, तप्तसुवर्णद्रवेणेव वहिर्लिम्पित-शरीरः, ईषत्पिशङ्गधवलवर्णया दीप्यमानया शरीरकान्त्या दिनं प्रातःकालीनसूर्यातपेन सह वर्तमानमिव वनञ्च वनाग्निना सह वर्तमानमिव प्रकाशयन्, उष्णीकृतलोहवद्रक्त वर्णानां विविधतीर्थस्नानपवित्रीकृतानां भुजशिरः स्थलयो रवलम्बमानानां जटानां समूहेन समन्वितः (आसीत्)।

टिप्पणी—तत्तनयः—तस्य तनयः पुत्रः 'आत्मजस्तनयः सूनुः' इत्यमरः। सनत्कुमारः—सनतः ब्रह्मणः प्रजापतेः कुमारः पुत्रः "सनत्कुमारो वेधात्रः" अथवा सनत् सर्वास्मिन् काले कुमारः कौमार्यव्रतावलम्बी। पुराण में भी कहा गया है "यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विद्धि माम्, तस्मात् सनत्कुमारेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम्। सनत्कुमार के समान समस्त विद्या के अध्येता होने के कारण निर्मल चित्त वाले, विभावसुः—अग्निः "सूर्यवह्नी विभावसू" इत्यमरः। सनत्कुमार इव में उपमा और यहाँ उत्प्रेक्षा है। तेजस्वितया तेजस्वी होने के कारण "तेजोदीप्तौप्रभावे च स्यात् पराक्रमरेतसोः" कोश। भगवान्—भग शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है यथा "भगं श्रीयोनि वीर्येच्छा ज्ञानवैराग्यकीर्तिषु। माहात्म्यैश्वर्यंरत्नेषु धर्मे मोक्षेऽथवारवौ" उत्कीर्ण इव मानो टांकी से बनाकर निकाला गया हो, उत्प्रेक्षा। तडिद्भिः द्रवेणेव—दोनों स्थलों में क्रियोत्प्रेक्षा है। आपिशङ्ग=कुछ-कुछ पीला अवदात—धवल, "अवदातः सितो गोरो वलक्षोधवलोऽर्जुनः" इत्यमरः। सबालातपमिव सदावानलमिव में गुणोत्प्रेक्षा है। लोहः—अश्मसारः "लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायायसी, अश्मसारः। इत्यमरः—तीर्थम्—गङ्गादि तीर्थों में स्नान से।

**स्तम्भितशिखाकलापः खाण्डववनदिधक्षया कृतकपटबटुवेश इव भगवान् पावकः, तपोवनदेवतानूपुरानुकारिणा धर्मशासनकटकेनेव स्फाटि-केनाक्षबलयेन दक्षिणश्रवणावलम्बिना विराजमानः, सकलविषयोपभोग-निवृत्त्यर्थमुपपादितेन ललाटपट्टके त्रिसत्येनेव भस्मत्रिपुण्ड्रकेणालंकृतः, गगनगमनोन्मुखवलाकानुकारिणा स्वर्गमार्गमिव दर्शयता सततमुद्ग्रीवेण स्फटिकमणिकमण्डलुनाध्यासितवामकरतलः, स्कन्धदेशावलम्बिना कृष्णा जिनेन नीलपाण्डुभासा तपस्तृष्णानिपीतेनान्तर्निष्पतता धूमपटलेनेव परीत-मूर्तिः, अभिनवविससूत्रनिमितेनेव परिलघुतया पवनलोलेन निर्मासविरलपा-र्श्वास्थिपञ्जरमिव गणयता वामांसावलम्बिना यज्ञोपवीतेनोद्भासमानः, दैवतार्चनार्थमागृहीतवनलताकुसुम परिपूर्ण पर्णपुटसनाथशिखरेणाषाढदण्डेन व्यापृतसव्येतरपाणिः, विषाणशिखरोत्खातामुद्वहता स्नानमृदमुपजातपरि-**

चयेन नोवारमुष्टि संवर्द्धितेन कुशकुसुमलतायास्यमानलोल दृष्टिना तपोवन-मृगेणानुगम्यमानः ।

शब्दार्थ—स्तम्भितशिखाकलापः=शिखापुञ्ज को बांधे हुए (स्तम्भित) खाण्डववनदिधक्षया=खाण्डव वन को जलाने की इच्छा से, कृतकपटवटुवेश इव भगवान् पावकः—कपटपूर्वक ब्रह्मचारी का वेश धारण किये हुए भगवान् अग्निदेव जैसे, तपोवनदेवतानूपुररवानुकारिणा=तपोवन की अधिष्ठात्री देवी के नुपुरों का अनुकरण करने वाले, धर्मशासनकटकेनेव धर्मशासन के सैन्य के समान, दक्षिणश्रवणा-वलम्बिना=दाहिने कान पर लटकती हुई, स्फाटिकेनाक्षवलयेन=स्फटिकमणि निर्मित जपमाला से, विराजमानः—शोभायमान, सकलविषयोपभोगनिवृत्त्यर्थ-मुपपादितेन=मानो सम्पूर्ण विषयों के उपभोग से निवृत्ति के लिए धारण किये गये, ललाटपट्टके=भालस्थल पर, त्रिसत्येनेव भस्मत्रिपुण्ड्रकेणालङ्कृतः=त्रिसत्य के समान भस्म के त्रिपुण्ड से सुशोभित, गगनगमनोन्मुखबलाकानुकारिणा=आकाश में उड़ने के लिए उन्मुख बलाकाओं का अनुकरण करने वाले, स्वर्गमार्गमिव दर्शयता=मानो स्वर्ग का मार्ग दिखलाते हुए, सततमुन्नग्रीवेण=मानो निरन्तर उन्नतग्रीवा वाले, स्फटिकमणिकमण्डलुना=स्फटिक मणि के कमण्डलु से, अध्यासितवामकरतलः=अवलम्बित बायें हाथ वाले, स्कन्धदेशावलम्बिना=कन्धे पर लटकने वाले, नीलपाण्डुभासा=नीली और पीली कान्ति वाले, कृष्णाजिना=काले मृग चर्म से, तपस्तृष्णानिपीतेनान्तर्निष्पतता धूमपटलेनेव=मानो तपोवृद्धि की इच्छा से पिये गये (तदनु) अन्दर से बाहर निकलते हुए धूमसमूह से, परीतमूर्तिः=आवृत शरीर वाले, अभिनवबिससूत्रनिर्मितेनेव=मानो नवीन मृणालसूत्र से निर्मित, परिलघुतया=अत्यन्त हलका होने के कारण, पवनलोलेन=वायु से चञ्चल, निर्मांसविरलपार्श्वा-स्थिपञ्जरमिव गणयता=अतएव प्रायः मांसरहित विरल पसलियों के (पार्श्वास्थि) अस्थि पञ्चर को गिनते हुए से, वामांसावलम्बिना=बायें कन्धे पर लटकते हुए, यज्ञोपवीतोद्भासमानः=यज्ञोपवीत से सुशोभित, देवतार्चनार्थमागृहीतवनलताकुसुम-परिपूर्णपर्णपुटसनाथशिखरेणाषाढदण्डेन व्यापृतसव्येतरपाणिः=देवताओं की पूजा के लिए चुने गये (आगृहीत) वनलताओं के फूलों से भरे हुए पत्तों के दोने से युक्त (सनाथ) अग्रभाग वाले (शिखरेण) पलाशदण्ड से (आषाढ) व्यग्र (व्यापृत) दाहिने (सव्येतर) हाथ वाले, विषाणशिखरोत्खाताम् स्नानमृदम् उद्वहता=सींगों की नोकों से उखाड़ी गई स्नान की मिट्टी को धारण किये हुए, उपजातपरिचयेन=परिचय को प्राप्त, नीवारमुष्टिसंवर्धितेन=मुट्ठी भर नीवार धान्य (खिला खिलाकर) पाले गये, कुशकुसुमलतायास्यमानलोलदृष्टिना=(दोनों ओर होने वाली) कुशों एवं पुष्प लताओं के कारण खिन्नता को प्राप्त कराये जाते हुए (आयास्यमान) अतएव चञ्चल दृष्टि वाले, तपोवनमृगेणानुगम्यमानः=तपोवन के मृग से अनुगम्यमान……।

अनुवाद—शिखा समूह को बांधे हुए, खाण्डववन को जलाने की इच्छा से कपटपूर्वक ब्रह्मचारी का वेश धारण किये हुए भगवान् अग्निदेव के समान, तपोवन

की अधिष्ठात्री देवी के नूपुरों का अनुकरण करने वाले धर्मशासन के सैन्य के समान, दाहिने कान पर लटकती हुई स्फटिक मणिनिर्मित वलयाकार जपमाला से शोभायमान, मानो सम्पूर्ण विषयों के उपभोग से निवृत्ति के लिए धारण किये गये, भालस्थल पर त्रिसत्य के समान भस्म के त्रिपुण्ड से सुशोभित, आकाश में उड़ने के लिए उन्मुख बलाकाओं का अनुकरण करने वाले, मानो स्वर्ग का मार्ग दिखलाते हुए मानो निरन्तर उन्नत ग्रीवा वाले स्फटिक मणि के कमण्डलु से अवलम्बित वाम हस्त वाले, मानो तपोवृद्धि की इच्छा से पिये गये तदनु अन्दर से बाहर निकलते हुए, धूम समूह जैसे, नीली और पीली कान्ति वाले, कन्धे पर लटकने वाले काले मृग चर्म से आवृत शरीर वाले, मानो नवीन मृणालसूत्रों से निर्मित, अत्यन्त हल्का होने के कारण वायु से चञ्चल, अतएव प्रायः मांस से रहित विरल पसलियों के अस्थिपञ्जर को गिनते हुए से, बायें कन्धे पर लटकते हुए यज्ञोपवीत से सुशोभित, देवताओं की पूजा के लिए चुने गये, वनलताओं के फूलों से भरे हुए पत्तों के दोने से युक्त अग्रभाग वाले पलाश दण्ड से व्यस्त दक्षिण हाथ वाले, सींगों की नोकों से उखाड़ी गई स्नान की मिट्टी को धारण किये हुए, परिचय को प्राप्त, मुट्ठीभर नीवार धान्य (खिला खिलाकर) पाले गये, कुशों एवं पुष्प लताओं के कारण खिन्नता को प्राप्त कराये गये अतएव चञ्चल दृष्टि वाले, तपोवन के मृग से अनुगम्यमान ……………।

भावार्थ—हारीत नामक मुनिकुमार का वर्णन करता हुआ वैशम्पायन कहता है कि वह अपने सिर पर चोटियों का जूड़ा बांधे हुए था अतएव वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो खाण्डव वन को जलाने की इच्छा से भगवान् अग्निदेव ने ही ब्रह्मचारी का कपट वेश धारण कर लिया हो। उनके दाहिने कान पर, तपोवन देवी के नूपुरों का अनुकरण करने वाली स्फटिक मणि की वलयाकार जपमाला पड़ी हुई थी वह ऐसी लग रही थी कि मानो वह उनके श्रवणगत गुरु के दिये हुए धर्मोपदेश की रक्षा के लिए एक सेना का गोलाकार व्यूह हो। उनके भाल पर भस्म का त्रिपुण्ड ऐसा लग रहा था मानो उन्होंने जो गुरु को विषय निवृत्ति के लिए तीन बार शपथ दी थी वही त्रिसत्य के रूप में प्रत्यक्ष भाल पर शोभित थी। उनके बायें हाथ में जो स्फटिक मणि का कमण्डलु था और जिसकी कि गरदन ऊपर की ओर थी वह ऐसा लग रहा था कि मानो वह आकाश में उड़ने के लिए तैयार अतएव ऊपर की ओर मुख किये हुए बलाकाओं का समूह हो, कमण्डलु की ऊपर उठी हुई गरदन मानो स्वर्ग का मार्ग दिखला रही थी। कन्धे से लटकते हुए काले मृग के चर्म से उनका शरीर लिपटा था और जो कि नीली और पीली कान्ति वाला था वह ऐसा लग रहा था कि मानो उन्होंने अपनी तपोवृद्धि के लिए जो पहले धूम समूह का पान किया था वही अब मानो बाहर निकल रहा था। उन्होंने अपने बायें कन्धे पर बहुत पतला अतएव हवा में हिलता हुआ जनेऊ डाल रखा था जो कि मानो बिसतन्तुओं का बना हुआ था उसे देखकर ऐसा मालूम पड़ता था कि मानो वह उनकी निर्मांस पसलियों की हड्डियाँ गिन रहा हो। उनके दाहिने हाथ में

KODNAM



पलाश का दण्ड था जिसके सिरे पर देवपूजा के लिए चुने गये फूलों से भरा हुआ पत्तों का दोना बँधा हुआ था और उनके पीछे एक तपोवन का मृग चल रहा था जिसको उन्होंने नीवार की मुट्ठी खिला खिलाकर पाला था, इस मृग के सींगों पर अपने ही सींगों से खोदी गई स्नान के लिए मिट्टी लगी हुई थी; मुनिजन स्नान से पूर्व शरीर पर मिट्टी लगाते थे यही स्नान की मिट्टी हारीत के स्नान के लिए मृग के सींगों की नोकों पर लगी हुई थी। रास्ते में दोनों ओर जो कुशों के पौधे और पुष्पलताओं की झाड़ियाँ थी उनसे टकराने के कारण वह मृग कुछ खिन्न होकर चञ्चल दृष्टि से देखने लगा था।

**संस्कृत व्याख्या**—स्तंम्भित् शिखाकलापः=स्तम्भितः बद्धः शिखानां चूडानां कलापः समूहः येन स तथोक्तः, खाण्डवदनदिधक्षया=खाण्डववनस्य खाण्डवसंज्ञकस्य काननस्य दग्धुमिच्छा तया, कृतकपटवटुवेशः=कृतः विहितः कपटेन व्याजेन वटुवेशः ब्रह्मचारिस्वरूपम् येन स तादृशः, भगवान् पावक इव ऐश्वर्यसम्पन्नः अग्निदेव इव दीप्तिमानित्यर्थः, तपोवनदेवतानूपुरानुकारिणा—तपोवनदेवता तपोवनाधिष्ठात्री तस्या नूपुरं पादकटकं तदनुकारिणा तत्सदृशेन, दक्षिणश्रवणावलम्बिना दक्षिणश्रवणं सव्येतरश्रोत्रं तत्र अवलम्बिना स्थायिना, स्फाटिकेन स्फटिकमणिरचितेन अक्षवलयेन वलयाकारजपमालया, धर्मशासनकटकेनेव=धर्मशासनस्य गुरुप्रदत्तविधिनिषेधादि-रूपधर्मोपदेशस्य कटकं तत्त्राणाय परिधिरूपेण वर्तमानं सैन्यं तेनेव, विराजमानः, सुशोभमानः, सकलविषयोपभोगनिवृत्त्यर्थमुपपादितेन=सकलविषयाणां समस्तस्रक्-चन्दनादिभोग्यवस्तूनाम् यः उपभोगः परिभोगः तस्मान्निवृत्त्यर्थम् उपरमार्थम् उपपादितेन विहितेन, त्रिसत्येनेव - त्रयाणां सत्यानां शपथानां समाहारः तेनेव, ललालपट्टके भालफलके भस्मत्रिपुण्ड्रकेण भस्मना विरचितत्रितिलकेन अलङ्कृतः सुशोभितः, गगनगमनोन्मुखवलाकानुकारिणा आकाशोड्डयनाय उन्मुखा ऊर्ध्वानना या वलाका बिसकण्ठिका तामनुकर्तुं शीलं यस्य तेन तादृशेन, स्वर्गमार्गमिव दर्शयता स्वर्गवर्त्म प्रकटयतेव, सततमुद्ग्रीवेण निरन्तरम् उन्नतकन्धरेण स्फटिकमणिकमण्डलुना—स्फटिकमणिरचित कमण्डलुना, अध्यासितवामकरतलः—अध्यासितम् अवलम्बितम् वामकरतलं सव्यपाणितलं यस्य स तादृशः, तपस्तृष्णानिपीतेन—तपस्तृष्णया तपो मे वृद्धिं यातु इत्यभिलापया निपीतेन निगीर्णेन तदनु अन्तर्निष्पतता उदरमध्याद्वहिनिः स ता धूमपटलेन धूमसमूहेनेव नीलपाण्डुभासा नीला कृष्णा पाण्डुः श्वेता भाः कान्ति र्यस्य स तेन तादृशेन, स्कन्धदेशावलम्बिना —बाहुमूलभागा वलम्बनशीलेन कृष्णाजिनेन कृष्णमृग धर्मणा परीतमूर्तिः व्याप्तदेहः, अभिनवविससूत्रनिर्मितेनेव - प्रत्यग्रमृणालतन्तु-रचितेनेव, प्ररिलघुतया—सामस्त्येन भारशून्यत्वेनाणुतया, पवनलोलेन वायुना चञ्चलेन, (अतएव) निर्मांसविरलपार्श्वास्थिपञ्जरमिव गणयता=निर्मांसम् पलल-रहितं विरलमसंकीर्णम् पार्थक्येन वहिर्दृश्यमानम् यत् पार्श्वास्थिपञ्जरम् पार्श्वगतास्थि समूहः तद्गणयता तत्संख्यां कुर्वतेव, वामांसावलम्बिना सव्यस्कन्धावलम्बनशीलेन

यज्ञोपवीतेन उद्भासमानः देदीप्यमानः, देवतार्चनार्थम् देवपूजनार्थम्, आगृहीत वनलताकुसुमपरिपूर्णपर्णपुटसनाथशिखरेण = आगृहीतानि समन्तादात्तानि यानि वनलताकुसुमानि अरण्यव्रततिपुष्पाणि तैः परिपूर्णं भृतं यत् पूर्णपुटं पत्रनिर्मितपुटकम् तेन सनाथं युक्तं शिखरम् ऊर्ध्वभागः यस्य तेन तादृशेन, आषाढदण्डेन पलाशदण्डेन, व्यापृतसव्येतरपाणिः —व्यस्तदक्षिणकरः, विषाणशिखरोत्खाताम् स्नानमृदमुद्वहता = विषाणशिखरेण शृङ्गाग्रभागेन उत्पाटितां उत्खनिताम् स्नानमृदम् हारीतस्य स्नानार्हमृत्तिकाम् उद्वहता स्वकीये विषाणशिखरे धारयता, उपजातपरिचयेन समुत्पन्न-मुनिजनविशेषज्ञानेन नीवारमुष्टिसंवर्द्धितेन = मुष्टिपरमितनीवाराख्यधान्यैः वृद्धि प्रापितेन, कुश कुसुमलतायास्यमानलोलदृष्टिना—पार्श्वद्वयस्थकुशपुष्पलताभिः आयास्य-माना खेदं प्राप्यमाणा अतएव लोला चञ्चला दृष्टि र्यस्य तेन तादृशेन तपोवनमृगेण अनुगम्यमानः अनुव्रज्यमानः.... ......... ........... ।

**संस्कृत सरलार्थ**—हारीताख्यं मुनिकुमारकं वर्णयन् वैशम्पायनः कथयति यद् बद्धचूडाकलापः स खाण्डवाख्यवनं दग्धुमिच्छया धृतकपटब्रह्मचारिस्वरूपः भगवान् अग्निदेव इवासीत्, तपोवनदेवतापादकटक सदृशेन सव्येतरश्रोत्रावलम्बनशीलेन, स्फटिकमणिरचितेन गुरुप्रदत्तविधिनिषेधात्मकधर्मोपदेशत्राणाय परिधिरुपेण वर्तमानेन सैन्येनेव अक्षवलयेन सुशोभमानः, समस्तस्रक्चन्दनादिभोग्यवस्तूपभोगवारणाय धृतेन शपथत्रयेणेव भालफलके भस्मरचितत्रितिलकेन सुशोभितः, आकाशोड्डयनायोद्ध्वीन-नवलाकासदृशेन स्वर्गवर्त्म प्रकटयतेव उन्नतकन्धरेण स्फटिकमणिरचितकमण्डलुना समवलम्बित सव्यहस्ततलः, तपोऽभिवृद्धीच्छया निगीर्णेन पुनर्जठरमध्यान्निःसृतेन धूमसमूहेनेव कृष्णश्वेतकान्तिमता स्कन्धावलम्बनशीलेन कृष्णमृगचर्मणा व्याप्तदेहः, प्रत्यग्रमृणालतन्तुरचितेनेव सामस्त्येन भारशून्यत्वेनाणुतया वायुचपलेन अतएव पलल-रहितासंकीर्णपार्श्वगतास्थि समूहं गणयनेव सव्यस्कन्धात्रलम्बनशीलेन यज्ञोपवीतेन देदीप्यमानः, देवपूजनायात्तारण्य व्रततिपुष्पै र्भृतपत्रपुटकयुक्तोर्ध्वभागेन पलाशदण्डेन व्यस्तदक्षिणकरः, शृङ्गाग्रभागोत्खनितां हारीतस्य कृते स्नानमृत्तिकाम् स्वकीये विषाणशिखरे धारयता मुनिजनस्वभावपरिचितेन मुष्टिपरिमितनीवारधान्यै र्वृद्धि प्रापितेन पार्श्वद्वयस्थाभिः कुशपुष्पलताभिः खिन्नचपलदृष्टिना तपोवनमृगेण अनुगम्य-मानश्चासीत् ।

**टिप्पणी**—**स्तम्भित** = बँधी हुई, **दिधक्षया** = दग्धुमिच्छा तया, सन्नन्त दह् धातोः रूपम् । **खाण्डववन**—महाभारत के अनुसार एक बार श्वेतकि राजा ने बारह वर्षो तक लगातार यज्ञ किया, अतएव निरन्तर खाद्य पदार्थ खाते खाते अग्निदेव को मंदाग्नि पीड़ा होने लगी तब उन्होंने ब्रह्मा की आज्ञा और कृष्णार्जुन की सहायता से अनेकविध औषधियां वाले खाण्डव वन को जलाकर अपनी मन्दाग्नि पीड़ा को शान्त किया था । **कपटवपुवेशः** ब्रह्मचारी का कपटभेष । **नूपुरानुकारिणा**—स्फटिक मणि की बनी अक्षमाला जिसे उसने कान में पहना था, नूपुर सदृश ही गोल तथा गुरु द्वारा

दिये गये धर्मोपदेश की रक्षा के लिए परिधि रूप से वर्तमान सेना के समान थी, गुरु का उपदेश कान में दिया जाता है अतः वह बाहर न निकल जाय इसलिए गोलाकार अक्षमाला मानो सेना के समान बाहर से उसे घेरे हुई थी। "कटक-स्त्वद्रिनितम्बे बाहुभूषणे सेनायां राजधान्याञ्च" यहाँ आर्थी उपमा तथा उत्प्रेक्षा में अङ्गाङ्गिभाव रूप संकर है। **त्रिसत्येनेव** उसके भस्मत्रिपुण्ड्र की तीन रेखायें मानो शपथत्रय के समान थीं, 'नाहं विषयानुरक्तो भविष्यामि' इस बात को तीन बार कह कर शपथ लेना ही त्रिसत्य है "सत्यं कृते च शपथे तथ्ये च त्रिषु तद्वति" यहाँ गुणोत्प्रेक्षालंकार है। **गगनेति** - स्फटिकमणि का उसका कमण्डलु आकाशोन्मुख बलाका जैसा था और उसकी गरदन ऊपर को उठी हुई थी मानो वह स्वर्ग का मार्ग दिखला रहा हो। "बलाका विसकण्ठिका" इत्यमरः। **कृष्णाजिनेति**—वह नील और श्वेत कान्ति वाले कृष्ण मृग चर्म को शरीर पर लपेटे था, **अन्तर्निष्पतता**—भीतर से निकलते हुए, परीत=व्याप्त। **विषसूत्र**—मृणाल के तन्तु "मृणालं विसमब्जादि" **पार्श्वास्थिपञ्जरम्**--व्रतादि करते करते वह इतना दुबला हो गया था कि उसकी एक-एक पसली गिनी जा सकती थी, **परिलघुतया** - बिल्कुल हल्का होने के कारण, आषाढ़दण्ड = पलाश दण्ड "पलाशो दण्ड आषाढ इत्यमरः। व्यापृत = लगा हुआ। सव्येतर दाहिना, मृदम् = स्नानार्हं मिट्टी—मुनिजन स्नान के पूर्व मिट्टी लगाते थे, यही मृग के सींग पर लगी हुई थी।

**विटप इव कोमलवल्कलावृतशरीरः, गिरिरिव समेखलः, राहुरिव असकृदास्वादितसोमः, पद्मनिकर इव दिवसकरमरीचिपः, नदीतटतरुरिव सततजलक्षालनविमलतटः करिकलभ इव विकचकुमुददलशकलसितदशनः, द्रौणिरिव कृपालुगतः, नक्षत्रराशिरिव चित्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः, धर्मकालदिवस इव क्षपितदोषः, जलधरसमय इव प्रशमितरजः प्रसरः, वरुण इव कृतोदवासः, हरिरिव अपनीत नरकभयः, प्रदोषारम्भ इव सन्ध्यापिङ्गलतारकः प्रभातकाल इव बालातपकपिलः, रविरथ इव दृढनियमिताक्षचक्रः, सुराजेव निगूढमन्त्रसाधनक्षपितविग्रहः, जलधिरिव करालशङ्खमण्डलावर्त्तनाभिगर्त्तः, भगीरथ इव दृष्टगङ्गावतारः, भ्रमर इव असकृदनुभूतपुष्करवनवासः वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः, असंयतोऽपि मोक्षार्थी सामप्रयोगपरोऽपि सततावलम्बितदण्डः, सुप्तोऽपि प्रबुद्धः, सन्निहितनेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनः, तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागमत्।**

**शब्दार्थ—विटप**=तरुशाखा, **वल्कल**=छाल और वल्कल वस्त्र, **समेखलः**= मौञ्जीमेखला और पर्वत का मध्यभाग, **असकृतास्वादितसोमः**=अनेक बार सोमयाग के समय सोमरस का पान करने वाले और अनेक बार पूर्णिमा तिथियों पर चन्द्रमा को ग्रस्त करने वाले। **पद्मनिकरः**=कमलसमूह, **दिवसकरमरीचिपः**=सूर्य की

किरणों का पान करने वाले और (पञ्चाग्नि तप के समय) सूर्य किरणों को पीने वाले. **नदीतटतरु**: = नदी के तटवर्ती वृक्ष. **सततजलक्षालनविमलजटः**=निरन्तर जल द्वारा धुलने से (क्षालन) निर्मल जटाओं और जड़ों के पतले रेशों वाले. **करिकलभः** = हाथी का बच्चा. **विकचकुमुददलशकलसितदशनः**—खिले हुए (विकच) कुमुद की पंखड़ियों (दल) के टुकड़ों के समान (शकल) श्वेत दाँतों वाले (सितदशनः) **द्रौणिः**—द्रोणपुत्र अश्वत्थामा. **कृपानुगतः**=कृपाचार्य से अनुगत और दया से युक्त. **नक्षत्रराशिः** = नक्षत्रसमूह. **चित्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः**= चित्रा, मृगशिरा, कृत्तिका. आश्लेषा, नामक नक्षत्रों से तथा चितकबरे मृग के चर्म (कृत्तिका) के आश्लेष-सम्बन्ध से सुशोभित. **धर्मकालदिवसः** = ग्रीष्मकालीन दिन, **क्षपितदोषः**= रात्रि को (दोषा) क्षीण कर देने वाले, और कामक्रोधादि दोषों को नाशकर देने वाले, **जलधरसमयः**=वर्षाकाल, **प्रशमितरजः प्रसरः**=धूलि का उड़ना शान्त कर देने वाले और रजोगुण (रजः) का प्रसार शान्त कर देने वाले, **वरुणः**=वरुणदेव, **कृतोदवासः**=जल (उद) में निवास करने वाले और (तपस्या के लिये) जल में वास करने वाले, हरिः=विष्णु, **अपनीतनरकभयः**=नरक नामक असुर का तथा नरक भय दूर कर चुकने वाले, **प्रदोषारम्भः** सन्ध्याकाल, **सन्ध्यापिङ्गलतारकः**= सन्ध्याकाल के पीले तारों वाले और सन्ध्याकालीन पीतिमा जैसे पिंगल वर्ण की पुतलियों वाले. **प्रभातकाल इव बालातपकपिलः**—प्रातः सूर्य के प्रकाश के कारण (बालातप) पीले वर्ण वाले और बालातप के समान पिंगल वर्ण वाले, **रविरथ इव**—सूर्य के रथ के समान, **दृढनियमिताक्षचक्र**=दृढ़ता से नियन्त्रित धुरी (अक्ष) और पहिये वाले, तथा दृढ़ता से वशीकृत इन्द्रिय समूह (अक्षचक्र) वाले, **सुराजेव निगूढमन्त्रसाधनक्षपितविग्रहः**=गुप्तमन्त्रणा (निगूढमन्त्र) और सेनादि साधनों द्वारा युद्ध (विग्रह) समाप्त कर देने वाले, (क्षपित) तथा गुप्त मन्त्रों की साधना से शरीर (विग्रह) को क्षीण (क्षपित) कर देने वाले, **जलधिरिव**=समुद्र के समान, **करालशङ्खमण्डलावर्त्तनाभिगर्त्तः**= नाभिकूप सदृश विशाल शंखों एवं मण्डलाकार आवर्तों (भँवरों) वाले, तथा विशाल शंख की मण्डलाकार रेखाओं (आवर्त) के समान नाभिकूप वाले, **भगीरथ इव दृष्टगङ्गावतारः**=राजा भगीरथ के समान, गंगा का अवतरण स्वर्ग से पृथिवी पर (उतरना) देख लेने वाले और गंगा के अवतारों अर्थात् घाटों को देख लेने वाले, **भ्रमर इव असकृदनुभूत पुष्करवनवासः**=अनेक बार (असकृत) कमलवन में निवास का अनुभव कर चुकने वाले और अनेक बार पुष्कर तीर्थ वन में निवास का अनुभव प्राप्त कर लेने वाले, **वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः**= वनचारी होकर भी महालय अर्थात ब्रह्म में प्रवेश पा लेने वाले, (महालय अर्थात् उच्च भवन इस विरोध का परिहार उक्त अर्थ से हो जाता है) **असंयतोऽपि मोक्षार्थी**—विषयों के बन्धन से रहित (असंयत) होकर भी मोक्ष के लिए इच्छुक, असंयत अर्थात् धारणाध्यान समाधि रहित—अर्थ का विरोध परिहार उक्त अर्थ से हो जाता

है) **सामप्रयोगपरोऽपि सततावलम्बितदण्डः**=सामवेद के प्रयोग में तत्पर रहकर भी निरन्तर दण्ड धारण करने वाले (सामप्रयोग पर :—अर्थात् शान्ति या सान्त्वना का प्रयोग करने वाले होकर भी, दण्ड का प्रयोग करने वाले इस विरोधाभास का परिहार उक्त अर्थ से हो जाता है। **सुप्तोऽपि प्रबुद्धः**=सुप्त होने पर भी ज्ञानवान् (सोता हुआ भी जागने वाला इस विरोधाभास का परिहार उक्त अर्थ से हो जाता है। **सन्निहितनेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनः**=दो नेत्रों से युक्त होने पर भी वामलोचना अर्थात् रमणी का त्याग कर देने वाले (**वामलोचन**=अर्थात् वामनेत्र अर्थ करने पर विरोध का परिहार उक्तार्थ द्वारा हो जाता है। **तदेव कमलसरः सिस्नासुः**=उसी कमल सरोवर में स्नानाभिलाषी होकर, **उपागमत्**=आये।

**अनुवाद**—वक्कल से ढके हुए शरीर वाली वृक्ष की शाखा के समान वल्कल वस्त्र से आच्छादित शरीर वाले, अपने मध्यभाग से युक्त पर्वत के समान मौञ्जी मेखला से युक्त अर्थात् अपने कटि पर मूँज घास से बनी मेखला (करधनी) को बाँधे हुए, अनेक बार चन्द्रमा को ग्रस लेने वाले राहु के समान अनेक बार (सोमयज्ञ के अवसर पर) सोमरस का पान कर चुकने वाले, सूर्य की किरणों का पान करने वाले, कमल समूह के समान (पञ्चाग्नि तप के अवसर पर) सूर्य की किरणों को पीने वाले, निरन्तर जल से धुलने के कारण निर्मल (मिट्टी से रहित) जड़ों के पतले पतले रेशों वाले, नदी के तटवर्ती वृक्ष के समान निरन्तर जल द्वारा धुलने से निर्मल जटाओं वाले, खिले हुए कुमुदों की पंखुड़ियों के टुकड़ों के समान श्वेत दो दाँतों वाले गजशावक के समान विकसित कुमुदपुष्पों के समान श्वेत दाँतों वाले, कृपाचार्य से (युद्धादि में) अनुगत (युक्त) द्रोणपुत्र अश्वत्थामा के समान कृपा (दया भाव) से युक्त, चित्रा, मृगशिरा, कृत्तिका, आश्लेषा नामक नक्षत्रों से सुशोभित नक्षत्रसमूह के समान चितकबरे मृग के चर्म (कृत्तिका) के आश्लेष सम्बन्ध या संयोग से सुशोभित, रात्रियों को क्षीण कर देने वाले, ग्रीष्मकालीन दिन के समान कामक्रोधादि दोषों का क्षय (विनाश) कर देने वाले, धूलि का उड़ना (रजः प्रसरः) शान्त कर देने वाले वर्षाकाल के समान रजोगुण (रजः) प्रसार (फैलाव) शान्त कर देने वाले, जल में निवास करने वाले वरुणदेव के समान (तपस्या के लिये) जल में वास कर चुकने वाले, नरकासुर का भय दूर करने वाले भगवान् विष्णु के समान नरक का भय दूर कर चुकने वाले, सन्ध्याकाल के पीले तारों वाले प्रदोषकाल के आरम्भ के समान सन्ध्याकालीन पीतिमा जैसे पिङ्गल वर्ण की पुतलियों वाले, नवोदित सूर्य प्रकाश के कारण पीले वर्ण के प्रभातकाल के समान नवोदित सूर्य के प्रकाश के तुल्य पिङ्गल वर्ण वाले, दृढ़ता पूर्वक नियन्त्रित किये गये धुरी और पहिये वाले सूर्य के रथ के समान, दृढ़तापूर्वक वशीकृत इन्द्रिय समूह वाले, गुप्तमन्त्रणा और (सेना आदि) साधनों से युद्ध समाप्त कर देने वाले अच्छे राजा के समान गुप्त मन्त्रों की साधना से शरीर को क्षीण कर देने वाले, नाभिकूप के सदृश विशाल शंखों एवं मण्डलाकार

आवर्तों वाले समुद्र के समान विशाल शंख की मण्डलाकार रेखाओं जैसी नाभिकूप वाले, गंगा के अवतरण (उतरने) को देखे हुए भगीरथ के समान गंगा के (अनेक) अवतरणों-घाटों को देख चुकने वाले, अनेक वार कमलवन में निवास का अनुभव प्राप्त कर लेने वाले, भ्रमर के समान अनेक बार पुष्कर तीर्थ और वन में निवास का अनुभव कर चुकने वाले, वनचारी होते हुए भी महालय अर्थात् परमात्मा में प्रवेश कर चुकने वाले, विषयों के बन्धन से रहित होते हुए भी मुक्ति के अभिलाषी, सामवेद के प्रयोग में तत्पर रहकर भी निरन्तर दण्ड धारण करने वाले, सोते हुए होने पर भी ज्ञानवान्, दो नेत्रों से युक्त होते हुए भी वामलोचना-रमणी का परित्याग कर देने वाले, (हारीत नामक मुनिकुमार) स्नान के लिए इच्छुक होकर उसी कमल सरोवर पर आये।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि वल्कल वस्त्र पहने हुए हारीत मुनिकुमार वल्कल से आच्छादित तरुशाखा जैसे, और कटि प्रदेश में मौञ्जी मेखला धारण करने से पहाड़ियों से घिरे पर्वत जैसे थे। सोमयागों में सदा सोमरस का पान करने के कारण वे अनेक वार चन्द्र को ग्रस्त कर लेने वाले राहु और पञ्चाग्नि तप के समय सूर्य की किरणों को सहन करने के कारण, सूर्य किरणों को पान करने वाले कमल-समूह के समान थे। नदी के किनारे के वृक्ष की पतली जड़ों के समान उनकी जटायें निरन्तर जल में स्नान करने से जल से धुलकर निर्मल हो गई थीं। गजशावक के दाँतों के समान उनके दाँत विकसित कुमुद पुष्प की पंखुड़ियों के टुकड़ों के समान श्वेत थे। कृपाचार्य के अनुगामी अश्वत्थामा के समान वे सदा दया का अनुगमन करने वाले थे। वे चित्रा, मृगशिरा, कृत्तिका, और आश्लेषा नामक नक्षत्रों से शोभित नक्षत्र मण्डल के समान चितकवरे मृग के चर्म से आश्लिष्ट होने से शोभित थे। जैसे वर्षाकाल में धूलि का उड़ना वन्द हो जाता है उसी प्रकार उनमें रजोगुण का प्रसार शान्त हो गया था। जलवासी वरुणदेव के समान वे प्रायः जल में प्रवेश कर तप करते थे। नरकासुर को मारकर सबका भय दूर कर देने वाले विष्णु के समान उन्होंने तप के द्वारा नरक का भय दूर कर दिया था। वे सन्ध्याकालीन तारों के समान पीलिमायुक्त पुतलियों के कारण प्रदोष समय के आरम्भ के समान तथा प्रातःकालीन धूप के समान कुछ-कुछ लालिमायुक्त शरीर के कारण प्रातःकाल जैसे प्रतीत होते थे। सूर्य के रथ के धुरी और पहिये जिस प्रकार दृढ़ता से नियन्त्रित होते हैं उसी प्रकार उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों को पूर्णतया नियन्त्रित कर रखा था। जिस प्रकार एक चतुर राजा गुप्त मन्त्रणाओं और सेना आदि साधनों से युद्ध की सम्भावना को क्षीण कर देता है उसी प्रकार उसने गुप्त मन्त्रों की साधनाओं से अपने शरीर को क्षीण कर दिया था। नाभिकूप के समान विशाल शंखों और मण्डलाकार आवर्तों वाले समुद्र के समान वे विशाल शंख की मण्डलाकार रेखाओं जैसे नाभिकूप वाले थे। जैसे भगीरथ ने गंगा के अवतरण को देखा था इसी प्रकार इन्होंने गंगा के अनेक घाट देखे थे। जैसे भ्रमर अनेक वार कमलवनों में निवास

करता है उसी प्रकार इन्होंने अनेक बार पुष्कर तीर्थ और वन में निवास का अनुभव प्राप्त किया था। यद्यपि वे वन में विचरण करते रहते थे फिर भी वे सदा परमात्म समाधि में लीन रहते थे, संसार के बन्धन से रहित होकर भी मुक्ति चाहते थे, बाह्य इन्द्रियों के विषयों से रहित होकर भी निरन्तर ब्रह्मचिन्तन में लीन रहते थे, वे दोनों आँखें रहते हुए भी वामनेत्र से रहित थे अर्थात् वामलोचनाओं से विरक्त थे।

**संस्कृत व्याख्या**—विटप इव—तरुशाखेव, कोमलवल्कलावृतशरीरः=कोमलेन परिधानयोग्येन मृदुलेन वल्कलेन वृक्षत्वचा अन्यत्रवल्कलवस्त्रेण आवृतं समाच्छादितं शरीरं वपुर्यस्य स तादृशः, गिरिरिव पर्वत इव, समेखलः=मेखलया मुञ्जघासनिर्मित-कटिसूत्रेण अन्यत्र मध्यभागेन च सह वर्तमानः समेखलः, राहुरिव-विधुन्तुद इव, असकृदास्वादितसोमः=असकृत् बहुशः आस्वादितः सोमयागावसरेषु पीतः पान-विषयीकृतः पक्षे पूर्णिमातिथिषु ग्रस्तश्च सोमः सोमलतारसः पक्षे इन्दुश्च येन स तादृशः, पद्मनिकर इव—पङ्कजसमूह इव, दिवसकरमरीचिपः=दिवसकरस्य सूर्यस्य मरीचीन् किरणान् पिबति पञ्चाग्नितपः साधनायोर्ध्वाननः सत् ग्रसते पक्षे स्वविकासाय स्पृशतीति मरीचिपः, नदीतटतरुरिव=सरित्तटवर्तिवृक्ष इव, सतत-जलक्षालननिर्मलजटः=सततं निरन्तरम् त्रिसन्ध्यमित्यर्थः जले यत् क्षालनम् स्नानम् अवगाहनम् वा तेन विमला निर्मला धूल्यादिरहिता जटा यस्य स तादृशः, पक्षे सततं निरन्तरं जलेन नदीसलिलेन यत् क्षालनम् प्रक्षालनम् तेन विमला निर्मला मृद्धीना वा जटा लघुमूलानि अवरोहा वा यस्य स तादृशः, करिकलभ इव—गजशावक इव, विकचकुमुददलशकलसितदशनः=विकचं प्रस्फुटितं यत् कुमुदं कैरवं तस्य दलानि पर्णानि तेषाम् शकलवत् खण्डवत् सिताः शुभ्राः दशनाः दन्ताः गजपक्षे दन्तौ च यस्य स तादृशः, द्रौणिरिव=द्रोणाचार्यात्मजः अश्वत्थामा इव, कृपानुगतः=कृपाम् दयाम् अनुगतः प्राप्तः सर्वजीवदयापरः इत्यर्थः पक्षे, कृपः=कृपाचार्यः तेन अनुगतः समरादा-वनुगतः। नक्षत्रराशिरिव—ऋक्षनिकर इव, चित्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः= चित्रमृगस्य चित्रितहरिणस्य या कृत्तिका चर्म तस्य आश्लेषेण आदानेन धारणेन वा उपशोभितः शोभां प्राप्तः पक्षे चित्रम् चित्राख्यं नक्षत्रम् मृगम् मृगशिराख्यं नक्षत्रम्, कृत्तिका एतन्नामकं नक्षत्रम् आश्लेषा एतत्संज्ञकं नक्षत्रम् तैरुपशोभितः। धर्मकालदिवस इव, ग्रीष्मसमयदिनमिव, क्षपितदोषः=क्षपिताः क्षयं प्रापिताः दोषा कामक्रोधादयः यस्य स तादृशः पक्षे क्षपिताः ह्रासं प्रापिताः दोषा रात्रिर्यस्य स तादृशः, जलधर-समय इव—वर्षाकाल इव, प्रशमितरजः प्रसरः=प्रशमितः सततयोगाभ्यासेन निवारितः रजः प्रसरः रजोगुणस्य विस्तारः येन स तादृशः पक्षे—प्रशमितः सलिल-वर्षणेन दूरीकृतः रजः प्रसरः धूलिप्रसरणम् येन स तादृशः, वरुण इव=वरुणदेव इव, कृतोदवासः=कृतः विहितः अनुष्ठितो वा उदवासः सलिलवासः व्रतविशेषः येन स तादृशः, पक्षे कृतः उदवासः जलदेवतात्वेन तत्रावस्थानं येन स तादृशः, हरिरिव= वासुदेव इव, अपनीतनरकभयः=अपनीतम् दूरीकृतम् नरकभयम् तपसा निरयप्राप्ति-

भीतिर्येन स तादृशः, पक्षे—दूरीकृतनरकासुरभीतिः, प्रदोपारम्भ इव—रजनीमुख-प्रारम्भकाल इव, सन्ध्यापिङ्गलतारकः=सन्ध्यावत् पिङ्गले पीतवर्णे तारके कनीनिके यस्य स तादृशः, पक्षे—सन्ध्यया सन्ध्याकालवर्णेन पीता पीतवर्णाः तारका उडूनि यस्मिन् स तादृशः, प्रभातकाल इव—प्रत्यूषसमय इव, बालातपकपिलः=नवोदित सूर्यालोक वद्रक्तपीतवर्णः, पक्षे—बालातपेन रक्तपीतवर्णः, रविरथ इव=सूर्यरथ इव, दृढनियमिताक्षचक्रः—दृढं यथास्यात्तथा नियमितं निगृहीतं वशीकृतम् वा अक्षाणाम् इन्द्रियाणां चक्रम् समूहः येन स तादृशः, पक्षे—दृढं नियमितानि समावद्धानि अक्षः चक्राधारभूतमध्यदण्ड चक्राणि च यस्मिन् स तादृशः, सुराजेव=सुष्ठु सुन्दरः कर्मकुशल इत्यर्थ यः राजा भूपतिस्तद्वत्, निगूढमन्त्रसाधनक्षपितविग्रहः=निगूढः अतिगुप्तः यः मन्त्रः तस्य साधनेन सततजपादिभिः सिद्धिकरणेन क्षपितः अनवरत-व्रताचरणादिभिः कृशीकृतः विग्रहः शरीरं येन स तादृशः पक्षे—निगूढः अतिगुप्तः यः मन्त्रः रहस्यालोचनं साधनं गजाश्वादि ताभ्यां क्षपितः क्षयं नीतः विग्रहः शत्रुभिः सह संग्रामः येन स तादृशः, जलधिरिव=समुद्र इव, करालशङ्खमण्डलावर्त्तनाभि-गर्त्तः=करालः उच्च नीचः दन्तुरो वा यः शङ्खः तस्य मण्डलावर्त्तवत मण्डलसदृशा-वर्तवत् नाभिगर्त्तो यस्य स तादृशः, पक्षे—करालशङ्खः विशालशङ्खः मण्डलावर्त्तः मण्डलाकारजलावर्त्तश्च नाभिगर्त्त इव नाभिश्वभ्र इव यस्मिन् स तादृशः, भगीरथ इव—भगीरथाख्य सगरपौत्रस्तद्वत् दृष्टगङ्गावतारः=दृष्टः अवलोकितः गङ्गाया भागीरथ्याः अवतारः घट्टः येन स तादृशः, पक्षे दृष्टः गङ्गायाः अवतारः सुरालया-दवतरणं येन स तादृशः, भ्रमर इव—मधुकर इव, असकृदनुभूत पुष्करवनवासः—असकृत् अनेकशः अनुभूतः अनुभवविषयीकृतः पुष्करे एतन्नामके तीर्थे वने विपिने च वास निवासः येन स तादृशः, पक्षे—असकृदनुभूतः मधुपानाय बहुशः अनुभूतः पुष्करवने कमलवने वासः येन स तादृशः, वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः=वनभ्रमण-शीलः सन्नपि कृतः विहितः महालयेषु उच्चैस्तरभवनेषु प्रवेशः येन स तादृशः—अत्र विरोधस्तु—कृतः योगाभ्यासेन सम्पादितः महालये परमात्मनि प्रवेशः ज्ञान-विषयता येनेत्यर्थेन वारणीयः, असंयतोऽपि मोक्षार्थी=असंयतः असंयमवान् सन्नपि मोक्षार्थी मोक्षाभिलाषुकः नहि संयमं बिना मोक्षप्राप्ति र्भवतीति सिद्धान्तः अत्र विरोधपरिहारार्थम् असंयतः इत्यस्य संसारबन्धनरहितः अवद्ध इत्यर्थः साधनीयः। सामप्रयोगपरोऽपि सततालम्बितदण्डः=सामप्रयोगपरः सान्त्वनानुष्ठानतत्परः सन्नपि सततं निरन्तरम् अवलम्बितः आश्रितः दण्डः राजनीतिगतदण्डरूपः चतुर्थोपायः—अलविरोधपरिहाराय—सामवेदप्रयोगपरोऽपि सततावलम्बितपलाशदण्ड इत्यर्थं आश्रय-णीयः। सुप्तोऽपि प्रबुद्धः=निद्रितोऽपि कृतजागरण इति विरोधः तत्परिहाराय—संसारिक विषयज्ञानशून्योऽपि परमात्मतत्त्वज्ञ इत्यर्थः कार्यः, सन्निहितनेत्रद्वयोऽपि—सन्निहितं सम्यक् प्रकारेण वदने स्थापितं नेत्रद्वयम् लोचनयुगलं यस्य स तथोक्तः सन्नपि, परित्यक्त वामलोचन—परित्यक्तम् दूरीकृतं वामलोचनं दक्षिणेतरनयनं येन स तथोक्तः, अत्र विरोधपरिहारार्थम्—परित्यक्ता वामलोचना रमणी येन स

इत्यर्थं आश्रयणीयः । एवम्भूतः स हारीताख्यः मुनिकुमारकः सिस्नासुः स्नातुमिच्छुः सन् तदेव पम्पेत्याख्यातं कमलसरः उपागमत् प्राप्तवान् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः हारीताख्यं मुनिकुमारकं वर्णयन् कथयति यत् स वृक्षत्वगाच्छादितदेहः तरुशाखेव परिधानीयमृदुलवल्कलाच्छादितशरीरः मध्यभागेन सह वर्तमानः पर्वत इव स मुञ्जघासनिर्मितकटिसूत्रेण सह विद्यमानश्चासीत् । पूर्णिमास्वनेकशः ग्रस्तेन्दुः सैंहिकेय इव स सोमयागावसरेष्वनेकशः पीतसोमलतारसः, सूर्यकिरणपायी कमलसमूह इव स ग्रीष्मर्तौ पञ्चाग्नितपः साधनायोर्ध्वाननः सूर्यरश्मिपः, निरन्तरं नदीसलिलेन प्रक्षालनात् निर्मलमूलभागसरित्तटवृक्ष इव त्रिसन्ध्यमवगाहनेन निर्मलजटः, विकसितकैरवपर्णखण्डवच्छुभ्रदन्तः गजकलभ इव प्रस्फुटितकुमुददलखण्डवच्छुभ्रदन्तः, कृपाचार्येण समरादावुपगतः अश्वत्थामा इव सर्वजीवदयापरः, चित्रमृगशिराख्यकृत्तिकाश्लेषाख्यनक्षत्रैरूपशोभितः नक्षत्रसमूह इव चित्रितहरिणचर्मधारणेन शोभामुपगत , क्षपितरात्रिः ग्रीष्मदिवस इव स विनाशितकामक्रोधादिदोषः, जलवर्षणेन दूरीकृतधूलिप्रसरः प्रावृट्काल इव निवारितरजोगुणप्रसरः, जलदेवतात्वेन कृतजलवासः वरुणदेव इव अनुष्ठितसलिलवासाख्यव्रतविशेषः, दूरीकृतनरकासुरभयः वासुदेव इव तपसापनीतनरकप्राप्तिभयः, सन्ध्यया पीतवर्णतारकः रजनीमुखारम्भकाल इव सन्ध्यावत्पीतवर्णतारकः, नवोदितसूर्यालोकेन रक्तपीतवर्णः प्रभातकाल इव नवोदितसूर्यालोकवद्रक्तपीतवर्णः, दृढसमाबद्धचक्राधारमध्यदण्डचक्रः सूर्यरथ इव दृढनिगृहीतेन्द्रियसमूहः, अतिगुप्तमन्त्रगजाश्वादिसाधनापनीतसंग्रामः कार्यकुशलो भूपतिरिव अतिगुप्तमन्त्रसाधनेन वशी कृतशरीरः, विशालशङ्खमण्डलाकार जलावर्तनाभिश्वभ्रः समुद्र इव दन्तुरशङ्खस्य मण्डलसदृशावर्तं वन्नाभिगर्त्तः, अवलोकितगङ्गावतरणप्रदेशः भगीरथ इव दृष्टगङ्गानेकघट्टः, मधुपानायानेकशोऽनुभूतकमलवनवासः भ्रमर इव अनेकशोऽनुभवविषयीकृतपुष्करतीर्थवनवासः, वनभ्रमणशीलोऽपि प्राप्तपरमात्मतत्त्वः, सामवेदप्रयोगतत्परः सन्नपि सततगृहीतपलाशदण्डः, सांसारिकविषयज्ञानशून्योऽपि परमात्मतत्त्वज्ञः, संसारबन्धनरहितोऽपि मोक्षाभिलाषुकः संस्थापितलोचनयुगलोऽपि परित्यक्तरमणीसंसर्गः एवम्भूतः हारीताख्यो मुनिकुमारकः स्नातुमिच्छुः सन् तमेव पम्पाख्यसरोवर मुपागच्छत् ।

**टिप्पणी**—**वल्कल**—१—वृक्ष का वक्कल या छाल, २—वल्कल वस्त्र । **मेखला**—पर्वतीय मध्यभाग २—मौञ्जी मेखला, "मेखला खड्गबन्धे स्यात् काञ्चीशैलनितम्बयोः" इत्यमरः । **सोमः**—राहु पक्ष में—चन्द्रमा, हारीत पक्ष में सोमरस । "सोमस्त्वौषधि तद्रसेन्दुषु" "तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः" **आस्वादितः**—१—पीना, २—ग्रस्त करना । **मरीचिपः**—मरीचीन् पिबति मरीचि+पा+क, १—कमल पक्ष में स्पर्श करना अन्यत्र ग्रसन करना । **जलक्षालन** १—जल में बार-बार स्नान करने से अन्यत्र जल से प्रक्षालन करने से, जटा—१ जड़ों के पतले रेशे अन्यत्र जटा, **द्रौणिः**—अश्वत्थामा, **कृपानुगतः**—१—कृपाचार्य से अनुगत २—दया

परायण, "कृपादयानुकम्पा स्यात्" क्षपितदोषः—१—रात्रि को क्षीण कर देने वाला, २—कामक्रोधादि दोषों को नष्ट कर देने वाला, "दोषा, रात्रिमुखे रात्रौ" रजः प्रसरः=१—रजोगुण का विस्तार, २—धूलि का उड़ना, उदवासः—उदके जले वासः "उदकस्योदः संज्ञायाम्, उदक के स्थान में उद आदेश, जलदेवता होने से वरुण का जलवास, अन्यत्र उदवास एक व्रतविशेष जो जल में खड़े होकर किया जाता है। नरकभयः—नरकासुर का भय २—नरक प्राप्ति का भय। प्रदोषारम्भः—प्रदोष= रात्रि का आरम्भ 'प्रदोषो रजनीमुखम्' प्रदोष का आरम्भिक भाग। सन्ध्यापिङ्गल-तारकः—सन्ध्याकाल के समान पीत वर्ण की पुतलियों वाले—यह महापुरुष का लक्षण है जैसाकि सामुद्रिक शास्त्र में माना गया है "क्षुद्रोऽपि चक्रवर्ती स्यात्पीत-तारकचक्षुषि" अन्यत्र-सन्ध्या के द्वारा पीले तारागणों वाला। कपिलः—१—नवीन धूप के कारण २—नवीन धूप के समान पिंगल वर्ण, अक्षचक्रः=रथ की धुरी (अक्ष) और पहिये (चक्र) २—इन्द्रियों का समूह। मन्त्रसाधनक्षपितविग्रहः=राज्याधिकारियों से मन्त्रणा तथा सेनादिसाधन से युद्ध समाप्त कर देने वाला अन्यत्र, मन्त्रसाधना से शरीर को क्षीण कर देने वाला गङ्गावतारः=गंगा का उतरना २—गंगा के घाट घट्टस्तीर्थेऽवतारे", पुष्करवनवासः १—कमल वन में वास २—पुष्करतीर्थ और वन में वास। बनचरोऽपि ... वागलोचनः" तक सभी पदों में विरोधाभास है जिसका परिहार ऊपर बताया जा चुका है।

## शुकजलपानादि वर्णनम्

प्रायेणाकारणमित्राण्यति करुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि। यतः स मां तदवस्थमालोक्य समुपजातकरुणः समीपवर्तिन मृषि-कुमारकमन्यतममब्रवीत् 'अयं कथमपि शुकशिशुरसञ्जातपक्षपुट एव तरु-शिखरादस्मात् परिच्युतः श्येनमुखपरिभ्रष्टेन वानेन भवितव्यम्। तथा ह्यस्याल्पशेषं जीवितम्, अयमामीलितलोचनो मुहुर्मुहुः रत्युल्वणं श्वसिति, मुहुर्मुहुर्मुखेन पतति। मुहुर्मुहुश्चञ्चुपुटं विवृणोति, न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्। तदेहि यावदेवायमसुभिर्न विमुच्यते तावदेव गृहाणेमम्, अवतारय सलिलसमीपम्' इत्यभिधाय तेन मां सरस्तीरमनाययत्।

शब्दार्थ—सतां चेतांसि—सज्जनों के चित्त, प्रायेण=प्रायः अकारणमित्राणि—बिना कारण ही मित्र जैसा व्यवहार करने वाले, अतिकरुणार्द्राणि च=अति करुणा से द्रवित होने वाले, सदा खलु भवन्ति=निश्चयतः सर्वदा होते हैं। यतः स मां तदवस्थ-मालोक्य=क्योंकि उस (हारीत) ने मुझे उस अवस्था में (पूर्ववर्णित दशा में) देखकर, समुपजातकरुणः=कारुणिक होकर, समीपवर्तिनम् ऋषिकुमारकम् अन्यतमम् अब्रवीत्=समीपवर्ती दूसरे एक ऋषिकुमार से कहा—अयम् असञ्जातपक्षपुटः एव शुकशिशुः कथमपि अस्मात् तरुशिखरात् परिच्युतः=यह अनुत्पन्न पंखों वाला ही तोते का बच्चा किसी भी प्रकार इस वृक्ष की चोटी से गिर पड़ा है। श्येनमुख-

**परिभ्रष्टेन वानेन भवितव्यम्**=अथवा (वा) यह बाज (श्येन) के मुख से गिरा हुआ होगा। **तथाहि अस्य अल्पशेषं जीवितम्**=क्योंकि इसका जीवन (जीवित) थोड़ा ही शेष है। **आमीचितलोचनः अयम् मुहु र्मुहुः अत्युल्वणम् श्वसिति**=कुछ-कुछ आँखें बन्द किये हुये (आमीलित) यह बार-बार, बड़ी लम्बी-लम्बी (अत्युल्वणम्) सांसें ले रहा है। **मुहुः मुहुः मुखेन पतति**=बार बार मुँह के बल गिर रहा है। **मुहुर्मुहुश्चञ्चुपुटं विवृणोति**=बार-बार चञ्चुपुट खोल रहा है। (**विवृणोति**)। **न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्** गरदन को नहीं सम्भाल सकता है। **तदेहि**=तो आओ, **यावदेव अयम् असुभिः न विमुच्यते तावदेव गृहाण इमम् सलिलसमीपम् अवतारय**=जब तक कि यह प्राणों द्वारा (असुभिः) छोड़ नहीं दिया जाता अर्थात् मर नहीं जाता तब तक ही इसको उठा लो, और पानी के पास उतार दो, **इत्यभिधाय**=यह कहकर, **तेन मां सरस्तीरम् अनाययत्**=उस मुनिकुमार ने मुझे सरोवर के तीर पहुंचवाया।

**अनुवाद**—सज्जनों के चित्त प्रायः बिना कारण ही मित्रों जैसा व्यवहार करने वाले तथा अतिकरुणा से द्रवित होने वाले सर्वदा निश्चयतः होते हैं। क्योंकि उस हारीत ने मुझे उस अवस्था में देखकर कारुणिक होकर समीपवर्ती दूसरे एक ऋषिकुमार से कहा, यह अनुत्पन्न पंखों वाला ही तोते का बच्चा किसी भी प्रकार इस वृक्ष की चोटी से गिर पड़ा है अथवा यह बाज के मुख से गिरा हुआ होगा, क्योंकि इसका जीवन थोड़ा ही शेष है, कुछ-कुछ आँखें बन्द किये हुए यह बार-बार बड़ी लम्बी-लम्बी सांसें ले रहा है। बार-बार मुँह के बल गिर रहा है, बार-बार चञ्चुपुट खोल रहा है, गरदन को भी नहीं संभाल पा रहा है। तो आओ, जब तक कि यह प्राणों द्वारा छोड़ नहीं दिया जाता (उसके पूर्व ही) इसको ले लो और पानी के पास उतार दो, यह कहकर उस मुनिकुमार ने मुझे सरोवर की तीर पहुंचवाया।

**भावार्थ**—स्पष्ट है।

**संस्कृत व्याख्या**—सताम् साधूनाम् चेतांसि हृदयानि प्रायेण बाहुल्येन अकारणमित्राणि कारणं विनैव प्रियकारीणि अतिकरुणार्द्राणि अतिकरुणा अतिशयपर-दुःखप्रहाणेच्छा तया आर्द्राणि स्विन्नानि खलु निश्चयेन सदा सर्वदा भवन्ति जायन्ते। यतः यस्मात्कारणात् स हारीताख्यः मुनिदारकः माम् वैशम्पायनम् तदवस्थम् पूर्व-वर्णितदयनीयदशापन्नम् आलोक्य निरीक्ष्य समीपवर्तिनम् निकटस्थम् अन्यतमम् बहुषु कमप्येकम् मुनिकुमारकम् मुनिदारकम् अब्रवीत् उक्तवान्। अयम् पुरोवर्ती असञ्जातपक्षपुट अनुत्पन्नच्छद एव शुकशिशुः कीरशावकः कथमपि महता दुःखेन अस्मात् तरुशिखरात् वृक्षप्रान्तात् परिच्युतः निपतितः, वा अथवा अनेन शुकशिशुना श्येनमुखभ्रष्टेन श्येनः सिञ्चानकः तस्य मुखात् परिभ्रष्ट परिच्युतः तेन तथोक्तेन भवितव्यम्, तथाहि अस्य अल्पशेषं जीवितम्—तथाहि अस्य शुकशिशो जीवितं

जीवनम् अल्पशेषम् किञ्चिदव-शिष्टम्, आमीलितलोचनः आमीलिते ईषत्संकुचिते लोचने नेत्रे यस्य स तादृशः अयम् शुकशिशुः मुहुर्मुहुः अनेकश अत्युल्बणम् अतिदीर्घम् यथास्यात्तथा श्वसिति प्राणिति, मुहुर्मुहुः वारं वारं मुखेन वदनेन पतति, मुहुर्मुहुः वारं वारं चञ्चुपुटम् त्रोटीपुटम् वितृणोति विकासयति, शिरोधराम् ग्रीवाम् धारयितुं सारल्येन स्थापयितुम् न शक्नोति पारयति। तदेहि—तस्मात्कारणात् एहि आगच्छ, यावदेवायमसुभिर्न विमुच्यते यावतिकाले अयम् प्राणैर्न त्यज्यते तावदेव तावति समय एव इनम् शुकशिशुम् गृहाण धारय, सलिलसमीपम् जलनिकटम् अवतारय प्रापय, इत्यभिधाय इत्युक्त्वा तेन मुनिदारकेण माम् वैशम्पायनम् सरस्तीरम् पम्पासरोवर-तटम् आनाययत् प्रापयत।

**संस्कृत सरलार्थ**—साधुहृदयानि प्रायेण कारणं विनैव प्रियकारीणि अतिशयपर-दुःखप्रहाणेच्छया आर्द्राणि च सदैव निश्चयतो भवन्ति। यस्मादेव कारणात् स मुनिकुमारः मां पूर्ववर्णितदयनीयदशापन्नमालोक्य करुणापरः सन् निकटस्थमेकं मुनिदार-कमवोचत् अनुत्पन्नच्छद एवायं शुकशिशुः कथमपि वृक्षशिखरवरादस्मान्निपतित अथवानेन सञ्जानक वदनपरिच्युतेन भवितव्यम्। तथाहि शुकशिशोरस्य जीवनम् किञ्चिदेवा-वशिष्टम्, ईषन्मीलितनेत्रोऽयं बहुशः अतिदीर्घं प्राणिति, वारं वारं वदनेन पतति, अनेकशः चञ्चुपुटं विकासयति, कन्धरां सारल्येन स्थापयितुं न पारयति। तस्मादा-गच्छ यावति समये नायं प्राणैः परित्यज्यते तावति समय एव धारयेमम्, पानीय-निकटञ्च प्रापय, इत्याख्याय तेन माम् पम्पासरोवरतटं प्रापयत्।

**टिप्पणी**—प्रायेण—"प्रायो मरणानशने मृत्यौ बाहुल्यतुल्ययोः" अत्युल्बणम्—अतिदीर्घम् जोर-जोर से लम्बी-लम्बी सांसें। वितृणोति—खोलता है।

**उपसृत्य च जलसमीप मेकदेशनिहितदण्डकमण्डलुः आदाय स्वयं मां मुक्तप्रयत्नं उत्तानितमुखम् अङ्गुल्या कतिचित् सलिलबिन्दून् अपाययत्। अम्भः क्षोदकृतसेकञ्च समुपजातप्रज्ञम् उपतटप्ररूढनलिनीपलाशस्य जलशिशिरायां छायायां निधाय यथासमुचितमकरोत् स्नानविधिम्। अभिषेकावसाने चानेकप्राणायामपूतोऽपि जपन्नघमर्षणानि प्रत्यग्रभग्नैरून्मुखो रक्तारविन्दैर्नलिनीपत्रपुटेन भगवते सवित्रे दत्त्वार्घमुदतिष्ठत्। आगृहीत-धौतधवलवल्कलश्च सज्योत्स्न इव सन्ध्यातपः करतलनिधू ननविशदसटः प्रत्यग्रस्नानार्द्रजटेन सकलेन तेन मुनिकुमारकदम्बकेनानुगम्यमानो मां गृहीत्वा तपोवनाभिमुखं शनैः शनैः रगच्छत्।**

**शब्दार्थ**—**उपसृत्य च जलसमीपम्**=और जल के पास पहुँचकर, **एकदेश-निहितदण्डकमण्डलुः**=एक स्थान पर पलाशदण्ड और कमण्डलु को रखकर, **मुक्तप्रयत्नम् माम्**=(जल पीने का) प्रयत्न छोड़े हुए मुझको, **आदाय**—लेकर, **उत्तानितमुखम्** (मेरे) मुख को ऊपर उठाकर **स्वयम् अङ्गुल्या कतिचित् सलिलबिन्दून् अपाययत्**=स्वयं अङ्गुलि से कुछ पानी की बूंदों को पिलाया। **अम्भ-क्षोदकृतसे-**

**कञ्च**=जल के छींटों से (क्षोद) सिञ्चित किये गये, **समुपजातप्रज्ञम्**—और होश में आये हुए (मुझको) **उपतटप्ररूढनलिनीपलाशस्य**=तट के समीप (उपतटम्) उगी हुई (प्ररूढ) कमिलिनी के पत्ते की, **जलशिशिरायां छायायाम्**—जल से शीतल छाया में, **निधाय**=रखकर, **यथासमुचितम् स्नानविधिम् अकरोत्**=यथोचित स्नान विधि को किया। **अभिषेकावसाने**—और स्नान के अन्त में, **अनेकप्राणायामपूतःऽपि**=अनेक प्राणायामों से पवित्र (पूत) होकर भी, **जपन्नघमर्षणानि**=अघमर्षण मन्त्रों का जप करते हुए, **प्रत्यग्रभग्नैः रक्तारविन्दैः**=तत्काल (प्रत्यग्र) तोड़े गये (भग्नैः) रक्त कमलों से, **ऊर्ध्वमुखः**=ऊर्ध्वमुख होकर, **नलिनीपत्रपुटेन**=कमलिनी के पत्तों के दोने से, **भगवते सवित्रे अर्घम् दत्त्वाउदतिष्ठत्**=भगवान् सूर्य को अर्घ देकर उठ बैठे। **आगृहीतधौतधवलवल्कलश्च**=और धुले हुए धवल वल्कल वस्त्र धारण करके, **सज्योत्स्न इव सन्ध्यातप**—चांदनी से युक्त सन्ध्याकालीन धूप के समान (प्रतीत होते हुए) **करतलनिधूननविशदसटः**=हथेलियों द्वारा झाड़ने से (निधूनन) निर्मल=(विशद) जटाओं वाले (सट) **प्रत्यग्रस्नानार्द्रजटेन सकलेन तेन मुनिकुमारकदम्बकेन**—तत्काल स्नान से गीली जटाओं वाले उस सम्पूर्ण मुनिकुमार समूह के द्वारा, **अनुगम्यमानः**=अनुगत होते हुए, **मां गृहीत्वा**=मुझे लेकर, **तपोवनाभिमुखं शनैः शनैरगच्छत्**=तपोवन की ओर धीरे-धीरे चलने लगे।

**अनुवाद**—और जल के पास पहुँच कर एक स्थान पर दण्ड और कमण्डलु को रखकर (जल पीने का) प्रयत्न छोड़े हुए मुझको लेकर और मेरे मुख को ऊपर उठाकर स्वयं अङ्गुलि से कुछ पानी की बूंदों को पिलाया। जल के छींटों से सिञ्चित किये गये और होश में आये हुए मुझको जल के पास उगी हुई कमलिनी के पत्ते की जल से शीतल छाया में रखकर यथोचित स्नान विधि को किया और स्नान के अन्त में, अनेक प्राणायामों से पवित्र हुए भी अघमर्षण मन्त्रों का जप करते हुए, तत्काल तोड़े गये रक्त कमलों से, ऊर्ध्वमुख होकर कमलिनी के पत्तों के दोने से भगवान् सूर्य को अर्घ देकर उठ खड़े हुए, और धुले हुए स्वच्छ वल्कल वस्त्र धारण किये हुए, मानो चाँदनी से युक्त सन्ध्याकालीन धूप जैसे, हथेलियों द्वारा झाड़ने से निर्मल जटाओं वाले वह, वल्कल स्नान से गीली जटाओं वाले उस समस्त मुनिकुमार समूह से अनुगत होते हुए, मुझे लेकर तपोवन की ओर धीरे-धीरे चल पड़े।

**भावार्थ**—स्पष्ट है।

**संस्कृत व्याख्या**—जलसमीपमुपसृत्य च=सलिलान्तिकं प्राप्य च, एकदेशनिहितदण्डकमण्डलुः—एकदेशे एकस्मिन् भागे निहतौ संस्थापितौ दण्डकमण्डलू पलाशदण्डः=कमण्डलुश्च येन स तादृशः (सहारीतः)। स्वयं मामादाय=आत्मनैव मां वैशम्पायनं गृहीत्वा, मुक्तप्रयत्नम्—मुक्तः परित्यक्तः प्रयत्नः जलपानाय समुद्योगः येन तम् तादृशम्, उत्तानितमुखम्—उत्तानितम् ऊर्ध्वीकृतम् मुखं वदनं यस्य तम् तादृशं माम् अङ्गुल्या करशाखाग्रभागेन, कतिचित् सलिलविन्दून् कियतः जलविन्दून्

अपाययत् पानमकारयत् । अम्भ. क्षोदकृतसेकञ्च—अम्भस. जलस्य क्षोदैः करच्युतैः जलकणैः कृतः विहितः सेकः सिञ्चनं यस्य स तादृशम् च, (अतएव) समुपजातप्रज्ञम्—समुपजाता समुत्पन्ना प्रज्ञा प्रकृष्टबोधः यस्य तं तादृशं (माम्) उपतटप्ररूढनलिनीपलाशस्य=उपतटे तीरसमीपे प्ररूढा समुत्पन्ना वा नलिनी कमलिनी तस्याः पलाशस्य पत्रस्य तथोक्तस्य, जलशिशिरायां छायायाम् जलेन शिशिरा शीतला यस्यां तस्याम् छायायाम् अनातपे, निधाय संस्थाप्य, यथासमुचितं स्नानविधिम् अकरोत्—यथायोग्यं मज्जनविधिं कृतवान् । अभिषेकावसाने स्नानान्ते च, अनेकप्राणायामपूतः अपि, अनेकैः बहुविधैः प्राणायामैः पूरककुम्भकरेचकाभिधानैः वायुनिरोधानिरोधरूपप्राणायामैः पूतः पवित्रीकृतः अपि, अघमर्षणानि जपन्=अघमर्षणानि अघमर्षणे व्याख्यातानि वरुणदेवस्तुतिरूपाणि सूक्तानि जपन् स्मरन्, उन्मुखः ऊर्ध्वाननः सन्, प्रत्यग्रभग्नैः तत्कालोद्धृतैः रक्तारविन्दैः रक्तवर्णकमलैः नलिनीपत्रपुटेन कमलिनीदलसम्पुटेन भगवते माहात्म्यशालिने सवित्रे सूर्याय अर्घम् अर्घपूजां दत्त्वा समर्प्य उदतिष्ठत् । आगृहीतधौतधवलवल्कलः च=आगृहीतम् स्नानादनन्तरं परिधृतम् धौतं क्षालितम् अतएव धवलं शुभ्रम् वल्कलं तरुत्वक् येन स तादृशः (अतएव) सज्योत्स्नः ज्योत्स्नया चन्द्रिकया सहेति सज्योत्स्नः सन्ध्यातपः सन्ध्याकालीनसूर्यातप इव (प्रतीयमानः) करतलनिर्धूननविशदसटः—करतलेन हस्ततलेन यत् निर्धूननम् आस्फालनम् तेन विशदा निर्मला सटा जटा यस्य स तादृशः (स हारीतः) स्नानार्द्रजटेन=स्नानेन मज्जनेन आर्द्रा-स्विन्ना जटा सटा यस्य तेन तादृशेन तेन पूर्वोक्तेन सकलेन समस्तेन मुनिकुमार-कदम्बकेन मुनिकुमारसमूहेन अनुगम्यमानः अनुव्रज्यमानः माम् वैशम्पायनम् गृहीत्वा आदाय तपोवनाभिमुखम् स्वाश्रमसम्मुखं शनैः शनैः मन्दं मन्दम् अगच्छत् अव्रजत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यत्सलिलान्तिकं प्राप्य च, जलाशयस्यैकभागे दण्डकमण्डलू च संस्थाप्य स हारीत आत्मनैव मां गृहीत्वा जलपानाय समुत्सृष्टप्रयासमपि माम् ऊर्ध्ववदनं विधाय करशाखाग्रेण कियतो जलविन्दून् स्वयमेवाङ्गुल्या पानमकारयत् । जलकणैः विहितसेकम् अतएव समुत्पन्नप्रकृष्टबोधं माम् तटसमीपसमुत्पन्नकमलिनीदलस्य सलिलशिशिरायां छायायां संस्थाप्य यथायोग्यं मज्जनविधिं समाचरत् । स्नानान्ते च बहुविधप्राणायामाभ्यासपवित्रीकृतोऽपि सः अघमर्षणेत्याख्यातानि वरुणदेवस्तुतिपराणि सूक्तानि जपन् ऊर्ध्वाननः सन् तत्कालोद्धृतैः रक्तवर्णकमलैः कमलिनीदलसम्पुटेन माहात्म्यशालिने सूर्यदेवाय अर्घपूजां समर्प्य उदतिष्ठत् । परिधृतप्रक्षालितशुभ्रवल्कलश्च सचन्द्रिकः सन्ध्यातप इव प्रतीयमानः, हस्ततलास्फालननिर्मलजटः स हारीतः, मज्जनस्विन्नजटेन तेन समस्तेन मुनिकुमारसमूहेनानुगम्यमानः मामादाय स्वाश्रमाभिमुखं मन्दं मन्द मगच्छत् ।

**टिप्पणी—अघमर्षणानि**—पाप को दूर करने वाले वरुणदेव सम्बन्धी सूक्त "अघं दुष्कृतं मृष्यते प्रमार्ज्यते एभिस्तानि अघमर्षणानि । ऋतं च सत्यं च ........ आपोहिष्ठा मयो भुवः तक के सूक्त अघमर्षण कहे जाते हैं—इनमें वरुणदेव की स्तुति

है। प्रत्यग्रभग्न—तत्काल तोड़े गये—अभिनव जो कुम्हलाये न हों। सटा + जटा। अभिषेकः—स्नान, प्राणायाम् तीन प्रकार का होता है पूरक कुम्भक और रेचक। यह त्रिविधप्राणायाम योग का एक अंग है।

## जाबाल्याश्रम वर्णनम्

**अनतिदूरमिव गत्वा दिशि दिशि सदासन्निहितकुसुमफलैः, तालतिलकतमालहिन्तालबकुलबहुलैः, एलालताकुलित नारिकेलकलापैः, आलोललोध्रलवलीलवङ्गपल्लवैः, उल्लसच्चूतरेणुपटलैः, अलिकुलझङ्कारमुखरसहकारैः, उन्मद कोकिलकुलकलालापकोलाहलिभिः, उत्फुल्लकेतकीकुसुममञ्जरीरजः पुञ्जपिञ्जरैः, पूगीलतादोलाधिरूढवनदेवतैः, तारकावर्षमिवाधर्मविनाशपिशुनं कुसुमनिकर मनिलचलितमनवरत मतिधवल मुत्सृजद्भिः, संसक्तपादपैः काननै रुपगूढम्........ ......।**

शब्दार्थ—अनतिदूरम् इव गत्वा=कुछ ही दूर जाकर, (आश्रममपश्यम्=आश्रम को देखा, इस अन्तिम वाक्य से इसका अन्वय है। और इस वाक्यांश के अन्य सभी तृतीयान्तपद' काननैः' के विशेषण हैं) दिशि दिशि=प्रत्येक दिशा में, संसक्त पादपैः काननैः=परस्पर सटे हुए अर्थात् सघन वृक्षों वाले वनों से, उगूढम्=घिरा हुआ—अर्थात् जो कि आश्रम सघन वृक्षों वाले वनों से घिरा हुआ था। (जो कि वन) सदा सन्निहितकुसुमफलैः=सर्वदा समीपवर्ती पुष्पों और फलों वाले, तालतिलकतमालहिन्ताल बकुलबहुलैः=ताल, तिलक, तमाल (तापिच्छ) हिन्ताल, वकुल (केसर) नामक वृक्षों की अधिकता वाले, एलालताकुलितनारिकेलकलापैः=इलायची की लताओं से परिव्याप्त नारियल के वृक्षों के समूह वाले, आलोललोध्रलवलीलवङ्गपल्लवैः=(वायु वेग से) चञ्चल (आलोल) लोध्र, लवली और लवङ्गलताओं के पल्लवों वाले, उल्लसच्चूतरेणुपटलैः= (वायु वेग से) उड़ते हुए (उल्लसत्) आम्रमञ्जरियों के (चूत) परागसमूह (रेणुपटल) वाले, अलिकुलझङ्कारमुखरसहकारैः=भ्रमर समूह की गुञ्जारों (झङ्कार) से शब्दायमान (मुखर) सुगन्धित आम्रवृक्षों (रसाल या सहकार) वाले, उन्मदकोकिलकुलकलालापकोलाहलिभिः=उन्मत्त कोयलों के अव्यक्त मधुर मधुर ध्वनि (कलालाप) कलरवों वाले, उत्फुल्लकेतकीकुसुममञ्जरीरजः पुञ्जपिञ्जरैः=फूली हुई केतकी की पुष्पमञ्जरियों के परागसमूह से पीतवर्ण (पिञ्जर) वाले, पूगीलतादोलारूढवनदेवतैः=सुपारी (पूगी) की लताओं रूपी झूलों (दोला) पर चढ़ी हुई वनाधिष्ठात्री देवियों वाले, अधर्मविनाशपिशुनम्=अधर्म के विनाश के सूचक (पिशुन), अनिलचलितम्=वायु द्वार चञ्चल, अतिधवलम्=अत्यन्त शुभ्रवर्ण, कुसुमनिकरम्=पुष्पसमूह को, अनवरतम्=लगातार, तारकावर्षमिव=उल्कापात के समान, उत्सृजद्भिः=छोड़ते हुए—गिराते हुए, संसक्त पादपैः=परस्पर सटे हुए सघन वृक्षों वाले, काननैः=वनों से, उपगूढम्=घिरे हुए ...... ...... ।

**अनुवाद**—(वैशम्पायन कहता है कि) कुछ ही दूर जाकर (मैंने एक ऐसे आश्रम को देखा जो कि) सघन वृक्षों वाले (उन) वनों से घिरा हुआ था (जो कि वन) सदा समीपस्थ पुष्पों और फलों वाले थे, जिनमें ताल, तिलक, तापिच्छ, हिन्ताल और केसर नामक वृक्ष अधिक थे, जहाँ इलायची की लताओं से आच्छादित नारियल के अनेक वृक्ष थे। जहाँ लोध्र, लवली और लवङ्ग नामक लताओं के पत्ते (वायु वेग से) हिल रहे थे। जहाँ आम्रमञ्जरियों का पराग समूह (वायु वेग से) उड़ रहा था। जहाँ सुगन्धित आम्रवृक्ष भ्रमर समूह की झङ्कारों से मुखरित हो रहा था। जहाँ मतवाली कोयलों की अव्यक्त मधुर ध्वनि का कलरव था। (और जो कि वन) फूले हुए केवड़ों की पुष्पमञ्जरियों के पराग समूह से पीत वर्ण हो गये थे। और जहाँ सुपारी की लताओं रूपी झूलों पर वनदेवियाँ चढ़ी हुई थीं। और जहाँ वृक्ष—अधर्म विनाशसूचक, वायु द्वारा चञ्चल, अतिशुभ्रवर्ण कुसुमसमूह को उल्कापात के समान लगातार गिरा रहे थे।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि वह आश्रम ऐसे वनों से घिरा हुआ था जिसमें सदा फल पुष्पों से लदे हुए सघन वृक्ष थे, इन वृक्षों में भी ताल, तिलक, तमाल, हिन्ताल, केसर जैसे वृक्ष ही अधिक थे। कहीं नारियल के पेड़ थे जिन पर इलायची की लतायें चढ़ी हुई थीं, कहीं लोध्र, लवली और लवङ्ग लताओं के पत्ते लहरा रहे थे, कहीं आम्रमञ्जरियों का पराग उड़ रहा था, कहीं वृक्षों पर भ्रमरों की मधुर गुञ्जार थी। कही कोयलें मधुर ध्वनि कर रही थीं। कहीं प्रफुल्ल केतकी पुष्पों के पराग से वह वन पीला-सा दिखाई पड़ रहा था। कहीं सुपारी की लताओं के झूलों पर वनदेवियाँ झूल रही थीं, कहीं वायुवेग से लगातार झड़ने वाले पुष्पों से वह वन ऐसा लग रहा था कि मानो अधर्म विनाश की सूचक उल्कायें गिर रही हों।

**संस्कृत व्याख्या**—अनतिदूरमिव गत्वा—किञ्चिदिव दूरं गत्वा दिशि दिशि-प्रतिदिशम्, सदासन्निहित कुसुमफलैः—सर्वदा सन्निहितानि समीपवर्तीनि हस्तग्राह्याणि कुसुमानि पुष्पाणि फलानि च येषु तैः तादृशैः, तालतिलकतमालहिन्तालबकुलबहुलैः= तालाः तृणराजेत्याख्याता वृक्षविशेषाः, तिलकाः श्रीमद्वृक्षाः, तमालाः तापिच्छाः, हिन्तालाः फलवृक्षविशेषाः बकुलाः केसरवृक्षाः च बहुला अधिका येषु तैः तादृशैः, एलालताकुलितनारिकेल कलापैः—एलालताः चन्द्रबालावल्लयः ताभिः आकुलिताः आच्छादिताः नारिकेलानां लाङ्गलीतरुणां कलापाः समूहाः येषु तैः तादृशैः, आलोललोध्रलवलीलवङ्गपल्लवैः=अलोला वायुवेगेन चञ्चलाः लोध्राणां गालवानां लवलीनां लताविशेषाणाम्, लवङ्गानाम् श्रीत्याख्यानाम् पल्लवाः किसलयानि येषु तैः तादृशैः, उल्लसच्चूतरेणुपटलैः=उल्लसन्ति वायुवेगेन प्रचलन्ति चूतानाम् आम्रवृक्षाणाम् आम्रपुष्पाणामित्याशयः, रेणुपटलानि परागसमूहाः येषु तैः तादृशैः, अलिकुलझङ्कारमुखरसहकारैः=अलिकुलस्य भ्रमरसमूहस्य झङ्कारेण झङ्कृति-शब्देन मुखराः शब्दायमानाः सहकाराः सुगन्धिमद्रसालतरवः येषु तैः तादृशैः, उन्मद-कोकिलकुलकलालापकोलाहलिभिः=उन्मदानि मदोन्मत्तानि यानि कोकिलकुलानि

पिककुलानि तेषां यः कलालापः अव्यक्तमधुरध्वन्यात्मकः कोलाहलः कलकलः सः अस्ति एषामिति तैः तादृशैः, उत्फुल्लकेतकीकुसुममञ्जरीरजः पुञ्जपिञ्जरैः= उत्फुल्ल केतकी कुसुमानां विकसितमालती पुष्पाणां याः मञ्जर्यः तासां रजः पुञ्जैः परागपटलैः पिञ्जराणि पीतरक्तवर्णानि येषु तैः तादृशैः, पूगीलतादोलाधिरुढवनदेवतैः= पूगीलताः क्रमुकवल्लर्यः एव दोलाः अधिरोहिण्यः तासु अधिरुढा आश्रिता वनदेवताः वनाधिष्ठात्र्यो देवता येषु तैः तादृशैः, अधर्मविनाशपिशुनम्=अधर्मस्य पापस्य विनाशस्य पिशुनं सूचकम्, अनिलचलितम्=अनिलेन वायुना चलितम् आन्दोलितम्, अतिधवलम्=अतिशुभ्रम्, पुष्पनिकरम्=प्रसूनसमूहम्, तारकावर्षमिव = उल्कापातमिव, अनवरतम्=निरन्तरम्, उत्सृजदिद्भः=विकिरद्भिः, संसक्तपादपैः=संसक्ताः मिथः संश्लिष्टाः पादपाः तरवः येषु तैः तथोक्तैः, काननैः वनैः, उपगूढम्= परिव्याप्तम् .... .... आश्रममपश्यम् इति दूरेणान्वयः ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यत् किञ्चिदिव दूरं गत्वा अहमेकमाश्रममपश्यम्, यश्चाश्रमः तादृशैर्वनैरुपगूढ आसीत् यत्र तरवः परस्पराश्लिष्टा आसन्, यत्र च सर्वतः सर्वदा हस्तग्राह्यपुष्पफलसमन्वितास्तरवः शोभन्ते स्म । एषु तरुषु तालतिलकतमालहिन्ताल बकुलाभिधानास्तरव एवाधिका आसन् । यत्र च कुत्रचित् चन्द्रवालालतासमाच्छादिता लाङ्गलीतरवः आसन्, क्वचिच्च लोध्रलवलीलवङ्गलतानां पल्लवा वायुवेगचपला आसन्, कुत्रचिच्चाम्रमञ्जरीणां परागसमूहा वातेनेतस्ततो विक्षिप्ता आसन्, क्वचिच्च भ्रमरध्वनिवाचाला अतिसुगन्धिमन्तो रसालतरवः, अन्यत्र च मदोन्मत्त कोकिलकुलाव्यक्तमधुरध्वनि कोलाहलिनो वृक्षाः विराजन्ते स्म । कुत्रचिच्च प्रस्फुटितमालतीपुष्पमञ्जरी परागपटलैः पिञ्जरीकृताः क्वचिच्च क्रमुकलतादोलाधिष्ठितवनदेवताः च पादपा आसन् । क्वचिदेते वृक्षा देवार्चनोपयोगित्वादधर्मनाशसूचकं वायुप्रकम्पितं पुष्पसमूह मतिधवलमुल्कापातमिव निरन्तरं विकिरन्त आसन् ।

**टिप्पणी—अनतिदूरम्**—इस स्थान से कुछ ही दूर, इस वाक्यांश के सभी तृतीयाबहुवचनान्तपद 'काननैः' के विशेषण हैं । **तालेत्यादि**—ताल आदि सब वृक्षों के नाम हैं, तिलक का दूसरा नाम श्रीमत् वृक्ष तथा तमाल का तापिच्छ भी है, वकुल को केसर वृक्ष भी कहते हैं । एला को चन्द्रवाला तला भी कहा गया है । लोध्र लवली और लवङ्ग लतायें हैं । चूत और सहकार यद्यपि दोनों का अर्थ आम्र वृक्ष ही होता है तथापि चूत साधारण आम्र वृक्ष है जबकि सहकार अतिसुगन्धित आम्र वृक्ष को कहा जाता है "आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽति सौरभः" अमरकोश । **उन्मदेति**—कलालाप=अव्यक्त मधुर ध्वनि । कोलाहलिभिः=कोलाहलः कलकलः अस्त्येषामिति कोलाहलिनः तैः । **उत्फुल्लेति**—मञ्जरीरजः पुञ्जपिञ्जरैः—मञ्जरियों के पराग समूह से पीतरक्त वर्ण वाले । "वल्लरिर्मञ्जरी स्त्रियौ" कोश । **पूगीलतेति दोला**—निश्रेणि अथवा अधिरोहिणी "दोला प्रेङ्खः पुमान् प्रेङ्खा निश्रेणिरधिरोहिणी" कोश । पूगीलतायें अतिकोमल होने से स्थान-स्थान पर झुकी हुई थीं अतएव वे दोलावत् जान पड़ती थीं । **तारकावर्षम्**—उल्कापात । वहाँ के वृक्षों से

जो अतिशुभ्र पुष्प समूह वायुवेग वश लगातार गिर रहा था वह ऐसा प्रतीत होता था मानो अधर्म विनाश सूचक उल्कायें बरस रही हों—यहाँ पूर्णोपमालंकार है। दोलाधिरुढेत्यादि पद में असम्बन्धे सम्बन्ध लक्षणा अतिशयोक्ति है।

**अचकितप्रचलित कृष्णसार शतशबलाभिः, उत्फुल्लस्थलकमलिनीलोहिनीभिः, मारीचमायामृगावलूनप्ररुढवीरुद्दलाभिः, दाशरथिचापकोटिक्षतकन्दगर्त्तविषमिततलाभिः, दण्डकारण्यस्थलीभिरुपशोभितप्रान्तम्। आगृहीतसमित्कुशकुसुममृदिभः अध्ययनमुखरशिष्यानुगतैः सर्वतः प्रविशद्भिः मुनिभिरशून्योपकण्ठम्। उत्कण्ठित शिखण्डिमण्डल श्रूयमाणजलकलसपूरणध्वनिम्। अनवरताज्याहुतिप्रीतैश्चित्रभानुभिः सशरीरमेव मुनिजनममरलोकं निनीषुभिः, उद्धूयमानधूमलेखाच्छलेनाबद्ध्यमान स्वर्गमार्गगमन सोपानसेतु मिवोपलक्ष्यमाणम्...... ...।**

**शब्दार्थ**—इस वाक्यांश के 'गर्तविषमिततलाभिः' तक के तृतीया बहुवचनान्त-स्त्रीलिङ्ग पद 'दण्डकारण्यस्थलीभिः' के विशेषण हैं। **अचकित प्रचलित कृष्णसारशतशबलाभिः**=निडर (अचकित) घूमते हुए (प्रचलित) सैकड़ों (शत) कृष्णसार मृगों से चित्र विचित्र, (शबल), उत्फुल्लस्थलकमलिनीलोहिनीभिः=फूली हुई स्थल कमलिनियों से रक्तवर्ण, मारीचमायामृगावलूनप्ररुढवीरुद्दलाभिः=कपट मृग रूपधारी मारीच के द्वारा काटी गई (अवलून) (और पुनः) उगी हुई (प्ररुढ) लताओं (वीरुत्) के पत्तों (दल) वाली, दाशरथिचापकोटिक्षतकन्दगर्त्तविषमिततलाभिः=राम (दाशरथि) के धनुष के अग्रभाग (कोटि) से उखाड़े गये कन्द अर्थात् वृक्षमूलों के गड्ढों से ऊँचे नीचे (विषमित) तलभाग वाली, दण्डकारण्यस्थलीभिः=दण्डकारण्य की भूमियों से, उपशोभितप्रान्तम्=शोभित किये गये प्रान्त भाग (किनारे का या पीछे का भाग) वाले (आश्रम को देखा) आगृहीत समित्कुशकुसुममृदिभः=समिधा, कुश, पुष्प और मृत्तिका लिये हुए, अध्ययनमुखरशिष्यानुगतैः=अध्ययनवश वाचाल शिष्यों द्वारा अनुगत, सर्वतः प्रविशद्भिः (और) चारों ओर से (सर्वतः) प्रवेश करते हुए, मुनिभिः=मुनियों द्वारा, अशून्योपकण्ठम्=परिपूर्ण निकटवर्ती प्रदेश वाले (अशून्य=भरे हुए परिपूर्ण, उपकण्ठ=समीपवर्ती प्रदेश) (आश्रम को देखा) उत्कण्ठितशिखण्डिमण्डलश्रूयमाणजलकलसपूर्ण ध्वनिम्=उत्सुक हुए मयूर मण्डल द्वारा जहाँ जल के घटों के भरने का शब्द सुना जा रहा था (ऐसे आश्रम को देखा) अनवरताज्याहुतिप्रीतैः=निरन्तर घृत (आज्य) की आहुतियों से प्रसन्न हुए, चित्रभानुभिः दक्षिणाग्नि गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि रूप त्रिविध अग्निदेवों द्वारा (मानो) मुनिजनम्=मुनिजनों को, सशरीरमेव=शरीरसहित ही अमरलोकं निनीषुभिः=स्वर्गलोक पहुँचाने के लिए इच्छुक, उद्धूयमानधूमलेखाच्छलेनाबद्ध्यमानस्वर्गमार्गगमन सोपानसेतुम् इव उपलक्ष्यमाणम्=(अतएव) (वायु द्वारा) उड़ाई जाती हुई (उद्धूयमाना) धूमपंक्ति के बहाने स्वर्ग के मार्ग पर जाने की सीढ़ियों (सोपान) का पुल (सेतु) बाँधते हुए से दिखलाई पडने वाले (आश्रम को देखा)।

**अनुवाद**—(वैशम्पायन कहता है कि मैंने एक ऐसे आश्रम को देखा जिसका कि) पिछला भाग दण्डकारण्य की (उन) वनभूमियों से सुशोभित था जो कि निडर घूमते हुए सैकड़ों कृष्णसार मृगों से चित्र विचित्र, फूली हुई स्थल कमलिनियों से रक्तवर्ण, (तथा) कपट मृग रूपधारी मारीच के द्वारा काटी गई (और पुन) उगी हुई लताओं के पत्तों वाली (एवम्) श्रीराम के धनुष के अग्रभाग से उखाड़े गये कन्द अर्थात् वृक्ष मूलों के गड्ढों से ऊँचे नीचे तल भाग वाली थीं। (तथा वह आश्रम) समिधा, कुश, पुष्प और मृत्तिका लिये हुये, अध्ययन वश वाचाल शिष्यों द्वारा अनुगत, चारों ओर से प्रवेश करते हुए मुनियों द्वारा परिपूर्ण निकटवर्ती प्रदेश वाला था एवं जहाँ उत्सुक हुए मयूर मण्डल द्वारा जल के घड़ों के भरने का शब्द सुना जा रहा था। और जो कि, निरन्तर घृत की आहुतियों से प्रसन्न हुए (अतएव मानो) मुनिजनों को शरीर सहित ही स्वर्गलोक पहुँचाने के लिए इच्छुक, दक्षिणाग्नि गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि रूप त्रिविध अग्निदेवों द्वारा, (वायुवश) उठाई जाती हुई धूमपंक्ति के बहाने स्वर्ग के मार्ग पर जाने की सीढ़ियों का पुल बाँधता हुआ सा, दिखलाई पड़ने वाला था।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि मैंने एक ऐसा आश्रम देखा जिसका कि पिछला भाग दण्डकारण्य की भूमि से सुशोभित था। वह भूमि निर्भीक होकर दौड़ने वाले सैंकड़ों कृष्णसार मृगों के कारण चित्र विचित्र थी। खिली हुई कमलिनियों से लाल थी। कपट मृग रूपधारी मारीच ने जिन लताओं को पहले नोंच डाला था आज वे पुनः पल्लवित हो उठी थीं। श्रीराम ने अपने धनुष् की कोटि से जहाँ पर कन्द उखाड़ा था वहाँ गड्ढे बन गये थे जिससे वहाँ भूमितल अब भी ऊँचा नीचा दिखलाई पड़ रहा था। उस आश्रम के पास ही एक ओर कुछ मुनिजन एकत्रित हो रहे थे उनके पीछे पीछे समिधा, कुश, पुष्प और मिट्टी लिये हुए तथा उच्च स्वर से वेदपाठ करते हुए उनके शिष्य चल रहे थे। कहीं पर मयूरों के झुण्ड, घड़ों में जल भरने के कारण उठने वाले शब्द को, मेघ गर्जना समझकर उत्सुकता के साथ सुन रहे थे। कहीं यज्ञकुण्डों से धुएँ की उठती हुई रेखायें ऐसी लग रही थीं कि मानो घृताहुतियों से प्रसन्न होकर अग्निदेव ने मुनिजनों के सशरीर स्वर्ग पहुँचा देने के लिए मार्ग में सीढ़ियों का पुल बना दिया हो।

**संस्कृत व्याख्या**—(गद्यभागेऽस्मिन् अचकितेत्यारभ्य विषमिततलाभिरित्यन्तानि तृतीयाबहुवचनान्तस्त्रीलिङ्गपदानि दण्डकारण्यस्थलीभिरित्यस्य विशेषणानि) अचकित प्रचलित कृष्णसारशतशबलाभिः=अचकिता भीतिरहिताः प्रचलिता गच्छन्तः ये कृष्णसाराः कृष्णमृगविशेषाः तेषां शतं तेन शबलाः किर्मीरा विचित्रा वा ताभिः तादृशीभिः, उत्फुल्लस्थलकमलिनीलोहिनीभिः=उत्फुल्ला विकसिता याः स्थलकमलिन्यः नलिन्यः ताभिः लोहिन्यः रक्तवर्णाः ताभिः तादृशीभिः, मारीचमायामृगावलूनप्ररुढवीरुद्दलाभिः=मारीच एतन्नामकः असुरः एव मायामृगः कपटेनमृगरूपधारी तेन भक्षणार्थं पूर्वम् अवलूनानि दन्तैश्छिन्नानि पश्चात् प्ररुढानि संजातानि वीरुधां

लतानां दलानि पत्राणि यासु ताभिः तादृशीभिः, दाशरथिचापकोटिक्षतकन्दगर्तविषमिततलाभिः=दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथि. रामचन्द्रः तस्य चापस्य धनुषः कोट्या अग्रभागेन क्षतानि समुत्पाटितानि यानि कन्दानि तरुमूलानि तेषां ये गर्ताः भूविवराणि तैः विषमितानि उच्चनीचतां प्राप्तानि तलानि यासां ताभिः तादृशीभिः, दण्डकारण्यस्थलीभिः =दण्डकारण्यं दण्डकाख्यं वनम् तस्य स्थल्यस्ताभिः उपशोभितप्रान्तम्= उपशोभितः शोभां प्रापितः प्रान्तः पश्चात्प्रदेशः यस्य स तम् तादृशम् (आश्रमम्)। (तथा च) आगृहीतसमित्कुशकुसुममृदिभः= आगृहीताः अग्निहोत्रादिकार्यसाधनाय हस्तेषु धृता. समिधः एधांसि कुशाः दर्भाः कुसुमानि पुष्पाणि मृदः मृत्तिका यैस्ते तैः तादृशैः, अध्ययनमुखरशिष्यानुगतै =अध्ययनेन वेदपारायणेन मुखराः शब्दायमानाः ये शिष्या अन्तेवासिनः तैः अनुगताः तैः तादृशैः, सर्वतः प्रविशद्भिः=समन्तात् प्रवेशं कुर्वद्भिः मुनिभिः ऋषिभिः, अशून्योपकण्ठम्=अशून्यः परिपूर्णः उपकण्ठः समीपदेशः यस्य तम् तथोक्तम् (आश्रमम्) उत्कण्ठितशिखण्डिमण्डलश्रूयमाणजलकलशपूरणध्वनिम्=उत्कण्ठितेन घटेषु जलपूरणध्वनौ मेघगर्जनभ्रान्त्या जातोत्कण्ठेन शिखण्डिमण्डलेन मयूरसमूहेन श्रूयमाणः आकर्ण्यमाणः जलैः कलशपूरणस्य घटपूरणस्य ध्वनिः शब्दः यस्मिन् स तम् तादृशम् (आश्रमम्) अनवरताहुतिप्रीतैः=अनवरतं निरन्तरं, आज्यस्य घृतस्य आहुतिभिः हवनैः प्रीताः सन्तुष्टास्तैः तादृशैः (अतएव) सशरीरमेव सविग्रहमेव मुनिजनम् अमरलोकम् देवलोकम् निनीषुभिः नेतुमिच्छुभिः, चित्रभानुभिः दक्षिणाग्निगार्हपत्याग्न्याहवनीयाग्निरूपैः त्रिविधैर्वह्निभिः, उद्धूयमानधूमलेखाच्छलेनाबद्ध्यमानस्वर्गमार्गगमनसोपानसेतुम् इव उपलक्ष्यमाणम् =उद्धूयमाना वायुवशात् सञ्चाल्यमाना या धूमलेखा धूम्रश्रेणि. तस्याः छलेन व्याजेन आबद्ध्यमानः विरच्यमानः स्वर्गमार्गगमनाय देवलोकवर्त्मगमनार्थं यः सोपानसेतुः तमिव उपलक्ष्यमाणम् व्यज्यमानम् (आश्रममपश्यम्)।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदहं तमाश्रममपश्यम्, यः तादृशीभिः दण्डकवनस्थलीभिरुपशोभितपश्चात्प्रदेश आसीत्, याः भीतिरहितसञ्चलित कृष्णमृगशतविचित्राः, प्रस्फुटितस्थलनलिनीभिः रक्तवर्णाः, कपटमृगरूपधारिमारीचासुरच्छिन्नसञ्जातलतापर्णाः श्रीरामचापाग्रभागोत्खातवृक्षमूलानां भूविवरैरुच्चावनततलाश्चासन्। यश्चाश्रमः तादृशैर्मुनिभिः परिपूर्ण निकटदेशः आसीत्, येऽग्निहोत्रादिकार्यसाधनायागृहीतसमित्कुशपुष्पमृद्भिः वेदपारायणवाचालशिष्यैरनुगताः समन्तात् तत्र प्रविशन्तश्चासन्। यत्रचाश्रमे मेघगर्जनभ्रान्त्या समुपजातोत्कण्ठैर्वनमयूरैः जलैः कलशपूरणस्य शब्दः निशम्यमान आसीत्। स चाश्रमः, निरन्तरं घृताहुतिभिः सन्तुष्टैरतएव मुनिजनं सविग्रहं देवलोकं नेतुमिच्छुभिस्त्रिविधैर्वह्निभिः वायुवशात् सञ्चाल्यमानधूम्रश्रेणि व्याजेन विरच्यमानः देवलोकमार्गगमनार्थ सोपानसेतु रिवासीत्।

**टिप्पणी**—**शबला**—चित्र विचित्र—रंग-विरंगी। **अचकित**=आश्रम में हिंसा के अभाव में सभी वन्य पशु निर्भीक घूमते थे। **मारीचमायामृगेत्यादि**—कवि ने इन दो वाक्यों के द्वारा दण्डकारण्य के प्राचीन इतिहास की ओर संकेत किया है, मारीच

नामक राक्षस, उस समय का एक प्रसिद्ध धर्मोपदेशक एवं कायाकल्प विज्ञान का विशेषज्ञ था अतएव उसने पहले रावण को बहुत समझाया पर अन्त में उसने रावण के आग्रह के अनुसार कपट मृग का रूप धारण किया था। **दाशरथिचापेति**—वनवास के समय, दण्डकारण्य के वृक्षमूलों को उखाड़ने से वहाँ गड्ढे बन गये थे अतएव वहाँ की भूमि ऊँची नीची हो गई थी। **वीरुद्‌दलाभिः**—लताओं के पत्ते 'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान्' कोश। "लताप्रतानिनी वीरुद् गुल्मिन्युपले इत्यपि।" **निनीषुभिः**—सन्नन्तनी धातु से उ प्रत्यय। **उत्कण्ठितेति**—घड़ों को जल में डुबो कर भरने से जो शब्द होता था मयूर उसे भ्रमवश मेघ गर्जन समझकर उत्कण्ठित हो उठे थे।

**आसन्नवर्त्तिनीभिस्तपोधनसम्पर्कादिवापगतकालुष्याभिः, तरङ्गपरंपरासङ्क्रान्तरविबिम्बपङ्क्तिभिः, तापसदर्शनागतसप्तर्षिमालाविगाह्यमानाभिरिव, अतिविकचकुमुदवनमृषिजनमुपासितु मवतीर्णं ग्रहगणमिव निशासूद्वहन्तीभिर्दीर्घिकाभिः परिवृतम्। अनिलावनमितशिखराभिः प्रणम्यमानमिव वनलताभिः, अनवरतमुक्तकुसुमैरभ्यर्च्यमानमिव पादपैः, आवद्धपल्लवाञ्जलिभिः उपास्यमानमिव विटपैः, उटजाजिरप्रकीर्णशुष्यच्छ्यामाकम्, उपसंगृहीतामलकलवलीलवङ्गकर्कन्धूकदली लकुचचूतपनसतालफलम् ………… ।**

**शब्दार्थ**—आसन्नवर्त्तिनीभिः=समीपवर्तिनी, तपोधनसम्पर्कात् इव=मानो तपस्वियों के सम्पर्क से, अपगतकालुष्याभिः=अत्यन्त निर्मल हुई, तरङ्गपरम्परासंक्रान्तरविबिम्बपङ्क्तिभिः=तरङ्गमालाओं में प्रतिबिम्बित सूर्यबिम्ब की पंक्तियों वाली, तापसदर्शनागतसप्तर्षिमालाविगाह्यमानाभिः=(अतएव मानो) तापसों के दर्शन के लिए आये हुए सप्तर्षिमण्डल के द्वारा विलोडित की जाती हुई सी, निशासु अतिविकचकुमुदवनम् ऋषिजनम् उपासितुम् अवतीर्णम् ग्रहगणम् इव उद्वहन्तीभिः=(और) रात्रियों में अतिविकसित कुमुदवन को, ऋषिजनों की उपासना के लिए उतरे हुए ग्रहसमूह के समान, धारण करती हुई, दीर्घिकाभिः=वावड़ियों से, परिवृत्तम्=घिरे हुए (आश्रम को) अनिलावनमितशेखराभिः वनलताभिः=वायु द्वारा झुकाई गई (अवनमित) चोटियों (शेखरों) वाली, वनलताओं से, प्रणम्यमानमिव=मानो प्रणाम किये जाते हुए, अनवरतमुक्तकुसुमैः पादपैः=लगातार पुष्पों को गिराने वाले वृक्षों द्वारा, अभ्यर्च्यमानमिव=मानो पूजित होते हुए, आवद्धपल्लवाञ्जलिभिः विटपैः=पल्लव रूपी अञ्जलि बाँधने वाले वृक्षों द्वारा, उपास्यमानमिव=मानो उपासना किये जाते हुए, उटजाजिरप्रकीर्णशुष्यच्छ्यामाकम्=कुटियों के आंगन में फैलाये गये अतएव सूखते हुए श्यामाक धान्यों वाले, उपसंगृहीतामलकलवलीलवङ्गकर्कन्धूकदलीलकुचचूतपनसतालफलम्=(और) जहाँ आँवला (आमलक), लवली, लौंग, बेर (कर्कन्धू), केला (कदली), बड़हर (लचुक), आम (चूत), कटहल (पनस), ताड़ के फल संगृहीत किये गये थे।

**अनुवाद**—(वैशम्पायन कहता है कि वह आश्रम) समीप वर्तिनी और तापसों के सम्पर्क से मानो अति निर्मल हुई, तरङ्गमालाओं में प्रतिबिम्बित सूर्यबिम्ब की पंक्तियों वालीं, अतएव मानो तापसों के दर्शनार्थ आये हुए सप्तर्षिमण्डल के द्वारा स्नानार्थ विलोडित की जाती हुई, और रात्रियों में, ऋषिजनों की उपासना के लिए उतरे हुये ग्रहमण्डल जैसे अतिविकसित कुमुद वन को धारण करती हुई, वावड़ियों से घिरे हुए (तथा) वायु द्वारा झुकाई गई चोटियों वाली वनलताओं से प्रणाम किये जाते हुए, लगातार फूलों को गिराने वाले वृक्षों द्वारा मानो पूजित होते हुए, पल्लव रूपी अञ्जलि बाँधने वाले वृक्षस्कन्धों द्वारा मानो सेवित किये जाते हुए, कुटियों के आंगन में फैलाये गये अतएव सूखते हुए श्यामाक नामक धान्यों वाले (आश्रम को) जहाँ पर आंवला, लवली, लौंग, बेर, केला, बड़हर, आम, कटहल और ताड़ के फल संगृहीत किये गये थे...... (ऐसे आश्रम को देखा)

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि उस आश्रम के चारों ओर वावड़ियाँ थीं जो कि तपस्वियों के सम्पर्क से मानो अतिस्वच्छ हो गई थीं उनकी लहरों में जब सूर्य के प्रतिबिम्ब पड़ते थे तब ऐसा प्रतीत होता था कि मानो तापसदर्शनार्थ आये हुए सप्तर्षि उनमें स्नान कर रहे हों। और रात्रियों में उनमें खिले हुए कुमुद पुष्प ऐसे प्रतीत होते थे कि मानो ऋषियों की सेवा के लिए तारागण ही उतर आये हों, वायुवेगवश झुकी हुई लताओं की चोटियाँ ऐसी लगती थीं कि मानो वे सिर झुका कर आश्रम को प्रणाम कर रही हों और जो वृक्षों से निरन्तर फूल झड़ रहे थे इनसे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे फूल चढ़ाकर आश्रम की पूजा कर रहे हों और वृक्षों के पत्ते ऐसे लग रहे थे कि मानो वे वृक्ष हाथ जोड़कर उसकी उपासना कर रहे हों, वहाँ आश्रम की कुटियों के आंगन में सूखने के लिए साँवा धान फैलाये गये थे तथा झोपड़ियों के भीतर आंवला, लवली, लौंग, बेर, केला, लकुच, आम, कटहल और ताड़ के फल एकत्रित थे।

**संस्कृत व्याख्या**—आसन्नवर्तिनीभिः समीपस्थायिनीभिः, तपोधनसम्पर्कात् इव अपगतकालुष्याभिः=तपोधनानां तापसानां सम्पर्कात् सम्बन्धात् इव अपगतं दूरीभूतं कालुष्यं मालिन्यं यासां ताः ताभिः अतिनिर्मलाभिरित्यर्थः, तरङ्गपरम्परासंक्रान्त-रविबिम्बपङ्क्तिभिः=तरङ्गपरम्परासु कल्लोलपङ्क्तिषु संक्रान्ताः प्रतिबिम्बिताः रविबिम्बपङ्क्तयः सूर्यबिम्बस्य राजयः यासु ताभिः तादृशीभिः (अतएव) तापसदर्शना-गतसप्तर्षिमाला विगाह्यमानाभिः इव=तापसानां जावाल्यादिमुनिजनानां दर्शनाय आगता संप्राप्ता या सप्तर्षिमाला मरीच्यादिदेवर्षिपङ्क्तिः तया विगाह्यमानाभिः स्नानार्थं विलोड्यमानाभिरिव वर्तमानाभिः, अतिविकचकुमुदवनम् ऋषिजनम् उपासितुम् अवतीर्णम् ग्रहगणमिव निशासु उद्वहन्तीभिः=निशासु रात्रिषु ऋषिजनम् मुनिजनम् उपासितुम् सेवितुम् अवतीर्णम् उपरिष्टात् सम्प्राप्तम् ग्रहगणम् नक्षत्रमण्डलम् इव अतिविकसितम् पूर्णतः विकसितं यत् कुमुदवनम् कैरववनम् तत् उद्वहन्तीभिः धारयन्तीभिः, दीर्घिकाभिः वापीभिः परिवृतम् परितो वेष्टितम् (आश्रमम्)।

अनिलावनमितशिखराभिः=अनिलेन वायुना अवनमितानि अवनम्रीभूतानि शिखराणि अग्रभागाः यासां ताः ताभिः तादृशीभिः वनलताभिः विपिनव्रततिभिः प्रणम्यमानम् नमस्क्रियमाणमिव आश्रमम्) अनवरतमुक्तकुसुमैः=अनरतं निरन्तरं मुक्तानि अधो-निपातितानि कुसुमानि पुष्पाणि यैस्ते तैः, पादपैः वृक्षैः, अभ्यर्च्यमानम् पूज्यमानमिव (आश्रमम्) आवद्धपल्लवाञ्जलिभिः=आवद्धाः विरचिताः पल्लवाः किसलयानि एव अञ्जलयः यैस्तैः तादृशैः, विटपैः वृक्षस्कन्धैः, उपास्यमानम् संसेव्यमानम् इव, उटजाजिरप्रकीर्ण शुष्यच्छयामाकम्=उटजानाम् पर्णशालानाम् अजिरेषु प्राङ्गणेषु प्रकीर्णाः प्रसारिताः अतएव शुष्यन्तः आतपेन शुष्कतां प्राप्नुवन्तः श्यामाका धान्य-विशेषाः यस्मिन् स तादृशम्, उपसंगृहीतामलकलवलीलवङ्गकर्कन्धू कदली लकुच चूतपनसतालफलम=उपसंगृहीतानि एकत्रीकृतानि आमलकम् धात्री, लवली लताविशेषः लवङ्गम् (लौंग इति भाषायाम्) कर्कन्धूः वदरी, कदली रम्भाः, लकुचः वहुः (बड़हर) चूतः रसालः, पनसं, कण्टकी (कटहल) ताल तृणराजः इत्येषां फलानि यत्र स तम् तादृशम् (आश्रमम्)।

**संस्कृत सरलार्थ**—(वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशनेक माश्रममपश्यम्) यः तथाविधाभिः वापीभिः परिवेष्टित आसीत्, याः निकटस्थायिन्यः, मुनिजनसम्बन्धादिव विलीनमालिन्याः, कल्लोलराजिषु प्रतिफलितसूर्यविम्बराजयः, (अतएव) जाबाल्यादि-मुनिजनदर्शनाय समागतैः मरीचिप्रभृतिदेवर्षिभिर्विलोड्यमाना इव वर्तमानाः (अथ च) रात्रिषु जाबाल्यादिमुनिमण्डलं सेवितुं समवतीर्णं नक्षत्रमण्डलमिव पूर्णविकसितकैरवनं धारयन्त्यश्चासन्। एवञ्च स आश्रमः तादृशीभि र्वनलताभि र्नमस्क्रियमाण इवासीत् याः पवनावनम्रीभूताग्रभागा आसन्, तादृशैस्तरुभिश्च स पूज्यमान इवासीत् ये निरन्तरपरिमुक्तकुसुमा आसन्, अथ च स तादृशैर्विटपस्कन्धैः सेव्यमान इवासीत् ये रचितकिसलयाञ्जलय आसन्। यत्र चाश्रमे पर्णशालानां प्राङ्गणेषु प्रसारिताः श्यामाकधान्यविशेषाः सूर्यातपेन शुष्कतां प्राप्नुवन्त आसन्। एवञ्च तत्राश्रमे भक्षणार्थं धात्रीफल लवलीलवङ्गवदरीफलरम्भालकुचाम्रपनसतालफलानि समुप-संगृहीतान्यासन्।

**टिप्पणी**—तपोधन सम्पर्कादिव-तत्रत्य वावड़ियों का जल स्वच्छ था कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो वह तपस्वियों के सम्पर्क से अतिनिर्मल हो गया था हेतूत्प्रेक्षा, विगाह्यमानाभिरिव—अत्रक्रियोत्प्रेक्षा दीर्घिका=वावड़ी। प्रणम्यमानम्, अभ्यर्च्यमानम्, उपास्यमानम् इव—यहाँ सर्वत्र क्रियोत्प्रेक्षा है। पल्लवाञ्जलयः—यहाँ केवलनिरङ्गरूपक है। उटज=पर्णशाला-पर्णशालोटजोऽस्त्रियामित्यमरः। अजिर=आंगन, लकुच=वड़हर, पनस-कटहल।

**अध्ययनमुखरवटुजनम्, अनवरतश्रवणगृहीत वषट्कार वाचालशुक-कुलम्, अनेकसारिकोद्घुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्, अरण्यकुक्कुटोपभुज्यमानवैश्व-देववलिपिण्डम्, आसन्नवापीकलहंसपोतभुज्यमाननीवारवलिम्, एणीजिह्वा-पल्लवोपलिह्यमानमुनिवालकम्, अग्निकार्यार्द्धदग्धसिभसिमायमानकुश-**

**समित्कुसुमम्, उपलभग्ननारिकेलरसस्निग्धशिलातलम् अचिरक्षुण्णवल्कल-रसपाटलभूतलम्, रक्तचन्दनोपलिप्तादित्यमण्डलनिहितकरवीरकुसुमम्, इतस्ततो विक्षिप्तभस्मलेखालंकृतमुनिजनभोजन भूमिभागम् ।**

**शब्दार्थ**—(इस गद्यांश का भी सम्बन्ध 'आश्रममपश्यम्' इस अन्तिम वाक्य से ही है अतः सब द्वितीयान्त पद 'आश्रमम्' के विशेषण हैं । अध्ययनमुखर वटुजनम्=जहाँ वेदमन्त्रों के गुरुमुख से उच्चारण के बाद उच्चारण करने वाले, ब्रह्मचारी (वटुजन) थे । अनवरतश्रवण गृहीतवषट्कार वाचालशुककुलम्=निरन्तर (अनवरत) सुनने से (श्रवण) सीखे गये (गृहीत) वषट्कार के उच्चारण से (वषट्कार=अग्नि में आहुति देने के मन्त्र) जहाँ शुकसमूह मुखरित हो रहा था । अनेकसारिकोद्घुष्यमाण सुब्रह्मण्यम्=अनेक सारिकाओं (मैना) द्वारा जहाँ वेदमन्त्रों का (सुब्रह्मण्य) उच्च स्वर से उच्चारण किया जा रहा था (उद्घुष्यमाण) अरण्यकुक्कुटोपभुज्यमानवैश्व-देववलिपिण्डम्=वन्य मुर्गों के द्वारा (कुक्कुट) जहाँ वैश्वदेवों को (दिये गये) बलि के पिण्डों को खाया जा रहा था (उपभुज्यमान) आसन्नवापीकलहंसपोतभुज्यमाननी-वारबलिम्=समीपवर्तिनी बावड़ियों के कलहंसों के बच्चों (पोत) के द्वारा जहाँ नीवार धान्यों के बलि का भक्षण किया जा रहा था । एणीजिह्वापल्लवोपलिह्यमान-मुनिबालकम्=मृगियाँ जहाँ अपने जिह्वा रूप पल्लवों द्वारा मुनिबालकों को चाट रही थीं (उपलिह्यमान) (एणी=मृगी) अग्निकार्यार्द्धदग्धसिमसिमायमानकुशस-मित्कुसुमम्=हवन में (अग्निकार्य) अधजले (अर्द्धदग्ध) (अतएव) जहाँ कुश समिधा और पुष्प सिम सिम सी ध्वनि कर रहे थे (गीले होने से पुष्प समिधा और कुश पूर्णतया न जलने के कारण सिम सिमा रहे थे) उपलभग्ननारिकेलरसस्निग्ध-शिलातलम्=पत्थरों द्वारा (उपल) तोड़े गये (भग्न) नारियलों के रस से जहाँ शिलाओं के तल चिकने (स्निग्ध) हो गये थे । अचिरक्षुण्णवल्कलरसपाटलभूतलम्=तत्काल ही (वृक्षों) से निकाले गये अथवा निचोड़े गये (अचिरक्षुण्ण) वल्कलों के रस से जहाँ भूमितल गुलाबी हो रहा था (पाटल=श्वेतरक्त वर्ण का) रक्तचन्दनोपलिप्ता-दित्यमण्डलनिहितकरवीरकुसुमम्=लाल चन्दन से चित्रित (उपलिप्त) सूर्यमण्डल पर जहाँ लाल कनेर के फूल (करवीकुसुम) चढ़ाये गये थे (निहित) । इतस्ततो-विक्षिप्तभस्मलेखालंकृतमुनिजनभोजनभूमिभागम्=जहाँ इधर उधर (इतस्ततः) बिखरी हुई (विक्षिप्त) भस्म की रेखाओं द्वारा मुनियों के भोजन करने के स्थानों को (सीमा निर्धारण द्वारा) सुशोभित कर दिया गया था ।

**अनुवाद**—प्रस्तुत गद्यखण्ड के सभी द्वितीयान्त पद 'आश्रमम्' के विशेषण हैं, (वैशम्पायन कहता है कि तब मैंने एक ऐसे आश्रम को देखा) जहाँ गुरुमुखोच्चरित वेदमन्त्रों के पुनः उच्चारण से ब्रह्मचारी जन मुखरित हो रहे थे, निरन्तर सुनने से सीखे हुए वषट्कार के उच्चारण से जहाँ शुकसमूह मुखरित हो रहा था, अनेक सारिकाओं द्वारा जहाँ वेदमन्त्रों का (निरन्तरश्रवणाभ्यासवश) उच्चस्वर से उच्चारण

किया जा रहा था। वन्य मुर्गों के द्वारा जहाँ वैश्वदेव बलि के पिण्डों को खाया जा रहा था। समीपवर्तिनी बावड़ियों के कलहंसों के बच्चों द्वारा जहाँ नीवारधान्यों की बलि को खाया जा रहा था। जहाँ मृगि ां अपने जीभ रूपी पल्लवों से मुनिबालकों को चाट रही थीं। जहाँ हवन में अधजले कुश समिधा और पुष्प (गीले होने के कारण) सिम सिम सी ध्वनि कर रहे थे। पत्थरों से तोड़े गये नारियल के रस से जहाँ शिलाओं के तल चिकने हो रहे थे। तत्काल ही (वृक्षों से निकाल कर) निचोड़े गये बल्कलों के रस से जहाँ भूमितल गुलाबी रंग का हो गया था। रक्त चन्दन से चित्रित सूर्य मण्डल पर जहाँ लाल कनेर के फूल चढ़ाये गये थे। जहाँ इधर उधर बिखेरी हुई भस्म की रेखाओं द्वारा (सीमा निर्धारण की दृष्टि से मुनिजनों के भोजन करने के स्थानों को सुशोभित कर दिया गया था)।

**भावार्थ**—उस आश्रम में कहीं ब्रह्मचारी गुरुमुखोच्चरित वेदमन्त्रों को दुहरा रहे थे, कहीं लगातार सुनते रहने से अभ्यस्त हुए तोते आहुति देने के मन्त्रों को पढ़ रहे थे, कहीं सारिकायें उच्चस्वर से वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रही थीं कहीं वैश्वदेव के बलि-पिण्डों को वन्य मुर्गे खा रहे थे, कहीं पास की बावड़ियों में रहने वाले कलहंसों के बच्चे बलि रूप में दिये गये नीवारधान्यों को खा रहे थे। कहीं मृगियाँ अपनी जीभ से मुनिबालकों को चाट रही थीं। गीले होने के कारण हवन में अधजले कुश फूल और समिधायें सिमसिमा रही थीं। कहीं पत्थरों से तोड़े गये नारियलों के रस से शिलाओं के तल चिकने हो रहे थे। कहीं तत्काल ही वृक्षों से निकालकर निचोड़े गये वल्कलों के रस से भूमितल गुलाबी हो रहा था, कहीं लाल चन्दन से चित्रित सूर्यमण्डल पर लाल कनेर के फूल चढ़ाये गये थे। कहीं मुनिजनों के भोजन स्थानों को इधर उधर बिखरी हुई भस्म-रेखाओं से अलंकृत कर दिया गया था।

**संस्कृत व्याख्या**—गद्यखण्डेऽस्मिन् द्वितीयान्तपदानि 'आश्रमम्' इत्यस्य विशेषणानि। अध्ययनमुखरवटुजनम्—अध्ययनेन गुरुमुखोच्चारणानन्तरं वेदमन्त्राणामनुच्चारणेन मुखराः शब्दायमानाः वटुजनाः ब्रह्मचारिणः यत्र स तम् तादृशम् आश्रममित्यर्थः। अनवरतश्रवणगृहीत वषट्कारवाचालशुककुलम्—अनवरतं निरन्तरम् श्रवणेन आकर्णनेन गृहीताः शिक्षिता ये वषट्कारा अग्नौ हविर्दानमन्त्राः तैः वाचालं शब्दायमानं शुककुलं शुकसमूहः यत्र स तम् तादृशम्, अनेकसारिकोद्घुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्—अनेकाभिः सारिकाभिः पीतपदाभिः उद्घुष्यमाणाम् उच्चस्वरेण पठ्यमानं सुब्रह्मण्यं वेदः यस्मिन् स तम् तादृशम्, अरण्यकुक्कुटोपभुज्यमानवैश्वदेवबलिपिण्डम्—अरण्यकुक्कुटैः वन्यचरणायुधैः उपभुज्यमानाः भक्ष्यमाणाः वैश्वदेवस्य देवयज्ञस्य बलिपिण्डाः यस्मिन् स तम् तादृशम्, आसन्नवापीकलहंसपोतभुज्यमाननीवारबलिम्=आसन्नवापीनां निकटस्थदीर्घिकाणां ये कलहंसाः=तेषाम् पोताः शिशवः तैः भुज्यमाना भक्ष्यमाणाः नीवाराणाम् मुन्यन्नानां बलयः उपायमानि यस्मिन् स तम् तादृशम्, एणीजिह्वापल्लवोपलिह्यमानमुनिबालकम्—एणीभिः=मगीभिः जिह्वा रसना एव पल्लवाः तैः उपलि-

ह्यमानाः आस्वाद्यमाना प्रेम्णा स्पृश्यमाना इत्यर्थः, मुनीनां बालकाः यस्मिन् स तम् तादृशम्, अग्निकार्यार्द्धदग्धसिमसिमायमानकुशसमित्कुसुमम् अग्निकार्ये हवने अर्धदग्धानि अर्धभस्मीभूतानि अतएव सिमसिमायमानानि सिमसिमेतिध्वनिं कुर्वाणानि कुश-समित्कुसुमानि दर्भसमित्पुष्पाणि यस्मिन् स तादृशम्, उपलभग्ननारिकेलरसस्निग्ध-शिलातलम्—उपलैः प्रस्तरैः भग्नानि अन्यप्रस्तरेषु निधाय मर्दितानि यानि नारिकेलानि लाङ्गलीफलानि तेषां रसैः द्रवैः स्निग्धानि चिक्कणानि शिलातलानि यस्मिन् स तम् तादृशम्, अचिरक्षुण्णवल्कलरसपाटलभूतलम् —अचिरक्षुण्णानां वृक्षेभ्यः तत्कालनिःसारितानां वल्कलानां रसैः निर्यासैः पाटलं श्वेतरक्तं भूतलम् पृथिवीतलं यस्मिन् स तम् तादृशम्, रक्तचन्दनोपलिप्तादित्यमण्डलनिहितकरवीरकुसुमम्—रक्तेन चन्दनेन उपलिप्ते चित्रिते आदित्यमण्डले सूर्यमण्डले निहितानि सूर्याय समर्प्य स्थापितानि करवीरकुसुमानि ह्यमारपुष्पाणि यस्मिन् स तम् तादृशम्, इतस्ततो विक्षिप्तभस्म-लेखालंकृत मुनिजनभोजनभूमिभागम्—इतस्ततः समन्तात् विक्षिप्ताभिः भस्मनाम् भूतीनाम् लेखाभिः पङ्क्तिभिः अलंकृता, सुशोभिताः मुनिजनानां भोजनभूमिभागा यस्मिन् स तम् तादृशम् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—(वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशमेकमाश्रम मपश्यम् यत्र ब्रह्मचारिणो वेदमन्त्रोच्चारणाभ्यासपरा आसन्, शुककुलं निरन्तराकर्णनाभ्यस्तैः हविः समर्पणमन्त्रैः शब्दायमान मासीत्, अनेकसारिकाभिश्च वेदः उच्चस्वरेणाभ्यस्यमान आसीत्, यत्र च वैश्वदेवबलिपिण्डाः वन्यचरणायुधैर्भक्ष्यमाणा आसन्,, नीवारबलयश्च यत्र निकटस्थदीर्घिकाबालकलहंसशिशुभिर्भक्ष्यमाणा आसन्, हवनकर्मणि चार्धदग्धानि कुशसमित्पुष्पाणि सिमसिमायमानान्यासन्, प्रस्तरै र्मर्दितानां लाङ्गलीफलानां द्रवैर्यत्र शिलातलानि चिक्कणान्यासन्, तरुभ्यस्तत्कालनिः सारितवल्कलनिर्यासै र्यत्र पृथिवी-तलं श्वेतरक्तमासीत्, रक्तचन्दनालिखिते सूर्यमण्डले यत्र करवीरकुसुमं सूर्याय समर्प्य स्थापित मासीत्, समन्तात् विक्षिप्ताभिः भस्मपङ्क्तिभि र्यत्र च मुनिजनभोजनभूमि-भागाः समलङ्कृता आसन् ।

**टिप्पणी**—**वषट्कार**—वे वेदमन्त्र जिनके द्वारा अग्नि में हविः समर्पित किया जाता है निरन्तर सुनते रहने से तत्रत्य शुक भी इन मन्त्रों का उच्चारण करने लगे थे। **सुब्रह्मण्यम्**—वेद, वहाँ की सारिकायें भी अभ्यस्त होने के कारण उच्चस्वर से वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रही थीं, **वैश्वदेवपिण्ड**—वैश्वदेव को उद्देश्य कर पंचम प्रहर के अन्त में दी जाने वाली बलि या भेंट। **अरण्यकुक्कुट**—कुक्कुटश्चरणायुधः इत्यमरः । **अचिरक्षुण्ण**—तत्काल ही वृक्षों से निकाले गये वल्कलों के निर्यास से वहाँ का भूमितल श्वेतरक्तवर्ण का हो गया था । एणी = मृगी, जिह्वापल्लव—जीव रूपी पल्लव, **अर्धदग्ध**—गीले होने के कारण कुश, समिधा और पुष्प अर्धदग्ध थे अतएव वे सिमसिमा रहे थे । **शिलातलानि**—शयनार्ह शिलातल चिकने हो गये थे । **करवीर-कुसुम्**—लाल कनेर का फूल । **भस्मलेखा**—भूतिर्भसितभस्मनिः इत्यमरः, लेखा = पंक्ति ।

**परिचितशाखामृगकराकृष्टयष्टि निष्काश्यमानप्रवेश्यमान जरदन्धतापसम्, इभकरभकार्द्धोपभुक्तपतितैः सरस्वतीभुजलताविगलितैः शङ्खवलयैरिव मृणालशकलैः कल्माषितम्, ऋषिजनार्थमेणकैर्विषाणशिखरोत्खन्यमानविविधकन्दमूलम् अम्बुपूर्णपुष्करपुटैं वनकरिभिरापूर्यमाणविटपालवालकम्, ऋषिकुमारकाकृष्यमाणवनवराह दंष्ट्रान्तराललग्नशालूकम्, उपजातपरिचयैः कलापिभिः पक्षपुटपवनसन्धुक्ष्यमाणमुनिहोमहुताशनम्, आरब्धामृतचरुचारुगन्धम्, अर्धपक्वपुरोडाशपुण्यपरिमलामोदितम्, अविच्छिन्नाज्यधाराहुतिहुतभुग्हुंङ्कारैमुखरितम् ।**

**शब्दार्थ**—परिचितशाखामृगकराकृष्टयष्टि निष्काश्यमान प्रवेश्यमान जरदन्धतापसम्=परिचित वानर (शाखामृग) (जहाँ) हाथ की छड़ी पकड़कर (कराकृष्टयष्टि) बूढ़े और अन्धे तपस्वियों को (जरदन्धतापसम्) (आश्रम से बाहर ले जा रहे और भीतर ले आ रहे थे (प्रवेश्यमान=भीतर प्रवेश कराना, निष्काश्यमान=बाहर निकालना) इभकरभकार्द्धोपभुक्तपतितैः=हाथियों के बच्चों के द्वारा (इभकरभकैः) अर्धोपभुक्त=आधा खा लेने के बाद गिरे हुए, सरस्वती भुजलताविगलितैः=सरस्वती की भुजलताओं से गिरे हुए, शङ्खवलयैः इव=शंख से बने कंगनों के समान, मृणालशकलैः=मृणाल के टुकड़ों से, कल्माषितम्=चित्रित हो रहा था। ऋषिजनार्थम्=मुनिजनों के लिए, एणकैः=मृगों के द्वारा, विषाणशिखरोत्खन्यमानविविधकन्दमूलम्=(जहाँ) सींगों के अग्रभागों से (विषाणशिखर) अनेक प्रकार के कन्दमूल खोदे जा रहे थे (उत्खन्यमान) अम्बुपूर्णपुष्करपुटैः=जल से भरे हुए सूड़ों (पुष्कर) के अग्रभागों से (पुटैः) वनकरिभिः=जंगली हाथियों के द्वारा, आपूर्यमाणविटपालवालकम्=जहाँ वृक्षों की क्यारियाँ भरी जा रही थीं (आपूर्यमाण=भरी जा रही थीं, विटप=वृक्ष, आलवालक=क्यारियाँ या थाले। ऋषिकुमारकाकृष्यमाण=ऋषिकुमारों द्वारा जहाँ निकाले जा रहे थे, वनवराह दंष्ट्रान्तराललग्नशालूकम्=वन्यशूकरों के जबड़ों के बीच में लगे हुए (लग्न) कमलकन्द (शालूक)। उपजातपरिचयैः=परिचित, कलापिभिः=मयूरों के द्वारा, पक्षपुटपवनसन्धुक्ष्यमाण मुनिहोमहुताशनम्=जहाँ पक्षपुटों की वायु से मुनियों के हवन की अग्नियाँ प्रज्वलित की जा रही थीं। आरब्धामृतचरुचारुगन्धम्=पकाये गये (आरब्ध) घृतयुक्तयवौदन-अमृतचरु (एक प्रकार का घृतयुक्त हविष्यान्न) की मनोहर (चारु) सुगन्धि से सुगन्धित। अर्धपक्वपुरोडाशपुण्यपरिमलामोदितम्=(जो कि) आधे पके हुए पुरोडाश (एक प्रकार के हवनीय द्रव्य) के मनोहर सुगन्धि (पुण्यपरिमल) हर्षजनक (आमोदित) था। अविच्छिन्नाज्यधाराहुतिहुतभुग्हुङ्कारमुखरितम्=जो अत्रुटित (लगातार चलने वाली) आज्यधाराहुति=घृत की धार की आहुति से, अग्नि (हुतभुक्) की 'हुम्' ध्वनि (हुङ्कार) से मुखरित था।

**अनुवाद**—(इस गद्यखण्ड के भी सभी पद 'आश्रमम्' के विशेषण है वैशम्पायन कहता है कि तब मैंने एक ऐसे आश्रम को देखा) जहां परिचित वान

हाथ की छड़ी पकड़कर बूढ़े और अन्धे तपस्वियों को (आश्रम से) बाहर ले जा रहे और भीतर ले आ रहे थे। जो कि गजों के बच्चों के द्वारा आधे खा लेने के बाद गिरे हुए, सरस्वती की भुजलताओं से गिरे हुए शंख से बने कंगनों के समान, मृणाल के टुकड़ों से चित्रित हो रहा था। ऋषिजनों के लिए जहाँ मृगों द्वारा अपने सींगों के अग्रभागों से अनेक प्रकार के कन्दमूल खोदे जा रहे थे। जहाँ वन्यगजों द्वारा अपने जल से भरे हुए सूड़ों के अग्रभागों से वृक्षों की क्यारियाँ भरी जा रही थीं। ऋषिकुमारों द्वारा जहाँ वन्यशूकरों के जबड़ों के बीच लगे हुए कमलकन्द निकाले जा रहे थे। परिचित मयूरों के द्वारा जहाँ अपने पक्षपुटों की वायु से मुनियों के हवन की अग्नियाँ प्रज्वलित की जा रही थीं। जो कि पकाये गये घृतयुक्त यवौदन की मनोहर गन्ध से सुगन्धित हो रहा था। जो कि आधे पके हुए पुरोडाश के मनोहर सौरभ से हर्षजनक था। (और जो कि) अत्रुटित घृतधार की आहुति से (उत्पन्न) अग्नि की 'हुम्' ध्वनि से मुखरित था।

**भावार्थ**—उस आश्रम में कहीं पर परिचित वानर आश्रम के वृद्ध एवं अन्धे तापसों को उनके हाथ की छड़ी पकड़कर उनको आश्रम के भीतर और बाहर ले जा रहे थे। कहीं वह आश्रम गजशावकों द्वारा आधे खाकर छोड़े गये मृणाल के टुकड़ों से, जो कि सरस्वती के भुजालताओं से गिरे कंगन जैसे प्रतीत होते थे, चित्रित था। कहीं ऋषिजनों के खाने के लिए मृग अपने सींगों की नोंक से विविध कन्दमूल उखाड़ रहे थे। कहीं वृक्षों के थाले वन्यगजों द्वारा अपने जलपूरित शुण्डाग्र-भागों से भर रहे थे, कहीं ऋषिकुमार जंगली शूकरों की दाढ़ों के बीच फँसे हुए कमलकन्दों को निकाल रहे थे तो कहीं परिचित मयूर अपने पंखों की वायु से ऋषियों की हवनाग्नि को प्रज्वलित कर रहे थे, कहीं पकाये गये घृतमिश्रित यवौदन की सुगन्धि फैल रही थी तो कहीं आधे पके हुए पुरोडाश की मनोहर गन्ध हर्षित कर रही थी और कहीं वह आश्रम निरन्तर चलने वाली घृतधार की आहुति से उत्पन्न अग्नि की 'हुम्' ध्वनि से मुखरित हो रहा था।

**संस्कृत व्याख्या**—परिचितशाखामृगकराकृष्टयष्टिनिष्काश्यमानप्रवेश्यमानजरदन्धतापसम्—परिचिता उपजातपरिचया ये शाखामृगाः कपयस्तैः कराकृष्टयष्ट्या हस्ताकर्षितलगुडेन निष्काश्यमानाः केचिदाश्रमाद्वहिरानीयमानाः प्रवेश्यमानाः केचिदभ्यन्तरे नीयमानाश्च जरन्तः परिणतवयसः अन्धा नेत्ररहिताः तापसा तपस्विनः यस्मिन् स तम् (तादृशम् आश्रमम्) इभकरभकार्धोपभुक्तपतितैः—इभकरभकाः गजशावकाः तैः अर्धोपभुक्तैः अर्धचर्वितैः पश्चात् पतितैः तन्मुखेभ्योऽधश्च्युतैः, सरस्वतीभुजलताविगलितैः—सरस्वत्या भारत्या भुजलतायाः बाहुबल्ल्याः समीपादधः विगलितैः पतितैः, शङ्खवयलैः त्रिरेखकटकैरिव, मृणालशकलैः विसखण्डैः कल्माषितम् चित्रितम्, ऋषिजनार्थम् मुनिजनभक्षणार्थम् एणकैः मृगैः (कर्तृभिः) विषाणशिखरैः शृङ्गाग्रभागैः उत्खन्यमानविविधकन्दमूलम्—उत्खन्यमानानि समुत्पाट्यमानानि विविधानि अनेकानि कन्दमूलानि पङ्कजादिमूलानि शालूकानि मूलकादीनि च यस्मिन्

स तं तादृशम्, अम्बुपूर्णपुष्करपुटैः अम्बुभिः सलिलैः पूर्णानि भृतानि यानि पुष्करपुटानि शुण्डादण्डाग्राणि तैः तादृशैः (करणैः) करिभिः गजैः—आपूर्यमाण विटपालवालकम्—आपूर्यमाणानि ध्रियमाणानि विटपानाम् तरुणाम् आलवालकानि आवापस्थानकानि यस्मिन् स तं तादृशम्, ऋषिकुमारकाकृष्यमाणवनवराह दंष्ट्रान्तराललग्नशालूकम्—ऋषिकुमारकैः मुनिजनशिशुभिः आकृष्यमाणानि वहिरानीयमानानि वनवराहाणाम् वन्यशूकराणां दंष्ट्रान्तराललग्नानि दशनाभ्यन्तरसंसक्तानि शालूकानि कमलकन्दाः यस्मिन् स तं तादृशम्, उपजातपरिचयैः परिचितैः कलापिभिः मयूरैः, पक्षपुटपवन सन्धुक्ष्यमाणमुनिहोमहुताशनम्—पक्षपुटपवनेन छदपुटवायुना सन्धुक्ष्यमाणा प्रज्वाल्यमाना मुनीनाम् होमार्थं हुताशनाः अग्नयः यस्मिन् स तं तादृशम्, आरब्धामृतचरुचारुगन्धम्—आरब्धः पचनायप्रवर्तितः यः अमृतचरुः घृतयुक्तयवौदनः तस्य चारुः मनोरमः गन्धः आमोद यस्मिन् तं तादृशम्, अर्धपक्वपुरोडाशपुण्यपरिलामोदितम्=अर्धपक्वः अर्धविविलतिंगतः यः पुरोडाशः हव्यद्रव्यविशेषः तस्य पुण्यपरिमलेन मनोहरसौरभेण आमोदितम् हर्षजननशीलम्, अविच्छिन्नाज्यधाराहुतिहुतभुग्हुङ्कारमुखरितम्—अविच्छिन्ना अत्रुटिता नैरन्तर्येण वाहिनीया आज्यधारा घृतसम्पातः तस्या आहुत्या हवनेन यो हुतभुजः अग्नेः हुङ्कारः 'हुम्' इतिध्वनिः तेन मुखरितम् शब्दायमानम् (तादृशम् आश्रमम्)।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशमाश्रम मपश्यम् यत्र परिचितैः कपिभिः आश्रमवासिनो जरन्तः अन्धाश्चतपस्विनः हस्तार्कपितलगुडेन वहिर्नीयमानाः अभ्यन्तरञ्च प्रवेश्यमाना आसन्, आश्रमश्चासौ भारतीबाहुवल्ली-निपतितैः त्रिरेखकटकैरिव गजशावकोपभुक्तपतितैः विसखण्डैश्चित्रित आसीत्, यत्र च मुनिजनभक्षणार्थं मृगैः स्वश्रृङ्गाग्रभागैः अनेकविधानि कमलादिमूलानि मूलकादीनि च समुत्पाट्यमानान्यासन्, यत्र च विटपानामधः सलिलधारणगतानि अरण्यगजैः स्वकीयैः सलिलभृतैः शुण्डाग्रैः ध्रियमाणान्यासन्, अथ च यत्र मुनिशिशुभिः अरण्य-शूकराणां दशनमध्यसंसक्तानि शालूकानि समाकृष्यमाणान्यासन्, परिचितैः मयूरैश्च यत्र मुनिजनहवनाग्नयः स्वकीयेन पक्षपुटवायुना प्रज्वाल्यमाना आसन्, आश्रमश्चासौ पचनाय प्रवर्तितस्य घृतयुक्तयवौदनस्य मनोहरामोदवानासीत्, एवञ्चासौ अर्धपक्व-पुरोडाशस्य मनोहरसौरभेण हर्षजननशील आसीत्, अथ चायमत्रुटिताज्यधाराहुत्या अग्ने 'हुंम्' इति ध्वनिना शब्दायमान आसीत्।

**टिप्पणी—परिचितेति**—शाखामृग=वानर, ये वानर आश्रमवासी वृद्ध एवं अन्धे तापसों को उनके हाथों में डंडा पकड़ाकर और एक ओर स्वयं उसे पकड़े बाहर ले जाते और ले आते थे। **इभकरभकेति**—गजशावकों द्वारा आधे चबाकर गिरे हुए मृणालखण्ड, सरस्वती की बाहुलता से गिरे हुए शंखवत् त्रिरेखाकार कटकों के समान लग रहे थे इनसे आश्रमभूमि चित्रित थी; शङ्खवलयैरिवेत्यत्र जात्युत्प्रेक्षा-लंकारः। **कन्दमूलम्**—कमलादि का मूल-कन्द (कमलगट्टा) तथा मूलक आदि को यहाँ मूल कहा गया है—इसी को कन्द, कमलमूल, और शालूक भी कहा जाता है

"शालूक मेषां कन्दः स्यात्" इत्यमरः। **अम्बुपूर्णपुष्करपुटैः**—जल से भरे हुए गजों के सूँड़ों के अग्रभाग—'पुष्करं करिहस्ताग्रे, शुण्डाग्रत्वस्य पुष्करम् इत्यमरः। **अमृतचरु**—घृतमिश्रित हविष्यान्न विशेष, अमृतं यज्ञशेषे स्यात् पीयूषे सलिले घृते—कोश। इस प्रकार के चरु को यवौदन भी कहा गया है। **पुरोडाश**—यह एक प्रकार का हवनीय पदार्थ होता है।

**उपचर्य्यमाणातिथिवर्गम्, पूज्यमानपितृदैवतम्, अर्च्यमानहरिहरपितामहम्, उपदिश्यमानश्राद्धकल्पम्, व्याख्यायमानयज्ञविद्यम्, आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्, पठ्यमानविविधपुस्तकम्, विचार्यमाणसकलशास्त्रार्थम्, आरम्यमाणपर्णशालम्, उपलिप्यमानाजिरम्, उपमृज्यमानोटजाभ्यन्तरम, आबध्यमानध्यानम्, साध्यमानमन्त्रम्, अभ्यस्यमानयोगम्, उपह्रियमाणवनदेवताबलिम्, निर्वर्त्यमानमौञ्जमेखलम्, प्रक्षाल्यमानवल्कलम्, उपसंगृह्यमाणसमिधम्, संस्क्रियमाणकृष्णाजिनम्, गृह्यमाणगवेधुकम्, शोष्यमाणपुष्करबीजम् ग्रथ्यमानाक्षमालम्, गृह्यमाणत्रिपुण्ड्रकम्, न्यस्यमानवेत्रदण्डम्, आपूर्य्यमाणकमण्डलुम्।**

शब्दार्थ—उपचर्यमाणातिथिवर्गम्=जहाँ अतिथिजनों का सत्कार किया जा रहा था। पूज्यमानपितृदैवतम्=जहाँ पितरों और देवताओं की (श्राद्ध, षोडशोपचारादि से) पूजा की जा रही थी। अर्च्यमानहरिहरपितामहम्=जहाँ विष्णु (हरि), शिव (हर) एवं ब्रह्मा (पितामह) की अर्चना की जा रही थी। उपदिश्यमानश्राद्धकल्पम्=जहाँ (आश्वलायन आदि निर्दिष्ट) श्राद्ध विधि का उपदेश किया जा रहा था। व्याख्यायमानयज्ञविद्यम्=जहाँ (दार्शपौर्णमासादि यज्ञविधायक) शास्त्र की प्रसंगानुकूल अर्थ द्वारा व्याख्या की जा रही थी। आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्=मन्वादिप्रणीत धर्मशास्त्रों की विचारपूर्वक समीक्षा की जा रही थी, पठ्यमान विविधपुस्तकम्=अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जा रही थीं। विचार्यमाणसकलशास्त्रार्थम्=सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थों पर युक्तिपूर्वक विचारविमर्श किया जा रहा था। आरभ्यमाणपर्णशालम्=पर्णशालाओं का निर्माण आरम्भ किया जा रहा था। उपलिप्यमानाजिरम्=गोमयादि से आंगन लीपे जा रहे थे। शोधिनी आदि के द्वारा पर्णशालाओं के भीतरी भाग स्वच्छ परिष्कृत किये जा रहे थे, आबध्यमानध्यानम्=ध्यान लगाया जा रहा था। साध्यमानमन्त्रम्=हवनजपादि के द्वारा मन्त्रों को सिद्ध किया जा रहा था। अभ्यस्यमानयोगम्=चित्तवृत्तिनिरोधात्मक योग का अभ्यास किया जा रहा था। उपह्रियमाणवनदेवताबलिम्=वनाधिष्ठातृ देवताओं के लिए बलि अर्थात् पूजा की वस्तुयें समर्पित की जा रही थीं। निर्वर्त्यमानमौञ्जमेखलम्=जहाँ मूँज नामक घास की मेखलायें बनाई जा रही थीं। प्रक्षाल्यमानवल्कलम्=वल्कल वस्त्र जल से धोये जा रहे थे। उपसंगृह्यमाणसमिधम्=समिधायें (हवन की लकड़ियों का संग्रह किया जा रहा था। संस्क्रियमाणकृष्णाजिनम्=कृष्णसार मृगों के चर्म को विशुद्ध किया जा रहा था। गृह्यमाणगवेधुकम्=गवेधुक नामक

जंगली धान्य या कन्द इकट्ठा किया जा रहा था। शोष्यमाण पुष्करबीजम्=कमलों के बीज या कमलगट्टे धूप में सुखाये जा रहे थे। ग्रथ्यमानाक्षमालम्=रुद्राक्ष मालायें गूँथीं जा रही थीं। गृह्यमाणत्रिपुण्ड्रकम्=भस्म के रेखात्रयात्मक तिलक (पुण्ड्र) धारण किये जा रहे थे। न्यस्यमानवेत्रदण्डम्=वेंतों के डंडे (दूर से लाकर) रखे जा रहे थे। आपूर्यमाणकमण्डलुम्=जहाँ कमण्डलु भरे जा रहे थे।

अनुवाद—(वैशम्पायन कहता है कि मैंने ऐसे एक आश्रम को देखा) जहाँ अतिथिजनों का सत्कार किया जा रहा था, पितरों और देवताओं की (श्राद्धषोडशोपचारादि से पूजा की जा रही थी)। विष्णु, शिव और ब्रह्मा की अर्चना की जा रही थी। (आश्वलायन आदि से निर्दिष्ट) श्राद्धविधि का उपदेश किया जा रहा था। यज्ञविधायक शास्त्रों की अर्थ द्वारा व्याख्या की जा रही थी। धर्मशास्त्रों की समीक्षा की जा रही थी, अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जा रही थीं, सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थों पर युक्तिसंगत विचार-विमर्श किया जा रहा था, पर्णशालाओं का निर्माण आरम्भ किया जा रहा था, आंगन लीपे जा रहे थे, पर्णशालाओं के भीतरी भाग स्वच्छ किये जा रहे थे, ध्यान लगाया जा रहा था, मन्त्रों को सिद्ध किया जा रहा था, योगाभ्यास किया जा रहा था, वन-देवताओं के लिए बलि समर्पित की जा रही थी, मूँज की मेखलायें बनाई जा रही थीं, वल्कल धोये जा रहे थे, समिधाओं का संग्रह किया जा रहा था, कृष्ण मृगों के चर्म को शुद्ध किया जा रहा था, गवेधुक नामक धान्य या कन्द को एकत्र किया जा रहा था, कमलों के बीज सुखाये जा रहे थे, रुद्राक्ष मालायें गूँथी जा रही थीं, त्रिपुण्ड्र धारण किये जा रहे थे, वेतसदण्ड (पृथिवी) पर रखे जा रहे थे, और जहाँ कमण्डलु भरे जा रहे थे।

भावार्थ—उस आश्रम में कहीं अतिथियों का सत्कार हो रहा था, कहीं पितृदेवों की पूजा और कहीं ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अर्चना हो रही थी। कहीं श्राद्ध विधि का उपदेश और कहीं यज्ञ विधायक शास्त्रों का व्याख्यान हो रहा था, कहीं धर्मशास्त्रों की समीक्षा थी तो कहीं पुस्तकों का पाठ हो रहा था। कहीं सकल शास्त्रों के अर्थों की विचारणा थी तो कहीं पर्णशालाओं का नवनिर्माण आरम्भ किया जा रहा था, कहीं आंगन लीपे जा रहे थे तो कहीं झोपड़ियों के मध्य भाग स्वच्छ किये जा रहे थे। कहीं ध्यान लगाया जा रहा था तो कहीं मन्त्र साधना हो रही थी, कहीं योगाभ्यास किया जा रहा था तो कहीं वनदेवताओं को बलि दी जा रही थी। कहीं मूँज की मेखलायें बनाई जा रही थीं तो कहीं वल्कल धोये जा रहे थे, कहीं समिधाओं का संग्रह किया जा रहा था तो कहीं कृष्ण मृग चर्म संस्कृत किये जा रहे थे, कहीं त्रिपुण्ड्र लगाये जा रहे थे तो कहीं गवेधुक धान्य एकत्र किये जा रहे थे, कहीं कमल-बीज सुखाये जा रहे थे तो कहीं रुद्राक्ष मालायें गूँथी जा रही थीं कहीं वेतसदण्ड रखे जा रहे थे तो कहीं कमण्डलु भरे जा रहे थे।

**संस्कृत व्याख्या**—उपचर्यमाणातिथिवर्गम्—उपचर्यमाणः सत्क्रियमाणः अतिथीनाम् अभ्यागतानां वर्गः समूहः यत्र स तम् तादृशम् (आश्रमम्, पूज्यमानपितृदैवतम्—

पूज्यमानानि श्राद्धादिना षोडशोपचारादिना च अर्च्यमानानि पितृदैवतानि पितरः देवताश्च यत्र स तम्. अर्च्यमानहरिहरपितामहम्—अर्च्यमानाः पूज्यमानाः हरिः विष्णुः हरः शंकरः पितामहः प्रजापतिश्च एते यत्र स तं तादृशम्, उपदिश्यमानश्राद्धकल्पम्—उपदिश्यमानः सम्यक् बोध्यमानः श्राद्धकल्पः आश्वलायनादिरचितः श्राद्धविधिः यस्मिन् स तम तादृशम्, व्याख्यायामानयज्ञविद्यम्—व्याख्यायमाना प्रसङ्गानुकूलार्थद्वारा प्रतिपाद्यमाना यज्ञविद्या पौर्णमासादियज्ञविधिबोधकं शास्त्रम् यत्र स तं तादृशम्, आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्—आलोच्यमानानि समीक्षया विचार्यमाणानि धर्मशास्त्राणि मन्वादिप्रणीतधर्मशास्त्राणि यत्र स तं तादृशम्, पठ्यमानविविधपुस्तकम्—पठ्यमानानि अधीयमानानि विविधानि अनेकविधानि पुस्तकानि यत्र स तं तादृशम्, विचार्य्यमाणसकलशास्त्रार्थम्—विचार्य्यमाणाः युक्तिपूर्वकं व्याख्यायमानाः सकलशास्त्रार्थाः समस्तशास्त्रविषयाः यत्र स तं तादृशम्, आरभ्यमाणपर्णशालम्—आरभ्यमाणा निर्मातुं प्रवर्त्यमानाः पर्णशालाः उटजाः यस्मिन् स तं तादृशम्, उपलिप्यमानाजिरम्—उपलिप्यमानानि गोमयादिना संस्क्रियमाणानि अजिराणि उटजप्राङ्गणानि यत्र स तं तादृशम्, उपभृज्यमानोटजाभ्यन्तरम्—उपमृज्यमानानि शोधन्यादिभिः परिस्क्रियमाणानि उटजानाम् पर्णशालानाम् अभ्यन्तराणि मध्यभागाः यस्मिन् स तं तादृशम्, आवध्यमानध्यानम्—आवध्यमानं क्रियमाणं ध्यानम् यत्र स तं तादृशम्, साध्यमानमन्त्रम्—जपहवनादिभिः सिद्धिं नीयमाना मन्त्राः यस्मिन् स तं तादृशम् अभ्यस्यमानयोगम्—अभ्यस्यमानः पुनः पुनः विधीयमानः योगः चित्तवृत्तिनिरोधः यत्र स तं तादृशम्, उपह्रियमाणवनदेवताबलिम्—उपह्रियमाणाः प्रदीयमानाः वनदेवताभ्यः वलयः पूजावस्तूनि यस्मिन् स तं तादृशम्, निर्वर्त्यमानमौञ्जमेखलम्—निर्वर्त्यमाना निष्पाद्यमाना मौञ्जमेखला मुञ्जनिर्मिता मेखला यत्र स तं तादृशम्, प्रक्षाल्यमानवल्कलम्—प्रक्षाल्यमानं जलेन स्वच्छीक्रियमाणं वल्कलं यत्र स तं तादृशम्, उपसंगृह्यमाणसमिधम्—उपसंगृह्यमाणा उपसमादीयमानाः समिधः हवनीयैधांसि यत्र स तं तादृशम्, संस्क्रियमाणकृष्णाजिनम्—संस्क्रियमाणं शुद्धीक्रियमाणं कृष्णाजिनं कृष्णमृगचर्म यत्र स तं तादृशम्, गृह्यमाणगवेधुकम्—गृह्यमाणा उपादीयमाना गवेधुका धान्यविशेषाः कन्दा वा यत्र स तं तादृशम्, शोष्यमाणपुष्करबीजम्—शोष्यमाणानि सूर्यातपेन शुष्कतां नीयमानानि पुष्करबीजानि कमलबीजानि कमलफलानि वा यत्र स तं तादृशम्, ग्रथ्यमानाक्षमालम्—ग्रथ्यमाना ग्रन्थिं प्राप्य विरच्यमाना अक्षमाला रुद्राक्ष माला यस्मिन् स तं तादृशम्, गृह्यमाणत्रिपुण्ड्रकम्—गृह्यमाणं मस्तके धार्यमाणं त्रिपुण्ड्रकम् भस्मना रेखात्रयात्मकतिलकं यत्र स तं तादृशम्, न्यस्यमानवेत्रदण्डम्—न्यस्यमाना दूरादागत्य भूमौ स्थाप्यमाना वेत्रदण्डाः वेतसलगुडाः यत्र स तं तादृशम्, आपूर्यमाणकमण्डलुम् आपूर्यमाणा जलेन भ्रियमाणाः कमण्डलवः यत्र स तं तादृशम् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—(वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशमेकमाश्रम मपश्यम्) यत्राभ्यागतसमूहः सत्क्रियमाणः आसीत्, पितरः देवताश्च अर्च्यमाना आसन्, विष्णुः

महेश्वरः पितामहश्चैते यत्र पूज्यमाना आसन्, आश्वलायनादिनिर्दिष्टः श्राद्धविधिर्यत्रोपदिश्यमान आसीत्, यज्ञविधायकानि शास्त्राणि च यत्रार्थद्वारा व्याख्यायमानान्यासन्, मन्वादिप्रणीतधर्मशास्त्राणि च विचार्य्यमाणान्यासन्, बहुविधपुस्तकानि च यत्र अधीयमानान्यासन्, समस्तवेदादिशास्त्रविषया यत्र सयुक्तिकम् विचार्य्यमाणा आसन्, पर्णशालाश्च यत्र निर्मातुं प्रवर्त्यमाना, प्राङ्गणानि च गोमयादिना संस्क्रियमाणान्यासन्, पर्णशाला मध्यभागाश्च यत्र शोधन्यादिभिः परिस्क्रियमाणा आसन्, यत्र ध्यानं विधीयमानमासीत्, मन्त्रश्च यत्र सिद्धिं नीयमान आसीत्, चित्तवृत्तिनिरोधात्मको योगश्च यत्र मुहुर्मुहुः क्रियमाण आसीत्, वनदेवताभ्यः पूजावस्तूनि प्रदीयमानान्यासन्, मुञ्जनिर्मिता मेखलाश्च यत्र निष्पाद्यमाना आसन्, वल्कलवस्त्राणि च यत्र जलेन निर्मलीक्रियमाणानि, हवनीयैधांसि च समुपादीयमानान्यासन्, कृष्णमृगचर्म यत्र विशुद्धीक्रियमाणमासीत्, गवेधुकेत्याख्याता धान्यविशेषा उपादीयमाना आसन्, कमलफलानि च यत्र सूर्यातपेन शुष्कतां प्राप्यमाणान्यासन्, रुद्राक्षमालाश्च यत्र ग्रन्थिबन्धविधिना विरच्यमाना आसन्, भस्मना रेखात्रयात्मकं तिलकञ्च भालस्थले धार्यमाण मासीत्, दूरादागत्य च यत्र भूमौ वेतसलगुडाः स्थाप्यमानाः कमण्डलवश्च जलेन भ्रियमाणा आसन् ।

टिप्पणी—पितामह=ब्रह्मा, श्राद्धकल्पम्—श्राद्धविधि, उपमृज्यमान=स्वच्छ किये जाते हुए, अजिर=आंजन "अजिर चत्वरोङ्गणम्" उपसंगृह्यमाण=एकत्रित की जाती हुई, गवेधुक=एक प्रकार का जंगली धान्य, पुष्करबीज=कमलफल, शोष्यमाण=सुखाये जाते हुए, ग्रथ्यमान=गूंथी जाती हुई । त्रिपुण्ड्र=तीन रेखाओं का तिलक ।

**अदृष्टपूर्वं कलिकालस्य, अपरिचितमनृतस्य, अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य, अब्जयोनिमिव त्रिभुवनवन्दितम्, असुरारिमिव प्रकटितवराहनरसिंहरूपम्, सांख्यमिव कपिलाधिष्ठितम्, मथुरोपवनमिव बलावलीढदर्पितधेनुकम्, उदयनमिवानन्दितवत्सकुलम्, किंपुरुषाधिराज्यमिव मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमानद्रुमम्, निदाघसमयावसानमिव आसन्नजलप्रपातम्, जलधरसमयमिव वनगहनमध्यसुखसुप्तहरिम्, हनूमन्तमिव शिलाशकलप्रहारसञ्चूर्णिताक्षास्थिसञ्चयम्, खाण्डवविनाशोद्यतार्जुनमिव प्रारब्धाग्निकार्यम्, सुरभिविलेपनधरमपि सततांविर्मूतधूमगन्धम्, मातङ्गकुलाध्यासितमपि पवित्रम्, उल्लसितधूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम्, परिपूर्णद्विजपतिमण्डलसनाथमपि सदासन्निहिततरुगहनान्धकारम्, अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोक माश्रममपश्यम् ।**

शब्दार्थ—अदृष्टपूर्वम् कलिकालस्य=कलियुग को जिसमें पहले (कभी) नहीं देखा गया था अर्थात् जो कलियुग के प्रवेश योग्य नहीं था अर्थात् वहाँ सर्वथा अधर्म का अभाव था। अपरिचितमनृतस्य—जो असत्य द्वारा अपरिचित था, अर्थात् जहाँ सदा सत्याचरण ही होता था, अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य=जिसमें कामदेव को पहले (कभी) नहीं सुना गया था, अर्थात् जहाँ काम जन्य विकार कभी उत्पन्न नहीं होते थे। अब्जयोनिम् इव त्रिभुवनवन्दितम्, जो प्रजापति ब्रह्मा (अब्जयोनि) के समान तीनों लोकों द्वारा पूजित था, असुरारिमिव प्रकटितवराह नरसिंहरूपम्—जो कि वराहावतार (वराह) और नरसिंहावतारों के स्वरूपों को प्रकट करने वाले विष्णु (असुर+अरि) के समान। शूकर (वराह) मनुष्य (नर) सिंह और मृगों (रूप) को प्रकट करने वाला था, सांख्यमिव कपिलाधिष्ठितम्—कपिल मुनि द्वारा प्रणीत (अधिष्ठित) सांख्यदर्शन के समान, जो कि कपिला (स्वर्णाकृतिमती) गायों द्वारा आश्रित (अधिष्ठित) था, मधुरोपवनमिव बलावलीढदर्पितधेनुकम्—शारीरिक शक्तिशाली (बलावलीढ) (अतएव) गर्वशाली (दर्पित) धेनुक नामक दैत्य से युक्त मथुरा नगरी के उपवन के समान, जो कि शारीरिक बलशालिनी और गर्वशालिनी धेनुओं (नवप्रसूता गायों) से युक्त था, उदयनमिवानन्दितवत्सकुलम्—वत्स नामक वंश को आनन्दित करने वाले राजा उदयन के समान, जो कि बछड़ों के झुण्ड को (वत्सकुल) आनन्दित करने वाला था। किं पुरुषाधिराज्यमिव मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमानद्रुमम्—मुनिजनों द्वारा (हाथों में) लिये गये कलशों से (जिसमें) द्रुम नामक राजा का अभिषेक किया गया था ऐसे किन्नरों (किं पुरुष) के अधिराज्य के समान, जहाँ मुनिजनों द्वारा गृहीत जलघटों से द्रुमों (वृक्षों) को सींचा जा रहा था, निदाघसमयावसानमिव आसन्नजलप्रपातम्—समीपवर्ती मेघजल वर्षण वाले (आसन्नजलप्रपात) ग्रीष्मकाल (निदाघसमय) के अन्त (अवसान) के समान, जो कि समीपवर्ती बावड़ी के जल (जल) और निर्झरों (प्रपात) वाला था, जलधरसमयमिव वनगहनमध्यसुखसुप्तहरिम्—जिसमें गहरे (गहन) (क्षीर सागर) के जल में (वन) भगवान् विष्णु (हरि) सुखपूर्वक शयन करते हैं ऐसे वर्षाकाल (जलधर समय) के समान, जहाँ वन के गहन अर्थात् गह्वर प्रदेशों के मध्य सुखपूर्वक सिंह सो रहे थे। हनूमन्तमिव शिलाशकलप्रहारसञ्चूर्णिताक्षास्थिसञ्चयम्—शिला खण्डों (शकल) के प्रहारों से (रावण पुत्र) अक्षयकुमार की हड्डियों के समूह को चूर-चूर कर देने वाले वायुपुत्र हनूमान् के समान, जो कि शिला खण्डों के प्रहारों से तोड़े गये (अर्थात् तेल प्राप्त करने के लिए पीसे गये) अक्षों अर्थात् बहेड़ा (विभीतक) के फलों की अस्थियों अर्थात् आन्तरिक भागों के समूह (सञ्चय) वाला था, खाण्डवविनाशोद्यतार्जुनमिव प्रारब्धाग्निकार्यम्=अग्निसन्तर्पण का उपक्रम कर चुकने वाले खाण्डव नामक वन को नष्ट करने के लिए तत्पर अर्जुन के समान जिसमें अग्नि कार्य अर्थात् हवन आदि आरम्भ किया गया था, सुरभिविलेपनधरमपि

सततार्विभूतधूमगन्धम्=सुगन्धित (सुरभि) चन्दनादि का लेप (अङ्गरागादि) को धारण करने वाला होकर भी जो निरन्तर धुएँ को गन्ध को प्रकट करने वाला था, सुगन्धित द्रव्य से धूमगन्ध प्रकट होने में विरोध है अतः इसके परिहारार्थ निम्नलिखित अर्थ ग्रहण किया जायेगा—गौ के (सुरभि) गोमय (विलेपन=लीपना) वाली अर्थात् गौ के गोमय से उपलिप्त पृथिवी (धरा) वाले भी इसमें निरन्तर हवनीयाग्नि के धूम की सुगन्धि प्रकट होती रहती थी। मातङ्गकुलाध्यासितमपि पवित्रम्—अन्त्यजसमूह से आश्रित होकर भी जो पवित्र था, इस विरोध के परिहार के लिए मातङ्गकुल का अर्थ गजसमूह लिया जायेगा। उल्लसितधूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम्=ऊपर उदित हुए सैकड़ों धूमकेतुओं (उत्पातग्रहों) वाला होकर भी जो पूर्णशान्त विघ्नों वाला था, उक्त विरोध परिहारार्थ—धूमकेतु का अर्थ—अग्नि समूह लिया जायेगा—अनेक प्रज्वलित अग्नियों वाला भी जो प्रशान्त उपद्रवों वाला था, परिपूर्णद्विजपतिमण्डलसनाथमपि सदा सन्निहिततरुगहनान्धकारम्=परिपूर्ण चन्द्रमण्डल (द्विजपतिमण्डल) से युक्त (सनाथ) होकर भी जो सर्वदा समीपवर्ती सघन वृक्षों से अन्धकार वाला था, चन्द्रमण्डल से युक्त होकर भी अन्धकारमय होने में विरोध का परिहार, परिपूर्ण द्विजपतिमण्डल का अर्थ—ज्ञानपूर्ण उत्तमब्राह्मणों का समूह, ग्रहण करके किया जायेगा। अतिरमणीयम्=अत्यन्त मनोहर, अपरं ब्रह्मलोकमिव=दूसरे ब्रह्मलोक के समान, आश्रमम् अपश्यम्=आश्रम को देखा।

**अनुवाद**—(वैशम्पायन कहता है कि मैंने एक ऐसे आश्रम को देखा) जिसमें कलियुग को पहले (कभी) नहीं देखा गया था अर्थात् वहाँ सर्वथा अश्रर्माभाव होने के कारण कलियुग का प्रवेश नहीं हो सकता था। जो असत्य द्वारा अपरिचित था अर्थात् जहाँ सदा सत्याचरण ही होता था। जिसमें कामदेव को कभी पहले नहीं सुना गया था अर्थात् जहाँ कामजन्य विकार कभी उत्पन्न ही नहीं होते थे। जो प्रजापति ब्रह्मा के समान तीनों लोकों द्वारा पूजित था। जो वराहावतार और नृसिंहावतार के स्वरूपों को प्रकट करने वाले विष्णु के समान शूकर मनुष्य और सिंह तथा मृगों को प्रकट करने वाला था। कपिल मुनि द्वारा प्रणीत सांख्यदर्शन के समान जो कपिला गायों द्वारा आश्रित था, शारीरिक शक्तिशाली अतएव गर्वित धेनुक नामक दैत्य से युक्त मथुरा नगरी के उपवन के समान, जो शारीरिक बलशालिनी और गर्वशालिनी नवप्रसूता गायों से युक्त था। वत्स नामक वंश को आनन्दित करने वाले राजा उदयन के समान जो बछड़ों के झुण्ड को आनन्दित करने वाला था। मुनिजनों द्वारा (हाथों में) लिये गये कलशों से जिसमें द्रुमनामक राजा का अभिषेक किया गया था ऐसे किन्नरों के अधिराज्य के समान, जहाँ मुनिजनों द्वारा गृहीत जलघटों से वृक्षों को सींचा जा रहा था। समीपवर्ती मेघजलवर्षण वाले ग्रीष्मकाल के अन्त के समान जो समीपवर्ती बावड़ी के जल और निर्झरों वाला था। जिसमें

गहरे क्षीरसागर के जल में भगवान् विष्णु सुखपूर्वक शयन करते हैं, ऐसे वर्षाकाल के समान जहाँ वन के गह्वर प्रदेशों के मध्य सुखपूर्वक सिंह सो रहे थे। शिला खण्डों के प्रहारों मे (रावण पुत्र) अक्षयकुमार की हड्डियों के समूह चूर-चूर कर देने वाले (वायु पुत्र) हनूमान् के समान जो शिला खण्डों के प्रहारों से तोड़े गये (अर्थात् तेल प्राप्त करने के लिए पीसे गये) वहेड़ा के फलों के आन्तरिक भागों के समूह वाला था, अग्नि सन्तर्पण का उपक्रम कर चुकने वाले खाण्डव नामक वन को नष्ट करने के लिए तत्पर अर्जुन के समान जिसमें हवनादि अग्नि कार्य आरम्भ किया गया था, सुगन्धित चन्दनादि के लेप को धारण करने वाला होकर भी जो निरन्तर धुएँ की गन्ध को प्रकट करने वाला था (यहाँ विरोध परिहारार्थ, गौ के गोमय से उपलिप्त पृथिवी वाले भी इसमें निरन्तर हवनीयाग्नि के धूम की सुगन्धि प्रकट होती रहती थी।) अन्त्यजसमूह से आश्रित होकर भी जो पवित्र था, (यहाँ विरोधपरिहारार्थ—मातङ्गकुल का अर्थ गजसमूह लिया जायेगा) ऊपर उदित हुए सैंकड़ों धूमकेतुओं वाला होकर भी जो पूर्णशान्त विघ्नों वाला था, (विरोधपरिहारार्थ—अग्निसमूह लिया जायेगा) परिपूर्ण चन्द्रमण्डल से युक्त होकर भी जो सर्वदा समीपवर्ती सघन वृक्षों से अन्धकार वाला था (विरोध परिहारार्थ—यहाँ परिपूर्ण द्विजपतिमण्डल का अर्थ—ज्ञानपूर्ण उत्तम ब्राह्मणों का मण्डल, लिया जायेगा) अत्यन्त मनोहर दूसरे ब्रह्मलोक के समान आश्रम को देखा।

**भावार्थ**—वह आश्रम इतना धार्मिक, सत्याचरण करने वाला तथा काम-विकारों से रहित था कि कलियुग ने उसे कभी देखा भी न था, असत्य और कामदेव वहाँ कभी सुने भी न गये थे। वह प्रजापति के समान लोकत्रय से पूजित था, भगवान् विष्णु ने जिस प्रकार नृसिंह और वाराह रूप प्रकट किये थे उसी प्रकार उस आश्रम में भी मनुष्य, सिंह, शूकर और मृग पाये जाते थे। सांख्यदर्शन प्रणेता कपिल मुनि की भाँति ही वहाँ अनेक कपिला गायें थीं, जैसे मथुरा के उपवन में बलवान और घमण्डी धेनुक दैत्य रहता था उसी प्रकार वहाँ अनेक बलवती और मस्त नवप्रसूता गायें थीं। राजा उदयन जिस प्रकार अपने वत्सकुल को सुखी बनाने वाला था उसी प्रकार वहाँ बछड़ों के झुण्ड सुख से विचरते थे। किन्नरों के राज्य में जिस प्रकार मुनिजनों ने जलकलशों से द्रुम नामक राजा का अभिषेक किया था उसी प्रकार वहाँ मुनिजन जलघटों से वृक्षों को सींचा करते थे। ग्रीष्मकाल के अन्त में जिस प्रकार जलप्रपात (वर्षा) होती है उसी प्रकार वहाँ आश्रम के पास बावड़ियों का जल और झरने थे। वर्षाकाल में भगवान् विष्णु सागर के जल के मध्य सुख-पूर्वक शयन करते हैं इसी प्रकार आश्रम में घने वन के मध्य सिंह सुखपूर्वक सोते थे। पत्थरों के टुकड़ों के प्रहारों से रावणपुत्र अक्षयकुमार की हड्डियों को तोड़ देने वाले हनुमान के समान ही वहाँ तेल निकालने के लिए बहेड़ों के फलों के

आन्तरिक भाग पत्थरों के टुकड़ों से तोड़ दिये जाते थे। खाण्डव वन को जलाने में अग्नि को सहायता देने वाले अर्जुन के समान वहाँ आश्रम में मुनिजन हवनादि अग्नि कार्य कर रहे थे। गौ के गोबर से लिप्त इस आश्रम में निरन्तर होम के धुओं से सुगन्धि निकला करती थी, मतवाले हाथियों के रहने पर भी वह पवित्र था, अनेक ऊपर चमकते हुए धूमकेतुओं (पुच्छल तारे और अग्नि समूह) के होने पर भी वहाँ सभी उपद्रव शान्त थे तथा वहाँ (चन्द्रमण्डल और उत्तमब्राह्मण समूह) के होते हुए भी वहाँ सदा समीपवर्ती सघन वृक्षों के झुरमुटों में अन्धकार बना रहता था।

**संस्कृत व्याख्या**—अदृष्टपूर्वं कलिकालस्य=कलिकालस्य कलियुगस्य अदृष्टम् अनवलोकितं पूर्वं यस्मिन् स तं तादृशम् (आश्रमम्) अपरिचितमनृतस्य=अनृतस्य असत्यस्य अपरिचितम् नासीत् तत्र परिचयः सदैव सत्याचारात्। अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य= अनङ्गस्य कामस्य अश्रुतपूर्वम् अनाकर्णितपूर्वं यत्र, कामजनितविकारानुपलब्धेः। अब्जयोनिमिव त्रिभुवनवन्दितम्=प्रजापतिमिव लोकत्रयपूजितम्, असामान्यधर्म-स्थानत्वात्। असुरारिमिव=असुराणाम् अरिः शत्रुः विष्णुः तमिव, प्रकटितवराह-नरसिंहरूपम्—प्रकटिते प्रकाशिते वराहनरसिंहयोः वराहावतारनृसिंहावतारयोः रूपे आकृती येन स तम्, पक्षे—प्रकटितानि प्रकाशमानीतानि वराहाः शूकराः नराः मनुष्याः सिंहाः रूपाणि मृगाः च येन स तं तादृशम्। सांख्यमिव=साख्यं कपिलमुनि-प्रणीतं दर्शनम् तदिव, कपिलाधिष्ठितम्—कपिलाख्येन मुनिना अधिष्ठितम् आश्रितम् तत्प्रणीतत्वात्, पक्षे—कपिलाभिः स्वर्णवर्णाभिः गोभिः अधिष्ठितम्—युक्तम्। मथुरोपवनमिव= मथुरेत्याख्यया प्रसिद्धायाः नगर्याः उपवनम् अरण्यमिव, वलावलीढ-दर्पितधेनुकम्=वलावलीढः शक्तिसमन्वितः दर्पितः गर्वयुक्तः च धेनुकः एतदाख्यः दैत्यः यस्मिन् स तम्, पक्षे—वलावलीढाः शारीरिक शक्तिसमन्विताः अतएव दर्पिताः संजातगर्वाः धेनुका धेनवः नवप्रसवा गावः यस्मिन् त तादृशम्। उदयनमिवानन्दित-वत्सकुलम्=उदयनः एतत्संज्ञकः पाण्डववंशोद्भवः कौशाम्बीनृपः तमिव, आनन्दित-वत्सकुलम्=आनन्दितम्-स्वसदाचरणप्रजापालनादिकार्येण सन्तोषितं वत्सकुलम् वत्साख्यप्रान्तीयप्रजाजनम् येन तम्, पक्षे—आनन्दितम् तृणसलिलदानादिना परितो-षितम् वत्सकुलम् गोवत्ससमूहः यत्र तं तादृशम्। किम्पुरुषाधिराज्यमिव=किम्पुरुषाणां किन्नराणाम् अधिराज्यम् प्रभुतासम्पन्नराज्यम् इव, मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमान-द्रुमम्=मुनिजनैः गृहीताः स्वहस्तेषुअवधृता ये कलशाः सलिलघटाः तैः अभिषिच्यमानः अभिषेकं प्राप्यमाणः द्रुमः द्रुमसंज्ञकः नृपः यत्र तत्, पक्षे—मुनिजनगृहीतकलशैः अभिषिच्यमानाः सेचनं प्राप्यमाणाः द्रुमाः वृक्षा यत्र तं तादृशम्। निदाघसमयाव-सानमिव—निदाघसमयस्य ग्रीष्मकालस्य अवसानम् समाप्तिः इव, आसन्नजलप्रपातम् =आसन्नः समीपवर्ती जलप्रपातः मेघजलवर्षणम् यस्य तत्, पक्षे—आसन्नः निकटस्थः

जलप्रपातः निर्झरः यस्य तत् अथवा आसन्नो जलं वापीजलं प्रपातः निर्झरः च यस्य तत् तादृशम् । जलधरसमयमिव—जलधरसमयः वर्षाकालस्तमिव, वनगहनमध्यसुखसुप्तहरिम्=वनस्य क्षीरसागरजलस्य गहने गह्वरवद्गम्भीरे मध्ये अन्तः सुखेनससुखं सुप्तः निद्रांगतः हरिः विष्णुः यस्मिन् तम्, पक्षे—वने कानने यद् गहनं गह्वरं तस्य मध्ये तदन्तरे सुखेन अशङ्कितमनसा सुप्ताः निद्रिताः हरयः सिंहाः यत्र तं तादृशम् । हनूमन्तमिव पवनपुत्रं हनूमन्तमिव—शिलाशकलप्रहारसञ्चूर्णिताक्षास्थिसञ्चयम्—शिलाशकलानां प्रस्तरखण्डानां प्रहारेण निपातनेन सञ्चूर्णितः भञ्जितः अक्षस्य अक्षसंज्ञकस्य रावणपुत्रस्य अस्थिसञ्चयः अस्थिसमूहः येन तम्, पक्षे—शिलाशकलनिपातेन पाषाणखण्डाघातेन सञ्चूर्णितः तैलावाप्तये पिष्टः अक्षाणां विभीतकफलानाम् (वहेड़ा इति लोके) अस्थिसञ्चयः आन्तरिकभागः वीजसमूहो वा यस्मिन् तं तादृशम् । खाण्डवविनाशोद्यतार्जुनमिव—खाण्डवस्य एतदाख्यस्य वनस्य विनाशे भस्मीकरणे उद्यतः उद्योगवान् यः अर्जुनः कौन्तेयः तमिव-प्रारब्धाग्निकार्यम्=प्रारब्धम्-उपद्रवप्रशामनेनोपक्रान्तम् अग्निकार्यम् अग्निसन्तर्पणं येन स तम्, पक्षे—प्रारब्धम् समुपक्रान्तम् अग्निकार्यम् हवनं यत्र तं तादृशम् । सुरभिविलेपनधरमपि सतताविर्भूतधूमगन्धम्=सुरभिः घ्राणतर्पणम् विलेपनम् चन्दनादिसुगन्धितद्रव्यनिर्मिताङ्गरागः तं धरति इति तम् अपि, सततम् निरन्तरम् आविर्भूतः प्रकटितः धूमगन्धः अग्निधूमसौरभ यस्मात् तम् तादृशम् (अत्र विरोधपरिहारार्थम्) सुरभेः गोः विलेपनम्-विलिप्यतेऽनेनेति विलेपनम् गोमयम्, धरतीतिधरा पृथिवी, गोमयस्य त्रिलेपनं यस्यां सा एवम्भूता धरा यत्र तं तादृशामित्यर्थो ग्राह्यः । मातङ्गकुलाध्यासितमपि पवित्रम्-मातङ्गकुलेन अन्त्यजसमूहेन अध्यासितम् आश्रितम् अपि, पवित्रम् पावनम् (अत्रविरोधस्तु) मातङ्गकुलेन गजसमूहेनेत्यर्थेन परिहार्यः । उल्लसितधूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम्—उल्लसितम् ऊर्ध्वभागे समुत्थितम् धूमकेतूनाम् उत्पातग्रहाणाम् शतम् यत्र तादृशमपि प्रशान्तोपद्रवम्-प्रशान्तं पूर्णतः शान्तं-उपद्रवः विघ्नं यत्र तादृशम् (विरोधस्तु) धूमकेतूनाम् अग्नीनां शतम् यत्रेत्यर्थकरणेन परिहार्यः । परिपूर्णद्विजपतिमण्डलसनाथमपि सदा सन्निहिततरुगहनान्धकारम्=परिपूर्णेन सकलकलायुक्तेन द्विजपतिमण्डलेन चन्द्रमण्डलेन सनाथं युक्तम् अपि सदा सर्वदा सन्निहितः निकटस्थः तरुगहनेषु वृक्षागह्वरेषु अन्धकारः तमः यत्र तं तादृशम्, अत्र विरोधस्तु, द्विजपतिमण्डलेन उत्तमब्राह्मणसमूहेनेत्यर्थकरणेन परिहार्यः । अतिरमणीयम् अति मनोहरम् अपरम् द्वितीयम् ब्रह्मलोकम् देवलोकम् इव आश्रमम् तपोवनम् अपश्यम् अद्राक्षम् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदहमेक मेतादृशमाश्रममपश्यम् यत्र कलियुगस्य न कदापि पूर्वं प्रवेशो दृष्टः अर्थात् तत्राधर्माभावान्न कलिप्रवेशसम्भावनासीत, सत्याचरणाच्च स आश्रमः असत्येनाप्यपरिचित आसीत्, न तत्र कदापि पूर्वं

कामदेवोऽपि श्रुतिपथमागतः कामजन्यविकारोत्पत्त्यसम्भवात् । प्रजापतिरिव स लोकत्रयपूजित आसीत्, अथ च स प्रकाशित वराहनृसिंहावतारस्वरूपो विष्णुरिव प्रकटित शूकरनरमृगेन्द्रमृग आसोत्, कपिलमुन्यधिष्ठितं सांख्यदर्शनमिव स आश्रमः कपिलाख्याभिः स्वर्णवर्णाभिः गोभिराश्रित आसीत्, शारीरिकशक्तिदर्पान्वितधेनुकाख्यदैत्ययुक्तं मथुरायाः प्रसिद्धारण्यमिव स शक्तिमतीभिः सदर्पाभिः नवप्रसवाभिः गोभिरधिष्ठित आसीत् । स्वसदाचारसन्तोपितवत्सप्रान्तीयप्रजाजनः उदयनाभिधानो नृपतिरिव स आश्रमः तृणसलिलदानादिना परितोषितगोवत्ससमूह आसीत्, मुनिजनहस्तावधृतसलिलघटैरभिषिच्यमानद्रुमाख्यनृपं किन्नराधिराज्यमिव स आश्रमः मुनिजनहस्तावधृतकलशैः सिक्तवृक्षः आसीत्, समीपवर्तिमेघजलप्रपातं ग्रीष्मकालवसानमिव स निकटस्थवापीजलनिर्झर आसीत्, क्षीरसागरगम्भीरजलमध्यसुखशयितविष्णुः वर्षाकाल इव स आश्रमः काननगह्वरमध्यसुखनिद्रितमृगेन्द्र आसीत्, प्रस्तरखण्डनिपातचूर्णिताक्षयकुमारास्थिसञ्चयो हनुमानिव स पाषाणखण्डाघातेन पिष्टविभीतकफलान्तरिकभाग आसीत्, उपद्रवप्रशमनेनोपक्रान्ताग्निसन्तर्पणः खाण्डववनभस्मीकरणोद्यतोऽर्जुन इव स समुपक्रान्ताग्निहवनविधिरासीत्, घ्राणतर्पणात्मकचन्दनादिनिर्मिताङ्गरागधरोऽपि स आश्रमः सततप्रकटिताग्निधूमगन्धवानासीत्, अत्र विरोधस्तु-सुरभेः गोः विलेपनं गोमयं यत्र सा तथाभूताधरा पृथिवी यस्मिन् स इत्यर्थकरणेन परिहार्यः । अन्त्यजागणाश्रितोऽपि स पवित्र आसीत्, अत्रविरोधस्तु-मातङ्गकुलेनेत्यस्य गजसमूहेनेत्यर्थ करणेन परिहार्यः । ऊर्ध्वाभिमुखानेकोत्पातग्रहोऽपि स प्रशमितविघ्न आसीत्, अत्र विरोधस्तु-धूमकेतुशब्दस्य अग्निः इत्यर्थेन परिहार्यः । परिपूर्णचन्द्रमण्डलसमन्वितोऽपि स सर्वदा निकटस्थवृक्षगह्वरान्धकारवानासीत, अत्रविरोधस्तु-परिपूर्णद्विजपति मण्डलशब्दस्य ज्ञानपूर्णोत्तमब्राह्मणसमूह इत्यर्थेन परिहार्यः । आश्रमश्चायमतिमनोहरः अपरः सुरलोक इवासीत् ।

**टिप्पणी—प्रकटितवराहनरसिंहरूपम्**—वराह और नृसिंहावतार के स्वरूप को धारण करने वाले विष्णु, २—आश्रम में शूकर, नर, सिंह तथा रूप अर्थात् मृग थे, रूपे मृगेऽपि विज्ञेयम् कोशः । **कपिलाधिष्ठितम्**—सांख्यदर्शनप्रणेता प्रसिद्ध कपिल मुनि, २—स्वर्णाकृति गायें । **वलावलीढेति**—शारीरिक शक्ति सम्पन्न अतएव सगर्व धेनुक नामक दैत्य, २—वलवती और नवप्रसूता गायों से युक्त, धेनु शब्द से ही वैकल्पिक कप् प्रत्यय होकर धेनुक शब्द बनता है । मथुरा में धेनुकासुर को श्रीकृष्ण ने मारा था । **आनन्दितवत्सकुलम्**—वत्सप्रान्तीय जनों को आनन्दित करने वाले कौशाम्बीनरेश उदयन के समान, २—आश्रम भी तृणजलादि से गोवत्सों को सुखी रखता था । कथा सरित्सागर में वत्सराज उदयन की कथा विस्तारपूर्वक दी गई है । **किम्पुरुषेति**—किम्पुरुष=किन्नर, द्रुम=किन्नरों का राजा जिसका मुनिगृहीतघटों द्वारा अभिषेक किया गया था, द्रुमः—वृक्ष=मुनिजन घड़ों से जल देकर आश्रमवृक्षों

को सींचते थे । **जलप्रपातम्**=मेघों से जलवर्षा, २--बावड़ियों का जल तथा झरना, **वनगहनेति**—गहरे समुद्र जल में, २—सघन वन में, हरिः=विष्णु, २—सिंह, "वनं प्रस्रवणेगेहे प्रवासेऽम्भसि कानने गहनं गह्वरे दुःखे वने" पौराणिक प्रसिद्धि के अनुसार भगवान् आषाढ में सोते हैं, भाद्रपद में करवट लेते और कार्तिक में उठते हैं आषाढ श्रावण वर्षा के महीने होते हैं । **अक्षास्थिसञ्चयमिति**—अक्ष या अक्षय कुमार नामक रावण का पुत्र था जिसे हनूमान् ने पत्थरों के प्रहार से मारा था, २—बहेड़ा नामक फल का भीतरी भाग जो पत्थरों से तोड़ा जाता है "अक्षोज्ञानात्म-शकटव्यवहारेषु पाशके, रुद्राक्षे रावणौ सर्पविभीतकतरावपि" रामायण में अक्षवध की कथा है । **अग्निकार्यम्**—अग्नि देवों की सन्तुष्टि, २—हवन. **सुरभिविलेपनेति**—सुगन्धित अनुलेप २--गौ का गोबर, 'सुरभि घ्राणतर्पणः" सुरभि गवि च 'स्त्रियाम्' इत्यमरः । **धरम्**=धारण करने वाला २—तथाभूताधरा पृथिवी यत्र तम्—ऐसी पृथिवी वाला । **विलेपनम्**—विलिप्यतेऽनेनेति—अङ्गराग, २—गोबर । यहाँ द्वितीय अर्थ से विरोध परिहार होता है । **मातङ्गकुलेति**--अन्त्यजों का समूह, २ गजों का समूह. द्वितीयार्थ ही विरोधपरिहारार्थ अभीष्ट है । **धूमकेतु**=उत्पातग्रह, २—अग्नि 'धूमकेतुः स्मृतो वह्नावुत्पातग्रहभेदयोः" द्वितीयार्थ ही अभीष्ट है । **परिपूर्णद्विजपतिमण्डल**=परिपूर्णचन्द्रमण्डल, २—ज्ञानपूर्ण उत्तमब्राह्मण समूह, विरोध-परिहारार्थ द्वितीयार्थ ही अभीष्ट है । द्विजराजः शशधरः, दन्तविद्राण्डजाः द्विजाः इत्यमरः । अब्जयोनिमिव से लेकर खाण्डवविनाशोद्यतार्जुनमिव तक सर्वत्र पूर्णोपमा-लंकार है, सुरभिविलेपनधरमपि से लेकर अन्त तक विरोधाभासालंकार है । ●

**यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु, कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु, मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु, स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न वनितासु, पक्षपातः कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु, भ्रान्तिरनलप्रदक्षिणेषु न शास्त्रेषु, वसुसङ्-कीर्तनं दिव्यकथासु न तृष्णासु, गणना रुद्राक्षवलयेषु न शरीरेषु, मुनि-बालनाशः क्रतुदीक्षया न मृत्युना, रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन ।**

**यत्र च महाभारते शकुनिवधः पुराणे वायुप्रलपितम्, वयः परिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्त्वम्, एणकानां गीतश्रवणव्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः ।**

**शब्दार्थ—यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु**=और जहाँ अर्थात् जिस आश्रम में मलिनता (केवल) हवन की गई अग्नियों के धुयें में (थी) **न चरितेषु**=(लोगों के अर्थात् आश्रमवासियों के) आचरणों में नहीं (क्योंकि वहाँ के निवासी सर्वत्र आत्म-भाव् रखने वाले, स्वच्छ अन्तःकरण वाले एवं हिंसा मात्सर्य आदि पापाचार से सर्वथा दूर थे) **मुखरागः शुकेषु न कोपेषु**=मुख की लालिमा शुकों में (थी) क्रोध में नहीं क्योंकि किसी में क्रोध उत्पन्न ही नहीं होता था—(यहाँ निमित्त सप्तमी मानकर क्रोधनिमित्तक मुखरक्तिमा न थी, यह अर्थ उचित होगा) **तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु**=तीखापन जो कि चर्म आदि का भी छेदन कर सके, केवल कुशों के ही अग्रभाग में था, कुशों की नोंक ही लोगों के पैरों में छिदते थे, स्वभावों में अर्थात् आश्रमवासीजनों की प्रकृति में ऐसी तीक्ष्णता अर्थात् क्रूरता न थी, क्योंकि वे सभी शुद्ध अन्तःकरण वाले थे। **चञ्चलता कदली दलेषु न मनःसु**=चञ्चलता केवल केले के पत्तों में ही थी, थोड़ी-सी भी हवा लगने से केले के पत्ते ही उधर-उधर हिलने लगते थे परन्तु वहाँ के लोगों के चित्तों में चञ्चलता न थी, आश्रम में कोई कभी भी उपद्रव आदि नहीं होता था जिससे कि मन में उद्वेग या चञ्चलता उत्पन्न हो सके, सभी समरस और शान्त रहते थे। **चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु**=चक्षूराग अर्थात् नेत्रों में प्रेमाकर्षणवश लालिमा केवल कोइल नामक पक्षियो में ही थी, न परकलत्रेपु=अन्य की स्त्रियों पर किसी को चक्षूराग अर्थात् नेत्रों की आसक्ति न थी, क्योंकि आश्रमवासियों में किसी की भी परस्त्री पर आसक्ति न थी, **कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु**=कण्ठग्रह अर्थात् गला पकड़ना, गरदन पकड़ कर उठाना केवल कमण्डलुओं में ही था, तपस्वी जन कमण्डलु की गरदन पकड़कर ही उसे ऊपर उठाते थे, पर रतिविलास में अथवा आलिङ्गनादि में कण्ठग्रह नहीं था। ब्रह्मचारी तपस्वी जनों में आलिङ्गनादि की सम्भावना ही न थी। **मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु**=मेखलाबन्ध अर्थात् कमर में मौञ्जी मेखला बाँधना केवल उपनयनादि कर्मों में ही था अर्थात् व्रतधारी ब्रह्मचारी ही उपनयन के समय जो मूँज घास की बनी मेखला बाँधते थे वही वे ब्रह्मचर्या आश्रम तक बाँधते थे किन्तु आश्रमवासियों में पारस्परिक ईर्ष्या क्रोधादि के वश (लड़ने के लिये) कोई कमर नहीं बाँधता था, यद्यपि वहाँ शास्त्र चर्चा में वाद-विवाद चलते थे तथापि उसमें ईर्ष्या और क्रोध आदि नहीं था। **स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न वनितासु**=स्तनों अर्थात् थनों का स्पर्श, हवन के लिए दुही जाने वाली गायों में ही था, अर्थात् हवन के लिए जब होम की गायों से दूध दुहा जाता था तभी उनके थनों का स्पर्श किया जाता था, स्त्रियों के स्तनों का स्पर्श नहीं था, क्योंकि आश्रमवासी तपस्वी ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता थे अतः स्त्रियों के कुचस्पर्श की वहाँ सम्भावना ही न थी। **पक्षपातः कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु**=पक्षपात अर्थात् पंखों का झड़ना या गिरना केवल कृकवाकु अर्थात्

मुर्गों में ही था मुर्गों के ही पंख झड़ते थे, विद्या सम्बन्धी वाद-विवादों में कहीं कोई किसी का पक्षपात नहीं करता था ! क्योंकि आश्रम में किसी के प्रति पक्षपात करना अनुचित व्यवहार माना जाता था। **भ्रान्तिः अनलप्रदक्षिणेषु न शास्त्रेषु**=अनल-प्रदक्षिणेषु अर्थात् अग्नि की परिक्रमाओं में ही भ्रान्ति अर्थात् उसके चारों ओर घूमना होता था, न शास्त्रेषु=शास्त्रों के विषय में किसी को कोई भ्रान्ति अर्थात् भ्रम या सन्देह नहीं था, सभी को शास्त्रों का यथार्थ ज्ञान था। **वसु संकीर्तनं दिव्यकथासु न तृष्णासु**=दिव्यकथासु—देव सम्बन्धी कथा प्रवचनों में ही, वसु-कीर्तनम्=अष्ट वसु नामक देवों की अच्छी चर्चा की जाती थी, किन्तु तृष्णासु अर्थात् धन सम्बन्धी लिप्सा या लोभनिमित्तक वसु अर्थात् धन की चर्चा नहीं थी, क्योंकि तत्रत्य जनों में धनलिप्सा का सर्वथा अभाव ही था। **गणना रुद्राक्षवलयेषु न शरीरेषु**=गणना अर्थात् गिनती केवल रुद्राक्ष की मालाओं में ही की जाती थी, अर्थात् जप करते समय रुद्राक्ष मालाओं के दानों की ही गिनती होती थी, न शरीरेषु=किन्तु शरीरों की कोई गणना अर्थात् अपेक्षा या आस्था न थी, विरक्त होने के कारण उन्हें देहाभियान न था अतः शरीर के प्रति वे निःस्पृह थे। **मुनि-बाल नाशः क्रतुदक्षिया न मृत्युना**=यज्ञारम्भ के द्वारा ही मुनियों के केशों का कर्तन होता था अर्थात् यज्ञारम्भ के पूर्व ही (यज्ञ में दीक्षित होने की योग्यता प्राप्त करने के लिए यज्ञ के प्रारम्भ होने के पूर्व ही) मुनिजन अपने बाल कटाते थे किन्तु मृत्यु के द्वारा मुनियों के बाल अर्थात् बालकों का नाश नहीं होता था। तपस्या के प्रभाव से उनके बालकों की असामयिक मृत्यु न होती थी। **रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन**=रामायणेन—अर्थात् रामायण में वर्णित राम के गुणों के आकर्षण से ही **रामानुराग**—अर्थात् श्रीराम के प्रति लोगों में अनुराग उत्पन्न होता था किन्तु **न यौवनेन रामानुरागः**=अर्थात् युवावस्थोचित मदविकार के प्रकट होने से "रामानुरागः" अर्थात् कामिनी युवती में प्रेमाशक्ति न थी, तात्पर्य यह कि उन आश्रम-वासियों में तपस्या के प्रभाव से यौवनावस्था में भी कामवासना की उत्पत्ति सम्भव न थी। "**मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानने**" वहाँ आश्रमवासियों में "मुख-भङ्गविकार" अर्थात् मुख पर झुर्री, दाग पड़ना या त्वचा पर किसी अन्य प्रकार की फुंसी आदि होना केवल 'जरया' अर्थात् वृद्धावस्था के कारण से ही था अर्थात् वृद्धावस्था में ही उनके मुख पर कुछ झुर्री, खाल सिकुड़ जाना, अथवा दाग धब्बे पड़ना होता है किन्तु "न धनाभिमाने" अर्थात् धन के घमण्ड से किसी की, किसी दूसरे पर भ्रकुटी टेढ़ी नहीं होती थी, धनादि के गर्व से कोई किसी पर भौंहे नहीं चढ़ाता था, क्योंकि उनमें धन और घमण्ड दोनों का ही सर्वथा अभाव था जब धन ही नहीं था तो धन जन्य गर्व ही कहाँ से होता। यहाँ "**यत्र च मलिनता** ………………**यहाँ**

से लेकर **जरया न धनाभिमाने**" यहाँ तक सभी वाक्यों में प्रश्न के अभाव में भी 'न' के द्वारा अन्य का निराकरण सिद्ध हो जाने से श्लेषसंकीर्ण शाब्दी परिसंख्यालंकार है। जैसा कि साहित्य दर्पणकार का कथन है :—"प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद् वस्तुनो भवेत्। तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तथा परिसंख्या…………….।"

**यत्र चेति—यत्र च महाभारते शकुनिवधः**=(शकुनि=१—दुर्योधन का मामा २—पक्षी) और जहाँ उस आश्रम में महाभारत पुराण में ही शकुनि अर्थात् दुर्योधन के मातुल का सहदेव द्वारा मारा जाना सुना जाता था किन्तु आश्रम में किसी भी स्थान पर पक्षियों का वध नहीं देखा जाता था क्योंकि आश्रमवासियों में हिंसा का सर्वथा अभाव था। **पुराणे वायुप्रलपितम्**=(वायु=१—वायु देवता, प्रलपित=उच्चस्तरीय कथन या भाषण, २—वायुविकार—वात रोग से उत्पन्न व्याधि, प्रलपित=ऊट पटांग बकना, व्यर्थ या निरर्थक बकवाद करना—वात व्याधिग्रस्त रोगी व्यर्थ प्रलाप करते ही हैं। अर्थात् वहाँ वायु देवता का उपदेश या भाषण केवल पुराण में ही सुना जाता था, आश्रम के किसी भी स्थान पर कहीं भी कोई वातजव्याधि से उत्पन्न उन्माद आदि के कारण व्यर्थ प्रलाप नहीं करता था क्योंकि आश्रमवासियों के संयमित जीवन के कारण वहाँ वात व्याधि किसी को भी न होती थी। **वयः परिणामे द्विजपतनम्**=(वयः परिणाम=आयु का परिणाम-परिपाक अर्थात् वृद्धावस्था, द्विज=१—ब्राह्मण २—दाँत। पतन=१—गिरना, २—भ्रष्ट होना, अपने शुद्ध आचरण से गिर जाना पतित हो जाना। अर्थात् वहाँ आश्रम में वृद्धावस्था में ही केवल दाँत गिरते थे न कि वहाँ महापातक आदि में कभी ब्राह्मणों का अधःपतन होता था—ब्राह्मण पाप कर्मों में लिप्त होकर कभी पतित नहीं होते थे, क्योंकि तत्कालीन आश्रम सभी प्रकार के भ्रष्ट आचरणों से सदा दूर रहते थे अतः वहाँ किसी के अधःपतन की सम्भावना ही नहीं थी। **उपवन-चन्दनेषु जाड्यम्**=(जाड्यम्=१—शीतलता २—जड़ता, बुद्धिहीनता) अर्थात् वहाँ बाग-बगीचों के चन्दन के वृक्षों में ही केवल शीतलता थी न कि वहाँ के निवासियों में किसी भी प्रकार की जड़ता, मूर्खता अथवा बुद्धिहीनता थी, क्योंकि वहाँ सभी आश्रमवासी बुद्धिमान् एवं सभी गुणवान थे। **अग्नीनां भूतिमत्त्वम्** (भूति=१—भस्म, राख, २—भूति=ऐश्वर्य धन सम्पत्ति) अर्थात् वहाँ अग्नियों में ही भस्म (जल जाने पर राख) पाई जाती थी। आश्रमवासियों में कहीं भी भूतिमत्ता—ऐश्वर्यशालिता नहीं थी क्योंकि आश्रमवासी सभी पूर्णविरक्त थे, धन सम्पत्ति के विषय में उनकी कोई आसक्ति नहीं थी। **एणकानां गीतश्रवणव्यसनम्** (एणक=मृग, गीतश्रवणव्यसन=गीत सुनने में अभिरुचि या अभिलाषा) अर्थात् वहाँ आश्रम में केवल मृगों को ही गीत सुनने में अभिरुचि थी, अन्य किसी आश्रमवासी में कहीं भी संगीत सुनने का

व्यसन नहीं था, तत्रत्य ऋषिजन सभी प्रकार के दुर्व्यसनों से रहित थे। **शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः**—शिखण्डी=मयूर, पक्षपातः=१—पंखों का गिरना २—अभिलाषा या रुचि। अर्थात् वहाँ केवल मयूरों में ही नृत्य के प्रति अनुराग था और नाचते समय उनके पंख गिर जाते थे, आश्रमवासियों में किसी का भी कहीं नृत्य में अनुराग न था, क्योंकि ऋषिजन सभी लौकिक व्यसनों से सर्वथा दूर थे। **भुजङ्गमानां भोगः** (भुजङ्गम=सर्प, भोगः १—सर्प का शरीर या फण, २—माल्य गन्ध चन्दन कामिनी आदि के उपभोग से मिलने वाला सुख। वहाँ केवल सर्पों का ही भोग अर्थात् शरीर या उनके फण थे, आश्रमवासियों में कोई भोग-सांसारिक विषयों के उपभोग से मिलने वाला सुख न था क्योंकि आश्रमवासी भोगी न थे, वे तो पूर्ण विरक्त योगी थे, ऐहिक विषयों से उनका कोई लगाव न था। **कपीनां श्रीफलाभिलाषः** =कपीनाम्=वानरों की, श्रीफलाभिलाषः=१—विल्व फलों की इच्छा, २—लक्ष्मी से प्राप्य काम्य फलों की प्राप्ति की उत्कट इच्छा। अर्थात् वहाँ वानरों को ही विल्वफलों के पाने की इच्छा थी, वहाँ के ऋषिजनों में लक्ष्मी से प्राप्य ऐहिक ऐश्वर्य आदि की उत्कट इच्छा न थी, क्योंकि ऋषिजन मोक्षाभिलाषी थे उन्हें ऐहिक सुखों से मोह न था। **मूलाना मधोगतिः**=मूलानाम्=वृक्षादि के जड़ों की, अधोगतिः= १—भूमि से नीचे की ओर जाना, २—पतन होना या नरक में जाना। अर्थात् आश्रम के लता वृक्षादि की जड़ें ही केवल भूमि में नीचे-नीचे जाती थीं, ऋषियों में अधःपतन या नरकादि में जाना नहीं था, क्योंकि तत्रत्य ऋषिजन तपस्वी होने के कारण सर्वथा पापरहित थे, निष्पाप होने के कारण उनके अधःपतन या नरकादिगमन की सम्भावना ही नहीं थी।

**अनुवाद**—और जहाँ मलिनता या कालिमा केवल यज्ञों के धुओं में ही (दिखाई देती) थी, मुनियों के आचरणों में नहीं। मुखों पर लालिमा केवल तोतों की चोंच में ही थी (किसी के) क्रोध में न थी। तीक्ष्णता अर्थात् तीखापन केवल कुशों के अग्रभागों अर्थात् नोंक में ही था, (किसी के) स्वभाव में नहीं। चञ्चलता (सदा हिलते रहना) केवल केले के पत्तों में ही था (किसी के) चित्त में नहीं। चक्षूरागः अर्थात् लालिमा केवल कोयलों में थी किन्तु चक्षूराग अर्थात् देखने की अभिलाषा या वासनायुक्त दृष्टि दूसरों की स्त्रियों पर न थी। कण्ठग्रह अर्थात् गरदन पकड़ना केवल कमण्डलुओं के उठाने पर ही होता था, रतिक्रीड़ाओं में कण्ठग्रह अर्थात् कण्ठाश्लेषपूर्वक आलिङ्गन न था। मेखलाबन्ध अर्थात् मौञ्जीमेखला का बाँधना केवल उपनयनादि व्रतों के समय ब्रह्मचारियों में ही था किन्तु मेखलाबन्ध अर्थात् सांकल में बाँधना ईर्ष्याजन्य वाद-विवाद या लड़ाई झगड़ों में न था। स्तन-स्पर्श अर्थात् थनों का छूना केवल होम की गायों के दुहने के समय ही होता था किन्तु

स्त्रियों का स्तन-स्पर्श (कुचमर्दन) न होता था। पक्षपात अर्थात् पंखों का गिरना या झड़ना केवल कुक्कुट या मुर्गों में ही था किन्तु विद्यासम्बन्धी वाद-विवादों में कोई किसी का पक्षपात न करता था। भ्रान्ति अर्थात् चारों ओर घूमना केवल अग्नि की परिक्रमाओं में ही होता था, शास्त्रीय विषयों में किसी को कोई भ्रान्ति भ्रम या सन्देह न था। वसु संकीर्तनम् अर्थात् अष्ट वसु नामक देवताओं का गुणगान या वर्णन केवल देवताओं की कहानियों में ही होता था किन्तु तृष्णावश धन (वसु) की चर्चा नहीं होती थी। गणना अर्थात् बार-बार जप करते समय गिनना केवल रुद्राक्ष मालाओं में ही होती थी, अपने-अपने शरीरों के विषय में यह गणना न थी। मुनिबालनाश अर्थात् मुनियों के बालों (केशों) का कटाना केवल यज्ञ में दीक्षा लेने के अवसर पर होता था किन्तु मृत्यु के द्वारा मुनि बालकों का नाश नहीं होता था। रामानुराग अर्थात् राम के प्रति प्रेम केवल रामायण के द्वारा ही उत्पन्न होता था किन्तु युवावस्था के कारण किसी का स्त्रियों पर अनुराग न होता था। मुखभङ्ग-विकार अर्थात् मुख पर झुर्रियों आदि के पड़ने से विकृति उत्पन्न होना केवल वृद्धावस्था के ही कारण था, धन के घमण्ड के कारण किसी का मुँह टेढ़ा नहीं होता था।

और जहाँ (आश्रम में) शकुनि वध अर्थात् शकुनि नामक दुर्योधन के मामा का वध केवल महाभारत की कथा में (सुना जाता था) आश्रम में पक्षि हिंसा नहीं (की जाती) थी। वायु प्रलपितम् अर्थात् वायु देवता का कथन या भाषण केवल पौराणिक कथा में ही प्राप्त होता था, वायु विकार के कारण कहीं कोई व्यर्थ प्रलाप नहीं करता था। द्विजपतन अर्थात् दाँतों का गिरना केवल वृद्धावस्था में ही था किन्तु ब्राह्मणों का कहीं पतन नहीं था। शीतलता (जाड्यम्) केवल उपवन के चन्दन के वृक्षों में ही थी किन्तु मुनियों की बुद्धि में जड़ता नहीं थी। भूति अर्थात् भस्म या राख केवल अग्नियों में ही थी किन्तु ऋषियों में भूति अर्थात् धन ऐश्वर्य आदि के प्रति मोह न था। गीत सुनने का शौक केवल मृगों में था आश्रमवासियों में नहीं। नृत्यपक्षपातः अर्थात् नाचते समय पंखों का गिरना केवल मयूरों में ही था मुनियों में नृत्य के प्रति कोई रुचि न थी। भोग—शरीर या फण केवल सर्पों में ही था, आश्रमवासियों में ऐहिक भोगों के प्रति रुचि नहीं थी। विल्व फलों की प्राप्ति की इच्छा केवल वानरों में थी, मुनियों में लक्ष्मी से प्राप्त सुखादि की इच्छा न थी। लतावृक्षादि की जड़ें ही नीचे की ओर जातीं थीं, किन्तु मुनिजनों का कभी अधःपतन नरकादिगमन न होता था।

**भावार्थ**—जाबालि आश्रम में यदि कहीं कालिमा थी तो वह केवल यज्ञ के धुयें में ही थी, मुनियों के आचरण में कोई कलंक न था। मुखों पर लालिमा केवल

तोतों की चोंच में ही थी, क्रोधवश किसी का मुख लाल न होता था। तीखापन केवल कुशों के अग्रभागों पर ही था। किसी के स्वभाव में तीक्ष्णता नहीं थी। चञ्चलता केवल केलों के पत्तों में ही थी, किसी के मन चञ्चल नहीं होते थे। कोइल पक्षियों की ही आँखें लाल होती थीं, आश्रमवासियों में किसी की भी दृष्टि वासनायुक्त नहीं होती थी। गरदन पकड़कर केवल कमण्डलु ही उठाये जाते थे, वहाँ रतिक्रीड़ाओं में कण्ठाश्लेषपूर्वक आलिङ्गन न था। मौञ्जी मेखलाबन्धन केवल ब्रह्मचारियों के उपनयनादि संस्कारों में ही होता था, किन्तु लड़ाई या वाद-विवादों में कोई किसी को सांकल से नहीं बाँधता था। केवल दुहने के समय ही होम की गायों के थन छुये जाते थे, आश्रम में स्त्रियों का स्तन-स्पर्श न था। केवल मुर्गों के ही समय-समय पर पंख गिरते थे, विद्या सम्बन्धी वाद-विवादों में कोई किसी का पक्षपात न करता था। केवल अग्नि की परिक्रमाओं में ही उसके चारों ओर घूमा जाता था, शास्त्रीय विषयों में किसी को कोई भ्रान्ति या सन्देह न था। अष्ट वसु नामक देवताओं का वर्णन केवल देव कथाओं में ही प्राप्त होता था, वहाँ तृष्णावश धन चर्चा नहीं होती थी। केवल जप करते समय ही रुद्राक्ष मालाओं के दानों की ही गणना होती थी, किन्तु अपने-अपने शरीरों के विषय में यह गणना न थी। यज्ञ में दीक्षित होने के समय ही मुनियों के बाल कटते थे किन्तु मृत्युवश मुनियों के बालकों का नाश नहीं होता था। राम के प्रति अनुराग केवल रामायण के द्वारा ही उत्पन्न होता था किन्तु युवावस्था के कारण किसी का स्त्रियों के प्रति अनुराग न होता था। केवल वृद्धावस्था के कारण ही झुर्रियों आदि के पड़ने से मुख पर विकृति उत्पन्न होती थी, धन के गर्व के कारण किसी का मुख विकृत न होता था।

और जहाँ आश्रम में, शकुनि नामक दुर्योधन के मामा का वध केवल महाभारत की कथा में ही सुना जाता था, आश्रम में पक्षियों का वध न होता था। वायु देवता का कथन पौराणिक कथा में ही प्राप्त होता था, वायु विकार के कारण वहाँ कोई व्यर्थ प्रलाप न करता था। वृद्धावस्था में ही द्विजपतन अर्थात् दाँत गिरते थे, किन्तु आश्रम में ब्राह्मणों का पतन न होता था। जड़ता अर्थात् शीतलता वहाँ केवल चन्दन वृक्षों में ही थी, मुनियों की बुद्धि में जड़ता न थी। भूति अर्थात् भस्म या राख केवल अग्नियों में ही थी, ऋषियों में भूति अर्थात् धनैश्वर्य के प्रति मोह न था। गान सुनने का शौक केवल मृगों को ही था, आश्रमवासी गीत श्रवण व्यसनी न थे। नाचते समय केवल मयूरों के ही पंख गिरते थे, मुनियों में नृत्य के प्रति कोई रुचि न थी। केवल वानरों में ही बिल्व फल प्राप्ति की इच्छा थी, मुनियों में लक्ष्मी से प्राप्तव्य सुखादिफल की इच्छा न थी। भोग अर्थात् फण केवल सर्पों में ही था

किन्तु आश्रमवासियों में ऐहिक भोगविलासों के प्रति रुचि न थी। लतावृक्षादि की केवल जड़ें ही नीचे की ओर जातीं थीं, मुनियों का कभी अधःपतन (नरकादिगमन) न होता था।

**संस्कृत व्याख्या—यत्र-चेति-यत्र च**—अपि च, यत्र जाबाल्याश्रमे, **मलिनता** मालिन्यं कलङ्को वा, **हविर्धूमेषु**=हुताग्नीनाम् धूमेषु, न चरितेषु=न तत्रत्य-मुनीनाम् आचरणेषु कौलीन्यमासीत्, तेषु हिंसापापाचाराद्यभावात्। **मुखरागः शुकेषु न कोपेषु**=शुकेषु कीरेषु (एव) मुखरागः मुखेषु रागः रक्तिमा आरुण्यं वा (आसीत्) न कोपेषु=न क्रोधनिमित्तकम् आरुण्यम्-कोप जन्यं वैरुण्यं-क्रोधनिमित्तकं वैरुप्यं न मुनिजनमुखेष्वासीदित्यर्थः। **तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु**=दर्भप्रान्तभागेष्वेव चर्मास्थिभेदनक्षमः शक्तिविशेषः (आसीत्) न तु मुनिप्रकृतिषु क्रूरत्वमासीत्। **चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु**=रम्भापत्रेष्वेव चाञ्चल्यं तरलता वा (आसीत्) न मनःसु चित्तेषु। उपद्रवाभावात् न मुनिजनचित्तेष्वस्थैर्यमासीदित्यर्थः। **चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु**=कोकिलेषु परभृदाख्यपक्षिष्वेव चक्षूरागः=नेत्रयोरारुण्यम्, न परकलत्रेषु परस्त्रीषु नेत्रयोरासक्तिरासीत्। **कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु**=कमण्डलुषु कुण्डिकास्वेव कण्ठग्रहः समुत्त्थापनकाले तेषां कण्ठग्रहणमासीत्, न सुरतेषु=मैथुन-क्रियासु. मुनिजनानामूर्ध्व रेतस्त्वेन सुरतक्रियाया अभावादित्यर्थः। **मेखलाबन्धोव्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु**=व्रतेषु उपनयनादि व्रतनियमेषु मेखलायाः मौञ्जीमेखलाया काञ्च्या वा बन्धः बन्धनम् ब्रह्मचारिषु प्रचलितमासीत् किन्तु ईर्ष्यानिमित्तकविग्रहेषु न शृंखला-बन्धनमासीत् मुनिषु कलहेर्ष्याया एवाभावादित्यर्थः, **स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न वनितासु**=होमनिमित्तकगोष्वेव दुग्धदोहनकाले एव तासां स्तनस्पर्श आसीत्, न वनितासु कामिनीषु कुचमर्दनम् मुनिजनेषु विषयासक्त्याभावादित्यर्थः। **पक्षपातः कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु**=कृकवाकुषु कुक्कुटेषु पक्षपातः पक्षाणां छदानां पातः निपनम् न विद्याविवादेषु विद्याविषयकशास्त्रार्थेषु न पक्षपातः वादिप्रतिवादिनोरन्यतरस्यसाहाय्य-करणम् मुनिजनेष्वेतादृशव्यवहारस्यानुपलम्भादित्यर्थः। **भ्रान्तिरनलप्रदक्षिणेषु न शास्त्रेषु**=अनलप्रदक्षिणेषु हुताग्निप्रदक्षिणकर्मसु एव भ्रान्तिः चतुर्दिक्षु भ्रमणमासीत्, न तु शास्त्रेषु=वेदादिशास्त्रविषयेषु, भ्रान्तिः=सन्देहः भ्रमो वा मुनिजनेष्वासीत्। **वसुकीर्तनं दिव्यकथासु न तृष्णासु**= दिव्यकथासु=देवसम्बन्धिकथाप्रवचनेष्वेव, वसु-संकीर्तनम्=द्युप्रभृतयः अष्टौ देवविशेषाः तेषां सङ्कीर्तनम् सम्यक् प्रकारेण कथनम्, न तृष्णासु=धनलिप्सासु, न वसु धनम् तस्य सङ्कीर्तनम् पुनः पुनः प्रशंसनम्। तत्रत्यानां मुनिजनानां वित्तलिप्साया एवाभावात्। गणना **रुद्राक्षवलयेषु न शरीरेषु**= रुद्राक्षाणां वलयेषु कटकाकारमालासु एव गणना जपकाले गणनम् किन्तु शरीरेषु देहेषु नेयं गणना आदरः अपेक्षा वासीत्। यतो हि मुनयः निःस्पृहा आसन्। **मुनिबाल-नाशः क्रतुदीक्षया न मृत्युना**=मुनीनाम् ऋषीणां बालाः केशाः तेषां नाशः कर्तनम्,

क्रतुदीक्षया यज्ञदीक्षया एव न तु मृत्युना मरणेन मुनिजनबालकानां विनाशः। तपःप्रभावेण मुनिजनेषु नासीदसमयिकमृत्युः। **रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन**= रामानुरागः रामः दाशरथिः तस्मिन् अनुरागः प्रेम, रामायणेन= रामायणे रामगुणचरितश्रवणेनैं वासीत्, न यौवनेन रामानुरागः=यौवनेन तारुण्येन न रामायां कामिन्याम् अनुरागः आसक्तिरासीत्, तपः प्रभावेण ब्रह्मचर्येण च मुनिषु युवावस्थायामपि न कामजन्योद्वेग आसीत्। **मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन**= मुखभङ्गविकारः=मुखे आननोपरिभङ्गेन त्वादिशैथिल्येन विकारः विकृतिः, जरया वृद्धावस्थयैव केवलम् न तु धनाभिमानेन वित्तैश्वर्यादि जन्यगर्वेणासीत्। मुनिषु धनगर्वयोरभावात्।

**यत्र च महाभारतेशकुनिवधः**=यत्र = जाबाल्याश्रमे, च= अपि च, शकुनिः= दुर्योधनमातुलः तस्य वधः मारणम्, महाभारते=महाभारताख्यपुराणकथायामेव श्रूयते स्म, न त्वाश्रमे कुत्रापि शकुनिवधः पक्षिमारणं श्रूयते स्म, मुनिषु हिंसाया अभावात्। **पुराणे वायुप्रलपितम्**=पुराणे व्यासरचित वायुपुराणे एव, वायुप्रलपितम्= वायोः पवनदेवस्य प्रलपितम् भाषणं कथनम् वा श्रूयते स्म, न तु वायुना वायुविकारजन्योन्मादादिना, प्रलपितं यत्किञ्चिद् व्यर्थालापकरणम् नासीत्। **वयः परिणामे द्विजपतनम्**=वयः परिणामे=वृद्धावस्थायामेव, द्विजपतनम्= द्विजानां दन्तानाम् पतनं पातः—दन्तक्षरणम्, न तु द्विजानां ब्राह्मणानां पतनं स्वाचाराद् भ्रंशः, सदाचारिषु मुनिषु नैतद् सम्भाव्यते। **उपवन चन्दनेषु जाड्यम्**= उपवनानां समीप स्थस्थलानां चन्दनेषु चन्दनाख्यतरुषु जाड्यम् शैत्यम् न तु तत्रस्थमुनिजनेषु जाड्यम् बुद्धिहीनत्वंम्, सर्वेषां प्रज्ञावतां मुनीनां पूर्णशिक्षितत्वात्। **अग्नीनां भूतिमत्वम्**= अग्नीनां वह्नीनामेव भूतिमत्त्वम् भस्मतत्त्वम्, न तु मुनिजनानां धनशालित्त्वम्। **एणकानां गीतश्रवणव्यसनम्**=एणकानां मृगाणामेव गीतस्य गानस्य श्रवणे आकर्णवने व्यसन मासक्तिः, न तु मुनिजनानां गीतश्रवणाभिलाषातिरेकः। **शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः**= शिखण्डिनां मयूराणामेव नृत्ये नर्तनकाले पक्षपातः तच्छदनिणतनम्, न तु मुनिजनानां नृत्ये नृत्यविषये पक्षपातः स्वीकारः। **भुजङ्गमानां भोगः**=भुजङ्गमानां सर्पाणामेव भोगः शरीरं फणो वा न तु मुनीनां भोगः माल्यगन्धकामिनीचन्दनसम्पर्कजन्यसुखम् तेषां सर्वविधैहिकसुखरहितत्वात्। **कपीनां श्रीफलाभिलाषः**= कपीनां वानराणामेव श्रीफलेषु बिल्वफलेषु अभिलाषः इच्छाविशेषः न तु ऋषीणां श्रीर्लक्ष्मीः तस्याः फलेषु गृहसम्पदादिषु अभिलाषः अत्युत्कटेच्छा, मोक्षाभिलाषिणो मुनयो नाभिलषन्ति शरीरोपभोगसाध्यानि वस्तूनि। **मूलानामधोगतिः**=मूलानां जटानामेव अधोगतिः अधस्तलगमनम् न तु मुनीनामधोगतिः नरकादिषु पतनम् तेषां पापरहितत्वात।

**संस्कृत सरलार्थ**—जावाल्याश्रमे मालिन्यं केवलं यज्ञीयधूमेष्वेवासीत् न तु मुन्याचरणेषु कलङ्कः। मुखलौहित्यं केवलं शुकचञ्चुष्वेवासीन न तु कोपजनित वैरूप्यं कस्यापि मुखे परिदृश्यते स्म। चर्मास्थिभेदन योग्यं क्रौर्यं केवलं दर्भमूलप्रदेशेष्वेव न तु मानव प्रकृतिगता क्रूरतासीत्। चाञ्चल्यं रम्भापत्रेष्वेवासीन् न तु मुनिचित्तेषु चापल्यमासीत्। कोकिलेष्वेव स्वाभाविकं लोचनारुण्यमासीन्। परस्त्रीषु न कस्यापि दृष्टि राग आसीत्। कमण्डलुष्वेव समुपस्थापनकाले कण्ठग्रहणमासीत् न तु सुरतालिङ्गनेषु कण्ठाश्लेष आसीत्। मेखलाबन्धन मुपनयनादिनियमेष्वेवासीत्। नत्त्रीर्ष्यानिमित्तक कलहेषु मेखलाबन्ध आसीन्। होमधेनूना मेव दोहनकाले तत्स्तनस्पर्शः क्रियते स्य न तु स्त्रीकुचमर्दन मासीन्तत्राश्रमे। कुक्कुटपक्षिष्वेवासीत् छदपतनम्, न तु शास्त्रीय-विवादेषु वादिप्रतिवादि विषयकः पक्षपात आसीत्। अग्निप्रदक्षिणेष्वेव चतुर्दिक्षु परिभ्रमणमासात्, न तु शास्त्रीयविषयेषु केषा मपि कोऽपि भ्रमः सन्देहो वासीत्। देव कथा प्रवचनेष्वेव देवविशेषाणामष्टानां वसूनां संभाषणमासीत् न तु मुनिषु धन प्रशंस न मासीत्। केवलं जपकाल एवं रुद्राक्ष वलयानां गणना क्रियतेस्म, नहि मुनिषु स्वदेहापेक्षासीत्। मुनि केश कर्त्तनं यज्ञदीक्षया केवलं विधीयते स्य, न तु मुनिवालकनाशः मृत्युना दृश्यते स्म। रामायणे रामगुण गणश्रवणेनैव दशरथात्मजे रामचन्द्रे प्रीतिरासीत् न हि तत्र तारुण्यमदेन कामिनीषु कामोद्रेक आसीत्। मुखेषु त्वगादि शैथिल्य रूपा विकृति; केवलं वृद्धावस्था प्रभावेणासीत्, न तु धनगर्वेण कुत्रापि मुखाविकर आसीत्।

यत्र चाश्रमे महाभारताख्यपुराण एव शकुनीत्याख्यातस्य दुर्योधनमातुलस्य वधः श्रूयते स्म नहि तत्र कुत्रापि पक्षिमारण भासीत्। वायुपुराण एव वायुदेवस्य प्रकथनं श्रूयते स्म नहि तत्र कस्यापि वातव्याधिजः व्यर्थालापः श्रूयते स्म। वृद्धावस्थायामेव दन्तक्षरणं दृश्यते स्म' न हि तत्र कुत्राप्यासीत् ब्राह्मणानां महापातकादिषु निपतनम्। शैत्यन्तु केवल मासीत्तत्रोपवनचन्दनतरुष्वेव, नहि तत्र कुत्राप्यासीद् बुद्धि शैथिल्यं मुनिषु। भस्मवत्त्वन्तु केवलं बह्नीनामेवासीत् मुनिषु नासीद् वित्तैश्वर्यैषणा। मृगाणामेव गानश्रवणा सक्तिरासीत् मुनिषु नासीदेष गीतश्रवणसक्ति। नर्तनकाले मयूराणामेव क्वचित् पक्षक्षरणं भवति स्म मुनिषु नृत्यदर्शनासक्तिः र्नासीत्। भोगः शरीरं फणो वा सर्पाणामेवासीत् नहि मुनीना मैहिक भोगविलासेष्वासक्तिरासीत्। विल्वफलाप्तीच्छा तु केवलं वानराणामेवासीत्, ऋषिषु नासीत्, लक्ष्मीप्रसादोपलब्धैहिक भोगैषणा। उत्तरोत्तर मध्यःप्रदेश विसर्पणन्तु वृक्षव्रतति जटानामेवासीत्, नहि तत्र मुनीनां कश्चिदपि कदाचिदपि नरकाद्यधस्तल गमन मासीति।

**टिप्पणी**—प्रस्तुत सन्दर्भ में "मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु" यहाँ से लेकर "मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन" यहाँ तक प्रायः सभी वाक्यों में प्रश्न के न होने पर भी, नकार के द्वारा अन्य का निराकरण होने से श्लेष संकीर्णा शाब्दी परिसंख्या लंकार है। और इसी प्रकार "महाभारते शकुनिबधः" यहाँ से लेकर "मूलाना-

मधोगतिः । यहाँ तक के प्रायः सभी वाक्यों में प्रश्न के न होने पर भी स्वाभिप्राय से ही अन्य का निराकरण होने से सर्वत्र श्लेषानुप्राणित आर्थी परिसंख्या लंकार है । अर्थात् प्रथम अनुच्छेद में शाब्दी और प्रस्तुत अनुच्छेद में आर्थी परिसंख्या है श्लेषा नु प्राणिता दोनों में ही है ।

इसका लक्षण है :—

"प्रश्नाद प्रश्न तो वापि कथिताद् वस्तुनो भवेत् ।
तादृगन्यव्यपोहश्चे　च्छाब्द　आर्थोऽथवा　तथा ॥
परिसंख्या भवेत् तत्रः—"

**कोपेषु**—अत्र निमित्त सप्तमी, अत एव कोपनिमित्तकमित्यर्थः । **तीक्ष्णता** नुकीलापन, चुभने की शक्ति से युक्त, फलतः स्वभावगत तीक्ष्णता का अर्थ क्रूरता है । **चञ्चलता**—केले के पत्ते सदा हिलते रहते हैं । कभी स्थिर नहीं होते, इसी प्रकार मन भी सदा अस्थिर रहता है, योगि जनों में ही चित्त स्थैर्य होता है । **चक्षूरागः** राग शब्द का अर्थ लालिमा और अनुराग या प्रेम भी है, कोकिल पक्षियों की आखों में तो स्वाभाविक लालिमा होती है, पर मानवों में अति प्रिय पदार्थ देखने पर ही दृष्टि राग उत्पन्न होता है । **कण्ठग्रहः** गला पकड़ कर उटाना लोटा या कमण्डलु गला पकड़ कर ही उठाया जाता है, पर सुरत काल का कण्ठग्रहः कण्ठाश्लेष पूर्वक आलिङ्गन कहलाता है **मेखलाबन्धः** जंजीर से बांधना या कमर कसना भी होता है, लड़ाई के समय ही ऐसा किया जाता है, यज्ञो पवीत संस्कार के समय भी ब्रह्मचारी की कमर में गूंज की मेखला बाँधी जाती हैं । "मेखला खड्ग बन्धे स्यात् काञ्चीशैलनितम्बयोः" कोशः । **कृकवाकुषु** कुक्कुट= मुर्गा या ताम्रचूड़ "कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणायुधः" कोशः । **पक्षपात**=पंखों का गिरना और वादविवाद में किसी एक का पक्षपात करना । **भ्रान्ति**=घूमना, सन्देह भ्रम, संशय । **वसुसङ्कीर्तनम्**=वसुनामक देव विशेष इनकी संख्या आठ है । वसु का अर्थ धन भी है । **वालनाशः** वाल का अर्थ केश और बालक भी है "चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः" केश । **रामानुरागः**—रामे अनुरागः, रामायामनुरागः रामानुरागः । **मुखभङ्गविकारः**—वृद्धावस्था में प्रायः मुख पर झुरियां पड़ जाती है और खाल लटक जाती है अतः मुख विकृत हो जाता है घमण्ड में भी कुछ ऐसी ही आकृति हो जाती है । **वायुप्रलपितम्**—वातव्याधि से पीडित जन प्रायः ऊटपटांग बकने लगते हैं । **द्विजपतनम्** द्विज का अर्थ दांत और ब्राह्मण भी है और पक्षी भी द्विज कहलाते हैं "दन्तविप्राण्डजा द्विजा" केश । पतनम् का अर्थ गिरना और अधः पतन भी है । **भोगः** भोग का अर्थ सर्प का शरीर और फन भी हैं तथा ऐहिक भोग विलास भी भोग कहा जाता है । "भोगः सुखे स्त्र्यादि भृता वहेश्च फणकामयोः" कोश ।

## अथ जाबालिवर्णनम्

**"तस्य चैवं विधस्य मध्यभागमलंकुर्वाणस्य, अलक्ताकालोहितपल्लवस्य मुनिजनालम्बित कृष्णाजिन-जलकरङ्कसनाथशाखस्य तापसकन्यकाभिर्मूल भाग-दत्त-पीत-पिष्टातकानेक पञ्चाङ्गुलस्य हरिणशिशुभिः परिपीयमानालवाल-सलिलस्य मुनिकुमारकाबद्ध-कुशचीरदाम्नो हरितगोमयोपलेपन विविक्ततलस्य, तत्क्षण-कृतकुसुमोपहाररमणीयस्य नातिमहतः परिमण्डलतया विस्तीर्णविकाशस्य रक्ताशोकतरोरधश्छायायामुपविष्टम्....।"**

**शब्दार्थ**—**तस्य च**=और उस, **एवं विधस्य**=इस प्रकार के (पूर्व वर्णित) आश्रम के। **मध्यभागमलंकुर्वाणस्य**=मध्यभाग को अलंकृत करने वाले **अलक्तकालोहितपल्लवस्य**=आलता के समान लाल पत्तों वाले। **मुनिजनालम्बित**=तपस्वियों के द्वारा लटकाए गये **कृष्णाजिन**=काले मृगचर्म **जलकरङ्कसनाथशाखस्य** = जलयुक्त कमण्डलुओं से युक्त शाखाओं वाले, **तापसकन्यकाभिः**=मुनिकन्याओं के द्वारा **मूलभागदत्तपीतपिष्टातकानेकपञ्चाङ्गुलस्य**=जड़ पर लगाये गए पीले पिष्टातक (चावल हल्दी के) लेप की अनेक थापों वाले, **हरिणशिशुभिः**=मृगों के छोटे-छोटे बच्चों द्वारा **परिपीयमानालवालसलिलस्य**=पिये जा रहे थाल के पानी वाले **मुनिकुमारकाबद्धकुशचीरदाम्नः**=मुनि बालकों द्वारा करधनी की भाँति कुशों के बने वस्त्रों से लपेटे हुए **हरितगोमयोपलेपनविविक्ततलस्य**=हरे गोबर से लीपने के कारण पवित्र या स्वच्छ नीचे की भूमि वाले **तत्क्षणकृत कुसुमोपहाररमणीयस्य**=अभी-अभी अर्थात् ताजे फूल चढ़ाने से मनोहर लगने वाले **नातिमहतः**=अतिशय विस्तृत नहीं **परिमण्डलतया**=मण्डलाकार होने के कारण **विस्तीर्णविकाशस्य**=नीचे के विस्तृत छाया भाग वाले **रक्ताशोकतरोः**=लाल अशोक वृक्ष के **अधः**=नीचे **छायायामुपविष्टम्**=छाया में बैठे हुए....(जाबालि ऋषि को देखा यह आगे से अन्वित है)।

**अनुवाद**—इस प्रकार (पूर्व वर्णित जाबालि आश्रम) के मध्य भाग को अलंकृत करने वाले, आलते के समान लाल पत्तों वाले, मुनिजनों के द्वारा लटकाए गये काले मृगचर्म और जल के कमण्डलुओं से युक्त शाखाओं वाले, मुनिकन्याओं द्वारा जड़ में लगाये गये (हरिद्रा, चावल से बनाए गये) लेप की विविध थापों वाले, मृगों के बच्चों द्वारा पिये गये थाल के पानी वाले, मुनि कुमारों द्वारा करधनी के रूप में कुशनिर्मित वस्त्रों से बँधे हुए, हरे रंग के गोबर से लीपने के कारण स्वच्छ (पवित्र) नीचे की भूमिभाग वाले, ताजे चढ़ाए गये पुष्पों से मनोहारी, अतिविशाल न होने पर भी मण्डलाकार फैले होने के कारण विस्तृत छाया प्रदेश वाले लाल अशोक वृक्ष के नीचे छाया में बैठे हुए (जाबालि ऋषि को देखा)।

**संस्कृत व्याख्या**—**एवं विधस्य** पूर्वोक्त प्रकारेण वर्णितस्य तस्य ऋषेराश्रमस्य **मध्यभागं** मध्य **देशमलंकुर्वाणस्य** शोभमानस्य, **अशोकतरोः** रक्ताशोक नाम्नो वृक्षस्याधस्ताच्छायायामुपविष्टं भगवन्तं जाबालिमपश्यम् इत्यग्रेणान्वयः। **अलक्तकालोहिता-**

वीनि षष्ठ्यन्तानि पदानि 'रक्ताशोकतरोः' पदस्य विशेषणानि, तान्येव व्याख्यापन्ते **अलक्तकालोहितपल्लवस्य**—अलक्तकं नारीचरणोपभोगयोग्यं यावकं लाक्षारसं वा तद्वद् लोहितानि रक्तवर्णानि पल्लवानि किसलयानीति आलक्तकवदीषद्रक्तवर्णानि पत्राणि यस्य तस्य **मुनिजनालम्बित कृष्णाजिन जलकरङ्कसनाथशाखस्य**—मुनिजनैः तपस्विजनैः आलम्बितानि स्थापितानि यानि कृष्णाजिनानि कृष्णमृगचर्माणि तथा च जलकरङ्काः नारिकेलास्थिनिर्मिताः जलपात्रविशेषाः अथवा मुनीनां सलिलकमण्डलवः तैः सनाथाः युक्ताः शाखाः स्कन्धाः यस्य तस्य (बहु०) तादृशस्य, **तापसकन्यकाभिः**—मुनिकुमारिकाभिः **मूलभागवत्तपीतपिष्टातकानेकपञ्चाङ्गुलस्य**—मूलभागे मूल प्रदेशे आलवालस्थले वा दत्तानि अङ्कितानि पीतपिष्टातकैः पीतं च तत्पिष्टातकं तैः हरिद्रारूप पटवासचूर्णैः अनेकानि बहूनि पञ्चाङ्गुलानि हस्तबिम्बानि यस्य तस्य (बहु०) तादृशस्य **हरिण-शिशुभिः** मृगपोतकैः **पीयमानालवालसलिलस्य**—पीयमानमास्वाद्यमानम् आलवालस्य जलप्रक्षेपणाय मूलदेशेरचितावापस्य सलिलं पयो यस्य तस्य तादृशस्य **मुनिकुमारकाबद्धकुशचीरदाम्नः**—मुनीनां कुमारकाः मुनिकुमारकास्तैः तपस्विबालकैः आबद्धं परिवेष्टितं कुशचीराणां दर्भनिर्मितवस्त्राणां दाम रज्जुः यस्मिन् तस्य (बहु०) तादृशस्य **हरितगोमयलेपनविविक्ततलस्य**—हरितं हरितवर्णं गोमयं गोपुरीषं तेन यदुपलेपनं शोधनं तेन हेतुना विविक्तं पवित्रीभूतम् तलम् अधोभागो यस्य तस्य (बहु०) **तत्क्षणकृतकुसुमोपहाररमणीयस्य**—तत्क्षणे तस्मिन्नेव काले सद्य इत्यर्थः कृतेन विहितेन कुसुमोपहारेण पुष्पार्पणेन रमणीयस्याधिक मनोहरस्य **नातिमहतः**—नातिविस्तृतस्य तथापि **परिमण्डलतया**—परिगतं मण्डलं परिधिः यस्य सः तस्य भावस्तत्ता तया गोलाकारतया कारणेन **विस्तीर्णावकाशस्य**—विस्तीर्णः अतिदीर्घः अवकाशः अधःस्थायी छायाप्रदेशः यस्य तस्य **रक्ताशोकतरोः**—रक्तवर्णाशोकवृक्षस्य **अधः**—अधस्तात् **छायायाम्**—अनातपस्थले **उपविष्टम्**—आसीनम्—भगवन्तं जाबालिमपश्यम् इत्यग्रेणान्वयः ।

**विशेष**—प्रस्तुत अंश में वैशम्पायन शुक जाबालि ऋषि का वर्णन करते समय जाबालि आश्रम के मध्य भाग में स्थित अशोक वृक्ष का वर्णन करता है जिसके नीचे जाबालि ऋषि बैठे थे ।

इस गद्यांश में एक ही अशोक वृक्ष के विविधविध सौन्दर्य का वर्णन किया गया है । अलक्तकालोहित पल्लवस्य में वाचक लुप्ता उपमा अलंकार है ।

**पीतपिष्टातक पञ्चाङ्गुलि**—हल्दी और चावल को पीस कर बनाया गया लेप विशेष, जो किसी भी मांगलिक अवसर पर लगाया जाता है । प्राचीन काल में ऋषिकन्याएँ वृक्षों की जड़ों, तनों पर हथेली से इसी लेप की पीली-पीली थाप (हथेली की छाप) लगाया करती थीं । इसी थाप को पञ्चाङ्गुलि कहा गया है ।

**जलकरङ्क**—जल का करवा अर्थात् ऋषियों का जल पात्र कमण्डलु । यह कमण्डलु प्रायः नारियल के खोपड़े का बना होता था । ऋषि लोग इसे पेड़ों पर टाँग दिया करते थे । **आलवाल**—वृक्षों की जड़ के चारों ओर मिट्टी का घेरा जिसमें

पानी डाला जाता है उसे आलवाल या थाल कहा जाता है। **कुशचीरदाम**—कुश की पतली रस्सियों से बनाया गया वस्त्र उसको रस्सी या करधनी के रूप में वृक्षों में लपेटना। □

**"अत्युग्रतपोभिर्भुवनमिव सागरैः कनकगिरिमिव कुलाचलैः क्रतुमिव वैतानवह्निभिः कल्पान्तदिवसमिव रविभिः कालमिव कल्पैः समान्तान्महर्षिभिः परिवृतम्, उग्रशापभीतयेव कम्पितदेहया प्रणयिन्येव विहितकेशग्रहया क्रुद्धयेव कृतभ्रूभङ्गया मत्तयेवाकुलितगमनया प्रसाधितयेव प्रकटिततिलकया जरया गृहीतव्रतयेव भस्मधवलया धवलीकृत विग्रहम् आयामिनीभिः पलित-पाण्डुराभिः तपसा विजित्य मुनिजनमखिलं धर्मपताकाभिरिवोच्छ्रिताभिः अमरलोकमारोढुं पुण्यरज्जुभिरिवोपसंगृहीताभिः अतिदूरप्रवृद्धस्य तपस्तरोः कुसुममञ्जरीभिरिवोद्गताभिर्जटाभि रुपशोभमानम्...."**

**शब्दार्थ**—**सागरैः**=समुद्रों से **भुवनमिव**=पृथ्वी तल के समान, **कुलाचलैः**=कुल पर्वतों से **कनक गिरिमिव**=सुमेरु पर्वत के समान **वैतानवह्निभिः**=यज्ञाग्नियों से **क्रतुमिव**=यज्ञ के समान **रविभिः**=सूर्यों से **कल्पान्तदिवसमिव**=प्रलयकाल के दिन के समान **कल्पैः**=कल्पों से **कालमिव**=काल (समय) के समान **समन्तात्**=चारों ओर से **अत्युग्रतपोभिः**=अतिशय उग्र तप करने वाले **महर्षिभिः**=महर्षियों से **परिवृतम्**=घिरे हुए (जाबालि ऋषि को देखा) **उग्रशापभीतयेव**=भयङ्कर शाप के भय से मानों **कम्पितदेहया**=कंपती हुई शरीर वाली (जरया के विशेषण) **प्रणयिन्येव**=कामिनी के समान मानो **विहितकेशग्रहया**=बाल पकड़ लेने वाली **क्रुद्धयेव**=क्रुद्धा स्त्री के समान **कृतभ्रूभङ्गया**=भौं चढ़ा लेने वाली, **मत्तयेव**=मतवाली की तरह **आकुलितगमनया**=लड़खड़ा कर चलने वाली **प्रसाधितयेव**=शृङ्गार किये हुए सी **प्रकटिततिलकया**=तिलों (मस्से) पक्ष में तिलक=बिन्दी को प्रकट करती हुई सी **गृहीतव्रतयेव**=व्रतधारण किये हुए के समान **भस्मधवलया**=भस्म के समान श्वेत पक्ष में—भस्म लगाने से श्वेत **जरया**=वृद्धावस्था (बुढ़ापा) के द्वारा **धवलीकृत विग्रहम्**=श्वेत किए हुए शरीर वाले अर्थात् वृद्धता के कारण श्वेत शरीर वाले (जाबालि ऋषि को) **आयामिनीभिः**=अत्यन्त लम्बी **पलित पाण्डुराभिः**=पक जाने के कारण उजली (श्वेत) (जटाभिः का विशेषण) **तपसा**=तप के द्वारा **विजित्य**=जीतकर **मुनिजनमखिलम्**=समस्त मुनियों को, **धर्मपताकाभिरिव**=धर्म पताकाओं के समान **उच्छ्रिताभिः**=अतिशय ऊँची, **अमरलोकम्**=स्वर्ग के **आरोढुं**=चढ़ने के लिए **उपसंगृहीताभिः**=एकत्रित की हुई **पुण्यरज्जुभिरिव**=पुण्य की रस्सियों के समान, **अतिदूरप्रवृद्धस्य**=दूर तक फैले हुए **तपस्तरोः**=तपस्या रूपी वृक्ष की **उद्गताभिः**=प्रस्फुटित या निकली हुई **कुसुम मञ्जरीभिरिव**=फूलों की मंजरियों के समान **जटाभिः**=जटाओं से **उपशोभमानम्**=शोभित होने वाले (जाबालि ऋषि को देखा)।

**अनुवाद**—(अशोक वृक्ष की छाया में बैठे हुए वे) जाबालि ऋषि कठोर तप करने वाले महर्षियों से चारों ओर से ऐसे घिरे हुए थे जैसे—समुद्रों से पृथ्वी, कुल

पर्वतों से सुमेरु पर्वत, यज्ञाग्नियों से यज्ञ; सूर्यों से प्रलयकाल (कल्प) का अन्तिम दिन, कल्पों से काल घिरा रहता है। वृद्धावस्था (बुढ़ापे) ने उनके शरीर को श्वेत एवं कम्पयुक्त कर दिया था। मानों भयंकर शाप से भयभीत नायिका की भाँति जरा स्वयं कंप रही हो, (सुरत काल में) केश ग्रहण करने वाली प्रेमिका के समान उसने (जरा ने) मानों उनके केश (श्वेत करने के लिए) पकड़ लिये थे। क्रुद्धा नायिका के समान मानों उसने भौंहों को शिथिल कर दिया था, उन्मादिनी नायिका की भाँति मानों उसने उनकी गति लड़खड़ा दी थी। तिलक लगाए हुए सज्जित नायिका की भाँति उसने शरीर पर तिल अर्थात् काले तिल व मस्से उत्पन्न कर दिये थे। भस्म से श्वेत शरीर वाली व्रतधारिणी नायिका के समान वह जरा (वृद्धावस्था) स्वयं भस्म के समान श्वेतवर्ण शरीर वाली थी। उनकी लम्बी तथा बुढ़ापे के कारण पकी हुई उजली जटाएँ ऐसी लग रही थीं जैसे—मानों तपस्या से समस्त मुनियों को जीत कर ऊपर उठाई गईं (फहराई गईं) धर्म पताकाएँ हों। मानों स्वर्गलोक में चढ़ने के लिए एकत्रित की गईं पुण्य की रस्सियाँ हों। मानों बहुत दूर तक बढ़े हुए तप वृक्ष की निकली हुई फूलों की मञ्जरियाँ हों।

**संस्कृत व्याख्या**—**सागरैः**समुद्रैः **भुवनमिव** जगत् इव **कुलाचलैः** सप्तसंख्याक कुलपर्वतैः **कनकगिरिमिव**—सुमेरुनामानं सुवर्णपर्वतमिव **वैतानवह्निभिः**—वितानस्य यज्ञस्य इमे इति वैतानाः (वितान शब्दात् स्वार्थेअण् प्रत्ययः, आदि वृद्धिः) यज्ञ सम्बन्धिन इत्यर्थः ये वह्नयः अग्नयः (दक्षिणा गार्हपत्याहवनीयाख्याः) तैः परिवृतम्, **क्रतुमिव** यज्ञमिव, **रविभिः** द्वादशसूर्यैः **कल्पान्तदिवसमिव** कल्पान्तं युगान्तं दिवसमिव दिनमिव प्रलयदिनमिव (प्रलयदिने सर्वेऽपि द्वादशादित्याः सहैवोदिता भवन्तीति पुराणेषु प्रथितम्) **कल्पैः** कालखण्डविशेषैः **कालमिव**—अखण्ड समयमिव, **समन्तात्**, परितः **अत्युग्रतपोभिः**—अतिशयेनोग्रं कठिनं तपो येषान्तैः तादृशैः अत्युत्कट तपः शालिभिः **महर्षिभिः** तपस्विभिः **परिवृतम्** परिवेष्टितम् जाबालिमित्यग्रेणान्वयः।

**उग्रशापभीतयेव**—उग्रः कठोरो यो जाबालेः शापः तेन भीतया त्रस्तया नार्येव **कम्पितदेहया** कम्पितः चलितो देहः शरीरं यस्याः सा तया जरापक्षे—कम्पितो देहो वपुर्यया तया, **प्रणयिन्येव**—कामिन्या इव **विहितकेशग्रहया**—विहितः कृतः केशग्रहः कण्ठावलम्बनम् यया तया तादृश्या (प्रेयसी अपि सुरतकाले पत्युः केशग्रहणं करोति एवमेव जरा अपि केशेषु लग्ना अत एव वार्धक्ये केशानां श्वेतत्वामिति), **क्रुद्धयेव**—कोप युक्तया नार्येव **कृतभ्रूभङ्गया**—कृतो विहितः भ्रुवोः भङ्गः कौटिल्यं जरापक्षे कृतः भ्रुवोः विकृतिर्यया तया तादृश्या (यथा क्रुद्धा कापि नारी भ्रूभङ्गं करोति सेव जरापि भ्रुवोः विकृतिं कृतवतीत्यभिप्रायः), **मत्तयेवाकुलितगमनया**—मत्तयेव मद्यपानेन सोन्मत्तया स्त्रिया इव आकुलितगमनया आकुलितं स्खलितं गमनं गतिः यस्याः सा तया जरापक्षे—स्खलितं गमनं यया तया (मद्यपानोन्मत्ता यथा स्वयं स्खलद् गतिका भवति तथैवेयं जरा वृद्धशरीरं स्खलद्गति विदधाति) **प्रसाधितयेव**—अलंकृतया नार्येव **प्रकटिततिलकया**—प्रकटितम् अभिव्यक्तं तिलकं भालविन्दुः यस्याः सा, जरापक्षे—

अभिव्यक्तानितिलकानि—देहे श्यामवर्णं चिह्नानि यया सा तया तादृश्या (अलंकृता नारी यथा सतिलका भवति तथैवेयं जाता) **गृहीतव्रतयेव**—गृहीतं धृतं व्रतं नियमो यया तया स्त्रिया इव **भस्मधवलया**—भस्म=भूतिः तद्वद् धवलया श्वेतया (व्रतधारिणी भस्मोपलेपन शुभ्रा यथा भवति तथैवेयम्) **जरया** वृद्धावस्थया **धवलीकृतविग्रहम्**—अधवलो धवलः कृतः इति धवलीकृतः शुक्लीकृतो विग्रहः शरीरं यस्य तं तादृशम् जाबालिमित्यग्रेणान्वयः ।

**आयामिनीभिः**—दीर्घाभिः **पलितपाण्डुराभिः**—पलितेन वृद्धावस्थाजनितेन शौक्ल्येन पाण्डुराभिः श्वेतरूपाभिः, **तपसा** तपस्यया **अखिलम्**—सम्पूर्णम् **मुनिजनम्** ऋषिसमूहम् **विजित्य** अभिभूय **उच्छ्रिताभिः** ऊर्ध्वीकृताभिः **धर्मपताकाभिरिव**-पुण्यध्वजैरिव विद्यमानाभिः (जटाभिरित्यस्य विशेषणम्), **अमरलोकम्**—स्वर्गम् **आरोढुम्**—आरोहणं कर्त्तुम् **उपसंगृहीताभिः** एकत्रिताभिः **पुण्यरज्जुभिरिव** पवित्र प्रग्रहैरिव विद्यमानाभिः, **तपस्तरोः**—तपः एव तरुर्वृक्षस्तस्य तपः रूपपादपस्य, **उद्गताभिः** उत्पन्नाभिः **कुसुममञ्जरीभिरिव** पुष्पवल्लरीभिरिव विद्यमानाभिः जटाभिः सटाभिः केशैरित्यर्थः **उपशोभमानम्** भूषितं जाबालिमित्यग्रेणान्वयः । वाक्य खण्डेऽस्मिन् मालोपमाऽलंकारः ।

**विशेष**—जाबालि ऋषि का वर्णन करते हुए कवि ने अनेक कल्पनाओं का आश्रय लिया है। प्रस्तुत खण्ड में तीन प्रमुख वर्णन हैं—१. ऋषियों से घिरे हुए जाबालि, २. बुढ़ापे से श्वेत हुए शरीर वाले जाबालि और ३. जटाओं से शोभित जाबालि को देखा। इन तीनों अंशों में एक ही वस्तु के अनेक उपमान देने के कारण मालोपमा अलंकार एवं कहीं-कहीं उत्प्रेक्षा अलंकार भी है।

(क) महर्षियों से घिरे हुए अंश में उपमेय जाबालि के भुवन, क्रतु, कल्पान्त-दिवस आदि उपमान तथा महर्षियों के सागर, कुलपर्वत, वैतानवह्नि आदि उपमान देने के कारण मालोपमा अलंकार है। लक्षण—

"मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते।"

(ख) उग्रशापभीतयेव से, गृहीत धवलया अंश में वृद्धावस्था के कार्यों का वर्णन करते समय 'उग्रशापभीतयेव' क्रुद्धयेव आदि में उत्प्रेक्षा अलंकार है। कुछ विद्वानों ने 'नार्या' विशेष्य पद का अध्याहार कर पूर्णोपमा अलंकार भी स्वीकार किया है।

(ग) आयामिनीभिः से, जटाभि रूप शोभमानम् अंश में जटाओं के अनेक उपमान होने के कारण मालोपमा अलंकार ही है।

(घ) **वैतानवह्निभिः** वितान अर्थात् यज्ञ, यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली अग्नियाँ मुख्यतः तीन हैं— १. दक्षिणा २. गार्हपत्य ३. आहवनीय। इनसे जैसे यज्ञ घिरा होता है उसी प्रकार जाबालि ऋषि उग्रतपा महर्षियों से घिरे हुए थे।

(ङ) **कल्पान्तदिवसमिव रविभिः**—पौराणिक मतानुसार युग के अन्तिम दिन

अथवा प्रलय के दिन सभी १२ सूर्य एक साथ उदित हो जाते हैं इससे वह दिन सूर्यों से घिर जाता है। उसी प्रकार—

(च) **कल्प**—भारतीय कालगणना में समय का सबसे बड़ा खण्ड कल्प कहलाता है। अन्य खण्ड हैं—युग, संवत्सर, वर्ष, मास, सप्ताह, दिन आदि।

(छ) **उग्रशापभीतयेव**—बुढ़ापे के कारण जाबालि का शरीर कंप रहा था उसमें कवि ने कारण की उत्प्रेक्षा कर उग्रशाप से भयभीत होने की बात कही है। इसमें उग्रशापभीतया नार्या इव इस प्रकार 'नार्या' पद का अध्याहार कर लेने पर पूर्णोपमा अलंकार हो जायेगा जिससे कम्पित देहया को दो प्रकार से अर्थसंगति करनी पड़ती है—१. जरा (वृद्धावस्था) के पक्ष में—कम्पितः देहो यया तया (कंपा दिया है शरीर जिसने) २. नारी पक्ष में—कम्पितः देहो यस्याः सा (कंप रहा है शरीर जिसका), इसी प्रकार अन्य पदों में भी व्याख्या दो प्रकार से होगी।

(ज) **तिलक**—तिलक शब्द सामान्यतः मस्तक में लगाए जाने वाले चन्दन, सिन्दूर आदि के लिये प्रयुक्त होता है किन्तु यहाँ इसका एक और भी अर्थ है तिलक अर्थात् तिल व मस्सों के काले-काले निशान। वृद्धावस्था में प्रायः शरीर में तिल व मस्से अधिक हो जाते हैं। यह कवि का अभिप्रेत है।

(झ) **पुण्यरज्जुभिः**—जाबालि के सिर पर श्वेत जटाएँ कवि को ऐसी लगीं जैसे स्वर्ग लोक में चढ़ने के लिए पवित्र रस्सियाँ हों। जटाओं की अतिशय पवित्रता और कल्याणकारिता ध्वनित होती है।

**"उपरचितभस्म त्रिपुण्ड्रकेण तिर्यक्प्रवृत्त त्रिपथगास्रोतस्त्रयेण हिमगिरि शिलातलेनेव ललाटफलकेनोपेतम्, अधोमुखचन्द्रकलाकाराभ्यामवलम्बित बलि शिथिलाभ्यां भ्रूलताभ्यामवष्टभ्यमानदृष्टिम्, अनवरतमन्त्राभ्यास विवृताधरपुटया निष्पतद्भिरतिशुचिभिः सत्यप्ररोहैरिव स्वच्छेन्द्रियवृत्तिभिरिव विद्यागुणैरिव करुणारसप्रवाहैरिव दशनमयूखैर्धवलितपुरोभागम्, उद्वमदमलगङ्गा प्रवाह मिव जह्नुम्, अनवरत सोमोद्गारसुगन्धि निश्वासावकृष्टैर्मूर्तिमद्भिरिव शापाक्षरैः सदा मुखभाग सन्निहितैः परिस्फुरद्भिरलिभिरविरहितम्, अतिकृशतया निम्नतरगण्डगर्तम्, उन्नततर हनुघोणम्, आकरालतारकम् अवशीर्यमाण विरलनयन पक्ष्ममालम्, उद्गत दीर्घरोम रुद्ध श्रवणविवरम्, आनाभिलम्बित कूर्च कलापमाननमादधानम्...."**

**शब्दार्थ**—**उपरचितभस्म त्रिपुण्ड्रकेण**=लगाए गये भस्म के त्रिपुण्ड् से (तीन रेखाओं वाला तिलक) **तिर्यक् प्रवृत्तत्रिपथगास्रोतस्त्रयेण**=तिर्यक=तिरछे होकर, प्रवृत्त=बहने वाली, त्रिपथगा=गङ्गा के, स्रोतस्त्रयेण=तीन धाराओं से युक्त **हिमगिरिशिलातलेनेव**=हिमालय पर्वत की चट्टान के समान **ललाटफलकेन**=भाल (मस्तक) से **उपेतम्**=युक्त **अधोमुखचन्द्रकलाकाराभ्याम्**=अधोमुखी चन्द्रकला के समान आकार वाली **अवलम्बितबलिशिथिलाभ्याम्**=लटकती हुई झुर्रियों से शिथिल हुई, **भ्रूलताभ्याम्**=भौहों से **अवष्टभ्यमानदृष्टिम्**=अवरुद्ध दृष्टि वाले, **अनवरतमन्त्रा-**

**भ्यास विवृताधरपुटया**=निरन्तर मन्त्रों का उच्चारणाभ्यास करने से खुले हुए होटों के कारण **निष्पतद्भिः**=निकलती हुई **अतिशुचिभिः**=अत्यन्त शुभ्र या पवित्र **सत्यप्ररोहैरिव**=सत्य के अंकुरों के समान, **स्वच्छेन्द्रियवृत्तिभिरिव**=निर्मल इन्द्रियों के व्यापार के समान, **विद्यागुणैरिव**=विद्या (ज्ञान) के गुणों के समान **करुणरसप्रवाहैरिव** =करुण रस की धाराओं के समान **दशनमयूखैः**=दाँतों की किरणों से **धवलितपुरोभागम्**=सम्मुख भाग को श्वेत करने वाले, **उद्वमद्**=उगलते हुए **अमलगङ्गाप्रवाहमिव**=श्वेत गङ्गा की धारा को **जह्नुम्**=जह्नु ऋषि के समान (प्रतीत होने वाले), **अनवरत सोमोद्गारसुगन्धि निश्वासावकृष्टैः**=निरन्तर सोमरस की डकार की सुगन्धित सांसों से खींचे गये **मूर्तिमद्भिः**=मूर्तिमान् (शरीरधारी) **शापाक्षरैरिव** = शाप के अक्षरों के समान **सदा**=सदैव **मुखभागसन्निहितैः**=मुख के समीप **परिस्फुरद्भिः** = मंडराने वाले **अलिभिरविरहितम्**=भौरों से युक्त, अतिकृशतप्त=अत्यन्त दुबले होने के कारण **निम्नतरगण्डर्तम्**=गहरे गाल के गड्ढों वाले, **उन्नततर हनुघोणम्**=अतिशय ऊँची ठोढ़ी और नासिका वाले, **आकरालतारकम्**=अत्यन्त तीखी (भयावह) नेत्रों की पुतलियों वाले, **अवशीर्यमाणविरल नयनपक्ष्ममालम्**=झड़ती हुई अतएव विरल हुई नेत्रों की वरौनियों (नेत्ररोमराजि) के समूह वाले, **उद्गतदीर्घरोमरुद्धश्रवणविवरम्**=उगे हुए लम्बे-लम्बे रोमों (रोओं) से ढके हुए कान के छेदों वाले, **आनाभिलम्बितकूर्चकलापम्**=नाभि तक लटकते हुए दाढ़ी के बालों वाले **आननम् आदधानम्**=मुख को धारण करने वाले (जाबालि को देखा)।

**अनुवाद**—तिरछे होकर बहने वाली गंगा की तीन धाराओं से युक्त हिमालय पर्वत की चट्टान के समान तीन रेखाओं वाले त्रिपुण्ड्रक तिलक से युक्त मस्तक वाले (जाबालि), निम्नाभिमुख चन्द्रमा की कला के समान (वृद्धावस्था के कारण) लटकती हुई झुर्रियों से शिथिल (अर्थात् नीचे को लटकी हुई) भौंहों के कारण बाधा युक्त दृष्टि वाले, निरन्तर मन्त्रोच्चारण से खुले हुए होठों से निकलती हुई अत्यन्त श्वेत (दन्त किरणों) सत्य के अंकुरों के समान, निर्मल इन्द्रियों के व्यापार के समान, विद्या के गुणों के समान, करुण रस की धाराओं के समान दाँतों की किरणों से सम्मुख भाग को श्वेत करने वाले अतएव गंगा की श्वेत धारा को उगलते हुए जह्नु ऋषि के समान प्रतीत होने वाले, निरन्तर सोमरस का पान करने से आने वाली डकार की सुगन्धित श्वांसों से आकर्षित (भ्रमरों से), मूर्तिमान शापाक्षरों से प्रतीत होने वाले, सदा मुखाग्र के समीप मण्डराने वाले भौरों से युक्त, अत्यन्त दुबले शरीर के कारण गहरे गाल के गड्ढों वाले, अतिशय ऊँची ठोढ़ी और नाक वाले, अत्यन्त तीखी या भयावह नेत्र पुतलियों वाले, झड़ने के कारण विरल हुई बरौनियों (नेत्ररोमराजि) वाले, उत्पन्न हुए लम्बे-लम्बे बालों (रोओं) से ढके कर्णछिद्रों वाले, नाभि तक लटकते हुए दाढ़ी के बालों वाले मुख को धारण करने वाले (जाबालि) को देखा)।

**संस्कृत व्याख्या**—जाबालिं वर्णयन् कविस्तस्य मुखावयवानां काल्पनिकं वर्णनं कुर्वन् क्रमशः ललाट—नेत्रदृष्टि—दन्तकिरण—हनु—नासिका—कर्ण कूर्चानाञ्च चित्रणं करोति यथा—**उपरचित भस्मत्रिपुण्ड्रकेण** उपरचितानि विहितानि भस्मना त्रिपुण्ड्रकाणि तिर्यक्रेखात्रययुक्तानि तिलकानि यत्र तेन अत एव **तिर्यक्प्रवृत्तत्रिपथगास्रोतस्त्रयेण**—तिर्यक् यथा स्यात्तथा प्रवृत्तं कुटिलं प्रचलितम् त्रिपथगायाः गङ्गायाः स्रोतस्त्रयं त्रिप्रवाहो यत्र तादृशेन **हिमगिरिशिलातलेनेव**—हिमगिरेः हिमालय पर्वतस्य शिलातलं प्रस्तरपटलमिति हिमगिरिशिलातलं तेन इव शोभमानेन **ललाटफलकेन** भालपट्टकेन **उपेतम्**=युक्तम् आननम् इति योज्यम् । **अधोमुखचन्द्रकलाकाराभ्याम्**=अधोमुखी अवनतानना या चन्द्रकला हिमांशुलेखा तस्याः आकार इव आकारः स्वरूपं ययोस्ताभ्याम् **अवलम्बित बलिशिथिलाभ्याम्**—अवलम्बिता वार्धक्यात् आश्रिता या वलिः शिथिलचर्मरेखा तया शिथिलाभ्यां श्लथत्वान्नेत्रोपरि पतिताभ्यां **भ्रूलताभ्याम्**—कोमल भ्रूभ्याम् **अवष्टभ्यमानदृष्टिम्**—अवष्टभ्यमानाअवरुद्धयमाना दृष्टिः अवलोकन शक्तिः यस्य तत् तादृशम् ।

**अनवरतमन्त्राभ्यासविवृताधरपुटया**—अनवरतं निरन्तरं यो मन्त्राभ्यासः मनजपावृत्तिः तेन विवृतं व्यात्तम् अधरपुटम् ओष्ठसंपुटं यस्य तस्य भावस्तया कारणेन निष्पभ्दिः बहिः निःसरभ्दिः **अतिशुचिभिः**—अत्यन्तस्वच्छैः **सत्यप्ररोहैरिव** सत्यस्य सत्यवाचः प्ररोहैः अङ्कुरैरिव, **स्वच्छेन्द्रियवृत्तिभिरिव** स्वच्छाः अवदाताः याः इन्द्रियवृत्तयः इन्द्रियव्यापारास्ताभिरिव **विद्यागुणैरिव**—विद्यानाम् आन्वीक्षिक्यादीनाम् अथवा वेदवेदाङ्गादिचतुर्दशविद्यानां गुणैः विनयादिभिरिव **करुणरसप्रवाहैरिव** करुणा दया एव रसः तस्य प्रवाहैरिव स्रोतोभिरिव **दशनमयूखैः**—दशनरश्मिभिः **धवलित पुरोभागम्** धवलितः शुभ्रीकृतः पुरोभागः अग्रप्रदेशो यस्यसः तम् तादृशम् अत एव **उद्वमन्**—बहिरागच्छन् (जह्नु ऋषेः दक्षिणश्रोत्रात्प्रादुर्भूता गङ्गेतिप्रसिद्धिः) **अमलः** स्वच्छः गङ्गाप्रवाहः भागीरथीस्रोतो यस्मात्तं तादृशं **जह्नुम् इव**—जह्नु नामानं ऋषिमिव विद्यमानम । **अनवरतसोमोद्गारसुगन्धिनिःश्वासावकृष्टैः**=अनवरतं निरन्तरं पीतः यः सोमः सोमरसः तस्योद्गारः प्रकटितः वायुजनित शब्दः तेन सुगन्धिना सौरभवता निश्वासेन पवनेन **अवकृष्टैः** आकर्षितैः **मूर्तिमद्भिः** शरीरधारिभिः **शापाक्षरैरिव**—अभिसम्पात वर्णैरिव सदा सर्वदा **मुखभागसन्निहितैः** मुखस्य वदनस्य यो भागः अग्रिम प्रदेशः तत्र सन्निहितैः विद्यमानैः **परिस्फुरद्भिः** सञ्चरभ्दिः **अलिभिः** भ्रमरैः **अविरहितम्**—अपरित्यक्तम् । **अतिकृशतया**—अतिशयदुर्बलशरीरहेतुना **निम्नतरगण्डगर्तम्**—निम्नतरौ अतिगम्भीरतरौ गण्डगर्तौ अवटीभूतौ कपोलौ यस्मिनु तत् तादृशम् **उन्नततरहनुघोणम्**—उन्नततरः अत्युच्चा हनुः चिबुकं घोणा नासिका च तत्र तादृशम् **आकरालतारकम्** या ईषत् कराले वक्रे तारके कनीनिके यत्र तादृशम्, **अवशीर्यमाणविरलनयनपक्ष्ममालम्**—अवशीर्यमाणा वार्धक्यादुत्तरोत्तरं क्षीयमाणा अतएव विरला-असान्द्रा नयनपक्ष्ममाला नेत्रलोमपंक्तिः यत्र तादृशम् **उद्गतदीर्घरोमरुद्धश्रवणविवरम्**—उद्गतानि उत्पन्नानि यानि दीर्घाणि विस्तृतानि रोमाणि श्रोत्रलोमानि तैः

रुद्धे आवृते श्रवणविवरे श्रोत्रछिद्रे यत्र तत् तादृशम्, आनाभिलम्बित कूर्चकलापम्—नाभिपर्यन्तलम्बमानः कूर्चकलापः श्मश्रुसमूहः यत्र तत् तादृशम् आननम्=मुखं वदनमित्यर्थः बधानम् धारयन्तं जाबालिमपश्यत् इत्यग्रेणान्वयः।

विशेष—इस गद्यखण्ड में कवि ने जाबालि के मुखावयवों का वर्णन करते हुए क्रमशः मस्तक, नेत्र, दन्तकिरण, ठोड़ी, नाक, कान और दाढ़ी का वर्णन किया है।

(१) हिमगिरिशिलातलेनेव, सत्यप्ररोहैरिव इत्यादि में उपमा अलंकार है।

(२) गङ्गाप्रवाहमिव जह्नुम्—गङ्गा को उगलने वाले जह्नु ऋषि के समान। यहाँ एक पौराणिक कथा है कि राजा भगीरथ के तप प्रभाव से शङ्कर की जटाओं से निकलकर गंगा जब आगे बढ़ती जा रही थी तो मार्ग में जह्नु ऋषि की यज्ञभूमि मिली। उसे भी गंगा ने अपने प्रवाह से जलमग्न कर दिया इससे क्रुद्ध होकर जह्नु ऋषि ने गंगा प्रवाह को पी लिया तब भगीरथ राजा ने उनकी प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार कर ऋषि ने अपने मुख से गंगा प्रवाह को उगल दिया। इसीलिये गंगा का एक नाम जाह्नवी भी है।

जाबालि ऋषि के खुले हुए मुख से दाँतों की श्वेत किरणें जह्नु के मुख से निकलती हुई श्वेत गङ्गा की धारा सी प्रतीत हो रही थीं।

(३) अनवरतसोमोद्गार—प्राचीन काल में यज्ञ के अवसर पर सोमरस पीने की परम्परा थी। ऋषि जाबालि भी सोमरस पीते थे, अतः उनको जब डकार आती थी तो उनकी श्वांस में सोमरस की गन्ध चारों ओर फैल जाती थी अतः भौंरे मुख के सामने मँडराने लगते थे। कवि ने कृष्ण वर्णीय भौंरों में पापाक्षरों की सम्भावना की है अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(४) प्राचीन ऋषि प्रायः दाढ़ी रखते थे और वह दाढ़ी बहुत बढ़ जाने के कारण नाभि तक दीर्घ हो जाती थी। जाबालि की भी दाढ़ी इसी प्रकार नाभि तक लम्बी थी।

**अतिचपलानामिन्द्रियाश्वानाम्, अन्तः संयमनरज्जुभिरिवाततताभिः कण्ठनाडीभिर्निरन्तरावनद्ध कन्धरम्, समुन्नत विरलास्थि पञ्जरम्, अंसावलम्बितधवलयज्ञोपवीतम्, अनिलवशजनिततनु तरंगभंगम उत्प्लवमाननवमृणालमिव मन्दाकिनीप्रवाहम्, अकलुषमङ्गमुद्वहन्तम्, अमलस्फटिक शकलघटितमक्षवलयमत्युज्ज्वल स्थूलमुक्ताफलग्रथितं सरस्वतीहारमिव चलदङ्गुलि विवरगतमावर्त्तयन्तम्, अनवरतभ्रमिततारकाचक्रमपरमिव ध्रुवम्....।**

शब्दार्थ—अतिचपलानामिन्द्रियाश्वानाम्=अत्यन्त चञ्चल इन्द्रिय रूपी अश्वों की, अन्तःसंयमनरज्जुभिरिव=भीतर ही भीतर बाँधने के लिए रस्सियों (लगाम) की भाँति, आततताभिः=फैली हुई कण्ठनाडीभिः=गले की नसों से, निरन्तरावनद्धकन्धरम्=निरन्तर जकड़ी हुई ग्रीवा वाले, समुन्नतविरलास्थिपञ्जरम्=उभरी हुई तथा दूर-दूर विद्यमान हड्डियों के ढाँचे वाले अंसावलम्बितधवलयज्ञोपवी-

**तम्**=कन्धे पर लटकते हुए श्वेत यज्ञोपवीत वाले, **अनिलवशजनित तनुतरङ्गभङ्गम्**=वायु के वेग से उत्पन्न हल्की-हल्की तरंगों वाले **उत्प्लवमाननवमृणालमिव**=तैरते हुए नवीन कमलनाल वाले **मन्दाकिनी प्रवाहम्**=गङ्गा के प्रवाह के समान, **अकलुषम्**=निर्मल, निष्कलङ्क **अङ्गम् उद्वहन्तम्**=शरीर को धारण करने वाले, **अमलस्फटिक शकलघटितम्**=शुभ्र स्फटिक मणि के टुकड़ों (गुरियों) से गुंथी हुई **अक्षवलयम्**=जपमाला को, **अत्युज्वलस्थूलमुक्ताफलग्रथितम् हारमिव**=अत्यधिक श्वेत बड़े-बड़े मोतियों से गुंथे हुए **सरस्वती हारमिव**=देवी सरस्वती के हार के समान **चलदङ्गुलिविवरगतमावर्तयन्तम्**=चञ्चल उंगलियों के मध्य घुमाते हुए **अनवरतभ्रमिततारकाचक्रम्**=निरन्तर घूमते हुए तारामण्डल से युक्त, **अपरम् ध्रुवम् इव**=दूसरे ध्रुव नक्षत्र के समान (प्रतीत होने वाले जाबालि को देखा)।

**अनुवाद**—अति चञ्चल इन्द्रिय रूपी घोड़ों को भीतर ही बाँधने वाली रस्सियों अथवा इन्द्रियों रूपी घोड़ों को वश में करने वाली लगाम के समान बड़ी-बड़ी गले की नसों से युक्त (जकड़ी हुई) ग्रीवा वाले, उभरी हुई एवं विरल हड्डियों वाले, कन्धे पर लटकते हुए यज्ञोपवीत से हवा के कारण उत्पन्न हल्की-हल्की तरंगों में तैरते हुए नवीन कमलनाल से युक्त गंगा की धारा के समान निष्कलुष शरीर को धारण करने वाले, अत्यन्त श्वेत बड़े-बड़े मोतियों से गुंथे हुए सरस्वती के हार के समान स्वच्छ स्फटिक के टुकड़ों (गुरियों) से गुंथी हुई जपमाला को अपनी चंचल उंगलियों के मध्य घुमाते हुए अतएव निरन्तर घूमते हुए नक्षत्र मण्डल से युक्त ध्रुव नक्षत्र के समान (शोभायमान जाबालि को देखा)।

**संस्कृत व्याख्या**—महर्षिणः जाबालेःवर्णने तस्याङ्गानां चित्रणम् कृतं कविना यथा—**अतिचपलानाम्** भृशं चञ्चल स्वभावानाम् **इन्द्रियाश्वानाम्**—इन्द्रियाणि श्रोत्र-त्वक्चक्षुरादीनि तान्येवाश्वाः तेषाम् इन्द्रियरूपहयानाम् (अत्ररूपकालंकारः) **अन्तः संयमन रज्जुभि रिव**—अन्तः मध्ये शरीरान्तर्गतमेवेत्यर्थः संयमनाय बन्धनाय नियन्त्रणाय वा रज्जुभिरिव प्रग्रहैरिव **आतताभिः** अतिवितृस्ताभिः **कण्ठनाडीभिः** गलस्थानीयस्नायुभिः **निरन्तरावनद्धकन्धरम्** निरन्तरं सततं यथा स्यात्तथा अवनद्धा संयुता संबद्धा वा कन्धरा ग्रीवा यस्मिन् तत् तादृशम् अङ्गमित्यग्रेणान्वयः, **समुन्नतविरलास्थिपञ्जरम्**-समुन्नतम् ऊर्ध्वगतं स्पष्टतयादृश्यमानमित्यर्थः, विरलम् असंहतम् अस्थि-पञ्जरम् कङ्कालं यस्य तत् तादृशम् अतिकृशत्वात् स्पष्ट प्रतीयमानास्थिसमूहमात्रमिवाङ्गम्, **अंसावलम्बित धवलयज्ञोपवीतम्**—अंसे वामस्कन्धे अवलम्बितं विद्यमानं धवलं शुभ्रं यज्ञोपवीतं यज्ञसूत्रं यस्मिन् तत् तादृशम्, अतएव **अनिलवशजनिततनुतरङ्गभङ्गम्**=अनिलवशेन वायुप्रभावेण जनितः उत्पादितः तनूनां लघूनां तरङ्गाणां वीचीनां भङ्गाः खण्डाः यस्मिन् तत् वायुवेगोत्पादितलघूर्मि खण्डमण्डितं तथा च **उत्प्लवमान नवमृणालम्**—उत्प्लवमानं संतरत् नवं नूतनं मृणालं कमलनालं यस्मिन् तम् **मन्दाकिनी प्रवाहमिव**—मन्दाकिन्याः गङ्गायाः प्रवाहम् स्रोत इव कमल-

नालं संयुतगङ्गासोत इव **अकलुषम्** निष्पायं निर्मलं वा अङ्गम् शरीरम् **उद्वहन्तम्** धारयन्तम् (जाबालिमित्यस्य विशेषणम्)।

**अत्युज्ज्वलस्थूलमुक्ताफलग्रथितं**—अत्युज्जवलानि अतिशुभ्रवर्णानि स्थूलानि पृथुलानि यानि मुक्ता फलानि मौक्तिकानि तैः ग्रथितं गुम्फितं **सरस्वती हारमिव**—सरस्वत्याः वाग्देव्याः हारमिव कण्ठमालामिव शोभमानम्, **चलदङ्गुलिविवरगतम्**—चलन्तीनां जपकाले अक्षवलयाकर्षणेन चपलीभूतानाम् अङ्गुलीनां कराग्रावयवानां विवरगतम् रन्ध्रगतम् **अमलस्फटिकशकलघटितम्**—अमलैः स्वच्छैः स्फटिकशकलैः स्फटिक नाममणि खण्डैः घटितं रचितम् **अक्षवलजम्**—जपमालाम् **आवर्त्तयन्तम्**—यथाक्रमं भ्रामयन्तम् अतएव **अनवरत भ्रमिततारकाचक्रम्**—अनवरतं सततं यथा स्यात्तथा भ्रमितं पर्यटितं तारकाचक्रम् नक्षत्रमण्डलं यत्र तथोक्तम् **अपरम** द्वितीयं **ध्रुवम्**—ध्रुवनामनक्षत्र विशेषमिव शोभमानं जावालिमपश्यमित्यग्रेणान्वयः।

**विशेष**—इस गद्य खण्ड में कवि ने जाबालि ऋषि के ग्रीवा यज्ञोपवीत और जपमाला का काव्यात्मक वर्णन किया है।

(क) इन्द्रियाश्वानाम्—इस पद में रूपक अलंकार है। सांसारिक विषयों के प्रति सतत् आकर्षित होते रहने के कारण चपल इन्द्रियों में घोड़े का रूपक दिया गया है। कठोपनिषद् में धर्मराज ने नचिकेता को उपदेश देते हुए कहा है—

"इन्द्रियाणि हयानाहु विषयांस्तेषु गोचरान्"।

(ख) जर्जर शरीर जाबालि की ग्रीवा की नसें अत्यधिक उभरी हुई थीं इसलिये उनमें बन्धन रज्जु की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(ग) ऋषि के कन्धे पर लटकते हुए श्वेत यज्ञोपवीत में मृणाल (कमल नाल) की उपमा दी गई है इसमें श्वेत वर्ण सादृश्य है।

(घ) जपमाला में हार की तथा ऋषि में ध्रुव की उपमा दी गई है। ध्रुव उत्तानपाद राजा के पुत्र का नाम था। बाल्यावस्था में उग्रतप करने के कारण नक्षत्र के रूप में आज भी उत्तर दिशा में एक ही स्थान पर उसकी स्थिति मानी जाती है। ध्रुव नक्षत्र से भिन्न सभी तारे घूमते रहते हैं। यहाँ जैसे ध्रुव करोड़ों वर्षों से एक ही स्थान पर स्थिर है और सम्पूर्ण तारामण्डल घूमता रहता है उसी प्रकार जाबालि ऋषि एक ही स्थान पर बैठकर निरन्तर जप करते रहते हैं। यह भाव ध्वनित है।

कालिदास ने परिवह नायक वायु क्षेत्र में तारों की स्थिति स्वीकार की है—

त्रिस्रोतसं वहति यो गगन प्रतिष्ठां
ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः।
यस्य द्वितीय हरि विक्रम निस्तमस्कं
वायोरिदं परिवहस्य वदन्ति मार्गम्॥

उन्नमता शिराजालकेन जरत्कल्पतरुमिव परिणतलतासञ्चयेन निरन्तरनिचितम्, अमलेन चन्द्रांशुभिरिवामृतफेनैरिव गुणसन्तानतन्तुभिरिव निर्मितेन मानससरोजलक्षालनशुचिना दुकूल वल्कलेन द्वितीयेनेव जराजालकेन संच्छादितम्, आसन्नवर्त्तिना मन्दाकिनीसलिलपूर्णेन त्रिदण्डोपविष्टेन स्फाटिककमण्डलुना विकचपुण्डरीकराशिमिव राजहंसेनोपशोभमानम्····।

शब्दार्थ—उन्नमता=ऊपर को उभरी हुई, शिराजालकेन=धमनियों के समूह से, जरत्कल्पतरुम् इव=प्राचीन कल्पवृक्ष के समान, परिणतलता सञ्चयेन=पकी हुई लताओं के समूह से निरन्तरनिचितम्=घने रूप में व्याप्त, अमलेन=श्वेत चन्द्रांशुभिरिव=चन्द्रकिरणों के द्वारा मानों, अमृतफेनैरिव=अमृत के फेन सी, गुणसन्तानतन्तुभिरिव=दया धर्म आदि गुण तन्तुओं से मानों निर्मितेन=बने हुए मानससरोजलक्षालनशुचिना=मानसरोवर के जल में धोने से स्वच्छ पवित्र दुकूलवल्कलेन=छाल के बने हुए वस्त्र से द्वितीयेन=दूसरे जराजालकेन=बुढ़ापे के जाल से संच्छादितम् इव=ढँके हुए से, आसन्नवर्तिना=समीप में विद्यमान मन्दाकिनी सलिलपूर्णेन=गङ्गाजल से भरे हुए त्रिदण्डोपविष्टेन=तिपाई पर रखे हुए स्फाटिककमण्डलुना=स्फटिकमणि निर्मित कमण्डलु से विकचपुण्डरीकराशिमिव=खिले हुए श्वेत कमलों के समान राजहंसेन=राजहंस से उपशोभमानम्=शोभायमान ।

अनुवाद—ऊपर को उभरी हुई धमनियों से गहनतया व्याप्त अतएव पकी हुई लताओं से युक्त प्राचीन कल्पवृक्ष से प्रतीत होने वाले, निर्मल अतएव मानों चन्द्रकिरणों से (अथवा) अमृत के फेनों से (अथवा) गुण समूह के धागों से मानों निर्मित एवं मानसरोवर के जल से धुलने के कारण पवित्र स्वच्छ वल्कल वस्त्र से ढँके हुए मानों द्वितीय वार्धक्य जाल से ढँके हुए हों, समीपस्थित गङ्गाजल से भरे हुए तिपाई पर रखे हुए हंस पक्ष में तीन दण्ड की समयावधि से स्थित राजहंस से सुशोभित विकसित श्वेत कमल समूह के समान स्फटिकमणि निर्मित कमण्डलु से शोभित (जाबालि ऋषि को देखा)।

संस्कृत व्याख्या—परिणतलता सञ्चयेन—परिणतानां सम्यक् पक्वानां लतानां व्रततीनां सञ्चयेन समूहेन निरन्तरनिचितम्—निरन्तरं सान्द्रं यथा स्यात्तथा (सान्द्रभावेन) निचितं व्याप्तम् जरत्कल्पतरुमिव—पुरातनकल्पवृक्षमिवेत्युपमा, उन्नमता उपरिस्फुरता उत्+नम+शतृ (तृ० एक व०) शिराजालकेन—शिराणां जालकं शिरा जालकं तेन धमनिसमूहेन निरन्तनिचितं (जाबालि मित्यग्रेणान्वयः) अमलेन निर्मलेन, अतएव चन्द्रांशुभिरिव—चन्द्रांशुभिरिव अमृतफेनैरिव सुधाफेन समूहैरिव वा, गुणसन्तानतन्तुभिरिव—गुणानां दया दाक्षिण्यादीनां सन्तानाः समूहास्तेषां तन्तवः अथवा समूहाः एव तन्तवः सूत्राणि तैरिव निर्मितेन रचितेन मानस सरोजलक्षालनशुचिना-मानससरसः मानसाख्य सरोवरस्य जलेन यत् क्षालनं शुचीकरणं तेन शुचिना पवित्रेण स्वच्छेन वा, द्वितीयेन अपरेण जराजालकेन वार्धक्यजालकेनेव वार्धक्य समू-

हैने वेत्युत्प्रेक्षा दुकूलवल्कलेन—दुकूलवत् क्षौमवसनवत् वल्कलेन वृक्षत्वग्रचितेन वस्त्रेण संछादितम्—आवृतम् । आसन्नवर्त्तिना आसन्नं निकटं वर्तते इति तच्छील: तेन पार्श्ववर्तिना मन्दाकिनीसलिलपूर्णेन मन्दाकिन्याः गङ्गायाः सलिलं जलं तेन पूर्णेन भृतेन अथ च त्रिदण्डोपविष्टेन—त्रिदण्डस्त्रिपादिका (तिपाई इति हिन्द्याम्) तत्रोपविष्टेन तदुपरिस्थितेन राजहंसपक्षे—त्रिदण्डं कालावधि त्रिदण्डादुपविष्टेन राजहंसेन कादम्बेन विकचपुण्डरीकराशिमिव विकचः प्रस्फुटितः यः पुण्डरीकराशिः श्वेत कमल समूहः तमिव उपशोभमानम्=विराजमानं जाबालिमपश्यमित्यग्रेणान्वयः ।

**विशेष**—इस गद्यखण्ड में कवि ने वृद्ध जाबालि के धमनीजाल एवं उनके वल्कल वस्त्र का वर्णन किया है ।

(क) 'जरत्कल्पतरुमिव' पद में उपमा अलंकार है । जाबालि के सम्पूर्ण शरीर में धमनियाँ उभर आई हैं जैसे प्राचीन कल्पवृक्ष में पुरानी पकी हुई लताएँ लिपटी हों । यहाँ कल्पवृक्ष से उपमा देकर कवि ने जाबालि की दीर्घायु को व्यञ्जित किया है ।

(ख) वल्कल वस्त्र में उभरी हुई शिराओं की श्वेतिमा को ध्यान में रख कर उस वस्त्र के निर्माण में चन्द्र किरणों को अमृत फेन को तथा दया दाक्षिण्यादि गुणों को हेतु रूप में सम्भावित करने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार तथा मानसरोवर के जल में धोने से पवित्र होने के कारण काव्यलिङ्ग अलंकार है । इस प्रकार उत्प्रेक्षा और काव्यलिंग का अङ्गाङ्गि भाव संकर अलंकार है । वल्कल वस्त्र में द्वितीय वृद्धावस्था जन्य शिराजाल की कल्पना भी स्पृहणीय है ।

(ग) समीपस्थ स्फटिक मणि रचित कमण्डलु में राजहंस की उपमा दी गई है ।

**स्थैर्येणाचलानां गाम्भीर्येण सागराणां, तेजसा सवितुः प्रशमेन तुषार रश्मेः निर्मलतयाऽम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्वाणम्, वैनतेयमिव स्वप्रभावोपात्तसकल द्विजाधिपत्यम्, कमलासनमिवाश्रमगुरुम्, जरच्चन्दनतरुमिव भुजङ्गनिर्मोक धवलजटाकुलम्, प्रशस्तवारणमिव प्रलम्बकर्णबालम्, बृहस्पतिमिवाजन्मवर्द्धितकचम्, दिवसमिवोद्यदर्क बिम्बभास्वरमुखम्, शरत्कालमिव क्षीणवर्षम, शन्तनुमिवं प्रियसत्यव्रतम्, अम्बिकाकरतलमिव रुद्राक्षग्रहणनिपुणम्, शिशिरसमयसूर्य्यमिव कृत्तोत्तरासङ्गम्, बडवानलमिव सततपयोभक्ष्यम्, शून्यनगरमिव दीनानाथ विपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्ट शरीरं भगवन्तं जाबालिमपश्यम् ।**

**शब्दार्थ**—**स्थैर्य्येण**=स्थिरता से **अचलानाम्**=पर्वतों का **गाम्भीर्येण**= गम्भीरता से **सागराणाम्**=समुद्रों का **तेजसा**=तेज से **सवितुः**=सूर्य का, **प्रशमेन**= शान्ति से **तुषाररश्मेः**=चन्द्रमा का **निर्मलतया**=निर्मलता से **अम्बरतलस्य**=आकाश का **संविभागमिव**=बंटवारा सा **कुर्व्वाणम्**=करने वाले या करते हुए, **वैनतेयमिव**= गरुण के समान **स्वप्रभावोपात्तसकलद्विजाधिपत्यम्**=अपने प्रभाव से प्राप्त कर लिया है समस्त ब्राह्मणों का स्वामित्व जिन्होंने पक्ष में—समस्त पक्षियों का स्वामित्व, **कमलासनमिव**=ब्रह्मा के समान **आश्रमगुरुम्**=अपने आश्रम के गुरु पक्ष में चारों

आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास आश्रमों के गुरु, **जरच्चन्दनतरुमिव**= प्राचीन चन्दन के वृक्ष के समान **भुजङ्गनिर्म्मोकधवलजटाकुलम्**=सर्प की केंचुली के समान श्वेत जटाओं से घिरे हुए **पक्ष में**-सर्प की केंचुली रूपी श्वेत जटाओं से व्याप्त, **प्रशस्तवारणमिव**=श्रेष्ठ हाथी के समान **प्रलम्बकर्णबालम्**=बड़े-बड़े कान के बालों वाले, **बृहस्पतिमिव**=सुरगुरु वृहस्पति के समान **आजन्मवर्द्धितकचम्**=जन्म से ही बालों को बढ़ाने वाले **बृहस्पति पक्ष में**—जन्म काल से ही कच नामक अपने पुत्र का पालन-पोषण करने वाले, **दिवसमिव**=दिन के समान **उद्यदर्कबिम्बभास्वर मुखम्**= उदीयमान सूर्यविम्ब के समान दीप्तिमान मुख वाले **दिवस पक्ष में**—उदीयमान सूर्य-मण्डल से प्रकाशित आरम्भ भाग वाले, **शरत्कालमिव**=शरद ऋतु के समान **क्षीणवर्षम्**=क्षीण आयु वाले **शरत्पक्ष में**—क्षीण वर्षा वाले, **शन्तनुमिव**=भीष्म के पिता शन्तनु राजा के समान **प्रियसत्यव्रतम्**=सत्य के व्रत से प्रेम करने वाले, **शन्तनु पक्ष में**—अपने पुत्र प्रियव्रत से स्नेह रखने वाले, **अम्बिकाकरतलमिव**=भगवती पार्वती के हाथ के समान **रुद्राक्षग्रहणनिपुणम्**=जपमाला रुद्राक्षमाला को धारण करने में चतुर **अम्बिकाकर पक्ष में**—शङ्कर की आँख को ढँकने में कुशल, **शिशिरसमय सूर्यमिव**=शिशिर ऋतु के सूर्य के समान **कृतोत्तरासंगम्**=उत्तरीय वस्त्र को धारण करने वाले **शिशिर सूर्य पक्ष में**—उत्तर दिशा को ग्रहण करने वाले, **बडवानलमिव**= वडवा नामक अग्नि के समान **सततपयोभक्षयम्**=सदैव दूध का ही आहार लेने वाले, **वडवाग्नि पक्ष में**—सदैव जल का भोजन करने वाले, **शून्यनगरमिव**=उजड़े हुए नगर के समान **दीनानाथविपन्नशरणम्**—दरिद्र, अनाथ और असहाय लोगों को शरण देने वाले [**शून्यनगर पक्ष में**—शोभा शून्य, मनुष्य रहित खण्डहर जैसे घरों को अपनी शरण में रखने वाले, **पशुपतिमिव**=भगवान् शङ्कर के समान **भस्मपाण्डु-रोमाश्लिष्ट शरीरम्**=भस्म के समान श्वेत रोओं से भरे हुए शरीर वाले **पशुपति-पक्ष में**—भस्म से श्वेत रोओं से युक्त शरीर वाले **भगवन्तम्**=भगवान् **जाबालिम्**= जाबालि नाम के ऋषि को **अपश्यम्**=देखा ।

**अनुवाद**—अपनी स्थिरता से पर्वतों का, गम्भीरता से समुद्र का, तेज से सूर्य का, शान्ति से चन्द्रमा का, निर्मलता से आकाश का मानों बँटवारा करते हुए अर्थात् अपने में विद्यमान स्थिरता, गम्भीरता आदि गुणों का पर्वत समुद्र आदि को कुछ अंश देते हुए, अपने प्रभाव से समस्त पक्षियों का स्वामित्व (पक्षिराजत्व) प्राप्त करने वाले गरुण के समान अपने तप प्रभाव से समस्त ब्राह्मणों का स्वामित्व प्राप्त करने वाले, ब्रह्मचर्यग्रहस्थादि चारों आश्रमों के गुरु ब्रह्मा के समान अपने आश्रम के गुरु, सर्पों की केंचुली रूपी जटाओं से युक्त पुराने चन्दनवृक्ष के समान सर्प की केंचुली सदृश श्वेत जटाओं से युक्त, श्रेष्ठ हाथी के समान लम्बे-लम्बे कान के बालों वाले, जन्म से ही अपने पुत्र कच का पालन-पोषण करने वाले वृहस्पति के समान जन्म से ही बाल (केश) बढ़ाने वाले, उदित होते हुए सूर्य के बिम्ब से देदीप्यमान आरम्भ भाग वाले दिन के समान उदीयमान सूर्यबिम्ब के समान चमकते हुए मुख वाले,

क्षीण वर्षा वाले, शरद ऋतु के समय के समान क्षीण आयु वाले, अपने पुत्र सत्यव्रत से स्नेह करने वाले राजा शन्तनु के समान सत्य के व्रत से प्रेम करने वाले, भगवान् शङ्कर के नेत्र को बन्द करने में निपुण पार्वती की हथेली के समान रुद्राक्ष (जपमाला) धारण करने में कुशल, उत्तर दिशा का आश्रय लेने वाले, शिशिर ऋतु के सूर्य के समान उत्तरीय (वस्त्र) को धारण करने वाले, निरन्तर जलभक्षण करने वाली बडवाग्नि के समान निरन्तर दुग्ध का आहार लेने वाले, शोभाहीन, मनुष्य रहित टूटे-फूटे मकानों के आश्रय शून्य नगर के समान दरिद्र, आश्रयहीन और असहाय लोगों को शरण देने वाले, भस्म से श्वेत रोओं से युक्त भगवान् शिव के समान भस्म के समान श्वेत रोओं से युक्त शरीर वाले भगवान जाबालि को देखा।

**संस्कृत व्याख्या**—**स्थैर्येण** स्थिरतया **अचलानाम्**—पर्वतानाम् **गाम्भीर्येण** गम्भीर स्वभावतया **सागराणां** समुद्राणाम् **तेजसा** प्रतापेन **सवितुः** सूर्यस्य **प्रशमेन** शान्त्या **तुषाररश्मेः** तुषारोहिमः तद्वत् शीतलाः रश्मयः किरणाः यस्य तस्य चन्द्रमसः **निर्मलतया** अतिस्वच्छतया **अम्बरतलस्य** आकाशस्य **संविभागं** वितरणम्—स्वस्थैर्य गाम्भीर्यादि गुणानां परेभ्यः पर्वतसमुद्रादिभ्यो वितरणं किञ्चिद्भागं विभज्य प्रतिपादनम् कुर्वाणम् विदधानमिव, जाबालिम् इत्यस्य विशेषणम्। जाबालि ऋषिः स्थैर्य, गाम्भीर्य तेजः प्रशम गिर्मलतादि गुणानामेकस्थानम् इति व्यज्यते। तस्मादेव स्थैर्यादीनां किञ्चिद्भागः पर्वतादिषु समागतस्तथा च ते स्थैर्यादीनां मानकत्वेन प्रसिद्धिं गताः।

**वैनतेयमिव**—विनतायाः अपत्यं पुमान् वैनतेयः, विनतापुत्रं गरुडमिव **स्वप्रभावोपात्तसकलद्विजाधिपत्यम्**—स्वस्यात्मनः प्रभावेण तेजसा माहात्म्येन वा उपात्तं प्राप्तं सकलानां=समस्तानाम् द्विजानां ब्राह्मणानाम् आधिपत्यं स्वामित्वं येन सः तम् (जाबालिम्) **गरुड पक्षे**—स्वप्रभावेण स्वशक्त्या पराक्रमेण वा उपात्तं प्राप्तं सकलेषु समस्तेषु द्विजेषु पक्षिषु आधिपत्यम् स्वामित्वं येन तम्। **कमलासनम् इव**=कमलं सरोजम् आसनं यस्य तं विरञ्चिमिव **आश्रमगुरुम्** - आश्रमस्य तपोभूमेः गुरुम् आचार्यम् (जाबालिम्), **कमलासन पक्षे**—आश्रमाणां ब्रह्मचर्यगार्हस्थ्यवानप्रस्थसन्यासानां गुरुं नियामकम्। ब्रह्मणैव वर्णाश्रमा नियन्त्रिता इति पुराणेषु प्रसिद्धम्। **जरच्चन्दनतरुमिव**—जरत् पुरातनः चन्दनतरुः मलयजवृक्षः तमिव **भुजङ्गनिर्मोकधवलजटाकुलम्**—भुजङ्गानां सर्पाणां निर्मोकाः कञ्चुकाः (केंचुली इति हिन्द्याम्) तद्वद्धवलाभिः श्वेताभिः जटाभिः शिरः केशैः आकुलम् व्याप्तम् **चन्दनतरुपक्षे**—भुजङ्गनिर्मोकैः सर्पकञ्चुकैः धवलाः श्वेताः जटाः वृक्षमूलानि ताभिः आकुलम् संकीर्णम्। प्राचीनचन्दनवृक्षेषु सुगन्धिविशेषात् सर्पाणां निवास इति प्रसिद्धिः।

**प्रशस्तवारणमिव**—प्रशस्तः श्रेष्टलक्षणोपेतः वारणः वारणपतिः हस्तिनायकः तमिव **प्रलम्बकर्णबालम्** प्रलम्बाः विस्तीर्णाः कर्णबालाः श्रवणलोमानि यस्य तं जाबालिम्, **वारणपक्षे**—प्रलम्बाः अतिविस्तृताः कर्णयोः श्रोत्रयोः बालाः पुच्छकेशाश्च यस्य तम्। **बृहस्पतिमिव**—सुरगुरुमिव **आजन्मवर्द्धितकूर्चम्**—आजन्म जन्मप्रभृति वर्द्धिताः

**क्षौरकर्माभावात्** वृद्धिं प्रापिताः कचाः केशाः येन तम् (जाबालिम्) **बृहस्पति पक्षे**—आजन्म जन्मन आरभ्य वर्द्धितः पालनेव पोषणेन वृद्धिं प्रापितः कचः कचनामधेयः स्वसुतो येन तम् तादृशम् **दिवसमिव**—दिवसः वासरः तमिव **उद्यदर्कविम्बभास्वरमुखम्**—उद्यत् उद्गच्छत् यत् अर्कविम्वं सूर्यमण्डलं तद्वत् भास्वरं देदीप्यमानं मुखम् आननं यस्य तम्, **दिवसपक्षे**—उदीयमानसूर्यविम्बेन भास्वरं प्रभाशीलं मुखं प्रारम्भिकभागो यस्य तम् । **शरत्कालम् इव** वर्षात्ययसमयमिव शरद् ऋतुसमयमिवेत्यर्थः **क्षीणवर्षम्**—क्षीणानि व्यतीतानि वर्षाणि वयसः हायनानि यस्य तम् यत्किञ्चिदवशिष्टावस्थाकमित्यर्थः **शरत्पक्षे**—क्षीणं स्वल्पत्वम् उपगता वर्षा वृष्टिर्यस्मिन् तम् । **शान्तनुमिव**—शान्तनुनामानं भीष्मपितामहपितरमिव **प्रियसत्यव्रतम्**—प्रियं प्रेमास्पदम् अभिलषितमित्यर्थः सत्यस्य सत्यभाषणस्य सत्याचारस्य वा व्रतं नियमः यस्य तं, **शान्तनु पक्षे**—प्रियः सत्यव्रतः एतन्नामकः स्वपुत्रो भीष्मः यस्य सः तम् ।

**अम्बिकाकरतलमिव**—अम्बिकायाः भगवत्याः भवान्याः करतलं हस्तमिव **रुद्राक्षग्रहणनिपुणम्**—रुद्राक्षस्य रुद्राक्षमालायाः ग्रहणे उपादाने निपुणम् प्रवीणम् **अम्बिका पक्षे**—रुद्रस्य भगवतः शंकरस्य अक्षिणी नयने तयोः ग्रहणे पिधाने निपुणं दक्षम् । **शिशिरसमयसूर्यमिव**—शिशिरसमयः शीतकालः तस्य तत्कालीनस्य सूर्यम् आदित्यम् इव **कृतोत्तरासङ्गम्**—कृतः भुजान्तराले धारितः उत्तरासङ्गः उत्तरीय वस्त्रं येन तम् जाबालि पक्षे—कृतो विहितः उत्तरस्याः दिशः आसङ्गः संसर्गो येन तम् (शिशिरर्तौ सूर्य उत्तरायणो भवतीति हेतोः) **बडवानलमिव**—बडवा अश्वा तदाकारः अग्निः वडवाग्निः समुद्रानल इत्यर्थः तमिव, **सततपयोभक्ष्यम्**—सततं सर्वदा पयो दुग्धमेव भक्ष्यं भोजनं यस्यं तं जाबालिम्' पक्षे पयो जलमेव सागरजलमेव भक्ष्यं भोज्यं यस्य तम् । **शून्यनगरमिव** जनरहितं नगरमिव पुरमिव **दीनानाथविपन्नशरणम्**—दीनानां दुर्गतानां अनाथानां स्वामि संरक्षक रहितानां विपन्नानां व्याधि पीडितानां च शरणम् शरणदातारं रक्षकम् **शून्यनगर पक्षे**—दीनानि शोभाशून्यानि अनाथानि निवासि जनरहितानि विपन्नानि यतस्ततः शीर्णानि भग्नानीत्यर्थः शरणानि गृहाणि यत्र तत् तादृशम् । **पशुपतिमिव** भगवन्तं महेश्वरम् इव **भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्ट शरीरम्**—भस्म इव भूतिमिव,पाण्डूनि शुभ्रवर्णानि वार्धक्यात् पलितानीत्यर्थः रोमाणि लोमानि तैः आश्लिष्टं समन्तात् सक्तं शरीरं वपुर्यस्य तम् जाबालिम् । पक्षे भस्मना भूतिलेपेन पाण्डुरं शुभ्रं तया च उभया पार्वत्या आश्लिष्टम् आलिङ्गितं शरीरं वपुर्यस्य तं तादृशम् भगवन्तं जाबालिम् एतन्नामकं ऋषिम् अपश्यम् ।

अत्र सर्वत्र जाबालि पक्षे बहुव्रीहि समासः तथा च पक्षे तत्पुरुष समासः । क्वचिदुभयत्र तत्पुरुषो बहुव्रीहिर्वाशाब्दी उपमाऽलंकारश्च ।

**विशेष**—जाबालि ऋषि के विभिन्न उपमान प्रस्तुत करने के कारण उपमा अलंकार है किन्तु यह उपमा शाब्दी है क्योंकि श्लिष्ट शब्दों का ही धर्म साम्य है ।

**वैनतेयः**—विनताया अपत्यं पुमान् इस अर्थ में विनता से ढक् प्रत्यय ढक् को एय् तथा आदि वृद्धि होकर वैनतेय शब्द बना । वैनतेय गरुड़ का नाम है । गरुड़

अमृत प्राप्त कर अपनी माँ को दासता से मुक्त कराने के लिए अनेक देवों से युद्ध करते हुए स्वर्ग तक पहुँच गये थे। उनकी इस वीरता से प्रसन्न हो इन्द्र ने इन्हें पक्षिराज पद दिया था।

'गरुत्मान् गरुडस्ताक्ष्यों वैनतेयः खगेश्वरः' इत्यमरः

**वडवाग्नि**—यह एक प्रकार की समुद्री आग है जो समुद्र के जल को जलाया करती है। पौराणिक मान्यता के अनुसार अश्विनी नामक अप्सरा वडवा (घोड़ी) का रूप धारण कर सूर्य से गर्भवती होने पर समुद्र में कूद गई। उसके मुख की आग से समुद्र जल जलता रहता है।

**आलोक्य चाहमचिन्तयम् अहो प्रभावस्तपसाम्! इयमस्य शान्तापि मूर्तिरुत्तप्तकनकावदाता परिस्फुरन्ती सौदामिनीव चक्षुषः प्रतिहन्ति तेजांसि, सततमुदासीनापि महाप्रभावतया भयमिवोपजनयति प्रथमोपगतस्य शुष्कनलकाशकुसुमनिपतितानलचटुलवृत्ति नित्यमसहिष्णु तपस्विनां प्रतनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या दुःसहं भवति किमुत सकल भुवनवन्दित चरणानामनवरत तपःसलिलक्षालितमलानां करतलामलक फलवदखिलं जगदालोकयतां दिव्येन चक्षुषा भगवतामेवंविधानामधक्षयकारिणाम्।**

**शब्दार्थ**—**आलोक्य च**=और (उन जावालि ऋषि को) देखकर **अहम्**=मैंने (शुक ने) **अचिन्तयम्**=विचार किया। **अहो प्रभावस्तपसाम्**=अरे! तपस्याओं का कितना (अधिक) प्रभाव है। **इयम्**=यह **अस्य**=जावालि की **शान्तापि मूर्तिः**=शान्त मूर्ति होने पर भी **उत्तप्तकनकावदाता**=तपे हुए सुवर्ण के समान स्वच्छ **परिस्फुरन्ती**=चमकती हुई **सौदामिनीव**=बिजली के समान **चक्षुषः**=आंखों के **तेजांसि**=ज्योति को **प्रतिहन्ति**=नष्ट करती है अर्थात् आंखों में चकाचौंध उत्पन्न करती है, **सततमुदासीनापि**=सदा उदासीन (भाव रहित) होने पर भी **प्रभावतया**=अति प्रभावशालिनी होने के कारण **प्रथमोपगतस्य**=नवागन्तुक के लिए **भयमिवोपजनयति**=भय सा उत्पन्न कर रही है। **शुष्कनलकाशकुसुमनिपतितानलचटुलवृत्ति नित्यमसहिष्णु**=शुष्क नल=सूखे हुए नर कुल एवं काशकुसुम=कांस के फूलों पर, निपतितानल=गिरी हुई अग्नि की चटुल वृत्ति=चञ्चल स्वभाव के समान (शीघ्र प्रज्वलित होकर फैलने के समान) नित्यम्=निश्चय ही असहिष्णु, **प्रतनुतपसाम्**=स्वल्पतपश्चर्या वाले **तपस्विनाम्**=तपस्वियों का **तेजः**=तपः जन्य तेज **प्रकृत्या**=स्वभाव से ही **दुःसहं भवति**=दुःसह होता है। **किमुत**=फिर भला, **सकल भुवनतलवन्दित चरणानाम्**=सम्पूर्ण भूमण्डल द्वारा पूजित चरणों वाले **अनवरत तपः सलिल क्षपितमलानाम्**=निरन्तर तपस्या रूपी जल से धुले हुए पापों वाले **करतलामलकफलवद्**=हथेली पर रखे हुए आंवले के समान **अखिल जगदालोकयताम्**=सम्पूर्ण संसार को देखने वाले **दिव्येन चक्षुषा**=दिव्य दृष्टि से, **भगवताम्**=सामर्थ्यशाली, **एवंविधानाम्**=इस प्रकार के **अघक्षय कारिणाम्**=पापों का विनाश करने वाले।

**अनुवाद**—(शुक जाबालि ऋषि को देखकर मन ही मन सोचता है) मुनि जाबालि को देखकर मैंने सोचा तपस्या का प्रभाव आश्चर्यकारी है। यह इनका शान्त शरीर भी तपे हुए सुवर्ण के समान स्वच्छ, चमकती हुई बिजली के समान (इनका तेज) आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर उनके तेज को ही नष्ट कर रहा है। (अर्थात् जाबालि के शारीरिक तेज के समक्ष आँखें ही नहीं ठहर रही हैं) तथा पहले पहल (आश्रम में) आये हुए व्यक्ति को, भावहीन होने पर भी महाप्रभावशालिनी जाबालि की मूर्ति भयभीत सा कर रही है। सूखे हुए नरकुल घास एवं कांस के फूलों पर गिरी हुई आग के समान चञ्चल स्वभाव वाले असहनशील (ईर्ष्यालु) स्वल्प तप वाले तापसों का तेज भी स्वभावतः अत्यन्त दुःसह होता है तो फिर सम्पूर्ण संसार के द्वारा जिनके चरणों की वन्दना की जाती है, जिन्होंने अपनी निरन्तर तपस्या रूपी जलधारा से समस्त विकारों (मलों) को धो डाला है, जो अपनी दिव्य दृष्टि से हाथ पर रखे हुए आंवले के समान सम्पूर्ण संसार को देख सकते हैं ऐसे पापों का नाश करने वाले महान् तपस्वियों की तो बात ही क्या है।

**संस्कृत व्याख्या**—**अवलोक्य** दृष्ट्वा च **अहम्** वैशम्पायन नाम शुकः **अचिन्तयम्** व्यचारयम्। **अहो** महदाश्चर्यम् **तपसाम्** तपश्चर्याणाम् **प्रभावः** माहात्म्यम्। **अस्य** मुनेः जाबालेः **इयम्** पुरोदृश्यमाना **शान्तापि** शान्तिसम्पन्नापि **मूर्तिः**, **उत्तप्तकनकावदाता**—उत्तप्तम् अत्यन्तम् उष्णीकृतं यत् कनकं सुवर्ण तद्वत् अवदाता स्वच्छा शुभ्रा वा सती **परिस्फुरन्ती** सञ्चरन्ती देदीप्यमानेत्यर्थः **सौदामिनीव** नभोविद्युदिव **चक्षुषः** नेत्रयोः **तेजांसि** ज्योतींषि **प्रतिहन्ति** प्रतिरुणद्धि तिरस्करोतीति तात्पर्यम्। **सततम्** अजस्रम् **उदासीनापि** भावनिरपेक्षापि (क्रोधामर्षभयादि विकाररहितापि) **महाप्रभावतया** अत्युग्रप्रतापशालितया **प्रथमोपगतस्य** प्रथमदारम् आश्रमम् आगतस्य **भयम्** भीतिमिव **उपजनयति** समुत्पादयति **शुष्कनलकाशकुसुमनिपतितानलचटुलवृत्ति**—शुष्काणि अनार्द्राणि यानि नलानि नडाख्य तृणानि तथा च काशकुसुमानि कासनामक तृणविशेषाणां पुष्पाणि तेषु निपतितो योऽनलः अग्निः तद्वत् चटुला चपला वृत्तिः व्यापारो यस्य तत्तादृशम् **प्रकृत्या** स्वाभावेन **नित्यम्** सततम् **असहिष्णु** असहनशीलम् ईर्ष्यालुम् इत्यर्थः **तनुतपसाम्** तनु स्वल्पं तपो येषान्तेषामपि तपस्विनां **तेजः** प्रतापः प्रभावो वा **दुःसहं** दुःखेन सोढुं शक्यं **भवति** यदा तदा **सकलभुवनतलवन्दित चरणानाम्** सकलेन निखिलेन भुवनतलेन भूमण्डलेन वन्दितौ पूजितौ चरणौ पादौ येषां तेषाम् **अनवरत तपःक्षपितमलानाम्** अनवरतं निरन्तरं समर्जितं यत्तपः तपस्या तेन क्षपितं नाशितं मलम् दुष्कृतं दुर्विकारं वा यैस्तेषाम्, **दिव्येन** अलौकिकेन **चक्षुषा**—दृष्टया **अखिलं** समस्तम् **जगत्** भुवनतलम् **करतलामलकवत्** करतले पाणितले स्थितः यः आमलकः धात्रीफलं तद्वत् **आलोकयतां** पश्यताम् **एवंविधानाम्** ईदृशानां जाबालिसदृशानां **अघक्षयकारिणाम्** अघानां पापानां क्षयं विनाशं कर्तुं शीलं येषान्तेषाम् **भगवताम्** माहात्म्यवताम् **किमुत का कथा**। अर्थात् ईदृशानां प्रतिभावतां महर्षीणां प्रभावस्य तेजसस्तु कथैव का।

विशेष—'अहो' यह आश्चर्य द्योतक अव्यय है। शान्तापि—शुक को यद्यपि जाबालि ऋषि की मूर्ति शान्त प्रतीत होती है किन्तु उसमें तपस्या का तेज पहली बार देखने वाले को भय उत्पन्न कर देता है एवं आँखों में चकाचौंध। यद्यपि यह विरोध सा लगता है कि शान्तस्वरूप में चकाचौंध एवं भय उत्पन्न करने की क्षमता हो, क्योंकि संसार या ब्रह्माण्ड की उग्र.तेज वाली वस्तुओं में ही इस प्रकार की क्षमता होती है परन्तु जावालि ऋषि की यही विशेषता है कि वह शान्ताकृति होने पर भी भय, चकाचौंध आदि उत्पन्न करते हैं।

सौदामिनी—सुदामा नामक मेघ से उत्पन्न होने के कारण बिजली को सौदामिनी कहा गया है।

'उत्तप्तकनकावदाता' में वाचकलुप्ता उपमा अलंकार है। 'भयनिवोपजनयति' में क्रियोत्प्रेक्षा तथा आगे के पदों में श्लिष्ट परम्परित रूपक अलंकार है।

चटुलवृत्ति—चटुल का अर्थ है चञ्चल वृत्ति का अर्थ व्यापार चञ्चल व्यापार। आग जब सूखे काश पुष्पों पर गिरती है तो शीघ्र प्रज्वलित होकर सर्वत्र फैल जाती है यही शीघ्र प्रसरण भाव को चटुलवृत्ति से व्यक्त किया गया है।

करकमलतलामलकफल—हस्तकमल अर्थात् हथेली पर रखे हुए आँवले को जैसे सभी ओर भली-भाँति देखा जा सकता है उसी प्रकार जाबालि ऋषि सम्पूर्ण विश्व को अपनी दिव्य दृष्टि से देख सकते हैं। यहाँ ऋषि को सर्वज्ञ रूप में वर्णित किया गया है। साथ ही तपस्या से इस प्रकार की शक्ति प्राप्त होती है यह भाव व्यक्त होता है। 'तपसा कल्मषं हन्ति' आदि वाक्य इसके प्रमाण हैं।

**पुण्यानि हि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां किं पुनर्दर्शनानि। धन्यमिदमाश्रमपदमयमधिपतिर्यत्र। अथवा भुवनतलमेव धन्यमखिलमनेनाधिष्ठितमवनितलकमलयोनिना। पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनमपरमिव नलिनासनमपगतान्यव्यापारा मुखावलोकननिश्चलदृष्टयः पुण्याः कथाः शृण्वन्तः समुपासते। सरस्वत्यपि धन्या याऽस्य तु सततमतिप्रसन्ने करुणाजलनिष्यन्दिन्यगाधगाम्भीर्ये रुचिरद्विजपरिवारा मुखकमलसम्पर्कसुखमनुभवन्तो निवसति राजहंसीव मानसे। चतुर्मुखकमलवासिभिश्चतुर्वेदैः सुचिरादिव द्वितीयमिदमासादितं स्थानम्। एनमासाद्य शरत्कालमिव कलिकाल जलधरसमयकलुषिताः प्रसादमुपगताः पुनरपि जगति सरित इव सर्वविद्याः।**

शब्दार्थ—पुण्यानि हि=निश्चय ही पुण्यदायक है नामग्रहणानि अपि=नाम लेना भी महामुनीनाम्=महान् मुनियों का किं पुनर्दर्शनानि=दर्शन की तो बात ही क्या। धन्यमिदम् आश्रमपदम्=यह आश्रम स्थल धन्य है। अयम् अधिपतिः यत्र=यह ऋषि जिसके स्वामी हैं। अथवा भुवनतलम् एव धन्यमखिलम्=अथवा यह सम्पूर्ण भूमण्डल ही धन्य है जो अनेनाधिष्ठितम्=इन महर्षि से अधिष्ठित है अवनितलकमलयोनिना=पृथ्वी लोक के ब्रह्मा के द्वारा। पुण्यभाजः=पुण्यशाली हैं अमीमुनयः=ये

ऋषि **यदर्हानिशम्**=जो दिनरात **एनमपरमइवनलिनासनम्**=इन द्वितीय ब्रह्मा के समान **अपगतान्य व्यापाराः**=समस्त अन्य कार्यों को त्यागकर **मुखावलोकन निश्चल दृष्टयः**=मुख को देखने में अपलक भाव होकर **पुण्याः कथाः शृण्वन्तः**=पवित्र कथाएँ सुनते हुए **समुपासते**=सेवा करते हैं। **सरस्वती अपि धन्या**=सरस्वती भी धन्य है **याऽस्य तु**=जो इनके **सततम्**=सदैव **अतिप्रसन्ने**=अति मनोहर **करुणाजलनिष्यन्दिनि**=करुणा रूपी जल को बहाने वाले **आगवगाम्भीर्ये**=अथाह गम्भीरता वाले **रुचिरद्विजपरिवारा**=सुन्दर ब्राह्मणों से घिरी हुई पक्ष में सुन्दर पक्षियों से घिरी हुई **मुखकमलसम्पर्कसुखमनुभवन्ती**=मुख रूपी कमल के साहचर्य सुख का अनुभव करती हुई **राजहंसी इव**=राजहंसी के समान **मानसे**=मन में निवास करती है पक्ष में मानसरोवर में निवास करती है। **चतुर्मुखकमलवासिभिः**=चतुर्मुख=ब्रह्मा के मुख रूपी कमलों में निवास करने वाले **चतुर्वेदैः**=चारों वेदों ने **सुचिरादिव**=मानों बहुत समय के बाद **द्वितीयम् इदम् आसादितं स्थानम्**=इस दूसरे स्थान को प्राप्त कर लिया है। **एनम्**=इन जाबालि ऋषि को **आसाद्य**=प्राप्त कर **शरत्कालम् इव**=शरद् ऋतु के समान **कलिकाल जलधर समय कलुषिताः**=कलियुग रूपी वर्षा काल से दूषित हुई **सरितः इव सर्वविद्याः**=नदियों के समान समस्त विद्याएँ **पुनरपि**=फिर से **जगति**=संसार में **प्रसादम् उपगताः**=निर्मलता या निर्दोषता को प्राप्त हो गई हैं।

**अनुवाद**—महान मुनियों का नाम लेना ही पुण्यदायक है फिर दर्शनों की तो बात ही क्या। यह आश्रमस्थान धन्य है जहाँ के स्वामी यह जाबालि ऋषि हैं। अथवा यह सम्पूर्ण संसार ही धन्य है जिस पर पृथ्वीतल के ब्रह्मा (जाबालि) अधिष्ठित हैं। निश्चय ही (इस आश्रम के) मुनिजन पुण्यशाली हैं जो समस्त अन्य कार्यों को त्याग कर इन द्वितीय ब्रह्मा से प्रतीत होने वाले (जाबालि के) मुख को अपलक दृष्टि होकर देखते हुये पवित्र कथाएँ सुनते हुए (इनकी) सेवा करते हैं। सरस्वती भी धन्य है जो मनोहर ब्राह्मणों से घिरी हुई, करुणा दया रूपी जल को बहाने वाले, अति गम्भीर, अतिशय प्रसन्न मुख रूपी कमल के साहचर्य का सुख अनुभव करती हुई इन (जाबालि के) अन्तः करण में उसी प्रकार निवास करती है जैसे पक्षियों से घिरी हुई अतिस्वच्छ गहरे जल वाले मानसरोवर में कमलों का सम्पर्क सुख प्राप्त कर राजहंसी रहती है। ब्रह्मा के मुख रूपी कमलों में निवास करने वाले चारों वेदों ने मानो बहुत समय के पश्चात (जाबालिरूपी) यह दूसरा स्थान प्राप्त किया है। कलियुग के समान वर्षाकाल से दूषित तथा शरद् ऋतु को प्राप्त कर पुनः निर्मलता को प्राप्त हुई नदियों के समान समस्त १४ या १८ विद्याओं ने कलियुग के सम्पर्क से दूषित होने पर इन (जाबालि ऋषि) को प्राप्त कर पुनः निर्दुष्टता (निर्मलता) को प्राप्त कर लिया है।

**संस्कृत व्याख्या—महामुनीनाम्** महान्तश्च ते मुनयो महामुनयः तेषां महातपस्विनां **नामग्रहणान्यपि** नामोच्चारण मात्राण्यपि **पुण्यानि** पुण्योत्पादकानि हि इति निश्चितम् **दर्शनानि** तेषां तपस्विनां निरीक्षणानि **कि० पुनः** किं वक्तव्यम् अर्थात् येषां नामोच्चारणेनैव पुण्यता प्राप्ति स्तेषां दर्शनं चेत्तदा नूनं मोक्षादि परमपुरुषार्थो-

पलब्धिरिति सुनिश्चितम् । **इदमाश्रमम्** पुरोदृश्यमानमिदम् तपस्विस्थानम् **धन्यम्** कृतकृत्यं **यत्र** आश्रमे **अयम्** महाप्रभावो जाबालिः **अधिपतिः** स्वामी नेता वा । अथवा **अखिलम्** सम्पूर्णं **भुवनतलमेव** भूमण्डलमेव धन्यं कृतकृत्यम्, यत् अवनितल **कमलयोनिना** अवनितलस्य मर्त्यलोकस्य कमलयोनिना कमलं जलजं योनिरुत्पत्तिस्थानं यस्य सः कमलयोनिः ब्रह्मा तेन भूतल प्रजापतिरूपिणा **अनेन** ऋषिणा **अधिष्ठितम्** आश्रितमस्ति ।

खलु निश्चयेन **अमीमुनयः** आश्रमस्याः ऋषयः **पुण्यभाजः** पुण्यशालिनः ये अपगतान्य **व्यापाराः** अपगताः दूरीभूताः अन्ये व्यापाराः कर्माणि येषान्ते तादृशाः तथा च **मुखावलोकन निश्चलदृष्टयः** मुखस्य ऋषेः वदनस्य अवलोकने निरीक्षणे निश्चलाः निमेषरहिताः दृष्टयः नेत्राणि येषान्ते तादृशाः, पुण्याः **कथाः** पवित्रा धार्मिकर्किवदन्तीः **शृण्वन्तः** आकर्णयन्तः **अहर्निशम्** अहश्च निशा चेति अहर्निशं रात्रिन्दिवं **समुपासते** जाबालिं सेवन्ते परिचर्यां कुर्वते इत्यर्थः । **सततं** निरन्तरम् **अतिप्रसन्ने** अतिशयेन प्रसादगुणसम्पन्ने पक्षे अतिनिर्मले **करुणाजलन्यष्यन्दिनि**—करुणा परदुःखनाशेच्छा दयाभावो वा सैव जलम् आपः तस्य निष्यन्दिनि प्रस्राविणि पक्षे करुणा इव जलस्राविणि **अगाध गाम्भीर्ये** अगाधम् अतिगहनम् इयत्ताशून्यम् गाम्भीर्यम् दुर वगाह स्वभावत्वम् अतिगूढ़ स्वभावत्वम् यस्य तादृशे पक्षे अतलस्पर्शिगम्भीरता यस्य तस्मिन् तादृशे, **मानसे** ऋषेरन्तः करणे पक्षे मानसरोवरे **राजहंसीव** सितवर्णा मरालीव **रुचिरद्विज परिवारा**—रुचिराः प्रियाः द्विजाः ब्राह्मणाः शिष्या इव प्रतीय मानाः ब्राह्मणाः परिवाराः परिजनाः यस्याः सा तादृशी सरस्वती हंसीपक्षे रुचिराः सुन्दराः द्विजाः पक्षिणः परिवाराः परिजना इव यस्याः सा तादृशी या **सरस्वती** भारती **निवसति** वासं विधत्ते सापि धन्या कृतकृत्या ।

**चतुर्मुखमुखकमलवासिभिः** चतुर्मुखो ब्रह्मा तस्य मुखानि एव कमलानि पद्मानि तेषु वासिभिः स्थायिभिः चतुर्वेदैः ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यैः **सुचिरादिव** अतिकालानन्तरमिव इदम् एतत् **द्वितीयम् इव** अपरमिव स्थानम् निवास स्थानम् आसादितम् प्राप्तम् । **कलिकालजलधरसमयकलुषिताः** कलिकालः कलियुगः स इव जलधर समयः वर्षा कालस्तेन कलुषिताः मलिनीकृताः सरितः, **सर्वविद्या**पक्षे कलिकाल एव जलधरसमयः तेन कलुषिताः दूषिताः अभ्यासानुष्ठानादिरहितत्वात् कुत्सितत्वृत्ति व्याख्यादिभिश्च दूषिता इत्यर्थः, **शरत्कालम्** शरदृतुम् आसाद्य प्राप्य **पुनरपिप्रसादमुपगताः** निर्मलत्वमाप्ताः **सरित इव** नद्यः इव **सर्वविद्याः** चतुर्दशाष्टादश वा विद्याः शरदृतुमिव **एनम् जाबालिमासाद्य** प्राप्य **जगति** पृथिव्यां **पुनरपि** भूयोऽपि यथापूर्वमिवेत्यर्थः **प्रसादम्** निर्दोषत्वम् **उपगताः** प्राप्ताः ।

**विशेष—सर्वविद्याः**— शास्त्रानुसार १४, १८ विद्याएँ मानी गई हैं—

"अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
धर्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्याह्येताश्चतुर्दश ॥"

**अर्थात्** ६ वेदाङ्ग + ४ वेद + मीमांसा + न्यायशास्त्र + धर्मशास्त्र + पुराण = १४ इन १४ विद्याओं में आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व विद्या तथा अर्थशास्त्र को जोड़ देने

से विद्याओं की संख्या १८ हो जाती है। कुछ लोग ६४ कलाओं को भी विद्या ही मानते हैं। 'अवनितलकमलयोनिना' में निरङ्गरूपक अलंकार है। 'नलिनासनम्' में द्रव्योत्प्रेक्षा तथा 'हंसीव' इत्यादि में पूर्णोपमा अलंकार है। 'सुचिरादिव' में गुणोत्प्रेक्षा, शरत्कालमिव में उपमा अलंकार है।

नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूत कलिकाल विलसितेन धर्म्मेण न स्मर्यते कृतयुगस्य। धरणितलम नेनाधिष्ठितमालोक्य न वहति नूनमिदानीं सप्तर्षिमण्डलनिवासाभिमानमम्बरतलम्। अहो! महासत्त्वेयं जरा यास्य प्रलयरविकरनिकर दुर्निरीक्ष्ये रजनिकरकिरणपाण्डु शिरोरुहे जटाभारे फेनपुञ्ज धवला गङ्गेव पशुपतेः क्षीराहुतिरिव शिखाकलापे विभावसोर्निपतन्ती न भीता। बहलाज्य धूमपटलमलिनीकृता श्रमस्य भगवतः प्रभावाद्भीतमिव रविकिरण जालमपि दूरतः परिहरति तपोवनम्। एते च पवनलोलपुञ्जीकृत शिखी कलापाः रचिताञ्जलय इवात्र मन्त्रपूतानि हवींषि गृह्णन्ति एतत्प्रीत्या शुशुक्षणयः। तरलितदुकूलवल्कलोऽयपञ्चाश्रमलताकुसुमसुरभि परिमलो मन्दमन्दसञ्चारी सशङ्क इवास्य समीपमुपसर्पति गन्धवाहः।

शब्दार्थ - नियतम्=निश्चय रूप से इह=इस आश्रम में सर्वात्मना=पूर्ण एकाग्रता से कृतावस्थितिना=निवास करने वाले भगवता=भगवान् परिभूतकलिकाल विलसितेन=कलियुग के समस्त प्रभाव को निरस्त करने वाले धर्मेण=धर्मदेव के द्वारा कृतयुगस्य=सत्ययुग (सतयुग) का न स्मर्यते=स्मरण नहीं किया जाता है। धरणितलम्=पृथ्वीतल अनेन=इन जाबालि ऋषि के द्वारा अधिष्ठितम् आलोक्य=स्थित (अलंकृत) देख कर न वहति=वहन नहीं करता है नूनम्=निश्चय ही इदानीम्=इस समय सप्तर्षिमण्डलनिवासाभिमानम्=सप्तर्षियों के निवासस्थान होने का अहंकार अम्बरतलम्=आकाश। अहो=आश्चर्य है महासत्त्वा इयम् जरा=यह वृद्धावस्था भी साहसपूर्णा है अर्थात् अति जीवट वाली है या=जो अस्य=इन जाबालि की, प्रलयरविकरनिकरदुर्निरीक्ष्ये=प्रलयकालीन सूर्य की किरणों के समूह के समान (तेज के कारण) कठिनाई से देखने योग्य, रजनिकरकिरणपाण्डुशिरोरुहे=चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत केशों वाले जटाभारे=जटासमूह पर फेनपुञ्जधवला=फेन समूह से शुभ्रवर्णा गङ्गा इव=गङ्गा के समान पशुपतेः=भगवान शङ्कर के, विभावसोः=अग्नि के शिखाकलापे=ज्वालासमूह पर क्षीराहुतिरिव=दूध की आहुति के समान निपतन्ती=गिरती हुई भी न भीता=भयभीत नहीं हुई।

बहलाज्यधूम पटलमलिनीकृताश्रमस्य=बहलाज्य=अत्यधिक (प्रचुर) घृत के, धूमपटल=धुएँ के समूह से, मलिनीकृत=श्यामवर्ण कर दिया है आश्रमस्य=आश्रम को जिन्होंने ऐसे भगवतः=भगवान् जाबालि के प्रभावाद्=माहात्म्य से भीतमिव=मानों डरा हुआ रविकिरणजालम् अपि=सूर्यकिरणसमूह भी तपोवनम्=जाबालि आश्रम को दूरतः=दूर से ही परिहरति=छोड़ देता है। एतेच=और ये पवनलोलपु-

ज्जीकृतशिखाकलापाः=पवनलोल=हवा से चंचल इधर-उधर बिखरने वाली, अत एव पुञ्जीकृत=एकत्रित कर लिया है शिखाकलापाः=लपटों (ज्वालाओं) को जिसने ऐसा (अग्नि) **रचिताञ्जलय इव**=मानों हाथ जोड़े हुए **अत्र**=इस आश्रम में **मन्त्रपूतानि**=मन्त्रों से पवित्र हुई **हवींषि**=हव्य सामग्री को **गृह्णन्ति**=ग्रहण कर रहे हैं **एतत्प्रीत्या**=इन ऋषि जावालि के प्रति प्रेम के कारण **आशुशुक्षणयः**=यज्ञ की अग्नियाँ (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि नामक यज्ञाग्नियाँ)। **तरलितदुकूलवल्कलः**=दुकूल=रेशमी वस्त्र के समान वल्कल=वृक्ष की छाल के बने हुए ऋषि वस्त्रों को तरलित=हिलाने वाला **अयम्**=यह **आश्रमलताकुसुमसुरभिपरिमलः**= आश्रम की लताओं के पुष्पों के सौरभ (पराग) से सुगन्धित, **मन्दमन्दसञ्चारी**=धीरे-धीरे बहता हुआ **गन्धवाहः**=पवन **सशङ्क इव**=मानों डरा हुआ सा **अस्य समीपम्**= इन जावालि ऋषि के समीप **उपसर्पति**=पहुँच रहा है।

**अनुवाद**—(शुक अपने मन में सोचता है) निश्चय ही कलियुग की विलास लीलाओं को तिरस्कृत कर इन जाबालि ऋषि में निवास करने वाले भगवान् धर्म देव को सतयुग का स्मरण नहीं आता होगा। पृथ्वी तल पर इन जावालि को स्थित देखकर निश्चय ही आकाश भी (स्वयं को) सप्तर्षियों के निवास स्थान होने का अहंकार न करता होगा। आश्चर्य है यह वृद्धावस्था (बुढ़ापा) भी अत्यन्त साहसी (जीवट की) है जो शङ्कर की जटाओं में गिरने वाली फेन समूह से श्वेत गङ्गा की भाँति (तथा) अग्नि की ज्वालाओं में गिरने वाली दुग्ध धारा के समान, प्रलयकालीन सूर्य किरणों के समूह के समान चमकीली होने से न देखी जाने योग्य एवं चन्द्रमा की रश्मियों के समान श्वेतवर्ण जटापुञ्ज पर गिरती हुई भयभीत नहीं हुई। प्रचुरघृत के धुएं से (यज्ञाग्नि में अधिक घी डालने से उत्पन्न धुएँ से) आश्रम को श्यामवर्ण बना देने वाले भगवान् जावालि से मानो डरा हुआ सूर्यकिरण समूह इस तपोवन को दूर से ही छोड़ रहा है। हवा से चञ्चल तथा एक-दूसरे से मिलकर उठी हुई यज्ञ की अग्नियों की ज्वालाएँ मानों हाथ जोड़ कर मन्त्रों से पवित्र हव्य सामग्री को ऋषि के प्रति प्रेमाभिभूत हो ग्रहण कर रही हैं। आश्रम की लताओं के पुष्पसौरभ से सुगन्धित तथा कौशेय वस्त्र के समान बल्कल वस्त्रों को हिलाता हुआ मानों डरता हुआ सा पवन धीरे-धीरे ऋषि के समीप जा रहा है।

संस्कृत व्याख्या—**परिभूतकलिकालविलसितेन**—परिभूतानि तिरस्कृतानि कलिकालस्य कलियुगस्य विलसितानि चेष्टितानि येन तेन (बहु.) इह आश्रमे **सर्वात्मना** पूर्णरूपेण **कृतावस्थितिना** कृता विहिता अवस्थितिः वासो येन तेन (बहु.) **भगवता** माहात्म्यशालिना **धर्म्मेण** सुकृतेन **कृतयुगस्य** सत्ययुगस्य **न स्मर्यते** न चिन्त्यते **नियतम्** इति निश्चितम् (प्रतीयते) इहैवाश्रमे कृतयुगीय सकल गुणाना मुपलम्भात्। **अम्बरतलम्** गगनतलम् **अनेन** जाबालिना **अधिष्ठितम्** आश्रितम् **धरणितलं** पृथिवीतलम् **आलोक्य** दृष्ट्वा **इदानीम्** अधुना **सप्तर्षिमण्डलनिवासाभिमानम्** सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः कश्यपादयः तेषां मण्डलं समूहस्तस्य यो निवासः अवस्थानं तेन योऽभिमानोऽहंकारस्तं **न वहति**

नैव धत्ते इति नूनं सुनिश्चितम् । अहो महदाश्चर्यम्, इयं जाबालिशरीरे विद्यमाना जरा वृद्धावस्था महासत्त्वा महत् सत्त्वं पराक्रमः यस्याः सा तादृशी अत्यन्तं शक्तिमती, या अस्य या वृद्धावस्था अस्यऋषेः प्रलयरविकरनिकरदुर्निरीक्ष्ये—प्रलयकालीनो यो रविः कल्पान्तसूर्यस्तस्य कराणां रश्मीनां निकरः समूहः तद्वत् दुर्निरीक्ष्ये दुःखेन निरीक्षितुं शक्ये इति दुर्निरीक्ष्ये महातेजस्वितयाऽवलोकयितुमशक्ये अथ च रजनिकरकिरणपाण्डु शिरोरुहे —रजनिं रात्रिं करोतीति रजनिकरः चन्द्रःतस्य किरणवत् पाण्डवोधवलाः शिरोरुहाः केशाः यस्मिन् तस्मिन् तादृशे (बहु.) अस्य मुनेः जटाभारे सटासमूहे निपतन्ती=उपगन्तुं प्रवृत्ता सती, पशुपतेः भगवतः शङ्करस्य जटाभारे फेनपुञ्जधवला फेनपुञ्जवत् धवला शुभ्रा गङ्गा इव भागीरथी व विभावसोः अग्नेः शिखाकलापे ज्वालापुञ्जे निपतन्ती क्षीराहुतिरिव क्षीरस्य दुग्धस्य आहुतिः प्रक्षेप इव न भीता नैव त्रस्ता बभूव ।

बहलाज्यधूमपटलमलिनीकृताश्रमस्य—बहलं प्रचुरं यदाज्यं घृतं तत्कृत धूमपटलेन हव्यधूमसमूहेन मलिनीकृतः श्यामीकृत आश्रमस्तपोवनं येन तस्य (बहु.) भगवतः जाबालेः प्रभावात् प्रतापात् भीतमिव त्रस्तमिव रविकिरणजालमपि रवेः सूर्यस्य किरणानां रश्मीनां जालं समूहः (तत्पु.) अपि तपोवनम् ऋषेः धर्मारण्यं दूरतएव दूरादेव परिहरति परित्यजति आश्रमं परित्यज्य गच्छतीत्यर्थः । अत्र आश्रमे एते यज्ञवेदीषुदृश्यमानाः पवनलोलपुञ्जीकृतशिखाकलापाः—पवनेन समीरेण लोलाः चञ्चला अथ च पुञ्जीकृताः राशी- कृताः शिखाकलापाः ज्वालासमूहो येषान्ते अत एव रचिताञ्जलय इव रचिताः बद्धाः अञ्जलयः हस्ताग्रपल्लवा यैस्ते तादृशा इव आशुशुक्षणयः दक्षिणाग्नि गार्हपत्याहवनीयरूपा यज्ञाग्नयः एतत्प्रीत्या महर्षि जाबालिस्नेहेन मन्त्रपूतानि मन्त्रैः ऋक्सामभिः पूतानि पवित्राणि हवींषि हव्यसामग्रीः गृह्णन्ति स्वीकुर्वन्ति । तरलितदुकूल वल्कलः तरलितानि कम्पितानि दुकूलानीव क्षौमवसनानि वल्कलानि वृक्षत्वक्निर्मितानि वस्त्राणि येन सः (बहु.) तादृशः अथ च आश्रमलताकुसुमसुरभिपरिमलः आश्रमे तपोवने या लताः वल्लर्यः तासां यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां सुरभिः घ्राणतर्पणः परिमलः शोभनो गन्धः यस्मिन् स तादृशः मन्दमन्दसञ्चारी शनैः शनैः सञ्चरणं शीलं यस्य सः धीर-धीरं प्रवहणशीलः अयं गन्धवाहः गन्धं वहति यः सः गन्धवाहः पवनः सशङ्कइव भयाक्रान्त इव अस्य मुनेः समीपं निकटम् उपसर्पति उपयातीत्यर्थः ।

विशेष—इस गद्य खण्ड में प्रायः सर्वत्र उत्प्रेक्षा अलंकार है । इसके माध्यम से कवि ने जाबालि ऋषि और उनके आश्रम का चामत्कारिक पवित्र रूप प्रस्तुत किया है ।

'सप्तर्षिमण्डलः' आदि वाक्य में आकाश में सप्तर्षिमण्डल की अपेक्षा पृथ्वी पर एक जाबालि ऋषि की उपस्थिति अधिक महत्वपूर्ण व्यक्त की गई है । इस प्रकार नूनं पद से उत्प्रेक्षा वाक्य है तथा सप्तर्षि की अपेक्षा जाबालि की उत्कृष्टता में व्यतिरेक व्यंग्य है ।

'अहो महासत्त्वेयं जरा·······'इत्यादि वाक्य में जाबालि के (वृद्धावस्था के कारण) श्वेत केशों पर बुढ़ापे के आगमन में कवि ने तीन लुप्तोपमाएँ एवं दो उपमाओं का प्रयोग कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'न भीता' पद से जरा की महासत्वता

पुष्ट होती है अतः काव्यलिंग अलंकार भी है। भगवान शंकर के जटासमूह पर पैर रखती हुई गङ्गा को भय नहीं हुआ, यज्ञकुण्ड की अग्नि में दुग्धाहुति को गिरने में भय नहीं हुआ जब कि दुग्धाहुति अस्तित्वहीन हो जाती है और गङ्गा अहङ्कारविहीन, इसी प्रकार वृद्धावस्था भी बिना भय के ही जाबालि के केशों पर पहुँच गई, यह भाव व्यक्त किया गया है।

'बहलाज्य धूमपटल' में हवा से हिलती हुई अतएव परस्पर मिली हुई ज्वालाओं में कवि ने हाथ जोड़ने की उत्प्रेक्षा की है, यह स्वरूपोत्प्रेक्षा, क्रियोत्प्रेक्षा, एवं प्रभावाद् भीतमिव में हेतूत्प्रेक्षा भी है। इस प्रकार एक वाक्य में अनेकानेक माध्यमों से कवि ने विविध अलंकारों की कल्पना कर काव्य में सौन्दर्य उपस्थित किया है। पाठक जितनी बार पढ़ता है उतनी ही नवीन कल्पनाएँ उभरती हैं।

**प्रायो महाभूतानामपि दुरभिभवानि भवन्ति तेजांसि। सर्व तेजस्विनामयञ्चाग्रणीः। द्विसूर्यमिवाभाति जगदनेनाधिष्ठितं महात्मना। निष्कम्पेव क्षितिरेतदवष्टम्भात्। एष प्रवाहः करुणारसस्य, सन्तरण सेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्, परशुस्तृष्णालतागहनस्य, सागरः सन्तोषामृत रसस्य, उपदेष्टासिद्धि मार्गस्य अस्तगिरिरसद् ग्रहस्य, मूलमुपशमतरोः, नाभिः प्रज्ञाचक्रस्य, प्रासादो धर्मध्वजस्य, तीर्थसर्वविद्यावताराणाम्, बडवानलो लोभार्णवस्य निकषोपलः शास्त्ररत्नानाम्, दावानलो रागपल्लवस्य, महामन्त्रः क्रोधभुजङ्गस्य, दिवसकरो मोहान्धकारस्य, अर्गलबंधो नरकद्वाराणाम्, कुलभवनमाचाराणाम्, आयतनं मङ्गलानाम् अभूमिर्मदविकाराणाम् दर्शकः सत्पथानाम्, उत्पत्तिः साधुतायाः, नेमिरुत्साह चक्रस्य, आश्रयः सत्वस्य, विपक्षः कलिकालस्य, कोशस्तपसः, सखा सत्यस्य, क्षेत्रमार्जवस्य, प्रभवः पुण्यसञ्चयस्य, अदत्तावकाशो मत्सरस्य, अरातिर्विपत्तेः, अस्थानं परिभूतेः, अननुकूलोऽभिमानस्य, असम्मतो दैन्यस्य, अनायत्तो रोषस्य अनभिमुखः सुखानाम्।**

शब्दार्थ—प्रायः=बहुधा **महाभूतानाम्** अपि=महान प्राणियों सिंह गजादि के भी **तेजांसि**=तेज, **दुरभिभवानि**=अपराजेय **भवन्ति**=होते हैं। **सर्वतेजस्विनाम्**=समस्त तेजस्वियों में **अयम्**=यह जाबालि ऋषि **अग्रणीः**=नेता या प्रमुख हैं। **अनेन महात्मा**=इन ऋषि से **अधिष्ठितम्**=अधिष्ठित **जगत्**=संसार **द्विसूर्यम्** **इव**=दो सूर्यों को धारण करने वाला सा **आभाति**=प्रतीत होता है। **एतद् अवष्टम्भात्**=इन ऋषि के आश्रय से **क्षितिः**=पृथ्वी (भी) **निष्कम्पा इव**=मानो स्थिर (निश्चल) है। **एषः**=यह ऋषि **करुणारसस्य**=करुणा दया रूपी जल की **प्रवाहः**=धारा हैं, **सन्तरण सेतुः**=पार करने के लिये पुलरूप हैं **संसार सिन्धोः**=संसार रूपी समुद्र की। **क्षमाम्भसाम्**=क्षमा रूपी जल के **आधारः**=आधार, आश्रय दाता हैं। **तृष्णालतागहनस्य**=सांसारिक विषयवासना की भोगेच्छारूपी घनी लताओं को (काटने के लिये) **परशुः**=कुठार हैं। **सन्तोषामृतरसस्य**=सन्तोषरूपी अमृत रस के **सागरः**=समुद्र हैं। **सिद्धिमार्गस्य**=सिद्धि रूपी मार्ग के अर्थात् सफलता (मोक्ष) के रास्ते के **उपदेष्टा**=निर्देशक गुरु हैं

**असद्ग्रहस्य**=अनिष्टकारी ग्रहों के **अस्तगिरि**=अस्ताचल हैं (समाप्ति कर्ता हैं)। **उपशमतरोः**=शान्तिरूपी वृक्ष की **मूलम्**=जड़ हैं। **प्रज्ञाचक्रस्य**=विज्ञानरूपी पहिये के **नाभि**=केन्द्र हैं। **धर्मध्वजस्य**=धर्मरूपी पताका के **प्रासादः**=भवन हैं सर्व **विद्यावताराणाम्**=समस्त विद्याओं के प्रवेश हेतु **तीर्थम्**=तीर्थस्थल अर्थात् घाट रूप हैं। **लोभार्णवस्य**=लोभरूपी सागर के लिये **वडवानलः**=वडवाग्नि हैं। **शास्त्ररत्नानाम्**=शास्त्र रूपी रत्नों की **निकषः**=कसौटी हैं। **रागपल्लवस्य**=वासना रूपी नवीन पत्तों के **दावानलः**=जलाने वाली आग हैं। **क्रोधभुजङ्गस्य**=क्रोधरूपी सर्प के लिये **महामन्त्रः**=गारुडि महामन्त्र हैं। **मोहान्धकारस्य**=अज्ञान रूपी अन्धकार के **दिवसकरः**=सूर्य हैं। **नरकद्वाराणाम्**=नरक रूपी दरवाजों के **अर्गलबन्धः**=जंजीर (कुण्डी) हैं। **आचाराणाम्**=शुभ आचरणों के **कुलभवनम्**=मूल निवास स्थान हैं। **मङ्गलानाम्**=कल्याणों के **आयतनम्**=मन्दिर हैं। **मदविकाराणाम्**=अहंकार जनित वृत्तियों के **अभूमिः**=ऊषर क्षेत्र हैं। **सत्पथानाम्**=सन्मार्गों के **दर्शकः**=दिखलाने वाले हैं, उपदेष्टा हैं। **साधुतायाः**=सज्जनता के **उत्पत्तिः**=उत्पत्ति स्थान हैं। **उत्साहचक्रस्य**=उत्साहरूपी पहिये की **नेमिः**=धुरी हैं। **सत्त्वस्य**=आत्मबल के **आश्रयः**=आधार हैं। **कलिकालस्य**=कलियुग के **विपक्षः**=शत्रु हैं। **तपसः**=तपस्या के **कोशः**=खजाना है। **सत्यस्य**=सत्य के **सखा**=मित्र हैं। **आर्जवस्य**=विनम्रता के **क्षेत्रम्**=क्षेत्र हैं, उत्पत्तिस्थान हैं। **पुण्यस्थानस्य**=पुण्यराशि के **प्रभवः**=जन्मदाता हैं। **मत्सरस्य**=ईर्ष्याभाव के **अदत्तावकाशः**=स्थान (अवसर) न देने वाले हैं। **विपत्तेः**=आपत्तियों के **अरातिः**=शत्रु हैं। **परिभूतेः**=पराभव के **अस्थानम्**=अपात्र हैं। **अभिमानस्य**=अहंकार के **अननुकूलः**=प्रतिकूल हैं। **दैन्यस्य**=दीनता के **असंमतः**=समर्थन न करने वाले हैं। **रोषस्य**=क्रोध के **अनायत्तः**=अधीन न होने वाले हैं। **सुखानाम्**=सुखों के प्रति **अनभिमुखः**=अभिमुख (आसक्तिपूर्ण) होने वाले नहीं हैं।

**अनुवाद** –(शुक जाबालि ऋषि के गुणों का वर्णन करता हुआ मन में विचार करता है) प्रायः महान प्राणियों सिंह गजादि का तेज भी अतिक्रमण करने योग्य नहीं होता और यह जाबालि ऋषि तो समस्त तेजस्वी महापुरुषों में अग्रणी हैं। (इसीलिए) इनसे युक्त यह संसार दो सूर्यों को धारण करने वाला सा प्रतीत हो रहा है। एक तो सूर्य और दूसरा जाबालि रूप सूर्य)। इन्हीं की स्थिति से मानों पृथ्वी निश्चला है, स्थिर है। ये ऋषि दया रूपी जल के प्रवाह हैं, संसार रूपी समुद्र को (पार करने के लिए) पुल हैं, क्षमा रूपी जलराशि के आधार हैं, विषय वासना रूपी घनी लताओं के (काटने हेतु) कुठार हैं, सन्तोष रूपी अमृत रस के समुद्र हैं, सिद्धि (मोक्ष) के मार्ग का उपदेश करने वाले गुरु हैं, अनिष्टकारी ग्रहों के (निवारक) अस्ताचल हैं; शान्तिरूपी वृक्ष की जड़ हैं, विशिष्ट ज्ञान रूपी पहिये की धुरा हैं, धर्म रूपी पताका के भवन हैं, समस्त विद्याओं में प्रवेश पाने के लिये तीर्थ स्थल (घाट रूप) हैं, लोभ रूपी सागर को (सुखाने वाले) वडवाग्नि हैं, शास्त्ररूपी रत्नों की कसौटी हैं। वासना रूपी नवीन पत्तों को (जलाने वाली) दावाग्नि हैं, क्रोधरूपी सर्प को (वश में

करने वाले) महामन्त्र, गारुड़िमन्त्र हैं, अज्ञान रूपी अन्धकार के (विनाशक) सूर्य हैं, नरक के द्वारों के (अवरोधक) सांकर जंजीर हैं, सदाचारों के मूल भवन हैं, कल्याणों के पवित्र मन्दिर हैं, अहंङ्कार जनित वृत्तियों के ऊपर स्थान हैं, सन्मार्गों को दिखलाने वाले हैं, सज्जनता के जन्मदाता हैं, उत्साह रूपी पहिये की धुरा हैं, आत्मबल के उत्पत्ति स्थान हैं, कलियुग के शत्रु हैं, तपश्चर्या के खजाना हैं, सत्य के मित्र हैं, विनम्रता के क्षेत्र हैं, पुण्यराशि के जन्मदाता हैं, ईर्ष्याभाव को अवसर न देने वाले हैं, विपत्तियों के शत्रु हैं, पराभव के अपात्र हैं, अभिमान के अहित कारक हैं. दीनता से असहमत हैं, क्रोध के वशीभूत न होने वाले सुखों के प्रति अभिमुख (आसक्ति युक्त) न होने वाले है ।

**संस्कृत व्याख्या**—(ऋषेर्व्यक्तित्वं चिन्तयति मनसि शुकः) **प्रायः** बहुधा **महाभूतानाम् अपि** महाप्राणिनाम अपि अर्थात् मृगाधिपति गजयूथादीनामपि **तेजांसि** महांसि दुरभिभवानि दुःखेन कठिनतया अभिभवितुम् अतिक्रमितु योग्यानि **भवन्ति** वर्तन्ते । अयञ्च पुरोदृश्यमानो जावालिऋषिः **सर्वतेजस्विनाम्** अखिलधामवताम् **अग्रणीः** नेता अतोऽयं सर्वथाऽनति क्रमणीयतेजा इति । **अनेनमहात्मना** जाबालितपरिस्वना **अधिष्ठितम्** आश्रितं युक्तमित्यर्थः जगत् भुवनम् **द्विसूर्यमिव** द्वौ उभौ सूर्यौ दिवाकरौ यत्र तदिव आभाति प्रतीयते, जाबालेरपि द्वितीय सूर्य इव तेजस्त्वात् सोऽपि अपरः सूर्य इति तात्पर्यम् । **एतद् अवष्टम्भात्** एतस्य ऋषेः अवष्टम्भः आश्रयः तस्मादिव (हेतूत्प्रेक्षा) **क्षितिः** पृथिवी **निष्कम्पा** निश्चला प्रतीयते इति शेषः ।

**एष** जाबालिः **करुणारसस्य** करुणा दया एव रसः जलं तस्य दयारूप वारिण इत्यर्थः **प्रवाहः** स्रोतः सर्वत्र सर्वदा च समस्तान् प्रति करुणा भाव सम्पन्नत्वात् प्रवाह इत्यर्थ सङ्गतिः । **संसार सिन्धोः** संसारः जगदेव सिन्धुः पारावारः तस्य **सन्तरणसेतुः** उत्तरणाय पारगमनाय उत्तरणजलपोतरूपः, **क्षमाम्भसाम्** क्षमा सहिष्णुता एव अम्भांसि जलानि तेषाम् आधारः **आश्रयः** क्षमासमुद्र इत्यर्थः । **तृष्णालतागहनस्य** तृष्णा सांसारिक विषयभोगेच्छा एव लताः वल्लर्यः तासां गहनस्य काननस्य (कर्तनाय) **परशुः** कुठारः, **सन्तोषामृतरससागरः** सन्तोषो यथोपलब्धवस्तुना तुष्टिः स एव अमृतरसः पीयूषजलं तस्य **सागरः** समुद्रः, **सिद्धिमार्गस्य** सिद्धेः मार्गः सिद्धिमार्गः (तत्पु०) मोक्षपथः तस्य **उपदेष्टा** उपदेशकः—मुमुक्षुभ्यो मुक्तिहेतोः अध्यात्मविद्याया उपदेशात्, **असद्ग्रहस्य** असत् दुष्टता एव ग्रहः शनैश्चर प्रभृतिदुर्दन्तिग्रह तस्य **अस्तगिरिः** अस्ताचलः (विनाशक इत्यर्थः) अथवा असद्ग्रहः दुराग्रहः तस्यास्तगिरिः, **उपशमतरोः** उपशमः शान्तिः स एव तरुः वृक्षस्तस्य **मूलम्** हेतुः, **प्रज्ञाचक्रस्य** प्रकृष्टाज्ञा बुद्धिरिति प्रज्ञा प्रज्ञानमित्यर्थ प्रज्ञानमेव चक्रम् रथाङ्गम् **नाभिः** आलम्बनीभूतमध्यभागः मध्यपिण्डिकेत्यर्थः, **धर्मध्वजस्य**

धर्म एव ध्वजः पताका तस्य प्रासादः राजभवनम्, सर्वविद्यावतारानाम् सर्वाश्च ताः विद्याः सर्वविद्याः (कर्मधारय) आन्वीक्षिक्याद्योऽथवा चतुर्दश विद्याः तासु येऽवतारा: प्रवेशास्तेषा तीर्थम् घट्टः सलिलेषु सरलतयावतरणाय घट्टानामावश्यकत्वात् घट्टाश्चतीर्थेषु भवन्ति तस्मादृषिः शास्त्रादिषुप्रवेशाय तीर्थं रूपः। लोभार्णवस्य लोभः लोलुपता एव अर्णवः समुद्रस्तस्य बडवानलः और्वः शोषकत्वात्, शास्त्ररत्नानाम् शास्त्राण्येव रत्नानि मणिमाणिक्यादीनि तेषाम् निकषोपलः शाण शिलाः परीक्षणप्रस्तर इत्यर्थः, रागपल्लवस्य रागः विषयानुरागः एव पल्लवः किसलयस्तस्य दावानलः वनाग्निः दाहकत्वात् क्रोधभुजङ्गस्य क्रोधः कोप एव भुजङ्गः भुजाभ्यां गच्छतीति भुजङ्ग सर्पः तस्य महामन्त्रः महांश्चासौ मन्त्रः वशीकरण मन्त्रः गारुडिमन्त्र इत्यर्थः, मोहान्धकारस्य मोहोऽज्ञानमेव अन्धकारस्तमः तस्य विनाशकः दिवसकरः सूर्यः, नरकद्वाराणाम् अन्धतामिस्र प्रभृति नरक कपाटानाम् अर्गलबन्धः कपाटपिधायक शृंखलाबन्धः, आचाराणाम् शुभाचरणानाम् कुलभवनम् मूलगृहम्, मङ्गलानाम् कल्याणानाम् आयतनम् पवित्रदेवमन्दिरम्, मदविकाराणाम् मदोऽहंकारस्तज्जनितविकाराणां वृत्तीनाम् अभूमिः अप्रशस्ताभूमिः, ऊषरक्षेत्रम् इत्यर्थः, सत्पथानाम् सन्तः शोभनाः पन्थानाः मार्गाः सत्पथाः तेषाम् दर्शकः उपदेष्टा सर्वज्ञत्वात्, साधुतायाः साध्नोति परकार्यमिति साधुस्तस्य भावस्तत्ता साधुता सुजनता तस्याः उत्पत्तिः जन्मस्थानम्, उत्साहचक्रस्य उत्साहः उद्योग एव चक्रं रथाङ्गम् तस्य नेमिः प्रान्तभागः परिधिरित्यर्थः, सत्त्वस्य आत्मशक्तेः आश्रयः आधारः, कलिकालस्य कलियुगस्य विपक्षः शत्रुः, तपसः तपश्चर्यायाः कोशः निधिः, सत्यस्य अनृतरहितव्यहारस्य तथ्यस्येत्यर्थः सखा मित्रम्, आर्जवस्य ऋजुतायाः क्षेत्रम् आवासभूमिः, पुण्यसञ्चयस्य पुण्यराशेः सुकृतसमूहस्य वा प्रभवः उत्पत्तिस्थानम्, मत्सरस्य ईर्ष्यायाः अदत्तावकाशः न दत्तः अवकाशो येन सः (बहु०) विपत्तेः आपदः अरातिः शत्रुः, परिभूतेः पराभवस्य अस्थानम् अभूमिः, अभिमानस्य अहङ्कारस्य अननुकूलः नानुकूल इत्यननुकूलः प्रतिकूल इत्यर्थः, दैन्यस्य दीनतायाः उत्साहहीनताया इत्यर्थः असम्मतः विरोधी रोषस्य क्रोपस्य अनायत्तः न आयत्तः इत्यनायत्तः (नञ् समास) अवशीकृतः, सुखानाम् इहलोकसम्भूतानां तृप्तीनाम् अनभिमुखः न अभिमुख इत्यनभिमुखः (नञ्०) अनभीप्सुकः।

विशेष—इस गद्यखण्ड में जबालि ऋषि के व्यक्तित्व का विविध रूपों में वर्णन किया गया है अतः परम्परित रूपकालंकार का बाहुल्येन प्रयोग हुआ है। जैसे प्रवाहः करुणारसस्य में करुणा पर रस (जल) का आरोप करने के कारण ऋषि में प्रवाह का आरोप करना पड़ा। जैसा कि लक्षण है—

नियतारोपणोपायः स्यादारोपः परस्य यः
तत्परम्परितं श्लिष्टे वाचके भेदभाजि वा। (काव्य प्रकाश)

इस प्रकार करुणारसस्य से मोहान्धकारस्य तक परम्परित रूपक अलंकार है।

कहीं-कहीं एक देश विवर्तिरूपक भी है। इन सभी स्थानों में एक ही मुनि का अनेक रूपों में उल्लेख होने से उल्लेखालंकार भी है।

नरकद्वाराणाम् से तीन वाक्यों में निरङ्ग रूपक है तथा आगे पुनः परम्परित रूपकालंकार है।

द्विसूर्य्यमिव तथा निष्कम्पेव में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

तीर्थं सर्वविद्यावताराणाम्—अवतार का अर्थ उतरना, प्रवेश करना, जैसे किसी सरोवर में उतरने के लिए सीढ़ियों वाले घाट की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार समस्त विद्याओं में प्रवेश पाने के लिए ऋषि जाबालि घाट का कार्य करते हैं अर्थात् उन्हें विद्याओं में पारंगत बना देते हैं। अर्गलाबन्ध— किवाड़ों को बन्द करने के लिये पीछे लगाई जाने वाली सांकर या कील। कुछ लोग काष्ठ के मूसलाकार दण्ड (बेंड़ा) को भी अर्गला कहते हैं। अनायत्त—पराधीन न होना, जाबालि ऋषि क्रोध के वश में नहीं आ सके इसीलिये वे रोष के अनायत्त कहे गये। वस्तुतः इसके प्रत्येक पद में कवि का कल्पनाजन्य सौन्दर्य विद्यमान है।

**अस्य भगवतः प्रभावादेवोप शान्त वैरमपगत मत्सरं तपोवनम्। अहो! प्रभावो महात्मनाम्। अत्र हि शाश्वतिकमपहाय विरोधमुपशान्तान्तरात्मानस्तिर्यञ्चोऽपि तपोवन वसति सुखमनुभवन्ति। तथाहि एष विकचोत्पल वनरचनानुकारिणमुत्पतच्चारु चन्द्रकशतं हरिणलोचनद्युति शबलमभिनव शाद्वलमिव विशति शिखिनः कलापमातपाहतो निःशङ्कमहिः। अयमुत्सृज्य मातरमजात केसरैः केसरिशिशुभिः सहोपजातपरिचयः क्षरत्क्षीरधारं पिबति कुरङ्गशावकः सिंहीस्तनम्। एष मृणालकलाप शङ्किभिः शशिकरधवलं सटाभारम् आमीलितलोचनो बहु मन्यते द्विरदकलभैराकृष्यमाणं मृगपतिः।**

शब्दार्थ—अस्य भगवतः=इन भगवान् जाबालि के प्रभावात् एव=प्रभाव से ही उपशान्त वैरम्=शान्त वैर वाला अपगतमत्सरम्=ईर्ष्याभाव रहित तपोवनम् =तपोवन (है) अहो=आश्चर्यजनक है महात्मनाम्=महापुरुषों का प्रभावः=प्रभाव। अत्रहि=क्योंकि इस आश्रम में शाश्वतिकम्=जातिगत या सनातन स्वभावगत विरोधम्=पारस्परिक विद्वेष को अपहाय=त्याग कर उपशान्तान्तरात्मानः= अत्यन्त शान्त अन्तरात्मा वाले होकर तिर्यञ्चोऽपि=पशुपक्षी भी तपोवनवसतिसुखम्= तपोवन में रहने के सुख का अनुभवन्ति=अनुभव करते हैं। तथाहि=जैसे कि एष =यह आतपाहतः=धूप से व्याकुल अहिः=सर्प विकचोत्पलवनरचनानुकारिणम्= खिले हुए नीलकमल वन का अनुकरण करने वाले उत्पतच्चारुचन्द्रकशतम्=ऊपर को उठे हुए सुन्दर चन्द्रकशतम्=सैकड़ों चन्द्राकार आकृतियों वाले हरिणलोचनद्युति शबलम्=मृगों के नेत्रों की कान्ति से युक्त अभिनवशाद्वलम् इव=नवीन घास के अङ्कुरों के समान (प्रतीत होने वाले) शिखिनः कलापम्=मयूर के पिच्छभार में

विशति = प्रवेश कर रहा है। अयं कुरङ्ग शावकः = यह मृग छौना उत्सृज्यमातरम् = माँ को छोड़कर अजातकेशरैः = गर्दन पर सटाएँ नहीं निकली हैं जिनके ऐसे केशरिशिशुभिः = सिंह शावकों के सह = साथ उपजातपरिचयः = परिचय हो जाने से अर्थात् हिला-मिला होने से क्षरत्क्षीरधारम् = बह रही है दूध की धार जिससे ऐसे सिंहीस्तनम् = सिंहनी के स्तनों को पिबति = पी रहा है। एष मृगपतिः = यह सिंह मृणालकलापशङ्किभिः = मृणाल = कमलनाल के समूह को भ्रान्ति से शशिकरधवलम् = चन्द्र किरणों के समान श्वेत सटाभारम् = जटा समूह को अमीलितलोचनः = नेत्र बन्द किये हुए द्विरदकलभैः = हाथी के बच्चों के द्वारा आकृष्यमाणम् = खींचा जाता हुआ बहुमन्यते = प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है।

अनुवाद — (शुक अपने मन में सोचता है कि) इन्हीं भगवान् जाबालि के प्रभाव से ही यह तपोवन वैरभाव व ईर्ष्यारहित हो गया है। ऐसे महान् आत्मा वालों का प्रभाव आश्चर्यजनक है। (क्योंकि) यहाँ अपने स्वाभाविक (जातिगत) वैरभाव को त्यागकर शान्त अन्तरात्मा वाले पशु-पक्षी भी तपोवन में निवास करने का सुख अनुभव कर रहे हैं जैसे कि यह सर्प, खिले हुए नीलकमल वन का अनुकरण करने वाले, ऊपर उठी हुई सैकड़ों सुन्दर चन्द्रकों — चन्द्राकार आकृतियों वाले, मृग नेत्रों की कान्ति से युक्त नवीन घास के समान मयूरों के पिच्छभार में गर्मी से परेशान होकर प्रवेश कर रहा है। यह मृगछौना (अपनी) माँ को छोड़कर अनुत्पन्न अयाल (जटा समूह) वाले सिंह शावकों के साथ परिचय हो जाने से बहती हुई दुग्ध धाराओं वाले सिंही के स्तनों को पी रहा है। कमल नाल की भ्रान्ति वाले, चन्द्रकिरणों के समान श्वेत सटासमूह को, गजशावकों द्वारा खींचे जाते हुये आँख बन्द किये हुए यह सिंह अधिक आदर भी दे रहा है अर्थात् आनन्द का अनुभव कर रहा है।

संस्कृत व्याख्या (शुको मनसि विचारयति) अस्य भगवतो माहात्म्यवतः प्रभावादेव माहात्म्यात् सामर्थ्याद्वा तपोवनम् जाबालेस्तपःस्थली उपशान्तवैरम् उपशान्तं विनष्टं वैरं पारस्परिकः स्वाभाविको विरोधो यत्र तादृशम् तथा च अपगतमत्सरं अपगतो दूरीभूतो मत्सरः ईर्ष्याभावो यत्र तादृशम् अस्ति। अहो! आश्चर्यजनकम् महात्मनाम् माहात्म्यवतां प्रभावः माहात्म्यं सामर्थ्यं वा यतो हि अत्र आश्रमे शाश्वतिकं नैजं जातिगतं स्वाभाविकं वा विरोधं; वैरभावम् अपहाय परित्यज्य उपशान्तान्तरात्मानः उपशान्ता पारस्परिक विरोध शून्या अन्तरात्मानः अन्तःकरणानि येषान्ते तादृशाः तिर्यञ्चोऽपि पशुपक्ष्यादयोऽपि तपोवनवसतिसुखम् तपोवने मुनेराश्रमे वसतेः निवासस्य सुखम् आनन्दम् अनुभवन्ति भुञ्जन्ति, अनुभवविषयी कुर्वन्तीत्यर्थः। तथाहि उदाहरणतया एव पुरोदृश्यमानः अहिः सर्पः आतपाहत आतपेन सूर्यकिरणोष्मया आहतः पीडितः सन् विकचोत्पल वनरचनानुकारिणम् विकचानां विकसितानाम् उत्पलानां नीलकमलानां वनस्य विपिनस्य या रचना-सृष्टिः तामनुकर्तुं शीलं यस्य तं तादृशम् अथ च उत्पतच्चारुचन्द्रकशतम् उत् ऊर्ध्वं पतत् गच्छन् अथवा उत्पतत्

उद्दीप्यमानं चारु चन्द्रकाणां सुन्दर मेचकानां चन्द्राकारमयूरपिच्छ चिह्नानां शतं समूहो यत्र तम् तथा च हरिणलोचनद्युतिशबलम् हरिणानां मृगाणां यानि लोचनानि नेत्राणि तेषां द्युतिभिः शोभाभिः शबलं कर्बुरितम् अभिनवशाद्वलमिव अभिनवं नवीनं यत् शाद्वलम् शष्पसङ्कुल प्रदेशमिव शिखिनः कलापम् मयूरस्य पिच्छभारं निःशङ्कं निर्भयं यथा स्यात्तया विशति प्रविशति। मयूरसर्पयोर्यद्यपि शाश्वतिको विरोधस्तथापि मुनेः प्रभावात्पारस्परिकं वैरं विस्मृत्य सूर्यरश्मि सन्तप्तोऽहिः निःशङ्कं मयूरपिच्छे अधश्छाया प्राप्त्यर्थं विशतीति तात्पर्यम्।

अपरमुदाहरति शुकः - अयम् कुरङ्गशावकः पुरोदृश्यमानो मृगशिशुः मातरं स्वजननीम् उत्सृत्य त्यक्त्वा अजातकेशरैः न जाताः नोत्पन्नाः केशराः सटाः येषान्तैः सटाभाररहितै र्बालैरित्यर्थः केशरिशिशुभिः सिंह शावकैः सह साकम् उपजातपरिचयः उपजातः समुत्पन्नः परिचयः आत्मीयता यस्य सः तादृशः परिचितः सन् क्षरत्क्षीरधारं क्षरन्ती स्रवन्ती क्षीरस्य दुग्धस्य धारा प्रवाहो यस्मात्तं तादृशं सिंहीस्तनम् सिंह्याः केसरिण्याः स्तनं पयोधरं पिबति पानं करोति।

तृतीयमुदाहरणम् -एष पुरोविद्यमानो मृगपतिः सिंहः आमीलितलोचनः आ ईषद् आमीलिते मुकुलिते लोचने नयने येन सः तादृश सन् शशिकरधवलम् शशिनश्चन्द्रमसः कराः रश्मयः तद्वद्धवलं शुभ्रवर्ण सटाभारम् स्वजटासमूहम् मृणालकलापाशङ्किभिः मृणालानां कमलनालानां कलापं समूहम् आशङ्किभिः आशङ्कन्ते सम्भावयन्ति इति तच्छीलास्तैः धवलबिससमूहभ्रान्तिमद्भिरित्यर्थः द्विरदकलभैः द्वौ रदौ दन्तौ येषान्ते द्विरदाः गजाः तेषां कलभैः शिशुभिः हस्तिशावकैरित्यर्थः आकृष्यमाणम् अवकृष्यमाणं बहुमन्यते समादरं करोति। गजशावकेनाकृष्यमाण सटाभारेण मन्द मन्दानन्दोदयान्मीलित लोचनो मृगपतिः सुखमेवानुभवति न तु विरोधभावम्।

**विशेष**—इस गद्य खण्ड में कवि ने महर्षि जाबालि के उत्कृष्ट प्रभाव का वर्णन करते हुए पारस्परिक शत्रुता को भूल जाने वाले तपोवन के प्राणियों का वर्णन किया है।

**शाश्वतिक विरोध**—जन्मजात शत्रुता जैसे मयूर सर्प में, सिंह मृग में, सिंह गज में।

"विकचोत्पल..." इस वाक्य में मयूर पंखों में आँखों की शोभा का वर्णन किया गया है। खिले हुए नीलकमल के वन की जैसे सृष्टि हो, सैकड़ों चन्द्राकार चिह्न ऊपर को उठे हुए हैं। अतः हरी घास चरते समय मृग नेत्र से प्रतीत होने वाले मयूर पंखों के नीचे सर्प धूप से तप्त होकर शरीर को शान्ति दिलाने हेतु प्रवेश कर रहा है। मयूर सर्प को खा जाता है। यह जानते हुए भी जाबालि के प्रभाव से वह कुछ नहीं करेगा इसलिये निःशङ्क होकर उसकी पंख छाया में आ गया। यहाँ शाद्वलमिव पद में उपमा अलंकार है।

मृणालकलापाशङ्किभिः में भ्रान्तिमान अलंकार है क्योंकि केसर समूह में

योग्य भी समय में भी, बालतया=बचपन के कारण, (कालान्तरभुवः) स्नेहरसस्यान-भिज्ञः=कालान्तर में होने वाले (भुवः) प्रेम विषयक रस को न जानने वाला, जन्मसहभुवा भयेनैव=जन्म के साथ ही उत्पन्न होने वाले भय से ही, केवलमभि-भूयमानः=केवल पराभूत होता हुआ, किञ्चिदुपजाताभ्यां (पक्षाभ्याम्) कुछ-कुछ निकले हुए पंखों से, ईषत्कृतावष्टम्भः=थोड़ा-सा सहारा लिये हुए, इतस्ततः लुठन्=इधर-उधर लुढ़कता हुआ, (और) कृतान्तमुखकुहराविव विनिर्गतमात्मानं मन्यमानः=अपने को मानो यमराज के (मुख विवर) कुहर से निकला हुआ सा मानता हुआ, अहम्=मैं, समीपवर्तिनः=पास वाले, शबरसुन्दरीकर्णपूर रचनोपयुक्तपल्लवस्य=भीलों की स्त्रियों के कर्णपूरों की रचना के लिए उपयुक्त पल्लवों वाले, सङ्कर्षणपट नीलच्छायया उपहसतः इव गदाधरदेहच्छविम्=मानो बलराम (सङ्कर्षण) के वस्त्र के समान नीली कान्ति से गदाधारी विष्णु के शरीर की शोभा का उपहास करते हुए जैसा, अच्छैः कालिन्दीजलच्छेदैरिव विरचितच्छदस्य=मानो स्वच्छ (अच्छैः) यमुना जल के टुकड़ों से छेदैः (निर्मित) पत्तों वाले, वनकरिमदोपसिक्त-किसलयस्य=वन के गजों के मद से सिञ्चित (उपसिक्त) पल्लवों वाले, विन्ध्याटवी केशपाशश्रियमुद्वहतः=दण्डकारण्य के केशसमूह की कान्ति को धारण करते हुए, दिवाप्यन्धकारित शाखान्तरस्य=दिन में भी (दिवापि) अन्धकारयुक्त शाखाओं के मध्यभाग वाले, अप्रविष्टसूर्य किरणम्=सूर्य किरणों के प्रवेश से रहित, अतिगहनम्=बहुत घने, अपरस्येव पितुः उत्सङ्गम्=दूसरे पिता की गोदी जैसे, अतिमहतः तमाल-विटपिनः=अतिविशाल तमालवृक्ष के, मूलदेशम् अविशम्=जड़ भाग में घुस गया।

अनुवाद—और जब तक कि वह (भील) उस वृक्ष की चोटी से नहीं उतरता है तब तक ही, गिरे हुए पत्तों के समान वर्णवाला होने के कारण, स्पष्ट रूप से न दिखाई पड़ती हुई आकृति वाला, मरे हुए पिता को छोड़कर निर्दय की तरह, प्राणों के परित्याग के योग्य समय पर भी, बचपन के कारण, कालान्तर में होने वाले प्रेम विषयक रस को न जानने वाला, जन्म के साथ उत्पन्न होने वाले भय से ही केवल पराभूत होता हुआ, कुछ-कुछ निकले हुए पंखों से थोड़ा-सा सहारा लिये हुए, इधर-उधर लुढ़कता हुआ, अपने को मानो यमराज के मुख विवर से निकला-सा मानता हुआ, मैं, पास वाले, भीलों की स्त्रियों के कर्णाभूषणों की रचना के लिए उपयुक्त पल्लवों वाले, मानो बलराम के वस्त्र के समान नीलकान्ति गदाधारी विष्णु के शरीर की शोभा का उपहास करने वाले, मानो स्वच्छ यमुना जल के टुकड़ों से निर्मित पत्तों वाले, वन के गजों के मद से सिञ्चित पल्लवों वाले, विन्ध्याटवी के केशकलाप की कान्ति को धारण करते हुए, दिन में भी अन्धकारयुक्त शाखाओं के मध्यभाग वाले, सूर्य किरणों के प्रवेश से रहित, अतिसघन, दूसरे पिता की गोदी जैसे, उस अतिविशाल तमालवृक्ष के मूलभाग में प्रविष्ट हो गया।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि जब तक वह भील उस वृक्ष की चोटी से नहीं उतरता है तब तक ही मैं मरे हुए पिता को छोड़कर उनकी गोद से

निकलकर, एक विशाल और समीपवर्ती तमाल वृक्ष के मूलभाग में घुस गया, यह वृक्षमूल सघन एवं सूर्य किरणों से रहित होने से शीतल था इसीलिए मानो वह दूसरे पिता की गोद ही था। इस समय मेरा रंग भी सूखे पत्तों के समान ही था, इसीलिए उस पत्तों के ढेर पर मेरा शरीर स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ रहा था। यद्यपि पिता के मरने पर उस समय मुझे भी मर जाना ही उचित था, उसे छोड़कर अपनी रक्षा के लिए वहाँ से जाना उचित न था फिर भी बचपन के कारण उस समय मुझे उस प्रेम का आभास न था जो कि कालान्तर में सभी में उत्पन्न होता है, उस समय तो मैं उस सहजात भय से ही आक्रान्त था, अतएव कुछ-कुछ निकले हुए ही पंखों का सहारा लेकर इधर उधर लुढ़कता हुआ मैंने उस समय अपने को यम के मुख से निकला हुआ समझकर उस वृक्ष के मूल में घुसकर अपनी रक्षा की। उस तमाल वृक्ष के अभिनव किसलय भीलिनिय के कानों के आभूषण बनने योग्य थे। उसके नीले पत्ते थे जिससे ऐसा लगता था कि मानो वह बलराम के नील वस्त्र के समान अपनी नीली कान्ति से भगवान् के नीले शरीर की हंसी उड़ा रहा हो, उसके गहरे नीले पत्ते ऐसे मालूम पड़ते थे कि मानो वे यमुना के नीले जल के टुकड़ों से बने हुए हों, और उनसे जो सुगन्धि निकल रही थी उससे ऐसा लगता था कि मानो वे मदजल से सींचे गये हों और वह विन्ध्याटवी रूपी नायिका के जूड़े के समान था, वह इतना घना था कि सूर्य की किरणें उसमें प्रवेश नहीं कर पातीं थीं, दिन में अन्धकार छाया रहता था।

**संस्कृत व्याख्या**—यावच्चासौ—यावता कालेन असौ जीर्णशबरः तस्मात् तरुशिखरात्=पूर्वोक्तात् शाल्मलीवृक्षस्याग्रभागात्, न अवतरति—न उत्तरति, तावत्=तावता समयेन, अवशीर्णपर्णसवर्णत्वात्—अवशीर्णानाम् तत्क्षणविगलितानाम् अशुष्कानामित्यर्थ पर्णानां तरुदलानां सवर्णत्वात् तुल्यवर्णत्वात् हरितवर्णत्वादित्यर्थः, अस्फुटोपलक्ष्यमाणमूर्तिः, अस्फुटम् अस्पष्टं उपलक्ष्यमाणा समवलोक्यमाना मूर्तिः आकृतिः यस्य स तादृशः, नृशंसः इव—निष्ठुर इव, उपरतम् विगतप्राणं मृतमित्यर्थः पितरं जनकं, उत्सृज्य—परित्यज्य, प्राणत्यागयोग्येऽपि काले—जीवनोत्संगोचितेऽपि समये, बालतया शिशुभावेन, कालान्तरभुवः स्नेहरसस्यानभिज्ञः=कालान्तरभुवः—बाल्यातिरिक्तवयसि जननशीलस्य स्नेहरसस्य शय्यासनभोजनादिषु प्रेमविषयकरसस्य अनभिज्ञः अज्ञाता, जन्मसहभुवा—उत्पत्तिकालादारम्य सम्भवेन भयेनैव त्रासेनैव, केवलं समन्ततः अभिभूयमानः—पीड्यमानः, किञ्चिदुपजाताभ्याम्—ईषदुत्पन्नाभ्याम् पक्षाभ्याम् छदाभ्याम्, ईषत्कृतावष्टम्भः—ईषत् किञ्चित् कृतः विहितः अवष्टम्भः आधारः आश्रयो वा यस्य स तादृशः, इतस्ततः लुठन्=पृथिव्यामितस्ततः निपतन् कृतान्तमुखकुहरादिव—कृतान्तस्य यमस्य मुखमिव मुखं यस्य तथाविधात् कुहरात्, विवरात्, विनिर्गतम् बहिरागतम्, आत्मानं मन्यमानः—निजं बुध्यमानः, अहम् वैशम्पायनः, नातिदूरवर्तिनः—समीपस्थायिनः, शबरसुन्दरीकर्णपूररचनोपयुक्तपल्लवस्य-शबराणां भिल्लानां सुन्दर्यः स्त्रियः तासाम् कर्णपूराणि कर्णाभरणानि तेषां रचना

निर्मितिः तत्र उपयुक्ता उपयोगिनः पल्लवाः किसलयाः यस्य तस्य तादृशस्य, सङ्कर्षण-पटनीलच्छाययोपहस त इव गदाधरदेहच्छविम्—सङ्कर्षणः बलभद्रः तस्य पटम् वस्त्रं तद्वत् नीलच्छायया नीलकान्त्या, गदाधरस्य श्रीकृष्णस्य देहच्छविम् शरीरकान्तिम् उपहसतः उपहासं कुर्वत इव विद्यमानस्य, अच्छैः-स्वच्छैः, कालिन्दीजलच्छेदैः यमुना-जलखण्डैरिव, विरचितच्छदस्य निर्मितवस्त्रस्य तादृशस्य, वनकरिमदोपसिक्तकिसलयस्य-वनकारिणः अरण्यगजस्य मदेन दानवारिणः उपसिक्तानि सिञ्चितानि किसलयानि यस्य तस्य तादृशस्य, विन्ध्याटवीकेशपाशश्रियमुद्वहतः=विन्ध्याटवी दण्डकारण्यम् तस्याः केशपाशः केशकलापः तस्य श्रियम् शोभाम् उद्वहतः धारयतः, दिवापि—दिनेऽपि, अन्धकारितशाखान्तरस्य, अन्धकारितानि जनितान्धकाराणि शाखान्तराणि स्कन्धाभ्यन्तरप्रदेशा यस्य तस्य तयोक्तस्य, अतिमहतः अतिविशालस्य तमालविटपिनः तमालवृक्षस्य अपरस्य अन्यस्य पितुः जनकस्य उत्सङ्गं क्रोडमिव, अप्रविष्टसूर्य-किरणम्—अप्रविष्टानान्तर्गतः सूर्यकिरणाः रविरश्मयः यस्मिन् स तम् तादृशम्, अतिगहनम् अतिसघनम् मूलदेशम् मूलभागम् अविशम् प्रविष्टवान् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदसौ वृद्धकिरातः यावता कालेन तस्मात् शाल्मलीवृक्षाग्रभागात् नोत्तरति तावता कालेन तत्क्षणविगलिततरुपत्रतुल्य-हरितवर्णत्वात् अस्पष्टावलोक्यमानाकृतिः, अतिनिष्ठुर इव मृतं स्वजनकं परित्यज्य, प्राणोत्सर्गोचितकालेऽपि शिशुत्वेन बाल्यातिरिक्तवयसि जननशीलस्य प्रेमविषयकरसस्य अज्ञाता उत्पत्तिकालादारभ्य सम्भवेन प्रासेनैव केवलं स्वाधीनीक्रियमाणः ईषदुत्पन्न-पक्षाभ्याम् किञ्चिद्विहिताधारः पृथिव्यामितस्ततो निपतन्, यममुखविवरादिव बहिरागतमात्मानं बुध्यमानोऽहम् समीपवर्तिनः, भिल्लस्त्रीकर्णाभरणनिर्मित्युपयोगि-किसलयस्य, बलरामवस्त्रवन्नीलकान्त्या श्रीकृष्णशरीरशोभामुपहसत इव विद्यमानस्य, स्वच्छैः यमुनाजलखण्डैरिव निर्मितपल्लवस्य, अरण्यगजमदवारिणा सिञ्चितपल्लवस्य, विन्ध्याटवीकेशकलापशोभां धारयतः, दिनेऽपि अन्धकारावृतस्कन्धाभ्यन्तर प्रदेशस्य अतिविशालस्य तमालवृक्षस्य अन्यस्य जनकस्य क्रोडमिव नान्तर्गत सूर्यकिरणम् अतिसघनम् मूलदेशम् प्रविष्टवान् ।

**टिप्पणी**—अवशीर्णेति अव+शॄ+क्त—तत्क्षण विगलित हुए अतएव न सूखे हुए अपितु सरस, सवर्णत्वात्—समान रंग वाला होने के कारण, अतएव जिसका स्वरूप साफ दिखाई नहीं पड़ रहा था । कृतावष्टम्भः=कुछ सहारा लेकर, विनिर्गत-मिवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षालंकारः, सङ्कर्षणेति—सङ्कर्षण=बलभद्र "सङ्कर्षणः सीरपाणिः कालिन्दीभेदनो बलः इत्यमरः पटनीलच्छायया—पटवन्नीलच्छायया—लुप्तोपमा, उपहसतः इव—क्रियोत्प्रेक्षा । अच्छैः—निर्मल स्वच्छ, जलच्छेदैः—जल के खण्डों से मानो जिसके वस्त्र बने हो, विन्ध्याटवीति—विन्ध्याटवी रूपी नायिका के केशकलाप की शोभा को धारण करता हुआ । शाखान्तर—शाखाओं के भीतर का अवकाश, केशपाशश्रियमिवेत्यत्र निदर्शना, उत्सङ्गमिवेत्यत्र उत्प्रेक्षा ।

अवतीर्य च स तेन समयेन क्षितितलविप्रकीर्णान् संहृत्य तान् शुकशिशून् अनेकलतापाशसंयतानाबद्ध्य पर्णपुटेऽतित्वरितगमनः सेनापतिगतेनैव वर्त्मना तामेव दिशमगच्छत् ।

मान्तु लब्धजीविताशं प्रत्यग्रपितृमरणशोकशुष्कहृदयम् अतिदूरापातादायासितशरीरं सन्त्रासजातवेपथुं सर्वाङ्गोपतापिनी बलवती पिपासा परवश मकरोत् ।

अनया च कालकलया सुदूरमतिक्रान्तः स पापकृदिति परिकल्प्य किञ्चिदुन्नमितकन्धरो भयचकितया दृशा दिशोऽवलोक्य तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्तः इति तमेव पदे पदे पापकारिणमुत्प्रेक्षमाणः निष्क्रम्य तस्मात्तमालतरूमूलात् सलिलसमीप मुपसर्तुं प्रयत्नमकरवम् ।

अजातपक्षतया च नातिस्थिरतरचरणसञ्चारस्य मुहुर्मुहुः मुखेन पततो मुहुस्तिर्यङ् निपतन्तमात्मानमेकया पक्षपाल्या सन्धारयतः क्षितितलसंसर्पण श्रमातुरस्य अनभ्यासवशादेकमपि दत्त्वा पदमनवरतमुन्मुखस्य, स्थूलस्थूलं श्वसतो धूलिधूसरस्य संसर्पतो ममामून्सनसि………………………।

शब्दार्थ—अवतीर्य च स तेन समयेन=और उस समय तक उसने (पेड से) उतरकर, क्षितितलविप्रकीर्णान् तान् शुकशिशून् संहृत्य=पृथिवी पर बिखरे हुए उन शुकों के बच्चों को एकत्र करके, अनेकलतापाशसंयमान्=बहुत से वल्ली रूप बन्धन रस्सियों द्वारा बन्धनगत करके, पत्रपुटे आबद्ध्य=पत्तों से निर्मित पात्र में रखकर, अतित्वरितगमनः=अतिशीघ्रगति से चलता हुआ, सेनापतिगतेनैव वर्त्मना=सेनापति द्वारा गये हुए मार्ग से ही, तामेव दिशमगच्छत्=उसी दिशा की ओर चला गया।

लब्धजीविताशम्=जीवन की आशा को प्राप्त हुए, प्रत्यग्रपितृमरणशोकशुष्कहृदयम्=पितृमरण के नये शोक से सूखे अर्थात सङ्कुचित हृदय वाले, अतिदूरापातात्=बहुत दूर से गिरने के कारण, आयासितशरीरम्=श्रान्त शरीर वाले, सन्त्रासजातवेपथुम्=भयवश उत्पन्न कम्प वाले, मान्तु=मुझे तो, सर्वाङ्गोपतापिनी बलवती पिपासा=सभी अंगों को सन्तप्त करने वाली बलवती पिपासा ने, परवशमकरोत्=पराधीन कर दिया।

अनया च कालकलया=और इस घड़ी तक, स पापकृत् सुदूरमतिक्रान्तः= वह पापी बहुत दूर चला गया होगा, इति परिकल्प्य=यह सोचकर, किञ्चिदुन्नमितकन्धरः=थोड़ी सी गरदन को उठाये हुए, भयचकितया दृशा दिशोऽवलोक्य= भय से चकित दृष्टि से दिशाओं की ओर देखकर, तृणेऽपि चलति=तिनके के हिलने पर भी, पुनः प्रतिनिवृत्तः=वह फिर लौट आया, इति तमेव पदे पदे पापकारिण मुत्प्रेक्षमाणः=इस प्रकार पग पग पर उसी पापकारी की सम्भावना करता हुआ, तस्मात्तमालतरूमूलात् निष्क्रम्य=उस तमाल वृक्ष के मूलभाग से निकलकर,

सलिलसमीप मुपसर्तुं प्रयत्नमकरवम्=पानी के पास पहुँचने के लिए (उपसर्तुम्) प्रयत्न करने लगा।

अजातपक्षतया च=और पंखों के न निकलने के कारण, नातिस्थिरतर चरणसंचारस्य=न अधिक स्थिर पद सञ्चार वाले, मुहु र्मुहु मुखेन पतितः= बार-बार मुँह के बल लुढ़कने वाले, मुहुस्तिर्यङ् निपतन्तम् आत्मानम्=बार बार तिरछे गिरते हुए अपने को, एकया पक्षपाल्या सन्धारयतः=एक ओर के पंख से ही सम्भालते हुए, क्षितितल संसर्पणश्रमातुरस्य=भूमि पर सरकने के कारण थकावट से व्याकुल, अनभ्यासवशादेकमपि दत्त्वा पदम्=अभ्यास न होने के कारण एक पग रखकर ही, अनवरतमुन्मुखस्य=निरन्तर ऊपर मुख किये हुए, स्थूलस्थूलं श्वसतः= लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए, धूलिधूसरस्य=धूलिधूसरित होकर, संसर्पतः=सरकते हुए, ममाभून्मनसि=मेरे मन में (यह विचार) आया।

अनुवाद—और उस समय तक उसने (पेड़ से) उतरकर, पृथिवी पर बिखरे हुए उन शुकों के बच्चों को एकत्र करके, बहुत-सी बल्ली रूपबन्धन रस्सियों द्वारा बन्धनगत (संयतान्) करके, पत्तों से निर्मित पात्र में रखकर, अतिशीघ्र गति से चलकर सेनापति द्वारा गये हुए मार्ग से ही उसी दिशा की ओर चला गया।

जीवन की आशा को प्राप्त हुए, पितृमरण के नये शोक से सूखे हुए हृदय वाले, बहुत दूर से गिरने के कारण श्रान्त शरीर वाले मुझे तो सभी अंगों के सन्तप्त करने वाली बलवती प्यास ने पराधीन कर दिया।

और इस घड़ी तक वह पापी बहुत दूर तक चला गया होगा यह सोचकर, थोड़ी-सी गरदन को उठाये हुए, भय से चञ्चल दृष्टि से दिशाओं की ओर देखकर, तिनके के हिलने पर भी 'वह फिर लौट आया' इस प्रकार पग-पग पर उसी पापी की सम्भावना करता हुआ, उस तमाल वृक्ष के मूल भाग से निकलकर जल के पास पहुँचने के लिए प्रयत्न करने लगा।

और पंखों के न निकलने के कारण, न अधिक स्थिर पाद सञ्चार वाले, बार-बार मुँह के बल लुढ़कने वाले, फिर तिरछे गिरते हुए अपने को, एक ओर के पंख से ही सम्भालते हुए, भूमि पर सरकने के कारण थकावट से व्याकुल, अभ्यास न होने के कारण एक पग रखकर ही, निरन्तर ऊपर मुख किये हुए, लम्बी-लम्बी साँसें भरते हुए, सरकते हुए धूलिधूसरित मेरे मन में (यह विचार) आया।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि इस समय तक उसने पेड़ से उतरकर भूमि पर बिखरे हुए शुकों के बच्चों को एकत्रित किया और उन्हें लताओं के रेशों की रस्सियों से बाँधकर तथा पत्तों के दोनों में रखकर, शीघ्रता से उसी मार्ग से उसी ओर चला गया जिस मार्ग से सेनापति गया था।

अब मुझे जीवन की आशा प्राप्त हो गई थी फिर भी पिता के मरण के नये शोक से मेरा हृदय सूख गया था। मैं बहुत दूर से गिरा था अतएव शरीर भी श्रान्त

हो गया था सम्भवतः इसीलिए अब मुझे बड़ी प्यास लग रही थी यह मेरे सभी अंगों को संतप्त कर रही थी।

मैंने सोचा कि अब तक तो वह पापी बहुत दूर निकल गया होगा, इसलिए मैंने अपनी गरदन को थोड़ा-सा ऊपर उठाया, और भय से चञ्चल दृष्टि से चारों ओर देखा किन्तु मैं इतना भयभीत था कि एक तिनके के भी हिलने पर 'वही लौट आया है' ऐसी मुझे शंका उत्पन्न होने लगती थी, इस प्रकार कदम कदम पर उसी पापी की मैं सम्भावना करता हुआ वृक्ष की मूल से बाहर निकलकर पानी के पास पहुँचने का प्रयत्न करने लगा।

अब तक मेरे पंख पूर्णरूप से नहीं निकल पाये थे अतः डगमगाते हुए ही पैर रखकर मैं चल रहा था, यही कारण था कि मैं बार-बार मुँह के बल लुढ़क पड़ता था, कभी तिरछा गिर पड़ता था और तब मैं एक पंख से ही अपने को सम्भाल कर फिर रेंगने लगता था इस प्रकार चलता हुआ मैं अत्यधिक थक गया था। अभ्यास न होने से एक कदम रखकर ही मैं ऊपर मुँह करके जोर से हाँफने लगता था, मेरा शरीर धूलि से भर गया था फिर भी मैं रेंगता हुआ चल रहा था, उसी समय मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ।

**संस्कृत व्याख्या**—अवतीर्य च स तेन समयेन=स वृद्धकिरातः तावता कालेन वृक्षा दवतीर्य, क्षितितलविप्रकीर्णान्=क्षितितले भूतले विप्रकीर्णा इतस्ततो विक्षिप्तास्तान्, तान् शुकशिशून्=पूर्ववर्णितान् कीरशावकान्, संहृत्य-एकीकृत्य, अनेकलतापाशसंयतान्=अनेका याः लताः तल्लक्षणा ये पाशाः बन्धनरज्जवः तैः संयतान् बद्धान् बन्धनगतान् विधायेत्यर्थः, पर्णपुटे आबद्ध्य=पत्रनिर्मितपात्रे संस्थाप्य निधाय, अतित्वरितगमनः—अतित्वरितम् अतिशीघ्रं गमनं गतिः यस्य स तादृशः, सेनापतिगतेनैव वर्त्मना/येन सेनापतिर्गतः तेनैव मार्गेण, तामेव दिशम्=सेनापति-गृहीतामेवाशाम् अगच्छत्।

लब्धजीविताशम्—लब्धा प्राप्ता जीवनस्य प्राणधारणस्य आशा सम्भावना येन स तं तादृशम्, प्रत्यग्रपितृमरणशोकशुष्कहृदयम्—प्रत्यग्रः अभिनवः यः पितृमरण-शोकः जनकमृत्युविषादः तेन शुष्कं सङ्कुचितं हृदयं मनः यस्य स तम् तादृशम्, अतिदूरापातात्—अत्युन्नतमागतः निपतनात्, आयासितशरीरम्=आयासितं श्रान्तं शरीरं देहः यस्य स तम् तादृशम्, सन्त्रासजातवेपथुम्—सन्त्रासेन अतिभयेन जातः उत्पन्नः वेपथुः कम्पः यस्य स तम् तादृशम् माम्—वैशम्पायनम् तु, सर्वाङ्गोपतापिनी—सर्वाणि च तानि अङ्गानि, हस्तपादादीनि तानि उपतापिनी व्यथाकारिणी, बलवती-अतिप्रबला, पिपासा जलपानेच्छा परवशम् पराधीनम् अकरोत्।

अनया कालकलया घटिकया च स पापकृत् पापकारो वृद्धकिरातः सुदूरम् अतिदूरम् अतिक्रान्तः समतीतः इति परिकलय्य मनसि विचिन्त्य, किञ्चिदुन्नमित-कन्धरः—किञ्चित् ईषत् उन्नमिता ऊर्ध्वीकृता कन्धरा ग्रीवा येन स तादृशः भय-चकितया—भयेन भीत्या चकिता चञ्चला तया, दृशा दृष्ट्या, दिशः आशाः अवलोक्य

निरीक्ष्य, तृणेऽपि चलति कम्पमाने सति, पुनः प्रतिनिवृत्तः—"भूयोऽपि स एव प्रत्यागतः इति तमेव पदे पदे पापकारिण—मुत्प्रेक्षमाणः—एवं तमेव पापविधायिनं वीर्णे शबरमेव प्रतिपदम् उत्पश्यन्, तस्मात्तमालतरुमूलात्—तस्मादेव पूर्वोक्तात् तमालविटपिनो मूलदेशात्, निष्क्रम्य वहिरागत्य, सलिलसमीपम्—जलनिकटम् उपसर्तुम् सत्वरं प्रयातुम् प्रयत्नम् प्रयासम्—अकरवम् कृतवान् ।

अजातपक्षतया च=अजातो अनुत्पन्नो यो पक्षो छदो तयो र्भावस्तया, नातिस्थिरतरचरणसञ्चारस्य=न विद्यते अतिस्थिरतरः अतिदृढतरः चरणयोः पादयोः सञ्चारः स्थापनसामर्थ्यं यस्य तस्य तादृशस्य, मुहु र्मुहुः बारं बारं मुखेनाननेन पततः भूतले लुण्ठनं कुर्वतः, मुहुः बारं बारं तिर्यक् तिरश्चीनं निपतन्तम् भ्रश्यन्तम् आत्मानम् स्वम् एकया केवलया पक्षपाल्या पक्षभागेन सन्धारयतः पतनाद्रक्षणं कुर्वतः, क्षितितलसंसर्पणश्रमातुरस्य-क्षितितले भूतले यत् संसर्पणं शनैः शनैः गमनं तेन यः श्रमः खेदः तेन आतुरः व्यथितः तस्य तादृशस्य, अनभ्यासवशात्, अभ्यासः पुनः पुनः करणं तदभाववशात्, एकमपि दत्त्वा पदम्—एकसंख्याकमपि चरणं निवेश्य, अनवरत-मुन्मुखस्य बहुवारम् ऊर्ध्वाननस्य, स्थूलस्थूलम्—दीर्घदीर्घम्, श्वसतः श्वासमोक्षणं कुर्वतः, धूलिधूसरस्य—धूलिः रेणुः तया धूसरस्य धूम्रवर्णस्य, संसर्पतः प्रचलतः मम वैशम्पायनस्य मनसि हृदये, अभूत्-वृत्तिरेषा समजायत ।

संस्कृत सरलार्थं—वैशम्पायनः कथयति यत्तावता कालेन स वृद्धकिरातः वृक्षादवतीर्य भूतले-इतस्ततो विक्षिप्तान् तान् शुकशावकान् एकीकृत्य बहुलतारूपि-बन्धनरज्जुभिस्तान् बन्धनगतान् विधाय पादपपत्रनिर्मितपुटके तान् संस्थाप्य च तीव्रगतिः स येन सेनापतिर्गतः तेनैव पथा सेनापतिगृहीतामेवाशामगच्छत् ।

संप्राप्त प्राणधारणाशम्, अभिनवजनक मृत्युजेन विषादेन सङ्कुचितभानसम् अत्युन्नतप्रदेशनिपतनात् श्रान्तदेहम् त्रासाविर्भावोत्पन्नकम्प्रम् माम् वैशम्पायनम् सर्वगात्रोत्पीडनकरी शक्तिमती पिपासा पराधीनता मनयत् ।

अनया च कालघटिकया स पापिष्ठः वृद्धकिरातः सुदूरदेशमतीत इति मनस्याधाय दिगवलोकनाय किञ्चिदूर्ध्वीकृतग्रीवः त्रासचञ्चलया दृशा दिशो निरीक्ष्य तृणेऽपि कम्पमाने सति "भूयः स पापः प्रत्यागतः" इति तमेव पापिष्ठं वृद्धकिरातं प्रतिपदं प्रतिस्थानञ्च भयेनोत्पश्यन्, तस्मात्तमालवृक्षाधः स्थलात् वहिरागत्य जलान्तिकमुपगन्तुं प्रयत्नं कृतवान् ।

अनुत्पन्नच्छदतया नातिदृढतरपादस्थापनसामर्थ्यवतः बारं बार माननेनाधो-निपतितः मुहुस्तिरश्चीनं भ्रश्यन्तमात्मानम् केवलेनैकेन पक्षप्रदेशबलेन पतनात् सन्धारयतः, भूतलसंसर्पणजेन खेदेन व्यथितस्य, अभ्यासाभाववशात् एकमपि चरणं निवेश्य निरन्तरमूर्ध्वाननस्य, दीर्घदीर्घं श्वासमोक्षणं कुर्वतः क्षितितलपांसुभि र्धूम्रवर्णस्य सलिलान्तिकं गच्छतो मम मनस्येवं समभूत् ।

टिप्पणी—अनेकलतापाशसंयतान्—अनेक लताओं के पाश रूप बन्धनरज्जु से बाँधे गये अर्थात् बाँधकर, पर्णपुटे—पत्तों के दोने में, आबद्ध्य=रखकर,

कालकलया=घटिका का भाग, पापकृत्—पापकारी—पाप=कृ+क्विप्+तुक्—परिकल्प्य=सोचकर, किञ्चिदुन्नमितेति—चारों ओर देखने के लिए गरदन ऊँची करके, तृणेऽपि चलति—तिनके के भी हिलने पर, उत्प्रेक्षमाणः सम्भावना करता हुआ। एकया पक्षपाल्या=एकया केवलया "एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा एके मुख्यान्यकेवलाः" पालि—पक्षप्रदेश "पालिः कर्णतलायां स्यात् प्रदेशे पङ्क्तिहृल्योः" स्थूलस्थूलं श्वसतः—लम्बी लम्बी सांसें भरता हुआ। उन्मुखस्य ऊपर मुँह किये हुए।

अतिकष्टासु दशास्वपि जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति प्राणिनां वृत्तयः। नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्। एवमुपरतेऽपि सुगृहीतनाम्नि ताते यदहमविकलेन्द्रियः पुनरेव प्राणिमि। धिङ् मामकरुणमतिनिष्ठुरमकृतज्ञम्। अहो! सोढपितृमरणशोकदारुणं येन मया जीव्यते। उपकृतमपि नापेक्ष्यते। खलं हि खलु मे हृदयम्। अहं हि लोकान्तरमुपगतायामम्बायां नियम्य शोकावेगमाप्रसवदिवसात् परिणतवयसापि सता तातेन तैस्तैरुपायैः संवर्द्धनक्लेशमतिमहान्तमपि स्नेहवशादगणयता यत् परिपालितः, तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्। अतिकृपणाः खल्वमी प्राणाः, यदुपकारिणमपि तातमद्यापि गच्छन्तं नानुगच्छन्ति। सर्वथा न कञ्चित् न खलीकरोति जीवित तृष्णा, यदीदृशावस्थमपि मामायासयति जलाभिलाषः।

शब्दार्थ—जगति प्राणिनां वृत्तयः खलु=निश्चयतः संसार में जीवनधारियों की विविध कार्यों में प्रवर्तनरूप क्रियायें (वृत्तयः) अतिकष्टासु दशास्वपि=अति दुःखदायिनी अवस्थाओं में भी, जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति=जीवन के मोह से रहित नहीं होती हैं। इह जगति=इस संसार में, सर्वजन्तूनाम्=सभी प्राणियों को, जीवितात् अन्यत् अभिमततरं नास्ति=अपने जीवन के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ (अन्यत्) अधिकप्रिय (अभिमततर) नहीं होता है। यत्=यतः क्योंकि, एवमुपरतेऽपि सुगृहीतनाम्नि ताते=उक्त प्रकार से (एवम्) प्रातः स्मरणीय (सुगृहतनाम्नि) पिता के मर जाने पर भी (उपरते) अविकलेन्द्रियः—अविकल (स्व स्व स्वविषयग्रहण करने में समर्थ) इन्द्रियों वाला, अहम्=मैं, पुनरेव=अब भी, प्राणिमि=जीता हूँ। अकरुणम् अति निष्ठुरम् अकृतज्ञम् माम् धिक्=निर्दय, अति कठोर, और कृतघ्न मुझको धिक्कार है। अहो! आश्चर्य है, (सोढपितृमरणशोकदारुणं येन मया जीव्यते, उपकृतमपि नापेक्ष्यते=जो कि मैं सहन किये गये पिता के मरण के विषाद के कारण कठोरतापूर्वक जो रहा हूँ और पिता के द्वारा उपकृत होकर भी उसकी अपेक्षा नहीं कर रहा हूँ (इसलिए भी मुझे धिक्कार है) खलं हि खलु में हृदयम्=निश्चय ही मेरा हृदय अधम (खलं) है। अहम् हि लोकान्तरमुपगतायामम्बायां नियम्य शोकावेगम् आप्रसवदिवसात् परिणतवयसापि सता तातेन तैस्तैरुपायैः संवर्धन क्लेशम् अतिमहान्तमपि स्नेहवशादगणयता यत् परिपालितः, तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्=

क्योंकि माता के (अम्बायाम्) परलोक चले जाने पर, विषाद के प्रवाह को (शोकावेगम्) रोककर (नियम्य) जन्म दिन से लेकर (आप्रसवदिवसात्) (अब तक) परिपक्व आयु वाला होकर भी (परिणतवयसापि सता) पिता के द्वारा उन सब विविध उपायों से, बहुत बड़े भी (अतिमहान्तमपि) संवर्द्धनक्लेशम्=पालन-पोषण में होने वाले कष्ट को भी, स्नेहवशात्=सन्तान प्रेम के कारण, न गिनते हुए (अगणयता) यत् अहं परिपालितः=जो कि मेरा पालन पोषण किया गया था। तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्=वह सब मैंने एक साथ ही भुला दिया। अतिकृपणाः खल्वमी प्राणाः=निश्चय ही ये प्राण बहुत ही तुच्छ है, यत् उपकारिणमपि तातम् अद्य अतिगच्छन्तम् न अनुगच्छन्ति=जो कि सदा के लिए जाते हुए (अतिगच्छन्तम्) उपकारी भी पिता का अब भी अनुगमन नहीं कर रहे हैं। सर्वथा जीविततृष्णा=सब प्रकार से जीवन की लालसा, कञ्चित् न खली करोति इति न=किसको अधम नहीं बना देती अर्थात् सभी को अधम बना देती है। ईदृशावस्थमपि मामायासयति जलाभिलाषः=जो कि ऐसी अवस्था में विद्यमान मुझको भी जल पीने की इच्छा सता रही है।

अनुवाद—संसार में निश्चयतः जीवनधारियों की विविध कार्यों में प्रवर्तन रूप क्रियायें अति दुःखदायिनी अवस्थाओं में भी जीवन के मोह से रहित नहीं होती हैं। इस संसार में सभी प्राणियों को अपने जीवन के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ अधिक प्रिय नहीं होता है। क्योंकि, उक्त प्रकार से प्रातः स्मरणीय पिता के मर जाने पर भी स्वस्थ इन्द्रियों वाला मैं अब भी जी रहा हूँ। निर्दय अतिकठोर और कृतघ्न मुझको धिक्कार है, आश्चर्य है कि, जो कि मैं, पिता के मरण के विषाद के कारण कठोरतापूर्वक जी रहा हूँ, और पिता के द्वारा उपकृत होकर भी उसकी अपेक्षा नहीं कर रहा हूँ। (इसलिए भी मुझे धिक्कार है) निश्चय ही मेरा हृदय अधम है, क्योंकि माता के परलोक चले जाने पर शोक के प्रवाह को रोककर, जन्म दिन से लेकर (अब तक) परिपक्व आयु वाला होकर भी पिता के द्वारा उन उन विविध उपायों से, बहुत बड़े भी, पालन-पोषण में होने वाले कष्टों को भी, सन्तान विषयक स्नेह के कारण न गिनते हुए, जो कि मेरा पालन-पोषण किया गया था वह सब मैंने एक साथ ही भुला दिया। निश्चय ही ये प्राण बहुत ही तुच्छ हैं जो कि सदा के लिए जाते हुए उपकारी भी पिता का अब भी अनुगमन नहीं कर रहे हैं। सब प्रकार से जीवन की लालसा किसको अधम नहीं बना देती अर्थात् सब को अधम बना देती है। जो कि ऐसी अवस्था में विद्यमान मुझको भी जल पीने की इच्छा सता रही है।

भावार्थ—अपनी स्थिति पर विचार करता हुआ वैशम्पायन (शुक) सांसारिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में कहता है कि अतिकष्टादायक अवस्थाओं में रहकर भी जीव साधारण की प्रवृत्तियां जीवन की आशा का त्याग नहीं करती हैं, इस संसार में प्राणियों के लिए अपने जीवन से अधिक प्रिय और कोई भी पदार्थ नहीं है, यही

कारण है कि अपने ऐसे पिता के मरने पर भी मैं अब भी जी रहा हूँ। और अपनी सभी इन्द्रियों से भी स्वस्थ हूँ। मेरे जैसे कृतघ्न कठोर और निर्दय को धिक्कार है। पिता के मरण के अपार शोक को सहकर भी मैं जी रहा हूँ, और मैंने अब तक के उनके सभी उपकारों को सर्वथा भुला दिया है। वस्तुतः मेरा हृदय अति अधम है, माता के मरने के बाद से लेकर अब तक पिता ने वृद्ध होते हुए भी, मेरे जन्म के दिन से ही, सारे शोक को भुलाकर और पालन-पोषण में होने वाले कष्टों को भी न गिनते हुए स्नेहवश विविध उपायों से मेरा पालन-पोषण किया था किन्तु आज मैंने उन सब बातों को एक साथ ही भुला दिया है। सचमुच ये प्राण अति कृपण है जो इतने उपकारी पिता के चले जाने पर भी आज उनके साथ नहीं जा रहे हैं। अपने जीवन की तृष्णा किसे नहीं तुच्छ बना डालती है, यही कारण है कि इस अवस्था को प्राप्त हुए भी मुझे जल की प्यास सता रही है।

संस्कृत व्याख्या—अतिकष्टासु दशासु अपि=अतिदुःखप्रदासु अवस्थासु अपि, प्राणिनां जीवानां, प्रवृत्तयः प्रवर्तनरूपाः क्रियाः जीवितनिरपेक्षा-जीवनधारणे गतस्पृहाः न भवन्ति-न जायन्ते। इह जगति-संसारे अस्मिन् सर्वजन्तूनाम् सर्वविध-प्राणिनाम्, जीवितात् जीवनात् अन्यत् इतरत् वस्तु अभिमततरम् प्रियतरम् नास्ति। यत्-यस्मात् कारणात्, एवं पूर्वोक्त प्रकारेण, सुगृहीतनाम्नि-प्रातः स्मरणीये ताते पितरि उपरते मृतेऽपि अविकलेन्द्रियः—अविकलानि स्वस्वविषयग्रहणसमर्थानि इन्द्रियाणि यस्य सः तथोक्तः अहम् वैशम्पायनः पुनरेव साम्प्रतमपि प्राणिमि श्वसिमि। अतः अकरणम् निर्दयम् अतिनिष्ठुरम् अतिकठोरम् (तथा) अकृतज्ञम्—कृतघ्नं च माम् धिक् धिक्कारः। अहो-आश्चर्यम्, येन मया वैशम्पायनेन, सोढपितृमरणशोकः दारुणाम्—सोढः अनुभूतः यः पितृमरणशोकः तातमरणविषादः तेन दारुणं भीषणं यथास्यात्तथा जीव्यते जीवनं धार्य्यते, उपकृतमपि नापेक्ष्यते—पितृकृतोपकारोऽपि नापेक्ष्यते स्मृतिपथेऽपि नानीयते। खलं हि खलु मे हृदयम्—निश्चयेन मम मनः उपकाराज्ञत्वात् अधमम्, अहं हि लोकान्तरमुपगतायामम्बायाम्—यस्मात् कारणात् परलोकं प्राप्तायां जनन्याम्, शोकावेगं शोकप्रवाहं नियम्य अन्तर्निगूह्य, आप्रसव-दिवसात्-ममजन्मदिनादारभ्य, परिणतवयसापि वृद्धत्वंगतेनापि सता तातेन पित्रा तैः तैः—विविधैरुपायैः, अतिमहान्तमपि अत्यायतमपि संवर्द्धनक्लेशम् मत्परिपालनदुःखम् स्नेहवशात् पुत्रप्रेम्णा अगणयता क्लेशगणनामकुर्वता अहं परिपालितः परिपोषितः। तत्सर्वमेव एकपदे तत्काल एव मया विस्मृतम् स्मृतिपथादपसारितम्। अतिकृपणाः खल्वमी प्राणाः—एते ममासवः निश्चयेन अतितुच्छाः एव, यदुपकारिणमपि तातं मद्यातिगच्छन्तं नानुगच्छन्ति—यस्मात् कारणा दुपकृतिकारिणमपि पितरम् अद्य अतिगच्छन्तम् मामतिक्रम्य प्रयान्तं नानुव्रजन्ति। सर्वथा न कञ्चित् न खलीकरोति जीविततृष्णा—सर्वप्रकारेण जीवनलालसा कमपि जनं न अधमीकरोति इति न, अपितु सर्वं खलीकरोत्येव। यत् यस्मात् कारणात्, ईदृशावस्थम् पितृमरणशोकव्यग्रमपि माम् जलपानेच्छा (जलाभिलाषः) आयासयति क्लिश्नाति।

संस्कृत सरलार्थ—स्वकीयां स्थिति मनुचिन्तयन् वैशम्पायनः कथयति—अतिदुःखदायिनीष्वपि दशासु जीवानां प्रवर्तनरूपाः क्रियाः जीवनधारणे गतस्पृहा न जायन्ते। संसारेऽस्मिन् सर्वविधप्राणिनां जीवनादितरत् प्रियतरं वस्तु न विद्यते, यस्मात् कारणात पूर्वोक्त प्रकारेण प्रातः स्मरणीये पितरि मृतेऽपि स्वस्थेन्द्रियोऽह—मिदानीमपि श्वसिमि। अतः निर्दय मतिकठोर मतिकृतघ्नं मां धिक्, आश्चर्यविषयोऽयं यद्येन मयानुभूतपितृमरणविषादेन भीषणं यथास्यात्तथा जीवनं धार्य्यते। एवञ्च पितृकृतोपकारोऽपि स्मृतिपथे नानीयते। नात्र सन्देहः मम मन उपकाराज्ञत्वादत्यधमम्, यतोहि परलोकं प्राप्तायां जनन्याम् शोकप्रवाहमन्तर्निगृह्य मम जन्म दिनादारभ्यं, वृद्धत्वं गतेनापि पित्रा पुत्रप्रेम्णा अत्यधिकमपि मत्परिपालनदुःखमगणयता तैस्तै विविधैरुपायैरहं परिपोषितः तत्सर्वमेव मय. =हसैव स्मृतिपथादपसारितम्। ममैतेऽसवो-निश्चयेनातितुच्छा एव, यतः उपकृतिविधायिनमपि पितरमद्य मामतिक्रम्य प्रयान्तमेते नानुगच्छन्ति। जीवनलालसा सर्वप्रकारेण कमपि जनं नाधमी करोतीति न, अपितु सर्वं खलीकरोत्येव। यतः पितृमरणदुःखव्यग्रमपि मामेषा जलपानेच्छा क्लिश्नाति।

टिप्पणी—जीवितनिरपेक्षाः जीवनधारण की इच्छा से रहित, वृत्तयः= चेष्टायें। यद्यपि लोक अनेक असह्य कष्ट भोगते हैं तथापि जीवन का मोह नहीं छोड़ते। सुगृहीतनाम्नि, प्रातः स्मरणीय "स सुगृहीतनामा स्याद् यः प्रात रनुचिन्त्यते" श्वसिमि=जीवामि, स्वप्राणरिरक्षिषां न त्यजामि। धिङ्माम्—अत्र उभसर्वतसोः कार्येत्यादि नियमात् धिग् योग में द्वितीया है। खलम् "खलं कल्के भुवि स्थाने क्रूरे कर्णेजपेऽधमे" खलीकरोति—च्विप्रत्ययान्त—दुष्ट बना देती है। अतिगच्छन्तम्—मुझे छोड़कर जाते हुए।

मन्ये चागणितपितृमरणशोकस्य निर्घृणतैव केवलमियं मम सलिल-पानबुद्धिः। अद्यापि दूरत एव सरस्तीरम्। तथाहि, जलदेवतानूपुररवानुकारि दूरेऽद्यापि कलहंसविरुतमेतत्, अस्फुटानि श्रूयन्ते सारसरसितानि, विप्रकर्षा-दाशामुखविसर्पणविरलः सञ्चरति नलिनीषण्डपरिमलः। दिवसस्येयमति-कष्टा दशा वर्तते। तथाहि—रविरम्बरतलमध्यवर्ती स्फुरन्त मातपमनवरत-मनलधूलिनिकरमिव विकिरति करैः, अधिकामुपजनयति तृषाम्। आतप-सन्तप्तपांसुपटल दुर्गमा भूः, अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गानि, अप्रभुरस्म्यात्मनः सीदति मे हृदयम्, अन्धकारतामुपयाति-चक्षुः, अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैव उपपादयेत्।

शब्दार्थ—मन्ये च=और मैं यह समझता हूँ कि, अगणितपितृमरणशोकस्य= पिता के मरण के शोक को न गिनने वाले, मम इयं सलिलपानबुद्धिः=मेरी यह जल पीने की इच्छा, केवलं निर्घृणता एव=केवल निर्दयता ही है। अद्यापि दूरत एव सरस्तीरम्=सरोवर का किनारा अब भी दूर ही है, तथाहि—क्योंकि, जलदेवता-नूपुररवानुकारि=जल देवी के नूपुरों की ध्वनि (रव) का अनुकरण करने वाली,

दूरेऽद्यापि कलहंस विरुतमेतत्=राजहंसों की यह ध्वनि (विरुत) अब भी दूर है। अस्फुटानि श्रूयन्ते सारसरसितानि=सारसों के कूजन अस्पष्ट ही सुनाई पड़ रहे हैं। विप्रकर्षादाशामुख विसर्पणविरलः=दूर होने के कारण (विप्रकर्षात्) दिशाओं के अन्तराल में (आशामुख) फैल जाने के कारण स्वल्प (होकर) (विसर्पण विरल) नलिनीषण्डपरिमलः सञ्चरति=कमलिनी वनों की (नलिनीषण्ड) सुगन्धि (परिमलः) फैल रही है। दिवसस्येयमतिकष्टावशावर्तते=दिन की यह अतिकष्टदायक अवस्था है, तथाहि=क्योंकि—अम्बरतलमध्यवर्ती रविः=आकाशतल के मध्य में वर्तमान सूर्य, करैः=अपनी किरणों से, अनवरतमनलधूलिनिकरमिव=निरन्तर अग्नि की चिनगारियों के (अनलधूलि) समूह (निकरम्) के समान, स्फुरन्तम् आतपम्=चमचमाती हुई धूप को, विकिरति=फैला रहा है। अधिकामुपजनयति तृषाम्=और अधिक प्यास उत्पन्न कर रहा है। तृषाम्=प्यास, आतपसन्तप्तपांसु पाटल-दुर्गमा भूः=पृथिवी (भूः) धूप से तपे हुए धूलिसमूह के कारण (पांसुपाटल) दुःख से ही चलने योग्य (दुर्गमा) (हो गई है)। अतिप्रबलपिपासावसन्नानि मे अङ्कानि अल्पमपि गन्तुं न अलम्=अत्यन्त प्रबल प्यास से (अवसन्न) शून्य या शिथिल हुए मेरे छोटे-छोटे अंग (अङ्गकानि) थोड़ा भी चलने में समर्थ नहीं हैं। अप्रभुः अस्मि आत्मनः=अपने ऊपर अर्थात् शरीर पर मेरा वश नहीं रह गया है (अप्रभु.=असमर्थ, आत्मनः अपने ऊपर, अस्मि=हूँ) सीदति मे हृदयम्=मेरा हृदय खिन्न हो रहा है, अन्धकारिता मुपयाति चक्षुः—नेत्र अन्धकारिता को प्राप्त हो रहा है अर्थात् आँखों में अंधेरा छा रहा है। अपि नाम खलो विधिः—क्या ही अच्छा होता यदि (अपि नाम) दुष्ट विधाता, अनिच्छतः अपि मे मरणम् अद्यैव उपपादयेत्=न चाहते हुए भी मेरी मृत्यु आज ही ला देता।

अनुवाद—और मैं यह समझता हूँ कि पिता के मरण के शोक की उपेक्षा करने वाले मेरी यह जल पीने की इच्छा केवल यह (मेरी) निर्दयता ही है। सरोवर का किनारा अब भी दूर ही है। क्योंकि जल देवी के नूपुरों की ध्वनि का अनुकरण करने वाला, राजहंसों का यह कूजन अब भी दूर है। सारसों के कूजन अस्पष्ट ही सुनाई पड़ रहे हैं। दूर होने के कारण दिशाओं के अन्तराल में फैल जाने के कारण स्वल्प (होकर) कमलिनी वनों की सुगन्धि फैल रही है। दिन की यह अतिकष्ट-दायक अवस्था है, क्योंकि आकाशतल के मध्य में वर्तमान सूर्य, अपनी किरणों से, लगातार अग्नि की चिनगारियों के समान चमचमाती हुई धूप को फैला रहा है। और अधिक प्यास उत्पन्न कर रहा है। पृथिवी, धूप से तपे हुए धूलि समूह के कारण दुःख से ही चलने योग्य हो गई है। अत्यन्त प्यास से शून्य या शिथिल हुए मेरे छोटे छोटे अंग थोड़ा भी चलने में समर्थ नहीं हैं। अपने ऊपर मेरा वश नहीं रह गया है। मेरा हृदय खिन्न हो रहा है। नेत्र अन्धकारिता को प्राप्त हो रहा है अर्थात् आँखों में अंधेरा छा रहा है। क्या ही अच्छा होता यदि दुष्ट विधाता न चाहते हुए भी मेरी मृत्यु आज ही ला देता।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि इस स्थिति में तो मैं समझता हूँ कि पिता की मृत्यु की वेदना को भी दबा देने वाली मेरी यह जल पीने की इच्छा, केवल मेरी निष्ठुरता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सरोवर तो अभी दूर है क्योंकि जल देवी के नूपुरों की ध्वनि के समान राजहंसों की यह कूजन दूर होने के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ रहा है। तथा दूर होने के कारण दिशाओं में फैलकर हल्की हो जाने के कारण कमलवनों की गन्ध भी कम ही फैल रही है। दिन की दशा तो अतिकष्टदायिनी हो गई है। आकाश के मध्य में स्थित सूर्य अब भी किरणों से जो चमकती हुई धूप फैला रहा है वह मानो आग की चिनगारियाँ बरसा रहा है। इससे प्यास और बढ़ रही है। धूप से तपे हुए धूलिसमूह के कारण पृथिवी कठिनाई से ही चलने योग्य रह गई है। प्यास से मेरे सभी कोमल अंग थोड़ा-सा चलने में भी असमर्थ हो गये हैं। अपने ऊपर अब मेरा कोई वश नहीं चलता हृदय बैठा जा रहा है। आँखों पर अंधेरा छा रहा है। अच्छा होता कि दुष्ट विधाता, न चाहते हुए भी अब मेरी मृत्यु ला देता और मैं मर जाता।

संस्कृत व्याख्या—मन्ये च—जाने चाहम्, अगणितपितृमरणशोकस्य=अगणितः उपेक्षितः पितृमरणशोकः तातमृत्युविषादः येन तस्य तादृशस्य, मम इयं सलिलपानबुद्धिः—ममैषा जलपानेच्छा, केवलं निर्घृणताएव=केवलं जनकोपरि मे निष्ठुरतैव। अद्यापि दूरत एव सरस्तीरम्=सरोवरतटन्तु साम्प्रतमपि दूरत एव वर्तते। तथाहि जलदेवतानूपुर रवानुकारि=जलदेवतानां जलाधिष्ठात्रीणां देवीनां नूपुराणां मञ्जीराणाम् रवम् ध्वनिम् अनुकर्तुं शीलं यस्य तत् तादृशम्, एतत् कलहंस-विरुतम्=पुरः श्रूयमाणं राजहंसानां कूजितम्, अद्यापि साम्प्रतमपि, दूरे विप्रकर्षे (वर्तते) सारसरसितानि=सारसाख्यपक्षिविशेष—कूजितानि अस्फुटानि नातिव्यक्तानि श्रूयन्ते आकर्ण्यन्ते। विप्रकर्षाद् दूराद्धेतोः आशामुखेषु दिगन्तरेषु विसर्पणेन प्रसरणेन विरलः स्वल्पः तथोक्तः, नलिनीषण्डपरिमलः=कमलिनीवनानां सौरभम्, सञ्चरति इतस्ततः प्रसरति। दिवसस्य दिनस्य इय मेषा अतिकष्टा अतिक्लेशदायिनी दशा अवस्था (वर्तते) अम्बरतलमध्यवर्ती-आकाशतल मध्यगामी, रविः—सूर्यः करैः किरणैः भुजैश्च, अनवरतमविच्छन्नं, अनलधूलिनिकरमिव=अग्निकणिकासमूहमिव स्फुरन्तं देदीप्यमानम् आतपम् सूर्यतेजः विकिरति विक्षिपति। अधिकां तृषाम्=समधिक-पिपासाम् उपजनयति निष्पादयति। आतपसन्तप्त पांसुपटलदुर्गमा भूः—आतपेन रवितेजसा सन्तप्ताः उष्णा ये पांसवः धूलयः तेषां पटलं समूहस्तेन दुर्गमा दुःखेन गन्तुं क्षमा भूः पृथिवी (वर्तते) अतिप्रबलपिपासावसन्नानि=अतिप्रबला अत्यधिका या पिपासा जलपानेच्छा तया अवसन्नानि खिन्नानि शिथिलानि वा मे मम वैशम्पायनस्य अङ्गकानि शरीरस्य क्षुद्रावयवाः अल्पमपि स्वल्पमपि गन्तुम् चलितुम् नालम् न समर्थानि। अप्रभुरस्मि आत्मनः=नप्रभवामि आत्मनः, स्वेच्छया चलनासमर्थोऽस्मि इत्याशयः। सीदति मे हृदयम्—मे मम हृदयं मनः सीदति अवशीर्यते। चक्षुः मेघम् अन्धकारिताम् तिमिरताम् उपयाति प्राप्नोति। अपि नाम खलः विधिः—

अपीति प्रश्ने, नामेति सम्भावनायाम्, खलः अशुभकारित्वाद् दुर्जनः विधिः विधाता, अनिच्छतः अनभिलषतः अपि मे मम मरणं मृत्युम् अद्यैव उपपादयेत् कुर्यात् ।

संस्कृत सरलार्थ—वैशम्पायनः कथयति—जाने चाहं समुपेक्षिततातमरणविषादस्य ममैषा जलपानेच्छा केवलं जनकोपरि मे निष्ठुरतैव, सरोवरतटन्तु साम्प्रतमपि दूरत एव वर्तते, तथाहि जलाधिष्ठात्रीणां देवीनाम् मञ्जीररवानुकरणशीलं मेतच्छ्रूयमाणं राजहंसकूजितं साम्प्रतमपि दूरे वर्तते । सारसाख्यपक्षिविशेषकूजितानि च नातिव्यक्तानि श्रूयन्ते । दूराद्धेतोः दिगन्तरेषु प्रसरणेन स्वल्पीभूतः कमलिनीवनगन्ध इतस्ततः प्रसरति । दिनस्यैपातिकष्टप्रदावस्था वर्तते । गगनतलमध्यगामी सूर्यः स्वरश्मिभिः अनवरतमग्निकणिका समूहमिव देदीप्यमानमातपं विक्षिपति । अत्यधिकां पिपासाञ्च निष्पादयति । सूर्यतेजसा सन्तप्तधूलिसमूहेन पृथिवी दुःखेनैव चलितुं योग्यास्ति । अत्यधिकपिपासया खिन्नानि मम अङ्गकानि स्वल्पमपि चलितुं न पारयन्ति । अवशीर्य्यंते च मम मनः नेत्रञ्च तिमिरतां प्राप्नोति । अपि नाम दुष्टो-विधाता अनभिलषतोऽपि मम मृत्युम् अद्यैवोपनयेत् ।

टिप्पणी—निर्घृणता=निर्दयता निष्ठुरता 'घृणा दायानुकम्पा स्यात् इत्यमरः । यहां निघृणता और जलाभिलाषा में हेतु और हेतुमान का तादात्म्य होने से हेत्वलंकार है "अभेदेनाभिधा हेतु र्हेतो हेतुमता सह" सा. द.) अद्यापि—इस समय भी । नूपुर=मञ्जीर "पादाङ्गदं तुलाकोटि मंञ्जीरो नूपुरे स्त्रियाम् इत्यमरः । विप्रकर्ष=दूर, आशामुखेषु—दिशाओं के अन्तराल में अर्थात् सभी दिशाओं में, षण्ड=वन, निकरमिव—उपमालंकार, अवसन्न=शिथिल खिन्न या शून्य, अंगकानि—छोटे-छोटे अंग, अप्रभुः—असमर्थ, आत्मनः—अपने पर अर्थात् अपने शरीर पर । अपि नाम—अपि शब्दः प्रश्ने नामेति सम्भावनायाम् "अपिः सम्भावना प्रश्नशङ्का-गर्हासमुच्चये । तथा युक्तपदार्थे च कामचारक्रियासु च' इति विश्वः । नाम कामे कोपेऽभ्युपगमे विस्मये स्मरणेऽपि च । सम्भाव्यकुत्साप्रकाश्यविकल्पेष्वपि दृश्यते । खलः—पिशुनो दुर्जनः खलः" इत्यमरः ।

## हारीत वर्णनम्

(इत्येवं चिन्तयत्येव मयि, तस्मात् सरसोऽदूरवर्तिनि तपोवने जाबालि र्नाम महातपा मुनिः प्रतिवसति स्म । तत्तनयश्च हारीतनाम्ना मुनिकुमारकः सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः, समानवयोभि रपरैस्तपोधनकुमारकैरनुगम्यमानस्तेनैव पथा द्वितीय इव भगवान् विभावसुः अतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमूर्तिः, उद्यतो दिवसकरमण्डलादिवोत्कीर्णः तडिद्भिरिव विरचितावयवः, तप्तकनकद्रवेणेव बहिरूपलिप्तमूर्तिः, आपिशङ्गावदातया देहप्रभया स्फुरन्त्या सबालातपमिव दिवसं सदावानलमिव वनमुपदर्शयन्, उत्तप्तलौहलोहिनीना मनेकतीर्थाभिषेकपूताना मंसस्थलावलम्बिनीनां जटानां निकरेणोपेतः..................।

शब्दार्थ—एवं चिन्तयत्येव मयि=मेरे इस प्रकार सोचते हुए ही, तस्मात् सरसः अदूरवर्तिनि तपोवने=उस सरोवर के समीपवर्ती तपोवन में, जावालि नाम महातपा मुनिः प्रतिवसति स्म=जावालि नामक महातपस्वी मुनि रहते थे। तत्तनयश्च हारीतनामा मुनिकुमारकः=और उनके पुत्र हारीत नामक मुनि कुमार, (जो कि) सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः=ब्रह्म पुत्र सनत्कुमार के समाने सभी विद्याओं से निर्मल (अवदात) हृदय वाला, समानवयोभिः अपरैः तपोधनकुमारकैः अनुगम्यमानः=समान अवस्था वाले दूसरे तपस्विकुमारों द्वारा अनुगत होता हुआ, तेनैव पथा=उसी मार्ग से, द्वितीय इव भगवान् विभावसुः=दूसरे भगवान् अग्नि सदृश, (विभावसुः) अतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमूर्तिः=अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण दुःख से ही देखने योग्य आकृति वाले, उद्यतो दिवसकरमण्डलात्=मानो उदय होते हुए सूर्य बिम्ब से गढ़कर निकाले हुए (उत्कीर्ण) तडिद्भिरिव विरचितावयवः=मानो बिजलियों से निर्मित अंगों वाले, तप्तकनकद्रवेणेव बहिरुपलिप्तमूर्तिः=तपाये हुए स्वर्णद्रव से मानो बाहर से उपलिप्त किये गये शरीर वाले, आपिशङ्गावदातया देहप्रभया स्फुरन्त्या=किञ्चित् पीत और धवल वर्ण की (आपिशङ्ग अवदात) चमकती हुई (स्फुरन्त्या) शरीरकान्ति से, सबालातपमिव दिवसम्=दिन को प्रातःकालीन धूप से युक्त, सदावानलमिव वनम्=और वन को दावानल से युक्त सा, उपदर्शयन्=दिखलाता हुआ, उत्तप्तलौहलोहिनीनाम् अनेकतीर्थाभिषेकपूतानाम् अंसस्थलावलम्बिनीनां जटानां निकरेणोपेतः=तपाये हुए लोहे के समान लाल, अनेकतीर्थ जलों में स्नान करने से पवित्र, और कन्धों पर लटकने वाली जटाओं के समूह से युक्त ........ ..........।

अनुवाद—मेरे इस प्रकार सोचते हुए ही, उस सरोवर के समीपवर्ती तपोवन में जावालि नामक महातपस्वी मुनि रहते थे, उनके पुत्र हारीत नाम मुनिकुमार, (जो कि) ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार के समान सभी विद्याओं से निर्मल मन वाले, समान अवस्था वाले अन्य तपस्विकुमारों द्वारा अनुगम्यमान, उसी मार्ग से, दूसरे भगवान् अग्निसदृश, अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण कठिनाई से देखने योग्य आकृति वाले, मानो उदय होते हुए सूर्य बिम्ब से गढ़कर निकाले हुए, मानो बिजलियों से निर्मित अंगों वाले, तपाये हुए स्वर्णद्रव से मानो बाहर से उपलिप्त किये गये शरीर वाले, कुछ-कुछ पीत और श्वेतवर्ण की चमकती हुई शरीर कान्ति से, दिन को प्रातःकालीन धूप से युक्त और वन को वनाग्नि से युक्त सा दिखलाते हुए, तपाये हुए लोहे के समान लाल, अनेक तीर्थजलों में स्नान करने से पवित्र, और कन्धों पर लटकने वाली जटाओं के समूह से युक्त थे........................।

भावार्थ—वैशम्पायन कहता है कि उस सरोवर के समीपवर्ती वन में एक जावालि नामक बड़े तपस्वी मुनि रहते थे, जबकि मैं वहाँ इस प्रकार सोच ही रहा था तभी हारीत नामक उनका पुत्र मुनि कुमार, समवयस्क अन्य मुनि कुमारों से अनुगत उसी मार्ग से, (उसी कमल सरोवर में स्नान की इच्छा से आया) वह

मुनिकुमार हारीत, सनत्कुमार के समान सभी विद्याओं से निर्मल चित्त वाला था। वह अत्यधिक तेजस्वी था अतः उसकी ओर देखना भी कठिन था, वह दूसरे अग्निदेव जैसा प्रतीत होता था। उसकी आकृति ऐसे लग रही थी कि मानो उसे सूर्यबिम्ब को गढ़कर बनाया गया हो, उसके अंग प्रत्यङ्गों में इतनी चमक थी कि ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उसके अंग बिजली से बने हों और शरीर का रंग ऐसा चमकता था कि मानो उस पर सोने का द्रव पोत दिया गया हो, वह अपनी चमकती हुई कुछ पीली और धवल शरीर की कान्ति से मानो दिन को प्रातः सूर्यातप से और वन को वनाग्नि से युक्त कर रहे हों, तप्त लोहे के समान लाल, तीर्थजल स्नान से पवित्र उनकी जटायें उनके कन्धों पर लटक रहीं थीं।

**संस्कृत व्याख्या**—इत्येवं चिन्तयत्येव मयि-मयि वैशम्पायने एवमुक्तविधिना विचारयत्येव सति, तस्माद् सरसः अदूरवर्तिनि तपोवने—तस्मात् पूर्वोक्तात् सरोवरात् समीपस्थायिनि तपस्विजनविपिने, जाबालि र्नाम महातपा मुनिः प्रतिवसतिस्म= जाबालिसंज्ञकः महान् तपस्वी मुनिः निवसतिस्म। तत्तनयश्च हारीतनामा मुनि-कुमारकः=तस्य तपोनिधेः जाबालिमुनेः पुत्रः हारीतसंज्ञकः तापसबालकः, (तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागमत्) इति अन्तिम वाक्येन सम्बन्धः। स तापसकुमारकः, सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः—ब्रह्मपुत्रसनत्कुमार इव सर्वाधीतविद्याभि निर्मलहृदयः, समानवयोभिः समवयस्कैः अपरै रन्यैः तपोधनकुमारकैः तपोनिधिदारकैः अनुगम्यमानः तेनैव पथा मार्गेण, द्वितीय इव भगवान् विभावसुः—तदपरः भगवान् अग्निरिव, अतितेजस्वितया—अत्युत्कृष्टं तेजो विद्यते यस्यासौ अतितेजस्वी तस्य भावस्तत्ता तया अत्युत्कृष्टदीप्तिमत्तया दुर्निरीक्ष्यमूर्तिः—दुःखेनावलोकयितुं शक्या मूर्तिः स्वरूपं यस्य स तादृशः, उद्यतः उदयं कुर्वतः दिवसकरमण्डलात् सूर्यबिम्बात् उत्कीर्णः उल्लिख्योद्धृत इव, तडिद्भिरिव विरचितावयवः—तडिद्भिः सौदामिनीभिः विरचिता निर्मिता अवयवा अङ्गानि यस्य स तथोक्तः, तप्तकनकद्रवेणेव बहिरुपलिप्तमूर्तिः—तप्तः उष्णः यः कनकस्य सुवर्णस्य द्रवः रसः तेन इव बहिः उपलिप्ता लिम्पिता मूर्तिः शरीरं यस्य स तादृशः, आपिशङ्गावदाततया—आपिशङ्गा ईषत्पिङ्गलवर्णा अवदाता 'धवला च तया एवंविधया स्फुरन्त्या दीप्यमानया देहप्रभया शरीरकान्त्या दिवसम् दिनम् सबालातपमिव बालातपेन सह वर्तमानमिव, वनं काननम्, सदावानलमिव दावानलेन वनाग्निना सह वर्तमानमिव उपदेर्शयन् प्रकाशयन्, उत्तप्तलोहलोहिनीनाम्—उत्तप्तम् उष्णीकृतं यल्लोहं कालायसम् तद्वल्लोहिनीनाम् रक्तवर्णानाम्, अनेकतीर्था-भिषेकपूतानाम्—अनेकानि विविधानि यानि तीर्थानि गङ्गादीनि तेषु अभिषेकेण स्नानेन पूतानां पवित्रीकृतानाम्, अंसस्थलावलम्बिनीनाम् अंसस्थलं भुजशिरः स्थानम् तत्र अवलम्बिनीनाम् अवलम्बमानानाम् जटानां निकरेण समूहेन उपेतः समन्वितः तादृशः…… ……।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायन. कथयति यत्तस्मात् सरोवरात् समीपस्थायिनि तपस्विजनवने जाबालिसंज्ञकः महान् तपस्वी मुनिः निवसति स्म। तस्य तपोनिधेः

जावालिमुनेः पुत्रः हारीतसंज्ञकः तापसबालकः (तदेवकमलसरसि सिस्नासुरुपागमत् "इति वन्तिम वाक्येन सम्बन्धः) स तापस कुमारकः ब्रह्मपुत्रसनत्कुमार इव सर्वाधीतविद्याभिः निर्मलहृदयः, समवयस्कैरन्यै स्तपोनिध्रिदारकै रनुगम्यमानः तेनैव मार्गेण, तदपरो भगवान् अग्निदेव इव अत्युत्कृष्टदीप्तिमत्तया दुरवलोकनीयस्वरूपः, उदयंगच्छतः सूर्य-बिम्बादुल्लिख्योद्धृत इव, सौदामिनीभि र्निर्मितावयवः, तप्तसुवर्णद्रवेणेव बहिर्लिम्पित-शरीरः, ईषत्पिशङ्गधवलवर्णया दीप्यमानया शरीरकान्त्या दिनं प्रातःकालीनसूर्यातपेन सह वर्तमानमिव वनञ्च वनाग्निना सह वर्तमानमिव प्रकाशयन्, उष्णीकृतलोहवद्रक्त वर्णानां विविधतीर्थस्नानपवित्रीकृतानां भुजशिरः स्थलयो रवलम्बमानानां जटानां समूहेन समन्वितः (आसीत्) ।

टिप्पणी—तत्तनयः—तस्य तनयः पुत्रः 'आत्मजस्तनयः सूनुः' इत्यमरः। सनत्कुमारः—सनतः ब्रह्मणः प्रजापतेः कुमारः पुत्रः "सनत्कुमारो वैधात्रः" अथवा सनत् सर्वास्मिन् काले कुमारः कौमार्यव्रतावलम्बी। पुराण में भी कहा गया है "यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विद्धि माम्, तस्मात् सनत्कुमारेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम्। सनत्कुमार के समान समस्त विद्या के अध्येता होने के कारण निर्मल चित्त वाले, विभावसुः—अग्निः "सूर्यवह्नी विभावसू" इत्यमरः। सनत्कुमार इव में उपमा और यहाँ उत्प्रेक्षा है। तेजस्वितया तेजस्वी होने के कारण "तेजोदीप्तौप्रभावे च स्यात् पराक्रमरेतसोः" कोश। भगवान्—भग शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है यथा "भगं श्रीयोनि वीर्येच्छा ज्ञानवैराग्यकीर्तिषु। माहात्म्यैश्वर्यं रत्नेषु धर्मे मोक्षेऽथवा रवौ" उत्कीर्ण इव मानो टांकी से बनाकर निकाला गया हो, उत्प्रेक्षा। तडिद्भिः द्रवेणेव—दोनों स्थलों में क्रियोत्प्रेक्षा है। आपिशङ्ग=कुछ-कुछ पीला अवदात—धवल, "अवदातः सितो गौरो वलक्षोधवलोऽर्जुनः" इत्यमरः। सबालातपमिव सदावानलमिव में गुणोत्प्रेक्षा है। लोहः—अश्मसारः "लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायायसी, अश्मसारः। इत्यमरः—तीर्थम्—गङ्गादि तीर्थों में स्नान से।

**स्तम्भितशिखाकलापः खाण्डववनदिधक्षया कृतकपटबटुवेश इव भगवान् पावकः, तपोवनदेवतानूपुरानुकारिणा धर्मशासनकटकेनेव स्फाटि-केनाक्षवलयेन दक्षिणश्रवणावलम्बिना विराजमानः, सकलविषयोपभोग-निवृत्त्यर्थमुपपादितेन ललाटपट्टके त्रिसत्येनेव भस्मत्रिपुण्ड्रकेणालंकृतः, गगनगमनोन्मुखबलाकानुकारिणा स्वर्गमार्गमिव दर्शयता सततमुद्ग्रीवेण स्फटिकमणिकमण्डलुनाध्यासितवामकरतलः, स्कन्धदेशावलम्बिना कृष्णा जिनेन नीलपाण्डुभासा तपस्तृष्णानिपीतेनान्तर्निष्पतता धूमपटलेनेव परीत-मूर्तिः, अभिनवबिससूत्रनिर्मितेनेव परिलघुतया पवनलोलेन निर्मांसविरलपा-र्श्वास्थिपञ्जरमिव गणयता वामांसावलम्बिना यज्ञोपवीतेनोद्भासमानः, देवतार्चनार्थमागृहीतवनलताकुसुम परिपूर्ण पर्णपुटसनाथशिखरेणाषाढदण्डेन व्यापृतसव्येतरपाणिः, विषाणशिखरोत्खातामुद्वहता स्नानमृदमुपजातपरि-**

**चयेन नोवारमुष्टि संवर्द्धितेन कुशकुसुमलतायास्यमानलोल दृष्टिना तपोवन-मृगेणानुगम्यमानः ।**

**शब्दार्थ**—**स्तभितशिखाकलापः**=शिखापुञ्ज को बाँधे हुए (स्तम्भित) **खाण्डववनदिधक्षया**=खाण्डव वन को जलाने की इच्छा से, **कृतकपटवटुवेश इव भगवान् पावकः**—कपटपूर्वक ब्रह्मचारी का वेश धारण किये हुए भगवान् अग्निदेव जैसे, **तपोवनदेवतानूपुररवानुकारिणा**=तपोवन की अधिष्ठात्री देवी के नुपुरों का अनुकरण करने वाले, **धर्मशासनकटकेनेव** धर्मशासन के सैन्य के समान, **दक्षिणश्रवणावलम्बिना**=दाहिने कान पर लटकती हुई, **स्फाटिकेनाक्षवलयेन**=स्फटिकमणि निर्मित जपमाला से, **विराजमानः**—शोभायमान, **सकलविषयोपभोगनिवृत्त्यर्थमुपपादितेन**=मानो सम्पूर्ण विषयों के उपभोग से निवृत्ति के लिए धारण किये गये, **ललाटपट्टके**=भालस्थल पर, **त्रिसत्येनेव भस्मत्रिपुण्ड्रकेणालङ्कृतः**=त्रिसत्य के समान भस्म के त्रिपुण्ड से सुशोभित, **गगनगमनोन्मुखबलाकानुकारिणा**=आकाश में उड़ने के लिए उन्मुख बलाकाओं का अनुकरण करने वाले, **स्वर्गमार्गमिव दर्शयता**=मानो स्वर्ग का मार्ग दिखलाते हुए, **सततमुन्नग्रीवेण**=मानो निरन्तर उन्नतग्रीवा वाले, **स्फटिकमणिकमण्डलुना**=स्फटिक मणि के कमण्डलु से, **अध्यासितवामकरतलः**=अवलम्बित बायें हाथ वाले, **स्कन्धदेशावलम्बिना**=कन्धे पर लटकने वाले, **नीलपाण्डुभासा**=नीली और पीली कान्ति वाले, **कृष्णाजिना**=काले मृग चर्म से, **तपस्तृष्णानिपीतेनान्तर्निष्पतता धूमपटलेनेव**=मानो तपोवृद्धि की इच्छा से पिये गये (तदनु) अन्दर से बाहर निकलते हुए धूमसमूह से, **परीतमूर्तिः**=आवृत शरीर वाले, **अभिनवबिससूत्रनिर्मितेनेव**=मानो नवीन मृणालसूत्र से निर्मित, **परिलघुतया**=अत्यन्त हलका होने के कारण, **पवनलोलेन**=वायु से चञ्चल, **निर्मांसविरलपार्श्वास्थिपञ्जरमिव गणयता**=अतएव प्रायः मांसरहित विरल पसलियों के (पार्श्वास्थि) अस्थि पञ्जर को गिनते हुए से, **वामांसावलम्बिना**=बायें कन्धे पर लटकते हुए, **यज्ञोपवीतोद्भासमानः**=यज्ञोपवीत से सुशोभित, **देवतार्चनार्थमागृहीतवनलताकुसुमपरिपूर्णपर्णपुटसनाथशिखरेणाषाढदण्डेन व्यापृतसव्येतरपाणिः**=देवताओं की पूजा के लिए चुने गये (आगृहीत) वनलताओं के फूलों से भरे हुए पत्तों के दोने से युक्त (सनाथ) अग्रभाग वाले (शिखरेण) पलाशदण्ड से (आषाढ) व्यग्र (व्यापृत) दाहिने (सव्येतर) हाथ वाले, **विषाणशिखरोत्खाताम् स्नानमृदम् उद्वहता**=सींगों की नोकों से उखाड़ी गई स्नान की मिट्टी को धारण किये हुए, **उपजातपरिचयेन**=परिचय को प्राप्त, **नीवारमुष्टिसंवर्द्धितेन**=मुट्ठी भर नीवार धान्य (खिला खिलाकर) पाले गये, **कुशकुसुमलतायास्यमानलोलदृष्टिना**=(दोनों ओर होने वाली) कुशों एवं पुष्प लताओं के कारण खिन्नता को प्राप्त कराये जाते हुए (आयास्यमान) अतएव चञ्चल दृष्टि वाले, **तपोवनमृगेणानुगम्यमानः**=तपोवन के मृग से अनुगम्यमान·········।

**अनुवाद**—शिखा समूह को बाँधे हुए, खाण्डववन को जलाने की इच्छा से कपटपूर्वक ब्रह्मचारी का वेश धारण किये हुए भगवान् अग्निदेव के समान, तपोवन

की अधिष्ठात्री देवी के नूपुरों का अनुकरण करने वाले धर्मशासन के सैन्य के समान, दाहिने कान पर लटकती हुई स्फटिक मणिनिर्मित वलयाकार जपमाला से शोभायमान, मानो सम्पूर्ण विषयों के उपभोग से निवृत्ति के लिए धारण किये गये, भालस्थल पर त्रिसत्य के समान भस्म के त्रिपुण्ड से सुशोभित, आकाश में उड़ने के लिए उन्मुख बलाकाओं का अनुकरण करने वाले, मानो स्वर्ग का मार्ग दिखलाते हुए मानो निरन्तर उन्नत ग्रीवा वाले स्फटिक मणि के कमण्डलु से अवलम्बित वाम हस्त वाले, मानो तपोवृद्धि की इच्छा से पिये गये तदनु अन्दर से बाहर निकलते हुए, धूम समूह जैसे, नीली और पीली कान्ति वाले, कन्धे पर लटकने वाले काले मृग चर्म से आवृत शरीर वाले, मानो नवीन मृणालसूत्रों से निर्मित, अत्यन्त हल्का होने के कारण वायु से चञ्चल, अतएव प्रायः मांस से रहित विरल पसलियों के अस्थिपञ्जर को गिनते हुए से, बायें कन्धे पर लटकते हुए यज्ञोपवीत से सुशोभित, देवताओं की पूजा के लिए चुने गये, वनलताओं के फूलों से भरे हुए पत्तों के दोने से युक्त अग्रभाग वाले पलाश दण्ड से व्यस्त दक्षिण हाथ वाले, सींगों की नोकों से उखाड़ी गई स्नान की मिट्टी को धारण किये हुए, परिचय को प्राप्त, मुट्ठीभर नीवार धान्य (खिला खिलाकर) पाले गये, कुशों एवं पुष्प लताओं के कारण खिन्नता को प्राप्त कराये गये अतएव चञ्चल दृष्टि वाले, तपोवन के मृग से अनुगम्यमान ..............।

भावार्थ—हारीत नामक मुनिकुमार का वर्णन करता हुआ वैशम्पायन कहता है कि वह अपने सिर पर चोटियों का जूड़ा बांधे हुए था अतएव वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो खाण्डव वन को जलाने की इच्छा से भगवान् अग्निदेव ने ही ब्रह्मचारी का कपट वेश धारण कर लिया हो। उनके दाहिने कान पर, तपोवन देवी के नूपुरों का अनुकरण करने वाली स्फटिक मणि की वलयाकार जपमाला पड़ी हुई थी वह ऐसी लग रही थी कि मानो वह उनके श्रवणगत गुरु के दिये हुए धर्मोपदेश की रक्षा के लिए एक सेना का गोलाकार व्यूह हो। उनके भाल पर भस्म का त्रिपुण्ड ऐसा लग रहा था मानो उन्होंने जो गुरु को विषय निवृत्ति के लिए तीन बार शपथ दी थी वही त्रिसत्य के रूप में प्रत्यक्ष भाल पर शोभित थी। उनके बायें हाथ में जो स्फटिक मणि का कमण्डलु था और जिसकी कि गरदन ऊपर की ओर थी वह ऐसा लग रहा था कि मानो वह आकाश में उड़ने के लिए तैयार अतएव ऊपर की ओर मुख किये हुए बलाकाओं का समूह हो, कमण्डलु की ऊपर उठी हुई गरदन मानो स्वर्ग का मार्ग दिखला रही थी। कन्धे से लटकते हुए काले मृग के चर्म से उनका शरीर लिपटा था और जो कि नीली और पीली कान्ति वाला था वह ऐसा लग रहा था कि मानो उन्होंने अपनी तपोवृद्धि के लिए जो पहले धूम समूह का पान किया था वही अब मानो बाहर निकल रहा था। उन्होंने अपने बायें कन्धे पर बहुत पतला अतएव हवा में हिलता हुआ जनेऊ डाल रखा था जो कि मानो बिसतन्तुओं का बना हुआ था उसे देखकर ऐसा मालूम पड़ता था कि मानो वह उनकी निर्मांस पसलियों की हड्डियाँ गिन रहा हो। उनके दाहिने हाथ में

Poonam



पलाश का दण्ड था जिसके सिरे पर देवपूजा के लिए चुने गये फूलों से भरा हुआ पत्तों का दोना बँधा हुआ था और उनके पीछे एक तपोवन का मृग चल रहा था जिसको उन्होंने नीवार की मुट्ठी खिला खिलाकर पाला था, इस मृग के सींगों पर अपने ही सींगों से खोदी गई स्नान के लिए मिट्टी लगी हुई थी; मुनिजन स्नान से पूर्व शरीर पर मिट्टी लगाते थे यही स्नान की मिट्टी हारीत के स्नान के लिए मृग के सींगों की नोकों पर लगी हुई थी। रास्ते में दोनों ओर जो कुशों के पौधे और पुष्पलताओं की झाड़ियाँ थीं उनसे टकराने के कारण वह मृग कुछ खिन्न होकर चञ्चल दृष्टि से देखने लगा था।

**संस्कृत व्याख्या**—स्तंभित् शिखाकलापः=स्तम्भितः बद्धः शिखानां चूडानां कलापः समूहः येन स तथोक्तः, खाण्डववनदिधक्षया=खाण्डववनस्य खाण्डवसंज्ञकस्य काननस्य दग्धुमिच्छा तया, कृतकपटवटुवेशः=कृतः विहितः कपटेन व्याजेन वटुवेशः ब्रह्मचारिस्वरूपम् येन स तादृशः, भगवान् पावकः इव ऐश्वर्यसम्पन्नः अग्निदेव इव दीप्तिमानित्यर्थः, तपोवनदेवतानूपुरानुकारिणा—तपोवनदेवता तपोवनाधिष्ठात्री तस्या नूपुरं पादकटकं तदनुकारिणा तत्सदृशेन, दक्षिणश्रवणावलम्बिना दक्षिणश्रवणं सव्येतरश्रोत्रं तत्र अवलम्बिना स्थायिना, स्फाटिकेन स्फटिकमणिरचितेन अक्षवलयेन वलयाकारजपमालया, धर्मशासनकटकेनेव=धर्मशासनस्य गुरुप्रदत्तविधिनिषेधादि-रूपधर्मोपदेशस्य कटकं तत्त्राणाय परिधिरूपेण वर्तमानं सैन्यं तेनेव, विराजमानः, सुशोभमानः, सकलविषयोपभोगनिवृत्त्यर्थमुपपादितेन=सकलविषयाणां समस्तस्रक्-चन्दनादिभोग्यवस्तूनाम् यः उपभोगः परिभोगः तस्मान्निवृत्त्यर्थम् उपरमार्थम् उपपादितेन विहितेन, त्रिसत्येनेव - त्रयाणां सत्यानां शपथानां समाहारः तेनेव, ललाटपट्टके भालफलके भस्मत्रिपुण्ड्रकेण भस्मना विरचितत्रितिलकेन अलङ्कृतः सुशोभितः, गगनगमनोन्मुखवलाकानुकारिणा आकाशोड्डयनाय उन्मुखा ऊर्ध्वानना या वलाका विसकण्ठिका तामनुकर्तुं शीलं यस्य तेन तादृशेन, स्वर्गमार्गमिव दर्शयता स्वर्गवर्त्म प्रकटयतेव, सततमुद्ग्रीवेण निरन्तरम् उन्नतकन्धरेण स्फटिकमणिकमण्डलुना—स्फटिकमणिरचित कमण्डलुना, अध्यासितवामकरतलः—अध्यासितम् अवलम्बितम् वामकरतलं सव्यपाणितलं यस्य स तादृशः, तपस्तृष्णानिपीतेन—तपस्तृष्णया तपो मे वृद्धिं यातु इत्यभिलापया निपीतेन निगीर्णेन तदनु अन्तर्निष्पतता उदरमध्याद्बहिनिः स ता धूमपटलेन धूमसमूहेनेव नीलपाण्डुभासा नीला कृष्णा पाण्डुः श्वेता भाः कान्ति र्यस्य स तेन तादृशेन, स्कन्धदेशावलम्बिना—बाहुमूलभागावलम्बनशीलेन कृष्णाजिनेन कृष्णमृग धर्मणा परीतमूर्तिः व्याप्तदेहः, अभिनवबिससूत्रनिर्मितेनेव - प्रत्यग्रमृणालतन्तु-रचितेनेव, प्ररिलघुतया—सामस्त्येन भारशून्यत्वेनाणुतया, पवनलोलेन वायुना चञ्चलेन, (अतएव) निर्मांसविरलपार्श्वास्थिपञ्जरमिव गणयता=निर्मांसम् पलल-रहितं विरलमसंकीर्णम् पार्थक्येन बहिर्दृश्यमानम् यत् पार्श्वास्थिपञ्जरम् पार्श्वगतास्थि समूहः तद्गणयता तत्संख्यां कुर्वतेव, वामांसावलम्बिना सव्यस्कन्धावलम्बनशीलेन

यज्ञोपवीतेन उद्भासमानः देदीप्यमानः, देवतार्चनार्थम् देवपूजनार्थम्, आगृहीत वनलताकुसुमपरिपूर्णपर्णपुटसनाथशिखरेण = आगृहीतानि समन्तादात्तानि यानि वनलताकुसुमानि अरण्यव्रततिपुष्पाणि तैः परिपूर्णं भृतं यत् पूर्णपुटं पत्रनिर्मितपुटकम् तेन सनाथं युक्तं शिखरम् ऊर्ध्वभागः यस्य तेन तादृशेन, आषाढदण्डेन पलाशदण्डेन, व्यापृतसव्येतरपाणिः —व्यस्तदक्षिणकरः, विषाणशिखरोत्खाताम् स्नानमृदमुद्वहता = विषाणशिखरेण शृङ्गाग्रभागेन उत्पाटितां उत्खनिताम् स्नानमृदम् हारीतस्य स्नानार्हमृत्तिकाम् उद्वहता स्वकीये विषाणशिखरे धारयता, उपजातपरिचयेन समुत्पन्न-मुनिजनविशेषज्ञानेन नीवारमुष्टिसंवर्द्धितेन = मुष्टिपरमितनीवाराख्यधान्यैः वृद्धिं प्रापितेन, कुश कुसुमलतायास्यमानलोलदृष्टिना—पार्श्वद्वयस्थकुशपुष्पलताभिः आयास्य-माना खेदं प्राप्यमाणा अतएव लोला चञ्चला दृष्टि र्यस्य तेन तादृशेन तपोवनमृगेण अनुगम्यमानः अनुव्रज्यमानः.... ........ .. .......... ।

**संस्कृत सरलार्थ**—हारीताख्यं मुनिकुमारकं वर्णयन् वैशम्पायनः कथयति यद् बद्धचूडाकलापः स खाण्डवाख्यवनं दग्धुमिच्छया धृतकपटब्रह्मचारिस्वरूपः भगवान् अग्निदेव इवासीत्, तपोवनदेवतापादकटक सदृशेन सव्येतरश्रोत्रावलम्बनशीलेन, स्फटिकमणिरचितेन गुरुप्रदत्तविधिनिषेधात्मकधर्मोपदेशत्राणाय परिधिरुपेण वर्तमानेन सैन्येनेव अक्षवलयेन सुशोभमानः, समस्तस्रक्चन्दनादिभोग्यवस्तूपभोगवारणाय धृतेन शपथत्रयेणेव भालफलके भस्मरचितत्रितिलकेन सुशोभितः, आकाशोड्डयनायोद्यवीन-नवलाकासदृशेन स्वर्गवर्त्म प्रकटयतेव उन्नतकन्धरेण स्फटिकमणिरचितकमण्डलुना समवलम्बित सव्यहस्ततलः, तपोऽभिवृद्धीच्छया निगीर्णेन पुनर्जठरमध्यान्निःसृतेन धूससमूहेनेव कृष्णश्वेतकान्तिमता स्कन्धावलम्बनशीलेन कृष्णमृगचर्मणा व्याप्तदेहः, प्रत्यग्रमृणालतन्तुरचितेनेव सामस्त्येन भारशून्यत्वेनाणुतया वायुचपलेन अतएव पलल-रहितासंकीर्णपार्श्वगतास्थि समूहं गणयतेव सव्यस्कन्धावलम्बनशीलेन यज्ञोपवीतेन देदीप्यमानः, देवपूजनायात्तारण्य व्रततिपुष्पैः भृतपत्रपुटकयुक्तोर्ध्वभागेन पलाशदण्डेन व्यस्तदक्षिणकरः, शृङ्गाग्रभागोत्खनितां हारीतस्य कृते स्नानमृत्तिकाम् स्वकीये विषाणशिखरे धारयता मुनिजनस्वभावपरिचितेन मुष्टिपरिमितनीवारधान्यैः वृद्धिं प्रापितेन पार्श्वद्वयस्थाभिः कुशपुष्पलताभिः खिन्नचपलदृष्टिना तपोवनमृगेण अनुगम्य-मानश्चासीत् ।

**टिप्पणी—स्तम्भित** = बँधी हुई, **दिधक्षया** = दग्धुमिच्छा तया, सन्नन्त दह् धातोः रूपम् । **खाण्डववन**—महाभारत के अनुसार एक बार श्वेतकि राजा ने बारह वर्षों तक लगातार यज्ञ किया, अतएव निरन्तर खाद्य पदार्थ खाते खाते अग्निदेव को मंदाग्नि पीड़ा होने लगी तब उन्होंने ब्रह्मा की आज्ञा और कृष्णार्जुन की सहायता से अनेकविध औषधियां वाले खाण्डव वन को जलाकर अपनी मन्दाग्नि पीड़ा को शान्त किया था । **कपटवपुवेशः** ब्रह्मचारी का कपटभेष । **नूपुरानुकारिणा**—स्फटिक मणि की बनी अक्षमाला जिसे उसने कान में पहना था, नूपुर सदृश ही गोल तथा गुरु द्वारा

दिये गये धर्मोपदेश की रक्षा के लिए परिधि रूप से वर्तमान सेना के समान थी, गुरु का उपदेश कान में दिया जाता है अतः वह बाहर न निकल जाय इसलिए गोलाकार अक्षमाला मानो सेना के समान बाहर से उसे घेरे हुई थी। "कटक-स्त्वद्रिनितम्बे बाहुभूषणे सेनायां राजधान्याञ्च" यहाँ आर्थी उपमा तथा उत्प्रेक्षा में अङ्गाङ्गिभाव रूप संकर है। त्रिसत्येनेव उसके भस्मत्रिपुण्ड्र की तीन रेखायें मानो शपथत्रय के समान थीं, 'नाहं विषयानुरक्तो भविष्यामि' इस बात को तीन बार कह कर शपथ लेना ही त्रिसत्य है "सत्यं कृते च शपथे तथ्ये च त्रिषु तद्वति" यहाँ गुणोत्प्रेक्षालंकार है। गगनेति - स्फटिकमणि का उसका कमण्डलु आकाशोन्मुख बलाका जैसा था और उसकी गरदन ऊपर को उठी हुई थी मानो वह स्वर्ग का मार्ग दिखला रहा हो। "बलाका विसकण्ठिका" इत्यमरः। कृष्णाजिनेति—वह नील और श्वेत कान्ति वाले कृष्ण मृग चर्म को शरीर पर लपेटे था, अन्तर्निष्पतता—भीतर से निकलते हुए, परीत=व्याप्त। विषसूत्र—मृणाल के तन्तु "मृणालं विसमञ्जादि" पार्श्वास्थिपञ्जरम्—व्रतादि करते करते वह इतना दुबला हो गया था कि उसकी एक-एक पसली गिनी जा सकती थी, परिलघुतया - बिल्कुल हल्का होने के कारण, आषाढ़दण्ड = पलाश दण्ड "पलाशो दण्ड आषाढ इत्यमरः। व्यापृत = लगा हुआ। सव्येतर दाहिना, मृदम् = स्नानार्ह मिट्टी—मुनिजन स्नान के पूर्व मिट्टी लगाते थे, यही मृग के सींग पर लगी हुई थी।

**विटप इव कोमलवल्कलावृतशरीरः, गिरिरिव समेखलः, राहुरिव असकृदास्वादितसोमः, पद्मनिकर इव दिवसकरमरीचिपः, नदीतटतरुरिव सततजलक्षालनविमलतटः करिकलभ इव विकचकुमुददलशकलसितदशनः, द्रौणिरिव कृपालुगतः, नक्षत्रराशिरिव चित्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः, धर्मकालदिवस इव क्षपितदोषः, जलधरसमय इव प्रशमितरजः प्रसरः, वरुण इव कृतोववासः, हरिरिव अपनीत नरकभयः, प्रदोषारम्भ इव सन्ध्यापिङ्गलतारकः प्रभातकाल इव बालातपकपिलः, रविरथ इव दृढनियमिताक्षचक्रः, सुराजेव निगूढमन्त्रसाधनक्षपितविग्रहः, जलधिरिव करालशङ्खमण्डलावर्त्तनाभिगर्त्तः, भगीरथ इव दृष्टगङ्गावतारः, भ्रमर इव असकृदनुभूतपुष्करवनवासः वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः, असंयतोऽपि मोक्षार्थी सामप्रयोगपरोऽपि सततावलम्बितदण्डः, सुप्तोऽपि प्रबुद्धः, सन्निहितनेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनः, तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागमत्।**

**शब्दार्थ—विटप**=तरुशाखा, वल्कल=छाल और वल्कल वस्त्र, **समेखलः**= मौञ्जीमेखला और पर्वत का मध्यभाग, **असकृतास्वादितसोमः**=अनेक बार सोमयाग के समय सोमरस का पान करने वाले और अनेक बार पूर्णिमा तिथियों पर चन्द्रमा को ग्रस्त करने वाले। **पद्मनिकरः**=कमलसमूह, **दिवसकरमरीचिपः**=सूर्य की

किरणों का पान करने वाले और (पञ्चाग्नि तप के समय) सूर्य किरणों को पीने वाले. **नदीतटतरुः** = नदी के तटवर्ती वृक्ष. **सततजलक्षालनविमलजटः** = निरन्तर जल द्वारा धुलने से (क्षालन) निर्मल जटाओं और जड़ों के पतले रेशों वाले. **करिकलभः** = हाथी का बच्चा. **विकचकुमुददलशकलसितदशनः**—खिले हुए (विकच) कुमुद की पंखड़ियों (दल) के टुकड़ों के समान (शकल) श्वेत दाँतों वाले (सितदशनः) **द्रौणिः**—द्रोणपुत्र अश्वत्थामा. **कृपानुगतः** = कृपाचार्य से अनुगत और दया से युक्त. **नक्षत्रराशिः** = नक्षत्रसमूह. **चित्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः** = चित्रा, मृगशिरा, कृत्तिका, आश्लेषा, नामक नक्षत्रों से तथा चितकबरे मृग के चर्म (कृत्तिका) के आश्लेष-सम्बन्ध से सुशोभित. **धर्मकालदिवसः** = ग्रीष्मकालीन दिन, **क्षपितदोषः** = रात्रि को (दोषा) क्षीण कर देने वाले, और कामक्रोधादि दोषों को नाशकर देने वाले, **जलधरसमयः** = वर्षाकाल, **प्रशमितरजः प्रसरः** = धूलि का उड़ना शान्त कर देने वाले और रजोगुण (रजः) का प्रसार शान्त कर देने वाले, **वरुणः** = वरुणदेव, **कृतोदवासः** = जल (उद) में निवास करने वाले और (तपस्या के लिये) जल में वास करने वाले, **हरिः** = विष्णु, **अपनीतनरकभयः** = नरक नामक असुर का तथा नरक भय दूर कर चुकने वाले, **प्रदोषारम्भः** सन्ध्याकाल, **सन्ध्यापिङ्गलतारकः** = सन्ध्याकाल के पीले तारों वाले और सन्ध्याकालीन पीतिमा जैसे पिंगल वर्ण की पुतलियों वाले. **प्रभातकाल इव बालातपकपिलः**—प्रातः सूर्य के प्रकाश के कारण (बालातप) पीले वर्ण वाले और बालातप के समान पिंगल वर्ण वाले, **रविरथ इव**—सूर्य के रथ के समान, **दृढनियमिताक्षचक्र** = दृढ़ता से नियन्त्रित धुरी (अक्ष) और पहिये वाले, तथा दृढ़ता से वशीकृत इन्द्रिय समूह (अक्षचक्र) वाले, **सुराजेव निगूढमन्त्रसाधनक्षपितविग्रहः** = गुप्तमन्त्रणा (निगूढमन्त्र) और सेनादि साधनों द्वारा युद्ध (विग्रह) समाप्त कर देने वाले, (क्षपित) तथा गुप्त मन्त्रों की साधना से शरीर (विग्रह) को क्षीण (क्षपित) कर देने वाले, **जलधिरिव** = समुद्र के समान, **करालशङ्खमण्डलावर्त्तनाभिगर्त्तः** = नाभिकूप सदृश विशाल शंखों एवं मण्डलाकार आवर्तों (भँवरों) वाले, तथा विशाल शंख की मण्डलाकार रेखाओं (आवर्त) के समान नाभिकूप वाले, **भगीरथ इव दृष्टगङ्गावतारः** = राजा भगीरथ के समान, गंगा का अवतरण स्वर्ग से पृथिवी पर (उतरना) देख लेने वाले और गंगा के अवतारों अर्थात् घाटों को देख लेने वाले, **भ्रमर इव असकृदनुभूत पुष्करवनवासः** = अनेक बार (असकृत) कमलवन में निवास का अनुभव कर चुकने वाले और अनेक बार पुष्कर तीर्थ वन में निवास का अनुभव प्राप्त कर लेने वाले, **वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः** = वनचारी होकर भी महालय अर्थात ब्रह्म में प्रवेश पा लेने वाले, (महालय अर्थात् उच्च भवन इस विरोध का परिहार उक्त अर्थ से हो जाता है) **असंयतोऽपि मोक्षार्थी**—विषयों के बन्धन से रहित (असंयत) होकर भी मोक्ष के लिए इच्छुक, असंयत अर्थात् धारणाध्यान समाधि रहित—अर्थ का विरोध परिहार उक्त अर्थ से हो जाता

है) **सामप्रयोगपरोऽपि सततावलम्बितदण्ड:**=सामवेद के प्रयोग में तत्पर रहकर भी निरन्तर दण्ड धारण करने वाले (सामप्रयोग पर :—अर्थात् शान्ति या सान्त्वना का प्रयोग करने वाले होकर भी, दण्ड का प्रयोग करने वाले इस विरोधाभास का परिहार उक्त अर्थ से हो जाता है। **सुप्तोऽपि प्रबुद्धः**=सुप्त होने पर भी ज्ञानवान् (सोता हुआ भी जागने वाला इस विरोधाभास का परिहार उक्त अर्थ से हो जाता है। **सन्निहितनेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनः**=दो नेत्रों से युक्त होने पर भी वामलोचना अर्थात् रमणी का त्याग कर देने वाले (**वामलोचन**=अर्थात् वामनेत्र अर्थ करने पर विरोध का परिहार उक्तार्थ द्वारा हो जाता है। **तदेव कमलसरः सिस्नासुः**=उसी कमल सरोवर में स्नानाभिलाषी होकर, **उपागमत्**=आये।

**अनुवाद**—वक्कल से ढके हुए शरीर वाली वृक्ष की शाखा के समान वल्कल वस्त्र से आच्छादित शरीर वाले, अपने मध्यभाग से युक्त पर्वत के समान मौञ्जी मेखला से युक्त अर्थात् अपने कटि पर मूँज घास से बनी मेखला (करधनी) को बाँधे हुए, अनेक बार चन्द्रमा को ग्रस लेने वाले राहु के समान अनेक बार (सोमयज्ञ के अवसर पर) सोमरस का पान कर चुकने वाले, सूर्य की किरणों का पान करने वाले, कमल समूह के समान (पञ्चाग्नि तप के अवसर पर) सूर्य की किरणों को पीने वाले, निरन्तर जल से धुलने के कारण निर्मल (मिट्टी से रहित) जड़ों के पतले पतले रेशों वाले, नदी के तटवर्ती वृक्ष के समान निरन्तर जल द्वारा धुलने से निर्मल जटाओं वाले, खिले हुए कुमुदों की पंखुड़ियों के टुकड़ों के समान श्वेत दो दाँतों वाले गजशावक के समान विकसित कुमुदपुष्पों के समान श्वेत दाँतों वाले, कृपाचार्य से (युद्धादि में) अनुगत (युक्त) द्रोणपुत्र अश्वत्थामा के समान कृपा (दया भाव) से युक्त, चित्रा, मृगशिरा, कृत्तिका, आश्लेषा नामक नक्षत्रों से सुशोभित नक्षत्रसमूह के समान चितकबरे मृग के चर्म (कृत्तिका) के आश्लेष सम्बन्ध या संयोग से सुशोभित, रात्रियों को क्षीण कर देने वाले, ग्रीष्मकालीन दिन के समान कामक्रोधादि दोषों का क्षय (विनाश) कर देने वाले, धूलि का उड़ना (रजः प्रसरः) शान्त कर देने वाले वर्षाकाल के समान रजोगुण (रजः) प्रसार (फैलाव) शान्त कर देने वाले, जल में निवास करने वाले वरुणदेव के समान (तपस्या के लिये) जल में वास कर चुकने वाले, नरकासुर का भय दूर करने वाले भगवान् विष्णु के समान नरक का भय दूर कर चुकने वाले, सन्ध्याकाल के पीले तारों वाले प्रदोषकाल के आरम्भ के समान सन्ध्याकालीन पीतिमा जैसे पिङ्गल वर्ण की पुतलियों वाले, नवोदित सूर्य प्रकाश के कारण पीले वर्ण के प्रभातकाल के समान नवोदित सूर्य के प्रकाश के तुल्य पिङ्गल वर्ण वाले, दृढ़ता पूर्वक नियन्त्रित किये गये धुरी और पहिये वाले सूर्य के रथ के समान, दृढ़तापूर्वक वशीकृत इन्द्रिय समूह वाले, गुप्तमन्त्रणा और (सेना आदि) साधनों से युद्ध समाप्त कर देने वाले अच्छे राजा के समान गुप्त मन्त्रों की साधना से शरीर को क्षीण कर देने वाले, नाभिकूप के सदृश विशाल शंखों एवं मण्डलाकार

आवर्तों वाले समुद्र के समान विशाल शंख की मण्डलाकार रेखाओं जैसी नाभिकूप वाले, गंगा के अवतरण (उतरने) को देखे हुए भगीरथ के समान गंगा के (अनेक) अवतरणों-घाटों को देख चुकने वाले, अनेक वार कमलवन में निवास का अनुभव प्राप्त कर लेने वाले, भ्रमर के समान अनेक बार पुष्कर तीर्थ और वन में निवास का अनुभव कर चुकने वाले, वनचारी होते हुए भी महालय अर्थात् परमात्मा में प्रवेश कर चुकने वाले, विषयों के बन्धन से रहित होते हुए भी मुक्ति के अभिलाषी, सामवेद के प्रयोग में तत्पर रहकर भी निरन्तर दण्ड धारण करने वाले, सोते हुए होने पर भी ज्ञानवान्, दो नेत्रों से युक्त होते हुए भी वामलोचना-रमणी का परित्याग कर देने वाले, (हारीत नामक मुनिकुमार) स्नान के लिए इच्छुक होकर उसी कमल सरोवर पर आये।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि वल्कल वस्त्र पहने हुए हारीत मुनिकुमार वल्कल से आच्छादित तरुशाखा जैसे, और कटि प्रदेश में मौञ्जी मेखला धारण करने से पहाड़ियों से घिरे पर्वत जैसे थे। सोमयागों में सदा सोमरस का पान करने के कारण वे अनेक वार चन्द्र को ग्रस्त कर लेने वाले राहु और पञ्चाग्नि तप के समय सूर्य की किरणों को सहन करने के कारण, सूर्य किरणों को पान करने वाले कमल-समूह के समान थे। नदी के किनारे के वृक्ष की पतली जड़ों के समान उनकी जटायें निरन्तर जल में स्नान करने से जल से धुलकर निर्मल हो गई थीं। गजशावक के दाँतों के समान उनके दाँत विकसित कुमुद पुष्प की पंखुड़ियों के टुकड़ों के समान श्वेत थे। कृपाचार्य के अनुगामी अश्वत्थामा के समान वे सदा दया का अनुगमन करने वाले थे। वे चित्रा, मृगशिरा, कृत्तिका, और आश्लेषा नामक नक्षत्रों से शोभित नक्षत्र मण्डल के समान चितकवरे मृग के चर्म से आश्लिष्ट होने से शोभित थे। जैसे वर्षाकाल में धूलि का उड़ना वन्द हो जाता है उसी प्रकार उनमें रजोगुण का प्रसार शान्त हो गया था। जलवासी वरुणदेव के समान वे प्राय: जल में प्रवेश कर तप करते थे। नरकासुर को मारकर सवका भय दूर कर देने वाले विष्णु के समान उन्होंने तप के द्वारा नरक का भय दूर कर दिया था। वे सन्ध्याकालीन तारों के समान पीलिमायुक्त पुतलियों के कारण प्रदोष समय के आरम्भ के समान तथा प्रात: कालीन धूप के समान कुछ-कुछ लालिमायुक्त शरीर के कारण प्रात:काल जैसे प्रतीत होते थे। सूर्य के रथ के धुरी और पहिये जिस प्रकार दृढ़ता से नियन्त्रित होते हैं उसी प्रकार उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों को पूर्णतया नियन्त्रित कर रखा था। जिस प्रकार एक चतुर राजा गुप्त मन्त्रणाओं और सेना आदि साधनों से युद्ध की सम्भावना को क्षीण कर देता है उसी प्रकार उसने गुप्त मन्त्रों की साधनाओं से अपने शरीर को क्षीण कर दिया था। नाभिकूप के समान विशाल शंखों और मण्डलाकार आवर्तों वाले समुद्र के समान वे विशाल शंख की मण्डलाकार रेखाओं जैसे नाभिकूप वाले थे। जैसे भगीरथ ने गंगा के अवतरण को देखा था इसी प्रकार इन्होंने गंगा के अनेक घाट देखे थे। जैसे भ्रमर अनेक वार कमलवनों में निवास

करता है उसी प्रकार इन्होंने अनेक बार पुष्कर तीर्थ और वन में निवारा का अनुभव प्राप्त किया था। यद्यपि वे वन में विचरण करते रहते थे फिर भी वे सदा परमात्म समाधि में लीन रहते थे, संसार के बन्धन से रहित होकर भी मुक्ति चाहते थे, बाह्य इन्द्रियों के विषयों से रहित होकर भी निरन्तर ब्रह्मचिन्तन में लीन रहते थे, वे दोनों आँखें रहते हुए भी वामनेत्र से रहित थे अर्थात् वामलोचनाओं से विरक्त थे।

**संस्कृत व्याख्या**—विटप इव—तरुशाखेव, कोमलवल्कलावृतशरीरः=कोमलेन परिधानयोग्येन मृदुलेन वल्कलेन वृक्षत्वचा अन्यत्रवल्कलवस्त्रेण आवृतं समाच्छादितं शरीरं वपुर्यस्य स तादृशः, गिरिरिव पर्वत इव, समेखलः=मेखलया मुञ्जघासनिर्मित-कटिसूत्रेण अन्यत्र मध्यभागेन च सह वर्तमानः समेखलः, राहुरिव-विधुन्तुद इव, असकृदास्वादितसोमः=असकृत् बहुशः आस्वादितः सोमयागावसरेषु पीतः पान-विषयीकृतः पक्षे पूर्णिमातिथिषु ग्रस्तश्च सोमः सोमलतारसः पक्षे इन्दुश्च येन स तादृशः, पद्मनिकर इव—पङ्कजसमूह इव, दिवसकरमरीचिपः=दिवसकरस्य सूर्यस्य मरीचीन् किरणान् पिबति पञ्चाग्नितपः साधनायोर्ध्वाननः सत् ग्रसते पक्षे स्वविकासाय स्पृशतीति मरीचिपः, नदीतटतरुरिव=सरित्तटवर्तिवृक्ष इव, सतत-जलक्षालननिर्मलजटः=सततं निरन्तरम् त्रिसन्ध्यमित्यर्थः जले यत् क्षालनम् स्नानम् अवगाहनम् वा तेन विमला निर्मला धूल्यादिरहिता जटा यस्य स तादृशः, पक्षे सततं निरन्तरं जलेन नदीसलिलेन यत् क्षालनम् प्रक्षालनम् तेन विमला निर्मला मृद्धीना वा जटा लघुमूलानि अवरोहा वा यस्य स तादृशः, करिकलभ इव—गजशावक इव, विकचकुमुददलशकलसितदशनः=विकचं प्रस्फुटितं यत् कुमुदं कैरवं तस्य दलानि पर्णानि तेषाम् शकलवत् खण्डवत् सिताः शुभ्राः दशनाः दन्ताः गजपक्षे दन्तौ च यस्य स तादृशः, द्रौणिरिव=द्रोणाचार्यात्मजः अश्वत्थामा इव, कृपानुगतः=कृपाम् दयाम् अनुगतः प्राप्तः सर्वजीवदयापरः इत्यर्थः पक्षे, कृपः=कृपाचार्यः तेन अनुगतः समरादा-वनुगतः। नक्षत्रराशिरिव—ऋक्षनिकर इव, चित्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः= चित्रमृगस्य चित्रितहरिणस्य या कृत्तिका चर्म तस्य आश्लेषेण आदानेन धारणेन वा उपशोभितः शोभां प्राप्तः पक्षे चित्रम् चित्राख्यं नक्षत्रम् मृगम् मृगशिराख्यं नक्षत्रम्, कृत्तिका एतन्नामकं नक्षत्रम् आश्लेषा एतत्संज्ञकं नक्षत्रम् तैरुपशोभितः। धर्मकालदिवस इव, ग्रीष्मसमयदिनमिव, क्षपितदोषः=क्षपिताः क्षयं प्रापिताः दोषा कामक्रोधादयः यस्य स तादृशः पक्षे क्षपिताः ह्रासं प्रापिताः दोषा रात्रिर्यस्य स तादृशः, जलधर-समय इव—वर्षाकाल इव, प्रशमितरजः प्रसरः=प्रशमितः सततयोगाभ्यासेन निवारितः रजः प्रसरः रजोगुणस्य विस्तारः येन स तादृशः पक्षे—प्रशमितः सलिल-वर्षणेन दूरीकृतः रजः प्रसरः धूलिप्रसरणम् येन स तादृशः, वरुण इव=वरुणदेव इव, कृतोदवासः =कृतः विहितः अनुष्ठितो वा उदवासः सलिलवासः व्रतविशेषः येन स तादृशः, पक्षे कृतः उदवासः जलदेवतात्वेन तत्रावस्थानं येन स तादृशः, हरिरिव= वासुदेव इव, अपनीतनरकभयः=अपनीतम् दूरीकृतम् नरकभयम् तपसा निरयप्राप्ति-

भीतिर्येन स तादृशः, पक्षे—दूरीकृतनरकासुरभीतिः, प्रदोषारम्भ इव—रजनीमुख-प्रारम्भकाल इव, सन्ध्यापिङ्गलतारकः=सन्ध्यावन् पिङ्गले पीतवर्णे तारके कनीनिके यस्य स तादृशः, पक्षे—सन्ध्यया सन्ध्याकालवर्णेन . पीता पीतवर्णाः तारका उडूनि यस्मिन् स तादृशः, प्रभातकाल इव—प्रत्यूषसमय इव, बालातपकपिलः= नवोदित सूर्यालोक वद्रक्तपीतवर्णः, पक्षे—बालातपेन रक्तपीतवर्णः, रविरथ इव= सूर्यरथ इव, दृढनियमिताक्षचक्रः—दृढं यथास्यात्तथा नियमितं निगृहीतं वशीकृतम् वा अक्षाणाम् इन्द्रियाणां चक्रम् समूहः येन स तादृशः, पक्षे—दृढं नियमितानि समावद्धानि अक्षः चक्राधारभूतमध्यदण्ड चक्राणि च यस्मिन् स तादृशः, सुराजेव=सुष्ठु सुन्दरः कर्मकुशल इत्यर्थ यः राजा भूपतिस्तद्वत्, निगूढमन्त्रसाधनक्षपितविग्रहः=निगूढः अतिगुप्तः यः मन्त्रः तस्य साधनेन सततजपादिभिः सिद्धिकरणेन क्षपितः अनवरत-व्रताचरणादिभिः कृशीकृतः विग्रहः शरीरं येन स तादृशः पक्षे—निगूढः अतिगुप्तः यः मन्त्रः रहस्यालोचनं साधनं गजाश्वादि ताभ्यां क्षपितः क्षयं नीतः विग्रहः शत्रुभिः सह संग्रामः येन स तादृशः, जलधिरिव=समुद्र इव, करालशङ्खमण्डलावर्त्तनाभि-गर्त्तः=करालः उच्च नीचः दन्तुरो वा यः शङ्खः तस्य मण्डलावर्त्तवत मण्डलसदृशा-वर्तवत् नाभिगर्त्तो यस्य स तादृशः, पक्षे—करालशङ्खः विशालशङ्खः मण्डलावर्त्तः मण्डलाकारजलावर्त्तश्च नाभिगर्त इव नाभिश्वभ्र इव यस्मिन् स तादृशः, भगीरथ इव—भगीरथाख्य सगरपौत्रस्तद्वत् दृष्टगङ्गावतारः=दृष्टः अवलोकितः गङ्गाया भागीरथ्याः अवतारः घट्टः येन स तादृशः, पक्षे दृष्टः गङ्गायाः अवतारः सुरालया-दवतरणं येन स तादृशः, भ्रमर इव—मधुकर इव, असकृदनुभूत पुष्करवनवासः—असकृत् अनेकशः अनुभूतः अनुभवविषयीकृतः पुष्करे एतन्नामके तीर्थे वने विपिने च वास निवासः येन स तादृशः, पक्षे—असकृदनुभूतः मधुपानाय बहुशः अनुभूतः पुष्करवने कमलवने वासः येन स तादृशः, वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः=वनभ्रमण-शीलः सन्नपि कृतः विहितः महालयेषु उच्चैस्तरभवनेषु प्रवेशः येन स तादृशः— अत्र विरोधस्तु—कृतः योगाभ्यासेन सम्पादितः महालये परमात्मनि प्रवेशः ज्ञान-विषयता येनेत्यर्थेन वारणीयः, असंयतोऽपि मोक्षार्थी=असंयतः असंयमवान् सन्नपि मोक्षार्थी मोक्षाभिलाषुकः नहि संयमं बिना मोक्षप्राप्ति र्भवतीति सिद्धान्तः अत्र विरोधपरिहारार्थम् असंयतः इत्यस्य संसारबन्धनरहितः अबद्धः इत्यर्थः साधनीयः। सामऽप्रयोगपरोऽपि सततालम्बितदण्डः=सामप्रयोगपरः सान्त्वनानुष्ठानतत्परः सन्नपि सततं निरन्तरम् अवलम्बितः आश्रितः दण्डः राजनीतिगतदण्डरूपः चतुर्थोपायः— अस्यविरोधपरिहाराय—सामवेदप्रयोगपरोऽपि सततावलम्बितपलाशदण्ड इत्यर्थ आश्रय-णीयः। सुप्तोऽपि प्रबुद्धः=निद्रितोऽपि कृतजागरण इति विरोधः तत्परिहाराय— संसारिक विषयज्ञानशून्योऽपि परमात्मतत्त्वज्ञ इत्यर्थः कार्यः, सन्निहितनेत्रद्वयोऽपि— सन्निहितं सम्यक् प्रकारेण वदने स्थापितं नेत्रद्वयम् लोचनयुगलं यस्य स तथोक्तः सन्नपि, परित्यक्त वामलोचनः—परित्यक्तम् दूरीकृतं वामलोचनं दक्षिणेतरनयनं येन स तथोक्तः, अत्र विरोधपरिहारार्थम्—परित्यक्ता वामलोचना रमणी येन स

इत्यर्थ आश्रयणीयः। एवम्भूतः स हारीताख्यः मुनिकुमारकः सिस्नासुः स्नातुमिच्छुः सन् तदेव पम्पेत्याख्यातं कमलसरः उपागमत् प्राप्तवान्।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः हारीताख्यं मुनिकुमारकं वर्णयन् कथयति यत् स वृक्षत्वगाच्छादितदेहः तरुशाखेव परिधानीयमृदुलवल्कलाच्छादितशरीरः मध्यभागेन सह वर्तमानः पर्वत इव स मुञ्जघासनिर्मितकटिसूत्रेण सह विद्यमानश्चासीत्। पूर्णिमास्वनेकशः ग्रस्तेन्दुः सैंहिकेय इव स सोमयागावसरेष्वनेकशः पीतसोमलतारसः, सूर्यकिरणपायी कमलसमूह इव स ग्रीष्मर्तौ पञ्चाग्नितपः साधनायोर्ध्वाननः सूर्यरश्मिपः, निरन्तरं नदीसलिलेन प्रक्षालनात् निर्मलमूलभागसरित्तटवृक्ष इव त्रिसन्ध्यमवगाहनेन निर्मलजटः, विकसितकैरवपर्णखण्डवच्छुभ्रदन्तः गजकलभ इव प्रस्फुटितकुमुददलखण्डवच्छुभ्रदन्तः, कृपाचार्येण समरादावुपगतः अश्वत्थामा इव सर्वजीवदयापरः, चित्रमृगशिराख्यकृत्तिकाश्लेषाख्यनक्षत्रैरूपशोभितः नक्षत्रसमूह इव चित्रितहरिणचर्मधारणेन शोभामुपगत, क्षपितरात्रिः ग्रीष्मदिवस इव स विनाशितकामक्रोधादिदोषः, जलवर्षणेन दूरीकृतधूलिप्रसर प्रावृट्काल इव निवारितरजोगुणप्रसरः, जलदेवतात्वेन कृतजलवासः वरुणदेव इव अनुष्ठितसलिलवासाख्यव्रतविशेषः, दूरीकृतनरकासुरभयः वासुदेव इव तपसापनीतनरकप्राप्तिभयः, सन्ध्यया पीतवर्णतारकः रजनीमुखारम्भकाल इव सन्ध्यावत्पीतवर्णतारकः, नवोदितसूर्यालोकेन रक्तपीतवर्णः प्रभातकाल इव नवोदितसूर्यालोकवद्रक्तपीतवर्णः, दृढसमाबद्धचक्राधारमध्यदण्डचक्रः सूर्यरथ इव दृढनिगृहीतेन्द्रियसमूहः, अतिगुप्तमन्त्रगजाश्वादिसाधनापनीतसंग्रामः कार्यकुशलो भूपतिरिव अतिगुप्तमन्त्रसाधनेन वशी कृतशरीरः, विशालशङ्खमण्डलाकार जलावर्त नाभिश्वभ्रः समुद्र इव दन्तुरशङ्खस्य मण्डलसदृशावर्त वन्नाभिगर्त्तः, अवलोकितगङ्गावतरणप्रदेश भगीरथ इव दृष्टगङ्गानेकघट्टः, मधुपानायानेकशोऽनुभूतकमलवनवासः भ्रमर इव अनेकशोऽनुभवविषयीकृतपुष्करतीर्थवनवासः, वनभ्रमणशीलोऽपि प्राप्तपरमात्मतत्त्वः, सामवेदप्रयोगतत्परः सन्नपि सततगृहीतपलाशदण्डः, सांसारिकविषयज्ञानशून्योऽपि परमात्मतत्त्वज्ञः, संसारबन्धनरहितोऽपि मोक्षाभिलाषुकः संस्थापितलोचनयुगलोऽपि परित्यक्तरमणीसंसर्गः एवम्भूतः हारीताख्यो मुनिकुमारकः स्नातुमिच्छुः सन् तमेव पम्पाख्यसरोवर मुपागच्छत्।

**टिप्पणी—वल्कल**—१—वृक्ष का वक्कल या छाल, २—वल्कल वस्त्र। **मेखला**—पर्वतीय मध्यभाग २—मौञ्जी मेखला, "मेखला खड्गबन्धे स्यात् काञ्चीशैलनितम्बयोः" इत्यमरः। **सोमः**—राहु पक्ष में—चन्द्रमा, हारीत पक्ष में सोमरस। "सोमस्त्वौषधि तद्रसेन्दुषु" "तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः" **आस्वादितः**—१—पीना, २—ग्रस्त करना। **मरीचिपः**—मरीचीन् पिवति मरीचि+पा+क, १—कमल पक्ष में स्पर्श करना अन्यत्र ग्रसन करना। **जलक्षालन** १—जल में बार-बार स्नान करने से अन्यत्र जल से प्रक्षालन करने से, जटा—१ जड़ों के पतले रेशे अन्यत्र जटा, **मौलिः**—अश्वत्थामा, **कृपानुगतः**=१—कृपाचार्य से अनुगत २—दया

परायण, "कृपादयानुकम्पा स्यात्" **क्षपितदोषः**—१—रात्रि को क्षीण कर देने वाला, २—कामक्रोधादि दोषों को नष्ट कर देने वाला, "दोषा, रात्रिमुखे रात्रौ" **रजः प्रसरः**=१—रजोगुण का विस्तार, २—धूलि का उड़ना, **उदवासः**—उदके जले वासः "उदकस्योदः संज्ञायाम्, उदक के स्थान में उद आदेश, जलदेवता होने से वरुण का जलवास, अन्यत्र उदवास एक व्रतविशेष जो जल में खड़े होकर किया जाता है। **नरकभयः**—नरकासुर का भय २—नरक प्राप्ति का भय। **प्रदोषारम्भः**—प्रदोष= रात्रि का आरम्भ 'प्रदोषो रजनीमुखम्' प्रदोष का आरम्भिक भाग। **सन्ध्यापिङ्गल-तारकः**—सन्ध्याकाल के समान पीत वर्ण की पुतलियों वाले—यह महापुरुष का लक्षण है जैसाकि सामुद्रिक शास्त्र में माना गया है "क्षुद्रोऽपि चक्रवर्ती स्यात्पीत-तारकचक्षुषि" अन्यत्र-सन्ध्या के द्वारा पीले तारागणों वाला। **कपिलः**—१—नवीन धूप के कारण २—नवीन धूप के समान पिंगल वर्ण, **अक्षचक्रः**=रथ की धुरी (अक्ष) और पहिये (चक्र) २—इन्द्रियों का समूह। **मन्त्रसाधनक्षपितविग्रहः**=राज्याधिकारियों से मन्त्रणा तथा सेनादिसाधन से युद्ध समाप्त कर देने वाला अन्यत्र, मन्त्रसाधना से शरीर को क्षीण कर देने वाला गङ्गावतारः=गंगा का उतरना २—गंगा के घाट घट्टस्तीर्थेऽवतारे", पुष्करवनवासः १—कमल वन में वास २—पुष्करतीर्थ और वन में वास। बनचरोऽपि　　वागलोचनः" तक सभी पदों में विरोधाभास है जिसका परिहार ऊपर बताया जा चुका है। ●

## शुकजलपानादि वर्णनम्

**प्रायेणाकारणमित्राण्यति करुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि। यतः स मां तदवस्थमालोक्य समुपजातकरुणः समीपवर्तिन मृषि-कुमारकमन्यतममब्रवीत् 'अयं कथमपि शुकशिशुरसञ्जातपक्षपुट एव तरु-शिखरादस्मात् परिच्युतः श्येनमुखपरिभ्रष्टेन वानेन भवितव्यम्। तथा ह्यस्याल्पशेषं जीवितम्, अयमामीलितलोचनो मुहुर्मुहु रत्युल्बणं श्वसिति, मुहुर्मुहु मुखेन पतति। मुहुर्मुहुश्चञ्चुपुटं विवृणोति, न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्। तदेहि यावदेवायमसुभिर्न विमुच्यते तावदेव गृहाणेमम्, अवतारय सलिलसमीपम्' इत्यभिधाय तेन मां सरस्तीरमनाययत्।**

**शब्दार्थ—सतां चेतांसि**—सज्जनों के चित्त, **प्रायेण**=प्रायः **अकारणमित्राणि**—बिना कारण ही मित्र जैसा व्यवहार करने वाले, **अतिकरुणार्द्राणि च**=अति करुणा से द्रवित होने वाले, **सदा खलु भवन्ति**=निश्चयतः सर्वदा होते हैं। **यतः स मां तदवस्थ-मालोक्य**=क्योंकि उस (हारीत) ने मुझे उस अवस्था में (पूर्ववर्णित दशा में) देखकर, **समुपजातकरुणः**=कारुणिक होकर, **समीपवर्तिनम् ऋषिकुमारकम् अन्यतमम् अब्रवीत्**=समीपवर्ती दूसरे एक ऋषिकुमार से कहा—**अयम् असञ्जातपक्षपुटः एव शुकशिशुः कथमपि अस्मात् तरुशिखरात् परिच्युतः**=यह अनुत्पन्न पंखों वाला ही तोते का बच्चा किसी भी प्रकार इस वृक्ष की चोटी से गिर पड़ा है। **श्येनमुख-**

**परिभ्रष्टेन वानेन भवितव्यम्**=अथवा (वा) यह बाज (श्येन) के मुख से गिरा हुआ होगा। **तथाहि अस्य अल्पशेषं जीवितम्**=क्योंकि इसका जीवन (जीवित) थोड़ा ही शेष है। **आमीचितलोचनः अयम् मुहु मुंहुः अत्युल्वणम् श्वसिति**=कुछ-कुछ आँखें बन्द किये हुये (आमीलित) यह बार-बार, बड़ी लम्बी-लम्बी (अत्युल्वणम्) सांसें ले रहा है। **मुहुः मुहुः मुखेन पतति**=बार बार मुँह के बल गिर रहा है। **मुहुर्मुहुश्चञ्चुपुटं विवृणोति**=बार-बार चञ्चुपुट खोल रहा है। (विवृणोति)। **न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्** गरदन को नहीं सम्भाल सकता है। **तदेहि**=तो आओ, **यावदेव अयम् असुभिः न विमुच्यते तावदेव गृहाण इमम् सलिलसमीपम् अवतारय**= जब तक कि यह प्राणों द्वारा (असुभिः) छोड़ नहीं दिया जाता अर्थात् मर नहीं जाता तब तक ही इसको उठा लो, और पानी के पास उतार दो, **इत्यभिधाय**= यह कहकर, **तेन मां सरस्तीरम् अनाययत्**=उस मुनिकुमार ने मुझे सरोवर के तीर पहुंचवाया।

**अनुवाद**—सज्जनों के चित्त प्रायः बिना कारण ही मित्रों जैसा व्यवहार करने वाले तथा अतिकरुणा से द्रवित होने वाले सर्वदा निश्चयतः होते हैं। क्योंकि उस हारीत ने मुझे उस अवस्था में देखकर कारुणिक होकर समीपवर्ती दूसरे एक ऋषिकुमार से कहा, यह अनुत्पन्न पंखों वाला ही तोते का बच्चा किसी भी प्रकार इस वृक्ष की चोटी से गिर पड़ा है अथवा यह बाज के मुख से गिरा हुआ होगा, क्योंकि इसका जीवन थोड़ा ही शेष है, कुछ-कुछ आँखें बन्द किये हुए यह बार-बार बड़ी लम्बी-लम्बी सांसें ले रहा है। बार-बार मुँह के बल गिर रहा है, बार-बार चञ्चुपुट खोल रहा है, गरदन को भी नहीं संभाल पा रहा है। तो आओ, जब तक कि यह प्राणों द्वारा छोड़ नहीं दिया जाता (उसके पूर्व ही) इसको ले लो और पानी के पास उतार दो, यह कहकर उस मुनिकुमार ने मुझे सरोवर की तीर पहुँचवाया।

**भावार्थ**—स्पष्ट है।

**संस्कृत व्याख्या**—सताम् साधूनाम् चेतांसि हृदयानि प्रायेण बाहुल्येन अकारणमित्राणि कारणं विनैव प्रियकारीणि अतिकरुणार्द्राणि अतिकरुणा अतिशयपर-दुःखप्रहाणेच्छा तया आर्द्राणि स्विन्नानि खलु निश्चयेन सदा सर्वदा भवन्ति जायन्ते। यतः यस्मात्कारणात् स हारीताख्यः मुनिदारकः मां वैशम्पायनम् तदवस्थम् पूर्व-वर्णितदयनीयदशापन्नम् आलोक्य निरीक्ष्य समीपवर्तिनम् निकटस्थम् अन्यतमम् बहुषु कमप्येकम् मुनिकुमारकम् मुनिदारकम् अब्रवीत् उक्तवान्। अयम् पुरोवर्ती असञ्जातपक्षपुट अनुत्पन्नच्छद एव शुकशिशुः कीरशावकः कथमपि महता दुःखेन अस्मात् तरुशिखरात् वृक्षप्रान्तात् परिच्युतः निपतितः, वा अथवा अनेन शुकशिशुना श्येनमुखभ्रष्टेन श्येनः सिञ्चानकः तस्य मुखात् परिभ्रष्ट परिच्युतः तेन तथोक्तेन भवितव्यम्, तथाहि अस्य अल्पशेषं जीवितम्—तथाहि अस्य शुकशिशो जीवितं

जीवनम् अल्पशेषम् किञ्चिदव-शिष्टम्, आमीलितलोचनः आमीलिते ईषत्संकुचिते लोचने नेत्रे यस्य स तादृशः अयम् शुकशिशुः मुहुर्मुहुः अनेकशः अत्युल्वणम् अतिदीर्घम् यथास्यात्तथा श्वसिति प्राणिति, मुहुर्मुहुः वारं वारं मुखेन वदनेन पतति, मुहुर्मुहुः वारं वारं चञ्चुपुटम् त्रोटीपुटम् विवृणोति विकासयति, शिरोधराम् ग्रीवाम् धारयितुं सारल्येन स्थापयितुम् न शक्नोति पारयति। तदेहि—तस्मात्कारणात् एहि आगच्छ, यावदेवायमसुभिर्न विमुच्यते यावतिकाले अयम् प्राणैर्न त्यज्यते तावदेव तावति समय एव इमम् शुकशिशुम् गृहाण धारय, सलिलसमीपम् जलनिकटम् अवतारय प्रापय, इत्यभिधाय इत्युक्त्वा तेन मुनिदारकेण माम् वैशम्पायनम् सरस्तीरम् पम्पासरोवर-तटम् आनाययत् प्रापयत।

**संस्कृत सरलार्थ**—साधुहृदयानि प्रायेण कारणं विनैव प्रियकारीणि अतिशयपर-दुःखप्रहाणेच्छया आर्द्राणि च सदैव निश्चयतो भवन्ति। यस्मादेव कारणात् स मुनिकुमारः मां पूर्ववर्णितदयनीयदशापन्नमालोक्य करुणापरः सन् निकटस्थमेकं मुनिदार-कमवोचत् अनुत्पन्नच्छद एवायं शुकशिशुः कथमपि वृक्षशिरवरादस्मान्निपतित अथवानेन सञ्जानक वदनपरिच्युतेन भवितव्यम्। तथाहि शुकशिशोरस्य जीवनम् किञ्चिदेवा-वशिष्टम्, ईषन्मीलितनेत्रोऽयं बहुशः अतिदीर्घं प्राणिति, वारं वारं वदनेन पतति, अनेकशः चञ्चुपुटं विकासयति, कन्धरां सारल्येन स्थापयितुं न पारयति। तस्मादा-गच्छ यावति समये नायं प्राणैः परित्यज्यते तावति समय एव धारयेमम्, पानीय-निकटञ्च प्रापय, इत्याख्याय तेन माम् पम्पासरोवरतटं प्रापयत्।

**टिप्पणी**—प्रायेण—"प्रायो मरणानशने मृत्यौ बाहुल्यतुल्ययोः" अत्युल्वणम्—अतिदीर्घम् जोर-जोर से लम्बी-लम्बी सांसें। विवृणोति—खोलता है।

**उपसृत्य च जलसमीपमेकदेशनिहितदण्डकमण्डलुः आदाय स्वयं मां मुक्तप्रयत्नं उत्तानितमुखम् अङ्गुल्या कतिचित् सलिलबिन्दून् अपाययत्। अम्भः क्षोदकृतसेकञ्च समुपजातप्रज्ञम् उपतटप्ररूढनलिनीपलाशस्य जलशिशिरायां छायायां निधाय यथासमुचितमकरोत् स्नानविधिम्। अभिषेकावसाने चानेकप्राणायामपूतोऽपि जपन्नघमर्षणानि प्रत्यग्रभग्नैरून्मुखो रक्तारविन्दैर्नलिनीपत्रपुटेन भगवते सवित्रे दत्त्वार्घमुदतिष्ठत्। आगृहीत-धौतधवलवल्कलश्च सज्योत्स्न इव सन्ध्यातपः करतलनिधूननविशदसटः प्रत्यग्रस्नानार्द्रजटेन सकलेन तेन मुनिकुमारकदम्बकेनानुगम्यमानो मां गृहीत्वा तपोवनाभिमुखं शनैः शनैः रगच्छत्।**

शब्दार्थ—**उपसृत्य च जलसमीपम्**=और जल के पास पहुँचकर, **एकदेश-निहितदण्डकमण्डलुः**=एक स्थान पर पलाशदण्ड और कमण्डलु को रखकर, **मुक्तप्रयत्नम् माम्**=(जल पीने का) प्रयत्न छोड़े हुए मुझको, **आदाय**—लेकर, **उत्तानितमुखम्** (मेरे) मुख को ऊपर उठाकर **स्वयम् अङ्गुल्या कतिचित् सलिलबिन्दून् अपाययत्**=स्वयं अङ्गुलि से कुछ पानी की बूँदों को पिलाया। **अम्भःक्षोदकृतसे-**

**कञ्च**=जल के छींटों से (क्षोद) सिञ्चित किये गये, **समुपजातप्रज्ञम्**—और होश में आये हुए (मुझको) **उपतटप्ररूढनलिनीपलाशस्य**=तट के समीप (उपतटम्) उगी हुई (प्ररूढ) कमिलिनी के पत्ते की, **जलशिशिरायां छायायाम्**—जल से शीतल छाया में, **निधाय**=रखकर, **यथासमुचितम् स्नानविधिम् अकरोत्**=यथोचित स्नान विधि को किया। **अभिषेकावसाने**—और स्नान के अन्त में, **अनेकप्राणायामपूतंऽपि**=अनेक प्राणायामों से पवित्र (पूत) होकर भी, **जपन्नघमर्षणानि**=अघमर्षण मन्त्रों का जप करते हुए, **प्रत्यग्रभग्नैः रक्तारविन्दैः**=तत्काल (प्रत्यग्र) तोड़े गये (भग्नैः) रक्त कमलों से, **ऊर्ध्वमुखः**=ऊर्ध्वमुख होकर, **नलिनीपत्रपुटेन**=कमलिनी के पत्तों के दोने से, **भगवते सवित्रे अर्घम् दत्त्वाउदतिष्ठत्**=भगवान् सूर्य को अर्घ देकर उठ बैठे। **आगृहीतधौतधवलवल्कलश्च**=और धुले हुए धवल वल्कल वस्त्र धारण करके, **सज्योत्स्न इव सन्ध्यातप**—चांदनी से युक्त सन्ध्याकालीन धूप के समान (प्रतीत होते हुए) **करतलनिधूननविशदसटः**=हथेलियों द्वारा झाड़ने से (निधूनन) निर्मल=(विशद) जटाओं वाले (सट) **प्रत्यग्रस्नानार्द्रजटेन सकलेन तेन मुनिकुमारकदम्बकेन**—तत्काल स्नान से गीली जटाओं वाले उस सम्पूर्ण मुनिकुमार समूह के द्वारा, **अनुगम्यमानः**=अनुगत होते हुए, **मां गृहीत्वा**=मुझे लेकर, **तपोवनाभिमुखं शनैः शनैरगच्छत्**=तपोवन की ओर धीरे-धीरे चलने लगे।

**अनुवाद**—और जल के पास पहुँच कर एक स्थान पर दण्ड और कमण्डलु को रखकर (जल पीने का) प्रयत्न छोड़े हुए मुझको लेकर और मेरे मुख को ऊपर उठाकर स्वयं अङ्गुलि से कुछ पानी की बूंदों को पिलाया। जल के छींटों से सिञ्चित किये गये और होश में आये हुए मुझको जल के पास उगी हुई कमलिनी के पत्ते की जल से शीतल छाया में रखकर यथोचित स्नान विधि को किया और स्नान के अन्त में, अनेक प्राणायामों से पवित्र हुए भी अघमर्षण मन्त्रों का जप करते हुए, तत्काल तोड़े गये रक्त कमलों से, ऊर्ध्वमुख होकर कमलिनी के पत्तों के दोने से भगवान् सूर्य को अर्घ देकर उठ खड़े हुए, और धुले हुए स्वच्छ वल्कल वस्त्र धारण किये हुए, मानो चाँदनी से युक्त सन्ध्याकालीन धूप जैसे, हथेलियों द्वारा झाड़ने से निर्मल जटाओं वाले वह, वल्कल स्नान से गीली जटाओं वाले उस समस्त मुनिकुमार समूह से अनुगत होते हुए, मुझे लेकर तपोवन की ओर धीरे-धीरे चल पड़े।

**भावार्थ**—स्पष्ट है।

**संस्कृत व्याख्या**—जलसमीपमुपसृत्य च=सलिलान्तिकं प्राप्य च, एकदेश-निहितदण्डकमण्डलुः—एकदेशे एकस्मिन् भागे निहतौ संस्थापितौ दण्डकमण्डलू पलाशदण्डः=कमण्डलुश्च येन स तादृशः (सहारीतः)। स्वयं मामादाय=आत्मनैव मां वैशम्पायनं गृहीत्वा, मुक्तप्रयत्नम्—मुक्तः परित्यक्तः प्रयत्नः जलपानाय समुद्योगः येन तम् तादृशम्, उत्तानितमुखम्—उत्तानितम् ऊर्ध्वीकृतम् मुखं वदनं यस्य तम् तादृशं माम् अङ्गुल्या करशाखाग्रभागेन, कतिचित् सलिलविन्दून् कियतः जलबिन्दून्

अपाययत् पानमकारयत् । अम्भ. क्षोदकृतसेकञ्च—अम्भस. जलस्य क्षोदैः करच्युतैः जलकणैः कृतः विहितः सेकः सिञ्चनं यस्य स तादृशम् च, (अतएव) समुपजातप्रज्ञम्—समुपजाता समुत्पन्ना प्रज्ञा प्रकृष्टबोधः यस्य तं तादृशं (माम्) उपतटप्ररूढनलिनीपलाशस्य=उपतटे तीरसमीपे प्ररूढा समुत्पन्ना वा नलिनी कमलिनी तस्याः पलाशस्य पत्रस्य तथोक्तस्य, जलशिशिरायां छायायाम् जलेन शिशिरा शीतला यस्यां तस्याम् छायायाम् अनातपे, निधाय संस्थाप्य, यथासमुचितं स्नानविधिम् अकरोत्—यथायोग्यं मज्जनविधिं कृतवान् । अभिषेकावसाने स्नानान्ते च, अनेकप्राणायामपूतः अपि, अनेकैः बहुविधैः प्राणायामैः पूरककुम्भकरेचकाभिधानैः वायुनिरोधानिरोधरूपप्राणायामैः पूतः पवित्रीकृतः अपि, अघमर्षणानि जपन्=अघमर्षणानि अघमर्षणे व्याख्यातानि वरुणदेवस्तुतिरूपाणि सूक्तानि जपन् स्मरन्, उन्मुखः ऊर्ध्वाननः सन्, प्रत्यग्रभग्नैः तत्कालोद्धृतैः रक्तारविन्दैः रक्तवर्णकमलैः नलिनीपत्रपुटेन कमलिनीदलसम्पुटेन भगवते माहात्म्यशालिने सवित्रे सूर्याय अर्घम् अर्घपूजां दत्त्वा समर्प्य उदतिष्ठत् । आगृहीतधौतधवलवल्कलः च=आगृहीतम् स्नानादनन्तरं परिधृतम् धौतं क्षालितम् अतएव धवलं शुभ्रम् वल्कलं तरुत्वक् येन स तादृशः (अतएव) सज्योत्स्नः ज्योत्स्नया चन्द्रिकया सहेति सज्योत्स्नः सन्ध्यातपः सन्ध्याकालीनसूर्यातप इव (प्रतीयमानः) करतलनिर्धूननविशदसटः—करतलेन हस्ततलेन यत् निर्धूननम् आस्फालनम् तेन विशदा निर्मला सटा जटा यस्य स तादृशः (स हारीतः) स्नानार्द्रजटेन=स्नानेन मज्जनेन आर्द्रा-स्विन्ना जटा सटा यस्य तेन तादृशेन तेन पूर्वोक्तेन सकलेन समस्तेन मुनिकुमारकदम्बकेन मुनिकुमारसमूहेन अनुगम्यमानः अनुव्रज्यमानः माम् वैशम्पायनम् गृहीत्वा आदाय तपोवनाभिमुखम् स्वाश्रमसम्मुखं शनैः शनैः मन्दं मन्दम् अगच्छत् अव्रजत् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यत्सलिलान्तिकं प्राप्य च, जलाशयस्यैकभागे दण्डकमण्डलू च संस्थाप्य स हारीतं आत्मनैव मां गृहीत्वा जलपानाय समुत्सृष्टप्रयासमपि माम् ऊर्ध्ववदनं विधाय करशाखाग्रेण कियतो जलबिन्दून् स्वयमेवाङ्गुल्या पानमकारयत् । जलकणैः विहितसेकम् अतएव समुत्पन्नप्रकृष्टबोधं माम् तटसमीपसमुत्पन्नकमलिनीदलस्य सलिलशिशिरायां छायायां संस्थाप्य यथायोग्यं मज्जनविधिं समाचरत् । स्नानान्ते च बहुविधप्राणायामाभ्यासपवित्रीकृतोऽपि सः अघमर्षणेत्याख्यातानि वरुणदेवस्तुतिपराणि सूक्तानि जपन् ऊर्ध्वाननः सन् तत्कालोद्धृतैः रक्तवर्णकमलैः कमलिनीदलसम्पुटेन माहात्म्यशालिने सूर्यदेवाय अर्घपूजां समर्प्य उदतिष्ठत् । परिधृतप्रक्षालितशुभ्रवल्कलश्च सचन्द्रिकः सन्ध्यातप इव प्रतीयमानः, हस्ततलास्फालननिर्मलजटः स हारीतः, मज्जनस्विन्नजटेन तेन समस्तेन मुनिकुमारसमूहेनानुगम्यमानः मामादाय स्वाश्रमाभिमुखं मन्दं मन्द मगच्छत् ।

**टिप्पणी—अघमर्षणानि**—पाप को दूर करने वाले वरुणदेव सम्बन्धी सूक्त "अघं दुष्कृतं मृष्यते प्रमार्ज्यते एभिस्तानि अघमर्षणानि । ऋतं च सत्यं च ........ आपोहिष्ठा मयो भुवः तक के सूक्त अघमर्षण कहे जाते हैं—इनमें वरुणदेव की स्तुति

है। प्रत्यग्रभग्न—तत्काल तोड़े गये—अभिनव जो कुम्हलाये न हों। सटा - जटा। अभिषेक—स्नान, प्राणायाम् तीन प्रकार का होता है पूरक कुम्भक और रेचक। यह त्रिविधप्राणायाम योग का एक अंग है।

## जाबाल्याश्रम वर्णनम्

**अनतिदूरमिव गत्वा दिशि दिशि सदासन्निहितकुसुमफलैः, तालतिलकतमालहिन्तालबकुलबहुलैः, एलालताकुलित नारिकेलकलापैः, आलोललोध्रलवलीलवङ्गपल्लवैः, उल्लसच्चूतरेणुपटलैः, अलिकुलझङ्कारमुखरसहकारैः, उन्मद कोकिलकुलकलालापकोलाहलिभि. उत्फुल्लकेतकीकुसुममञ्जरीरजः पुञ्जपिञ्जरैः, पूगीलतादोलाधिरूढवनदेवतं, तारकावर्षमिवाधर्म्मविनाशपिशुनं कुसुमनिकर मनिलचलितमनवरत मतिधवल मुत्सृजद्भिः, संसक्तपादपैः काननैः रूपगूढम्...... ......।**

शब्दार्थ—अनतिदूरम् इव गत्वा=कुछ ही दूर जाकर, (आश्रममपश्यम्=आश्रम को देखा, इस अन्तिम वाक्य से इसका अन्वय है। और इस वाक्यांश के अन्य सभी तृतीयान्तपद' काननैः' के विशेषण हैं) दिशि दिशि=प्रत्येक दिशा में, संसक्त पादपैः काननैः=परस्पर सटे हुए अर्थात् सघन वृक्षों वाले वनों से, उगूढम्=घिरा हुआ—अर्थात् जो कि आश्रम सघन वृक्षों वाले वनों से घिरा हुआ था। (जो कि वन) सदा सन्निहितकुसुमफलैः=सर्वदा समीपवर्ती पुष्पों और फलों वाले, तालतिलकतमालहिन्ताल बकुलबहुलैः=ताल, तिलक, तमाल (तापिच्छ) हिन्ताल, बकुल (केसर) नामक वृक्षों की अधिकता वाले, एलालताकुलितनारिकेलकलापैः=इलायची की लताओं से परिव्याप्त नारियल के वृक्षों के समूह वाले, आलोललोध्रलवलीलवङ्गपल्लवैः=(वायु वेग से) चञ्चल (आलोल) लोध्र, लवली और लवङ्गलताओं के पल्लवों वाले, उल्लसच्चूतरेणुपटलैः=(वायु वेग से) उड़ते हुए (उल्लसत्) आम्रमञ्जरियों के (चूत) परागसमूह (रेणुपटल) वाले, अलिकुलझङ्कारमुखरसहकारैः=भ्रमर समूह की गुञ्जारों (झङ्कार) से शब्दायमान (मुखर) सुगन्धित आम्रवृक्षों (रसाल या सहकार) वाले, उन्मदकोकिलकुलकलालापकोलाहलिभिः=उन्मत्त कोयलों के अव्यक्त मधुर मधुर ध्वनि (कलालाप) कलरवों वाले, उत्फुल्लकेतकीकुसुममञ्जरीरजः पुञ्जपिञ्जरैः=फूली हुई केतकी की पुष्पमञ्जरियों के परागसमूह से पीतवर्ण (पिञ्जर) वाले, पूगीलतादोलारूढवनदेवतैः=सुपारी (पूगी) की लताओं रूपी झूलों (दोला) पर चढ़ी हुई वनाधिष्ठात्री देवियों वाले, अधर्मविनाशपिशुनम्=अधर्म के विनाश के सूचक (पिशुन), अनिलचलितम्=वायु द्वार चञ्चल, अतिधवलम्=अत्यन्त शुभ्रवर्ण, कुसुमनिकरम्=पुष्पसमूह को, अनवरतम्=लगातार, तारकावर्षमिव=उल्कापात के समान, उत्सृजद्भिः=छोड़ते हुए—गिराते हुए, संसक्त पादपैः=परस्पर सटे हुए सघन वृक्षों वाले, काननैः=वनों से, उपगूढम्=घिरे हुए ...... ...... ।

**अनुवाद**—(वैशम्पायन कहता है कि) कुछ ही दूर जाकर (मैंने एक ऐसे आश्रम को देखा जो कि) सघन वृक्षों वाले (उन) वनों से घिरा हुआ था (जो कि वन) सदा समीपस्थ पुष्पों और फलों वाले थे, जिनमें ताल, तिलक, तापिच्छ, हिन्ताल और केसर नामक वृक्ष अधिक थे, जहाँ इलायची की लताओं से आच्छादित नारियल के अनेक वृक्ष थे। जहाँ लोध्र, लवली और लवङ्ग नामक लताओं के पत्ते (वायु वेग से) हिल रहे थे। जहाँ आम्रमञ्जरियों का पराग समूह (वायु वेग से) उड़ रहा था। जहाँ सुगन्धित आम्रवृक्ष भ्रमर समूह की झङ्कारों से मुखरित हो रहा था। जहाँ मतवाली कोयलों की अव्यक्त मधुर ध्वनि का कलरव था। (और जो कि वन) फूले हुए केवड़ों की पुष्पमञ्जरियों के पराग समूह से पीत वर्ण हो गये थे। और जहाँ सुपारी की लताओं रूपी झूलों पर वनदेवियाँ चढ़ी हुई थीं। और जहाँ वृक्ष—अधर्म विनाशसूचक, वायु द्वारा चञ्चल, अतिशुभ्रवर्ण कुसुमसमूह को उल्कापात के समान लगातार गिरा रहे थे।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि वह आश्रम ऐसे वनों से घिरा हुआ था जिसमें सदा फल पुष्पों से लदे हुए सघन वृक्ष थे, इन वृक्षों में भी ताल, तिलक, तमाल, हिन्ताल, केसर जैसे वृक्ष ही अधिक थे। कहीं नारियल के पेड़ थे जिन पर इलायची की लतायें चढ़ी हुई थीं, कहीं लोध्र, लवली और लवङ्ग लताओं के पत्ते लहरा रहे थे, कहीं आम्रमञ्जरियों का पराग उड़ रहा था, कहीं वृक्षों पर भ्रमरों की मधुर गुञ्जार थी। कही कोयलें मधुर ध्वनि कर रही थीं। कहीं प्रफुल्ल केतकी पुष्पों के पराग से वह वन पीला-सा दिखाई पड़ रहा था। कहीं सुपारी की लताओं के झूलों पर वनदेवियाँ झूल रही थीं, कहीं वायुवेग से लगातार झड़ने वाले पुष्पों से वह वन ऐसा लग रहा था कि मानो अधर्म विनाश की सूचक उल्कायें गिर रही हों।

**संस्कृत व्याख्या**—अनतिदूरमिव गत्वा—किञ्चिदिव दूरं गत्वा दिशि दिशि-प्रतिदिशम्, सदासन्निहित कुसुमफलैः—सर्वदा सन्निहितानि समीपवर्तीनि हस्तग्राह्याणि कुसुमानि पुष्पाणि फलानि च येषु तैः तादृशैः, तालतिलकतमालहिन्तालबकुलबहुलैः= तालाः तृणराजेत्याख्याता वृक्षविशेषाः, तिलकाः श्रीमद्वृक्षाः, तमालाः तापिच्छाः, हिन्तालाः फलवृक्षविशेषाः बकुलाः केसरवृक्षाः च बहुला अधिका येषु तैः तादृशैः, एलालताकुलितनारिकेल कलापैः—एलालताः चन्द्रबालावल्लयः ताभिः आकुलिताः आच्छादिताः नारिकेलानां लाङ्गलीतरूणां कलापाः समूहाः येषु तैः तादृशैः, आलोललोध्रलवलीलवङ्गपल्लवैः=अलोला वायुवेगेन चञ्चलाः लोध्राणां गालवानां लवलीनां लताविशेषाणाम्, लवङ्गानाम् श्रीत्याख्यानाम् पल्लवाः किसलयानि येषु तैः तादृशैः, उल्लसच्चूतरेणुपटलैः=उल्लसन्ति वायुवेगेन प्रचलन्ति चूतानाम् आम्रवृक्षाणाम् आम्रपुष्पाणामित्याशयः, रेणुपटलानि परागसमूहाः येषु तैः तादृशैः, अलिकुलझङ्कारमुखरसहकारैः=अलिकुलस्य भ्रमरसमूहस्य झङ्कारेण झङ्कृति-शब्देन मुखराः शब्दायमानाः सहकाराः सुगन्धिमद्रसालतरवः येषु तैः तादृशैः, उन्मद-कोकिलकुलकलालापकोलाहलिभिः=उन्मदानि मदोन्मत्तानि यानि कोकिलकुलानि

पिककुलानि तेषां यः कलालापः अव्यक्तमधुरध्वन्यात्मकः कोलाहलः कलकलः सः अस्ति एषामिति तैः तादृशैः, उत्फुल्लकेतकीकुसुममञ्जरीरजः पुञ्जपिञ्जरैः= उत्फुल्ल केतकी कुसुमानां विकसितमालती पुष्पाणां याः मञ्जर्यः तासां रजः पुञ्जैः परागपटलैः पिञ्जराणि पीतरक्तवर्णानि येषु तैः तादृशैः, पूगीलतादोलाधिरुढवनदेवतैः= पूगीलताः क्रमुकवल्लर्यः एव दोलाः अधिरोहिण्यः तासु अधिरुढा आश्रिता वनदेवताः वनाधिष्ठात्र्यो देवता येषु तैः तादृशैः, अधर्मविनाशपिशुनम्=अधर्मस्य पापस्य विनाशस्य पिशुनं सूचकम्, अनिलचलितम्=अनिलेन वायुना चलितम् आन्दोलितम्, अतिधवलम्=अतिशुभ्रम्, पुष्पनिकरम्=प्रसूनसमूहम्, तारकावर्षमिव : उल्कापात-मिव, अनवरतम्=निरन्तरम्, उत्सृजदिद्भः=विकिरद्भिः, संसक्तपादपैः=संसक्ताः मिथः संश्लिष्टाः पादपाः तरवः येषु तैः तथोक्तैः, काननैः वनैः, उपगूढम्= परिव्याप्तम्···· ···· आश्रममपश्यम् इति दूरेणान्वयः।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यत् किञ्चिदिव दूरं गत्वा अहमेकमा-श्रममपश्यम्, यश्चाश्रमः तादृशैर्वनैरुपगूढ आसीत् यत्र तरवः परस्पराश्लिष्टा आसन्, यत्र च सर्वतः सर्वदा हस्तग्राह्यपुष्पफलसमन्वितास्तरवः शोभन्ते स्म। एषु तरुषु तालतिलकतमालहिन्ताल बकुलाभिधानास्तरव एवाधिका आसन्। यत्र च कुत्रचित् चन्द्रवालालतासमाच्छादिता लाङ्गलीतरवः आसन्, क्वचिच्च लोध्रलवलीलवङ्ग-लतानां पल्लवा वायुवेगचपला आसन्, कुत्रचिच्चाम्रमञ्जरीणां परागसमूहा वातेनेत-स्ततो विक्षिप्ता आसन्, क्वचिच्च भ्रमरध्वनिवाचाला अतिसुगन्धिमन्तो रसालतरवः, अन्यत्र च मदोन्मत्त कोकिलकुलाव्यक्तमधुरध्वनि कोलाहलिनो वृक्षाः विराजन्ते स्म। कुत्रचिच्च प्रस्फुटितमालतीपुष्पमञ्जरी परागपटलैः पिञ्जरीकृताः क्वचिच्च क्रमुकलता-दोलाधिष्ठितवनदेवताः च पादपा आसन्। क्वचिदेते वृक्षाः देवार्चनोपयोगित्वादधर्म-नाशसूचकं वायुप्रकम्पितं पुष्पसमूह मतिधवलमुल्कापातमिव निरन्तरं विकिरन्त आसन्।

**टिप्पणी—अनतिदूरम्**—इस स्थान से कुछ ही दूर, इस वाक्यांश के सभी तृतीयाबहुवचनान्तपद 'काननैः' के विशेषण हैं। **तालेत्यादि**—ताल आदि सब वृक्षों के नाम हैं, तिलक का दूसरा नाम श्रीमत् वृक्ष तथा तमाल का तापिच्छ भी है, वकुल को केसर वृक्ष भी कहते हैं। एला को चन्द्रवाला तला भी कहा गया है। लोध्र लवली और लवङ्ग लतायें हैं। चूत और सहकार यद्यपि दोनों का अर्थ आम्र वृक्ष ही होता है तथापि चूत साधारण आम्र वृक्ष है जबकि सहकार अति-सुगन्धित आम्र वृक्ष को कहा जाता है "आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽति सौरभः" अमरकोश। **उन्मदेति**—कलालाप=अव्यक्त मधुर ध्वनि। कोलाहलिभिः=कोलाहलः कलकलः अस्त्येषामिति कोलाहलिनः तैः। **उत्फुल्लेति**—मञ्जरीरजः पुञ्जपिञ्जरैः— मञ्जरियों के पराग समूह से पीतरक्त वर्ण वाले। "वल्लरिर्मञ्जरी स्त्रियौ" कोश। **पूगीलतेति दोला**—निश्रेणि अथवा अधिरोहिणी "दोला प्रेङ्खः पुमान् प्रेङ्खा निश्रेणिरधिरोहिणी" कोश। पूगीलतायें अतिकोमल होने से स्थान-स्थान पर झुकी हुई थीं अतएव वे दोलावत् जान पड़ती थीं। **तारकावर्षम्**—उल्कापात। वहाँ के वृक्षों से

जो अतिशुभ्र पुष्प समूह वायुवेग वश लगातार गिर रहा था वह ऐसा प्रतीत होता था मानो अधर्म विनाश सूचक उल्कायें बरस रही हों—यहाँ पूर्णोपमालंकार है। दोलाधिरुढेत्यादि पद में असम्बन्धे सम्बन्ध लक्षणा अतिशयोक्ति है।

**अचकितप्रचलित कृष्णसार शतशबलाभिः, उत्फुल्लस्थलकमलिनीलोहिनीभिः, मारीचमायामृगावलूनप्ररुढवीरुद्दलाभिः, दाशरथिचापकोटिक्षतकन्दगर्त्तविषमिततलाभिः, दण्डकारण्यस्थलीभिरुपशोभितप्रान्तम्। आगृहीतसमित्कुशकुसुममृदिभः अध्ययनमुखरशिष्यानुगतैः सर्वतः प्रविशद्भिः मुनिभिरशून्योपकण्ठम्। उत्कण्ठित शिखण्डिमण्डल श्रूयमाणजलकलसपूरणध्वनिम्। अनवरताज्याहुतिप्रीतैश्चित्रभानुभिः सशरीरमेव मुनिजनममरलोकं निनीषुभिः, उद्धूयमानधूमलेखाच्छलेनाबद्ध्यमान स्वर्गमार्गगमन सोपानसेतु मिवोपलक्ष्यमाणम्...... ... ....।**

**शब्दार्थ**—इस वाक्यांश के 'गर्तविषमिततलाभिः' तक के तृतीया बहुवचनान्त-स्त्रीलिङ्ग पद 'दण्डकारण्यस्थलीभिः' के विशेषण हैं। **अचकित प्रचलित कृष्णसारशतशबलाभिः**=निडर (अचकित) घूमते हुए (प्रचलित) सैकड़ों (शत) कृष्णसार मृगों से चित्र विचित्र, (शबल), उत्फुल्लस्थलकमलिनीलोहिनीभिः=फूली हुई स्थल कमलिनियों से रक्तवर्ण, मारीचमायामृगावलूनप्ररुढ़वीरुद्दलाभिः=कपट मृग रूपधारी मारीच के द्वारा काटी गई (अवलून) (और पुनः) उगी हुई (प्ररुढ) लताओं (वीरुत्) के पत्तों (दल) वाली, दाशरथिचापकोटिक्षतकन्दगर्त्तविषमिततलाभिः=राम (दाशरथि) के धनुष के अग्रभाग (कोटि) से उखाड़े गये कन्द अर्थात् वृक्षमूलों के गड्ढों से ऊँचे नीचे (विषमित) तलभाग वाली, दण्डकारण्यस्थलीभिः=दण्डकारण्य की भूमियों से, उपशोभितप्रान्तम्=शोभित किये गये प्रान्त भाग (किनारे का या पीछे का भाग) वाले (आश्रम को देखा) आगृहीत समित्कुशकुसुममृदिभः=समिधा, कुश, पुष्प और मृत्तिका लिये हुए, अध्ययनमुखरशिष्यानुगतैः=अध्ययनवश वाचाल शिष्यों द्वारा अनुगत, सर्वतः प्रविशद्भिः (और) चारों ओर से (सर्वतः) प्रवेश करते हुए, मुनिभिः=मुनियों द्वारा, अशून्योपकण्ठम्=परिपूर्ण निकटवर्ती प्रदेश वाले (अशून्य=भरे हुए परिपूर्ण, उपकण्ठ=समीपवर्ती प्रदेश) (आश्रम को देखा) उत्कण्ठितशिखण्डिमण्डलश्रूयमाणजलकलसपूर्ण ध्वनिम्=उत्सुक हुए मयूर मण्डल द्वारा जहाँ जल के घटों के भरने का शब्द सुना जा रहा था (ऐसे आश्रम को देखा) अनवरताज्याहुतिप्रीतैः=निरन्तर घृत (आज्य) की आहुतियों से प्रसन्न हुए, चित्रभानुभिः दक्षिणाग्नि गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि रूप त्रिविध अग्निदेवों द्वारा (मानो) मुनिजनम्=मुनिजनों को, सशरीरमेव=शरीरसहित ही अमरलोकं निनीषुभिः=स्वर्गलोक पहुँचाने के लिए इच्छुक, उद्धूयमानधूमलेखाच्छलेनाबद्ध्यमानस्वर्गमार्गगमन सोपानसेतुम् इव उपलक्ष्यमाणम्=(अतएव) (वायु द्वारा) उड़ाई जाती हुई (उद्धूयमाना) धूमपंक्ति के बहाने स्वर्ग के मार्ग पर जाने की सीढ़ियों (सोपान) का पुल (सेतु) बाँधते हुए से दिखलाई पड़ने वाले (आश्रम को देखा)।

**अनुवाद**—(वैशम्पायन कहता है कि मैंने एक ऐसे आश्रम को देखा जिसका कि) पिछला भाग दण्डकारण्य की (उन) वनभूमियों से सुशोभित था जो कि निडर घूमते हुए सैकड़ों कृष्णसार मृगों से चित्र विचित्र, फूली हुई स्थल कमलिनियों से रक्तवर्ण, (तथा) कपट मृग रूपधारी मारीच के द्वारा काटी गई (और पुन) उगी हुई लताओं के पत्तों वाली (एवम्) श्रीराम के धनुष के अग्रभाग से उखाड़े गये कन्द अर्थात् वृक्ष मूलों के गड्ढों से ऊँचे नीचे तल भाग वाली थीं। (तथा वह आश्रम) समिधा, कुश, पुष्प और मृत्तिका लिये हुये, अध्ययन वश वाचाल शिष्यों द्वारा अनुगत, चारों ओर से प्रवेश करते हुए मुनियों द्वारा परिपूर्ण निकटवर्ती प्रदेश वाला था एवं जहाँ उत्सुक हुए मयूर मण्डल द्वारा जल के घड़ों के भरने का शब्द सुना जा रहा था। और जो कि, निरन्तर घृत की आहुतियों से प्रसन्न हुए (अतएव मानो) मुनिजनों को शरीर सहित ही स्वर्गलोक पहुँचाने के लिए इच्छुक, दक्षिणाग्नि गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि रूप त्रिविध अग्निदेवों द्वारा, (वायुवश) उठाई जाती हुई धूमपंक्ति के बहाने स्वर्ग के मार्ग पर जाने की सीढ़ियों का पुल बाँधता हुआ सा, दिखलाई पड़ने वाला था।

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि मैंने एक ऐसा आश्रम देखा जिसका कि पिछला भाग दण्डकारण्य की भूमि से सुशोभित था। वह भूमि निर्भीक होकर दौड़ने वाले सैकड़ों कृष्णसार मृगों के कारण चित्र विचित्र थी। खिली हुई कमलिनियों से लाल थी। कपट मृग रूपधारी मारीच ने जिन लताओं को पहले नोंच डाला था आज वे पुनः पल्लवित हो उठी थीं। श्रीराम ने अपने धनुष् की कोटि से जहाँ पर कन्द उखाड़ा था वहाँ गड्ढे बन गये थे जिससे वहाँ भूमितल अब भी ऊँचा नीचा दिखलाई पड़ रहा था। उस आश्रम के पास ही एक ओर कुछ मुनिजन एकत्रित हो रहे थे उनके पीछे पीछे समिधा, कुश, पुष्प और मिट्टी लिये हुए तथा उच्च स्वर से वेदपाठ करते हुए उनके शिष्य चल रहे थे। कहीं पर मयूरों के झुण्ड, घड़ों में जल भरने के कारण उठने वाले शब्द को, मेघ गर्जना समझकर उत्सुकता के साथ सुन रहे थे। कहीं यज्ञकुण्डों से धुएँ की उठती हुई रेखायें ऐसी लग रही थीं कि मानो घृताहुतियों से प्रसन्न होकर अग्निदेव ने मुनिजनों के सशरीर स्वर्ग पहुँचा देने के लिए मार्ग में सीढ़ियों का पुल बना दिया हो।

**संस्कृत व्याख्या**—(गद्यभागेऽस्मिन् अचकितेत्यारभ्य विषमिततलाभिरित्यन्तानि तृतीयाबहुवचनान्तस्त्रीलिङ्गपदानि दण्डकारण्यस्थलीभिरित्यस्य विशेषणानि) अचकित प्रचलित कृष्णसारशतशबलाभिः=अचकिता भीतिरहिताः प्रचलिता गच्छन्तः ये कृष्णसाराः कृष्णमृगविशेषाः तेषां शतं तेन शबलाः किर्मीरा विचित्रा वा ताभिः तादृशीभिः, उत्फुल्लस्थलकमलिनीलोहिनीभिः=उत्फुल्ला विकसिता याः स्थलकमलिन्यः नलिन्यः ताभिः लोहिन्यः रक्तवर्णाः ताभिः तादृशीभिः, मारीचमायामृगावलूनप्ररूढवीरुद्दलाभिः=मारीच एतन्नामकः असुरः एव मायामृगः कपटेनमृगरूपधारी तेन भक्षणार्थं पूर्वम् अवलूनानि दन्तैश्छिन्नानि पश्चात् प्ररूढानि संजातानि वीरुधां

लतानां दलानि पत्राणि यासु ताभिः तादृशीभिः, दाशरथिचापकोटिक्षतकन्दगर्त्तविषमिततलाभिः=दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः रामचन्द्रः तस्य चापस्य धनुषः कोट्या अग्रभागेन क्षतानि समुत्पाटितानि यानि कन्दानि तरुमूलानि तेषां ये गर्ताः भूविवराणि तैः विषमितानि उच्चनीचतां प्राप्तानि तलानि यासां ताभिः तादृशीभिः, दण्डकारण्यस्थलीभिः=दण्डकारण्यं दण्डकारख्यं वनम् तस्य स्थल्यस्ताभिः उपशोभितप्रान्तम्=उपशोभितः शोभां प्रापितः प्रान्तः पश्चात्प्रदेशः यस्य स तम् तादृशम् (आश्रमम्)। (तथा च) आगृहीतसमित्कुशकुसुममृदिभः=आगृहीताः अग्निहोत्रादिकार्यसाधनाय हस्तेषु धृताः समिधः एधांसि कुशाः दर्भाः कुसुमानि पुष्पाणि मृदः मृत्तिका यैस्ते तैः तादृशैः, अध्ययनमुखरशिष्यानुगतैः=अध्ययनेन वेदपारायणेन मुखराः शब्दायमानाः ये शिष्या अन्तेवासिनः तैः अनुगताः तैः तादृशैः, सर्वतः प्रविशद्भिः=समन्तात् प्रवेशं कुर्वद्भिः मुनिभिः ऋषिभिः, अशून्योपकण्ठम्=अशून्यः परिपूर्णः उपकण्ठः समीपदेशः यस्य तम् तथोक्तम् (आश्रमम्) उत्कण्ठितशिखण्डिमण्डलश्रूयमाणजलकलशपूरणध्वनिम्=उत्कण्ठितेन घटेषु जलपूरणध्वनौ मेघगर्जनभ्रान्त्या जातोत्कण्ठेन शिखण्डिमण्डलेन मयूरसमूहेन श्रूयमाणः आकर्ण्यमाणः जलैः कलशपूरणस्य घटपूरणस्य ध्वनिः शब्दः यस्मिन् स तम् तादृशम् (आश्रमम्) अनवरताहुतिप्रीतैः=अनवरतं निरन्तरं, आज्यस्य घृतस्य आहुतिभिः हवनैः प्रीताः सन्तुष्टास्तैः तादृशैः (अतएव) सशरीरमेव सविग्रहमेव मुनिजनम् अमरलोकम् देवलोकम् निनीषुभिः नेतुमिच्छुभिः, चित्रभानुभिः दक्षिणाग्निगार्हपत्याग्न्याहवनीयाग्निरूपैः त्रिविधैर्वह्निभिः, उद्धूयमानधूमलेखाच्छलेनाबद्धयमानस्वर्गमार्गगमनसोपानसेतुम् इव उपलक्ष्यमाणम्=उद्धूयमाना वायुवशात् सञ्चाल्यमाना या धूमलेखा धूम्रश्रेणिः तस्याः छलेन व्याजेन आबद्धयमानः विरच्यमानः स्वर्गमार्गगमनाय देवलोकवर्त्मगमनार्थं यः सोपानसेतुः तमिव उपलक्ष्यमाणम् व्यज्यमानम् (आश्रममपश्यम्)।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदहं तमाश्रममपश्यम्, यः तादृशीभिः दण्डकवनस्थलीभिरुपशोभितपश्चात्प्रदेश आसीत्, याः भीतिरहितसञ्चलित कृष्णमृगशनविचित्राः, प्रस्फुटितस्थलनलिनीभिः रक्तवर्णाः, कपटमृगरूपधारिमारीचासुरच्छिन्नसञ्जातलतापर्णाः श्रीरामचापाग्रभागोत्खातवृक्षमूलानां भूविवरैरुच्चावनततलाश्चासन्। यश्चाश्रमः तादृशैर्मुनिभिः परिपूर्ण निकटदेशः आसीत्, येऽग्निहोत्रादिकार्यसाधनायागृहीतसमित्कुशपुष्पमृद्भिः वेदपारायणवाचालशिष्यैरनुगताः समन्तात् तत्र प्रविशन्तश्चासन्। यत्रचाश्रमे मेघगर्जनभ्रान्त्या समुपजातोत्कण्ठैर्वनमयूरैः जलैः कलशपूरणस्य शब्दः निशम्यमान आसीत्। स चाश्रमः, निरन्तरं घृताहुतिभिः सन्तुष्टैः रतएव मुनिजनं सविग्रहं देवलोकं नेतुमिच्छुभिस्त्रिविधैर्वह्निभिः वायुवशात् सञ्चाल्यमानधूम्रश्रेणिव्याजेन विरच्यमानः देवलोकमार्गगमनार्थ सोपानसेतु रिवासीत्।

**टिप्पणी**—**शबला**—चित्र विचित्र—रंग-विरंगी। **अचकित**=आश्रम में हिंसा के अभाव में सभी वन्य पशु निर्भीक घूमते थे। **मारीचमायामृगेत्यादि**—कवि ने इन दो वाक्यों के द्वारा दण्डकारण्य के प्राचीन इतिहास की ओर संकेत किया है, मारीच

नामक राक्षस, उस समय का एक प्रसिद्ध धर्मोपदेशक एवं कायाकल्प विज्ञान का विशेषज्ञ था अतएव उसने पहले रावण को बहुत समझाया पर अन्त में उसने रावण के आग्रह के अनुसार कपट मृग का रूप धारण किया था। **दाशरथिचापेति**—वनवास के समय, दण्डकारण्य के वृक्षमूलों को उखाड़ने से वहाँ गड्ढे बन गये थे अतएव वहाँ की भूमि ऊँची नीची हो गई थी। **वीरुद्दलाभिः**—लताओं के पत्ते 'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान्' कोश। "लताप्रतानिनी वीरुद् गुल्मिन्युपले इत्यपि।" **निनीषुभिः**—सन्नन्तनी धातु से उ प्रत्यय। **उत्कण्ठितेति**—घड़ों को जल में डुबो कर भरने से जो शब्द होता था मयूर उसे भ्रमवश मेघ गर्जन समझकर उत्कण्ठित हो उठे थे।

**आसन्नवर्त्तिनीभिस्तपोधनसम्पर्कादिवापगतकालुष्याभिः, तरङ्गपरम्परासङ्क्रान्तरविबिम्बपङ्क्तिभिः, तापसदर्शनागतसप्तर्षिमालाविगाह्यमानाभिरिव, अतिविकचकुमुदवनमृषिजनमुपासितु मवतीर्णं ग्रहगणमिव निशासूद्वहन्तीभिर्दीर्घिकाभिः परिवृतम्। अनिलावनमितशिखराभिः प्रणम्यमानमिव वनलताभिः, अनवरतमुक्तकुसुमैरभ्यर्च्यमानमिव पादपैः, आवद्धपल्लवाञ्जलिभिः उपास्यमानमिव विटपैः, उटजाजिरप्रकीर्णशुष्यच्छ्यामाकम्, उपसंगृहीतामलकलवलीलवङ्गकर्कन्धूकदली लकुचचूतपनसतालफलम्** ......... ।

**शब्दार्थ**—आसन्नवर्त्तिनीभिः=समीपवर्तिनी, तपोधनसम्पर्कात् इव=मानो तपस्वियों के सम्पर्क से, अपगतकालुष्याभिः=अत्यन्त निर्मल हुई, तरङ्गपरम्परासंक्रान्तरविबिम्बपङ्क्तिभिः=तरङ्गमालाओं में प्रतिबिम्बित सूर्यबिम्ब की पंक्तियों वाली, तापसदर्शनागतसप्तर्षिमालाविगाह्यमानाभिः=(अतएव मानो) तापसों के दर्शन के लिए आये हुए सप्तर्षिमण्डल के द्वारा विलोडित की जाती हुई सी, निशासु अतिविकचकुमुदवनम् ऋषिजनम् उपासितुम् अवतीर्णम् ग्रहगणम् इव उद्वहन्तीभिः=(और) रात्रियों में अतिविकसित कुमुदवन को, ऋषिजनों की उपासना के लिए उतरे हुए ग्रहसमूह के समान, धारण करती हुई, दीर्घिकाभिः=बावड़ियों से, परिवृत्तम्=घिरे हुए (आश्रम को) अनिलावनमितशेखराभिः वनलताभिः=वायु द्वारा झुकाई गई (अवनमित) चोटियों (शेखरों) वाली, वनलताओं से, प्रणम्यमानमिव=मानो प्रणाम किये जाते हुए, अनवरतमुक्तकुसुमैः पादपैः=लगातार पुष्पों को गिराने वाले वृक्षों द्वारा, अभ्यर्च्यमानमिव=मानो पूजित होते हुए, आवद्धपल्लवाञ्जलिभिः विटपैः=पल्लव रूपी अञ्जलि बाँधने वाले वृक्षों द्वारा, उपास्यमानमिव=मानो उपासना किये जाते हुए, उटजाजिरप्रकीर्णशुष्यच्छ्यामाकम्=कुटियों के आंगन में फैलाये गये अतएव सूखते हुए श्यामाक धान्यों वाले, उपसंगृहीतामलकलवलीलवङ्गकर्कन्धूकदलीलकुचचूतपनसतालफलम्=(और) जहाँ आँवला (आमलक), लवली, लौंग, बेर (कर्कन्धू), केला (कदली), बड़हर (लकुच), आम (चूत), कटहल (पनस), ताड़ के फल संगृहीत किये गये थे।

**अनुवाद**—(वैशम्पायन कहता है कि वह आश्रम) समीप वर्तिनी और तापसों के सम्पर्क से मानो अति निर्मल हुई, तरङ्गमालाओं में प्रतिबिम्बित सूर्यबिम्ब की पंक्तियों वालीं, अतएव मानो तापसों के दर्शनार्थ आये हुए सप्तर्षिमण्डल के द्वारा स्नानार्थ विलोडित की जाती हुई, और रात्रियों में, ऋषिजनों की उपासना के लिए उतरे हुये ग्रहमण्डल जैसे अतिविकसित कुमुद वन को धारण करती हुई, बावड़ियों से घिरे हुए (तथा) वायु द्वारा झुकाई गई चोटियों वाली वनलताओं से प्रणाम किये जाते हुए, लगातार फूलों को गिराने वाले वृक्षों द्वारा मानो पूजित होते हुए, पल्लव रूपी अञ्जलि बाँधने वाले वृक्षस्कन्धों द्वारा मानो सेवित किये जाते हुए, कुटियों के आंगन में फैलाये गये अतएव सूखते हुए श्यामाक नामक धान्यों वाले (आश्रम को) जहाँ पर आंवला, लवली, लौंग, बेर, केला, बड़हर, आम, कटहल और ताड़ के फल संगृहीत किये गये थे...... (ऐसे आश्रम को देखा)

**भावार्थ**—वैशम्पायन कहता है कि उस आश्रम के चारों ओर बावड़ियाँ थीं जो कि तपस्वियों के सम्पर्क से मानो अतिस्वच्छ हो गई थीं उनकी लहरों में जब सूर्य के प्रतिबिम्ब पड़ते थे तब ऐसा प्रतीत होता था कि मानो तापसदर्शनार्थ आये हुए सप्तर्षि उनमें स्नान कर रहे हों। और रात्रियों में उनमें खिले हुए कुमुद पुष्प ऐसे प्रतीत होते थे कि मानो ऋषियों की सेवा के लिए तारागण ही उतर आये हों, वायुवेगवश झुकी हुई लताओं की चोटियाँ ऐसी लगती थीं कि मानो वे सिर झुका कर आश्रम को प्रणाम कर रही हों और जो वृक्षों से निरन्तर फूल झड़ रहे थे इनसे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे फूल चढ़ाकर आश्रम की पूजा कर रहे हों और वृक्षों के पत्ते ऐसे लग रहे थे कि मानो वे वृक्ष हाथ जोड़कर उसकी उपासना कर रहे हों, वहाँ आश्रम की कुटियों के आंगन में सूखने के लिए साँवा धान फैलाये गये थे तथा झोपड़ियों के भीतर आंवला, लवली, लौंग, बेर, केला, लकुच, आम, कटहल और ताड़ के फल एकत्रित थे।

**संस्कृत व्याख्या**—आसन्नवर्तिनीभिः समीपस्थायिनीभिः, तपोधनसम्पर्कात् इव अपगतकालुष्याभिः=तपोधनानां तापसानां सम्पर्कात् सम्बन्धात् इव अपगतं दूरीभूतं कालुष्यं मालिन्यं यासां ताः ताभिः अतिनिर्मलाभिरित्यर्थः, तरङ्गपरम्परासंक्रान्त-रविबिम्बपङ्क्तिभिः=तरङ्गपरम्परासु कल्लोलपङ्क्तिषु संक्रान्ताः प्रतिबिम्बिताः रविबिम्बपङ्क्तयः सूर्यबिम्बस्य राजयः यासु ताभिः तादृशीभिः (अतएव) तापसदर्शना-गतसप्तर्षिमाला विगाह्यमानाभिः इव=तापसानां जाबाल्यादिमुनिजनानां दर्शनाय आगता संप्राप्ता या सप्तर्षिमाला मरीच्यादिदेवर्षिपङ्क्तिः तया विगाह्यमानाभिः स्नानार्थं विलोड्यमानाभिरिव वर्तमानाभिः, अतिविकचकुमुदवनम् ऋषिजनम् उपासितुम् अवतीर्णम् ग्रहगणमिव निशासु उद्वहन्तीभिः=निशासु रात्रिषु ऋषिजनम् मुनिजनम् उपासितुम् सेवितुम् अवतीर्णम् उपरिष्टात् सम्प्राप्तम् ग्रहगणम् नक्षत्रमण्डलम् इव अतिविकसितम् पूर्णतः विकसितं यत् कुमुदवनम् कैरववनम् तत् उद्वहन्तीभिः धारयन्तीभिः, दीर्घिकाभिः वापीभिः परिवृतम् परितो वेष्टितम् (आश्रमम्)।

अनिलावनमितशिखराभिः=अनिलेन वायुना अवनमितानि अवनम्रीभूतानि शिखराणि अग्रभागाः यासां ताः ताभिः तादृशीभिः वनलताभिः विपिनव्रततिभिः प्रणम्यमानम् नमस्क्रियमाणमिव (आश्रमम्) अनवरतमुक्तकुसुमैः=अनरतं निरन्तरं मुक्तानि अधोनिपातितानि कुसुमानि पुष्पाणि यैस्ते तैः, पादपैः वृक्षैः, अभ्यर्च्यमानम् पूज्यमानमिव (आश्रमम्) आवद्धपल्लवाञ्जलिभिः=आवद्धाः विरचिताः पल्लवाः किसलयानि एव अञ्जलयः यैस्तैः तादृशैः, विटपैः वृक्षस्कन्धैः, उपास्यमानम् संसेव्यमानम् इव, उटजाजिरप्रकीर्णं शुष्यच्छ्यामाकम्=उटजानाम् पर्णशालानाम् अजिरेषु प्राङ्गणेषु प्रकीर्णाः प्रसारिताः अतएव शुष्यन्तः आतपेन शुष्कतां प्राप्नुवन्तः श्यामाका धान्यविशेषाः यस्मिन् स तादृशम्, उपसंगृहीतामलकलवलीलवङ्गकर्कन्धू कदली लकुच चूतपनसतालफलम=उपसंगृहीतानि एकत्रीकृतानि आमलकम् धात्री, लवली लताविशेषः लवङ्गम् (लौंग इति भाषायाम्) कर्कन्धूः वदरी, कदली रम्भाः, लकुचः वहुः (बड़हर) चूतः रसालः, पनसं, कण्टकी (कटहल) ताल तृणराजः इत्येषां फलानि यत्र स तम् तादृशम् (आश्रमम्)।

**संस्कृत सरलार्थ**—(वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशनेक माश्रममपश्यम्) यः तथाविधाभिः वापीभिः परिवेष्टित आसीत्, याः निकटस्थायिन्यः, मुनिजनसम्बन्धादिव विलीनमालिन्याः, कल्लोलराजिषु प्रतिफलितसूर्यविम्बराजयः, (अतएव) जाबाल्यादिमुनिजनदर्शनाय समागतैः मरीचिप्रभृतिदेवर्षिभिर्विलोड्यमाना इव वर्तमानाः (अथ च) रात्रिषु जाबाल्यादिमुनिमण्डलं सेवितुं समवतीर्णं नक्षत्रमण्डलमिव पूर्णविकसितकैरवनं धारयन्त्यश्चासन्। एवञ्च स आश्रमः तादृशीभि र्वनलताभि र्नमस्क्रियमाण इवासीत् याः पवनावनम्रीभूताग्रभागा आसन्, तादृशैस्तरुभिश्च स पूज्यमान इवासीत् ये निरन्तरपरिमुक्तकुसुमा आसन्, अथ च स तादृशैर्विटपस्कन्धैः सेव्यमान इवासीत् ये रचितकिसलयाञ्जलय आसन्। यत्र चाश्रमे पर्णशालानां प्राङ्गणेषु प्रसारिताः श्यामाकधान्यविशेषाः सूर्यातपेन शुष्कतां प्राप्नुवन्त आसन्। एवञ्च तत्राश्रमे भक्षणार्थं धात्रीफल लवलीलवङ्गवदरीफलरम्भालकुचाम्रपनसतालफलानि समुपसंगृहीतान्यासन्।

**टिप्पणी**—तपोधन सम्पर्कादिव-तत्रत्य बावड़ियों का जल स्वच्छ था कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो वह तपस्वियों के सम्पर्क से अतिनिर्मल हो गया था हेतूत्प्रेक्षा, विगाह्यमानाभिरिव—अत्रक्रियोत्प्रेक्षा दीर्घिका=बावड़ी। प्रणम्यमानम्, अभ्यर्च्यमानम्, उपास्यमानम् इव—यहाँ सर्वत्र क्रियोत्प्रेक्षा है। पल्लवाञ्जलयः—यहाँ केवलनिरङ्गरूपक है। उटज=पर्णशाला-पर्णशालोटजोऽस्त्रियामित्यमरः। अजिर=आंगन, लकुच=बड़हर, पनस-कटहल।

**अध्ययनमुखरवटुजनम्, अनवरतश्रवणगृहीत वषट्कार वाचालशुककुलम्, अनेकसारिकोद्घुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्, अरण्यकुक्कुटोपभुज्यमानवैश्वदेववलिपिण्डम्, आसन्नवापीकलहंसपोतभुज्यमाननीवारवलिम्, एणीजिह्वापल्लवोपलिह्यमानमुनिवालकम्, अग्निकार्यार्द्धदग्धसमिभसिमायमानकुश-**

**समित्कुसुमम्, उपलभग्ननारिकेलरसस्निग्धशिलातलम् अचिरक्षुण्णवल्कलरसपाटलभूतलम्. रक्तचन्दनोपलिप्तादित्यमण्डलनिहितकरवीरकुसुमम्, इतस्ततो विक्षिप्तभस्मलेखालंकृतमुनिजनभोजन भूमिभागम् ।**

**शब्दार्थ**—(इस गद्यांश का भी सम्बन्ध 'आश्रममपश्यम्' इस अन्तिम वाक्य से ही है अतः रुब द्वितीयान्त पद 'आश्रमम्' के विशेषण हैं। अध्ययनमुखर वटुजनम्= जहाँ वेदमन्त्रों के गुरुमुख से उच्चारण के बाद उच्चारण करने वाले, ब्रह्मचारी (वटुजन) थे। अनवरतश्रवण गृहीतवषट्कार वाचालशुककुलम्=निरन्तर (अनवरत) सुनने से (श्रवण) सीखे गये (गृहीत) वषट्कार के उच्चारण से (वषट्कार=अग्नि में आहुति देने के मन्त्र) जहाँ शुकसमूह मुखरित हो रहा था। अनेकसारिकोद्घुष्यमाण सुब्रह्मण्यम्=अनेक सारिकाओं (मैना) द्वारा जहाँ वेदमन्त्रों का (सुब्रह्मण्य) उच्च स्वर से उच्चारण किया जा रहा था (उद्घुष्यमाण) अरण्यकुक्कुटोपभुज्यमानवैश्वदेववलिपिण्डम्=वन्य मुर्गों के द्वारा (कुक्कुट) जहाँ वैश्वदेवों को (दिये गये) बलि के पिण्डों को खाया जा रहा था (उपभुज्यमान) आसन्नवापीकलहंसपोतभुज्यमाननीवारवलिम्=समीपवर्तिनी बावड़ियों के कलहंसों के बच्चों (पोत) के द्वारा जहाँ नीवार धान्यों के बलि का भक्षण किया जा रहा था। एणीजिह्वापल्लवोपलिह्यमानमुनिबालकम्=मृगियाँ जहाँ अपने जिह्वा रूप पल्लवों द्वारा मुनिबालकों को चाट रही थीं (उपलिह्यमान) (एणी=मृगी) अग्निकार्यार्द्धदग्धसिमसिमायमानकुशसमित्कुसुमम्=हवन में (अग्निकार्य) अधजले (अर्द्धदग्ध) (अतएव) जहाँ कुश समिधा और पुष्प सिम सिम सी ध्वनि कर रहे थे (गीले होने से पुष्प समिधा और कुश पूर्णतया न जलने के कारण सिम सिमा रहे थे) उपलभग्ननारिकेलरसस्निग्धशिलातलम्=पत्थरों द्वारा (उपल) तोड़े गये (भग्न) नारियलों के रस से जहाँ शिलाओं के तल चिकने (स्निग्ध) हो गये थे। अचिरक्षुण्णवल्कलरसपाटलभूतलम्= तत्काल ही (वृक्षों) से निकाले गये अथवा निचोड़े गये (अचिरक्षुण्ण) वल्कलों के रस से जहाँ भूमितल गुलाबी हो रहा था (पाटल=श्वेतरक्त वर्ण का) रक्तचन्दनोपलिप्तादित्यमण्डलनिहितकरवीरकुसुमम्=लाल चन्दन से चित्रित (उपलिप्त) सूर्यमण्डल पर जहाँ लाल कनेर के फूल (करवीकुसुम) चढ़ाये गये थे (निहित)। इतस्ततोविक्षिप्तभस्मलेखालंकृतमुनिजनभोजनभूमिभागम्=जहाँ इधर उधर (इतस्ततः) बिखरी हुई (विक्षिप्त) भस्म की रेखाओं द्वारा मुनियों के भोजन करने के स्थानों को (सीमा निर्धारण द्वारा) सुशोभित कर दिया गया था।

**अनुवाद**—प्रस्तुत गद्यखण्ड के सभी द्वितीयान्त पद 'आश्रमम्' के विशेषण हैं, (वैशम्पायन कहता है कि तब मैंने एक ऐसे आश्रम को देखा) जहाँ गुरुमुखोच्चरित वेदमन्त्रों के पुनः उच्चारण से ब्रह्मचारी जन मुखरित हो रहे थे, निरन्तर सुनने से सीखे हुए वषट्कार के उच्चारण से जहाँ शुकसमूह मुखरित हो रहा था, अनेक सारिकाओं द्वारा जहाँ वेदमन्त्रों का (निरन्तरश्रवणाभ्यासवश) उच्चस्वर से उच्चारण

किया जा रहा था। वन्य मुर्गों के द्वारा जहाँ वैश्वदेव बलि के पिण्डों को खाया जा रहा था। समीपवर्तिनी बावड़ियों के कलहंसों के बच्चों द्वारा जहाँ नीवारधान्यों की बलि को खाया जा रहा था। जहाँ मृगि ां अपने जीभ रूपी पल्लवों से मुनिबालकों को चाट रही थीं। जहाँ हवन में अधजले कुश समिधा और पुष्प (गीले होने के कारण) सिम सिम सी ध्वनि कर रहे थे। पत्थरों से तोड़े गये नारियल के रस से जहाँ शिलाओं के तल चिकने हो रहे थे। तत्काल ही (वृक्षों से निकाल कर) निचोड़े गये बल्कलों के रस से जहाँ भूमितल गुलाबी रंग का हो गया था। रक्त चन्दन से चित्रित सूर्य मण्डल पर जहाँ लाल कनेर के फूल चढ़ाये गये थे। जहाँ इधर उधर बिखेरी हुई भस्म की रेखाओं द्वारा (सीमा निर्धारण की दृष्टि से मुनिजनों के भोजन करने के स्थानों को सुशोभित कर दिया गया था)।

**भावार्थ**—उस आश्रम में कहीं ब्रह्मचारी गुरुमुखोच्चरित वेदमन्त्रों को दुहरा रहे थे, कहीं लगातार सुनते रहने से अभ्यस्त हुए तोते आहुति देने के मन्त्रों को पढ़ रहे थे, कहीं सारिकायें उच्चस्वर से वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रही थीं कहीं वैश्वदेव के बलि-पिण्डों को वन्य मुर्गे खा रहे थे, कहीं पास की बावड़ियों में रहने वाले कलहंसों के बच्चे बलि रूप में दिये गये नीवारधान्यों को खा रहे थे। कहीं मृगियाँ अपनी जीभ से मुनिबालकों को चाट रही थीं। गीले होने के कारण हवन में अधजले कुश फूल और समिधायें सिमसिमा रही थीं। कहीं पत्थरों से तोड़े गये नारियलों के रस से शिलाओं के तल चिकने हो रहे थे। कहीं तत्काल ही वृक्षों से निकालकर निचोड़े गये वल्कलों के रस से भूमितल गुलाबी हो रहा था, कहीं लाल चन्दन से चित्रित सूर्यमण्डल पर लाल कनेर के फूल चढ़ाये गये थे। कहीं मुनिजनों के भोजन स्थानों को इधर उधर बिखरी हुई भस्म-रेखाओं से अलंकृत कर दिया गया था।

**संस्कृत व्याख्या**—गद्यखण्डेस्मिन् द्वितीयान्तपदानि 'आश्रमम्' इत्यस्य विशेषणानि। अध्ययनमुखरवटुजनम्—अध्ययनेन गुरुमुखोच्चारणानन्तरं वेदमन्त्राणामनुच्चारणेन मुखराः शब्दायमानाः वटुजनाः ब्रह्मचारिणः यत्र स तम् तादृशम् आश्रममित्यर्थः। अनवरतश्रवणगृहीत वषट्कारवाचालशुककुलम्—अनवरतं निरन्तरम् श्रवणेन आकर्णनेन गृहीताः शिक्षिता ये वषट्कारा अग्नौ हविर्दानमन्त्राः तैः वाचालं शब्दायमानं शुककुलं शुकसमूहः यत्र स तम् तादृशम्, अनेकसारिकोद्घुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्—अनेकाभिः सारिकाभिः पीतपदाभिः उद्घृष्यमाणाम् उच्चस्वरेण पठ्यमानं सुब्रह्मण्यं वेदः यस्मिन् स तम् तादृशम्, अरण्यकुक्कुटोपभुज्यमानवैश्वदेवबलिपिण्डम्—अरण्यकुक्कुटैः वन्यचरणायुधैः उपभुज्यमानाः भक्ष्यमाणाः वैश्वदेवस्य देवयज्ञस्य बलिपिण्डाः यस्मिन् स तम् तादृशम्, आसन्नवापीकलहंसपोतभुज्यमाननीवारबलिम्=आसन्नवापीनां निकटस्थदीर्घिकाणां ये कलहंसाः=तेषाम् पोताः शिशवः तैः भुज्यमाना भक्ष्यमाणाः नीवाराणाम् मुन्यन्नानां बलयः उपायमानि यस्मिन् स तम् तादृशम्, एणीजिह्वापल्लवोपलिह्यमानमुनिबालकम्—एणीभिः=मगीभिः जिह्वा रसना एव पल्लवाः तैः उपलि-

ह्यमाना: आस्वाद्यमाना प्रेम्णा स्पृश्यमाना इत्यर्थः, मुनीनां बालकाः यस्मिन् स तम् तादृशम्, अग्निकार्यार्द्धदग्धसिमसिमायमानकुशसमित्कुसुमम् अग्निकार्ये हवने अर्धदग्धानि अर्धभस्मीभूतानि अतएव सिमसिमायमानानि सिमसिमेतिध्वनिं कुर्वाणानि कुश-समित्कुसुमानि दर्भसमित्पुष्पाणि यस्मिन् स तादृशम्, उपलभग्ननारिकेलरसस्निग्ध-शिलातलम्—उपलैः प्रस्तरैः भग्नानि अन्यप्रस्तरेषु निधाय मर्दितानि यानि नारिकेलानि लाङ्गलीफलानि तेषां रसैः द्रवैः स्निग्धानि चिक्कणानि शिलातलानि यस्मिन् स तम् तादृशम्, अचिरक्षुण्णवल्कलरसपाटलभूतलम्—अचिरक्षुण्णानां वृक्षेभ्यः तत्कालनिःसारितानां वल्कलानां रसैः निर्यासैः पाटलं श्वेतरक्तं भूतलम् पृथिवीतलं यस्मिन् स तम् तादृशम्, रक्तचन्दनोपलिप्तादित्यमण्डलनिहितकरवीरकुसुमम्—रक्तेन चन्दनेन उपलिप्ते चित्रिते आदित्यमण्डले सूर्यमण्डले निहितानि सूर्याय समर्प्य स्थापितानि करवीरकुसुमानि ह्यमारपुष्पाणि यस्मिन् स तम् तादृशम्, इतस्ततो विक्षिप्तभस्म-लेखालंकृत मुनिजनभोजनभूमिभागम्—इतस्ततः समन्तात् विक्षिप्ताभिः भस्मनाम् भूतीनाम् लेखाभिः पङ्क्तिभिः अलंकृता, सुशोभिताः मुनिजनानां भोजनभूमिभागा यस्मिन् स तम् तादृशम् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—(वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशमेकमाश्रम मपश्यम् यत्र ब्रह्मचारिणो वेदमन्त्रोच्चारणाभ्यासपरा आसन्, शुककुलं निरन्तराकर्णनाभ्यस्तैः हविः समर्पणमन्त्रैः शब्दायमान मासीत्, अनेकसारिकाभिश्च वेदः उच्चस्वरेणाभ्यस्यमान आसीत्, यत्र च वैश्वदेवबलिपिण्डाः वन्यचरणायुधैर्भक्ष्यमाणा आसन्, नीवारबलयश्च यत्र निकटस्थदीर्घिकावासिकलहंसशिशुभिर्भक्ष्यमाणा आसन्, हवनकर्मणि चार्धदग्धानि कुशसमित्पुष्पाणि सिमसिमायमानान्यासन्, प्रस्तरै मर्दितानां लाङ्गलीफलानां द्रवैर्यत्र शिलातलानि चिक्कणान्यासन्, तरुभ्यस्तत्कालनिः सारितवल्कलनिर्यासै र्यत्र पृथिवी-तलं श्वेतरक्तमासीत्, रक्तचन्दनालिखिते सूर्यमण्डले यत्र करवीरकुसुमं सूर्याय समर्प्य स्थापित मासीत्, समन्तात् विक्षिप्ताभिः भस्मपङ्क्तिभि र्यत्र च मुनिजनभोजनभूमि-भागाः समलङ्कृता आसन् ।

**टिप्पणी**—**वषट्कार**—वे वेदमन्त्र जिनके द्वारा अग्नि में हविः समर्पित किया जाता है निरन्तर सुनते रहने से तत्रत्य शुक भी इन मन्त्रों का उच्चारण करने लगे थे । **सुब्रह्मण्यम्**—वेद, वहाँ की सारिकायें भी अभ्यस्त होने के कारण उच्चस्वर से वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रही थीं, **वैश्वदेवपिण्ड**—वैश्वदेव को उद्देश्य कर पंचम प्रहर के अन्त में दी जाने वाली बलि या भेंट । **अरण्यकुक्कुट**—कुक्कुटश्चरणायुधः इत्यमरः । **अचिरक्षुण्ण**—तत्काल ही वृक्षों से निकाले गये वल्कलों के निर्यास से वहाँ का भूमितल श्वेतरक्तवर्ण का हो गया था । एणी = मृगी, जिह्वापल्लव—जीव रूपी पल्लव, **अर्धदग्ध**—गीले होने के कारण कुश, समिधा और पुष्प अर्धदग्ध थे अतएव वे सिमसिमा रहे थे । **शिलातलानि**—शयनार्ह शिलातल चिकने हो गये थे । **करवीर-कुसुम**—लाल कनेर का फूल । **भस्मलेखा**—भूतिर्भसितभस्मनिः इत्यमरः, लेखा= पंक्ति ।

परिचितशाखामृगकराकृष्टयष्टि निष्काश्यमानप्रवेश्यमान जरदन्धतापसम्, इभकरभकार्द्धोपभुक्तपतितैः सरस्वतीभुजलताविगलितैः शङ्खवलयैरिव मृणालशकलैः कल्माषितम्, ऋषिजनार्थमेणकैर्विषाणशिखरोत्खन्यमानविविधकन्दमूलम् अम्बुपूर्णपुष्करपुटैः वनकरिभिरापूर्यमाणविटपालवालकम्, ऋषिकुमारकाकृष्यमाणवनवराह दंष्ट्रान्तराललग्नशालूकम्, उपजातपरिचयैः कलापिभिः पक्षपुटपवनसन्धुक्ष्यमाणमुनिहोमहुताशनम्, आरब्धामृतचरुचारुगन्धम्, अर्धपक्वपुरोडाशपुण्यपरिमलामोदितम्, अविच्छिन्नाज्यधाराहुतिहुतभुग्हुंङ्कारैर्मुखरितम् ।

**शब्दार्थ**—परिचितशाखामृगकराकृष्टयष्टि निष्काश्यमान प्रवेश्यमान जरदन्धतापसम्=परिचित वानर (शाखामृग) (जहाँ) हाथ की छड़ी पकड़कर (कराकृष्टयष्टि) बूढ़े और अन्धे तपस्वियों को (जरदन्धतापसम्) (आश्रम से बाहर ले जा रहे और भीतर ले आ रहे थे (प्रवेश्यमान=भीतर प्रवेश कराना, निष्काश्यमान=बाहर निकालना) इभकरभकार्द्धोपभुक्तपतितैः=हाथियों के बच्चों के द्वारा (इभकरभकैः) अर्धोपभुक्त=आधा खा लेने के बाद गिरे हुए, सरस्वती भुजलताविगलितैः=सरस्वती की भुजलताओं से गिरे हुए, शङ्खवलयैः इव=शंख से बने कंगनों के समान, मृणालशकलैः=मृणाल के टुकड़ों से, कल्माषितम्=चित्रित हो रहा था। ऋषिजनार्थम्=मुनिजनों के लिए, एणकैः=मृगों के द्वारा, विषाणशिखरोत्खन्यमानविविधकन्दमूलम्=(जहाँ) सींगों के अग्रभागों से (विषाणशिखर) अनेक प्रकार के कन्दमूल खोदे जा रहे थे (उत्खन्यमान) अम्बुपूर्णपुष्करपुटैः=जल से भरे हुए सूड़ों (पुष्कर) के अग्रभागों से (पुटैः) वनकरिभिः=जंगली हाथियों के द्वारा, आपूर्यमाणविटपालवालकम्=जहाँ वृक्षों की क्यारियाँ भरी जा रही थीं (आपूर्यमाण=भरी जा रही थीं, विटप=वृक्ष, आलवालक=क्यारियाँ या थाले। ऋषिकुमारकाकृष्यमाण=ऋषिकुमारों द्वारा जहाँ निकाले जा रहे थे, वनवराह दंष्ट्रान्तराललग्नशालूकम्=वन्यशूकरों के जबड़ों के बीच में लगे हुए (लग्न) कमलकन्द (शालूक)। उपजातपरिचयैः=परिचित, कलापिभिः=मयूरों के द्वारा, पक्षपुटपवनसन्धुक्ष्यमाण मुनिहोमहुताशनम्=जहाँ पक्षपुटों की वायु से मुनियों के हवन की अग्नियाँ प्रज्वलित की जा रही थीं। आरब्धामृतचरुचारुगन्धम्=पकाये गये (आरब्ध) घृतयुक्तयवौदनअमृतचरु (एक प्रकार का घृतयुक्त हविष्यान्न) की मनोहर (चारु) सुगन्धि से सुगन्धित। अर्धपक्वपुरोडाशपुण्यपरिमलामोदितम्=(जो कि) आधे पके हुए पुरोडाश (एक प्रकार के हवनीय द्रव्य) के मनोहर सुगन्धि (पुण्यपरिमल) हर्षजनक (आमोदित) था। अविच्छिन्नाज्यधाराहुतिहुतभुग्हुङ्कारमुखरितम्=जो अत्रुटित (लगातार चलने वाली) आज्यधाराहुति=घृत की धार की आहुति से, अग्नि (हुतभुक्) की 'हुम्' ध्वनि (हुङ्कार) से मुखरित था।

**अनुवाद**—(इस गद्यखण्ड के भी सभी पद 'आश्रमम्' के विशेषण है) वैशम्पायन कहता है कि तब मैंने एक ऐसे आश्रम को देखा) जहां परिचित वानर

हाथ की छड़ी पकड़कर बूढ़े और अन्धे तपस्वियों को (आश्रम से) बाहर ले जा रहे और भीतर ले आ रहे थे। जो कि गजों के बच्चों के द्वारा आधे खा लेने के बाद गिरे हुए, सरस्वती की भुजलताओं से गिरे हुए शंख से बने कंगनों के समान, मृणाल के टुकड़ों से चित्रित हो रहा था। ऋषिजनों के लिए जहाँ मृगों द्वारा अपने सींगों के अग्रभागों से अनेक प्रकार के कन्दमूल खोदे जा रहे थे। जहाँ वन्यगजों द्वारा अपने जल से भरे हुए सूड़ों के अग्रभागों से वृक्षों की क्यारियाँ भरी जा रही थीं। ऋषिकुमारों द्वारा जहाँ वन्यशूकरों के जबड़ों के बीच लगे हुए कमलकन्द निकाले जा रहे थे। परिचित मयूरों के द्वारा जहाँ अपने पक्षपुटों की वायु से मुनियों के हवन की अग्नियाँ प्रज्वलित की जा रही थीं। जो कि पकाये गये घृतयुक्त यवौदन की मनोहर गन्ध से सुगन्धित हो रहा था। जो कि आधे पके हुए पुरोडाश के मनोहर सौरभ से हर्षजनक था। (और जो कि) अत्रुटित घृतधार की आहुति से (उत्पन्न) अग्नि की 'हुम्' ध्वनि से मुखरित था।

**भावार्थ**—उस आश्रम में कहीं पर परिचित वानर आश्रम के वृद्ध एवं अन्धे तापसों को उनके हाथ की छड़ी पकड़कर उनको आश्रम के भीतर और बाहर ले जा रहे थे। कहीं वह आश्रम गजशावकों द्वारा आधे खाकर छोड़े गये मृणाल के टुकड़ों से, जो कि सरस्वती के भुजालताओं से गिरे कंगन जैसे प्रतीत होते थे, चित्रित था। कहीं ऋषिजनों के खाने के लिए मृग अपने सींगों की नोंक से विविध कन्दमूल उखाड़ रहे थे। कहीं वृक्षों के थाले वन्यगजों द्वारा अपने जलपूरित शुण्डाग्र-भागों से भर रहे थे, कहीं ऋषिकुमार जंगली शूकरों की दाढ़ों के बीच फँसे हुए कमलकन्दों को निकाल रहे थे तो कहीं परिचित मयूर अपने पंखों की वायु से ऋषियों की हवनाग्नि को प्रज्वलित कर रहे थे, कहीं पकाये गये घृतमिश्रित यवौदन की सुगन्धि फैल रही थी तो कहीं आधे पके हुए पुरोडाश की मनोहर गन्ध हर्षित कर रही थी और कहीं वह आश्रम निरन्तर चलने वाली घृतधार की आहुति से उत्पन्न अग्नि की 'हुम्' ध्वनि से मुखरित हो रहा था।

**संस्कृत व्याख्या**—परिचितशाखामृगकराकृष्टयष्टिनिष्काश्यमानप्रवेश्यमानजरदन्धतापसम्—परिचिता उपजातपरिचया ये शाखामृगाः कपयस्तैः कराकृष्टयष्ट्या हस्ताकर्षितलगुडेन निष्काश्यमानाः केचिदाश्रमाद्बहिरानीयमानाः प्रवेश्यमानाः केचिदभ्यन्तरे नीयमानाश्च जरन्तः परिणतवयसः अन्धा नेत्ररहिताः तापसा तपस्विनः यस्मिन् स तम् (तादृशम् आश्रमम्) इभकरभकार्धोपभुक्तपतितैः—इभकरभकाः गजशावकाः तैः अर्धोपभुक्तैः अर्धचर्वितैः पश्चात् पतितैः तन्मुखेभ्योऽधश्च्युतैः, सरस्वतीभुजलताविगलितैः—सरस्वत्या भारत्या भुजलतायाः बाहुवल्ल्याः समीपादधः विगलितैः पतितैः, शङ्खवयलैः त्रिरेखकटकैरिव, मृणालशकलैः बिसखण्डैः कल्माषितम् चित्रितम्, ऋषिजनार्थम् मुनिजनभक्षणार्थम् एणकैः मृगैः (कर्तृभिः) विषाणशिखरैः शङ्गाग्रभागैः उत्खन्यमानविविधकन्दमूलम्—उत्खन्यमानानि समुत्पाट्यमानानि विविधानि अनेकानि कन्दमूलानि पङ्कजादिमूलानि शालूकानि मूलकादीनि च यस्मिन्

स तं तादृशम्, अम्बुपूर्णपुष्करपुटैः अम्बुभिः सलिलैः पूर्णानि भृतानि यानि पुष्करपुटानि शुण्डादण्डाग्राणि तैः तादृशैः (करणैः) करिभिः गजैः—आपूर्यमाण विटपालवालकम्—आपूर्यमाणानि भ्रियमाणानि विटपानाम् तरुणाम् आलवालकानि आवापस्थानकानि यस्मिन् स तं तादृशम्, ऋषिकुमारकाकृष्यमाणवनवराह दंष्ट्रान्तराललग्नशालूकम्—ऋषिकुमारकैः मुनिजनशिशुभिः आकृष्यमाणानि वहिरानीयमानानि वनवराहाणाम् वन्यशूकराणां दंष्ट्रान्तराललग्नानि दशनाभ्यन्तरसंसक्तानि शालूकानि कमलकन्दाः यस्मिन् स तं तादृशम्, उपजातपरिचयैः परिचितैः कलापिभिः मयूरैः, पक्षपुटपवन सन्धुक्ष्यमाणमुनिहोमहुताशनम्—पक्षपुटपवनेन छदपुटवायुना सन्धुक्ष्यमाणा प्रज्वाल्यमाना मुनीनाम् होमार्थं हुताशनाः अग्नयः यस्मिन् स तं तादृशम्, आरब्धामृतचरुचारुगन्धम्—आरब्धः पचनायप्रवर्तितः यः अमृतचरुः घृतयुक्तयवौदनः तस्य चारुः मनोरमः गन्धः आमोद यस्मिन् तं तादृशम्, अर्धपक्वपुरोडाशपुण्यपरिलामोदितम्=अर्धपक्वः अर्धविविलतिंगतः यः पुरोडाशः हव्यद्रव्यविशेषः तस्य पुण्यपरिमलेन मनोहरसौरभेण आमोदितम् हर्षजननशीलम्, अविच्छिन्नाज्यधाराहुतिहुतभुग्हुङ्कारमुखरितम्—अविच्छिन्ना अत्रुटिता नैरन्तर्येण वाहिनीया आज्यधारा घृतसम्पातः तस्या आहुत्या हवनेन यो हुतभुजः अग्नेः हुङ्कारः 'हुम्' इतिध्वनिः तेन मुखरितम् शब्दायमानम् (तादृशम् आश्रमम्)।

**संस्कृत सरलार्थ**—वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशमाश्रम मपश्यम् यत्र परिचितैः कपिभिः आश्रमवासिनो जरन्तः अन्धाश्चतपस्विनः हस्तार्कापितलगुडेन वहिर्नीयमानाः अभ्यन्तरञ्च प्रवेश्यमाना आसन्, आश्रमश्चासौ भारतीवाहुवल्ली-निपतितैः त्रिरेखकटकैरिव गजशावकोपभुक्तपतितैः विसखण्डैश्चित्रित आसीत्, यत्र च मुनिजनभक्षणार्थं मृगैः स्वश्रृङ्गाग्रभागैः अनेकविधानि कमलादिमूलानि मूलकादीनि च समुत्पाट्यमानान्यासन्, यत्र च विटपानामधः सलिलधारणर्गतानि अरण्यगजैः स्वकीयैः सलिलभृतैः शुण्डाग्रैः भ्रियमाणान्यासन्, अथ च यत्र मुनिशिशुभिः अरण्य-शूकराणां दशनमध्यसंसक्तानि शालूकानि समाकृष्यमाणान्यासन्, परिचितैः मयूरैश्च यत्र मुनिजनहवनाग्नयः स्वकीयेन पक्षपुटवायुना प्रज्वाल्यमाना आसन्, आश्रमश्चासौ पचनाय प्रवर्तितस्य घृतयुक्तयवौदनस्य मनोहरामोदवानासीत्, एवञ्चासौ अर्धपक्व-पुरोडाशस्य मनोहरसौरभेण हर्षजननशील आसीत्, अथ चायमत्रुटिताज्यधाराहुत्या अग्ने 'हुँम्' इति ध्वनिना शब्दायमान आसीत्।

**टिप्पणी**—**परिचितेति**—शाखामृग=वानर, ये वानर आश्रमवासी वृद्ध एवं अन्धे तापसों को उनके हाथों में डंडा पकड़ाकर और एक ओर स्वयं उसे पकड़े बाहर ले जाते और ले आते थे। **इभकरभकेति**—गजशावकों द्वारा आधे चबाकर गिरे हुए मृणालखण्ड, सरस्वती की बाहुलता से गिरे हुए शंखवत् त्रिरेखाकार कटकों के समान लग रहे थे इनसे आश्रमभूमि चित्रित थी; शङ्खवलयैरिवेत्यत्र जात्युत्प्रेक्षा-लंकारः। **कन्दमूलम्**—कमलादि का मूल-कन्द (कमलगट्टा) तथा मूलक आदि को यहाँ मूल कहा गया है—इसी को कन्द, कमलमूल, और शालूक भी कहा जाता है

''शालूक मेषां कन्दः स्यात्'' इत्यमरः। **अम्बुपूर्णपुष्करपुटैः**—जल से भरे हुए गजों के सूँड़ों के अग्रभाग—'पुष्करं करिहस्ताग्रे, शुण्डाग्रत्वस्य पुष्करम्' इत्यमरः। **अमृतचरु**—घृतमिश्रित हविष्यान्न विशेष, अमृतं यज्ञशेषे स्यात् पीयूषे सलिले घृते—कोश। इस प्रकार के चरु को यवौदन भी कहा गया है। **पुरोडाश**—यह एक प्रकार का हवनीय पदार्थ होता है।

**उपचर्य्यमाणातिथिवर्गम्, पूज्यमानपितृदैवतम्, अर्च्यमानहरिहरपितामहम्, उपदिश्यमानश्राद्धकल्पम्, व्याख्यायमानयज्ञविद्यम्, आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्, पठ्यमानविविधपुस्तकम्, विचार्यमाणसकलशास्त्रार्थम्, आरम्यमाणपर्णशालम्, उपलिप्यमानाजिरम्, उपमृज्यमानोटजाभ्यन्तरम्, आवध्यमानध्यानम्, साध्यमानमन्त्रम्, अभ्यस्यमानयोगम्, उपह्रियमाणवनदेवतावलिम्, निर्वर्त्यमानमौञ्जमेखलम्, प्रक्षाल्यमानवल्कलम्, उपसंग्रह्यमाणसमिधम्, संस्क्रियमाणकृष्णाजिनम्, ग्रह्यमाणगवेधुकम्, शोष्यमाणपुष्करबीजम् ग्रथ्यमानाक्षमालम्, ग्रह्यमाणत्रिपुण्ड्रकम्, न्यस्यमानवेत्रदण्डम्, आपूर्य्यमाणकमण्डलुम्।**

शब्दार्थ—उपचर्यमाणातिथिवर्गम्=जहाँ अतिथिजनों का सत्कार किया जा रहा था। पूज्यमानपितृदैवतम्=जहाँ पितरों और देवताओं की (श्राद्ध, षोडशोपचारादि से) पूजा की जा रही थी। अर्च्यमानहरिहरपितामहम्=जहाँ विष्णु (हरि), शिव (हर) एवं ब्रह्मा (पितामह) की अर्चना की जा रही थी। उपदिश्यमानश्राद्धकल्पम्=जहाँ (आश्वलायन आदि निर्दिष्ट) श्राद्ध विधि का उपदेश किया जा रहा था। व्याख्यायमानयज्ञविद्यम्=जहाँ (दार्शपौर्णमासादि यज्ञविधायक) शास्त्र की प्रसंगानुकूल अर्थ द्वारा व्याख्या की जा रही थी। आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्=मन्वादिप्रणीत धर्मशास्त्रों की विचारपूर्वक समीक्षा की जा रही थी, पठ्यमान विविधपुस्तकम्=अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जा रही थीं। विचार्यमाणसकलशास्त्रार्थम्=सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थों पर युक्तिपूर्वक विचारविमर्श किया जा रहा था। आरभ्यमाणपर्णशालम्=पर्णशालाओं का निर्माण आरम्भ किया जा रहा था। उपलिप्यमानाजिरम्=गोमयादि से आंगन लीपे जा रहे थे। शोधिनी आदि के द्वारा पर्णशालाओं के भीतरी भाग स्वच्छ परिष्कृत किये जा रहे थे, आवध्यमानध्यानम्=ध्यान लगाया जा रहा था। साध्यमानमन्त्रम्=हवनजपादि के द्वारा मन्त्रों को सिद्ध किया जा रहा था। अभ्यस्यमानयोगम्=चित्तवृत्तिनिरोधात्मक योग का अभ्यास किया जा रहा था। उपह्रियमाणवनदेवतावलिम्=वनाधिष्ठातृ देवताओं के लिए बलि अर्थात् पूजा की वस्तुयें समर्पित की जा रही थीं। निर्वर्त्यमानमौञ्जमेखलम्=जहाँ मूंज नामक घास की मेखलायें बनाई जा रही थीं। प्रक्षाल्यमानवल्कलम्=वल्कल वस्त्र जल से धोये जा रहे थे। उपसंगृह्यमाणसमिधम्=समिधायें (हवन की लकड़ियों का संग्रह किया जा रहा था। संस्क्रियमाणकृष्णाजिनम्=कृष्णसार मृगों के चर्म को विशुद्ध किया जा रहा था। गृह्यमाणगवेधुकम्=गवेधुक नामक

जंगली धान्य या कन्द इकट्ठा किया जा रहा था। शोष्यमाण पुष्करबीजम्= कमलों के बीज या कमलगट्टे धूप में सुखाये जा रहे थे। ग्रथ्यमानाक्षमालम्= रुद्राक्ष मालायें गूँथीं जा रही थीं। गृह्यमाणत्रिपुण्ड्रकम्= भस्म के रेखात्रयात्मक तिलक (पुण्ड्र) धारण किये जा रहे थे। न्यस्यमानवेत्रदण्डम्= बेंतों के डंडे (दूर से लाकर) रखे जा रहे थे। आपूर्यमाणकमण्डलुम्= जहाँ कमण्डलु भरे जा रहे थे।

**अनुवाद**—(वैशम्पायन कहता है कि मैंने ऐसे एक आश्रम को देखा) जहाँ अतिथिजनों का सत्कार किया जा रहा था, पितरों और देवताओं की (श्राद्धषोडशोपचारादि से पूजा की जा रही थी)। विष्णु, शिव और ब्रह्मा की अर्चना की जा रही थी। (आश्वलायन आदि से निर्दिष्ट) श्राद्धविधि का उपदेश किया जा रहा था। यज्ञविधायक शास्त्रों की अर्थ द्वारा व्याख्या की जा रही थी। धर्मशास्त्रों की समीक्षा की जा रही थी, अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जा रही थीं, सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थों पर युक्तिसंगत विचार-विमर्श किया जा रहा था, पर्णशालाओं का निर्माण आरम्भ किया जा रहा था, आंगन लीपे जा रहे थे, पर्णशालाओं के भीतरी भाग स्वच्छ किये जा रहे थे, ध्यान लगाया जा रहा था, मन्त्रों को सिद्ध किया जा रहा था, योगाभ्यास किया जा रहा था, वन-देवताओं के लिए बलि समर्पित की जा रही थी, मूँज की मेखलायें बनाई जा रही थीं, वल्कल धोये जा रहे थे, समिधाओं का संग्रह किया जा रहा था, कृष्ण मृगों के चर्म को शुद्ध किया जा रहा था, गवेधुक नामक धान्य या कन्द को एकत्र किया जा रहा था, कमलों के बीज सुखाये जा रहे थे, रुद्राक्ष मालायें गूँथी जा रही थीं, त्रिपुण्ड्र धारण किये जा रहे थे, वेतसदण्ड (पृथिवी) पर रखे जा रहे थे, और जहाँ कमण्डलु भरे जा रहे थे।

**भावार्थ**—उस आश्रम में कहीं अतिथियों का सत्कार हो रहा था, कहीं पितृदेवों की पूजा और कहीं ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अर्चना हो रही थी। कहीं श्राद्ध विधि का उपदेश और कहीं यज्ञ विधायक शास्त्रों का व्याख्यान हो रहा था, कहीं धर्मशास्त्रों की समीक्षा थी तो कहीं पुस्तकों का पाठ हो रहा था। कहीं सकल शास्त्रों के अर्थों की विचारणा थी तो कहीं पर्णशालाओं का नवनिर्माण आरम्भ किया जा रहा था, कहीं आंगन लीपे जा रहे थे तो कहीं झोपड़ियों के मध्य भाग स्वच्छ किये जा रहे थे। कहीं ध्यान लगाया जा रहा था तो कहीं मन्त्र साधना हो रही थी, कहीं योगाभ्यास किया जा रहा था तो कहीं वनदेवताओं को बलि दी जा रही थी। कहीं मूँज की मेखलायें बनाई जा रही थीं तो कहीं वल्कल धोये जा रहे थे, कहीं समिधाओं का संग्रह किया जा रहा था तो कहीं कृष्ण मृग चर्म संस्कृत किये जा रहे थे, कहीं त्रिपुण्ड्र लगाये जा रहे थे तो कहीं गवेधुक धान्य एकत्र किये जा रहे थे, कहीं कमलबीज सुखाये जा रहे थे तो कहीं रुद्राक्ष मालायें गूँथी जा रही थीं कहीं वेतसदण्ड रखे जा रहे थे तो कहीं कमण्डलु भरे जा रहे थे।

**संस्कृत व्याख्या**—उपचर्यमाणातिथिवर्गम्—उपचर्यमाणः सत्क्रियमाणः अतिथीनाम् अभ्यागतानां वर्गः समूहः यत्र स तम् तादृशम् (आश्रमम्, पूज्यमानपितृदैवतम्—

पूज्यमानानि श्राद्धादिना षोडशोपचारादिना च अर्च्यमानानि पितृदैवतानि पितरः देवताश्च यत्र स तम्. अर्च्यमानहरिहरपितामहम्—अर्च्यमानाः पूज्यमानाः हरिः विष्णुः हरः शंकरः पितामहः प्रजापतिश्च एते यत्र स तं तादृशम्, उपदिश्यमानश्राद्धकल्पम्—उपदिश्यमानः सम्यक् बोध्यमानः श्राद्धकल्पः आश्वलायनादिरचितः श्राद्धविधिः यस्मिन् स तम तादृशम्, व्याख्यायामानयज्ञविद्यम्—व्याख्यायमाना प्रसङ्गानुकूलार्थद्वारा प्रतिपाद्यमाना यज्ञविद्या पौर्णमासादियज्ञविधिबोधकं शास्त्रम् यत्र स तं तादृशम्, आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्—आलोध्यमानानि समीक्षया विचार्यमाणानि धर्मशास्त्राणि मन्वादिप्रणीतधर्मशास्त्राणि यत्र स तं तादृशम्, पठ्यमानविविधपुस्तकम्—पठ्यमानानि अधीयमानानि विविधानि अनेकविधानि पुस्तकानि यत्र स तं तादृशम्, विचार्य्यमाणसकलशास्त्रार्थम्—विचार्य्यमाणाः युक्तिपूर्वकं व्याख्यायमानाः सकलशास्त्रार्थाः समस्तशास्त्रविषयाः यत्र स तं तादृशम्, आरभ्यमाणपर्णशालम्—आरभ्यमाणा निर्मातुं प्रवर्त्यमानाः पर्णशालाः उटजाः यस्मिन् स तं तादृशम्, उपलिप्यमानाजिरम्—उपलिप्यमानानि गोमयादिना संस्क्रियमाणानि अजिराणि उटजप्राङ्गणानि यत्र स तं तादृशम्, उपभृज्यमानोटजाभ्यन्तरम्—उपमृज्यमानानि शोधन्यादिभिः परिस्क्रियमाणानि उटजानाम् पर्णशालानाम् अभ्यन्तराणि मध्यभागाः यस्मिन् स तं तादृशम्, आवध्यमानध्यानम्—आवध्यमानं क्रियमाणं ध्यानम् यत्र स तं तादृशम्, साध्यमानमन्त्रम्—जपहवनादिभिः सिद्धि नीयमाना मन्त्राः यस्मिन् स तं तादृशम् अभ्यस्यमानयोगम्—अभ्यस्यमानः पुनः पुनः विधीयमानः योगः चित्तवृत्तिनिरोधः यत्र स तं तादृशम्, उपह्रियमाणवनदेवताबलिम्—उपह्रियमाणाः प्रदीयमानाः वनदेवताभ्यः वलयः पूजावस्तूनि यस्मिन् स तं तादृशम्, निर्वर्त्यमानमौञ्जमेखलम्—निर्वर्त्यमाना निष्पाद्यमाना मौञ्जमेखला मुञ्जनिर्मिता मेखला यत्र स तं तादृशम्, प्रक्षाल्यमानवल्कलम्—प्रक्षाल्यमानं जलेन स्वच्छीक्रियमाणं वल्कलं यत्र स तं तादृशम्, उपसंगृह्यमाणसमिधम्—उपसंगृह्यमाणा उपसमादीयमानाः समिधः हवनीयैधांसि यत्र स तं तादृशम्, संस्क्रियमाणकृष्णाजिनम्—संस्क्रियमाणं शुद्धीक्रियमाणं कृष्णाजिनं कृष्णमृगचर्म यत्र स तं तादृशम्, गृह्यमाणगवेधुकम्—गृह्यमाणा उपादीयमाना गवेधुका धान्यविशेषाः कन्दा वा यत्र स तं तादृशम्, शोष्यमाणपुष्करबीजम्—शोष्यमाणानि सूर्यातपेन शुष्कतां नीयमानानि पुष्करवीजानि कमलवीजानि कमलफलानि वा यत्र स तं तादृशम्, ग्रथ्यमानाक्षमालम्—ग्रथ्यमाना ग्रन्थिं प्राप्य विरच्यमाना अक्षमाला रुद्राक्ष माला यस्मिन् स तं तादृशम्, गृह्यमाणत्रिपुण्ड्रकम्—गृह्यमाणं मस्तके धार्यमाणं त्रिपुण्ड्रकम् भस्मना रेखात्रयात्मकतिलकं यत्र स तं तादृशम्, न्यस्यमानवेत्रदण्डम्—न्यस्यमाना दूरादागत्य भूमौ स्थाप्यमाना वेत्रदण्डाः वेतसलगुडाः यत्र स तं तादृशम्, आपूर्यमाणकमण्डलुम् आपूर्यमाणा जलेन भ्रियमाणाः कमण्डलवः यत्र स तं तादृशम् ।

**संस्कृत सरलार्थ**—(वैशम्पायनः कथयति यदहं तादृशमेकमाश्रम मपश्यम्) यत्राभ्यागतसमूहः सत्क्रियमाणः आसीत्, पितरः देवताश्च अर्च्यमाना आसन्, विष्णुः

महेश्वरः पितामहश्चैते यत्र पूज्यमाना आसन्, आश्वलायनादिनिर्दिष्टः श्राद्धविधिर्यत्रोपदिश्यमान आसीत्, यज्ञविधायकानि शास्त्राणि च यत्रार्थद्वारा व्याख्यायमानान्यासन्, मन्वादिप्रणीतधर्मशास्त्राणि च विचार्य्यमाणान्यासन्, बहुविधपुस्तकानि च यत्र अधीयमानान्यासन्, समस्तवेदादिशास्त्रविषया यत्र सयुक्तिकम् विचार्य्यमाणा आसन्, पर्णशालाश्च यत्र निर्मातुं प्रवर्त्यमाना, प्राङ्गणानि च गोमयादिना संस्क्रियमाणान्यासन्, पर्णशाला मध्यभागाश्च यत्र शोधन्यादिभिः परिस्क्रियमाणा आसन्, यत्र ध्यानं विधीयमानमासीत्, मन्त्रश्च यत्र सिद्धिं नीयमान आसीत्, चित्तवृत्तिनिरोधात्मको योगश्च यत्र मुहुर्मुहुः क्रियमाण आसीत्, वनदेवताभ्यः पूजावस्तूनि प्रदीयमानान्यासन्, मुञ्जनिर्मिता मेखलाश्च यत्र निष्पाद्यमाना आसन्, वल्कलवस्त्राणि च यत्र जलेन निर्मलीक्रियमाणानि, हवनीयैधांसि च समुपादीयमानान्यासन्, कृष्णमृगचर्म यत्र विशुद्धीक्रियमाणमासीत्, गवेधुकेत्याख्याता धान्यविशेषा उपादीयमाना आसन्, कमलफलानि च यत्र सूर्यातपेन शुष्कतां प्राप्यमाणान्यासन्, रुद्राक्षमालाश्च यत्र ग्रन्थिबन्धविधिना विरच्यमाना आसन्, भस्मना रेखात्रयात्मकं तिलकञ्च भालस्थले धार्यमाण मासीत्, दूरादागत्य च यत्र भूमौ वेतसलगुडाः स्थाप्यमानाः कमण्डलवश्च जलेन भ्रियमाणा आसन् ।

**टिप्पणी**—पितामह=ब्रह्मा, **श्राद्धकल्पम्**—श्राद्धविधि, उपमृज्यमान=स्वच्छ किये जाते हुए, अजिर=आंजन "अजिर चत्वरोङ्गणम्" उपसंगृह्यमाण=एकत्रित की जाती हुई, गवेधुक=एक प्रकार का जंगली धान्य, पुष्करबीज=कमलफल, शोष्यमाण=सुखाये जाते हुए, ग्रथ्यमान=गूंथी जाती हुई । त्रिपुण्ड्र=तीन रेखाओं का तिलक ।

**अदृष्टपूर्वं कलिकालस्य, अपरिचितमनृतस्य, अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य, अब्जयोनिमिव त्रिभुवनवन्दितम्, असुरारिमिव प्रकटितवराहनरसिंहरूपम्, सांख्यमिव कपिलाधिष्ठितम्, मथुरोपवनमिव बलावलीढदर्पितधेनुकम्, उदयनमिवानन्दितवत्सकुलम्, किंपुरुषाधिराज्यमिव मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमानद्रुमम्, निदाघसमयावसानमिव आसन्नजलप्रपातम्, जलधरसमयमिव वनगहनमध्यसुखसुप्तहरिम्, हनूमन्तमिव शिलाशकलप्रहारसञ्चूर्णिताक्षास्थिसञ्चयम्, खाण्डवविनाशोद्यतार्जुनमिव प्रारब्धाग्निकार्यम्, सुरभिविलेपनधरमपि सततािवभूतधूमगन्धम्, मातङ्गकुलाध्यासितमपि पवित्रम्, उल्लसितधूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम्, परिपूर्णद्विजपतिमण्डलसनाथमपि सदासन्निहिततरुगहनान्धकारम्, अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोक माश्रममपश्यम् ।**

शब्दार्थ—अदृष्टपूर्वम् कलिकालस्य=कलियुग को जिसमें पहले (कभी) नहीं देखा गया था अर्थात् जो कलियुग के प्रवेश योग्य नहीं था अर्थात् वहाँ सर्वथा अधर्म का अभाव था। अपरिचितमनृतस्य—जो असत्य द्वारा अपरिचित था, अर्थात् जहाँ सदा सत्याचरण ही होता था, अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य=जिसमें कामदेव को पहले (कभी) नहीं सुना गया था, अर्थात् जहाँ काम जन्य विकार कभी उत्पन्न नहीं होते थे। अब्जयोनिम् इव त्रिभुवनवन्दितम्, जो प्रजापति ब्रह्मा (अब्जयोनि) के समान तीनों लोकों द्वारा पूजित था, असुरारिमिव प्रकटितवराह नरसिंहरूपम्—जो कि वराहावतार (वराह) और नरसिंहावतारों के स्वरूपों को प्रकट करने वाले विष्णु (असुर+अरि) के समान। शूकर (वराह) मनुष्य (नर) सिंह और मृगों (रूप) को प्रकट करने वाला था, सांख्यमिव कपिलाधिष्ठितम्—कपिल मुनि द्वारा प्रणीत (अधिष्ठित) सांख्यदर्शन के समान, जो कि कपिला (स्वर्णाकृतिमती) गायों द्वारा आश्रित (अधिष्ठित) था, मधुरोपवनमिव बलावलीढदर्पितधेनुकम्—शारीरिक शक्तिशाली (बलावलीढ) (अतएव) गर्वशाली (दर्पित) धेनुक नामक दैत्य से युक्त मथुरा नगरी के उपवन के समान, जो कि शारीरिक बलशालिनी और गर्वशालिनी धेनुओं (नवप्रसूता गायों) से युक्त था, उदयनमिवानन्दितवत्सकुलम्—वत्स नामक वंश को आनन्दित करने वाले राजा उदयन के समान, जो कि बछड़ों के झुण्ड को (वत्सकुल) आनन्दित करने वाला था। किं पुरुषाधिराज्यमिव मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमानद्रुमम्—मुनिजनों द्वारा (हाथों में) लिये गये कलशों से (जिसमें) द्रुम नामक राजा का अभिषेक किया गया था ऐसे किन्नरों (किं पुरुष) के अधिराज्य के समान, जहाँ मुनिजनों द्वारा गृहीत जलघटों से द्रुमों (वृक्षों) को सींचा जा रहा था, निदाघसमयावसानमिव आसन्नजलप्रपातम्—समीपवर्ती मेघजल वर्षण वाले (आसन्नजलप्रपात) ग्रीष्मकाल (निदाघसमय) के अन्त (अवसान) के समान, जो कि समीपवर्ती बावड़ी के जल (जल) और निर्झरों (प्रपात) वाला था, जलधरसमयमिव वनगहनमध्यसुखसुप्तहरिम्—जिसमें गहरे (गहन) (क्षीर सागर) के जल में (वन) भगवान् विष्णु (हरि) सुखपूर्वक शयन करते हैं ऐसे वर्षाकाल (जलधर समय) के समान, जहाँ वन के गहन अर्थात् गह्वर प्रदेशों के मध्य सुखपूर्वक सिंह सो रहे थे। हनूमन्तमिव शिलाशकलप्रहारसञ्चूर्णिताक्षास्थिसञ्चयम्—शिला खण्डों (शकल) के प्रहारों से (रावण पुत्र) अक्षयकुमार की हड्डियों के समूह को चूर-चूर कर देने वाले वायुपुत्र हनूमान् के समान, जो कि शिला खण्डों के प्रहारों से तोड़े गये (अर्थात् तेल प्राप्त करने के लिए पीसे गये) अक्षों अर्थात् बहेड़ा (विभीतक) के फलों की अस्थियों अर्थात् आन्तरिक भागों के समूह (सञ्चय) वाला था, खाण्डवविनाशोद्यतार्जुनमिव प्रारब्धाग्निकार्यम्=अग्निसन्तर्पण का उपक्रम कर चुकने वाले खाण्डव नामक वन को नष्ट करने के लिए तत्पर अर्जुन के समान जिसमें अग्नि कार्य अर्थात् हवन आदि आरम्भ किया गया था, सुरभिविलेपनधरमपि

सतताविर्भूतधूमगन्धम्=सुगन्धित (सुरभि) चन्दनादि का लेप (अङ्गरागादि) को धारण करने वाला होकर भी जो निरन्तर धुएँ को गन्ध को प्रकट करने वाला था, सुगन्धित द्रव्य से धूमगन्ध प्रकट होने में विरोध है अतः इसके परिहारार्थ निम्नलिखित अर्थ ग्रहण किया जायेगा—गौ के (सुरभि) गोमय (विलेपन=लीपना) वाली अर्थात् गौ के गोमय से उपलिप्त पृथिवी (धरा) वाले भी इसमें निरन्तर हवनीयाग्नि के धूम की सुगन्धि प्रकट होती रहती थी। मातङ्गकुलाध्यासितमपि पवित्रम्—अन्त्यजसमूह से आश्रित होकर भी जो पवित्र था, इस विरोध के परिहार के लिए मातङ्गकुल का अर्थ गजसमूह लिया जायेगा। उल्लसितधूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम्=ऊपर उदित हुए सैकड़ों धूमकेतुओं (उत्पातग्रहों) वाला होकर भी जो पूर्णशान्त विघ्नों वाला था, उक्त विरोध परिहारार्थ—धूमकेतु का अर्थ—अग्नि समूह लिया जायेगा—अनेक प्रज्वलित अग्नियों वाला भी जो प्रशान्त उपद्रवों वाला था, परिपूर्णद्विजपतिमण्डलसनाथमपि सदा सन्निहिततरुगहनान्धकारम्=परिपूर्ण चन्द्रमण्डल (द्विजपतिमण्डल) से युक्त (सनाथ) होकर भी जो सर्वदा समीपवर्ती सघन वृक्षों से अन्धकार वाला था, चन्द्रमण्डल से युक्त होकर भी अन्धकारमय होने में विरोध का परिहार, परिपूर्ण द्विजपतिमण्डल का अर्थ—ज्ञानपूर्ण उत्तमब्राह्मणों का समूह, ग्रहण करके किया जायेगा। अतिरमणीयम्=अत्यन्त मनोहर, अपरं ब्रह्मलोकमिव=दूसरे ब्रह्मलोक के समान, आश्रमम् अपश्यम्=आश्रम को देखा।

**अनुवाद**—(वैशम्पायन कहता है कि मैंने एक ऐसे आश्रम को देखा) जिसमें कलियुग को पहले (कभी) नहीं देखा गया था अर्थात् वहाँ सर्वथा अधर्माभाव होने के कारण कलियुग का प्रवेश नहीं हो सकता था। जो असत्य द्वारा अपरिचित था अर्थात् जहाँ सदा सत्याचरण ही होता था। जिसमें कामदेव को कभी पहले नहीं सुना गया था अर्थात् जहाँ कामजन्य विकार कभी उत्पन्न ही नहीं होते थे। जो प्रजापति ब्रह्मा के समान तीनों लोकों द्वारा पूजित था। जो वराहावतार और नृसिंहावतार के स्वरूपों को प्रकट करने वाले विष्णु के समान शूकर मनुष्य और सिंह तथा मृगों को प्रकट करने वाला था। कपिल मुनि द्वारा प्रणीत सांख्यदर्शन के समान जो कपिला गायों द्वारा आश्रित था, शारीरिक शक्तिशाली अतएव गर्वित धेनुक नामक दैत्य से युक्त मथुरा नगरी के उपवन के समान, जो शारीरिक बलशालिनी और गर्वशालिनी नवप्रसूता गायों से युक्त था। वत्स नामक वंश को आनन्दित करने वाले राजा उदयन के समान जो बछड़ों के झुण्ड को आनन्दित करने वाला था। मुनिजनों द्वारा (हाथों में) लिये गये कलशों से जिसमें द्रुमनामक राजा का अभिषेक किया गया था ऐसे किन्नरों के अधिराज्य के समान, जहाँ मुनिजनों द्वारा गृहीत जलघटों से वृक्षों को सींचा जा रहा था। समीपवर्ती मेघजलवर्षण वाले ग्रीष्मकाल के अन्त के समान जो समीपवर्ती बावड़ी के जल और निर्झरों वाला था। जिसमें

गहरे क्षीरसागर के जल में भगवान् विष्णु सुखपूर्वक शयन करते हैं, ऐसे वर्षाकाल के समान जहाँ वन के गह्वर प्रदेशों के मध्य सुखपूर्वक सिंह सो रहे थे। शिला खण्डों के प्रहारों से (रावण पुत्र) अक्षयकुमार की हड्डियों के समूह चूर-चूर कर देने वाले (वायु पुत्र) हनूमान् के समान जो शिला खण्डों के प्रहारों से तोड़े गये (अर्थात् तेल प्राप्त करने के लिए पीसे गये) वहेड़ा के फलों के आन्तरिक भागों के समूह वाला था, अग्नि सन्तर्पण का उपक्रम कर चुकने वाले खाण्डव नामक वन को नष्ट करने के लिए तत्पर अर्जुन के समान जिसमें हवनादि अग्नि कार्य आरम्भ किया गया था, सुगन्धित चन्दनादि के लेप को धारण करने वाला होकर भी जो निरन्तर धुएँ की गन्ध को प्रकट करने वाला था (यहाँ विरोध परिहारार्थ, गौ के गोमय से उपलिप्त पृथिवी वाले भी इसमें निरन्तर हवनीयाग्नि के धूम की सुगन्धि प्रकट होती रहती थी।) अन्त्यजसमूह से आश्रित होकर भी जो पवित्र था, (यहाँ विरोधपरिहारार्थ—मातङ्गकुल का अर्थ गजसमूह लिया जायेगा) ऊपर उदित हुए सैकड़ों धूमकेतुओं वाला होकर भी जो पूर्णशान्त विघ्नों वाला था, (विरोधपरिहारार्थ—अग्निसमूह लिया जायेगा) परिपूर्ण चन्द्रमण्डल से युक्त होकर भी जो सर्वदा समीपवर्ती सघन वृक्षों से अन्धकार वाला था (विरोध परिहारार्थ—यहाँ परिपूर्ण द्विजपतिमण्डल का अर्थ—ज्ञानपूर्ण उत्तम ब्राह्मणों का मण्डल, लिया जायेगा) अत्यन्त मनोहर दूसरे ब्रह्मलोक के समान आश्रम को देखा।

भावार्थ—वह आश्रम इतना धार्मिक, सत्याचरण करने वाला तथा काम-विकारों से रहित था कि कलियुग ने उसे कभी देखा भी न था, असत्य और कामदेव वहाँ कभी सुने भी न गये थे। वह प्रजापति के समान लोकत्रय से पूजित था, भगवान् विष्णु ने जिस प्रकार नृसिंह और वाराह रूप प्रकट किये थे उसी प्रकार उस आश्रम में भी मनुष्य, सिंह, शूकर और मृग पाये जाते थे। सांख्यदर्शन प्रणेता कपिल मुनि की भाँति ही वहाँ अनेक कपिला गायें थीं, जैसे मथुरा के उपवन में बलवान और घमण्डी धेनुक दैत्य रहता था उसी प्रकार वहाँ अनेक बलवती और मस्त नवप्रसूता गायें थीं। राजा उदयन जिस प्रकार अपने वत्सकुल को सुखी बनाने वाला था उसी प्रकार वहाँ बछड़ों के झुण्ड सुख से विचरते थे। किन्नरों के राज्य में जिस प्रकार मुनिजनों ने जलकलशों से द्रुम नामक राजा का अभिषेक किया था उसी प्रकार वहाँ मुनिजन जलघटों से वृक्षों को सींचा करते थे। ग्रीष्मकाल के अन्त में जिस प्रकार जलप्रपात (वर्षा) होती है उसी प्रकार वहाँ आश्रम के पास बावड़ियों का जल और झरने थे। वर्षाकाल में भगवान् विष्णु सागर के जल के मध्य सुख-पूर्वक शयन करते हैं इसी प्रकार आश्रम में घने वन के मध्य सिंह सुखपूर्वक सोते थे। पत्थरों के टुकड़ों के प्रहारों से रावणपुत्र अक्षयकुमार की हड्डियों को तोड़ देने वाले हनुमान के समान ही वहाँ तेल निकालने के लिए बहेड़ों के फलों के

आन्तरिक भाग पत्थरों के टुकड़ों से तोड़ दिये जाते थे। खाण्डव वन को जलाने में अग्नि को सहायता देने वाले अर्जुन के समान वहाँ आश्रम में मुनिजन हवनादि अग्नि कार्य कर रहे थे। गौ के गोबर से लिप्त इस आश्रम में निरन्तर होम के धुओं से सुगन्धि निकला करती थी, मतवाले हाथियों के रहने पर भी वह पवित्र था, अनेक ऊपर चमकते हुए धूमकेतुओं (पुच्छल तारे और अग्नि समूह) के होने पर भी वहाँ सभी उपद्रव शान्त थे तथा वहाँ (चन्द्रमण्डले और उत्तमब्राह्मण समूह) के होते हुए भी वहाँ सदा समीपवर्ती सघन वृक्षों के झुरमुटों में अन्धकार बना रहता था।

**संस्कृत व्याख्या**—अदृष्टपूर्वं कलिकालस्य = कलिकालस्य कलियुगस्य अदृष्टम् अनवलोकितं पूर्वं यस्मिन् स तं तादृशम् (आश्रमम्) अपरिचितमनृतस्य=अनृतस्य असत्यस्य अपरिचितम् नासीत् तत्र परिचयः सदैव सत्याचारात्। अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य= अनङ्गस्य कामस्य अश्रुतपूर्वम् अनाकर्णितपूर्वं यत्र, कामजनितविकारानुपलब्धेः। अब्जयोनिमिव त्रिभुवनवन्दितम्=प्रजापतिमिव लोकत्रयपूजितम्, असामान्यधर्मस्थानत्वात्। असुरारिमिव=असुराणाम् अरिः शत्रुः विष्णुः तमिव, प्रकटितवराहनरसिंहरूपम्—प्रकटिते प्रकाशिते वराहनरसिंहयोः वराहावतारनृसिंहावतारयोः रूपे आकृती येन स तम्, पक्षे—प्रकटितानि प्रकाशमानीतानि वराहाः शूकराः नराः मनुष्याः सिंहाः रूपाणि मृगाः च येन स तं तादृशम्। सांख्यमिव=साख्यं कपिलमुनिप्रणीतं दर्शनम् तदिव, कपिलाधिष्ठितम्—कपिलाख्येन मुनिना अधिष्ठितम् आश्रितम् तत्प्रणीतत्वात्, पक्षे—कपिलाभिः स्वर्णवर्णाभिः गोभिः अधिष्ठितम्—युक्तम्। मथुरोपवनमिव= मथुरेत्याख्यया प्रसिद्धायाः नगर्याः उपवनम् अरण्यमिव, वलावलीढदर्पितधेनुकम्=वलावलीढः शक्तिसमन्वितः दर्पितः गर्वयुक्तः च धेनुकः एतदाख्यः दैत्यः यस्मिन् स तम्, पक्षे—वलावलीढाः शारीरिक शक्तिसमन्विताः अतएव दर्पिताः संजातगर्वाः धेनुका धेनवः नवप्रसवा गावः यस्मिन् त तादृशम्। उदयनमिवानन्दितवत्सकुलम्=उदयनः एतत्संज्ञकः पाण्डववंशोद्भवः कौशाम्बीनृपः तमिव, आनन्दितवत्सकुलम्=आनन्दितम्-स्वसदाचरणप्रजापालनादिकार्येण सन्तोषितं वत्सकुलम् वत्साख्यप्रान्तीयप्रजाजनम् येन तम्, पक्षे—आनन्दितम् तृणसलिलदानादिना परितोषितम् वत्सकुलम् गोवत्ससमूहः यत्र तं तादृशम्। किम्पुरुषाधिराज्यमिव=किम्पुरुषाणां किन्नराणाम् अधिराज्यम् प्रभुतासम्पन्नराज्यम् इव, मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमानद्रुमम्=मुनिजनैः गृहीताः स्वहस्तेषुअवधृता ये कलशाः सलिलघटाः तैः अभिषिच्यमानः अभिषेकं प्राप्यमाणः द्रुमः द्रुमसंज्ञकः नृपः यत्र तत्, पक्षे—मुनिजनगृहीतकलशैः अभिषिच्यमानाः सेचनं प्राप्यमाणाः द्रुमाः वृक्षा यत्र तं तादृशम्। निदाघसमयावसानमिव—निदाघसमयस्य ग्रीष्मकालस्य अवसानम् समाप्तिः इव, आसन्नजलप्रपातम् =आसन्नः समीपवर्ती जलप्रपातः मेघजलवर्षणम् यस्य तत्, पक्षे—आसन्नः निकटस्थः

जलप्रपातः निर्झरः यस्य तत् अथवा आसन्नो जलं वापीजलं प्रपातः निर्झरः च यस्य तत् तादृशम् । जलधरसमयमिव—जलधरसमयः वर्षाकालस्तमिव, वनगहनमध्यसुखसुप्तहरिम्=वनस्य क्षीरसागरजलस्य गहने गह्वरवद्गम्भीरे मध्ये अन्तः सुखेनसुखं सुप्तः निद्रांगतः हरिः विष्णुः यस्मिन् तम्, पक्षे—वने कानने यद् गहनं गह्वरं तस्य मध्ये तदन्तरे सुखेन अशङ्कितमनसा सुप्ताः निद्रिताः हरयः सिंहाः यत्र तं तादृशम् । हनूमन्तमिव पवनपुत्रं हनूमन्तमिव—शिलाशकलप्रहारसञ्चूर्णिताक्षास्थिसञ्चयम्—शिलाशकलानां प्रस्तरखण्डानां प्रहारेण निपातनेन सञ्चूर्णितः भञ्जितः अक्षस्य अक्षसंज्ञकस्य रावणपुत्रस्य अस्थिसञ्चयः अस्थिसमूहः येन तम्, पक्षे—शिलाशकलनिपातेन पाषाणखण्डाघातेन सञ्चूर्णितः तैलावाप्तये पिष्टः अक्षाणां विभीतकफलानाम् (वहेड़ा इति लोके) अस्थिसञ्चयः आन्तरिकभागः वीजसमूहो वा यस्मिन् तं तादृशम् । खाण्डवविनाशोद्यतार्जुनमिव—खाण्डवस्य एतदाख्यस्य वनस्य विनाशे भस्मीकरणे उद्यतः उद्योगवान् यः अर्जुनः कौन्तेयः तमिव-प्रारब्धाग्निकार्यम्=प्रारब्धम्-उपद्रवप्रशामनेनोपक्रान्तम् अग्निकार्यम् अग्निसन्तर्पणं येन स तम्, पक्षे—प्रारब्धम् समुपक्रान्तम् अग्निकार्यम् हवनं यत्र तं तादृशम् । सुरभिविलेपनधरमपि सतताविर्भूतधूमगन्धम्=सुरभिः घ्राणतर्पणम् विलेपनम् चन्दनादिसुगन्धितद्रव्यनिर्मिताङ्गरागः तं धरति इति तम् अपि, सततम् निरन्तरम् आविर्भूतः प्रकटितः धूमगन्धः अग्निधूमसौरभ यस्मात् तम् तादृशम् (अत्र विरोधपरिहारार्थम्) सुरभेः गोः विलेपनम्-विलिप्यतेऽनेनेति विलेपनम् गोमयम्, धरतीतिधरा पृथिवी, गोमयस्य त्रिलेपनं यस्यां सा एवम्भूता धरा यत्र तं तादृशामित्यर्थो ग्राह्यः । मातङ्गकुलाध्यासितमपि पवित्रम्-मातङ्गकुलेन अन्त्यजसमूहेन अध्यासितम् आश्रितम् अपि, पवित्रम् पावनम् (अत्रविरोधस्तु) मातङ्गकुलेन गजसमूहेनेत्यर्थेन परिहार्यः । उल्लसितधूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम्—उल्लसितम् ऊर्ध्वभागे समुत्थितम् धूमकेतूनाम् उत्पातग्रहाणाम् शतम् यत्र तादृशमपि प्रशान्तोपद्रवम्-प्रशान्तं पूर्णतः शान्तं-उपद्रवः विघ्नं यत्र तादृशम् (विरोधस्तु) धूमकेतूनाम् अग्नीनां शतम् यत्रेत्यर्थकरणेन परिहार्यः । परिपूर्णद्विजपतिमण्डलसनाथमपि सदा सन्निहिततरुगहनान्धकारम्=परिपूर्णेन सकलकलायुक्तेन द्विजपतिमण्डलेन चन्द्रमण्डलेन सनाथं युक्तम् अपि सदा सर्वदा सन्निहितः निकटस्थः तरुगहनेषु वृक्षागह्वरेषु अन्धकारः तमः यत्र तं तादृशम्, अत्र विरोधस्तु, द्विजपतिमण्डलेन उत्तमब्राह्मणसमूहेनेत्यर्थकरणेन परिहार्यः । अतिरमणीयम् अति मनोहरम् अपरम् द्वितीयम् ब्रह्मलोकम् देवलोकम् इव आश्रमम् तपोवनम् अपश्यम् अद्राक्षम् ।

संस्कृत सरलार्थ—वैशम्पायनः कथयति यदहमेक मेतादृशमाश्रममपश्यम् यत्र कलियुगस्य न कदापि पूर्वं प्रवेशो दृष्टः अर्थात् तत्राधर्माभावान्न कलिप्रवेशसम्भावनासीत, सत्याचरणाच्च स आश्रमः असत्येनाप्यपरिचित आसीत्, न तत्र कदापि पूर्वं

कामदेवोऽपि श्रुतिपथमागतः कामजन्यविकारोत्पत्त्यसम्भवात् । प्रजापतिरिव स लोकत्रयपूजित आसीत्, अथ च स प्रकाशित वराहनृसिंहावतारस्वरूपो विष्णुरिव प्रकटित शूकरनरमृगेन्द्रमृग आसीत्, कपिलमुन्यधिष्ठितं सांख्यदर्शनमिव स आश्रमः कपिलाख्याभिः स्वर्णवर्णाभिः गोभिराश्रित आसीत्, शारीरिकशक्तिदर्पान्वितधेनुकाख्यदैत्ययुक्तं मथुरायाः प्रसिद्धारण्यमिव स शक्तिमतीभिः सदर्पाभिः नवप्रसवाभिः गोभिरधिष्ठित आसीत् । स्वसदाचारसन्तोषितवत्सप्रान्तीयप्रजाजनः उदयनाभिधानो नृपतिरिव स आश्रमः तृणसलिलदानादिना परितोषितगोवत्ससमूह आसीत्, मुनिजनहस्तावधृतसलिलघटैरभिषिच्यमानद्रुमाख्यनृपं किन्नराधिराज्यमिव स आश्रमः मुनिजनहस्तावधृतकलशैः सिक्तवृक्षः आसीत्, समीपवर्तिमेघजलप्रपातं ग्रीष्मकालवसानमिव स निकटस्थवापीजलनिर्झर आसीत्, क्षीरसागरगम्भीरजलमध्यसुखशयितविष्णुः वर्षाकाल इव स आश्रमः काननगह्वरमध्यसुखनिद्रितमृगेन्द्र आसीत्, प्रस्तरखण्डनिपातचूर्णिताक्षयकुमारास्थिसञ्चयो हनूमानिव स पाषाणखण्डाघातेन पिष्टविभीतकफलान्तरिकभाग आसीत्, उपद्रवप्रशमनेनोपक्रान्ताग्निसन्तर्पणः खाण्डववनभस्मीकरणोद्यतोऽर्जुन इव स समुपक्रान्ताग्निहवनविधिरासीत्, घ्राणतर्पणात्मकचन्दनादिनिर्मिताङ्गरागधरोऽपि स आश्रमः सततप्रकटिताग्निधूमगन्धवानासीत्, अत्र विरोधस्तु-सुरभेः गोः विलेपनं गोमयं यत्र सा तथाभूताधरा पृथिवी यस्मिन् स इत्यर्थकरणेन परिहार्यः । अन्त्यजागणाश्रितोऽपि स पवित्र आसीत्, अत्रविरोधस्तु-मातङ्गकुलेनेत्यस्य गजसमूहेनेत्यर्थ करणेन परिहार्यः । ऊर्ध्वाभिमुखानेकोत्पातग्रहोऽपि स प्रशमितविघ्न आसीत्, अत्र विरोधस्तु-धूमकेतुशब्दस्य अग्निः इत्यर्थेन परिहार्यः । परिपूर्णचन्द्रमण्डलसमन्वितोऽपि स सर्वदा निकटस्थवृक्षगह्वरान्धकारवानासीत, अत्रविरोधस्तु-परिपूर्णद्विजपति मण्डलशब्दस्य ज्ञानपूर्णोत्तमब्राह्मणसमूह इत्यर्थेन परिहार्यः । आश्रमश्चायमतिमनोहरः अपरः सुरलोक इवासीत् ।

**टिप्पणी—प्रकटितवराहनरसिंहरूपम्**—वराह और नृसिंहावतार के स्वरूप को धारण करने वाले विष्णु, २—आश्रम में शूकर, नर, सिंह तथा रूप अर्थात् मृग थे, रूपे मृगेऽपि विज्ञेयम् कोशः । **कपिलाधिष्ठितम्**—सांख्यदर्शनप्रणेता प्रसिद्ध कपिल मुनि, २—स्वर्णाकृति गायें । **बलावलीढेति**—शारीरिक शक्ति सम्पन्न अतएव सगर्व धेनुक नामक दैत्य, २—बलवती और नवप्रसूता गायों से युक्त, धेनु शब्द से ही वैकल्पिक कप् प्रत्यय होकर धेनुक शब्द बनता है । मथुरा में धेनुकासुर को श्रीकृष्ण ने मारा था । **आनन्दितवत्सकुलम्**—वत्सप्रान्तीय जनों को आनन्दित करने वाले कौशाम्बीनरेश उदयन के समान, २—आश्रम भी तृणजलादि से गोवत्सों को सुखी रखता था । कथा सरित्सागर में वत्सराज उदयन की कथा विस्तारपूर्वक दी गई है । **किम्पुरुषेति**—किम्पुरुष=किन्नर, द्रुम=किन्नरों का राजा जिसका मुनिगृहीतघटों द्वारा अभिषेक किया गया था, द्रुमं—वृक्ष=मुनिजन घड़ों से जल देकर आश्रमवृक्षों

को सींचते थे । **जलप्रपातम्**=मेघों से जलवर्षा, २—बावड़ियों का जल तथा झरना, **वनगहनेति**—गहरे समुद्र जल में, २—सघन वन में, हरिः=विष्णु, २—सिंह, "वनं प्रस्रवणेगेहे प्रवासेऽम्भसि कानने गहनं गह्वरे दुःखे वने" पौराणिक प्रसिद्धि के अनुसार भगवान् आषाढ में सोते हैं, भाद्रपद में करवट लेते और कार्तिक में उठते हैं आषाढ श्रावण वर्षा के महीने होते हैं । **अक्षास्थिसञ्चयमिति**—अक्ष या अक्षय कुमार नामक रावण का पुत्र था जिसे हनूमान् ने पत्थरों के प्रहार से मारा था, २—बहेड़ा नामक फल का भीतरी भाग जो पत्थरों से तोड़ा जाता है "अक्षोज्ञानात्म-शकटव्यवहारेषु पाशके, रुद्राक्षे रावणौ सर्पविभीतकतरावपि" रामायण में अक्षवध की कथा है । **अग्निकार्यम्**—अग्नि देवों की सन्तुष्टि, २—हवन. **सुरभिविलेपनेति**—सुगन्धित अनुलेप २—गौ का गोबर, 'सुरभि घ्राणतर्पणः" सुरभि र्गवि च 'स्त्रियाम्' इत्यमरः । **धरम्**=धारण करने वाला २—तथाभूताधरा पृथिवी यत्र तम्—ऐसी पृथिवी वाला । विलेपनम्—विलिप्यतेऽनेनेति—अङ्गराग, २—गोबर । यहाँ द्वितीय अर्थ से विरोध परिहार होना है । **मातङ्गकुलेति**—अन्त्यजों का समूह, २ गजों का समूह, द्वितीयार्थ ही विरोधपरिहारार्थ अभीष्ट है । **धूमकेतु**=उत्पातग्रह, २—अग्नि 'धूमकेतुः स्मृतो वह्नावुत्पातग्रहभेदयोः" द्वितीयार्थ ही अभीष्ट है । **परिपूर्णद्विजपतिमण्डल**=परिपूर्णचन्द्रमण्डल, २—ज्ञानपूर्ण उत्तमब्राह्मण समूह, विरोध-परिहारार्थ द्वितीयार्थ ही अभीष्ट है । द्विजराजः शशधरः, दन्तविद्वाण्डजाः द्विजाः इत्यमरः । अब्जयोनिमिव से लेकर खाण्डवविनाशोद्यतार्जुनमिव तक सर्वत्र पूर्णोपमा-लंकार है, सुरभिविलेपनधरमपि से लेकर अन्त तक विरोधाभासालंकार है । ●

**यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु, कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु, मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु, स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न वनितासु, पक्षपातः कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु, भ्रान्तिरनलप्रदक्षिणेषु न शास्त्रेषु, वसुसङ्कीर्तनं दिव्यकथासु न तृष्णासु, गणना रुद्राक्षवलयेषु न शरीरेषु, मुनि-बालनाशः क्रतुदीक्षया न मृत्युना, रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन ।**

**यत्र च महाभारते शकुनिवधः पुराणे वायुप्रलपितम्, वयः परिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्त्वम्, एणकानां गीतश्रवणव्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः ।**

**शब्दार्थ**—**यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु**=और जहाँ अर्थात् जिस आश्रम में मलिनता (केवल) हवन की गई अग्नियों के धुयें में (थी) **न चरितेषु**=(लोगों के अर्थात् आश्रमवासियों के) आचरणों में नहीं (क्योंकि वहाँ के निवासी सर्वत्र आत्म-भाव रखने वाले, स्वच्छ अन्तःकरण वाले एवं हिंसा मात्सर्य आदि पापाचार से सर्वथा दूर थे) **मुखरागः शुकेषु न कोपेषु**=मुख की लालिमा शुकों में (थी) क्रोध में नहीं क्योंकि किसी में क्रोध उत्पन्न ही नहीं होता था—(यहाँ निमित्त सप्तमी मानकर क्रोधनिमित्तक मुखरक्तिमा न थी, यह अर्थ उचित होगा) **तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु**=तीखापन जो कि चर्म आदि का भी छेदन कर सके, केवल कुशों के ही अग्रभाग में था, कुशों की नोंक ही लोगों के पैरों में छिदते थे, स्वभावों में अर्थात् आश्रमवासीजनों की प्रकृति में ऐसी तीक्ष्णता अर्थात् क्रूरता न थी, क्योंकि वे सभी शुद्ध अन्तःकरण वाले थे। **चञ्चलता कदली दलेषु न मनःसु**=चञ्चलता केवल केले के पत्तों में ही थी, थोड़ी-सी भी हवा लगने से केले के पत्ते ही उधर-उधर हिलने लगते थे परन्तु वहाँ के लोगों के चित्तों में चञ्चलता न थी, आश्रम में कोई कभी भी उपद्रव आदि नहीं होता था जिससे कि मन में उद्वेग या चञ्चलता उत्पन्न हो सके, सभी समरस और शान्त रहते थे। **चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु**=चक्षूराग अर्थात् नेत्रों मे प्रेमाकर्षणवश लालिमा केवल कोइल नामक पक्षियो में ही थी, न परकलत्रेपु=अन्य की स्त्रियों पर किसी को चक्षूराग अर्थात् नेत्रों की आसक्ति न थी, क्योंकि आश्रमवासियों में किसी की भी परस्त्री पर आसक्ति न थी, **कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु**=कण्ठग्रह अर्थात् गला पकड़ना, गरदन पकड़ कर उठाना केवल कमण्डलुओं में ही था, तपस्वी जन कमण्डलु की गरदन पकड़कर ही उसे ऊपर उठाते थे, पर रतिविलास में अथवा आलिङ्गनादि में कण्ठग्रह नहीं था। ब्रह्मचारी तपस्वी जनों में आलिङ्गनादि की सम्भावना ही न थी। **मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु**=मेखलाबन्ध अर्थात् कमर में मौञ्जी मेखला बाँधना केवल उपनयनादि कर्मों में ही था अर्थात् व्रतधारी ब्रह्मचारी ही उपनयन के समय जो मूँज घास की बनी मेखला बाँधते थे वही वे ब्रह्मचर्या आश्रम तक बाँधते थे किन्तु आश्रमवासियों में पारस्परिक ईर्ष्या क्रोधादि के वश (लड़ने के लिये) कोई कमर नहीं बाँधता था, यद्यपि वहाँ शास्त्र चर्चा में वाद-विवाद चलते थे तथापि उसमें ईर्ष्या और क्रोध आदि नहीं था। **स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न वनितासु**=स्तनों अर्थात् थनों का स्पर्श, हवन के लिए दुही जाने वाली गायों में ही था, अर्थात् हवन के लिए जब होम की गायों से दूध दुहा जाता था तभी उनके थनों का स्पर्श किया जाता था, स्त्रियों के स्तनों का स्पर्श नहीं था, क्योंकि आश्रमवासी तपस्वी ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता थे अतः स्त्रियों के कुचस्पर्श की वहाँ सम्भावना ही न थी। **पक्षपातः कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु**=पक्षपात अर्थात् पंखों का झड़ना या गिरना केवल कृकवाकु अर्थात्

मुर्गों में ही था मुर्गों के ही पंख झड़ते थे, विद्या सम्बन्धी वाद-विवादों में कहीं कोई किसी का पक्षपात नहीं करता था ! क्योंकि आश्रम में किसी के प्रति पक्षपात करना अनुचित व्यवहार माना जाता था। **भ्रान्तिः अनलप्रदक्षिणेषु न शास्त्रेषु**=अनलप्रदक्षिणेषु अर्थात् अग्नि की परिक्रमाओं में ही भ्रान्ति अर्थात् उसके चारों ओर घूमना होता था, न शास्त्रेषु=शास्त्रों के विषय में किसी को कोई भ्रान्ति अर्थात् भ्रम या सन्देह नहीं था, सभी को शास्त्रों का यथार्थ ज्ञान था। **वसु संकीर्तनं दिव्यकथासु न तृष्णासु**=दिव्यकथासु—देव सम्बन्धी कथा प्रवचनों में ही, वसु-कीर्तनम्=अष्ट वसु नामक देवों की अच्छी चर्चा की जाती थी, किन्तु तृष्णासु अर्थात् धन सम्बन्धी लिप्सा या लोभनिमित्तक वसु अर्थात् धन की चर्चा नहीं थी, क्योंकि तत्रत्य जनों में धनलिप्सा का सर्वथा अभाव ही था। **गणना रुद्राक्षवलयेषु न शरीरेषु**=गणना अर्थात् गिनती केवल रुद्राक्ष की मालाओं में ही की जाती थी, अर्थात् जप करते समय रुद्राक्ष मालाओं के दानों की ही गिनती होती थी, न शरीरेषु=किन्तु शरीरों की कोई गणना अर्थात् अपेक्षा या आस्था न थी, विरक्त होने के कारण उन्हें देहाभियान न था अतः शरीर के प्रति वे निःस्पृह थे। **मुनि-बाल नाशः क्रतुदक्षिया न मृत्युना**=यज्ञारम्भ के द्वारा ही मुनियों के केशों का कर्तन होता था अर्थात् यज्ञारम्भ के पूर्व ही (यज्ञ में दीक्षित होने की योग्यता प्राप्त करने के लिए यज्ञ के प्रारम्भ होने के पूर्व ही) मुनिजन अपने बाल कटाते थे किन्तु मृत्यु के द्वारा मुनियों के बाल अर्थात् बालकों का नाश नहीं होता था। तपस्या के प्रभाव से उनके बालकों की असामयिक मृत्यु न होती थी। **रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन**=रामायणेन—अर्थात् रामायण में वर्णित राम के गुणों के आकर्षण से ही **रामानुराग**—अर्थात् श्रीराम के प्रति लोगों में अनुराग उत्पन्न होता था किन्तु **न यौवनेन रामानुरागः**=अर्थात् युवावस्थोचित मदविकार के प्रकट होने से "रामानुरागः" अर्थात् कामिनी युवती में प्रेमाशक्ति न थी, तात्पर्य यह कि उन आश्रम-वासियों में तपस्या के प्रभाव से यौवनावस्था में भी कामवासना की उत्पत्ति सम्भव न थी। "**मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानने**" वहाँ आश्रमवासियों में "मुख-भङ्गविकार" अर्थात् मुख पर झुर्री, दाग पड़ना या त्वचा पर किसी अन्य प्रकार की फुंसी आदि होना केवल 'जरया' अर्थात् वृद्धावस्था के कारण से ही था अर्थात् वृद्धावस्था में ही उनके मुख पर कुछ झुर्री, खाल सिकुड़ जाना, अथवा दाग धब्बे पड़ना होता है किन्तु "न धनाभिमाने" अर्थात् धन के घमण्ड से किसी की, किसी दूसरे पर भ्रकुटी टेढ़ी नहीं होती थी, धनादि के गर्व से कोई किसी पर भौंहे नहीं चढ़ाता था, क्योंकि उनमें धन और घमण्ड दोनों का ही सर्वथा अभाव था जब धन ही नहीं था तो धन जन्य गर्व ही कहाँ से होता। यहाँ "**यत्र च मलिनता** ....................यहाँ

से लेकर जरया न धनाभिलाषे" यहाँ तक सभी वाक्यों में प्रश्न के अभाव में भी 'न' के द्वारा अन्य का निराकरण सिद्ध हो जाने से श्लेषसंकीर्ण शाब्दी परिसंख्यालंकार है। जैसा कि साहित्य दर्पणकार का कथन है :—"प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद् वस्तुनो भवेत्। तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तथा परिसंख्या..............।"

**यत्र चेति—यत्र च महाभारते शकुनिवधः**=(शकुनि=१—दुर्योधन का मामा २—पक्षी) और जहाँ उस आश्रम में महाभारत पुराण में ही शकुनि अर्थात् दुर्योधन के मातुल का सहदेव द्वारा मारा जाना सुना जाता था किन्तु आश्रम में किसी भी स्थान पर पक्षियों का वध नहीं देखा जाता था क्योंकि आश्रमवासियों में हिंसा का सर्वथा अभाव था। **पुराणे वायुप्रलपितम्**=(वायु=१—वायु देवता, प्रलपित= उच्चस्तरीय कथन या भाषण, २—वायुविकार—वात रोग से उत्पन्न व्याधि, प्रलपित=ऊट पटांग बकना, व्यर्थ या निरर्थक बकवाद करना—वात व्याधिग्रस्त रोगी व्यर्थ प्रलाप करते ही हैं। अर्थात् वहाँ वायु देवता का उपदेश या भाषण केवल पुराण में ही सुना जाता था, आश्रम के किसी भी स्थान पर कहीं भी कोई वातजव्याधि से उत्पन्न उन्माद आदि के कारण व्यर्थ प्रलाप नहीं करता था क्योंकि आश्रमवासियों के संयमित जीवन के कारण वहाँ वात व्याधि किसी को भी न होती थी। **वयः परिणामे द्विजपतनम्**=(वयः परिणाम=आयु का परिणाम-परिपाक अर्थात् वृद्धावस्था, द्विज=१—ब्राह्मण २—दाँत। पतन=१—गिरना, २—भ्रष्ट होना, अपने शुद्ध आचरण से गिर जाना पतित हो जाना। अर्थात् वहाँ आश्रम में वृद्धावस्था में ही केवल दाँत गिरते थे न कि वहाँ महापातक आदि में कभी ब्राह्मणों का अधःपतन होता था—ब्राह्मण पाप कर्मों में लिप्त होकर कभी पतित नहीं होते थे, क्योंकि तत्कालीन आश्रम सभी प्रकार के भ्रष्ट आचरणों से सदा दूर रहते थे अतः वहाँ किसी के अधःपतन की सम्भावना ही नहीं थी। **उपवन-चन्दनेषु जाड्यम्**= (जाड्यम्=१—शीतलता २—जड़ता, बुद्धिहीनता) अर्थात् वहाँ बाग-बगीचों के चन्दन के वृक्षों में ही केवल शीतलता थी न कि वहाँ के निवासियों में किसी भी प्रकार की जड़ता, मूर्खता अथवा बुद्धिहीनता थी, क्योंकि वहाँ सभी आश्रमवासी बुद्धिमान् एवं सभी गुणवान थे। **अग्नीनां भूतिमत्त्वम्** (भूति=१—भस्म, राख, २—भूति=ऐश्वर्य धन सम्पत्ति) अर्थात् वहाँ अग्नियों में ही भस्म (जल जाने पर राख) पाई जाती थी। आश्रमवासियों में कहीं भी भूतिमत्ता—ऐश्वर्यशालिता नहीं थी क्योंकि आश्रमवासी सभी पूर्णविरक्त थे, धन सम्पत्ति के विषय में उनकी कोई आसक्ति नहीं थी। **एणकानां गीतश्रवणव्यसनम्** (एणक=मृग, गीतश्रवणव्यसन= गीत सुनने में अभिरुचि या अभिलाषा) अर्थात् वहाँ आश्रम में केवल मृगों को ही गीत सुनने में अभिरुचि थी, अन्य किसी आश्रमवासी में कहीं भी संगीत सुनने का

व्यसन नहीं था, तत्रत्य ऋषिजन सभी प्रकार के दुर्व्यसनों से रहित थे। **शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः**—शिखण्डी=मयूर, पक्षपातः=१—पंखों का गिरना २—अभिलाषा या रुचि। अर्थात् वहाँ केवल मयूरों में ही नृत्य के प्रति अनुराग था और नाचते समय उनके पंख गिर जाते थे, आश्रमवासियों में किसी का भी कहीं नृत्य में अनुराग न था, क्योंकि ऋषिजन सभी लौकिक व्यसनों से सर्वथा दूर थे। **भुजङ्गमानां भोगः** (भुजङ्गम=सर्प, भोगः १—सर्प का शरीर या फण, २—माल्य गन्ध चन्दन कामिनी आदि के उपभोग से मिलने वाला सुख। वहाँ केवल सर्पों का ही भोग अर्थात् शरीर या उनके फण थे, आश्रमवासियों में कोई भोग-सांसारिक विषयों के उपभोग से मिलने वाला सुख न था क्योंकि आश्रमवासी भोगी न थे, वे तो पूर्ण विरक्त योगी थे, ऐहिक विषयों से उनका कोई लगाव न था। **कपीनां श्रीफलाभिलाषः** =कपीनाम्=वानरों की, श्रीफलाभिलाषः=१—विल्व फलों की इच्छा, २—लक्ष्मी से प्राप्य काम्य फलों की प्राप्ति की उत्कट इच्छा। अर्थात् वहाँ वानरों को ही विल्वफलों के पाने की इच्छा थी, वहाँ के ऋषिजनों में लक्ष्मी से प्राप्य ऐहिक ऐश्वर्य आदि की उत्कट इच्छा न थी, क्योंकि ऋषिजन मोक्षाभिलाषी थे उन्हें ऐहिक सुखों से मोह न था। **मूलाना मधोगतिः**=मूलानाम्=वृक्षादि के जड़ों की, अधोगतिः= १—भूमि से नीचे की ओर जाना, २—पतन होना या नरक में जाना। अर्थात् आश्रम के लता वृक्षादि की जड़ें ही केवल भूमि में नीचे-नीचे जाती थीं, ऋषियों में अधःपतन या नरकादि में जाना नहीं था, क्योंकि तत्रत्य ऋषिजन तपस्वी होने के कारण सर्वथा पापरहित थे, निष्पाप होने के कारण उनके अधःपतन या नरकादिगमन की सम्भावना ही नहीं थी।

**अनुवाद**—और जहाँ मलिनता या कालिमा केवल यज्ञों के धुओं में ही (दिखाई देती) थी, मुनियों के आचरणों में नहीं। मुखों पर लालिमा केवल तोतों की चोंच में ही थी (किसी के) क्रोध में न थी। तीक्ष्णता अर्थात् तीखापन केवल कुशों के अग्रभागों अर्थात् नोंक में ही था, (किसी के) स्वभाव में नहीं। चञ्चलता (सदा हिलते रहना) केवल केले के पत्तों में ही था (किसी के) चित्त में नहीं। चक्षूरागः अर्थात् लालिमा केवल कोयलों में थी किन्तु चक्षूराग अर्थात् देखने की अभिलाषा या वासनायुक्त दृष्टि दूसरों की स्त्रियों पर न थी। कण्ठग्रह अर्थात् गरदन पकड़ना केवल कमण्डलुओं के उठाने पर ही होता था, रतिक्रीड़ाओं में कण्ठग्रह अर्थात् कण्ठाश्लेषपूर्वक आलिङ्गन न था। मेखलाबन्ध अर्थात् मौञ्जीमेखला का बाँधना केवल उपनयनादि व्रतों के समय ब्रह्मचारियों में ही था किन्तु मेखलाबन्ध अर्थात् सांकल में बाँधना ईर्ष्याजन्य वाद-विवाद या लड़ाई झगड़ों में न था। स्तन-स्पर्श अर्थात् थनों का छूना केवल होम की गायों के दुहने के समय ही होता था किन्तु

स्त्रियों का स्तन-स्पर्श (कुचमर्दन) न होता था। पक्षपात अर्थात् पंखों का गिरना या झड़ना केवल कुक्कुट या मुर्गों में ही था किन्तु विद्यासम्बन्धी वाद-विवादों में कोई किसी का पक्षपात न करता था। भ्रान्ति अर्थात् चारों ओर घूमना केवल अग्नि की परिक्रमाओं में ही होता था, शास्त्रीय विषयों में किसी को कोई भ्रान्ति भ्रम या सन्देह न था। वसु संकीर्तनम् अर्थात् अष्ट वसु नामक देवताओं का गुणगान या वर्णन केवल देवताओं की कहानियों में ही होता था किन्तु तृष्णावश धन (वसु) की चर्चा नहीं होती थी। गणना अर्थात् बार-बार जप करते समय गिनना केवल रुद्राक्ष मालाओं में ही होती थी, अपने-अपने शरीरों के विषय में यह गणना न थी। मुनिबालनाश अर्थात् मुनियों के बालों (केशों) का कटाना केवल यज्ञ में दीक्षा लेने के अवसर पर होता था किन्तु मृत्यु के द्वारा मुनि बालकों का नाश नहीं होता था। रामानुराग अर्थात् राम के प्रति प्रेम केवल रामायण के द्वारा ही उत्पन्न होता था किन्तु युवावस्था के कारण किसी का स्त्रियों पर अनुराग न होता था। मुखभङ्ग-विकार अर्थात् मुख पर झुर्रियों आदि के पड़ने से विकृति उत्पन्न होना केवल वृद्धावस्था के ही कारण था, धन के घमण्ड के कारण किसी का मुँह टेढ़ा नहीं होता था।

और जहाँ (आश्रम में) शकुनि वध अर्थात् शकुनि नामक दुर्योधन के मामा का वध केवल महाभारत की कथा में (सुना जाता था) आश्रम में पक्षि हिंसा नहीं (की जाती) थी। वायु प्रलपितम् अर्थात् वायु देवता का कथन या भाषण केवल पौराणिक कथा में ही प्राप्त होता था, वायु विकार के कारण कहीं कोई व्यर्थ प्रलाप नहीं करता था। द्विजपतन अर्थात् दाँतों का गिरना केवल वृद्धावस्था में ही था किन्तु ब्राह्मणों का कहीं पतन नहीं था। शीतलता (जाड्यम्) केवल उपवन के चन्दन के वृक्षों में ही थी किन्तु मुनियों की बुद्धि में जड़ता नहीं थी। भूति अर्थात् भस्म या राख केवल अग्नियों में ही थी किन्तु ऋषियों में भूति अर्थात् धन ऐश्वर्य आदि के प्रति मोह न था। गीत सुनने का शौक केवल मृगों में था आश्रमवासियों में नहीं। नृत्यपक्षपातः अर्थात् नाचते समय पंखों का गिरना केवल मयूरों में ही था मुनियों में नृत्य के प्रति कोई रुचि न थी। भोग—शरीर या फण केवल सर्पों में ही था, आश्रमवासियों में ऐहिक भोगों के प्रति रुचि नहीं थी। विल्व फलों की प्राप्ति की इच्छा केवल वानरों में थी, मुनियों में लक्ष्मी से प्राप्त सुखादि की इच्छा न थी। लतावृक्षादि की जड़ें ही नीचे की ओर जातीं थीं, किन्तु मुनिजनों का कभी अधःपतन नरकादिगमन न होता था।

**भावार्थ**—जाबालि आश्रम में यदि कहीं कालिमा थी तो वह केवल यज्ञ के धुयें में ही थी, मुनियों के आचरण में कोई कलंक न था। मुखों पर लालिमा केवल

तोतों की चोंच में ही थी, क्रोधवश किसी का मुख लाल न होता था। तीखापन केवल कुशों के अग्रभागों पर ही था। किसी के स्वभाव में तीक्ष्णता नहीं थी। चञ्चलता केवल केलों के पत्तों में ही थी, किसी के मन चञ्चल नहीं होते थे। कोइल पक्षियों की ही आँखें लाल होती थीं, आश्रमवासियों में किसी की भी दृष्टि वासनायुक्त नहीं होती थी। गरदन पकड़कर केवल कमण्डलु ही उठाये जाते थे, वहाँ रतिक्रीड़ाओं में कण्ठाश्लेषपूर्वक आलिङ्गन न था। मौञ्जी मेखलाबन्धन केवल ब्रह्मचारियों के उपनयनादि संस्कारों में ही होता था, किन्तु लड़ाई या वाद-विवादों में कोई किसी को सांकल से नहीं बाँधता था। केवल दुहने के समय ही होम की गायों के थन छुये जाते थे, आश्रम में स्त्रियों का स्तन-स्पर्श न था। केवल मुर्गों के ही समय-समय पर पंख गिरते थे, विद्या सम्बन्धी वाद-विवादों में कोई किसी का पक्षपात न करता था। केवल अग्नि की परिक्रमाओं में ही उसके चारों ओर घूमा जाता था, शास्त्रीय विषयों में किसी को कोई भ्रान्ति या सन्देह न था। अष्ट वसु नामक देवताओं का वर्णन केवल देव कथाओं में ही प्राप्त होता था, वहाँ तृष्णावश धन चर्चा नहीं होती थी। केवल जप करते समय ही रुद्राक्ष मालाओं के दानों की ही गणना होती थी, किन्तु अपने-अपने शरीरों के विषय में यह गणना न थी। यज्ञ में दीक्षित होने के समय ही मुनियों के बाल कटते थे किन्तु मृत्युवश मुनियों के बालकों का नाश नहीं होता था। राम के प्रति अनुराग केवल रामायण के द्वारा ही उत्पन्न होता था किन्तु युवावस्था के कारण किसी का स्त्रियों के प्रति अनुराग न होता था। केवल वृद्धावस्था के कारण ही झुर्रियों आदि के पड़ने से मुख पर विकृति उत्पन्न होती थी, धन के गर्व के कारण किसी का मुख विकृत न होता था।

और जहाँ आश्रम में, शकुनि नामक दुर्योधन के मामा का वध केवल महाभारत की कथा में ही सुना जाता था, आश्रम में पक्षियों का वध न होता था। वायु देवता का कथन पौराणिक कथा में ही प्राप्त होता था, वायु विकार के कारण वहाँ कोई व्यर्थ प्रलाप न करता था। वृद्धावस्था में ही द्विजपतन अर्थात् दाँत गिरते थे, किन्तु आश्रम में ब्राह्मणों का पतन न होता था। जड़ता अर्थात् शीतलता वहाँ केवल चन्दन वृक्षों में ही थी, मुनियों की बुद्धि में जड़ता न थी। भूति अर्थात् भस्म या राख केवल अग्नियों में ही थी, ऋषियों में भूति अर्थात् धनैश्वर्य के प्रति मोह न था। गान सुनने का शौक केवल मृगों को ही था, आश्रमवासी गीत श्रवण व्यसनी न थे। नाचते समय केवल मयूरों के ही पंख गिरते थे, मुनियों में नृत्य के प्रति कोई रुचि न थी। केवल वानरों में ही विल्व फल प्राप्ति की इच्छा थी, मुनियों में लक्ष्मी से प्राप्तव्य सुखादिफल की इच्छा न थी। भोग अर्थात् फण केवल सर्पों में ही था

किन्तु आश्रमवासियों में ऐहिक भोगविलासों के प्रति रुचि न थी। लतावृक्षादि की केवल जड़ें ही नीचे की ओर जातीं थीं, मुनियों का कभी अधःपतन (नरकादिगमन) न होता था।

**संस्कृत व्याख्या—यत्र-चेति-यत्र च**—अपि च, यत्र जाबाल्याश्रमे, **मलिनता** मालिन्यं कलङ्को वा, **हविर्धूमेषु**=हुताग्नीनाम् धूमेषु, न चरितेषु=न तत्रत्य-मुनीनाम् आचरणेषु कौलीन्यमासीत्, तेषु हिंसापापाचाराद्यभावात्। **मुखरागः शुकेषु न कोपेषु**=शुकेषु कीरेषु (एव) मुखरागः मुखेषु रागः रक्तिमा आरुण्यं वा (आसीत्) न कोपेषु=न क्रोधनिमित्तकम् आरुण्यम्-कोप जन्यं वैरुण्यं-क्रोधनिमित्तकं वैरुप्यं न मुनिजनमुखेष्वासीदित्यर्थः। **तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु**=दर्भप्रान्तभागेष्वेव चर्मास्थिभेदनक्षमः शक्तिविशेषः (आसीत्) न तु मुनिप्रकृतिषु क्रूरत्वमासीत्। **चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु**=रम्भापत्रेष्वेव चाञ्चल्यं तरलता वा (आसीत्) न मनःसु चित्तेषु। उपद्रवाभावात् न मुनिजनचित्तेष्वस्थैर्यमासीदित्यर्थः। **चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु**=कोकिलेषु परभृदाख्यपक्षिष्वेव चक्षूरागः=नेत्रयोरारुण्यम्, न परकलत्रेषु परस्त्रीषु नेत्रयोरासक्तिरासीत्। **कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु**=कमण्डलुषु कुण्डिकास्वेव कण्ठग्रहः समुत्त्थापनकाले तेषां कण्ठग्रहणमासीत्, न सुरतेषु=मैथुन-क्रियासु. मुनिजनानामूर्ध्व रेतस्त्वेन सुरतक्रियाया अभावादित्यर्थः। **मेखलाबन्धोव्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु**=व्रतेषु उपनयनादि व्रतनियमेषु मेखलायाः मौञ्जीमेखलाया काञ्च्या वा बन्धः वन्धनम् ब्रह्मचारिषु प्रचलितमासीत् किन्तु ईर्ष्यानिमित्तकविग्रहेषु न शृंखला-वन्धनमासीत् मुनिषु कलहेर्ष्याया एवाभावादित्यर्थः, **स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न वनिताषु**=होमनिमित्तकगोष्वेव दुग्धदोहनकाले एव तासां स्तनस्पर्श आसीत्, न वनिताषु कामिनीषु कुचमर्दनम् मुनिजनेषु विषयासक्त्याभावादित्यर्थः। **पक्षपातः कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु**=कृकवाकुषु कुक्कुटेषु पक्षपातः पक्षाणां छदानां पातः निपनम् न विद्याविवादेषु विद्याविषयकशास्त्रार्थेषु न पक्षपातः वादिप्रतिवादिनोरन्यतरस्यसाहाय्य-करणम् मुनिजनेष्वेतादृशव्यवहारस्यानुपलम्भादित्यर्थः। **भ्रान्तिरनलप्रदक्षिणेषु न शास्त्रेषु**=अनलप्रदक्षिणेषु हुताग्निप्रदक्षिणकर्मसु एव भ्रान्तिः चतुर्दिक्षु भ्रमणमासीत्, न तु शास्त्रेषु=वेदादिशास्त्रविषयेषु, भ्रान्तिः=सन्देहः भ्रमो वा मुनिजनेष्वासीत्। **वसुकीर्तनं दिव्यकथासु न तृष्णासु**=दिव्यकथासु=देवसम्बन्धिकथाप्रवचनेष्वेत्र, वसु-संकीर्तनम्=द्युप्रभृतयः अष्टौ देवविशेषाः तेषां सङ्कीर्तनम् सम्यक् प्रकारेण कथनम्, न तृष्णासु=धनलिप्सासु, न वसु धनम् तस्य सङ्कीर्तनम् पुनः पुनः प्रशंसनम्। तत्रत्यानां मुनिजनानां वित्तलिप्साया एवाभावात्। **गणना रुद्राक्षवलयेषु न शरीरेषु**=रुद्राक्षाणां वलयेषु कटकाकारमालासु एव गणना जपकाले गणनम् किन्तु शरीरेषु देहेषु नेयं गणना आदरः अपेक्षा वासीत्। यतो हि मुनयः निःस्पृहा आसन्। **मुनिबाल-नाशः क्रतुदीक्षया न मृत्युना**=मुनीनाम् ऋषीणां बालाः केशाः तेषां नाशः कर्तनम्,

क्रतुदीक्षया यज्ञदीक्षया एव न तु मृत्युना मरणेन मुनिजनबालकानां विनाशः। तपः प्रभावेण मुनिजनेषु नासीदसमयिकमृत्युः। **रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन** = रामानुरागः रामः दाशरथिः तस्मिन् अनुरागः प्रेम, रामायणेन = रामायणे रामगुण-चरितश्रवणेनै वासीत्, न यौवनेन रामानुरागः = यौवनेन तारुण्येन न रामायां कामिन्याम् अनुरागः आसक्तिरासीत्, तपः प्रभावेण ब्रह्मचर्येण च मुनिषु युवावस्थाया-मपि न कामजन्योद्वेग आसीत्। **मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन** = मुखभङ्गविकारः = मुखे आननोपरिभङ्गेन त्वादिशैथिल्येन विकारः विकृतिः, जरया वृद्धावस्थयैव केवलम् न तु धनाभिभानेन वित्तैश्वर्यादि जन्यगर्वेणासीत्। मुनिषु धनगर्वयोरभावात्।

**यत्र च महाभारतेशकुनिवधः** = यत्र = जाबाल्याश्रमे, च = अपि च, शकुनिः = दुर्योधनमातुलः तस्य वधः मारणम्, महाभारते = महाभारताख्यपुराणकथायामेव श्रूयते स्म, न त्वाश्रमे कुत्रापि शकुनिवधः पक्षिमारणं श्रूयते स्म, मुनिषु हिंसाया अभावात्। **पुराणे वायुप्रलपितम्** = पुराणे व्यासरचित वायुपुराणे एव, वायुप्रलपितम् = वायोः पवनदेवस्य प्रलपितम् भाषणं कथनम् वा श्रूयते स्म, न तु वायुना वायुविकार-जन्योन्मादादिना, प्रलपितं यत्किञ्चिद् व्यर्थालापकरणम् नासीत्। **वयः परिणामे द्विजपतनम्** = वयः परिणामे = वृद्धावस्थायामेव, द्विजपतनम् = द्विजानां दन्तानाम् पतनं पातः—दन्तक्षरणम्, न तु द्विजानां ब्राह्मणानां पतनं स्वाचाराद् भ्रंशः, सदाचारिषु मुनिषु नैतद् सम्भाव्यते। **उपवन चन्दनेषु जाड्यम्** = उपवनानां समीप स्थस्थलानां चन्दनेषु चन्दनाख्यतरुषु जाड्यम् शैत्यम् न तु तत्रस्थमुनिजनेषु जाड्यम् बुद्धिहीनत्वंम्, सर्वेषां प्रज्ञावतां मुनीनां पूर्णशिक्षितत्वात्। **अग्नीनां भूतिमत्त्वम्** = अग्नीनां वह्नीनामेव भूतिमत्त्वम् भस्मतत्त्वम्, न तु मुनिजनानां धनशालित्त्वम्। **एणकानां गीतश्रवणव्यसनम्** = एणकानां मृगाणामेव गीतस्य गानस्य श्रवणे आकर्णवने व्यसन मासक्तिः, न तु मुनिजनानां गीतश्रवणाभिलाषातिरेकः। **शिखण्डिनां नृत्यपक्ष-पातः** = शिखण्डिनां मयूराणामेव नृत्ये नर्तनकाले पक्षपातः तच्छदनिपतनम्, न तु मुनिजनानां नृत्ये नृत्यविषये पक्षपातः स्वीकारः। **भुजङ्गमानां भोगः** = भुजङ्गमानां सर्पाणामेव भोगः शरीरं फणो वा न तु मुनीनां भोगः माल्यगन्धकामिनीचन्दनसम्पर्क-जन्यसुखम् तेषां सर्वविधैहिकसुखरहितत्वात्। **कपीनां श्रीफलाभिलाषः** = कपीनां वानराणामेव श्रीफलेषु बिल्वफलेषु अभिलाषः इच्छाविशेषः न तु ऋषीणां श्रीर्लक्ष्मीः तस्याः फलेषु गृहसम्पदादिषु अभिलाषः अत्युत्कटेच्छा, मोक्षाभिलाषिणो मुनयो नाभिलषन्ति शरीरोपभोगसाध्यानि वस्तूनि। **मूलानामधोगतिः** = मूलानां जटानामेव अधोगतिः अधस्तलगमनम् न तु मुनीनामधोगतिः नरकादिषु पतनम् तेषां पापरहितत्वात।

**संस्कृत सरलार्थ**—जावाल्याश्रमे मालिन्यं केवलं यज्ञीयधूमेष्वेवासीत् न तु मुन्याचरणेपु कलङ्कः। मुखलौहित्यं केवलं शुकचञ्चुष्वेवासीन न तु कोपजनित वैरुप्यं कस्यापि मुखे परिदृश्यते स्म। चर्मास्थिभेदन योग्यं क्रौर्यं केवलं दर्भमूलप्रदेशेष्वेव न तु मानव प्रकृतिगता क्रूरतासीत्। चाञ्चल्यं रम्भापत्रेष्वेवासीत् न तु मुनिचित्तेषु चापल्यमासीत्। कोकिलेष्वेव स्वाभाविकं लोचनारुण्यमासीत्। परस्त्रीषु न कस्यापि दृष्टि राग आसीत्। कमण्डलुष्वेव समुपस्थापनकाले कण्ठग्रहणमासीत् न तु सुरतालिङ्गनेषु कण्ठाश्लेष आसीत्। मेखलाबन्धन मुपनयनादिनियमेष्वेवासीत्। नत्वीर्ष्यानिमित्तक कलहेषु मेखलाबन्ध आसीत्। होमधेनूना मेव दोहनकाले तत्स्तनस्पर्शः क्रियते स्म न तु स्त्रीकुचमर्दन मासीत्तत्राश्रमे। कुक्कुटपक्षिष्वेवासीत् छदपतनम्, न तु शास्त्रीयविवादेषु वादिप्रतिवादि विषयकः पक्षपात आसीत्। अग्निप्रदक्षिणेष्वेव चतुर्दिक्षु परिभ्रमणमासात्, न तु शास्त्रीयविषयेषु केषा मपि कोऽपि भ्रमः सन्देहो वासीत्। देव कथा प्रवचनेष्वेव देवविशेषाणामष्टानां वसूनां संभाषणमासीत् न तु मुनिषु धन प्रशंस न मासीत्। केवलं जपकाल एवं रुद्राक्ष वलयानां गणना क्रियतेस्म, नहि मुनिषु स्वदेहापेक्षासीत्। मुनि केश कर्त्तनं यज्ञदीक्षया केवलं विधीयते स्य, न तु मुनिबालकनाशः मृत्युना दृश्यते स्म। रामायणे रामगुण गणश्रवणेनैव दशरथात्मजे रामचन्द्रे प्रीतिरासीत् न हि तत्र तारुण्यमदेन कामिनीषु कामोद्रेक आसीत्। मुखेषु त्वगादि शैथिल्य रूपा विकृति; केवलं वृद्धावस्था प्रभावेणासीत्, न तु धनगर्वेण कुत्रापि मुखाविकर आसीत्।

यत्र चाश्रमे महाभारताख्यपुराण एव शकुनीत्याख्यातस्य दुर्योधनमातुलस्य वधः श्रूयते स्म नहि तत्र कुत्रापि पक्षिमारण मासीत्। वायुपुराण एव वायुदेवस्य प्रकथनं श्रूयते स्म नहि तत्र कस्यापि वातव्याधिजः व्यर्थालापः श्रूयते स्म। वृद्धावस्थायामेव दन्तक्षरणं दृश्यते स्म' न हि तत्र कुत्राप्यासीत् ब्राह्मणानां महापातकादिषु निपतनम्। शैत्यन्तु केवल मासीत्तत्रोपवनचन्दनतरुष्वेव, नहि तत्र कुत्राप्यासीद् बुद्धि शैथिल्यं मुनिषु। भस्मवत्त्वन्तु केवलं बह्नीनामेवासीत् मुनिषु नासीद् वित्तैश्वर्यैषणा। मृगाणामेव गानश्रवणा सक्तिरासीत् मुनिषु नासीदेव गीतश्रवणसक्ति। नर्तनकाले मयूराणामेव क्वचित् पक्षक्षरणं भवति स्म मुनिषु नृत्यदर्शनासक्तिः र्नासीत्। भोगः शरीरं फणो वा सर्पाणामेवासीत् नहि मुनीना मैहिक भोगविलासेष्वासक्तिरासीत्। विल्वफलाप्तीच्छा तु केवलं वानराणामेवासीत्, ऋषिषु नासीत्, लक्ष्मीप्रसादोपलब्धैहिक भोगैषणा। उत्तरोत्तर मध्धःप्रदेश विसर्पणन्तु वृक्षव्रतति जटानामेवासीत्, नहि तत्र मुनीनां कश्चिदपि कदाचिदपि नरकाद्यधस्तल गमन मासीत्।

**टिप्पणी**—प्रस्तुत सन्दर्भ में "मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु" यहाँ से लेकर "मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन" यहाँ तक प्रायः सभी वाक्यों में प्रश्न के न होने पर भी, नकार के द्वारा अन्य का निराकरण होने से श्लेष संकीर्णा शाब्दी परिसंख्या लंकार है। और इसी प्रकार "महाभारते शकुनिबधः" यहाँ से लेकर "मूलाना-

मधोगतिः। यहाँ तक के प्रायः सभी वाक्यों में प्रश्न के न होने पर भी स्वाभिप्राय से ही अन्य का निराकरण होने से सर्वत्र श्लेषानुप्राणित आर्थी परिसंख्या लंकार है। अर्थात् प्रथम अनुच्छेद में शाब्दी और प्रस्तुत अनुच्छेद में आर्थी परिसंख्या है श्लेषा नु प्राणिता दोनों में ही है।

इसका लक्षण है :—

"प्रश्नाद प्रश्न तो वापि कथिताद् वस्तुनो भवेत्।
तादृगन्यव्यपोहश्चे च्छाब्द आर्थोऽथवा तथा॥
परिसंख्या भवेत् तत्रः—"

**कोपेषु**—अत्र निमित्त सप्तमी, अत एव कोपनिमित्तकमित्यर्थः। **तीक्ष्णता** नुकीलापन, चुभने की शक्ति से युक्त, फलतः स्वभावगत तीक्ष्णता का अर्थ क्रूरता है। **चञ्चलता**—केले के पत्ते सदा हिलते रहते हैं। कभी स्थिर नहीं होते, इसी प्रकार मन भी सदा अस्थिर रहता है, योगि जनों में ही चित्त स्थैर्य होता है। **चक्षूरागः** राग शब्द का अर्थ लालिमा और अनुराग या प्रेम भी है, कोकिल पक्षियों की आखों में तो स्वाभाविक लालिमा होती है, पर मानवों में अति प्रिय पदार्थ देखने पर ही दृष्टि राग उत्पन्न होता है। **कण्ठग्रहः** गला पकड़ कर उठाना लोटा या कमण्डलु गला पकड़ कर ही उठाया जाता है, पर सुरत काल का कण्ठग्रहः कण्ठाश्लेष पूर्वक आलिङ्गन कहलाता है **मेखलाबन्धः** जंजीर से बाँधना या कमर कसना भी होता है, लड़ाई के समय ही ऐसा किया जाता है, यज्ञोपवीत संस्कार के समय भी ब्रह्मचारी की कमर में गूंज की मेखला बाँधी जाती हैं। "मेखला खड्ग बन्धे स्यात् काञ्चीशैलनितम्बयोः" कोशः। **कृकवाकुषु** कुक्कुट= मुर्गा या ताम्रचूड़ "कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणायुधः" कोशः। **पक्षपात**=पंखों का गिरना और वादविवाद में किसी एक का पक्षपात करना। **भ्रान्ति**=घूमना, सन्देह भ्रम, संशय। **वसुसङ्कीर्तनम्**=वसुनामक देव विशेष इनकी संख्या आठ है। वसु का अर्थ धन भी है। **वालनाशः** वाल का अर्थ केश और बालक भी है "चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः" केश। **रामानुरागः**—रामे अनुरागः, रामायामनुरागः रामानुरागः। **मुखभङ्गविकारः**—वृद्धावस्था में प्रायः मुख पर झुरियां पड़ जाती है और खाल लटक जाती है अतः मुख विकृत हो जाता है घमण्ड में भी कुछ ऐसी ही आकृति हो जाती है। **वायुप्रलपितम्**—वातव्याधि से पीडित जन प्रायः ऊटपटांग बकने लगते हैं। **द्विजपतनम्** द्विज का अर्थ दांत और ब्राह्मण भी है और पक्षी भी द्विज कहलाते हैं "दन्तविप्राण्डजा द्विजा" केश। पतनम् का अर्थ गिरना और अधः पतन भी है। **भोगः** भोग का अर्थ सर्प का शरीर और फन भी हैं तथा ऐहिक भोग विलास भी भोग कहा जाता है। "भोगः सुखे स्त्र्यादि भूता वहेश्च फणकामयोः" कोश।

## अथ जाबालिवर्णनम्

"तस्य चैवं विधस्य मध्यभागमलंकुर्वाणस्थ, अलक्तकालोहितपल्लवस्य मुनिजनालम्बित कृष्णाजिन-जलकरङ्कसनाथशाखस्य तापसकन्यकाभिर्मूल भाग-दत्त-पीत-पिष्टातकानेक पञ्चाङ्ग,लस्य हरिणशिशुभिः परिपीयमानालवाल-सलिलस्य मुनिकुमारकाबद्ध-कुशचीरदाम्नो। हरितगोमयोपलेपन विविक्ततलस्य, तत्क्षण-कृतकुसुमोपहाररमणीयस्य नातिमहतः परिमण्डलतया विस्तीर्णाविकाशस्य रक्ताशोकतरोरधश्छायायामुपविष्टम्....।"

शब्दार्थ—तस्य च=और उस, एवं विधस्य=इस प्रकार के (पूर्व वर्णित) आश्रम के। अमध्यभागमलंकुर्वाणस्य=मध्यभाग को अलंकृत करने वाले अलक्तकालोहितपल्लवस्य=आलता के समान लाल पत्तों वाले। मुनिजनालम्बित=तपस्वियों के द्वारा लटकाए गये कृष्णाजिन=काले मृगचर्म जलकरङ्कसनाथशाखस्य=जलयुक्त कमण्डलुओं से युक्त शाखाओं वाले, तापसकन्यकाभिः=मुनिकन्याओं के द्वारा मूलभागदत्तपीतपिष्टातकानेकपञ्चाङ्गुलस्य=जड़ पर लगाये गए पीले पिष्टातक (चावल हल्दी के) लेप की अनेक थापों वाले, हरिणशिशुभिः=मृगों के छोटे-छोटे बच्चों द्वारा परिपीयमानालवालसलिलस्य=पिये जा रहे थाल के पानी वाले मुनिकुमारकाबद्धकुशचीरदाम्नः=मुनि बालकों द्वारा करधनी की भाँति कुशों के बने वस्त्रों से लपेटे हुए हरितगोमयोपलेपनविविक्ततलस्य=हरे गोबर से लीपने के कारण पवित्र या स्वच्छ नीचे की भूमि वाले तत्क्षणकृत कुसुमोपहाररमणीयस्य=अभी-अभी अर्थात् ताजे फूल चढ़ाने से मनोहर लगने वाले नातिमहतः=अतिशय विस्तृत नहीं परिमण्डलतया=मण्डलाकार होने के कारण विस्तीर्णावकाशस्य=नीचे के विस्तृत छाया भाग वाले रक्ताशोकतरोः=लाल अशोक वृक्ष के अधः=नीचे छायायामुपविष्टम्=छाया में बैठे हुए....(जाबालि ऋषि को देखा यह आगे से अन्वित है)।

अनुवाद—इस प्रकार (पूर्व वर्णित जाबालि आश्रम) के मध्य भाग को अलंकृत करने वाले, आलते के समान लाल पत्तों वाले, मुनिजनों के द्वारा लटकाए गये काले मृगचर्म और जल के कमण्डलुओं से युक्त शाखाओं वाले, मुनिकन्याओं द्वारा जड़ में लगाये गये (हरिद्रा, चावल से बनाए गये) लेप की विविध थापों वाले, मृगों के बच्चों द्वारा पिये गये थाल के पानी वाले, मुनि कुमारों द्वारा करधनी के रूप में कुशनिर्मित वस्त्रों से बंधे हुए, हरे रंग के गोबर से लीपने के कारण स्वच्छ (पवित्र) नीचे की भूमिभाग वाले, ताजे चढ़ाए गये पुष्पों से मनोहारी, अतिविशाल न होने पर भी मण्डलाकार फैले होने के कारण विस्तृत छाया प्रदेश वाले लाल अशोक वृक्ष के नीचे छाया में बैठे हुए (जाबालि ऋषि को देखा)।

संस्कृत व्याख्या—एवं विधस्य पूर्वोक्त प्रकारेण वर्णितस्य तस्य ऋषेराश्रमस्य मध्यभागं मध्य देशमलंकुर्वाणस्य शोभमानस्य, अशोकतरोः रक्ताशोक नाम्नो वृक्षस्याधस्ताच्छायायामुपविष्टं भगवन्तं जाबालिमपश्यम् इत्यग्रेणान्वयः। अलक्तकालोहिता-

बीनि षष्ठ्यन्तानि पदानि 'रक्ताशोकतरोः' पदस्य विशेषणानि, तान्येव व्याख्यापन्ते **अलक्तकालोहितपल्लवस्य**—अलक्तकं नारीचरणोपभोगयोग्यं यावकं लाक्षारसं वा तद्-वद् लोहितानि रक्तवर्णानि पल्लवानि किसलयानीति आलक्तकवदीषद्रक्तवर्णानि पत्राणि यस्य तस्य **मुनिजनालम्बित कृष्णाजिन जलकरङ्कसनाथशाखस्य**—मुनिजनैः तपस्विजनैः आलम्बितानि स्थापितानि यानि कृष्णाजिनानि कृष्णमृगचर्माणि तथा च जलकरङ्काः नारिकेलास्थिनिर्मिताः जलपात्रविशेषाः अथवा मुनीनां सलिलकमण्डलवः तैः सनाथाः युक्ताः शाखाः स्कन्धाः यस्य तस्य (बहु०) तादृशस्य, **तापसकन्यकाभिः**—मुनिकुमारिकाभिः **मूलभागदत्तपीतपिष्टातकानेकपञ्चाङ्गुलस्य**—मूलभागे मूल प्रदेशे आलवाल-स्थले वा दत्तानि अङ्कितानि पीतपिष्टातकैः पीतं च तत्पिष्टातकं तैः हरिद्रारूप पट-वासचूर्णैः अनेकानि बहूनि पञ्चाङ्गुलानि हस्तबिम्बानि यस्य तस्य (बहु०) तादृशस्य **हरिण-शिशुभिः** मृगपोतकैः **पीयमानालवालसलिलस्य**—पीयमानमास्वाद्यमानम् आलवा-लस्य जलप्रक्षेपणाय मूलदेशेरचितावापस्य सलिलं पयो यस्य तस्य तादृशस्य **मुनिकुमा-रकाबद्धकुशचीरदाम्नः**—मुनीनां कुमारकाः मुनिकुमारकास्तैः तपस्विबालकैः आबद्धं परिवेष्टितं कुशचीराणां दर्भनिर्मितवस्त्राणां दाम रज्जुः यस्मिन् तस्य (बहु०) तादृ-शस्य **हरितगोमयलेपनविविक्ततलस्य**—हरितं हरितवर्णं गोमयं गोपुरीषं तेन यदुपले-पनं शोधनं तेन हेतुना विविक्तं पवित्रीभूतम् तलम् अधोभागो यस्य तस्य (बहु०) **तत्क्षणकृतकुसुमोपहाररमणीयस्य**—तत्क्षणे तस्मिन्नेव काले सद्य इत्यर्थः कृतेन विहितेन कुसुमोपहारेण पुष्पार्पणेन रमणीयस्याधिक मनोहरस्य **नातिमहतः**—नातिविस्तृतस्य तथापि **परिमण्डलतया**—परिगतं मण्डलं परिधिः यस्य सः तस्य भावस्तत्ता तया गोलाकारतया कारणेन **विस्तीर्णावकाशस्य**—विस्तीर्णः अतिदीर्घः अवकाशः अधः-स्थायी छायाप्रदेशः यस्य तस्य **रक्ताशोकतरोः**—रक्तवर्णाशोकवृक्षस्य **अधः**—अधस्तात् **छायायाम्**—अनातपस्थले **उपविष्टम्**—आसीनम्—भगवन्तं जाबालिमपश्यम् इत्यग्रेणान्वयः ।

**विशेष**—प्रस्तुत अंश में वैशम्पायन शुक जाबालि ऋषि का वर्णन करते समय जाबालि आश्रम के मध्य भाग में स्थित अशोक वृक्ष का वर्णन करता है जिसके नीचे जाबालि ऋषि बैठे थे ।

इस गद्यांश में एक ही अशोक वृक्ष के विविधविध सौन्दर्य का वर्णन किया गया है । अलक्तकालोहित पल्लवस्य में वाचक लुप्ता उपमा अलंकार है ।

**पीतपिष्टातक पञ्चाङ्गुलि**—हल्दी और चावल को पीस कर बनाया गया लेप विशेष, जो किसी भी मांगलिक अवसर पर लगाया जाता है । प्राचीन काल में ऋषिकन्याएँ वृक्षों की जड़ों, तनों पर हथेली से इसी लेप की पीली-पीली थाप (हथेली की छाप) लगाया करती थीं । इसी थाप को पञ्चाङ्गुलि कहा गया है ।

**जलकरङ्क**—जल का करवा अर्थात् ऋषियों का जल पात्र कमण्डलु । यह कमण्डलु प्रायः नारियल के खोपड़े का बना होता था । ऋषि लोग इसे पेड़ों पर टाँग दिया करते थे । **आलवाल**—वृक्षों की जड़ के चारों ओर मिट्टी का घेरा जिसमें

पानी डाला जाता है उसे आलवाल या थाल कहा जाता है। **कुशचीरदाम**—कुश की पतली रस्सियों से बनाया गया वस्त्र उसको रस्सी या करधनी के रूप में वृक्षों में लपेटना। □

**"अत्युग्रतपोभिर्भुवनमिव सागरैः कनकगिरिमिव कुलाचलैः क्रतुमिव वैतानवह्निभिः कल्पान्तदिवसमिव रविभिः कालमिव कल्पैः समान्तान्महर्षिभिः परिवृतम्, उग्रशापभीतयेव कम्पितदेहया प्रणयिन्येव विहितकेशग्रहया क्रुद्धयेव कृतभ्रूभङ्गया मत्तयेवाकुलितगमनया प्रसाधितयेव प्रकटिततिलकया जरया गृहीतव्रतयेव भस्मधवलया धवलीकृत विग्रहम् आयामिनीभिः पलित-पाण्डुराभिः तपसा विजित्य मुनिजनमखिलं धर्मपताकाभिरिवोच्छ्रिताभिः अमरलोकमारोढुं पुण्यरज्जुभिरिवोपसंगृहीताभिः अतिदूरप्रवृद्धस्य तपस्तरोः कुसुममञ्जरीभिरिवोद्गताभिर्जटाभि रूपशोभमानम्...."**

**शब्दार्थ**—**सागरैः**=समुद्रों से **भुवनमिव**=पृथ्वी तल के समान, **कुलाचलैः**=कुल पर्वतों से **कनक गिरिमिव**=सुमेरु पर्वत के समान **वैतानवह्निभिः**=यज्ञाग्नियों से **क्रतुमिव**=यज्ञ के समान **रविभिः**=सूर्यों से **कल्पान्तदिवसमिव**=प्रलयकाल के दिन के समान **कल्पैः**=कल्पों से **कालमिव**=काल (समय) के समान **समन्तात्**=चारों ओर से **अत्युग्रतपोभिः**=अतिशय उग्र तप करने वाले **महर्षिभिः**=महर्षियों से **परिवृतम्**:=घिरे हुए (जाबालि ऋषि को देखा) **उग्रशापभीतयेव**=भयङ्कर शाप के भय से मानों **कम्पितदेहया**:=कंपती हुई शरीर वाली (जरया के विशेषण) **प्रणयिन्येव**=कामिनी के समान मानो **विहितकेशग्रहया**=बाल पकड़ लेने वाली **क्रुद्धयेव**=क्रुद्धा स्त्री के समान **कृतभ्रूभङ्गया**=भौं चढ़ा लेने वाली, **मत्तयेव**=मतवाली की तरह **आकुलितगमनया**=लड़खड़ा कर चलने वाली **प्रसाधितयेव**=शृङ्गार किये हुए सी **प्रकटिततिलकया**=तिलों (मस्से) पक्ष में तिलक=बिन्दी को प्रकट करती हुई सी **गृहीतव्रतयेव**=व्रतधारण किये हुए के समान **भस्मधवलया**=भस्म के समान श्वेत पक्ष में—भस्म लगाने से श्वेत **जरया**=वृद्धावस्था (बुढ़ापा) के द्वारा **धवलीकृत विग्रहम्**=श्वेत किए हुए शरीर वाले अर्थात् वृद्धता के कारण श्वेत शरीर वाले (जाबालि ऋषि को) **आयामिनीभिः**=अत्यन्त लम्बी **पलित पाण्डुराभिः**=पक जाने के कारण उजली (श्वेत) (जटाभिः का विशेषण) **तपसा**=तप के द्वारा **विजित्य**=जीतकर **मुनिजनमखिलम्**=समस्त मुनियों को, **धर्मपताकाभिरिव**=धर्म पताकाओं के समान **उच्छ्रिताभिः**=अतिशय ऊँची, **अमरलोकम्**:= स्वर्ग के **आरोढुं**=चढ़ने के लिए **उपसंगृहीताभिः**=एकत्रित की हुई **पुण्यरज्जुमिरिव**=पुण्य की रस्सियों के समान, **अतिदूरप्रवृद्धस्य**=दूर तक फैले हुए **तपस्तरोः**=तपस्या रूपी वृक्ष की **उद्गताभिः**= प्रस्फुटित या निकली हुई **कुसुम मञ्जरीभिरिव**:=फूलों की मंजरियों के समान **जटाभिः**=जटाओं से **उपशोभमानम्**:=शोभित होने वाले (जाबालि ऋषि को देखा)।

**अनुवाद**—(अशोक वृक्ष की छाया में बैठे हुए वे) जाबालि ऋषि कठोर तप करने वाले महर्षियों से चारों ओर से ऐसे घिरे हुए थे जैसे—समुद्रों से पृथ्वी, कुल

पर्वतों से सुमेरु पर्वत, यज्ञाग्नियों से यज्ञ; सूर्यों से प्रलयकाल (कल्प) का अन्तिम दिन, कल्पों से काल घिरा रहता है। वृद्धावस्था (बुढ़ापे) ने उनके शरीर को श्वेत एवं कम्पयुक्त कर दिया था। मानों भयंकर शाप से भयभीत नायिका की भाँति जरा स्वयं कंप रही हो, (सुरत काल में) केश ग्रहण करने वाली प्रेमिका के समान उसने (जरा ने) मानों उनके केश (श्वेत करने के लिए) पकड़ लिये थे। क्रुद्धा नायिका के समान मानों उसने भौंहों को शिथिल कर दिया था, उन्मादिनी नायिका की भाँति मानों उसने उनकी गति लड़खड़ा दी थी। तिलक लगाए हुए सज्जित नायिका की भाँति उसने शरीर पर तिल अर्थात् काले तिल व मस्से उत्पन्न कर दिये थे। भस्म से श्वेत शरीर वाली व्रतधारिणी नायिका के समान वह जरा (वृद्धावस्था) स्वयं भस्म के समान श्वेतवर्ण शरीर वाली थी। उनकी लम्बी तथा बुढ़ापे के कारण पकी हुई उजली जटाएँ ऐसी लग रही थीं जैसे—मानों तपस्या से समस्त मुनियों को जीत कर ऊपर उठाई गई (फहराई गई) धर्म पताकाएँ हों। मानों स्वर्गलोक में चढ़ने के लिए एकत्रित की गई पुण्य की रस्सियाँ हों। मानों बहुत दूर तक बढ़े हुए तप वृक्ष की निकली हुई फूलों की मञ्जरियाँ हों।

**संस्कृत व्याख्या**—सागरैः समुद्रैः भुवनमिव जगत् इव कुलाचलैः सप्तसंख्याक कुलपर्वतैः कनकगिरिमिव—सुमेरुनामानं सुवर्णपर्वतमिव वैतानवह्निभिः—वितानस्य यज्ञस्य इमे इति वैतानाः (वितान शब्दात् स्वार्थेअण् प्रत्ययः, आदि वृद्धिः) यज्ञ सम्बन्धिन इत्यर्थः ये वह्नयः अग्नयः (दक्षिणा गार्हपत्याहवनीपाख्याः) तैः परिवृतम्, क्रतुमिव यज्ञमिव, रविभिः द्वादशसूर्यैः कल्पान्तदिवसमिव कल्पान्तं युगान्तं दिवसमिव दिनमिव प्रलयदिनमिव (प्रलयदिने सर्वेऽपि द्वादशादित्याः सहैवोदिता भवन्तीति पुराणेषु प्रथितम्) कल्पैः कालखण्डविशेषैः कालमिव—अखण्ड समयमिव, समन्तात्, परितः अत्युग्रतपोभिः—अतिशयेनोग्रं कठिनं तपो येषान्तैः तादृशैः अत्युत्कट तपः शालिभिः महर्षिभिः तपस्विभिः परिवृतम् परिवेष्टितम् जाबालिमित्यग्रेणान्वयः।

**उग्रशापभीतयेव**—उग्रः कठोरो यो जाबालेः शापः तेन भीतया त्रस्तया नार्येव कम्पितदेहया कम्पितः चलितो देहः शरीरं यस्याः सा तया जरापक्षे—कम्पितो देहो वपुर्यया तया, प्रणयिन्येव—कामिन्या इव विहितकेशग्रहया—विहितः कृतः केशग्रहः कण्ठावलम्बनम् यया तया तादृश्या (प्रेयसी अपि सुरतकाले पत्युः केशग्रहणं करोति एवमेव जरा अपि केशेषु लग्ना अत एव वार्धक्ये केशानां श्वेतत्वामिति), क्रुद्धयेव—कोप युक्तया नार्येव कृतभ्रूभङ्गया—कृतो विहितः भ्रुवोः भङ्गः कौटिल्यं जरापक्षे कृतः भ्रुवोः विकृतिर्यया तया तादृश्या (यथा क्रुद्धा कापि नारी भ्रूभङ्गं करोति सेव जरापि भ्रुवोः विकृतिं कृतवतीत्यभिप्रायः), मत्तयेवाकुलितगमनया—मत्तयेव मद्यपानेन सोन्मत्तया स्त्रिया इव आकुलितगमनया आकुलितं स्खलितं गमनं गतिः यस्याः सा तया जरापक्षे—स्खलितं गमनं यया तया (मद्यपानोन्मत्ता यथा स्वयं स्खलद् गतिका भवति तथैवेयं जरा वृद्धशरीरं स्खलद्गति विदधाति) प्रसाधितयेव—अलंकृतया नार्येव प्रकटिततिलकया—प्रकटितम् अभिव्यक्तं तिलकं भालबिन्दुः यस्याः सा, जरापक्षे—

अभिव्यक्तानितिलकानि—देहे श्यामवर्णं चिह्नानि यया सा तया तादृश्या (अलंकृता नारी यथा सतिलका भवति तथैवेयं जाता) **गृहीतव्रतयेव**—गृहीतं धृतं व्रतं नियमो यया तया स्त्रिया इव **भस्मधवलया**—भस्म=भूतिः तद्वद् धवलया श्वेतया (व्रतधारिणी भस्मोपलेपन शुभ्रा यथा भवति तथैवेयम्) **जरया** वृद्धावस्थया **धवलीकृतविग्रहम्**—अधवलो धवलः कृतः इति धवलीकृतः शुक्लीकृतो विग्रहः शरीरं यस्य तं तादृशम् जाबालिमित्यग्रेणान्वयः ।

**आयामिनीभिः**—दीर्घाभिः **पलितपाण्डुराभिः**—पलितेन वृद्धावस्थाजनितेन शौक्ल्येन पाण्डुराभिः श्वेतरूपाभिः, **तपसा** तपस्यया **अखिलम्**—सम्पूर्णम् **मुनिजनम्** ऋषिसमूहम् **विजित्य** अभिभूय **उच्छ्रिताभिः** ऊर्ध्वीकृताभिः **धर्मपताकाभिरिव**-पुण्यध्वजैरिव विद्यमानाभिः (जटाभिरित्यस्य विशेषणम्), **अमरलोकम्**—स्वर्गम् **आरोढुम्**—आरोहणं कर्त्तुम् **उपसंगृहीताभिः** एकत्रिताभिः **पुण्यरज्जुभिरिव** पवित्र प्रग्रहैरिव विद्यमानाभिः, **तपस्तरोः**—तपः एव तरुर्वृक्षस्तस्य तपः रूपपादपस्य, **उद्गताभिः** उत्पन्नाभिः **कुसुममञ्जरीभिरिव** पुष्पवल्लरीभिरिव विद्यमानाभिः जटाभिः सटाभिः केशैरित्यर्थः **उपशोभमानम्** भूषितं जाबालिमित्यग्रेणान्वयः । वाक्य खण्डेऽस्मिन् मालोपमाऽलंकारः ।

**विशेष**—जाबालि ऋषि का वर्णन करते हुए कवि ने अनेक कल्पनाओं का आश्रय लिया है । प्रस्तुत खण्ड में तीन प्रमुख वर्णन हैं—१. ऋषियों से घिरे हुए जाबालि, २. बुढ़ापे से श्वेत हुए शरीर वाले जाबालि और ३. जटाओं से शोभित जाबालि को देखा । इन तीनों अंशों में एक ही वस्तु के अनेक उपमान देने के कारण मालोपमा अलंकार एवं कहीं-कहीं उत्प्रेक्षा अलंकार भी है ।

(क) महर्षियों से घिरे हुए अंश में उपमेय जाबालि के भुवन, ऋतु, कल्पान्त-दिवस आदि उपमान तथा महर्षियों के सागर, कुलपर्वत, वैतानवह्नि आदि उपमान देने के कारण मालोपमा अलंकार है । लक्षण—

"मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते ।"

(ख) उग्रशापभीतयेव से, गृहीत धवलया अंश में वृद्धावस्था के कार्यों का वर्णन करते समय 'उग्रशापभीतयेव' क्रुद्धयेव आदि में उत्प्रेक्षा अलंकार है । कुछ विद्वानों ने 'नार्या' विशेष्य पद का अध्याहार कर पूर्णोपमा अलंकार भी स्वीकार किया है ।

(ग) आयामिनीभिः से, जटाभि रूप शोभमानम् अंश में जटाओं के अनेक उपमान होने के कारण मालोपमा अलंकार ही है ।

(घ) **वैतानवह्निभिः** वितान अर्थात् यज्ञ, यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली अग्नियाँ मुख्यतः तीन हैं— १. दक्षिणा २. गार्हपत्य ३. आहवनीय । इनसे जैसे यज्ञ घिरा होता है उसी प्रकार जाबालि ऋषि उग्रतपा महर्षियों से घिरे हुए थे ।

(ङ) **कल्पान्तदिवसमिव रविभिः**—पौराणिक मतानुसार युग के अन्तिम दिन

अथवा प्रलय के दिन सभी १२ सूर्य एक साथ उदित हो जाते हैं इससे वह दिन सूर्यों से घिर जाता है। उसी प्रकार—

(च) **कल्प**—भारतीय कालगणना में समय का सबसे बड़ा खण्ड कल्प कहलाता है। अन्य खण्ड हैं—युग, संवत्सर, वर्ष, मास, सप्ताह, दिन आदि।

(छ) **उग्रशापभीतयेव**—बुढ़ापे के कारण जाबालि का शरीर कंप रहा था उसमें कवि ने कारण की उत्प्रेक्षा कर उग्रशाप से भयभीत होने की बात कही है। इसमें उग्रशापभीतया नार्या इव इस प्रकार 'नार्या' पद का अध्याहार कर लेने पर पूर्णोपमा अलंकार हो जायेगा जिससे कम्पित देहया को दो प्रकार से अर्थसंगति करनी पड़ती है—१. जरा (वृद्धावस्था) के पक्ष में—कम्पितः देहो यया तया (कंपा दिया है शरीर जिसने) २. नारी पक्ष में—कम्पितः देहो यस्याः सा (कंप रहा है शरीर जिसका), इसी प्रकार अन्य पदों में भी व्याख्या दो प्रकार से होगी।

(ज) **तिलक**—तिलक शब्द सामान्यतः मस्तक में लगाए जाने वाले चन्दन, सिन्दूर आदि के लिये प्रयुक्त होता है किन्तु यहाँ इसका एक और भी अर्थ है तिलक अर्थात् तिल व मस्सों के काले-काले निशान। वृद्धावस्था में प्रायः शरीर में तिल व मस्से अधिक हो जाते हैं। यह कवि का अभिप्रेत है।

(झ) **पुण्यरज्जुभिः**—जाबालि के सिर पर श्वेत जटाएँ कवि को ऐसी लगीं जैसे स्वर्ग लोक में चढ़ने के लिए पवित्र रस्सियाँ हों। जटाओं की अतिशय पवित्रता और कल्याणकारिता ध्वनित होती है।

**"उपरचितभस्म त्रिपुण्ड्रकेण तिर्यक्प्रवृत्त त्रिपथगास्रोतस्त्रयेण हिमगिरि शिलातलेनेव ललाटफलकेनोपेतम्, अधोमुखचन्द्रकलाकाराभ्यामवलम्बित बलि शिथिलाभ्यां भ्रूलताभ्यामवष्टभ्यमानदृष्टिम्, अनवरतमन्त्राभ्यास विवृताधरपुटया निष्पतद्भिरतिशुचिभिः सत्यप्ररोहैरिव स्वच्छेन्द्रियवृत्तिभिरिव विद्यागुणैरिव करुणारसप्रवाहैरिव दशनमयूखैर्धवलितपुरोभागम्, उद्वमदमलगङ्गा प्रवाह मिव जह्नुम्, अनवरत सोमोद्गारसुगन्धि निश्वासावकृष्टैर्मूर्तिमद्भिरिव शापाक्षरैः सदा मुखभाग सन्निहितैः परिस्फुरद्भिरलिभिरविरहितम्, अतिकृशतया निम्नतरगण्डगर्तम्, उन्नततर हनुघोणम्, आकरालतारकम् अवशीर्यमाण विरलनयन पक्ष्ममालम्, उद्गत दीर्घरोम रुद्ध श्रवणविवरम्, आनाभिलम्बित कूर्च कलापमाननमादधानम्...."**

**शब्दार्थ**—**उपरचितभस्म त्रिपुण्ड्रकेण**=लगाए गये भस्म के त्रिपुण्ड् से (तीन रेखाओं वाला तिलक) **तिर्यक् प्रवृत्तत्रिपथगास्रोतस्त्रयेण**=तिर्यक=तिरछे होकर, प्रवृत्त=बहने वाली, त्रिपथगा=गङ्गा के, स्रोतस्त्रयेण=तीन धाराओं से युक्त **हिमगिरिशिलातलेनेव**=हिमालय पर्वत की चट्टान के समान **ललाटफलकेन**=भाल (मस्तक) से **उपेतम्**=युक्त **अधोमुखचन्द्रकलाकाराभ्याम्**=अधोमुखी चन्द्रकला के समान आकार वाली **अवलम्बितबलिशिथिलाभ्याम्**=लटकती हुई झुर्रियों से शिथिल हुई, **भ्रूलताभ्याम्**=भौहों से **अवष्टभ्यमानदृष्टिम्**=अवरुद्ध दृष्टि वाले, **अनवरतमन्त्रा-**

**भ्यास विवृताधरपुटया**=निरन्तर मन्त्रों का उच्चारणाभ्यास करने से खुले हुए होटों के कारण **निष्पतद्भिः**=निकलती हुई **अतिशुचिभिः**=अत्यन्त शुभ्र या पवित्र **सत्यप्ररोहैरिव**=सत्य के अंकुरों के समान, **स्वच्छेन्द्रियवृत्तिभिरिव**=निर्मल इन्द्रियों के व्यापार के समान, **विद्यागुणैरिव**=विद्या (ज्ञान) के गुणों के समान **करुणरसप्रवाहैरिव** =करुण रस की धाराओं के समान **दशनमयूखैः**=दाँतों की किरणों से **धवलितपुरोभागम्**=सम्मुख भाग को श्वेत करने वाले, **उद्वमद्**=उगलते हुए **अमलगङ्गाप्रवाहमिव**=श्वेत गङ्गा की धारा को **जह्नुम्**=जह्नु ऋषि के समान (प्रतीत होने वाले), **अनवरत सोमोद्गारसुगन्धि निश्वासावकृष्टैः**=निरन्तर सोमरस की डकार की सुगन्धित सांसों से खींचे गये **मूर्तिमद्भिः**=मूर्तिमान् (शरीरधारी) **शापाक्षरैरिव** = शाप के अक्षरों के समान **सदा**=सदैव **मुखभागसन्निहितैः**=मुख के समीप **परिस्फुरद्भिः** = मंडराने वाले **अलिभिरविरहितम्**=भौरों से युक्त, अतिकृशतप्त=अत्यन्त दुवले होने के कारण **निम्नतरगगडर्तम्**=गहरे गाल के गड्ढों वाले, **उन्नततर हनुघोणम्**=अतिशय ऊँची ठोढ़ी और नासिका वाले, **आकरालतारकम्**=अत्यन्त तीखी (भयावह) नेत्रों की पुतलियों वाले, **अवशीर्यमाणविरल नयनपक्ष्ममालम्**=झड़ती हुई अतएव विरल हुई नेत्रों की बरौनियों (नेत्ररोमराजि) के समूह वाले, **उद्गतदीर्घरोमरुद्धश्रवणविवरम्**=उगे हुए लम्बे-लम्बे रोमों (रोओं) से ढके हुए कान के छेदों वाले, **आनाभिलम्बितकूर्चकलापम्**=नाभि तक लटकते हुए दाढ़ी के बालों वाले **आननम् आदधानम्**=मुख को धारण करने वाले (जाबालि को देखा)।

**अनुवाद**—तिरछे होकर बहने वाली गंगा की तीन धाराओं से युक्त हिमालय पर्वत की चट्टान के समान तीन रेखाओं वाले त्रिपुण्ड्र तिलक से युक्त मस्तक वाले (जाबालि), निम्नाभिमुख चन्द्रमा की कला के समान (वृद्धावस्था के कारण) लटकती हुई झुर्रियों से शिथिल (अर्थात् नीचे को लटकी हुई) भौंहों के कारण बाधा युक्त दृष्टि वाले, निरन्तर मन्त्रोच्चारण से खुले हुए होठों से निकलती हुई अत्यन्त श्वेत (दन्त किरणों) सत्य के अंकुरों के समान, निर्मल इन्द्रियों के व्यापार के समान, विद्या के गुणों के समान, करुण रस की धाराओं के समान दाँतों की किरणों से सम्मुख भाग को श्वेत करने वाले अतएव गंगा की श्वेत धारा को उगलते हुए जह्नु ऋषि के समान प्रतीत होने वाले, निरन्तर सोमरस का पान करने से आने वाली डकार की सुगन्धित श्वांसों से आकर्षित (भ्रमरों से), मूर्तिमान शापाक्षरों से प्रतीत होने वाले, सदा मुखाग्र के समीप मण्डराने वाले भौरों से युक्त, अत्यन्त दुबले शरीर के कारण गहरे गाल के गड्ढों वाले, अतिशय ऊँची ठोढ़ी और नाक वाले, अत्यन्त तीखी या भयावह नेत्र पुतलियों वाले, झड़ने के कारण विरल हुई बरौनियों (नेत्ररोमराजि) वाले, उत्पन्न हुए लम्बे-लम्बे बालों (रोओं) से ढके कर्णछिद्रों वाले, नाभि तक लटकते हुए दाढ़ी के बालों वाले मुख को धारण करने वाले (जाबालि) को देखा)।

**संस्कृत व्याख्या**—जाबालिं वर्णयन् कविस्तस्य मुखावयवानां काल्पनिकं वर्णनं कुर्वन् क्रमशः ललाट—नेत्रदृष्टि—दन्तकिरण—हनु—नासिका—कर्ण कूर्चानाञ्च चित्रणं करोति यथा—**उपरचित भस्मत्रिपुण्ड्रकेण** उपरचितानि विहितानि भस्मना त्रिपुण्ड्रकाणि तिर्यक्रेखात्रययुक्तानि तिलकानि यत्र तेन अत एव **तिर्यक्प्रवृत्तत्रिपथगास्रोतस्त्रयेण**—तिर्यक् यथा स्यात्तथा प्रवृत्तं कुटिलं प्रचलितम् त्रिपथगायाः गङ्गायाः स्रोतस्त्रयं त्रिप्रवाहो यत्र तादृशेन **हिमगिरिशिलातलेनेव**—हिमगिरेः हिमालय पर्वतस्य शिलातलंप्रस्तरपटलमिति हिमगिरिशिलातलं तेन इव शोभमानेन **ललाटफलकेन** भालपट्टकेन **उपेतम्**=युक्तम् आननम् इति योज्यम् । **अधोमुखचन्द्रकलाकाराभ्याम्**= अधोमुखी अवनतानना या चन्द्रकला हिमांशुलेखा तस्याः आकार इव आकारः स्वरूपं ययोस्ताभ्याम् **अवलम्बित बलिशिथिलाभ्याम्**—अवलम्बिता वार्धक्यात् आश्रिता या बलिः शिथिलचर्मरेखा तया शिथिलाभ्यां श्लथत्वान्नेत्रोपरि पतिताभ्यां **भ्रूलताभ्याम्**—कोमल भ्रूभ्याम् **अवष्टभ्यमानदृष्टिम्**—अवष्टभ्यमानाअवरुद्धयमाना दृष्टिः अवलोकन शक्तिः यस्य तत् तादृशम् ।

**अनवरतमन्त्राभ्यासविवृताधरपुटया**—अनवरतं निरन्तरं यो मन्त्राभ्यासः मनजपावृत्तिः तेन विवृतं व्यात्तम् अधरपुटम् ओष्ठसंपुटं यस्य तस्य भावस्तया कारणेन निष्पभ्दिः बहिः निःसरद्भिः **अतिशुचिभिः**—अत्यन्तस्वच्छैः **सत्यप्ररोहैरिव** सत्यस्य सत्यवाचः प्ररोहैः अङ्कुरैरिव, **स्वच्छेन्द्रियवृत्तिभिरिव** स्वच्छाः अवदाताः याः इन्द्रियवृत्तयः इन्द्रियव्यापारास्ताभिरिव **विद्यागुणैरिव**—विद्यानाम् आन्वीक्षिक्यादीनाम् अथवा वेदवेदाङ्गादिचतुर्दशविद्यानां गुणैं विनयादिभिरि **करुणरसप्रवाहैरिव** करुणा दया एव रसः तस्य प्रवाहैरिव स्रोतोभिरिव **दशनमयूखैः**—दशनरश्मिभिः **धवलित पुरोभागम्** धवलितः शुभ्रीकृतः पुरोभागः अग्रप्रदेशो यस्यसः तम् तादृशम् अत एव **उद्वमत्**—बहिरागच्छन् (जह्नु ऋषेः दक्षिणश्रोत्रात्प्रादुर्भूता गङ्गेतिप्रसिद्धिः) **अमलः** स्वच्छः गङ्गाप्रवाहः भागीरथीस्रोतो यस्मात्तं तादृशं **जह्नुम् इव**—जह्नु नामानं ऋषिमिव विद्यमानम । **अनवरतसोमोद्गारसुगन्धिनिःश्वासावकृष्टैः**=अनवरतं निरन्तरं पीतः यः सोमः सोमरसः तस्योद्गारः प्रकटितः वायुजनित शब्दः तेन सुगन्धिना सौरभवता निश्वासेन पवनेन अवकृष्टैः आकर्षितैः **मूर्तिमद्भिः** शरीरधारिभिः **शापाक्षरैरिव**—अभिसम्पात वर्णैरिव **सदा** सर्वदा **मुखभागसन्निहितैः** मुखस्य वदनस्य यो भागः अग्रिम प्रदेशः तत्र सन्निहितैः विद्यमानैः **परिस्फुरद्भिः** सञ्चरद्भिः **अलिभिः** भ्रमरैः **अविरहितम्**—अपरित्यक्तम् । **अतिकृशतया**—अतिशयदुर्बलशरीरहेतुना **निम्नतरगण्डगर्तम्**—निम्नतरौ अतिगम्भीरतरौ गण्डगर्तौ अवटीभूतौ कपोलौ यस्मिनु तत् तादृशम् **उन्नततरहनुघोणम्**—उन्नततरः अत्युच्चा हनुः चिवुकं घोणा नासिका च तत्र तादृशम् **आकरालतारकम्** आ ईषत् करालं वक्रे तारके कनीनिके यत्र तादृशम्, **अवशीर्यमाणविरलनयन पक्ष्ममालम्**—अवशीर्यमाणा वार्धक्यादुत्तरोत्तरं क्षीयमाणा अतएव विरला-असान्द्रा नयनपक्ष्ममाला नेत्रलोमपंक्तिः यत्र तादृशम् **उद्गतदीर्घरोमरुद्धश्रवणविवरम्**—उद्गतानि उत्पन्नानि यानि दीर्घाणि विस्तृतानि रोमाणि श्रोत्रलोमानि तैः

रुद्धे आवृते श्रवणविवरे श्रोत्रछिद्रे यत्र तत् तादृशम्, आनाभिलम्बित कूर्चकलापम्—नाभिपर्यन्तलम्बमानः कूर्चकलापः श्मश्रुसमूहः यत्र तत् तादृशम् आननम्=मुखं वदनमित्यर्थः दधानम् धारयन्तं जाबालिमयश्यत् इत्यग्रेणान्वयः।

विशेष—इस गद्यखण्ड में कवि ने जाबालि के मुखावयवों का वर्णन करते हुए क्रमशः मस्तक, नेत्र, दन्तकिरण, ठोड़ी, नाक, कान और दाढ़ी का वर्णन किया है।

(१) हिमगिरिशिलातलेनेव, सत्यप्ररोहैरिव इत्यादि में उपमा अलंकार है।

(२) गङ्गाप्रवाहमिव जह्नुम्—गङ्गा को उगलने वाले जह्नु ऋषि के समान। यहाँ एक पौराणिक कथा है कि राजा भगीरथ के तप प्रभाव से शङ्कर की जटाओं से निकलकर गंगा जब आगे बढ़ती जा रही थी तो मार्ग में जह्नु ऋषि की यज्ञभूमि मिली। उसे भी गंगा ने अपने प्रवाह से जलमग्न कर दिया इससे क्रुद्ध होकर जह्नु ऋषि ने गंगा प्रवाह को पी लिया तब भगीरथ राजा ने उनकी प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार कर ऋषि ने अपने मुख से गंगा प्रवाह को उगल दिया। इसीलिये गंगा का एक नाम जाह्नवी भी है।

जाबालि ऋषि के खुले हुए मुख से दाँतों की श्वेत किरणें जह्नु के मुख से निकलती हुई श्वेत गङ्गा की धारा सी प्रतीत हो रही थीं।

(३) अनवरतसोमोद्गार—प्राचीन काल में यज्ञ के अवसर पर सोमरस पीने की परम्परा थी। ऋषि जाबालि भी सोमरस पीते थे, अतः उनको जब डकार आती थी तो उनकी श्वांस में सोमरस की गन्ध चारों ओर फैल जाती थी अतः भौंरे मुख के सामने मँडराने लगते थे। कवि ने कृष्ण वर्णीय भौंरों में पापाक्षरों की सम्भावना की है अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(४) प्राचीन ऋषि प्रायः दाढ़ी रखते थे और वह दाढ़ी बहुत बढ़ जाने के कारण नाभि तक दीर्घ हो जाती थी। जाबालि की भी दाढ़ी इसी प्रकार नाभि तक लम्बी थी।

**अतिचपलानामिन्द्रियाश्वानाम्, अन्तः संयमनरज्जुभिरिवाततताभिः कण्ठनाडीभिर्निरन्तरावनद्ध कन्धरम्, समुन्नत विरलास्थि पञ्जरम्, अंसावलम्बितधवलयज्ञोपवीतम्, अनिलवशजनिततनु तरंगभंगम उत्प्लवमाननवमृणालमिव मन्दाकिनीप्रवाहम्, अकलुषमङ्गमुद्वहन्तम्, अमलस्फटिक शकलघटितमक्षवलयमत्युज्ज्वल स्थूलमुक्ताफलग्रथितं सरस्वतीहारमिव चलदङ्गुलि विवरगतमावर्तयन्तम्, अनवरतभ्रमिततारकाचक्रमपरमिव ध्रुवम्....।**

शब्दार्थ—अतिचपलानामिन्द्रियाश्वानाम्=अत्यन्त चञ्चल इन्द्रिय रूपी अश्वों की, अन्तःसंयमनरज्जुभिरिव=भीतर ही भीतर बाँधने के लिए रस्सियों (लगाम) की भाँति, आततताभिः=फैली हुई कण्ठनाडीभिः=गले की नसों से, निरन्तरावनद्धकन्धरम्=निरन्तर जकड़ी हुई ग्रीवा वाले, समुन्नतविरलास्थिपञ्जरम्=उभरी हुई तथा दूर-दूर विद्यमान हड्डियों के ढाँचे वाले अंसावलम्बितधवलयज्ञोपवी-

**तम्** =कंधे पर लटकते हुए श्वेत यज्ञोपवीत वाले, **अनिलवशजनित तनुतरङ्गभङ्गम्** =वायु के वेग से उत्पन्न हल्की-हल्की तरंगों वाले **उत्प्लवमाननवमृणालमिव** = तैरते हुए नवीन कमलनाल वाले **मन्दाकिनी प्रवाहम्**=गङ्गा के प्रवाह के समान, **अकलुषम्** =निर्मल, निष्कलङ्क **अङ्गम् उद्वहन्तम्**=शरीर को धारण करने वाले, **अमलस्फटिक शकलघटितम्** =शुभ्र स्फटिक मणि के टुकड़ों (गुरियों) से गुंथी हुई **अक्षवलयम्**=जपमाला को, **अत्युज्वलस्थूलमुक्ताफलग्रथितम् हारमिव**=अत्यधिक श्वेत बड़े-बड़े मोतियों से गुंथे हुए **सरस्वती हारमिव**=देवी सरस्वती के हार के समान **चलदङ्गुलिविवरगतमावर्तयन्तम्**=चञ्चल उंगलियों के मध्य घुमाते हुए **अनवरतभ्रमिततारकाचक्रम्**=निरन्तर घूमते हुए तारामण्डल से युक्त, **अपरम् ध्रुवम् इव**=दूसरे ध्रुव नक्षत्र के समान (प्रतीत होने वाले जावालि को देखा)।

**अनुवाद**—अति चञ्चल इन्द्रिय रूपी घोड़ों को भीतर ही बाँधने वाली रस्सियों अथवा इन्द्रियों रूपी घोड़ों को वश में करने वाली लगाम के समान बड़ी-बड़ी गले की नसों से युक्त (जकड़ी हुई) ग्रीवा वाले, उभरी हुई एवं विरल हड्डियों वाले, कन्धे पर लटकते हुए यज्ञोपवीत से हवा के कारण उत्पन्न हल्की-हल्की तरंगों में तैरते हुए नवीन कमलनाल से युक्त गंगा की धारा के समान निष्कलुष शरीर को धारण करने वाले, अत्यन्त श्वेत बड़े-बड़े मोतियों से गुंथे हुए सरस्वती के हार के समान स्वच्छ स्फटिक के टुकड़ों (गुरियों) से गुंथी हुई जपमाला को अपनी चंचल उंगलियों के मध्य घुमाते हुए अतएव निरन्तर घूमते हुए नक्षत्र मण्डल से युक्त ध्रुव नक्षत्र के समान (शोभायमान जावालि को देखा)।

**संस्कृत व्याख्या**—महर्षिणः जावालेःवर्णने तस्याङ्गानां चित्रणम् कृतं कविना यथा—**अतिचपलानाम्** भृशं चञ्चल स्वभावानाम् **इन्द्रियाश्वानाम्**—इन्द्रियाणि श्रोत्र-त्वक्चक्षुरादीनि तान्येवाश्वाः तेषाम् इन्द्रियरूपहयानाम् (अत्ररूपकालंकारः) **अन्तः संयमन रज्जुभिरिव**—अन्तः मध्ये शरीरान्तर्गतमेवेत्यर्थः संयमनाय बन्धनाय नियन्त्रणाय वा रज्जुभिरिव प्रग्रहैरिव **आतताभिः** अतिवितृस्ताभिः **कण्ठनाडीभिः** गलस्थानीयस्नायुभिः **निरन्तरावनद्धकन्धरम्** निरन्तरं सततं यथा स्यात्तथा अवनद्धा संयुता संवद्धा वा कन्धरा ग्रीवा यस्मिन् तत् तादृशम् अङ्गमित्यग्रेणान्वयः, **समुन्नतविरलास्थिपञ्जरम्**-समुन्नतम् ऊर्ध्वगतं स्पष्टतयादृश्यमानमित्यर्थः, विरलम् असंहतम् अस्थिपञ्जरम् कङ्कालं यस्य तत् तादृशम् अतिकृशत्वात् स्पष्ट प्रतीयमानास्थिसमूहमात्रमिवाङ्गम्, **अंसावलम्बित धवलयज्ञोपवीतम्**—अंसे वामस्कन्धे अवलम्बितं विद्यमानं धवलं शुभ्रं यज्ञोपवीतं यज्ञसूत्रं यस्मिन् तत् तादृशम्, अतएव **अनिलवशजनिततनुतरङ्गभङ्गम्**=अनिलवशेन वायुप्रभावेण जनितः उत्पादितः तनूनां लघूनां तरङ्गाणां वीचीनां भङ्गाः खण्डाः यस्मिन् तत् वायुवेगोत्पादितलघूर्मि खण्डमण्डितं तथा च **उत्प्लवमान नवमृणालम्**—उत्प्लवमानं संतरत् नवं नूतनं मृणालं कमलनालं यस्मिन् तम् **मन्दाकिनी प्रवाहमिव**—मन्दाकिन्याः गङ्गायाः प्रवाहम् स्रोत इव कमल-

नालं संयुतगङ्गास्रोत इव **अकलुषम्** निष्पापं निर्मलं वा अङ्गम् शरीरम् **उद्वहन्तम्** धारयन्तम् (जाबालिमित्यस्य विशेषणम्) ।

**अत्युज्ज्वलस्थूलमुक्ताफलग्रथितं**—अत्युज्जवलानि अतिशुभ्रवर्णानि स्थूलानि पृथुलानि यानि मुक्ता फलानि मौक्तिकानि तैः ग्रथितं गुम्फितं **सरस्वती हारमिव**—सरस्वत्याः वाग्देव्याः हारमिव कण्ठमालामिव शोभमानम्, **चलदङ्गुलिविवरगतम्**—चलन्तीनां जपकाले अक्षवलयाकर्षणेन चपलीभूतानाम् अङ्गुलीनां कराग्रावयवानां विवरगतम् रन्ध्रगतम् **अमलस्फटिकशकलघटितम्**—अमलैः स्वच्छैः स्फटिकशकलैः स्फटिक नाममणि खण्डैः घटितं रचितम् **अक्षवलजम्**—जपमालाम् **आवर्त्तयन्तम्**—यथाक्रमं भ्रामयन्तम् अतएव **अनवरत भ्रमिततारकाचक्रम्**—अनवरतं सततं यथा स्यात्तथा भ्रमितं पर्यटितं तारकाचक्रम् नक्षत्रमण्डलं यत्र तथोक्तम् **अपरम द्वितीयं ध्रुवम्** — ध्रुवनामनक्षत्र विशेषमिव शोभमानं जावालिमपश्यमित्यग्रेणान्वयः ।

**विशेष**—इस गद्य खण्ड में कवि ने जाबालि ऋषि के ग्रीवा यज्ञोपवीत और जपमाला का काव्यात्मक वर्णन किया है ।

(क) इन्द्रियाश्वानाम्—इस पद में रूपक अलंकार है । सांसारिक विषयों के प्रति सतत् आकर्षित होते रहने के कारण चपल इन्द्रियों में घोड़े का रूपक दिया गया है । कठोपनिषद् में धर्मराज ने नचिकेता को उपदेश देते हुए कहा है—

"इन्द्रियाणि हयानाहु विषयांस्तेषु गोचरान्" ।

(ख) जर्जर शरीर जावालि की ग्रीवा की नसें अत्यधिक उभरी हुई थीं इसलिये उनमें बन्धन रज्जु की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

(ग) ऋषि के कन्धे पर लटकते हुए श्वेत यज्ञोपवीत में मृणाल (कमल नाल) की उपमा दी गई है इसमें श्वेत वर्ण सादृश्य है ।

(घ) जपमाला में हार की तथा ऋषि में ध्रुव की उपमा दी गई है । ध्रुव उत्तानपाद राजा के पुत्र का नाम था । बाल्यावस्था में उग्रतप करने के कारण नक्षत्र के रूप में आज भी उत्तर दिशा में एक ही स्थान पर उसकी स्थिति मानी जाती है । ध्रुव नक्षत्र से भिन्न सभी तारे घूमते रहते हैं । यहाँ जैसे ध्रुव करोड़ों वर्षों से एक ही स्थान पर स्थिर है और सम्पूर्ण तारामण्डल घूमता रहता है उसी प्रकार जाबालि ऋषि एक ही स्थान पर बैठकर निरन्तर जप करते रहते हैं । यह भाव ध्वनित है ।

कालिदास ने परिवह नायक वायु क्षेत्र में तारों की स्थिति स्वीकार की है—

त्रिस्रोतसं वहति यो गगन प्रतिष्ठां
ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः ।
यस्य द्वितीय हरि विक्रम निस्तमस्कं
वायोरिदं परिवहस्य वदन्ति मार्गम् ॥

**उन्नमता शिराजालकेन जरत्कल्पतरुमिव परिणतलतासञ्चयेन निरन्तरनिचितम्, अमलेन चन्द्रांशुभिरिवामृतफेनैरिव गुणसन्तानतन्तुभिरिव निर्मितेन मानससरोजलक्षालनशुचिना दुकूल वल्कलेन द्वितीयेनेव जराजालकेन संच्छादितम्, आसन्नवर्त्तिना मन्दाकिनीसलिलपूर्णेन त्रिदण्डोपविष्टेन स्फाटिककमण्डलुना विकचपुण्डरीकराशिमिव राजहंसेनोपशोभमानम्....।**

**शब्दार्थ**—**उन्नमता**=ऊपर को उभरी हुई, **शिराजालकेन**=धमनियों के समूह से, **जरत्कल्पतरुम् इव**=प्राचीन कल्पवृक्ष के समान, **परिणतलता सञ्चयेन**=पकी हुई लताओं के समूह से **निरन्तरनिचितम्**=घने रूप में व्याप्त, **अमलेन**=श्वेत **चन्द्रांशुभिरिव**=चन्द्रकिरणों के द्वारा मानों, **अमृतफेनैरिव**=अमृत के फेन सी, **गुणसन्तानतन्तुभिरिव**=दया धर्म आदि गुण तन्तुओं से मानों **निर्मितेन**=बने हुए **मानससरोजलक्षालनशुचिना**=मानसरोवर के जल में धोने से स्वच्छ पवित्र **दुकूलवल्कलेन**=छाल के बने हुए वस्त्र से **द्वितीयेन**=दूसरे **जराजालकेन**=बुढ़ापे के जाल से **संच्छादितम् इव**=ढँके हुए से, **आसन्नवर्तिना**=समीप में विद्यमान **मन्दाकिनी सलिलपूर्णेन**=गङ्गाजल से भरे हुए **त्रिदण्डोपविष्टेन**=तिपाई पर रखे हुए **स्फाटिककमण्डलुना**=स्फटिकमणि निर्मित कमण्डलु से **विकचपुण्डरीकराशिमिव**=खिले हुए श्वेत कमलों के समान **राजहंसेन**=राजहंस से **उपशोभमानम्**=शोभायमान।

**अनुवाद**—ऊपर को उभरी हुई धमनियों से गहनतया व्याप्त अतएव पकी हुई लताओं से युक्त प्राचीन कल्पवृक्ष से प्रतीत होने वाले, निर्मल अतएव मानों चन्द्रकिरणों से (अथवा) अमृत के फेनों से (अथवा) गुण समूह के धागों से मानों निर्मित एवं मानसरोवर के जल से धुलने के कारण पवित्र स्वच्छ वल्कल वस्त्र से ढँके हुए मानों द्वितीय वार्धक्य जाल से ढँके हुए हों, समीपस्थित गङ्गाजल से भरे हुए तिपाई पर रखे हुए हंस पक्ष में तीन दण्ड की समयावधि से स्थित राजहंस से सुशोभित विकसित श्वेत कमल समूह के समान स्फटिकमणि निर्मित कमण्डलु से शोभित (जाबालि ऋषि को देखा)।

**संस्कृत व्याख्या**—**परिणतलता सञ्चयेन**—परिणतानां सम्यक् पक्वानां लतानां व्रततीनां सञ्चयेन समूहेन **निरन्तरनिचितम्**—निरन्तरं सान्द्रं यथा स्यात्तथा (सान्द्रभावेन) निचितं व्याप्तम् **जरत्कल्पतरुमिव**—पुरातनकल्पवृक्षमिवेत्युपमा, **उन्नमता** उपरिस्फुरता उत्+नम+शतृ (तृ० एक व०) **शिराजालकेन**—शिराणां जालकं शिराजालकं तेन धमनिसमूहेन निरन्तनिचितं (जाबालि मित्यग्रेणान्वयः) **अमलेन** निर्मलेन, अतएव **चन्द्रांशुभिरिव**—चन्द्रांशुभिरिव **अमृतफेनैरिव** सुधाफेन समूहैरिव वा, **गुणसन्तानतन्तुभिरिव**—गुणानां दया दाक्षिण्यादीनां सन्तानाः समूहास्तेषां तन्तवः अथवा समूहाः एव तन्तवः सूत्राणि तैरिव **निर्मितेन** रचितेन **मानस सरोजलक्षालनशुचिना**-मानससरसः मानसाख्य सरोवरस्य जलेन यत् क्षालनं शुचीकरणं तेन शुचिना पवित्रेण स्वच्छेन वा, **द्वितीयेन** अपरेण **जराजालकेन** वार्धक्यजालकेनेव वार्धक्य समू-

हेंने वेत्युत्प्रेक्षा दुकूलवल्कलेन—दुकूलवत् क्षौमवसनवत् वल्कलेन वृक्षत्वग्रचितेन वस्त्रेण संच्छादितम्—आवृतम् । आसन्नवर्तिना आसन्नं निकटं वर्तते इति तच्छील: तेन पार्श्ववर्तिना मन्दाकिनीसलिलपूर्णेन मन्दाकिन्याः गङ्गायाः सलिलं जलं तेन पूर्णेन भृतेन अथ च त्रिदण्डोपविष्टेन—त्रिदण्डस्त्रिपादिका (तिपाई इति हिन्द्याम्) तत्रोपविष्टेन तदुपरिस्थितेन राजहंसपक्षे—त्रिदण्डं कालावधि त्रिदण्डादुपविष्टेन राजहंसेन कादम्बेन विकचपुण्डरीकराशिमिव विकचः प्रस्फुटितः यः पुण्डरीकराशिः श्वेत कमल समूहः तमिव उपशोभमानम्=विराजमानं जाबालिमपश्यमित्यग्रेणान्वयः ।

विशेष—इस गद्यखण्ड में कवि ने वृद्ध जाबालि के धमनीजाल एवं उनके वल्कल वस्त्र का वर्णन किया है ।

(क) 'जरत्कल्पतरुमिव' पद में उपमा अलंकार है । जाबालि के सम्पूर्ण शरीर में धमनियाँ उभर आई हैं जैसे प्राचीन कल्पवृक्ष में पुरानी पकी हुई लताएँ लिपटी हों । यहाँ कल्पवृक्ष से उपमा देकर कवि ने जाबालि की दीर्घायु को व्यञ्जित किया है ।

(ख) वल्कल वस्त्र में उभरी हुई शिराओं की श्वेतिमा को ध्यान में रख कर उस वस्त्र के निर्माण में चन्द्र किरणों को अमृत फेन को तथा दया दाक्षिण्यादि गुणों को हेतु रूप में सम्भावित करने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार तथा मानसरोवर के जल में धोने से पवित्र होने के कारण काव्यलिङ्ग अलंकार है । इस प्रकार उत्प्रेक्षा और काव्यलिंग का अङ्गाङ्गि भाव संकर अलंकार है । वल्कल वस्त्र में द्वितीय वृद्धावस्था जन्य शिराजाल की कल्पना भी स्पृहणीय है ।

(ग) समीपस्थ स्फटिक मणि रचित कमण्डलु में राजहंस की उपमा दी गई है ।

**स्थैर्येणाचलानां गाम्भीर्येण सागराणां, तेजसा सवितुः प्रशमेन तुषाररश्मेः निर्मलतयाऽम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्वाणम्, वैनतेयमिव स्वप्रभावोपात्तसकल द्विजाधिपत्यम्, कमलासनमिवाश्रमगुरुम्, जरच्चन्दनतरुमिव भुजङ्गनिर्मोक धवलजटाकुलम्, प्रशस्तवारणमिव प्रलम्बकर्णबालम्, बृहस्पतिमिवाजन्मवर्द्धितकचम्, दिवसमिवोद्यदर्क बिम्बभास्वरमुखम्, शरत्कालमिव क्षीणवर्षम, शन्तनुमिवं प्रियसत्यव्रतम्, अम्बिकाकरतलमिव रुद्राक्षग्रहणनिपुणम्, शिशिरसमयसूर्य्यमिव कृत्तोत्तरासङ्गम्, बडवानलमिव सततपयोभक्ष्यम्, शून्यनगरमिव दीनानाथ विपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्ट शरीरं भगवन्तं जाबालिमपश्यम् ।**

**शब्दार्थ**—**स्थैर्य्येण**=स्थिरता से **अचलानाम्**=पर्वतों का **गाम्भीर्येण**=गम्भीरता से **सागराणाम्**=समुद्रों का **तेजसा**=तेज से **सवितुः**=सूर्य का, **प्रशमेन**=शान्ति से **तुषाररश्मेः**=चन्द्रमा का **निर्मलतया**=निर्मलता से **अम्बरतलस्य**=आकाश का **संविभागमिव**=बंटवारा सा **कुर्व्वाणम्**=करने वाले या करते हुए, **वैनतेयमिव**=गरुण के समान **स्वप्रभावोपात्तसकलद्विजाधिपत्यम्**=अपने प्रभाव से प्राप्त कर लिया है समस्त ब्राह्मणों का स्वामित्व जिन्होंने पक्ष में—समस्त पक्षियों का स्वामित्व, **कमलासनमिव**=ब्रह्मा के समान **आश्रमगुरुम्**=अपने आश्रम के गुरु पक्ष में चारों

आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास आश्रमों के गुरु, **जरच्चन्दनतरुमिव**= प्राचीन चन्दन के वृक्ष के समान **भुजङ्गनिर्म्मोकधवलजटाकुलम्**=सर्प की केंचुली के समान श्वेत जटाओं से घिरे हुए **पक्ष में**-सर्प की केंचुली रूपी श्वेत जटाओं से व्याप्त, **प्रशस्तवारणमिव**=श्रेष्ठ हाथी के समान **प्रलम्बकर्णबालम्**=बड़े-बड़े कान के बालों वाले, **बृहस्पतिमिव**=सुरगुरु वृहस्पति के समान **आजन्मवर्द्धितकचम्**=जन्म से ही बालों को बढ़ाने वाले **वृहस्पति पक्ष में**—जन्म काल से ही कच नामक अपने पुत्र का पालन-पोषण करने वाले, **दिवसमिव**=दिन के समान **उद्यदर्कबिम्बभास्वर मुखम्**= उदीयमान सूर्यविम्ब के समान दीप्तिमान मुख वाले **दिवस पक्ष में**—उदीयमान सूर्य-मण्डल से प्रकाशित आरम्भ भाग वाले, **शरत्कालमिव**=शरद ऋतु के समान **क्षीणवर्षम्**=क्षीण आयु वाले **शरत्पक्ष में**—क्षीण वर्षा वाले, **शन्तनुमिव**=भीष्म के पिता शन्तनु राजा के समान **प्रियसत्यव्रतम्**=सत्य के व्रत से प्रेम करने वाले, **शन्तनु पक्ष में**—अपने पुत्र प्रियव्रत से स्नेह रखने वाले, **अम्बिकाकरतलमिव**=भगवती पार्वती के हाथ के समान **रुद्राक्षग्रहणनिपुणम्**=जपमाला रुद्राक्षमाला को धारण करने में चतुर **अम्बिकाकर पक्ष में**—शङ्कर की आँख को ढँकने में कुशल, **शिशिरसमय सूर्यमिव**=शिशिर ऋतु के सूर्य के समान **कृतोत्तरासंगम्**=उत्तरीय वस्त्र को धारण करने वाले **शिशिर सूर्य पक्ष में**—उत्तर दिशा को ग्रहण करने वाले, **बडवानलमिव**= बडवा नामक अग्नि के समान **सततपयोभक्षयम्**=सदैव दूध का ही आहार लेने वाले, **बडवाग्नि पक्ष में**—सदैव जल का भोजन करने वाले, **शून्यनगरमिव**=उजड़े हुए नगर के समान **दीनानाथविपन्नशरणम्**—दरिद्र, अनाथ और असहाय लोगों को शरण देने वाले **शून्यनगर पक्ष में**—शोभा शून्य, मनुष्य रहित खण्डहर जैसे घरों को अपनी शरण में रखने वाले, **पशुपतिमिव**=भगवान् शङ्कर के समान **भस्मपाण्डु-रोमाश्लिष्ट शरीरम्**=भस्म के समान श्वेत रोओं से भरे हुए शरीर वाले **पशुपति-पक्ष में**—भस्म से श्वेत रोओं से युक्त शरीर वाले **भगवन्तम्**=भगवान् **जाबालिम्**= जाबालि नाम के ऋषि को **अपश्यम्**=देखा।

**अनुवाद**—अपनी स्थिरता से पर्वतों का, गम्भीरता से समुद्र का, तेज से सूर्य का, शान्ति से चन्द्रमा का, निर्मलता से आकाश का मानों बँटवारा करते हुए अर्थात् अपने में विद्यमान स्थिरता, गम्भीरता आदि गुणों का पर्वत समुद्र आदि को कुछ अंश देते हुए, अपने प्रभाव से समस्त पक्षियों का स्वामित्व (पक्षिराजत्व) प्राप्त करने वाले गरुण के समान अपने तप प्रभाव से समस्त ब्राह्मणों का स्वामित्व प्राप्त करने वाले, ब्रह्मचर्यग्रहस्थादि चारों आश्रमों के गुरु ब्रह्मा के समान अपने आश्रम के गुरु, सर्पों की केंचुली रूपी जटाओं से युक्त पुराने चन्दनवृक्ष के समान सर्प की केंचुली सदृश श्वेत जटाओं से युक्त, श्रेष्ठ हाथी के समान लम्बे-लम्बे कान के बालों वाले, जन्म से ही अपने पुत्र कच का पालन-पोषण करने वाले वृहस्पति के समान जन्म से ही बाल (केश) बढ़ाने वाले, उदित होते हुए सूर्य के बिम्ब से देदीप्यमान आरम्भ भाग वाले दिन के समान उदीयमान सूर्यबिम्ब के समान चमकते हुए मुख वाले,

क्षीण वर्षा वाले, शरद ऋतु के समय के समान क्षीण आयु वाले, अपने पुत्र सत्यव्रत से स्नेह करने वाले राजा शन्तनु के समान सत्य के व्रत से प्रेम करने वाले, भगवान् शङ्कर के नेत्र को बन्द करने में निपुण पार्वती की हथेली के समान रुद्राक्ष (जपमाला) धारण करने में कुशल, उत्तर दिशा का आश्रय लेने वाले, शिशिर ऋतु के सूर्य के समान उत्तरीय (वस्त्र) को धारण करने वाले, निरन्तर जलभक्षण करने वाली वडवाग्नि के समान निरन्तर दुग्ध का आहार लेने वाले, शोभाहीन, मनुष्य रहित टूटे-फूटे मकानों के आश्रय शून्य नगर के समान दरिद्र, आश्रयहीन और असहाय लोगों को शरण देने वाले, भस्म से श्वेत रोओं से युक्त भगवान् शिव के समान भस्म के समान श्वेत रोओं से युक्त शरीर वाले भगवान जाबालि को देखा।

**संस्कृत व्याख्या—स्थैर्येण** स्थिरतया **अचलानाम्**—पर्वतानाम् **गाम्भीर्येण** गम्भीर स्वभावतया **सागराणां** समुद्राणाम् **तेजसा** प्रतापेन **सवितुः** सूर्यस्य **प्रशमेन** शान्त्या **तुषाररश्मेः** तुषारोहिमः तद्वत् शीतलाः रश्मयः किरणाः यस्य तस्य चन्द्रमसः **निर्मलतया** अतिस्वच्छतया **अम्बरतलस्य** आकाशस्य **संविभागं** वितरणम्—स्वस्थैर्य गाम्भीर्यादि गुणानां परेभ्यः पर्वतसमुद्रादिभ्यो वितरणं किञ्चिद्भागं विभज्य प्रतिपादनम् कुर्वाणम् विदधानमिव, जाबालिम् इत्यस्य विशेषणम्। जाबालि ऋषिः स्थैर्य, गाम्भीर्य तेजः प्रशम निर्मलतादि गुणानामेकस्थानम् इति व्यज्यते। तस्मादेव स्थैर्यादीनां किञ्चिद्भागः पर्वतादिषु समागतस्तथा च ते स्थैर्यादीनां मानकत्वेन प्रसिद्धिं गताः।

**वैनतेयमिव**—विनतायाः अपत्यं पुमान् वैनतेयः, विनतापुत्रं गरुडमिव **स्वप्रभावोपात्तसकलद्विजाधिपत्यम्**—स्वस्यात्मनः प्रभावेण तेजसा माहात्म्येन वा उपात्तं प्राप्तं सकलानां=समस्तानाम् द्विजानां ब्राह्मणानाम् आधिपत्यं स्वामित्वं येन सः तम् (जाबालिम्) **गरुड पक्षे**—स्वप्रभावेण स्वशक्त्या पराक्रमेण वा उपात्तं प्राप्तं सकलेषु समस्तेषु द्विजेषु पक्षिषु आधिपत्यम् स्वामित्वं येन तम्। **कमलासनम् इव**=कमलं सरोजम् आसनं यस्य तं विरञ्चिमिव **आश्रमगुरुम्** -आश्रमस्य तपोभूमेः गुरुम् आचार्यम् (जाबालिम्), **कमलासन पक्षे**—आश्रमाणां ब्रह्मचर्यगार्हस्थ्यवानप्रस्थसन्यासानां गुरुं नियामकम्। ब्रह्मणैव वर्णाश्रमा नियन्त्रिता इति पुराणेषु प्रसिद्धम्। **जरच्चन्दनतरुमिव**—जरत् पुरातनः चन्दनतरुः मलयजवृक्षः तमिव **भुजङ्गनिर्मोकधवलजटाकुलम्**—भुजङ्गानां सर्पाणां निर्मोकाः कञ्चुकाः (केंचुली इति हिन्द्याम्) तद्वद्धवलाभिः श्वेताभिः जटाभिः शिरः केशैः आकुलम् व्याप्तम् **चन्दनतरुपक्षे**—भुजङ्गनिर्मोकैः सर्पकञ्चुकैः धवलाः श्वेताः जटाः वृक्षमूलानि ताभिः आकुलम् संकीर्णम्। प्राचीनचन्दनवृक्षेषु सुगन्धिविशेषात् सर्पाणां निवास इति प्रसिद्धिः।

**प्रशस्तवारणमिव**—प्रशस्तः श्रेष्ठलक्षणोपेतः वारणः वारणपतिः हस्तिनायकः तमिव **प्रलम्बकर्णबालम्** प्रलम्बाः विस्तीर्णाः कर्णबालाः श्रवणलोमानि यस्य तं जाबालिम्, **वारणपक्षे**—प्रलम्बाः अतिविस्तृताः कर्णयोः श्रोत्रयोः बालाः पुच्छकेशाश्च यस्य तम्। **बृहस्पतिमिव**—सुरगुरुमिव **आजन्मवर्द्धितकूर्चम्**—आजन्म जन्मप्रभृति वर्द्धिताः

**क्षौरकर्माभावात्** वृद्धिं प्रापिताः कचाः केशाः येन तम् (जाबालिम्) **बृहस्पति पक्षे**—आजन्म जन्मन आरभ्य वर्द्धितः पालनेव पोषणेन वृद्धिं प्रापितः कचः कचनामधेयः स्वसुतो येन तम् तादृशम् **दिवसमिव**—दिवसः वासरः तमिव **उद्यदर्कविम्बभास्वरमुखम्**—उद्यत् उद्गच्छत् यत् अर्कविम्वं सूर्यमण्डलं तद्वत् भास्वरं देदीप्यमानं मुखम् आननं यस्य तम्, **दिवसपक्षे**—उदीयमानसूर्यविम्बेन भास्वरं प्रभाशीलं मुखं प्रारम्भिकभागो यस्य तम्। **शरत्कालम् इव** वर्षात्ययसमयमिव शरद् ऋतुसमयमिवेत्यर्थः **क्षीणवर्षम्**—क्षीणानि व्यतीतानि वर्षाणि वयसः हायनानि यस्य तम् यत्किञ्चिदवशिष्टावस्थाकमित्यर्थः **शरत्पक्षे**—क्षीणं स्वल्पत्वम् उपगता वर्षा वृष्टिर्यस्मिन् तम्। **शान्तनुमिव**—शान्तनुनामानं भीष्मपितामहपितरमिव **प्रियसत्यव्रतम्**—प्रियं प्रेमास्पदम् अभिलषितमित्यर्थः सत्यस्य सत्यभाषणस्य सत्याचारस्य वा व्रतं नियमः यस्य तं, **शान्तनु पक्षे**—प्रियः सत्यव्रतः एतन्नामकः स्वपुत्रो भीष्मः यस्य सः तम्।

**अम्बिकाकरतलमिव**—अम्बिकायाः भगवत्याः भवान्याः करतलं हस्तमिव **रुद्राक्षग्रहणनिपुणम्**—रुद्राक्षस्य रुद्राक्षमालायाः ग्रहणे उपादाने निपुणम् प्रवीणम् **अम्बिका पक्षे**—रुद्रस्य भगवतः शंकरस्य अक्षिणी नयने तयोः ग्रहणे पिधाने निपुणं दक्षम्। **शिशिरसमयसूर्यमिव**—शिशिरसमयः शीतकालः तस्य तत्कालीनस्य सूर्यम् आदित्यम् इव **कृतोत्तरासङ्गम्**—कृतः भुजान्तराले धारितः उत्तरासङ्गः उत्तरीय वस्त्रं येन तम् जाबालि पक्षे—कृतो विहितः उत्तरस्याः दिशः आसङ्गः संसर्गो येन तम् (शिशिरर्तौ सूर्य उत्तरायणो भवतीति हेतोः) **बडवानलमिव**—बडवा अश्वा तदाकारः अग्निः बडवाग्निः समुद्रानल इत्यर्थः तमिव, **सततपयोभक्ष्यम्**—सततं सर्वदा पयो दुग्धमेव भक्ष्यं भोजनं यस्यं तं जाबालिम्' पक्षे पयो जलमेव सागरजलमेव भक्ष्यं भोज्यं यस्य तम्। **शून्यनगरमिव** जनरहितं नगरमिव पुरमिव **दीनानाथविपन्नशरणम्**—दीनानां दुर्गतानां अनाथानां स्वामि संरक्षक रहितानां विपन्नानां व्याधि पीडितानां च शरणम् शरणदातारं रक्षकम् **शून्यनगर पक्षे**—दीनानि शोभाशून्यानि अनाथानि निवासि जनरहितानि विपन्नानि यतस्ततः शीर्णानि भग्नानीत्यर्थः शरणानि गृहाणि यत्र तत् तादृशम्। **पशुपतिमिव** भगवन्तं महेश्वरम् इव **भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्ट शरीरम्**—भस्म इव भूतिमिव,पाण्डूनि शुभ्रवर्णानि वार्धक्यात् पलितानीत्यर्थः रोमाणि लोमानि तैः आश्लिष्टं समन्तात् सक्तं शरीरं वपुर्यस्य तम् जाबालिम्। पक्षे भस्मना भूतिलेपेन पाण्डुरं शुभ्रं तया च उभया पार्वत्या आश्लिष्टम् आलिङ्गितं शरीरं वपुर्यस्य तं तादृशम् भगवन्तं जाबालिम् एतन्नामकं ऋषिम् अपश्यम्।

अत्र सर्वत्र जाबालि पक्षे बहुव्रीहि समासः तथा च पक्षे तत्पुरुष समासः। क्वचिदुभयत्र तत्पुरुषो बहुव्रीहिर्वाशाब्दी उपमाऽलंकारश्च।

**विशेष**—जाबालि ऋषि के विभिन्न उपमान प्रस्तुत करने के कारण उपमा अलंकार है किन्तु यह उपमा शाब्दी है क्योंकि श्लिष्ट शब्दों का ही धर्म साम्य है।

**वैनतेयः**—विनताया अपत्यं पुमान् इस अर्थ में विनता से ढक् प्रत्यय ढक् को एय् तथा आदि वृद्धि होकर वैनतेय शब्द बना। वैनतेय गरुड़ का नाम है। गरुड़

अमृत प्राप्त कर अपनी माँ को दासता से मुक्त कराने के लिए अनेक देवों से युद्ध करते हुए स्वर्ग तक पहुँच गये थे। उनकी इस वीरता से प्रसन्न हो इन्द्र ने इन्हें पक्षिराज पद दिया था।

'गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यो वैनतेयः खगेश्वरः' इत्यमरः

वडवाग्नि—यह एक प्रकार की समुद्री आग है जो समुद्र के जल को जलाया करती है। पौराणिक मान्यता के अनुसार अश्विनी नामक अप्सरा वडवा (घोड़ी) का रूप धारण कर सूर्य से गर्भवती होने पर समुद्र में कूद गई। उसके मुख की आग से समुद्र जल जलता रहता है।

आलोक्य चाहमचिन्तयम् अहो प्रभावस्तपसाम्! इयमस्य शान्तापि मूर्तिरुत्तप्तकनकावदाता परिस्फुरन्ती सौदामिनीव चक्षुषः प्रतिहन्ति तेजांसि, सततमुदासीनापि महाप्रभावतया भयमिवोपजनयति प्रथमोपगतस्य शुष्कनलकाशकुसुमनिपतितानलचटुलवृत्ति नियमसहिष्णु तपस्विनां प्रकृत्युतपसामपि तेजः प्रकृत्या दुःसहं भवति किमुत सकलभुवनवन्दितचरणानामनवरततपःसलिलक्षालितमलानां करतलामलकवदखिलं जगदालोकयतां दिव्येन चक्षुषा भगवतामेवंविधानामक्षयकारिणाम्।

शब्दार्थ—आलोक्य च=और (उन जाबालि ऋषि को) देखकर अहम्=मैने (शुक ने) अचिन्तयम्=विचार किया। अहो प्रभावस्तपसाम्=अरे! तपस्याओं का कितना (अधिक) प्रभाव है। इयम्=यह अस्य=जाबालि की शान्तापि मूर्तिः=शान्त मूर्ति होने पर भी उत्तप्तकनकावदाता=तपे हुए सुवर्ण के समान स्वच्छ परिस्फुरन्ती=चमकती हुई सौदामिनीव=बिजली के समान चक्षुषः=आँखों के तेजांसि=ज्योति को प्रतिहन्ति=नष्ट करती है अर्थात् आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करती है, सततमुदासीनापि=सदा उदासीन (भाव रहित) होने पर भी प्रभावतया=अति प्रभावशालिनी होने के कारण प्रथमोपगतस्य=नवागन्तुक के लिए भयमिवोपजनयति=भय सा उत्पन्न कर रही है। शुष्कनलकाशकुसुमनिपतितानलचटुलवृत्ति नियमसहिष्णु—शुष्क नल=सूखे हुए नर कुल एवं काशकुसुम=कांस के फूलों पर, निपतितानल=गिरी हुई अग्नि की चटुल वृत्ति=चञ्चल स्वभाव के समान (शीघ्र प्रज्वलित होकर फैलने के समान) नित्यम्=निश्चय ही असहिष्णु, प्रकृत्युतपसाम्=स्वल्पतपश्चर्या वाले तपस्विनाम्=तपस्वियों का तेजः=तपः जन्य तेज प्रकृत्या=स्वभाव से ही दुःसहं भवति=दुःसह होता है। किमुत=फिर भला, सकल भुवनतलवन्दित चरणानाम्=सम्पूर्ण भूमण्डल द्वारा पूजित चरणों वाले अनवरत तपः सलिल क्षालितमलानाम्=निरन्तर तपस्या रूपी जल से धुले हुए पापों वाले करतलामलकवद्=हथेली पर रखे हुए आँवले के समान अखिल जगदालोकयताम्=सम्पूर्ण संसार को देखने वाले दिव्येन चक्षुषा=दिव्य दृष्टि से, भगवताम्=सामर्थ्यशाली, एवंविधानाम्=इस प्रकार के अक्षयकारिणाम्=पापों का विनाश करने वाले।

**अनुवाद**—(शुक जावालि ऋषि को देखकर मन ही मन सोचता है) मुनि जाबालि को देखकर मैंने सोचा तपस्या का प्रभाव आश्चर्यकारी है। यह इनका शान्त शरीर भी तपे हुए सुवर्ण के समान स्वच्छ, चमकती हुई बिजली के समान (इनका तेज) आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर उनके तेज को ही नष्ट कर रहा है। (अर्थात् जाबालि के शारीरिक तेज के समक्ष आँखें ही नहीं ठहर रही हैं) तथा पहले पहल (आश्रम में) आये हुए व्यक्ति को, भावहीन होने पर भी महाप्रभावशालिनी जाबालि की मूर्ति भयभीत सा कर रही है। सूखे हुए नरकुल घास एवं कांस के फूलों पर गिरी हुई आग के समान चञ्चल स्वभाव वाले असहनशील (ईर्ष्यालु) स्वल्प तप वाले तापसों का तेज भी स्वभावतः अत्यन्त दुःसह होता है तो फिर सम्पूर्ण संसार के द्वारा जिनके चरणों की वन्दना की जाती है, जिन्होंने अपनी निरन्तर तपस्या रूपी जलधारा से समस्त विकारों (मलों) को धो डाला है, जो अपनी दिव्य दृष्टि से हाथ पर रखे हुए आंवले के समान सम्पूर्ण संसार को देख सकते हैं ऐसे पापों का नाश करने वाले महान् तपस्वियों की तो बात ही क्या है।

**संस्कृत व्याख्या**—**अवलोक्य** दृष्ट्वा च अहम् वैशम्पायन नाम शुकः **अचिन्तयम्** व्यचारयम्। **अहो** महदाश्चर्यम् **तपसाम्** तपश्चर्याणाम् **प्रभावः** माहात्म्यम्। **अस्य** मुनेः जाबालेः इयम् पुरोदृश्यमाना **शान्तापि** शान्तिसम्पन्नापि **मूर्तिः**, **उत्तप्तकनकावदाता**—उत्तप्तम् अत्यन्तम् उष्णीकृतं यत् कनकं सुवर्ण तद्वत् अवदाता स्वच्छा शुभ्रा वा सती **परिस्फुरन्ती** सञ्चरन्ती देदीप्यमानेत्यर्थः **सौदामिनीव** नभोविद्युदिव **चक्षुषः** नेत्रयोः तेजांसि ज्योतींषि **प्रतिहन्ति** प्रतिरुणद्धि तिरस्करोतीति तात्पर्यम्। **सततम्** अजस्रम् **उदासीनापि** भावनिरपेक्षापि (क्रोधामर्षभयादि विकाररहितापि) **महाप्रभावतया** अत्युग्रप्रतापशालितया **प्रथमोपगतस्य** प्रथमदारम् आश्रमम् आगतस्य **भयम्** भीतिमिव **उपजनयति** समुत्पादयति **शुष्कनलकाशकुसुमनिपतितानलचटुलवृत्ति**—शुष्काणि अनार्द्राणि यानि नलानि नडाख्य तृणानि तथा च काशकुसुमानि कासनामक तृणविशेषाणां पुष्पाणि तेषु निपतितो योऽनलः अग्निः तद्वत् चटुला चपला वृत्तिः व्यापारो यस्य तत्तादृशम् **प्रकृत्या** स्वाभावेन **नित्यम्** सततम् **असहिष्णु** असहनशीलम् ईर्ष्यालुम् इत्यर्थः **तनुतपसाम्** तनु स्वल्पं तपो येषान्तेषामपि तपस्विनां **तेजः** प्रतापः प्रभावो वा **दुःसहं** दुःखेन सोढुं शक्यं भवति यदा तदा **सकलभुवनतलवन्दित चरणानाम्** सकलेन निखिलेन भुवनतलेन भूमण्डलेन वन्दितौ पूजितौ चरणौ पादौ येषां तेषाम् **अनवरत तपःक्षपितमलानाम्** अनवरतं निरन्तरं समर्जितं यत्तपः तपस्या तेन क्षपितं नाशितं मलम् दुष्कृतं दुर्विकारं वा यैस्तेषाम्, **दिव्येन** अलौकिकेन **चक्षुषा**—दृष्टया **अखिलं** समस्तम् **जगत्** भुवनतलम् **करतलामलकवत्** करतले पाणितले स्थितः यः आमलकः धात्रीफलं तद्वत् **आलोकयतां** पश्यताम् **एवंविधानाम्** ईदृशानां जाबालिसदृशानां **अघक्षयकारिणाम्** अघानां पापानां क्षयं विनाशं कर्तुं शीलं येषान्तेषाम् **भगवताम्** माहात्म्यवताम् **किमुत** का कथा। अर्थात् ईदृशानां प्रतिभावतां महर्षीणां प्रभावस्य तेजसस्तु कथैव का।

विशेष—'अहो' यह आश्चर्य द्योतक अव्यय है। शान्तापि—शुक को यद्यपि जाबालि ऋषि की मूर्ति शान्त प्रतीत होती है किन्तु उसमें तपस्या का तेज पहली बार देखने वाले को भय उत्पन्न कर देता है एवं आँखों में चकाचौंध। यद्यपि यह विरोध सा लगता है कि शान्तस्वरूप में चकाचौंध एवं भय उत्पन्न करने की क्षमता हो, क्योंकि संसार या ब्रह्माण्ड की उग्र तेज वाली वस्तुओं में ही इस प्रकार की क्षमता होती है परन्तु जाबालि ऋषि की यही विशेषता है कि वह शान्ताकृति होने पर भी भय, चकाचौंध आदि उत्पन्न करते हैं।

सौदामिनी—सुदामा नामक मेघ से उत्पन्न होने के कारण बिजली को सौदामिनी कहा गया है।

'उत्तप्तकनकावदाता' में वाचकलुप्ता उपमा अलंकार है। 'भयनिवोपजनयति' में क्रियोत्प्रेक्षा तथा आगे के पदों में श्लिष्ट परम्परित रूपक अलंकार है।

चटुलवृत्ति—चटुल का अर्थ है चञ्चल वृत्ति का अर्थ व्यापार चञ्चल व्यापार। आग जब सूखे काश पुष्पों पर गिरती है तो शीघ्र प्रज्वलित होकर सर्वत्र फैल जाती है यही शीघ्र प्रसरण भाव को चटुलवृत्ति से व्यक्त किया गया है।

करकमलतलामलकफल—हस्तकमल अर्थात् हथेली पर रखे हुए आँवले को जैसे सभी ओर भली-भाँति देखा जा सकता है उसी प्रकार जाबालि ऋषि सम्पूर्ण विश्व को अपनी दिव्य दृष्टि से देख सकते हैं। यहाँ ऋषि को सर्वज्ञ रूप में वर्णित किया गया है। साथ ही तपस्या से इस प्रकार की शक्ति प्राप्त होती है यह भाव व्यक्त होता है। 'तपसा कल्मषं हन्ति' आदि वाक्य इसके प्रमाण हैं।

**पुण्यानि हि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां किं पुनर्दर्शनानि। धन्यमिदमाश्रमपदमयमधिपतिर्यत्र। अथवा भुवनतलमेव धन्यमखिलमनेनाधिष्ठितमवनितलकमलयोनिना। पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनमपरमिव नलिनासनमपगतान्यव्यापारा मुखावलोकननिश्चलदृष्टयः पुण्याः कथाः शृण्वन्तः समुपासते। सरस्वत्यपि धन्या याऽस्य तु सततमतिप्रसन्ने करुणाजलनिष्यन्दिन्यगाधगाम्भीर्ये रुचिरद्विजपरिवारा मुखकमलसम्पर्कसुखमनुभवन्ती निवसति राजहंसीव मानसे। चतुर्मुखकमलवासिभिश्चतुर्वेदैः सुचिरादिव द्वितीयमिदमासादितं स्थानम्। एनमासाद्य शरत्कालमिव कलिकाल जलधरसमयकलुषिताः प्रसादमुपगताः पुनरपि जगति सरित इव सर्वविद्याः।**

शब्दार्थ—**पुण्यानि हि**=निश्चय ही पुण्यदायक है **नामग्रहणानि अपि**=नाम लेना भी **महामुनीनाम्**=महान् मुनियों का **किं पुनर्दर्शनानि**=दर्शन की तो बात ही क्या। **धन्यमिदम् आश्रमपदम्**=यह आश्रम स्थल धन्य है। **अयम् अधिपतिः यत्र**=यह ऋषि जिसके स्वामी हैं। **अथवा भुवनतलम् एव धन्यमखिलम्**=अथवा यह सम्पूर्ण भूमण्डल ही धन्य है जो **अनेनाधिष्ठितम्**=इन महर्षि से अधिष्ठित है **अवनितलकमलयोनिना**=पृथ्वी लोक के ब्रह्मा के द्वारा। **पुण्यभाजः**=पुण्यशाली हैं **अमीमुनयः**=ये

**ऋषि यदहर्निशम्**=जो दिनरात **एनमपरम्इवनलिनासनम्**=इन द्वितीय ब्रह्मा के समान **अपगतान्य व्यापाराः**=समस्त अन्य कार्यों को त्यागकर **मुखावलोकन निश्चल दृष्टयः** =मुख को देखने में अपलक भाव होकर **पुण्याः कथाः शृण्वन्तः**=पवित्र कथाएँ सुनते हुए **समुपासते**=सेवा करते हैं। **सरस्वती अपि धन्या**=सरस्वती भी धन्य है **याऽस्य तु** =जो इनके **सततम्**=सदैव **अतिप्रसन्ने**=अति मनोहर **करुणाजलनिष्यन्दिनि**=करुणा रूपी जल को बहाने वाले **आगवगाम्भीर्ये**=अथाह गम्भीरता वाले **रुचिरद्विजपरिवारा**= सुन्दर ब्राह्मणों से घिरी हुई पक्ष में सुन्दर पक्षियों से घिरी हुई **मुखकमलसम्पर्कसुखमनुभवन्ती**=मुख रूपी कमल के साहचर्य सुख का अनुभव करती हुई **राजहंसी इव**=राजहंसी के समान **मानसे**=मन में निवास करती है पक्ष में मानसरोवर में निवास करती है। **चतुर्मुखकमलवासिभिः**=चतुर्मुख=ब्रह्मा के मुख रूपी कमलों में निवास करने वाले **चतुर्वेदैः** =चारों वेदों ने **सुचिरादिव**=मानों बहुत समय के बाद **द्वितीयम् इदम् आसादितं स्थानम्**=इस दूसरे स्थान को प्राप्त कर लिया है। **एनम्**=इन जावालि ऋषि को **आसाद्य**=प्राप्त कर **शरत्कालम् इव**=शरद् ऋतु के समान **कलिकाल जलधर समय कलुषिताः**=कलियुग रूपी वर्षा काल से दूषित हुई **सरितः इव सर्वविद्याः**=नदियों के समान समस्त विद्याएँ **पुनरपि**=फिर से **जगति**=संसार में **प्रसादम् उपगताः**= निर्मलता या निर्दोषता को प्राप्त हो गई हैं।

**अनुवाद**—महान मुनियों का नाम लेना ही पुण्यदायक है फिर दर्शनों की तो बात ही क्या। यह आश्रमस्थान धन्य है जहाँ के स्वामी यह जावालि ऋषि हैं। अथवा यह सम्पूर्ण संसार ही धन्य है जिस पर पृथ्वीतल के ब्रह्मा (जावालि) अधिष्ठित हैं। निश्चय ही (इस आश्रम के) मुनिजन पुण्यशाली हैं जो समस्त अन्य कार्यों को त्याग कर इन द्वितीय ब्रह्मा से प्रतीत होने वाले (जावालि के) मुख को अपलक दृष्टि होकर देखते हुये पवित्र कथाएँ सुनते हुए (इनकी) सेवा करते हैं। सरस्वती भी धन्य है जो मनोहर ब्राह्मणों से घिरी हुई, करुणा दया रूपी जल को बहाने वाले, अति गम्भीर, अतिशय प्रसन्न मुख रूपी कमल के साहचर्य का सुख अनुभव करती हुई इन (जावालि के) अन्तः करण में उसी प्रकार निवास करती है जैसे पक्षियों से घिरी हुई अतिस्वच्छ गहरे जल वाले मानसरोवर में कमलों का सम्पर्क सुख प्राप्त कर राजहंसी रहती है। ब्रह्मा के मुख रूपी कमलों में निवास करने वाले चारों वेदों ने मानो बहुत समय के पश्चात (जाबालिरूपी) यह दूसरा स्थान प्राप्त किया है। कलियुग के समान वर्षाकाल से दूषित तथा शरद् ऋतु को प्राप्त कर पुनः निर्मलता को प्राप्त हुई नदियों के समान समस्त १४ या १८ विद्याओं ने कलियुग के सम्पर्क से दूषित होने पर इन (जावालि ऋषि) को प्राप्त कर पुनः निर्दुष्टता (निर्मलता) को प्राप्त कर लिया है।

**संस्कृत व्याख्या—महामुनीनाम्** महान्तश्च ते मुनयो महामुनयः तेषां महातपस्विनां नामग्रहणान्यपि नामोच्चारण मात्राण्यपि **पुण्यानि** पुण्योत्पादकानि हि इति निश्चितम् दर्शनानि तेषां तपस्विनां निरीक्षणानि **कि० पुनः** किं वक्तव्यम् अर्थात् येषां नामोच्चारणेनैव पुण्यता प्राप्ति स्तेषां दर्शनं चेतदा नूनं मोक्षादि परमपुरुषार्थो-

पलब्धिरिति सुनिश्चितम् । **इदमाश्रमम्** पुरोदृश्यमानमिदम् तपस्विस्थानम् **धन्यम्** कृतकृत्यं **यत्र** आश्रमे **अयम्** महाप्रभावो जाबालिः **अधिपतिः** स्वामी नेता वा । अथवा **अखिलम्** सम्पूर्णं **भुवनतलमेव** भूमण्डलमेव धन्यं कृतकृत्यम्, यत् अवनितल **कमलयोनिना** अवनितलस्य मर्त्यलोकस्य कमलयोनिना कमलं जलजं योनिरुत्पत्तिस्थानं यस्य सः कमलयोनिः ब्रह्मा तेन भूतल प्रजापतिरूपिणा **अनेन** ऋषिणा **अधिष्ठितम्** आश्रितमस्ति ।

खलु निश्चयेन **अमीमुनयः** आश्रमस्थाः ऋषयः **पुण्यभाजः** पुण्यशालिनः ये अपगतान्य **व्यापाराः** अपगताः दूरीभूताः अन्ये व्यापाराः कर्माणि येषान्ते तादृशाः तथा च **मुखावलोकन निश्चलदृष्टयः** मुखस्य ऋषेः वदनस्य अवलोकने निरीक्षणे निश्चलाः निमेषरहिताः दृष्टयः नेत्राणि येषान्ते तादृशाः, **पुण्याः कथाः** पवित्रा धार्मिकाकिंवदन्तीः **शृण्वन्तः** आकर्णयन्तः **अहर्निशम्** अहश्च निशा चेति अहर्निशं रात्रिन्दिवं **समुपासते** जाबालिं सेवन्ते परिचर्यां कुर्वते इत्यर्थः । **सततं** निरन्तरम् **अतिप्रसन्ने** अतिशयेन प्रसादगुणसम्पन्ने पक्षे अतिनिर्मले **करुणाजलनिष्यन्दिनि**—करुणा परदुःखनाशेच्छा दयाभावो वा सैव जलम् आपः तस्य निष्यन्दिनि प्रस्राविणि पक्षे करुणा इव जलस्राविणि **अगाध गाम्भीर्ये** अगाधम् अतिगहनम् इयत्ताशून्यम् गाम्भीर्यम् दुरवगाह स्वभावत्वम् अतिगूढ़ स्वभावत्वम् यस्य तादृशे पक्षे अतलस्पर्शिगम्भीरता यस्य तस्मिन् तादृशे, **मानसे** ऋषेरन्तः करणे पक्षे मानसरोवरे **राजहंसीव** सितवर्णा मरालीव **रुचिरद्विज परिवारा**—रुचिराः प्रियाः द्विजाः ब्राह्मणाः शिष्या इव प्रतीय मानाः ब्राह्मणाः परिवाराः परिजनाः यस्याः सा तादृशी सरस्वती हंसीपक्षे रुचिराः सुन्दराः द्विजाः पक्षिणः परिवाराः परिजना इव यस्याः सा तादृशी या **सरस्वती** भारती **निवसति** वासं विधत्ते सापि धन्या कृतकृत्या ।

**चतुर्मुखमुखकमलवासिभिः** चतुर्मुखो ब्रह्मा तस्य मुखानि एव कमलानि पद्मानि तेषु वासिभिः स्थायिभिः चतुर्वेदैः ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यैः **सुचिरादिव** अतिकालानन्तरमिव इदम् एतत् **द्वितीयम् इव** अपरमिव स्थानम् निवास स्थानम् आसादितम् प्राप्तम् । **कलिकालजलधरसमयकलुषिताः** कलिकालः कलियुगः स इव जलधर समयः वर्षा कालस्तेन कलुषिताः मलिनीकृताः सरितः, **सर्वविद्या**पक्षे कलिकाल एव जलधरसमयः तेन कलुषिताः दूषिताः अभ्यासानुष्ठानादिरहितत्वात् कुत्सितत्वृत्ति व्याख्यादिभिश्च दूषिता इत्यर्थः, **शरत्कालम्** शरदृतुम् आसाद्य प्राप्य **पुनरपिप्रसादमुपगताः** निर्मलत्वमाप्ताः **सरित इव** नद्यः इव **सर्वविद्याः** चतुर्दशाष्टादश वा विद्याः शरदृतुमिव **एनम् जाबालिमासाद्य** प्राप्य **जगति** पृथिव्यां **पुनरपि** भूयोऽपि यथापूर्वमिवेत्मर्थः **प्रसादम्** निर्दोषत्वम् **उपगताः** प्राप्ताः ।

**विशेष—सर्वविद्याः**— शास्त्रानुसार १४, १८ विद्याएँ मानी गई हैं—

**"अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।**

**धर्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्याह्येताश्चतुर्दश ॥"**

**अर्थात्** ६ वेदाङ्ग+४ वेद+मीमांसा+न्यायशास्त्र+धर्मशास्त्र+पुराण=१४ इन १४ विद्याओं में आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व विद्या तथा अर्थशास्त्र को जोड़ देने

से विद्याओं की संख्या १८ हो जाती है। कुछ लोग ६४ कलाओं को भी विद्या ही मानते हैं। 'अवनितलकमलयोनिना' में निरङ्गरूपक अलंकार है। 'नलिनासनम्' में द्रव्योत्प्रेक्षा तथा 'हंसीव' इत्यादि में पूर्णोपमा अलंकार है। 'सुचिराश्रिव' में गुणोत्प्रेक्षा, शरत्कालमिव में उपमा अलंकार है।

नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूत कलिकाल विलसितेन धर्म्मेण न स्मर्यते कृतयुगस्य। धरणितलम नेनाधिष्ठितमालोक्य न वहति नूनमिदानीं सप्तर्षिमण्डलनिवासाभिमानमम्बरतलम्। अहो! महासत्त्वेयं जरा यास्य प्रलयरविकरनिकर दुर्निरीक्ष्ये रजनिकरकिरणपाण्डु शिरोरुहे जटाभारे फेनपुञ्ज धवला गङ्गेव पशुपतेः क्षीराहुतिरिव शिखाकलापे विभावसोर्निपतन्ती न भीता। बहलाज्य धूमपटलमलिनीकृता श्रमस्य भगवतः प्रभावाद्भीतमिव रविकिरण जालमपि दूरतः परिहरति तपोवनम्। एते च पवनलोलपुञ्जीकृत शिखी कलापा रचिताञ्जलय इवात्र मन्त्रपूतानि हवींषि गृह्णन्ति एतत्प्रीत्या शुशुक्षणयः। तरलितदुकूलवल्कलोऽयपञ्चाश्रमलताकुसुमसुरभि परिमलो मन्दमन्दसञ्चारी सशङ्क इवास्य समीपमुपसर्पति गन्धवाहः।

शब्दार्थ – नियतम्=निश्चय रूप से इह=इस आश्रम में सर्वात्मना=पूर्ण एकाग्रता से कृतावस्थितिना=निवास करने वाले भगवता=भगवान् परिभूतकलिकाल विलसितेन=कलियुग के समस्त प्रभाव को निरस्त करने वाले धर्मेण=धर्मदेव के द्वारा कृतयुगस्य=सत्ययुग (सतयुग) का न स्मर्यते=स्मरण नहीं किया जाता है। धरणितलम्=पृथ्वीतल अनेन=इन जाबालि ऋषि के द्वारा अधिष्ठितम् आलोक्य=स्थित (अलंकृत) देख कर न वहति=वहन नहीं करता है नूनम्=निश्चय ही इदानीम्=इस समय सप्तर्षिमण्डलनिवासाभिमानम्=सप्तर्षियों के निवासस्थान होने का अहंकार अम्बरतलम्=आकाश। अहो=आश्चर्य है महासत्त्वा इयम् जरा=यह वृद्धावस्था भी साहसपूर्ण है अर्थात् अति जीवट वाली है या=जो अस्य=इन जाबालि की, प्रलयरविकरनिकरदुर्निरीक्ष्ये=प्रलयकालीन सूर्य की किरणों के समूह के समान (तेज के कारण) कठिनाई से देखने योग्य, रजनिकरकिरणपाण्डुशिरोरुहे=चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत केशों वाले जटाभारे=जटासमूह पर फेनपुञ्जधवला=फेन समूह से शुभ्रवर्णा गङ्गा इव=गङ्गा के समान पशुपतेः=भगवान शङ्कर के, विभावसोः=अग्नि के शिखाकलापे=ज्वालासमूह पर क्षीराहुतिरिव=दूध की आहुति के समान निपतन्ती=गिरती हुई भी न भीता=भयभीत नहीं हुई।

बहलाज्यधूम पटलमलिनीकृताश्रमस्य=बहलाज्य=अत्यधिक (प्रचुर) घृत के, धूमपटल=धुएँ के समूह से, मलिनीकृत=श्यामवर्ण कर दिया है आश्रमस्य=आश्रम को जिन्होंने ऐसे भगवतः=भगवान् जाबालि के प्रभावाद्=माहात्म्य से भीतमिव=मानों डरा हुआ रविकिरणजालम् अपि=सूर्यकिरणसमूह भी तपोवनम्=जाबालि आश्रम को दूरतः=दूर से ही परिहरति=छोड़ देता है। एतेच=और ये पवनलोलपु-

ञ्जीकृतशिखाकलापाः=पवनलोल=हवा से चंचल इधर-उधर बिखरने वाली, अत एव पुञ्जीकृत=एकत्रित कर लिया है शिखाकलापाः=लपटों (ज्वालाओं) को जिसने ऐसा (अग्नि) रचिताञ्जलय इव=मानों हाथ जोड़े हुए अत्र=इस आश्रम में मन्त्र-पूतानि=मन्त्रों से पवित्र हुई हवींषि=हव्य सामग्री को गृह्णन्ति=ग्रहण कर रहे हैं एतत्प्रीत्या=इन ऋषि जाबालि के प्रति प्रेम के कारण आशुशुक्षणयः=यज्ञ की अग्नियाँ (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि नामक यज्ञाग्नियाँ)। तरलित-दुकूलवल्कलः=दुकूल=रेशमी वस्त्र के समान वल्कल=वृक्ष की छाल के बने हुए ऋषि वस्त्रों को तरलित=हिलाने वाला अयम्=यह आश्रमलताकुसुमसुरभिपरिमलः= आश्रम की लताओं के पुष्पों के सौरभ (पराग) से सुगन्धित, मन्दमन्दसञ्चारी=धीरे-धीरे बहता हुआ गन्धवाहः=पवन सशङ्क इव=मानों डरा हुआ सा अस्य समीपम्= इन जाबालि ऋषि के समीप उपसर्पति=पहुँच रहा है।

**अनुवाद**—(शुक अपने मन में सोचता है) निश्चय ही कलियुग की विलास लीलाओं को तिरस्कृत कर इन जाबालि ऋषि में निवास करने वाले भगवान् धर्म देव को सतयुग का स्मरण नहीं आता होगा। पृथ्वी तल पर इन जाबालि को स्थित देखकर निश्चय ही आकाश भी (स्वयं को) सप्तर्षियों के निवास स्थान होने का अहं-कार न करता होगा। आश्चर्य है यह वृद्धावस्था (बुढ़ापा) भी अत्यन्त साहसी (जीवट की) है जो शङ्कर की जटाओं में गिरने वाली फेन समूह से श्वेत गङ्गा की भाँति (तथा) अग्नि की ज्वालाओं में गिरने वाली दुग्ध धारा के समान, प्रलयकालीन सूर्य किरणों के समूह के समान चमकीली होने से न देखी जाने योग्य एवं चन्द्रमा की रश्मियों के समान श्वेतवर्ण जटापुञ्ज पर गिरती हुई भयभीत नहीं हुई। प्रचुरघृत के धुएँ से (यज्ञाग्नि में अधिक घी डालने से उत्पन्न धुएँ से) आश्रम को श्यामवर्ण बना देने वाले भगवान् जाबालि से मानो डरा हुआ सूर्यकिरण समूह इस तपोवन को दूर से ही छोड़ रहा है। हवा से चञ्चल तथा एक-दूसरे से मिलकर उठी हुई यज्ञ की अग्नियों की ज्वालाएँ मानों हाथ जोड़ कर मन्त्रों से पवित्र हव्य सामग्री को ऋषि के प्रति प्रेमाभि-भूत हो ग्रहण कर रही हैं। आश्रम की लताओं के पुष्पसौरभ से सुगन्धित तथा कौशेय वस्त्र के समान वल्कल वस्त्रों को हिलाता हुआ मानों डरता हुआ सा पवन धीरे-धीरे ऋषि के समीप जा रहा है।

**संस्कृत व्याख्या**—परिभूतकलिकालविलसितेन—परिभूतानि तिरस्कृतानि कलिकालस्य कलियुगस्य विलसितानि चेष्टितानि येन तेन (बहु.) इह आश्रमे सर्वात्मना पूर्णरूपेण कृतावस्थितिना कृता विहिता अवस्थितिः वासो येन तेन (बहु.) भगवता माहात्म्यशालिना धर्म्मेण सुकृतेन कृतयुगस्य सत्ययुगस्य न स्मर्यते न चिन्त्यते नियतम् इति निश्चितम् (प्रतीयते) इहैवाश्रमे कृतयुगीय सकल गुणाना मुपलम्भात्। अम्बरतलम् गगनतलम् अनेन जाबालिना अधिष्ठितम् आश्रितम् धरणितलं पृथिवीतलम् आलोक्य दृष्ट्वा इदानीम् अधुना सप्तर्षिमण्डलनिवासाभिमानम् सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः कश्य-पादयः तेषां मण्डलं समूहस्तस्य यो निवासः अवस्थानं तेन योऽभिमानोऽहंकारस्तं न वहति

नैव धत्ते इति नूनं सुनिश्चितम् । अहो महदाश्चर्यम्, इयं जाबालिशरीरे विद्यमाना जरा वृद्धावस्था महासत्त्वा महत् सत्त्वं पराक्रमः यस्याः सा तादृशी अत्यन्तं शक्तिमती, या अस्य या वृद्धावस्था अस्यऋषेः प्रलयरविकरनिकरदुर्निरीक्ष्ये—प्रलयकालीनो यो रविः कल्पान्तसूर्यस्तस्य कराणां रश्मीनां निकरः समूहः तद्वत् दुर्निरीक्ष्ये दुःखेन निरीक्षितुं शक्ये इति दुर्निरीक्ष्ये महातेजस्वितयाऽवलोकयितुमशक्ये अथ च रजनिकरकिरणपाण्डु शिरोरुहे —रजनिं रात्रिं करोतीति रजनिकरः चन्द्रःतस्य किरणवत् पाण्डवोधवलाः शिरोरुहोः केशाः यस्मिन् तस्मिन् तादृशे (बहु.) अस्य मुनेः जटाभारे सटासमूहे निपतन्ती=उपगन्तुं प्रवृत्ता सती, पशुपतेः भगवतः शङ्करस्य जटाभारे फेनपुञ्जधवला फेनपुञ्जवत् धवला शुभ्रा गङ्गा इव भागीरथी व विभावसोः अग्नेः शिखाकलापे ज्वालापुञ्जे निपतन्ती क्षीराहुतिरिव क्षीरस्य दुग्धस्य आहुतिः प्रक्षेप इव न भीता नैव त्रस्ता बभूव ।

बहलाज्यधूमपटलमलिनीकृताश्रमस्य—बहलं प्रचुरं यदाज्यं घृतं तत्कृत धूमपटलेन हव्यधूमसमूहेन मलिनीकृतः श्यामीकृत आश्रमस्तपोवनं येन तस्य (बहु.) भगवतः जाबालेः प्रभावात् प्रतापात् भीतमिव त्रस्तमिव रविकिरणजालमपि रवेः सूर्यस्य किरणानां रश्मीनां जालं समूहः (तत्पु.) अपि तपोवनम् ऋषेः धर्मारण्यं दूरतएव दूरादेव परिहरति परित्यजति आश्रमं परित्यज्य गच्छतीत्यर्थः । अत्र आश्रमे एते यज्ञवेदीषुदृश्यमानाः पवनलोलपुञ्जीकृतशिखाकलापाः—पवनेन समीरेण लोलाः चञ्चला अथ च पुञ्जीकृताः राशी- कृताः शिखाकलापाः ज्वालासमूहो येषान्ते अत एव रचिताञ्जलय इव रचिताः बद्धाः अञ्जलयः हस्ताग्रपल्लवा यैस्ते तादृशा इव आशुशुक्षणयः दक्षिणाग्नि गार्हपत्याहवनीयरूपा यज्ञाग्नयः एतत्प्रीत्या महर्षि जाबालिस्नेहेन मन्त्रपूतानि मन्त्रैः ऋक्सामभिः पूतानि पवित्राणि हवींषि हव्यसामग्रीः गृह्णन्ति स्वीकुर्वन्ति । तरलितदुकूल वल्कलः तरलितानि कम्पितानि दुकूलानीव क्षौमवसनानि वल्कलानि वृक्षत्वक्निर्मितानि वस्त्राणि येन सः (बहु.) तादृशः अथ च आश्रमलताकुसुमसुरभिपरिमलः आश्रमे तपोवने या लताः वल्लर्यः तासां यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां सुरभिः घ्राणतर्पणः परिमलः शोभनो गन्धः यस्मिन् स तादृशः मन्दमन्दसञ्चारी शनैः शनैः सञ्चरणं शीलं यस्य सः धीर-धीरं प्रवहणशीलः अयं गन्धवाहः गन्धं वहति यः सः गन्धवाहः पवनः सशङ्कइव भयाक्रान्त इव अस्य मुनेः समीपं निकटम् उपसर्पति उपयातीत्यर्थः ।

विशेष—इस गद्य खण्ड में प्रायः सर्वत्र उत्प्रेक्षा अलंकार है । इसके माध्यम से कवि ने जाबालि ऋषि और उनके आश्रम का चामत्कारिक पवित्र रूप प्रस्तुत किया है ।

'सप्तर्षिमण्डलः' आदि वाक्य में आकाश में सप्तर्षिमण्डल की अपेक्षा पृथ्वी पर एक जाबालि ऋषि की उपस्थिति अधिक महत्वपूर्ण व्यक्त की गई है । इस प्रकार नूनं पद से उत्प्रेक्षा वाच्य है तथा सप्तर्षि की अपेक्षा जाबालि की उत्कृष्टता में व्यतिरेक व्यंग्य है ।

'अहो महासत्वेयं जरा·········'इत्यादि वाक्य में जाबालि के (वृद्धावस्था के कारण) श्वेत केशों पर बुढ़ापे के आगमन में कवि ने तीन लुप्तोपमाएँ एवं दो उपमाओं का प्रयोग कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । 'न भीता' पद से जरा की महासत्वता

पुष्ट होती है अतः काव्यलिंग अलंकार भी है। भगवान शंकर के जटासमूह पर पैर रखती हुई गङ्गा को भय नहीं हुआ, यज्ञकुण्ड की अग्नि में दुग्धाहुति को गिरने में भय नहीं हुआ जब कि दुग्धाहुति अस्तित्वहीन हो जाती है और गङ्गा अहङ्कारविहीन, इसी प्रकार वृद्धावस्था भी बिना भय के ही जावालि के केशों पर पहुँच गई, यह भाव व्यक्त किया गया है।

'बहलाज्य धूमपटल' में हवा से हिलती हुई अतएव परस्पर मिली हुई ज्वालाओं में कवि ने हाथ जोड़ने की उत्प्रेक्षा की है, यह स्वरूपोत्प्रेक्षा, क्रियोत्प्रेक्षा, एवं प्रभावाद् भीतमिव में हेतूत्प्रेक्षा भी है। इस प्रकार एक वाक्य में आनेकानेक माध्यमों से कवि ने विविध अलंकारों की कल्पना कर काव्य में सौन्दर्य उपस्थित किया है। पाठक जितनी बार पढ़ता है उतनी ही नवीन कल्पनाएँ उभरती हैं।

**प्रायो महाभूतानामपि दुरभिभवानि भवन्ति तेजांसि। सर्व तेजस्विनामयञ्चाग्रणीः। द्विसूर्यमिवाभाति जगदनेनाधिष्ठितं महात्मना। निष्कम्पेव क्षितिरेतदवष्टम्भात्। एष प्रवाहः करुणारसस्य, सन्तरण सेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्, परशुस्तृष्णालतागहनस्य, सागरः सन्तोषामृत रसस्य, उपदेष्टासिद्धि मार्गस्य अस्तगिरिरसद् ग्रहस्य, मूलमुपशमतरोः, नाभिः प्रज्ञाचक्रस्य, प्रासादो धर्मध्वजस्य, तीर्थसर्वविद्यावताराणाम्, बडवानलो लोभार्णवस्य निकषोपलः शास्त्ररत्नानाम्, दावानलो रागपल्लवस्य, महामन्त्रः क्रोधभुजङ्गस्य, दिवसकरो मोहान्धकारस्य, अर्गलबंधो नरकद्वाराणाम्, कुलभवनमाचाराणाम्, आयतनं मङ्गलानाम् अभूमिर्मदविकाराणाम् दर्शकः सत्पथानाम्, उत्पत्तिः साधुतायाः, नेमिरुत्साह चक्रस्य, आश्रयः सत्वस्य, विपक्षः कलिकालस्य, कोशस्तपसः, सखा सत्यस्य, क्षेत्रमार्जवस्य, प्रभवः पुण्यसञ्चयस्य, अदत्तावकाशो मत्सरस्य, अरातिर्विपत्तेः, अस्थानं परिभूतेः, अननुकूलोऽभिमानस्य, असम्मतो दैन्यस्य, अनायत्तो रोषस्य अनभिमुखः सुखानाम्।**

**शब्दार्थ**—**प्रायः**=बहुधा **महाभूतानाम्** **अपि**=महान प्राणियों सिंह गजादि के भी **तेजांसि**=तेज, **दुरभिभवानि**=अपराजेय **भवन्ति**=होते हैं। **सर्वतेजस्विनाम्**=समस्त तेजस्वियों में **अयम्**=यह जावालि ऋषि **अग्रणीः**=नेता या प्रमुख हैं। **अनेन महात्मा**=इन ऋषि से **अधिष्ठितम्**=अधिष्ठित **जगत्**=संसार **द्विसूर्यम्** **इव**=दो सूर्यों को धारण करने वाला सा **आभाति**=प्रतीत होता है। **एतद् अवष्टम्भात्**=इन ऋषि के आश्रय से **क्षितिः**=पृथ्वी (भी) **निष्कम्पा** **इव**=मानो स्थिर (निश्चल) है। **एषः**=यह ऋषि **करुणारसस्य**=करुणा दया रूपी जल की **प्रवाहः**=धारा हैं, **सन्तरण सेतुः**=पार करने के लिये पुलरूप हैं **संसार सिन्धोः**=संसार रूपी समुद्र की। **क्षमाम्भसाम्**=क्षमा रूपी जल के **आधारः**=आधार, आश्रय दाता हैं। **तृष्णालतागहनस्य**=सांसारिक विषयवासना की भोगेच्छारूपी घनी लताओं को (काटने के लिये) **परशुः**=कुठार हैं। **सन्तोषामृतरसस्य**=सन्तोषरूपी अमृत रस के **सागरः**=समुद्र हैं। **सिद्धिमार्गस्य**=सिद्धि रूपी मार्ग के अर्थात् सफलता (मोक्ष) के रास्ते के **उपदेष्टा**=निर्देशक गुरु हैं

असद्ग्रहस्य=अनिष्टकारी ग्रहों के अस्तगिरि=अस्ताचल हैं (समाप्ति कर्ता हैं)। उपशमतरोः=शान्तिरूपी वृक्ष की मूलम्=जड़ हैं। प्रज्ञाचक्रस्य=विज्ञान-रूपी पहिये के नाभि=केन्द्र हैं। धर्मध्वजस्य=धर्मरूपी पताका के प्रासादः=भवन हैं सर्व विद्यावताराणाम्=समस्त विद्याओं के प्रवेश हेतु तीर्थम्=तीर्थस्थल अर्थात् घाट रूप हैं। लोभार्णवस्य=लोभरूपी सागर के लिये बडवानलः=बडवाग्नि हैं। शास्त्ररत्नानाम्=शास्त्र रूपी रत्नों की निकषः=कसौटी हैं। रागपल्लवस्य=वासना रूपी नवीन पत्तों के दावानलः=जलाने वाली आग हैं। क्रोधभुजङ्गस्य=क्रोधरूपी सर्प के लिये महामन्त्रः=गारुडि महामन्त्र हैं। मोहान्धकारस्य=अज्ञान रूपी अन्धकार के दिवसकरः=सूर्य हैं। नरकद्वाराणाम्=नरक रूपी दरवाजों के अर्गलबन्धः=जंजीर (कुण्डी) हैं। आचाराणाम्=शुभ आचरणों के कुलभवनम्=मूल निवास स्थान हैं। मङ्गलानाम्=कल्याणों के आयतनम्=मन्दिर हैं। मदविकाराणाम्=अहंकार जनित वृत्तियों के अभूमिः=ऊषर क्षेत्र हैं। सत्पथानाम्=सन्मार्गों के दर्शकः=दिखलाने वाले हैं, उपदेष्टा हैं। साधुतायाः=सज्जनता के उत्पत्तिः=उत्पत्ति स्थान हैं। उत्साहचक्रस्य=उत्साहरूपी पहिये की नेमिः=धुरी हैं। सत्त्वस्य=आत्मबल के आश्रयः=आधार हैं। कलिकालस्य=कलियुग के विपक्षः=शत्रु हैं। तपसः=तपस्या के कोशः=खजाना है। सत्यस्य=सत्य के सखा=मित्र हैं। आर्जवस्य=विनम्रता के क्षेत्रम्=क्षेत्र हैं, उत्पत्तिस्थान हैं। पुण्यस्थानस्य=पुण्यराशि के प्रभवः=जन्मदाता हैं। मत्सरस्य=ईर्ष्याभाव के अदत्तावकाशः=स्थान (अवसर) न देने वाले हैं। विपत्तेः=आपत्तियों के अरातिः=शत्रु हैं। परिभूतेः=पराभव के अस्थानम्=अपात्र हैं। अभिमानस्य=अहंकार के अननुकूलः=प्रतिकूल हैं। दैन्यस्य=दीनता के असंमतः=समर्थन न करने वाले हैं। रोषस्य=क्रोध के अनायत्तः=अधीन न होने वाले हैं। सुखानाम्=सुखों के प्रति अनभिमुखः=अभिमुख (आसक्तिपूर्ण) होने वाले नहीं हैं।

अनुवाद –(शुक जाबालि ऋषि के गुणों का वर्णन करता हुआ मन में विचार करता है) प्रायः महान प्राणियों सिंह गजादि का तेज भी अतिक्रमण करने योग्य नहीं होता और यह जाबालि ऋषि तो समस्त तेजस्वी महापुरुषों में अग्रणी हैं। (इसीलिए) इनसे युक्त यह संसार दो सूर्यों को धारण करने वाला सा प्रतीत हो रहा है। एक तो सूर्य और दूसरा जाबालि रूप सूर्य)। इन्हीं की स्थिति से मानों पृथ्वी निश्चला है, स्थिर है। ये ऋषि दया रूपी जल के प्रवाह हैं, संसार रूपी समुद्र को (पार करने के लिए) पुल हैं, क्षमा रूपी जलराशि के आधार हैं. विषय वासना रूपी घनी लताओं के (काटने हेतु) कुठार हैं, सन्तोष रूपी अमृत रस के समुद्र हैं, सिद्धि (मोक्ष) के मार्ग का उपदेश करने वाले गुरु हैं, अनिष्टकारी ग्रहों के (निवारक) अस्ताचल हैं; शान्तिरूपी वृक्ष की जड़ हैं, विशिष्ट ज्ञान रूपी पहिये की धुरा हैं, धर्म रूपी पताका के भवन हैं, समस्त विद्याओं में प्रवेश पाने के लिये तीर्थ स्थल (घाट रूप) हैं, लोभ रूपी सागर को (सुखाने वाले) बडवाग्नि हैं, शास्त्ररूपी रत्नों की कसौटी हैं। वासना रूपी नवीन पत्तों को (जलाने वाली) दावाग्नि हैं, क्रोधरूपी सर्प को (वश में

करने वाले) महामन्त्र, गारुड़िमन्त्र हैं, अञ्जन रूपी अन्धकार के (विनाशक) सूर्य हैं, नरक के द्वारों के (अवरोधक) सांकर जंजीर हैं, सदाचारों के मूल भवन हैं, कल्याणों के पवित्र मन्दिर हैं, अहंङ्कार जनित वृत्तियों के ऊषर स्थान हैं, सन्मार्गों को दिखलाने वाले हैं, सज्जनता के जन्मदाता हैं, उत्साह रूपी पहिये की धुरा हैं, आत्मबल के उत्पत्ति स्थान हैं, कलियुग के शत्रु हैं, तपश्चर्या के खजाना हैं, सत्य के मित्र हैं, विनम्रता के क्षेत्र हैं, पुण्यराशि के जन्मदाता हैं, ईर्ष्याभाव को अवसर न देने वाले हैं, विपत्तियों के शत्रु हैं, पराभव के अपात्र हैं, अभिमान के अहित कारक हैं. दीनता से असहमत हैं, क्रोध के वशीभूत न होने वाले सुखों के प्रति अभिमुख (आसक्ति युक्त) न होने वाले है ।

**संस्कृत व्याख्या**—(ऋषेर्व्यक्तित्वं चिन्तयति मनसि शुकः) **प्रायः** बहुधा **महाभूतानाम् अपि** महाप्राणिनाम अपि अर्थात् मृगाधिपति गजयूथादीनामपि **तेजांसि** महांसि दुरभिभवानि दुःखेन कठिनतया अभिभवितुम् अतिक्रमितुं योग्यानि **भवन्ति** वर्तन्ते । **अयञ्च** पुरोदृश्यमानो जाबालिऋषिः **सर्वतेजस्विनाम्** अखिलधामवताम् **अग्रणीः** नेता अतोऽयं सर्वथाऽनति क्रमणीयतेजा इति । **अनेनमहात्मना** जाबालितपस्विना **अधिष्ठितम्** आश्रितं युक्तमित्यर्थः जगत् भुवनम् **द्विसूर्यमिव** द्वौ उभौ सूर्यौ दिवाकरौ यत्र तदिव आभाति प्रतीयते, जाबालेरपि द्वितीय सूर्य इव तेजस्त्वात् सोऽपि अपरः सूर्य इति तात्पर्यम् । **एतद् अवष्टम्भात्** एतस्य ऋषेः अवष्टम्भः आश्रयः तस्मादिव (हेतूत्प्रेक्षा) **क्षितिः** पृथिवी **निष्कम्पा** निश्चला प्रतीयते इति शेषः ।

**एष** जाबालिः **करुणारसस्य** करुणा दया एव रसः जलं तस्य दयारूप वारिण इत्यर्थः प्रवाहः स्रोतः सर्वत्र सर्वदा च समस्तान् प्रति करुणा भाव सम्पन्नतात् प्रवाह इत्यर्थ सङ्गतिः । **संसार सिन्धोः** संसारः जगदेव सिन्धुः पारावारः तस्य **सन्तरणसेतुः** उत्तरणाय पारगमनाय उत्तरणजलपोतरूपः, **क्षमाम्भसाम्** क्षमा सहिष्णुता एव अम्भांसि जलानि तेषाम् **आधारः** आश्रयः क्षमासमुद्र इत्यर्थः । **तृष्णालतागहनस्य** तृष्णा सांसारिक विषयभोगेच्छा एव लताः वल्लर्यः तासां गहनस्य काननस्य (कर्तनाय) **परशुः** कुठारः, **सन्तोषामृतरसस्य** सन्तोषो यथोपलब्धवस्तुना तुष्टिः स एव अमृतरसः पीयूषजलं तस्य **सागरः** समुद्रः, **सिद्धिमार्गस्य** सिद्धेः मार्गः सिद्धिमार्गः (तत्पु०) मोक्षपथः तस्य **उपदेष्टा** उपदेशकः—मुमुक्षुभ्यो मुक्तिहेतोः अध्यात्मविद्याया उपदेशात्, **असद्ग्रहस्य** असत् दुष्टता एव ग्रहः शनैश्चर प्रभृतिदुर्दन्तिग्रह तस्य **अस्तगिरिः** अस्ताचलः (विनाशक इत्यर्थः) अथवा असद्ग्रहः दुराग्रहः तस्यास्तगिरिः, **उपशमतरोः** उपशमः शान्तिः स एव तरुः वृक्षस्तस्य **मूलम्** हेतुः, **प्रज्ञाचक्रस्य** प्रकृष्टाज्ञा बुद्धिरिति प्रज्ञा प्रज्ञानमित्यर्थः प्रज्ञानमेव चक्रम् रथाङ्गम् नाभिः आलम्बनीभूतमध्यभागः मध्यपिण्डिकेत्यर्थः, **धर्मध्वजस्य**

धर्म एव ध्वजः पताका तस्य प्रासादः राजभवनम्, सर्वविद्यावताराणाम् सर्वाश्च ताः विद्याः सर्वविद्याः (कर्मधारय) आन्वीक्षिक्यादयोऽथवा चतुर्दश विद्याः तासु येऽवतारा: प्रवेशास्तेषा तीर्थम् घट्टः सलिलेषु सरलतयावतरणाय घट्टानामावश्यकत्वात् घट्टाश्चतीर्थेषु भवन्ति तस्मादृषिः शास्त्रादिषुप्रवेशाय तीर्थं रूपः। लोभार्णवस्य लोभः लोलुपता एव अर्णवः समुद्रस्तस्य बडवानलः और्वः शोषकत्वात्, शास्त्ररत्नानाम् शास्त्राण्येव रत्नानि मणिमाणिक्यादीनि तेषाम् निकषोपलः शाण शिलाः परीक्षणप्रस्तर इत्यर्थः, रागपल्लवस्य रागः विषयानुरागः एव पल्लवः किसलयस्तस्य दावानलः वनाग्निः दाहकत्वात् क्रोधभुजङ्गस्य क्रोधः कोप एव भुजङ्गः भुजाभ्यां गच्छतीति भुजङ्ग सर्पः तस्य महामन्त्रः महांश्चासौ मन्त्रः वशीकरण मन्त्रः गारुडिमन्त्र इत्यर्थः, मोहान्धकारस्य मोहोऽज्ञानमेव अन्धकारस्तमः तस्य विनाशकः दिवसकरः सूर्यः, नरकद्वाराणाम् अन्धतामिस्त्र प्रभृति नरक कपाटानाम् अर्गलबन्धः कपाटविधायक शृंखलाबन्धः, आचाराणाम् शुभाचरणानाम् कुलभवनम् मूलगृहम्, मङ्गलानाम् कल्याणानाम् आयतनम् पवित्रदेवमन्दिरम्, मदविकाराणाम् मदोऽहंकारस्तज्जनितविकाराणां वृत्तीनाम् अभूमिः अप्रशस्ताभूमिः, ऊषरक्षेत्रम् इत्यर्थः, सत्पथानाम् सन्तः शोभनाः पन्थानाः मार्गाः सत्पथाः तेषाम् दर्शकः उपदेष्टा सर्वज्ञत्वात्, साधुतायाः साध्नोति परकार्यमिति साधुस्तस्य भावस्तत्ता साधुता सुजनता तस्याः उत्पत्तिः जन्मस्थानम्, उत्साहचक्रस्य उत्साहः उद्योग एव चक्रं रथाङ्गम् तस्य नेमिः प्रान्तभागः परिधिरित्यर्थः, सत्वस्य आत्मशक्तेः आश्रयः आधारः, कलिकालस्य कलियुगस्य विपक्षः शत्रुः, तपसः तपश्चर्यायाः कोशः निधिः, सत्यस्य अनृतरहितव्यहारस्य तथ्यस्येत्यर्थः सखा मित्रम्, आर्जवस्य ऋजुतायाः क्षेत्रम् आवासभूमिः, पुण्यसञ्चयस्य पुण्यराशेः सुकृतसमूहस्य वा प्रभवः उत्पत्तिस्थानम्, मत्सरस्य ईर्ष्यायाः अदत्तावकाशः न दत्तः अवकाशो येन सः (बहु०) विपत्तेः आपदः अरातिः शत्रुः, परिभूतेः पराभवस्य अस्थानम् अभूमिः, अभिमानस्य अहङ्कारस्य अननुकूलः नानुकूल इत्यननुकूलः प्रतिकूल इत्यर्थः, दैन्यस्य दीनतायाः उत्साहहीनताया इत्यर्थः असम्मतः विरोधी रोषस्य क्रोपस्य अनायत्तः न आयत्तः इत्यनायत्तः (नञ् समास) अवशीकृतः, सुखानाम् इहलोकसम्भूतानां तृप्तीनाम् अनभिमुखः न अभिमुख इत्यनभिमुखः (नञ्०) अनभीप्सुकः।

**विशेष**—इस गद्यखण्ड में जबालि ऋषि के व्यक्तित्व का विविध रूपों में वर्णन किया गया है अतः परम्परित रूपकालंकार का बाहुल्येन प्रयोग हुआ है। जैसे प्रवाहः करुणारसस्य में करुणा पर रस (जल) का आरोप करने के कारण ऋषि में प्रवाह का आरोप करना पड़ा। जैसा कि लक्षण है—

नियतारोपणोपायः स्यादारोपः परस्य यः
तत्परम्परितं श्लिष्टे वाचके भेदभाजि वा। (काव्य प्रकाश)

इस प्रकार करुणारसस्य से मोहान्धकारस्य तक परम्परित रूपक अलंकार है।

कहीं-कहीं एक देश विवर्तिरूपक भी है। इन सभी स्थानों में एक ही मुनि का अनेक रूपों में उल्लेख होने से उल्लेखालंकार भी है।

नरकद्वाराणाम् से तीन वाक्यों में निरङ्ग रूपक है तथा आगे पुनः परम्परित रूपकालंकार है।

द्विसूर्य्यमिव तथा निष्कम्पेव में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

तीर्थं सर्वविद्यावताराणाम्—अवतार का अर्थ उतरना, प्रवेश करना, जैसे किसी सरोवर में उतरने के लिए सीढ़ियों वाले घाट की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार समस्त विद्याओं में प्रवेश पाने के लिए ऋषि जाबालि घाट का कार्य करते हैं अर्थात् उसे विद्याओं में पारंगत बना देते हैं। अर्गलाबन्ध— किवाड़ों को बन्द करने के लिये पीछे लगाई जाने वाली सांकर या कील। कुछ लोग काष्ठ के मूसलाकार दण्ड (बेंड़ा) को भी अर्गला कहते हैं। अनायत्त—पराधीन न होना, जाबालि ऋषि क्रोध के वश में नहीं आ सके इसीलिये वे रोष के अनायत्त कहे गये। वस्तुतः इसके प्रत्येक पद में कवि का कल्पनाजन्य सौन्दर्य विद्यमान है।

V. Imp.

**अस्य भगवतः प्रभावादेवोप शान्त वैरमपगत मत्सरं तपोवनम्। अहो! प्रभावो महात्मनाम्। अत्र हि शाश्वतिकमपहाय विरोधमुपशान्तान्तरात्मानस्तिर्यञ्चोऽपि तपोवन वसति सुखमनुभवन्ति। तथाहि एष विकचोत्पल वनरचनानुकारिणमुत्पतच्चारु चन्द्रकशतं हरिणलोचनद्युति शबलमभिनव शाद्वलमिव विशति शिखिनः कलापमातपाहतो निःशङ्कमहिः। अयमुत्सृज्य मातरमजात केशरैः केशरिशिशुभिः सहोपजातपरिचयः क्षरत्क्षीरधारं पिबति कुरङ्गशावकः सिंहीस्तनम्। एष मृणालकलाप शङ्किभिः शशिकरधवलं सटाभारम् आमीलितलोचनो बहु मन्यते द्विरदकलभैराकृष्यमाणं मृगपतिः।**

शब्दार्थ—अस्य भगवतः=इन भगवान् जाबालि के प्रभावात् एव=प्रभाव से ही उपशान्त वैरम्=शान्त वैर वाला अपगतमत्सरम्=ईर्ष्याभाव रहित तपोवनम् =तपोवन (है) अहो=आश्चर्यजनक है महात्मनाम्=महापुरुषों का प्रभावः= प्रभाव। अत्रहि=क्योंकि इस आश्रम में शाश्वतिकम्=जातिगत या सनातन स्वभावगत विरोधम्=पारस्परिक विद्वेष को अपहाय=त्याग कर उपशान्तान्तरात्मानः= अत्यन्त शान्त अन्तरात्मा वाले होकर तिर्यञ्चोऽपि=पशुपक्षी भी तपोवनवसतिसुखम्= तपोवन में रहने के सुख का अनुभवन्ति=अनुभव करते हैं। तथाहि=जैसे कि एष =यह आतपाहतः=धूप से व्याकुल अहिः=सर्प विकचोत्पलवनरचनानुकारिणम्= खिले हुए नीलकमल वन का अनुकरण करने वाले उत्पतच्चारुचन्द्रकशतम्=ऊपर को उठे हुए सुन्दर चन्द्रकशतम्=सैंकड़ों चन्द्राकार आकृतियों वाले हरिणलोचनद्युति शबलम्=मृगों के नेत्रों की कान्ति से युक्त अभिनवशाद्वलम् इव=नवीन घास के अङ्कुरों के समान (प्रतीत होने वाले) शिखिनः कलापम्=मयूर के पिच्छभार में

विशति=प्रवेश कर रहा है। अयं कुरङ्ग शावकः=यह मृग छौना उत्सृज्यमातरम् =माँ को छोड़कर अजातकेशरैः=गर्दन पर सटाएँ नहीं निकली हैं जिनके ऐसे केशरिशिशुभिः= सिंह शावकों के सह=साथ उपजातपरिचयः=परिचय हो जाने से अर्थात् हिला-मिला होने से क्षरत्क्षीरधारम्= बह रही है दूध की धार जिससे ऐसे सिंहीस्तनम्= सिंहनी के स्तनों को पिबति=पी रहा है। एष मृगपतिः=यह सिंह मृणालकलापशङ्किभिः=मृणाल=कमलनाल के समूह की भ्रान्ति से शशिकरधवलम् =चन्द्र किरणों के समान श्वेत सटाभारम्=जटा समूह को अमीलितलोचनः= नेत्र बन्द किये हुए द्विरदकलभैः=हाथी के बच्चों के द्वारा आकृष्यमाणम्=खींचा जाता हुआ बहुमन्यते=प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है।

**अनुवाद**—(शुक अपने मन में सोचता है कि) इन्हीं भगवान् जाबालि के प्रभाव से ही यह तपोवन वैरभाव व ईर्ष्यारहित हो गया है। ऐसे महान् आत्मा वालों का प्रभाव आश्चर्यजनक है। (क्योंकि) यहाँ अपने स्वाभाविक (जातिगत) वैरभाव को त्यागकर शान्त अन्तरात्मा वाले पशु-पक्षी भी तपोवन में निवास करने का सुख अनुभव कर रहे हैं जैसे कि यह सर्प, खिले हुए नीलकमल वन का अनुकरण करने वाले, ऊपर उठी हुई सैकड़ों सुन्दर चन्दकों—चन्द्राकार आकृतियों वाले, मृग नेत्रों की कान्ति से युक्त नवीन घास के समान मयूरों के पिच्छभार में गर्मी से परेशान होकर प्रवेश कर रहा है। यह मृगछौना (अपनी) माँ को छोड़कर अनुत्पन्न अयाल (जटा समूह) वाले सिंह शावकों के साथ परिचय हो जाने से बहती हुई दुग्ध धाराओं वाले सिंही के स्तनों को पी रहा है। कमल नाल की भ्रान्ति वाले, चन्द्रकिरणों के समान श्वेत सटासमूह को, गजशावकों द्वारा खींचे जाते हुये आँख बन्द किये हुए यह सिंह अधिक आदर भी दे रहा है अर्थात् आनन्द का अनुभव कर रहा है।

**संस्कृत व्याख्या** (शुको मनसि विचारयति) **अस्य भगवतो** माहात्म्यवतः **प्रभावादेव** माहात्म्यात् सामर्थ्याद्वा **तपोवनम्** जाबालेस्तपःस्थली **उपशान्तवैरम्** उपशान्तं विनष्टं वैरं पारस्परिकः स्वाभाविको विरोधो यत्र तादृशम् तथा च **अपगतमत्सरं** अपगतो दूरीभूतो मत्सरः ईर्ष्याभावो यत्र तादृशम् अस्ति। **अहो! आश्चर्यजनकम् महात्मनाम्** माहात्म्यवतां **प्रभावः** माहात्म्यं सामर्थ्यं वा यतो हि अत्र आश्रमे **शाश्वतिकं** नैजं जातिगतं स्वाभाविकं वा **विरोधं**; वैरभावम् **अपहाय** परित्यज्य **उपशान्तान्तरात्मानः** उपशान्ता पारस्परिक विरोध शून्या अन्तरात्मानः अन्तःकरणानि येषान्ते तादृशाः **तिर्यञ्चोऽपि** पशुपक्ष्यादयोऽपि **तपोवनवसतिसुखम्** तपोवने मुनेराश्रमे वसतेः निवासस्य सुखम् आनन्दम् **अनुभवन्ति** भुञ्जन्ति, अनुभवविषयी कुर्वन्तीत्यर्थः। **तथाहि** उदाहरणतया **एष पुरोदृश्यमानः अहिः** सर्पः **आतपाहत** आतपेन सूर्यकिरणोष्मया आहतः पीडितः सन् **विकचोत्पल वनरचनानुकारिणम्** विकचानां विकसितानाम् उत्पलानां नीलकमलानां वनस्य विपिनस्य या रचना-सृष्टिः तामनुकर्तुं शीलं यस्य तं तादृशम् अथ च **उत्पतच्चारुचन्द्रकशतम्** उत् ऊर्ध्वं पतत् गच्छन् अथवा उत्पतत्

उद्दीप्यमानं चारु चन्द्रकाणां सुन्दर मेचकानां चन्द्राकारमयूरपिच्छ चिह्नानां शतं समूहो यत्र तम् तथा च हरिणलोचनद्युतिशबलम् हरिणानां मृगाणां यानि लोचनानि नेत्राणि तेषां द्युतिभिः शोभाभिः शबलं कर्बुरितम् अभिनवशाद्वलमिव अभिनवं नवीनं यत् शाद्वलम् शष्पसङ्कुल प्रदेशमिव शिखिना कलापम् मयूरस्य पिच्छभारं निःशङ्कं निर्भयं यथा स्यातथा विशति प्रविशति। मयूरपन्नगयोर्यद्यपि शाश्वतिको विरोधस्तथापि मुनेः प्रभावात्पारस्परिकं वैरं विस्मृत्य सूर्यरश्मि सन्तप्तोऽहिः निःशङ्कं मयूरपिच्छे अधश्छाया प्राप्त्यर्थं विशतीति तात्पर्यम्।

अपरमुदाहरति शुकः - अयम् कुरङ्गशावकः पुरोदृश्यमानो मृगशिशुः मातरं स्वजननीम् उत्सृत्य त्यक्त्वा अजातकेशरैः न जाताः नोत्पन्नाः केशराः सटाः येषान्तैः सटाभाररहितैः बालैरित्यर्थः केशरिशिशुभिः सिंह शावकैः सह साकम् उपजातपरिचयः उपजातः समुत्पन्नः परिचयः आत्मीयता यस्य सः तादृशः परिचितः सन् क्षरत्क्षीरधारं क्षरन्ती स्रवन्ती क्षीरस्य दुग्धस्य धारा प्रवाहो यस्मात्त तादृशं सिंहीस्तनम् सिंह्याः केसरिण्याः स्तनं पयोधरं पिबति पानं करोति।

तृतीयमुदाहरणम् –एष पुरोविद्यमानो मृगपतिः सिंहः आमीलितलोचनः आ ईषद् आमीलिते मुकुलिते लोचने नयने येन सः तादृश सन् शशिकरधवलम् शशिनश्चन्द्रमसः कराः रश्मयः तद्वद्धवलं शुभ्रवर्णं सटाभारम् स्वजटासमूहम् मृणालकलापाशङ्किभिः मृणालानां कमलनालानां कलापं समूहम् आशङ्किभिः आशङ्कन्ते सम्भावयन्ति इति तच्छीलास्तैः धवलविससमूहभ्रान्तिमद्भिरित्यर्थः द्विरदकलभैः द्वौ रदौ दन्तौ येषान्ते द्विरदाः गजाः तेषां कलभैः शिशुभिः हस्तिशावकैरित्यर्थः आकृष्यमाणम् अवकृष्यमाणं बहुमन्यते समादरं करोति। गजशावकैनाकृष्यमाण सटाभारेण मन्द मन्दानन्दोदयान्मीलित लोचनो मृगपतिः सुखमेवानुभवति न तु विरोधभावम्।

**विशेष**—इस गद्य खण्ड में कवि ने महर्षि जाबालि के उत्कृष्ट प्रभाव का वर्णन करते हुए पारस्परिक शत्रुता को भूल जाने वाले तपोवन के प्राणियों का वर्णन किया है।

**शाश्वतिक विरोध**—जन्मजात शत्रुता जैसे मयूर सर्प में, सिंह मृग में, सिंह गज में।

"विकचोत्पल···" इस वाक्य में मयूर पंखों में आँखों की शोभा का वर्णन किया गया है। खिले हुए नीलकमल के वन की जैसे सृष्टि हो, सैकड़ों चन्द्राकार चिह्न ऊपर को उठे हुए हैं। अतः हरी घास चरते समय मृग नेत्र से प्रतीत होने वाले मयूर पंखों के नीचे सर्प धूप से तप्त होकर शरीर को शान्ति दिलाने हेतु प्रवेश कर रहा है। मयूर सर्प को खा जाता है। यह जानते हुए भी जाबालि के प्रभाव से वह कुछ नहीं करेगा इसलिये निःशङ्क होकर उसकी पंख छाया में आ गया। यहाँ शाद्वलमिव पद में उपमा अलंकार है।

मृणालकलापाशङ्किभिः में भ्रान्तिमान अलंकार है क्योंकि केसर समूह में

कमल नाल की भ्रान्ति हो रही है। शशिकरधवलम् में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। द्विरदकलभैराकृष्यमाण में स्वभावोक्ति अलंकार है। अतः तीनों का अङ्गाङ्गि भाव सङ्कर अलंकार है।

**इदमिह कपिकुलमपगतचापलमुपनयति मुनिकुमारकेभ्यः स्नातेभ्यः फलानि। एते च न निवारयन्ति मदान्धा अपि गण्डस्थलोभाञ्जि मदजलपाननिश्चलानि मधुकरकुलानि, सञ्जातदयाः कर्णतालैः करिणः। किं बहुना, तापसाग्निहोत्र धूमलेखाभि रुत्सर्पन्तीभिरनिशमुपपादित कृष्णाजिनोत्तरासङ्ग शोभाः फलमूलभृतो वल्कलिनो निश्चेतनास्तरवोऽपि सनियमा इव लक्ष्यन्तेऽस्य भगवतः किं पुनः सचेतनाः प्राणिनः।**

**शब्दार्थ**—इह=इस तपोवन में इदम्=यह कपिकुलम्=बन्दरों का समूह अपगत चापलम्=चञ्चलता को त्याग कर स्नातेभ्यः=स्नान किए हुए मुनिकुमारकेभ्यः=ऋषिपुत्रों के लिए फलानि=फल उपनयति=ला रहा है च=और एते=ये करिणः=हाथी मदान्धा अपि=मद से अन्धे अर्थात् मतवाले होने पर भी गण्डस्थलोभाञ्जि=कपोल स्थली पर बैठे हुए मदजलपान निश्चलानि=मदजल (हाथियों के गण्डस्थल से बहने वाले मदजल विशेष) को पीने से निश्चेष्ट (अचंचल) हुए मधुकर कुलानि=भ्रमर समूह को सञ्जात दयाः=दया आ जाने के कारण (हाथी) कर्णतालैः=कानों को हिलाने के आघात से न निवारयन्ति=भगा नहीं रहे हैं। किं बहुना=अधिक क्या कहा जाय तापसाग्निहोत्रधूमलेखाभिः=तपस्वियों द्वारा किये गये अग्निहोत्र दैनिक यज्ञ के धुएँ की रेखाओं से उत्सर्पन्तीभिः=जो ऊपर को उठ रही थीं, अनिशम्=निरन्तर उत्पादित कृष्णाजिनोत्तरासङ्ग शोभाः=उत्पादित =उत्पन्न की गई कृष्णाजिन=मृगचर्म के उत्तरासङ्ग=उत्तरीय वस्त्र की शोभा, शोभा वाले फलमूलभृतः=फल और मूल (जड़) को धारण करने वाले वल्कलिनः=वल्कल वस्त्रों (छाल के कपड़ों) को धारण किये हुए निश्चेतनाः=अचेतन अर्थात् अज्ञानी होने पर भी अस्य भगवतः=इन महर्षि जाबालि के प्रभाव से तरवः अपि=आश्रम के वृक्ष भी सनियमा इव=व्रत करते हुए से लक्ष्यन्ते=प्रतीत हो रहे हैं (दिखाई पड़ रहे हैं) सचेतनाः प्राणिनः=चेतनायुक्त प्राणियों अर्थात् मनुष्यों की तो किं पुनः=बात ही क्या है।

**अनुवाद**—(शुक वर्णन करते हुये कहता है) इस आश्रम में ये बन्दरों का समूह चञ्चलता छोड़कर स्नान किये हुए मुनि कुमारों को फल दे रहे हैं और ये मतवाले होते हुए भी हाथी अपने कपोल पर बैठे हुए तथा मदजल पीने से निश्चल भ्रमर समूह को दयाभाव उत्पन्न हो जाने से कानों को हिलाकर भगा नहीं रहे हैं। अधिक क्या कहा जाय भगवान् जाबालि के प्रभाव से मुनियों के द्वारा किये जा रहे अग्निहोत्र के ऊपर उठते हुए धूम्रसमूह से मृगचर्म के उत्तरीय वस्त्रों की शोभा को धारण करने वाले, फल-मूल और छाल वस्त्रधारी वृक्ष अचेतन होने पर भी सदैव

व्रतधारी मुनियों के समान दिखाई दे रहे हैं फिर भला सचेतन प्राणियों की तो बात ही क्या।

**संस्कृत व्याख्या**—इह अस्मिन् आश्रमे **अपगतचापलम्** अपगतं विनष्टं चापलं चाञ्चल्यं यस्य तत्तादृशम् इदम् पुरोदृश्यमानं **कपिकुलम्** वानर समूहः **स्नातेभ्यः** विहितस्नान क्रियेभ्यो **मुनिकुमारकेभ्यः** मुनीनां ऋषीणां कुमारकाः बालकाः तेभ्यः ऋषिपुत्रेभ्य इत्यर्थः **फलानि** वृक्षफलानि सस्यानि च **उपनयति** आहरति प्रददाति वा। **एते च** पुनश्च पुरोदृश्यमालाः **मदान्धा अपि** मदोन्मत्ता अपि **करिणः** हस्तिनः **गण्डस्थली भाञ्जि** गण्डस्थलीं कपोलस्थलीं भजन्ति सेवन्ते यानि तानि तादृशानि (मधुकरकुलानि) अथ च **मद जलपान निश्चलानि** चेष्टारहितानि मदजलं दानवारि तत्पानेन सेवनेन निश्चलानि **मधुकरकुलानि** मधुकराणां भ्रमराणां कुलानि समूहः **सञ्जातदयाः** सञ्जाता समुत्पन्ना दया सहृदयता येषु ते तादृशाः (करिणः) **कर्णतालैः** कर्णताडनैः स्वविस्तृत कर्ण ताडनैः **न निवारयन्ति** न अपसारयन्ति। **किं बहुना** किमधिकेन जल्पितेन **अस्य** पुरोविद्यमानस्य **भगवतः** जाबालेः प्रभावाद्वा **तापसाग्निहोत्रधूमलेखाभिः** तापसानां ऋषीणां यानि अग्निहोत्राणि दैनिक यज्ञाविधयः तेषां धूमलेखाभिः धूम्रलताकाभिः **उत्सर्पन्तीभिः** उपरि गच्छन्तीभिश्च **निष्पादित कृष्णाजिनोत्तरासङ्ग शोभाः** निष्पादिता विहिता कृष्णाजिनस्य कृष्णसार मृगचर्मणः उत्तरासङ्गस्य उत्तरीय वस्त्रस्य शोभा कान्तिरिव शोभा येषान्ते तादृशाः अथ च **वल्कलिनः** वृक्षत्वग्धारिणः **फलमूलभृतः** फलानि सस्यानि मूलानि कन्दानि च बिभ्रन्तीति धारयन्तीति ते तादृशाः **निश्चेतनाः** संज्ञा शून्याः **तरवः अपि** वृक्षा अपि **सनियमा इव** व्रतिन इव **लक्ष्यन्ते** अवलोक्यन्ते **सचेतनाः** ज्ञानवन्तः **प्राणिनः** जीवाः **पुनः किम्** किं वक्तव्यम् अयमभिप्रायो यत् यस्या श्रमस्य वृक्षा अपि व्रतिन इवाचरन्ति तत्र मानवानां तु कथैव का।

**विशेष**—इस गद्य खण्ड में कवि ने जाबालि आश्रम में असाधारण तप प्रभाव का वर्णन किया है। बन्दर स्वभावतः चपल होते हैं किन्तु आश्रम के प्रभाव से वे चपलता छोड़कर ऋषियों की सहायता करते हैं। स्नान किये हुए मुनिकुमारों को पूजार्थ फल आदि लाते हैं। हाथी अपनी मदविह्वल अवस्था में भी भौंरों का अनिष्ट नहीं करते। आश्रम के वृक्ष तो साक्षात् मुनियों जैसे ही प्रतीत हो रहे हैं क्योंकि वे अग्निहोत्र की उठती हुई काली धूमरेखाओं रूपी वस्त्रों को धारण किये हुए, फल-मूल आदि से युक्त हैं। फिर मनुष्यों की सात्विकता की तो बात ही क्या है। 'सनियमा इव' में गुणोत्प्रेक्षा तथा 'कृष्णाजिनो' में लुप्तोपमा अलंकार है तथा इन दोनों का अङ्गाङ्गिभाव सङ्करालंकार है।

**इत्येवं चिन्तयन्तमेव मां तस्यामेवाशोकतरोरधश्छायायामेकदेशे स्थापयित्वा हारीतः पादावुपगृह्य कृताभिवादनः पितुरनति समीपवर्तिनि कुशासने समुपाविशत्। आलोक्य तु मां सर्व एव मुनयः "कुतोऽयमासादितः शुकशिशुः" इति तमासीनमपृच्छन्। असौ तु तानब्रवीत्—"अयं मया**

**कुतूहलो भगवान् जाबालिरीषदावलित कन्धरः पुण्यजलैः प्रक्षालयन्निव मामति प्रशान्तया दृष्ट्या दृष्ट्वा सुचिरमुपजातप्रत्यभिज्ञान इव पुनर्विलोक्य "स्वस्यैवाविनयस्य फलमनेनानुभूयते" इत्यवोचत् ।**

**शब्दार्थ**— **तद्**=इसलिये **यावद्**=जब तक **अयम्**—यह शुक **अप्ररूढपक्षतिः**= पंख नहीं निकलते **अक्षमः**=समर्थ नहीं होता **अन्तरिक्षमुत्पतितुम्**=आकाश में उड़ने के लिये **तावद् अत्रैव** तब तक यहीं **कस्मिंश्चिद्**=किसी **आश्रमतरुकोटरे**= आश्रम के वृक्ष के खोखले में **मुनिकुमारकैः**=ऋषिपुत्रों के द्वारा **अस्माभिश्च**=और हमारे द्वारा **उपनीतेन**=लाये गये **नीवारकणनिकरेण**=मुनि अन्न के कण समूह से **विविधफलरसेन च**=और अनेक फलों के रस से **संवर्ध्यमानः**=पलता हुआ **धारयतु**= धारण करे **जीवितम्**=जीवन । **अनाथपरिपालनम्**=अनाथों का पालन करना **हि**= निश्चय से **धर्मः**=कर्तव्य है **अस्मद्विधानाम्**=हम जैसे तपस्वियों का **उद्भिन्नपक्षतिस्तु**=पंख निकल आने पर तो **गगनतलसञ्चरणसमर्थः**=आकाश में उड़ने में समर्थ हो जाने पर **यास्यति**=जायेगा **यत्रास्मै**=जहाँ इसे **रोचिष्यते**=अच्छा लगेगा । **इहैव वा**=अथवा यहीं **उपजातपरिचयः**=परिचय हो जाने पर **स्थास्यति**= बना रहेगा । **इत्येवमादिकम्**=इस प्रकार का **अस्मद् सम्बद्धम्**=मुझसे सम्बन्धित **आलापम्**=वार्तालाप को **आकर्ण्य**=सुन कर **किञ्चिद्**=कुछ **उपजातकुतूहलः**= कौतूहल उत्पन्न हो जाने वाले **भगवान् जाबालिः**=महात्मा जाबालि ने **ईषद्** ॥ किञ्चिद् **आवलित कन्धरः**=गर्दन घुमाने वाले **पुण्यजलैः**=पवित्र जलों से **प्रक्षालयन्निव**=नहलाते हुए से **माम्**=मुझको **अति प्रशान्तया**=अत्यन्त शान्त दृष्टि से **दृष्ट्वा**=देख कर **सुचिरम्**=बहुत देर तक **उपजात प्रत्यभिज्ञानइव**=पहचान सी हो जाने पर अर्थात् पूर्वस्मृति आ जाने पर **पुनः** पुनः **विलोक्य**=बार-बार देखकर **स्वस्यैव**=अपने ही **अविनयस्य**=अशिष्ट आचरण का **फलम्**=फल, परिणाम **अनेन**=इस सुग्गे के द्वारा **अनुभूयते**=भोगा जा रहा है **इत्यवोचत**=ऐसा कहा ।

**अनुवाद**- (शुक हारीत के कथन का वर्णन करता है) "इसलिये जब तक इसके पंख नहीं निकलते और आकाश में उड़ने योग्य नहीं हो जाता तब तक यहीं आश्रम के किसी वृक्ष के खोखले में, ऋषि कुमारों एवं हमारे द्वारा लाये गये तिन्नी चावल (मुनियों का चावल) के कण समूह एवं विविध फलों के रस से पलता हुआ जीवन धारण करे । हम जैसों (ऋषियों) का धर्म है अनाथों का पालन करना । पंख निकल आने पर तो आकाश में उड़ने योग्य हो जाने पर यह जहाँ इसकी रुचि होगी चला जायेगा । अथवा यहीं हिलमिल जाने पर रुक जायेगा" इस प्रकार का मुझसे (शुक से) सम्बन्धित वार्तालाप सुनकर उत्पन्न हुए कौतूहल वाले भगवान् जाबालि गर्दन को थोड़ा घुमा कर पवित्र जल से मुझे स्नान सा कराते हुए प्रसन्न दृष्टि से भलीभांति देखकर पूर्व परिचित के समान बार-बार निहार कर बोले— "अपनी ही दुष्टता का फल यह भोग रहा है ।"

**संस्कृत व्याख्या**—(हारीत-कथयति) **तद्** तस्माद् हेतोः **यावत्** यावत्काल पर्यन्तम् **अयम् शुकशिशुः अप्ररूढपक्षतिः** प्रकर्षेण रूढा, न प्ररूढा अप्ररूढा अनुत्पन्ना पक्षतिः पंखमूलं यस्य सः तादृशः **अन्तरिक्षम्** आकाशम् **उत्पतितुम्** उड्डयितुम् **अक्षमः** असमर्थः **तावत्** तावत्काल पर्यन्तम् **अत्रैव** इहैवाश्रमे **कस्मिंश्चित्** कस्मिन्नपि **आश्रमतरुकोटरे** आश्रमस्य तपोवनस्य ये तरवो वृक्षास्तेषां कोहरे स्कन्ध विवरे **मुनिकुमारकैः** ऋषिपुत्रैः **अस्माभिश्च** मया हारीतसहितैः ऋषिभिश्च **उपनीतेन** आनीतेन· **नीवारकणनिकरेण** नीवाराणां मुन्यन्नविशेषाणां कणसमूहेन **विविध फल रसेन च** विविधानां बहुप्रकाराणां फलानां सस्यानां रसेन द्रवेण च **संवर्द्धयमानो** वृद्धि प्राप्यमाणः **जीवितम्** जीवनं **धारयतु** दधातु। किमर्थमस्माभिः सेव्य इति वर्णयति—**हि** यतोहि **अनाथपरिपालनम्** अनाथानाम् दीनानां परिपालनम् रक्षणम् **अस्मद्विधानाम्** मादृशानां मुनीनाम् **धर्मः** आचारः कर्त्तव्योवा। **उद्भिन्नपक्षतिस्तु** उद्भिन्ना समुत्पन्ना स्फुटिता पक्षतिः पक्षमूलं यस्य सः तादृशस्तु **गगनतलसञ्चरण समर्थः** गगनतले आकाशे सञ्चरणे गमने समर्थः सक्षमो यः सः तादृशः अम्बरतलगमनसमर्थः इत्यर्थः **यत्र** यस्मिन् स्थाने **अस्मै** शुकाय **रोचिष्यते** रुचिकरम् अभिलषितं भविष्यति **तत्र यास्यति** गमिष्यति। **इहैव वा** अथवाऽस्मिन्नेवाश्रमे **उपजातपरिचयः** उपजातः सञ्जातः अस्माभिरन्यैः पक्षिभिः सह वा परिचयः संस्तवो यस्य सः तादृशः सन् **स्थास्यति** निवत्स्यति।

**इत्येवमादिकम्** इत्थमादिकं पूर्मवर्णितम् **मत्सम्बद्धम्** मत्तः वैशम्पायन शुकेन सम्बद्धम् नद्धं शुकविषयकमित्यर्थः **आलापम्** प्रश्नोत्तररूपकं वर्णनम् **आकर्ण्य** श्रुत्वा **किञ्चिदुपजातकुतूहलः** किञ्चित् स्वल्पम् उपजातं समुत्पन्नं कुतूहलं कौतुकं यस्य सः तादृशः **भगवान् जाबालिः** महर्षि जाबालिः **ईषदावलितकन्धरः** ईषत् किञ्चित् आवलिता आनमिता कन्धरा ग्रीवा येन सः तादृशः मद्दिशि ग्रीवां किञ्चित्परावृत्य **पुण्यजलैः** पवित्रसलिलैः **प्रक्षालयन् इव** धौतीकुर्वन् इव **मां** वैशम्पायनम् **अति प्रशान्तया** नितान्त प्रसन्नया **दृष्ट्या** चक्षुषा **सुचिरम्** चिरकालपर्यन्त **दृष्ट्वा** विलोक्य **उपजात प्रत्यभिज्ञान इव** उपजातं समुत्पन्नं प्रत्यभिज्ञानं पूर्वपरिचयः 'सोऽयम्' इत्याकारकं ज्ञानं यस्य सः तादृश इव **पुनः पुनः** भूयोभूयः **विलोक्य** मां निरूप्य **स्वस्यैव** आत्मन एव स्वकृतस्येत्यर्थः **अविनयस्य** अशिष्टाचरणस्य **फलम्** विपाकः परिणामो वा **अनेन** शुकशावकेन **अनुभूयते** अनुभवविषयीक्रियते भुज्यते इत्यर्थः **इति** इत्थम् **अवोचत्** अब्रवीत्।

**विशेष**—प्रस्तुत गद्यखण्ड में महर्षि जाबालि को इस शुकशावक के विषय में पूर्वज्ञान उत्पन्न हो जाने के कारण "अपने ही अशिष्टाचरण का फल भोग रहा है" इस कथन से सामान्य जनों के हृदय में कौतूहल उत्पन्न किया गया है।

"अनाथ परिपालनम्……" इस सूक्तिवाक्य से सन्यासाश्रम एवं ऋषियों के कर्तव्यों की ओर इङ्गित किया है। ऋषिजन प्राणिमात्र के प्रति समदृष्टि रखते थे यह भाव ध्वनित है।

स हि भगवान् कालत्रयदर्शी तपः प्रभावाद्दिव्येन चक्षुषा सर्वमेव करतलगतमिव जगदवलोकयति, वेत्ति च जन्मान्तराण्यतीतानि, कथयत्यागामिनमप्यर्थम्, ईक्षणगोचरगतानाञ्च प्राणिनामायुषः संख्यामावेदयति।

ततः सर्वैव सा तापस परिषच्छ्रुत्वा विदिततत्प्रभावा "कीदृशोऽनेनाविनयः कृतः. किमर्थं वा कृतः, क्व वा कृतः, जन्मान्तरे वा कोऽयमासीत्" इति कुतूहलिन्यभवत्, असकृदुपयाचितवती च त भगवन्तम्- 'आवेदय प्रसीद भगवन् ! कीदृशस्याविनयस्य फलमनेनानुभूयते, विहगजातौ वा कथमस्य सम्भवः, किमभिधानो वाऽयम् ? अपनयतु नः कुतूहलम्, आश्चर्याणां हि सर्वेषां भगवान् प्रभवः।"

शब्दार्थ—स हि भगवान्=वे समर्थ ऋषि जाबालि कालत्रयदर्शी=भूत, भविष्यत् व वर्तमान (तीनों कालों) की सभी बातों को जानने वाले तपः प्रभावात्=तपस्या के प्रभाव से दिव्येनचक्षुषा=अलौकिक (दिव्य) दृष्टि से सर्वम् एव=सम्पूर्ण जगत्=संसार को करतलगतम् इव=हाथ पर रखा हुआ सा अवलोकयति=देखते हैं। वेत्ति च= और जानते हैं जन्मान्तराण्यतीतानि=बीते हुए पूर्व जन्मों की घटनाओं को, कथयति=और बतलाते है आगामिनमप्यर्थम्=भविष्य में घटने वाली घटनाओं को। ईक्षणगोचरगतानाञ्च=और ईक्षण=नेत्र गोचर=इन्द्रिय के समक्ष गतानाम्=आए हुए अर्थात् मात्र नेत्रों के सामने आए हुए प्राणिनाम्=प्राणधारियों के आयुषः संख्याम्=आयु की संख्या अर्थात् उम्र की सीमा (आयु वर्ष) को आवेदयति=बता देते हैं।

ततः=इसके बाद सर्वैव सा तापसपरिषत्=वह सभी ऋषियों की सभा श्रुत्वा=(जाबालि कथन को) सुन कर विदिततत्प्रभावा=उनके प्रभाव सामर्थ्य को जानती हुई- कीदृशः=किस प्रकार का अविनयः=अशिष्ट आचरण अनेन=इस शुकशावक द्वारा कृतः=किया गया है किमर्थं वा कृतः=क्यों किया है ? क्व वा कृतः=कहाँ किया है ? जन्मान्तरे वा=और पूर्व जन्म में कोऽयमासीत्=यह कौन (क्या) था ? इति=इस प्रकार से कुतूहलिनी=(वह सभा) उत्सुक अभवत्=हो गयी। असकृत्=अनेक बार अर्थात् बार-बार उपयाचितवती च=प्रार्थना करने लगी तं भगवन्तम्=उन महर्षि जाबालि से भगवन्=हे प्रभो प्रसीद=प्रसन्न हो जाइये, आवेदय=बतलाइये कीदृशस्याविनयस्य=किस प्रकार के अशिष्ट आचरण का फलम्=परिणाम अनेनानुभूयते=इसके द्वारा भोगा जा रहा है ? विहगजातौ वा=और पक्षी योनि में कथमस्य सम्भवः=इसका जन्म कैसे हुआ ? किमभिधानो वाऽयम्=और क्या नाम है इसका ? अपनयतु=दूर करें नः=हमारे (तपस्वियों के) कुतूहलम्=उत्सुकता को। हि=क्योंकि सर्वेषाम्=सभी आश्चर्याणाम्=आश्चर्यजनक बातों में भगवान्=आप प्रभवः=समर्थ हैं अर्थात् आप सभी आश्चर्यजनक (रहस्यात्मक) तथ्यों को जानते हैं, कह सकते हैं।

**अनुवाद**—भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों को जानने वाले वे महर्षि जाबालि तपोबल से दिव्य दृष्टि के द्वारा इस सम्पूर्ण संसार को हथेली पर रखा हुआ सा देखते हैं। (अर्थात् संसार में कहाँ क्या हुआ, हो रहा है और होगा यह सब अपनी दिव्य दृष्टि से देख सकते हैं) और पूर्व जन्म के वृत्तान्त को जानते हैं तथा भविष्य की बात बता देते हैं। केवल नेत्रों के समक्ष आए हुए प्राणियों की आयु सीमा का कथन कर देते हैं।

इसके बाद उस सम्पूर्ण मुनि सभा ने ("स्वस्यैवाविनयस्यफलमनेनानुभूयते" यह) सुनकर तथा ऋषि के प्रभाव को जानती हुई इस सुग्गे ने कैसा अशिष्ट आचरण किया है? क्यों किया? कहाँ किया? पूर्व जन्म में यह कौन था? इस प्रकार की उत्सुकतापूर्ण हो गई (अर्थात् सम्पूर्ण तापस समूह में एक कुतूहल पैदा हो गया) और उन्होंने बार-बार जाबालि से प्रार्थना की कि– "महाराज! प्रसन्न हो जाओ, बतलाइये किस प्रकार के अशिष्ट आचरण का फल यह भोग रहा है और पक्षी जाति में इसका जन्म कैसे हुआ! इसका क्या नाम है! हमारी उत्सुकता को दूर करें क्योंकि आप सभी आश्चर्यजनक बातों को जानते हैं।

**संस्कृत व्याख्या**—स हि भगवान्—निश्चयेन सः जाबालिः कालत्रयदर्शी कालानाम् अतीतानागत वर्तमानानां त्रयं त्रिकं पश्यतीति तच्छीलः त्रयाणां कालानांवृत्तान्ताभिज्ञः, तपः प्रभावात् तपसः तपश्चर्यायाः प्रभावात् माहात्म्यात् दिव्येन चक्षुषा अलौकिकेन नेत्रेण सर्वमेव सम्पूर्णमेव जगत् संसारं करतलगतमिव करतले हस्ताग्रफलके गतं विद्यमानमिव अवलोकयति पश्यति च तथा अतीतानि गतानि जन्मान्तराणि भवान्तराणि पूर्वजन्मानीत्यर्थः वेत्ति जानाति अथ च आगामिनम् आगमिष्यन्तं अर्थम् वृत्तं कथयति निरूपयति ईक्षणगोचरगतानाञ्च ईक्षणयोर्नेत्रयोः गोचरतां विषयतां गतानां प्राप्तानाञ्च नेत्राभिमुखभागतानाञ्च प्राणिनाम् जीवानाम् आयुषः संख्याम् वयसः परिमाणम् आवेदयति बोधयति।

ततः एतदनन्तरम् सर्वा एव सा तापसपरिषत् समस्तापि सा ऋषि सभा श्रुत्वा शुक विषयकं जाबालेर्वाक्यं निशम्य विदिततत्प्रभावा विदितो ज्ञातः तस्य महर्षेर्जाबालेः प्रभावो माहात्म्यं यया सा तादृशी कीदृशः किंप्रकारकः अविनयः अशिष्टाचरणम् कृतः विहितः अनेन शुकशिशुना? किमर्थंवा अथवा कस्मै हेतवे कृतः? वा अथवा क्व कृतः कस्मिन् स्थाने कृतः? जन्मान्तरे वा तथा च पूर्वजन्मनि अयम् शुकः कः आसीत् कस्मिन् कुलेयोनौ वाऽभवत्? इति एवं प्रकारेण कुतुहलिनी कौतुकवती अभवत् संजाता। असकृत् अनेकशश्च यथा स्यात्तथा उपयाचितवती प्रार्थनां कृतवती तं भगवन्तम् जाबालिम् यत्—भगवन् सामर्थ्यशालिन् ऋषे। प्रसीद प्रसन्नोभव आवेदय बोधय वर्ण्यताम् इत्यर्थः कीदृशस्य किं प्रकारकस्य अविनयस्य अशिष्टाचरणस्य फलम् परिणामः अनेनानुभूयते शुकेनानेन भुज्यते। वा तथा च विहगजातौ पक्षियोनौ कथम् केन हेतुना अस्य शुकस्य सम्भवः जन्म जातम्? किमभिधानः किम् अभिधानम् यस्य सः किंनामा

वा अथवा अयम् शुकः । नः अस्माकं ऋषीणाम् कुतूहलं कौतुकम् अपनयतु दूरीकरोतु हि यतः भगवान् जाबालिः सर्वेषाम् समस्तानां आश्चर्याणाम् विस्मयानां प्रभवः उत्पत्तिस्थानं वेत्ता इत्यर्थः ।

विशेष—इस गद्य खण्ड में शुकशिशु के सम्बन्ध में जाबालि के इस कथन कि —"अपने ही दुष्कृत्यों का फल भुगत रहा है" को सुन कर ऋषियों के तत्सम्बन्धी अनेक कुतूहलपूर्ण प्रश्न हैं ।

परिषद्—ऋषियों की वह सभा जिसमें विज्ञ विद्वज्जन थे ।

"परितः सीदन्ति तिष्ठन्ति विज्ञा यस्यां सा" ।

"समज्या परिषद् गोष्ठी सभा समिति संसदः
आस्थानी क्लीबमास्थानं स्त्रीनपुंसकयोः सदः" अमरकोश ।

**इत्येवमुपयाचितस्तपोधनपरिषदा स महामुनिः प्रत्यवदत्—'अतिमहदिदमाश्चर्यमाख्यातव्यम् । अल्प शेषमहः । प्रत्यासीदति च नः स्नान समयः । भवतामप्यतिक्रामति देवार्चनविधिवेला । तदुत्तिष्ठन्तु भवन्तः सर्व एवाचरन्तु यथोचितं दिवसव्यापारम् । अपराह्णसमये भवतां पुनः कृतमूल फलाशनानां विस्रब्धोपविष्टानामादितः प्रभृति सर्वमावेदयिष्यामि योऽयम् यच्चानेन कृतमपरस्मिन् जन्मनि, इह च लोके यथास्य संभूतिः अयञ्च तावदपगतक्लमः क्रियतामाहारेण । नियतमयमप्यात्मनो जन्मान्तरोदन्त स्वप्नोपलब्धमिव मयि कथयति सर्वमशेषतः स्मरिष्यति' इत्यभिदधदेवोत्थाय सम तैः मुनिभिः स्नानादिकमुचितदिवस व्यापार मकरोत् ।**

शब्दार्थ—इत्येवम्=इस प्रकार तपोधनपरिषदा=तपस्वियों की सभा के द्वारा उपयाचितः=अभ्यर्थना किये हुए सः=उन महर्षि जाबालि ने प्रत्यवदत्=उत्तर दिया (कहा) कि अतिमहद्=अति विशाल (विस्तृत) इदमाश्चर्यम्=यह आश्चर्यपूर्ण आख्यातव्यम्=वर्णनीय विषय है । अल्पशेषम्=थोड़ा ही अवशिष्ट है अहः=दिन च=और नः=हमारा (ऋषि का) स्नान समयः=स्नान करने का समय प्रत्यासीदति=हो रहा है अथवा बीतता जा रहा है । भवतामपि=आप सब (ऋषियों) का भी देवार्चनविधिवेला=देव पूजन का समय अतिक्रामति=बीत रहा है । तद्=इस लिये उत्तिष्ठन्तु भवन्तः=आप लोग उठें सर्व एव=सभी यथोचितम्=यथायोग्य दिवसव्यापारम्=दैनिक कृत्य आचरन्तु=सम्पादित करें । पुनः=फिर अर्थात् दुबारा अपराह्ण समये=दोपहर के पश्चात् कृतमूलफलाशनानाम्=कन्दमूल व फलों का आहार कर विस्रब्धोपविष्टानाम्=निश्चिन्त होकर बैठे हुए भवताम्=आप सब ऋषियों को आदितः प्रभृति=आरम्भ से लेकर सर्वम् आवेदयिष्यामि=सब कुछ बतलाऊंगा कि अपरस्मिन् जन्मनि=पूर्व जन्म में योऽयम्=यह जो था यच्चानेन= और इसके द्वारा जो कृतम्=कार्य किया गया । इह च लोके=और इस संसार में यथा=जिस प्रकार से अस्य=इसका सम्भूतिः=जन्म हुआ । अयञ्च=और इसे

भी तावत्=तब तक आहारेण=भोजन के द्वारा अपगत श्रमः= थकान रहित क्रियताम् कर दें। नियतम्=निश्चय ही अयम् अपि= यह सुग्गा भी आत्मनः= अपने जन्मान्तरोदन्तम्=पूर्व जन्म के वृत्तान्त को स्वप्नोपलब्धमिव= स्वप्न में प्राप्त के समान मयि कथयति=मेरे कहने पर अशेषतः=सम्पूर्ण रूप में स्मरिष्यति स्मरण कर लेगा (अर्थात् इसे पूर्व जन्म का वृत्तान्त याद आ जायेगा) इति=ऐसा अभिवदत्=कहते हुए एव=ही उत्थाय=उठकर मुनिभिः सह=(अन्य) ऋषियों के साथ स्नानादिकम्=स्नान आदि उचित दिवसव्यापारम्=यथोचित दैनिक कृत्य अकरोत्=किया।

**अनुवाद**— ऋषि सभा द्वारा इस प्रकार अभ्यर्थित वे जाबालि महर्षि बोले— "वर्णनीय इसका वृत्तान्त अति विस्तृत है। दिन थोड़ा ही शेष है। हमारे स्नान का समय हो रहा है। आप लोगों के देव-पूजन का समय भी बीत रहा है। इसलिये आप सब उठें और यथायोग्य दैनिक कृत्य सम्पादित करें। कन्दमूल फल खाकर निश्चिन्तता से बैठे हुए आप लोगों को दोपहर के बाद आदि से लेकर सब कुछ बतलाऊँगा कि पूर्व जन्म में यह जो था और जो कुछ इसने किया तथा इस लोक में जैसे इसका जन्म हुआ। इसे भी भोजन कराकर थकान रहित करें। निश्चय ही मेरे कहने पर यह भी अपने पूर्व जन्म के सम्पूर्ण वृत्तान्त को स्वप्न में उपलब्ध के समान स्मरण कर लेगा", ऐसा कहते हुए ही (अन्य) ऋषियों के साथ उठकर स्नानादि यथोचित दैनिक कार्य सम्पादित किया।

**संस्कृत व्याख्या**—इत्येवम् एवं प्रकारेण तपोधनपरिषदा तपः एव धन येषान्ते तपोधनाः (बहु०) तेषां परिषत् तया (तत्पु०) मुनि समया उपयाचितः अभ्यर्थितः सः महामुनिः सः जाबालि महर्षिः प्रत्यवदत् प्रत्युवाच—"अतिमहदिदमाश्चर्यम् अति विस्तृतम् इदम् आश्चर्यकारि आख्यातव्यम् वर्णनीयं शुकोदन्तम् अल्पशेषमहः दिनञ्च किञ्चिदेवावशिष्टं समाप्तप्रायमित्यर्थः। नः अस्माकंजाबालेः स्नान समयः अवगाहनवेला प्रत्यासीदति निकटमायाति च, भवतामपि अन्येषां भवद्विधानां ऋषीणां देवार्चनविधिवेला देवस्य परमेश्वरस्य अर्चनं पूजनमिति देवार्चनम् तस्य विधेः क्रियायाः वेला समयः परमेश्वरोपासना समय इत्यर्थः सन्ध्योपसना काल इति तात्पर्यम् अतिक्रामति व्यति गच्छति। तद् अतः उत्तिष्ठन्तु उत्थानं विदधतु भवन्तः सर्व एव यूयम् सर्वेमुनयः तावद् पुनरत्रागमनात् प्राक् आचरन्तु सम्पादयन्तु यथोचितम् उचितमनतिक्रम्य इतियथोचितम् (अव्ययीभाव) यथाविधि दिवसव्यापारम् दैनिकं कृत्यम्, अपराह्णसमये अपराह्णश्चासौ समयः अपराह्ण समयस्तस्मिन् मध्याह्नोपरान्ते कृतफलमूलाशनानाम् कृतं विहितं फलानां सस्यानां मूलानां कन्दानाञ्च अशनं भोजनं यैस्तेषाम् (बहु०) पुनः भूयः विस्रब्धोपविष्टानाम् विस्रब्धं विश्वस्तं यथा स्यात्तथोपविष्टानां आसीनानाम् भवताम् युष्माकम् ऋषीणाम् आदितः प्रभृति प्रारम्भतः आदाय सर्वम् शुकसम्बन्धि वृत्तम् आवेदयिष्यामि कथयिष्यामि। यत् अयम् शुकः यः आसीत् यच्चानेनकृतम् यत्कर्मानेन विहितम् अपरस्मिन् जन्मनि पूर्वस्मिन् भवे; इहलोके

अस्मिन् संसारे च यथा यत्कारणात् अस्य सम्भूतिः शुकस्यास्य जन्माभूत्। तावत् तत्काल पर्यन्तम् अयमपि शुकशिशुरपि आहारेण भोजनेन अपगतक्लमः अपगतो दूरीभूतः क्लमः श्रान्तिर्यस्य स तादृशः श्रमरहितः इत्यर्थः क्रियताम् विधीयताम् नियतम् निश्चयेन अयमपि शुकशिशुरपि मयि जाबालौ कथयति शुकोदन्तमावेदयति सति सर्वं सम्पूर्णम् जन्मान्तरोदन्तम् पूर्वजन्मवृत्तान्तम् स्वप्नोपलब्धमिव स्वप्ने स्वापे उपलब्धं दृष्टमिव अशेषतः पूर्णतः स्मरिष्यति स्मरणं करिष्यति इति इत्थम् अभिदधत् एव कथयन् एव तैर्मुनिभिः समासीनैः ऋषिभिः समं साकमेव उत्थाय उत्थानं विधाय स्नानादिकम् अवगाहनादिकम् उचितदिवस व्यापारम् तपस्वियोग्य दैनिक क्रियाम् अकरोत् सम्पादितवान्।

विशेष—इस गद्य खण्ड में जाबालि ऋषि के द्वारा शुक वृत्तान्त की दीर्घता का उल्लेख कर मुनियों में और अधिक कुतूहल जागृत कर दिया गया है। साथ ही तपोवन के निवासियों का अपने दैनिक कार्य के प्रति सजग रहने की अनवरत चेष्टा का भी वर्णन कर कवि ने आश्रम व्यवस्था का उत्कृष्ट परिचय दिया है। ●

## सन्ध्यावर्णनम्

अनेन च समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षिति तले दत्तस्तमम्बरतलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गराग रविरुदवहत्। ऊर्ध्वमुखैरर्कबिम्ब विनिहित दृष्टिभिरूष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयमानतेजःप्रसरो विरलातपो दिवसः स्तनिमानमभजत्। उद्यत् सप्तर्षिसार्थ स्पर्श परिजिहीर्षयेव संहृतपादः पारावतपादपाटलरागो रवि रम्बरतलादलम्बत्। आलोहितांशुजालं जलशयनमध्यगतस्य मधुरिपोर्विगलन्मधुधारमिव नाभिनलिनं प्रतिमागतमपरार्णवे सूर्यमण्डलमलक्ष्यत। विहाय धरणितलमुन्मुच्य च कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तरुशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत। आलग्न लोहितातपच्छेदा मुनिभिरालम्बित लोहितवल्कला इव तरवः अलक्ष्यन्त।

शब्दार्थ—अनेन च समयेन=इसी समय के बीच परिणतः=ढल गया, समाप्त प्राय हो गया दिवसः=दिन। स्नानोत्थितेन=स्नान करके निकले हुए मुनिजनेन=ऋषियों के द्वारा अर्घविधिम्=सूर्य को अर्घ्य दान उपपादयता—करते हुए क्षिति तले=पृथ्वी पर यः=जो अर्घ्य (रक्त चन्दनादि युक्त) दत्तः=दिया गया तम्=उसे अम्बर तलगतः=आकाश में विद्यमान रविः=सूर्य ने साक्षात्=प्रत्यक्ष रूप से रक्त चन्दनाङ्गरागम्=लाल चन्दन का अङ्गराग अर्थात् पाउडर के इव=समान उदवहत्=धारण कर लिया था (शरीर पर मल लिया था)। ऊर्ध्वमुखैः=ऊपर को मुख किये हुए अर्कबिम्बविनिहित दृष्टिभिः=अर्कबिम्ब=सूर्यमण्डल पर विनिहित=टिकाए हुए दृष्टिभिः=दृष्टि वाले अर्थात् सूय को एकटक देखने वाले

ऊष्मपैः=ऊष्मा को पीने वाले अर्थात् सूर्य तेज को पीने वाले तपोधनैः=तपस्वियों के द्वारा परिपीयमानतेजः प्रसरः इव=पी लिया गया है या पिया जा रहा है सम्पूर्ण तेज, कान्ति समूह जिसका ऐसा दिवसः=दिन विरलातपः=कम तेज वाला होकर स्तनिमानम्=क्षीणता को अभजत्=प्राप्त हो गया। उद्यत्=उदित होते हुए सप्तर्षिसार्थ स्पर्श परिजिहीर्षया इव=सप्तर्षि मण्डल के स्पर्श को मानो बचाने के लिये संहृत पादः=(किरण रूपी) पैरों को समेट कर (सिकोड़ कर) पारावत पाद पाटल रागः=कबूतर के पैरों के समान लाल रंग वाला रविः=सूर्य अम्बरतलात्=आकाशमण्डल से अलम्बत्=(नीचे को) लटक गया। आलोहितांशुजालम्=कुछ कुछ लाल किरण समूह वाला अपरार्णवे=पश्चिमी समुद्र में प्रतिमागतम्=प्रतिबिम्बित होने वाला सूर्यमण्डल=सूर्य जलशयनमध्यगतस्य=जल शैय्या (क्षीरसागर) के मध्य में विद्यमान मधुरिपोः=भगवान् विष्णु के विगलन्मधुधारम्=झरती हुई मकरन्द धारा वाले नाभिनलिनम् इव=नाभिकमल के समान अलक्ष्यत=दिखाई पड़ रहा था। धरणितलम्=पृथ्वी को विहाय=छोड़कर कमलिनीवनानि च=और कमल वनों को उन्मुच्य=त्याग कर शकुनय इव=पक्षियों के समान रविकिरणाः=सूर्य की किरणें दिवसावसाने=दिन की समाप्ति पर तरुशिखरेषु=वृक्षों के अग्रभाग पर पर्वताग्रेषु च=और पर्वतों की चोटियों पर स्थितिम्=निवास अकुर्वत=किया। आलग्नलोहिता तपच्छेदाः=रक्त वर्ण सूर्य के प्रकाश से कुछ-कुछ युक्त तरवः=वृक्ष मुनिभिः=ऋषियों के द्वारा आलम्बित लोहित बल्कला=लटकाए गये लाल छाल के वस्त्रों के इव=समान अलक्ष्यन्त=दिखाई पड़ रहे थे।

अनुवाद—इसी बीच दिन ढल गया। स्नान कर निकले हुए ऋषियों के द्वारा भूमि पर (लाल चन्दन आदि से) पूजा में दिए गये अर्घ्य को रक्त-चन्दन का अङ्गराग (पाउडर समझ कर) आकाश मण्डल में विद्यमान सूर्य ने मानो साक्षात् धारण कर लिया (इसीलिये वह लाल वर्ण का हो गया)। ऊपर को मुख किए हुए सूर्य बिम्ब को एकटक देखने वाले, तेज पीने वाले ऋषियों के द्वारा मानो तेज समूह को पी लेने के कारण ही अल्प सन्ताप वाला दिन क्षीण हो गया। (सायंकाल में) उदित होते हुए सप्तर्षियों के समूह के स्पर्श को बचाने की इच्छा से कबूतर के समान लाल-लाल अपने (किरण रूपी) चरणों को समेट कर सूर्य आकाश से (नीचे) लटक गया। कुछ-कुछ लाल किरण समूह वाला, पश्चिमी समुद्र में प्रतिबिम्बित सूर्यमण्डल जल शैय्या के मध्य (क्षीर सागर में) विद्यमान भगवान् विष्णु के, झरती हुई मकरन्द धारा वाले नाभि कमल के समान दिखाई पड़ रहा था। दिन की समाप्ति पर (सायंकाल में) सूर्य की किरणों ने पृथ्वी तल को छोड़ एवं कमल वनों का त्याग कर पक्षियों के समान वृक्षों के अग्र भाग एवं पर्वत की चोटियों पर निवास ले लिया। कुछ-कुछ लगे हुए आतप खण्डों वाले वृक्ष मुनियों के द्वारा लटकाये गये लाल छाल के वस्त्रों (बल्कलों) से युक्त से प्रतीत हो रहे थे।

संस्कृत व्याख्या—अनेन च समयेन एतेन च कालेन दिवसः दिनम् परिणतः अवसानं प्राप्तः। स्नानोत्थितेन स्नानात् अवगाहनाद् उत्थितेन निवृत्तेन मुनिजनेन तपस्विमण्डलेन अर्घविधिम् अर्घस्य पूजायाः विधिम् क्रियाम् रक्तचन्दनादिना सूर्याय पूजाक्रमम् उपपादयता सम्पादयता क्षितितले पृथिव्यां दत्तः अर्पितः यः रक्त चन्दनाङ्ग-रागः तम् अम्बरतलगतः अम्बरम् आकाशः तत्र गतः स्थितः रविः सूर्यः साक्षात् प्रत्यक्षं यथा स्यात्तथा रक्तचन्दनाङ्ग रागम् रक्त चन्दनं रक्त वर्णं चन्दनमेवाङ्गराग उपलेपस्तमिव उदवहत् अधारयत्, मुनिप्रदत्तरक्त चन्दनाद्यर्घ्येण स्वं शरीरं रञ्जितवान् अतः सन्ध्या समये सूर्यः रक्त वर्णत्वं प्राप्त इत्यर्थः। ऊर्ध्वमुखैः ऊर्ध्वम् उपरिष्टात् मुखानि वक्त्राणि येषान्तैः अर्कविम्ब विनिहितदृष्टिभिः अर्कस्य सूर्यस्य विम्बं मण्डलमिति अर्कविम्बं तस्मिन् विशेषेण निहिता स्थापिता दृष्टिः चक्षुर्यैस्तैः तादृशैः ऊष्मपैः ऊष्माणं उत्तापं पिवन्तीति तैः पञ्चाग्नितपोऽङ्गत्वेन सूर्योष्मापायिभिः तपोधनैः तपः एव धनं स्वं येषान्तैः तपस्विभिः परिपीयमान तेज प्रसरः परिपीयमानः आस्वाद्यमानः तेजः प्रसरः कान्तिसमूहो यस्य सः तादृशः दिवसः दिनम् विरलातपः विरलः स्वल्पः स चासौ आतपः आलोकः यस्य सः तादृशः सन् तनिमानम् तनोः क्षीणस्य भावः तनिमा तम् तनिमानम् क्षीणत्वम् अभजत् प्राप। उद्यत्सप्तर्षिसार्थ स्पर्श परिजिहीर्षयेव उद्यतः उदयमानस्य सप्तर्षिसार्थस्य सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः वशिष्ठादयस्तेषां सार्थः समूहस्तस्य स्पर्शः पादेन संस्पर्शः तस्य परिजिहीर्षा परिहर्तुमिच्छा तया इव संहृतपादः संहृताः संकोचिताः पादाः रश्मिरूपचरणाः येन सः तादृशः अथ च पारावतपादपाट-लरागः पारावतः कपोतस्तस्य पादवत् चरणवत् पाटलः श्वेत रक्तः रागः वर्णः यस्य सः तादृशः रविः सूर्यः अम्बरतलात् आकाशमण्डलात् अलम्बत् अवातरत्। आकाश-स्थानां जगत्पूज्यानां सप्तर्षीणां पाद (रश्मि रूप चरण) स्पर्शरूपापराधो न भवेदिति हेतोः उपसंहृतपादः रविः आकाशात् अधो व्यलम्वत् इत्याशयः।

आलोहितांशुजालम् आ ईषत् लोहितं रक्तवर्णम् अंशुजालं किरण समूहो यस्य तत् तादृशम् सूर्य्यमण्डलम् रविविम्वम् जलशयनमध्यगतस्य जले सलिले क्षीरसागरे इत्यर्थः, यत् शयनं शय्या तस्य मध्यगतस्य मध्ये स्थितस्य मधुरिपोः मधु नाम्नः राक्षसस्य रिपुः शत्रुरिति मधुरिपुस्तस्य विष्णोः विगलन्मधुधारम् विगलन्ती स्रवन्ती मधुधारा परागरसस्य धारा स्रोतः यस्मात्तत् तथोक्तम्, अपरार्णवे अपरः पश्चिमः अर्णवः समुद्र इति अपरार्णवः पश्चिमी समुद्रः तस्मिन् प्रतिमागतम् प्रतिमां प्रति-बिम्बितां गतं प्राप्तम् नाभिनलिनम् नाभेः नलिनं नाभिनलिनं नाभिकमलम् इव तुल्यं अलक्ष्यत अदृश्यत। दिवसावसाने दिनान्ते रविकिरणाः रवेः सूर्यस्य किरणाः रश्मयः शकुनय इवः पक्षिणः इव धरणितलम् भूतलं विहाय परित्यज्य कमलिनीवनानि कमलिनीनां पद्मिनीनां वनानि विपिनानि उन्मुच्य च मुक्त्वा च तरुशिखरेषु तरूणां वृक्षाणां शिखराणि अग्रभागाः तेषु अथ च पर्वताग्रेषु पर्वतानाम् अचलानाम् अग्रेषु शिखरेषु च स्थितिम् निवासम् अकुर्वत व्यदधत्। आलग्नलोहितातपच्छेदा आ ईषत्

लग्ना: संसक्ता: लोहितानां रक्तवर्णानाम् आतपानाम् आलोकानां छेदा: खण्डा: येषु ते तादृशा: अतएव मुनिभि: आश्रमस्थै: ऋषिभि: आलम्बितलोहितवल्कला आलम्बितानि उपरिस्थापितानि लोहितानि रक्त वर्णानि वल्कलानि वृक्षत्वग्वस्त्राणि येषु ते तादृशा: इव सदृशा: तरव: आश्रमवृक्षा: अलक्ष्यन्त अदृश्यन्त ।

विशेष प्रस्तुत गद्य खण्ड में सन्ध्या के समय सूर्य के अस्त होने एवं उसके स्वरूप के विषय में अनेक कल्पनाएँ की गई हैं ।

"मुनिजनेनार्घ······" इत्यादि में सन्ध्या के समय सूर्य लाल क्यों हो गया ? इसके लिये कल्पना की गई है कि ऋषियों ने जो रक्त चन्दन व रक्त पुष्पादि से सूर्य को अर्घ्य दिया उसी को सूर्य ने अपने बदन पर मल लिया है। अत: वह लाल हो गया। इस प्रकार यहाँ "रक्तचन्दनाङ्ग रागमिव" में जात्युत्प्रेक्षा है ।

"ऊर्ध्वमुखै:······स्तनिमानमभजत्" में क्रियोत्प्रेक्षा है ।

ऊष्मपै:—ऊष्माणं पिबन्तीति ऊष्मपास्तै:— तपस्वी लोग पंचाग्नि तप करते हैं चारों ओर चार अग्नियाँ तथा ऊपर सूर्य का तेज रूप अग्नि इस प्रकार अग्नि के तेज को सहन करने के कारण उन्हें ऊष्मापायी कहा गया। सूर्य निस्तेज क्यों हो गया क्योंकि ऋषियों ने उसका तेज पी लिया । अत: यहाँ उत्प्रेक्षा है ।

'उद्यत्सप्तर्षि······तलादलम्बत' में 'पाद:' शब्द श्लिष्ट है जिसके चरण और किरण दोनों अर्थ हैं और दोनों में पर्याप्त भिन्नता है किन्तु यहाँ भेदेऽप्यभेदारोप होने के कारण अतिशयोक्ति है । 'स्वर्शपरिजिहीर्षया इव' में हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है ।

'नाभिनलिनमिव' में उपमा अलंकार है। इसी प्रकार 'शकुनय इव' में भी उपमा है। "आलम्बित लोहित वल्कला इव" में क्रिया की उत्प्रेक्षा करने के कारण क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है ।

अनेन, समयेन में 'अपवर्गे तृतीया' सूत्र से तृतीया विभक्ति है ।

तनिमानम्—तनु -से "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" सूत्र से इमनिच् प्रत्यय हुआ है ।

जिहीर्षया—हर्तुम् इच्छा जिहीर्षा तया हृ धातु का सन्नन्त प्रयोग है ।

उन्मुच्य—उत्+मुच्+(क्त्वा) ल्यप् ।

**अस्तमुपगते च भगवति सहस्रदीधितावपरार्णवतटात् उल्लसन्ती विद्रुमलतेव पाटलासन्ध्या समदृश्यत । यस्यामावध्यमानध्यानम् एकदेशदुह्यमानहोमधेनु दुग्धधारा ध्वनितधन्यतरातिमनोहरम् अग्निहोत्रवेदि विप्रकीर्यमाणहरितकुशम् ऋषिकुमारिकाभिरितस्ततो विक्षिप्यमाण दिग्देवतार्चन बलिसिक्थम् आश्रमपदमभवत् । क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्त्तमाना सन्ध्या मुदितैस्तपोधनैरदृश्यत ।**

शब्दार्थ—अस्तम् उपगते=अस्त हो जाने पर भगवति सहस्रदीधितौ= भगवान् सहस्ररश्मि, सूर्य के अपरार्णवतटात्=पश्चिमी समुद्र के तट (किनारे) से

उल्लसन्ती=ऊपर को उठती हुई विद्रुमलतेव=मूंगे की लता के समान पाटला=श्वेतरक्त वर्ण वाली सन्ध्या समदृश्यत = दिखाई दी । यस्याम्=जिस सन्ध्या (काल) में आवध्यमान ध्यानम्=(मुनियों द्वारा) लगाया जा रहा था ध्यान जिसमें एकदेशे=एक स्थान पर दुह्यमान होमधेनु दुग्धधारा ध्वनित धन्यतरातिमनोहरम्=दुह्यमान दुही जाती हुई होमधेनु=यज्ञ की गायों की दुग्धधारा=दूध धाराओं से ध्वनित=शब्दायमान धन्यतर= धन्य एवं अतिमनोहर = अतिशय रमणीय, अग्निहोत्रवेदि विप्रकीर्य्यमाण हरितकुशम्=अग्निहोत्र=दैनिक यज्ञ की वेदी=वेदी पर विप्रकीर्यमाण=बिछे हुए (फैले हुए) हरितकुशम्=हरे (नवीन) कुशों वाला, ऋषि कुमारिकाभिः=मुनि बालिकाओं के द्वारा इतस्ततः=इधर-उधर विक्षिप्यमाणदिग्देवतार्चनबलिसिक्थम्=विक्षिप्यमाण=फैलाये गये दिग्देवतार्चन=दिक्पालों की पूजा हेतु बलिसिक्थम्=अन्न वाला, आश्रमपदम्=वह आश्रम स्थल अभवत्=हो गया । क्वापि कहीं विहृत्य=घूम कर दिवसावसाने=दिन समाप्त हो जाने पर परिवर्त्तमाना = लौट कर (घर) वापस आती हुई लोहित तारका=लाल पुतलियों वाली कपिला=स्वर्ण के रंग वाली तपोवनधेनुरिव =आश्रम की गाय के समान सन्ध्या मुदितैः=प्रसन्न चित्त तपोधनैः=तपस्वियों के द्वारा समदृश्यत=देखी गई ।

अनुवाद - सहस्र रश्मि भगवान् सूर्य के अस्त हो जाने पर पश्चिमी समुद्र तल से उठती हुई मूंगे की लता के समान कर्बुर रंग (लाल श्वेत मिश्रित) की सन्ध्या दिखाई पड़ी । जिस सन्ध्या (काल) में (आश्रम) मुनियों के द्वारा लगाये जाते हुए ध्यान वाला, एक ओर दुही जाती हुई गायों की दुग्ध धाराओं की ध्वनि से ध्वनित होने के कारण अति धन्य एवं रमणीय, अग्निहोत्र (यज्ञ) की वेदी पर फैलाये गये हरे कुशों वाला एवं मुनि कन्याओं द्वारा इधर-उधर फैलाए गये दिक्पालों की पूजा के अन्न (बलि) वाला आश्रम हो गया । कहीं घूम कर दिन ढलने पर (घर) लौटती हुई लाल पुतलियों वाली सुनहरी आश्रम की गाय के समान कहीं (वन, वृक्ष, पर्वत आदि पर) घूम कर दिन ढल जाने पर लौटी हुई सन्ध्या को हर्षित होकर तपस्वियों ने देखा ।

संस्कृत व्याख्या—भगवति प्रभावैश्वर्यादि सम्पन्ने सहस्रदीधितौ सूर्य्ये अस्तमुपगते अदृश्यताम् प्राप्ते सति अपरार्णवतटात् अपरार्णवः पश्चिम समुद्रस्तस्य तटात् प्रान्त भागात् अथवा तलस्थानात् उल्लसन्ती ऊर्ध्वं प्रस्फुरन्ती विद्रुमलता इव प्रवाल वल्लरी इव पाटला श्वेत रक्तवर्णा सन्ध्या सायंकालीना दिवसरात्र्योः सन्धि वेला समदृश्यत समलक्ष्यत । यस्याम् सन्ध्यायाम् आश्रमपदम् जाबालेः आश्रमभूमिः, आबध्यमानध्यानम् आ समन्तात् बध्यमानमिति आबध्यमानम् ऋषिभिर्विधीयमानं ध्यानम् परमेश्वरे एकतानवृत्तिः यस्मिन् तत् तादृशम् एकदेशे दुह्यमान होमधेनु दुग्धधाराध्वनितधन्यतराति मनोहरम् एकदेशे आश्रमस्य-एकस्मिन् भागे दुह्यमानानां दोहन विषयी क्रियमाणानां होमधेनूनाम् यज्ञार्थगवां याः दुग्धधारा क्षीर प्रवाहास्तासां ध्वनितैः शब्दितैः धन्यतरं श्लाघ्यतरं सत् अतएव चाति मनोहरम् अति

रमणीयम् (आश्रमपदम्), अग्निहोत्रवेदिविप्रकीर्यमाणहरित्कुशम्=अग्निहोत्राणां दैनन्दिनं क्रियमाणानां यज्ञ विशेषाणां वेदिषु चतुरस्रभूमिषु विप्रकीर्य्यमाणाः हवनीयास्तरणार्थं विक्षिप्यमाणाः हरिताः श्यामलाः कुशाः दर्भाः यत्र तादृशम्, ऋषिकुमारिकाभिः ऋषीणां तापसानां कुमारिकाभिः पुत्रीभिः इतस्ततः चतुर्दिक्षु विक्षिप्यमाण दिग्देवतार्चनबलिसिक्थम्=विक्षिप्यमाणाः विकीर्यमाणाः दिग्देवतानां दिक्पालानाम् अर्चनाय सपर्यार्थं बलिसिक्थाः उपहाराम्नानि यत्र तत् तादृशम् (आश्रमपदम्) अभवत् आसीत्। क्वापि कस्मिन्नपि अज्ञात शष्पादिसम्पन्ने स्थाने विहृत्य पर्यटनं विधाय दिवसावसाने दिवसस्य दिनस्य अवसाने समाप्तौ परिवर्तमाना निवर्त्तमाना लोहिततारका=लोहिते रक्त वर्णे तारके कनीनिके यस्याः सा तादृशी सन्ध्यापक्षे लोहिताः रक्त वर्णाः तारकाः नक्षत्राणि यस्यां सा तादृशी कपिला कनकवर्णा तपोवन धेनुरिव तपोवनस्य धर्मभूमेः धेनुः गौः इव सन्ध्या सन्धि वेला (सायं समयः) मुदितैः प्रसन्नैः तपोधनैः तापसैः अदृश्यत्=अलक्ष्यत।

विशेष—प्रस्तुत गद्य खण्ड में 'सन्ध्या' का तथा सन्ध्या के समय आश्रम के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

सन्ध्या का रंग लाल होता है और पश्चिम दिशा में सूर्यास्त की पश्चात् समुद्र से आकाश तक ऊर्ध्व रेखाकार रूप में रक्तिमा छाई होती है। अतः कवि ने यहाँ पश्चिमी समुद्र से ऊपर को उठती हुई मूँगे की लता के समान वर्णित कर उपमा अलंकार का प्रयोग किया है।

आश्रम के वर्णन में कहीं ऋषि ध्यान लगा रहे हैं, कहीं गोदोहन की ध्वनि गुञ्जित हो रही है तो कहीं अग्निहोत्र की वेदी पर हरे कुश बिखेरे जा रहे हैं और कहीं मुनि कन्याएँ दिक्पालों को अन्न बलि समर्पित कर रही हैं। अतः इस वर्णन में स्वभावोक्ति अलंकार है।

सन्ध्या के स्वरूप की कल्पना में श्लेषोपमा का चमत्कार श्लाघनीय है जहाँ उसे यज्ञ की गौ से उपमित किया गया है।

सहस्रदीधिति—सहस्राः दीधितयः यस्य सः (बहु.) हजार किरणों वाला सूर्य।

दिग्देवतार्चन बलिसिक्थम्—दिक्पालों की पूजा में दिया जाने वाला बलि रूप अन्न जो पके हुए चावलों का भात रूप होता है। इसे भक्तसिक्थ भी कहते हैं। आजकल 'पुलाव' के नाम से दावतों में इसका प्रयोग होता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार दश-दिशाओं के दश प्रमुख अधिकारी देवता हैं जिन्हें दिक्पाल कहते हैं, ये हैं—१. इन्द्र, २. अग्नि, ३. यम, ४. नैऋत, ५. वरुण, ६. मरुत, ७. कुबेर; ८. शिव, ९. ब्रह्मा और १०. अनन्त।

लोहिततारका—लाल नेत्रों वाली गाय—लोहिते तारके यस्याः सा, तथा लाल नक्षत्रों वाली सन्ध्या—लोहिता तारकाः यस्यां सा। अतः इसमें श्लेष है। ●

अचिरप्रोषिते च सवितरि शोक विधुरा कमलमुकुलकमण्डलु धारिणी हंससितदुकूल परिधाना मृणालधवल यज्ञोपवीतिनी मधुकर मण्डलाक्षवलय मुद्वहन्ती कमलिनी दिनपति समागमव्रतमिवाचरत्। अपरसागराम्भसि पतिते दिवसकरे तत्पतनवेगोत्थितम् अम्भः शीकरनिकरमिव तारागण-मम्बरम् अधारयत्। अचिराच्च सिद्धकन्यकाविक्षिप्त सन्ध्यार्चन कुसुम शबलमिव तारकितं वियदराजत। क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजने नोर्ध्वं विप्र-कीर्णैः प्रणामाञ्जलि सलिलैः प्रक्षाल्यमान इवागलदखिलः सन्ध्यारागः।

शब्दार्थ अचिर प्रोषिते=शीघ्र ही प्रवास पर चले जाने पर अर्थात् अस्त हो जाने पर सवितरि=सूर्य के शोक विधुरा=शोक से अर्थात् विरह दुःख से अति दुःखिनी कमलमुकुलकमण्डलुधारिणी=कमल मुकुल=कमल की कली रूप कमण्डलुधारिणी=कमण्डलु धारण करने वाली हंससितदुकूलपरिधाना=हंस रूपी श्वेत वस्त्र धारण किये हुए मृणालधवलयज्ञोपवीतिनी=कमल सूत्र रूपी श्वेत यज्ञोपवीत से युक्त मधुकर मण्डलाक्ष वलयम्=भ्रमर समूह रूपी रुद्राक्षमाला उद्-वहन्ती=धारण किये हुए कमलिनी=कमलिनी ने दिनपति समागम व्रतम् इव=(प्रियतम) सूर्य की प्राप्ति के लिये मानों व्रत को आचरत्=किया। अपर सागराम्भसि =पश्चिमी समुद्र में पतिते=गिर जाने पर दिवसकरे=सूर्य के, तत्पतनवेगोत्थितेन उस (सूर्य) के गिरने के वेग से उठे उछले हुए अम्भः शीकर निकरम्=जल कणों छीटों को ही तारागणम् इव=मानों तारागण के रूप में अम्बरम्=आकाश ने अधारयत्=धारण कर लिया। अचिराच्च=और शीघ्र ही सिद्धकन्यकाविक्षिप्त सन्ध्यार्चनकुसुम शबलम् इव=मानों सिद्ध कन्याओं द्वारा सन्ध्याकालीन पूजन के लिये बिखेरे गए फूलों से विभिन्न रंगों वाला तारकित=नक्षत्रों से युक्त वियद्= आकाश अराजत=सुशोभित हुआ। क्षणेन च=और क्षण भर में ही उन्मुखेन= ऊपर को मुख किए हुए मुनिजनेन=ऋषियों के द्वारा ऊर्ध्वविप्रकीर्णैः=ऊपर को छिड़के गए (फैलाये गये) प्रणामाञ्जलि सलिलैः=प्रणाम हेतु अञ्जलि जल से प्रक्षाल्यमान इव=मानों धो दिया गया अखिलः=सम्पूर्ण सन्ध्यारागः=सांयकालीन लालिमा। अगतात्=गल गया या बीत गया।

अनुवाद—भगवान् सूर्य के प्रवास पर जाते ही अर्थात् अस्त होते ही विरह शोक से अति दुःखी कमलिनी ने कमल की कली रूप कमण्डलु धारण कर, हंस रूपी शुभ्र वस्त्र पहन कर, कमल सूत्र रूपी यज्ञोपवीत (जनेऊ) से युक्त, भ्रमर समूह रूपी रुद्राक्षमाला धारण कर (अपने प्रियतम) सूर्य से मिलन हेतु मानों व्रत (तप) का आचरण किया (कर रही हो) पश्चिमी समुद्र में सूर्य के गिरने से उत्पन्न वेग से उछले हुए जलकण समूह (जल की छीटों) जैसे नक्षत्र मण्डल को आकाश ने धारण कर लिया और शीघ्र ही तारों से भरा आकाश इस प्रकार सुशोभित हुआ मानों सिद्ध

(देव योनि विशेष) कन्याओं द्वारा सन्ध्याकालीन पूजन के लिए बिखेरे गये (अर्पित) फूलों से विविध रंगवाला हो गया हो। क्षण भर में ऊपर को मुख किये हुए ऋषियों द्वारा ऊपर को फेंके गए प्रणामाञ्जलि जल से सम्पूर्ण सन्ध्याकालीन लालिमा मानों धुल गई।

**संस्कृत व्याख्या**—क्षपितरि रवी नायके च अचिर प्रोषिते अचिरं सद्यः यथा स्यात्तथा प्रोषिते प्रवासं गते अस्तं गते इत्यर्थः शोक विधुरा शोकेन प्रियतम प्रवास जन्य विरहदुःखेन विधुरा विह्वला कमलिनी पद्मिनी कमलमुकुलकमण्डलुधारिणी कमलस्य पद्मस्य मुकुलं कुड्मलमेव कमण्डलुः करकः तं धारयति वहतीति तच्छीला हंससितदुकूलपरिधाना हसः मानसौकस एव दुकूलं श्वेतक्षौमवस्त्रं परिधानम् अंशुकं यस्याः सा तादृशी मृणालधवलयज्ञोपवीतिनी=मृणालम् कमलतन्तुरेव धवलं शुभ्रं यज्ञोपवीतं यज्ञ सूत्रं अस्याः सा तादृशी अर्थात् विसतन्तु रूप श्वेत यज्ञसूत्रधारिणी अथ च मधुकरमण्डलाक्षवलयम् मधुकराणां भ्रमराणां मण्डलं समूह एव अक्षवलयम् रुद्राक्ष जपमाला तम् उद्वहन्ती धारयन्ती (कमलिनी सूर्य प्रिया) दिनपति समागम व्रतम् इव दिनपतिः प्रियतमः सूर्यः तेन सह समागमाय संमेलनाय व्रतमिव नियममिव आचरत् अपालयत् अर्थात् प्रियतमसमागमाय तपः आचरितवती। दिवसकरे सूर्ये अपरसागराम्भसि पश्चिमसमुद्रे पतिते च्युते सति वेगोत्थितम् वेगेन रभसेन उत्थितम् उद्गतम् अम्भः सीकरनिकरम् इव अम्भसां जलानां सीकरणां कणानां निकरः समूहः तमिव पानीयपृषत्समूहमिवेत्यर्थः तारागणं नक्षत्र मण्डलम् अम्बरम् अन्तरिक्षम् अधारयत् दधार। अचिराच्च स्वल्प समयेन च सिद्धकन्यका विक्षिप्त सन्ध्यार्चन कुसुम शबलमिव-सिद्धानां गुह्यकानां देवयोनि विशेषाणा कन्यकाः पुत्र्यः ताभिः विक्षिप्तानि विकीर्णानि यानि सन्ध्यार्चने सांयकालीनपूजायां कुसुमानि पुष्पाणि तैः सबलं कर्बुरितमिव तारकितम् तारकाः नक्षत्राणि संजाता अस्येति तारकितम् तारागणोपेतम् वियद् आकाशः अराजत् अशोभत। च समुच्चयार्थकः क्षणेन सद्य एव उन्मुखेन उत् ऊर्ध्वं मुखम् आननं यस्य तादृशेन मुनिजनेन ऋषिवर्गेण ऊर्ध्वविप्रकीर्णैः ऊर्ध्वम् उपरिदिशि विप्रकीर्णैः विक्षिप्तैः प्रणामाञ्जलि सलिलैः प्रणामे नमस्कार करणे अञ्जलि सलिलैः कुड्मलित पाणिनां जलैः इष्ट देवता प्रणाम कालीनाञ्जलि पूर्णपानीयैरित्यर्थः प्रक्षाल्यमान इव धौत इव सन् अखिलः समग्रः सन्ध्या रागः सन्ध्यायाः रागः सांयकालीनं लौहित्यम् अगलत् अच्युतत्।

**विशेष**—कवि ने इस खण्ड में विभिन्न रूपकों एवं उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से सन्ध्याकालीन वेला का साहित्यिक वर्णन किया है। 'अचिर प्रोषिते……आचरत्' में कमलिनी पर सूर्यप्रिया का आरोप करने के कारण कमल मुकुल पर कमण्डलु का, हंस पर सितदुकूल का, मृणाल पर यज्ञोपवीत का और मधुकर मण्डल पर अक्षवलय का आरोप किया गया है। अतः यहाँ परम्परित रूपक अलंकार है। व्रतमिव में

क्रियोत्प्रेक्षा है तथा कमलिनी और दिनपति में स्त्री-पुरुष के व्यवहार का समारोप होने के कारण समासोक्ति अलंकार भी है। इस प्रकार इन सभी का एकाश्रय में अनुप्रवेश होने के कारण एकाश्रयानुप्रवेशि सङ्करालंकार है।

हंसशितदुकूला—"पद से यह भाव व्यञ्जित है कि चूंकि पति सूर्य प्रोषित है अतः कमलिनी वैधव्य भाव सम्पन्ना होने के कारण गेरुए नहीं श्वेत वस्त्र पहने हुए है।" यह चन्द्रकला विद्योतिनी टीकाकार का मत है किन्तु यह उचित नहीं क्योंकि आगे कादम्बरीकार ने स्पष्ट लिखा है कि—"दिनपति समागम व्रतमिव" अर्थात् सूर्य (अपने प्रियतम) से मिलने हेतु व्रत मानों कर रही है। प्रोषित शब्द से भी नायक की मृत्यु नहीं अपितु प्रवास अभीष्ट है। अतः वैधव्य की कल्पना उचित प्रतीत नहीं होती। पूजा-पाठ आदि अवसरों पर श्वेत वस्त्र धारण करने की परम्परा भारतीय पूजा पद्धति में प्राप्त होती है विशेषतः सूर्योपासना में।

'मृणाल धवल यज्ञोपवीतिनी' इसमें स्त्री को यज्ञोपवीत धारण किये हुए लिखा गया है। मनुस्मृतिकार ने स्त्रियों के यज्ञोपवीत संस्कार (उपनयन) का निषेध किया है—

"वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्नि परिक्रिया॥"

अर्थात् स्त्रियों का विवाह संस्कार ही वैदिक संस्कार है (अर्थात् यही उपनयन संस्कार है) पति सेवा ही गुरुकुल निवास (वेदाध्ययन संस्कार) है, गृह कार्य ही अग्निहोत्र कर्म है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों के लिये यज्ञोपवीत, गुरुकुल निवास और अग्निहोत्र करने की शास्त्राज्ञा नहीं है।

किन्तु "पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते" से कन्याओं के यज्ञोपवीत संस्कार होने का प्रमाण मिलता है। अतः कादम्बरीकार का यज्ञोपवीतिनी उल्लेख शास्त्र विरोधी नहीं है।

"अम्भः शीकर निकरमिव" में जात्युत्प्रेक्षा, 'कुसुम शबलमिव' में गुणोत्प्रेक्षा तथा 'प्रक्षाल्यमान इव' में क्रियोत्प्रेक्षा है।

तारकितम्—'तारकाः सन्ति अस्मिन् इति' इस विग्रह में तारक शब्द से 'तारकादिभ्य इतच्' सूत्र से इत च् प्रत्यय हुआ है।

प्रणामाञ्जलि सलिल—सूर्यादि इष्ट देव को अञ्जलि से जल देकर प्रणाम करने की परम्परा है, अतः प्रणाम करने से तत्क्षण पूर्व दिया गया जल प्रणामाञ्जलि सलिल है।

●

अथमुपगतायाञ्च सन्ध्यायां तद्विनाशदुःखिता कृष्णाजिनमिव विभावरी तिमिरोद्गममभिनय मवहत्। अपहाय मुनिहृदयानि सर्वमन्यबन्धकारतां तिमिरमनयत्। क्रमेण च रविरस्तंगत इत्युदन्त मुपलभ्य जातवैराग्यो धौतदुकूल वल्कलधवलाम्बरः सतारान्तः पुरः पर्यन्तः स्थित तनु

**तिमिरतमाल वनलेखम्, सप्तर्षिमण्डलाध्युषितम्, अरुन्धती, सञ्चरण पवित्रम्, उपहिताषाढम्, आलक्ष्यमाणमूलम्, एकान्तस्थित चारुतारक-मृगम् अमरलोकाश्रममिव गगनतलम् अमृत दीधितिरध्यतिष्ठत् ।**

**शब्दार्थ**—सन्ध्यायाम्=सन्ध्या के क्षयम् उपगतायाम्=नष्ट हो जाने पर (अर्थात् सन्ध्या बीत जाने पर) तद्विनाश दुःखिता=उस (सन्ध्या) के विनाश से दुःखी विभावरी=रात्रि ने कृष्णाजिनम् इव=कृष्ण मृग चर्म के समान अभिनवम्=नवीन तिमिरोद्गमम्=अन्धकार के उदय को अवहत्=धारण कर लिया (पहन लिया) अपहाय=छोड़कर मुनिहृदयानि=ऋषियों के हृदय को अन्यत् सर्वम्=अन्य सभी वस्तुओं, स्थानों को तिमिरम्=अन्धकार ने अंधकारताम्=अंधा, काला (आत्मसात्) अनयत्=कर लिया। क्रमेण च=और क्रमशः रविः=सूर्य अस्तंगतः=अस्त हो गया इति उक्तम्=इस समाचार को उपलभ्य=प्राप्त कर जातवैराग्यः=वैराग्य या वितृष्णा से युक्त (चन्द्रमा) धौतदुकूल वल्कल धवलाम्बरा—धौत=धुले हुए, दुकूल= उत्तरीय के समान तथा वल्कल=वृक्ष की छाल जैसा धवल=शुभ्र अम्बर आकाश वाला मुनि पक्ष में=धुले हुए रेशमी उत्तरीय वस्त्र के समान वल्कल रूपी श्वेत वस्त्रों वाला, सतारान्तः पुरः=नक्षत्र मण्डल से युक्त अन्तःपुर वाला मुनि पक्ष में= सतार अर्थात् ओंकार युक्त अन्तर्हृदय वाला पर्यन्तस्थित तनुतिमिरतमाल वन लेखम्=गगन तल के पक्ष में—चारों ओर विद्यमान हलके अन्धकार रूपी तमाल वनराजि वाले, आश्रम पक्षे—चारों ओर विद्यमान हलके अन्धकार के समान तमाल वृक्ष पंक्ति वाले (आश्रम) सप्तर्षि मण्डलाध्युषितम्=सप्तर्षि मण्डल (आकाश में विद्यमान सप्तर्षि नक्षत्रों) से व्याप्त आश्रम पक्षे=सात ऋषियों के समूह से युक्त, अरुन्धती सञ्चरण पवित्रम्=अरुन्धती नामक तारा के घूमने से पवित्र आश्रम पक्षे— वशिष्ठ पत्नी अरुन्धती के चलने-फिरने से पवित्र, उपहिताषाढम्=पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नामक नक्षत्रों से युक्त आश्रम पक्षे=पलाश दण्डों से युक्त आलक्ष्यमाण-मूलम्='मूल' नामक नक्षत्र जिसमें दिखलाई पड़ रहा है ऐसे आश्रम पक्षे—दिखलाई पड़ने वाले कन्द मूल से युक्त एकान्त स्थित चारु तारकमृगम्=एक ओर विद्यमान सुन्दर मृग शिरा नामक नक्षत्र से युक्त आश्रम पक्षे—एक कोने में विद्यमान सुन्दर आँखों वाले मृगों से युक्त, अमरलोकाश्रमम् इव=स्वर्ग लोक के आश्रम के समान गगन-तलम्=आकाश में अमृतदीधितिः=अमृतमय किरणों वाला चन्द्रमा अध्यतिष्ठत्= सुशोभित हुआ या ध्यानमग्न हो गया।

**अनुवाद**—सन्ध्या के नष्ट हो जाने पर उसके विनाश से दुःखी रात्रि ने कृष्ण मृग चर्म के समान नवीन अन्धकार के उदय को धारण किया अर्थात् अन्धकार रूपी मृगचर्म पहन लिया। केवल मुनिजनों के हृदयों को छोड़कर अन्धकार ने सब कुछ आत्मसात् कर लिया अर्थात् सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार छा गया।

धीरे-धीरे सूर्य अस्त हो गया। इस समाचार को प्राप्त कर (सुनकर) मानों वैराग्य भावना से युक्त, धुले हुए उत्तरीय के समान शुभ्र बल्कल वस्त्र सदृश शुभ्र आकाश रूपी वस्त्र को धारण किए हुए, प्रणव ओङ्कार) युक्त अन्तर्हृदय के समान तारिकाओं से युक्त अन्तःपुर (रनिवास) वाले चन्द्रमा ने चारों ओर विद्यमान अल्प अन्धकार रूपी तमाल वृक्षों वाले पक्षे -अल्पान्धकार सदृश तमाल वृक्षों वाले, वसिष्ठादि सप्तर्षि मण्डल (सप्तर्षि तारामण्डल) से आश्रित पक्षे—सात विशिष्ट ऋषियों से शोभित, अरुन्धती नामक नक्षत्र के भ्रमण से पवित्र पक्षे—वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती के घूमने से पवित्र, पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ नक्षत्रों से युक्त पक्षे—पलाश दण्ड से युक्त, दृष्टिगोचर होते हुए मूल नक्षत्र वाले पक्षे—चारों ओर दिखलाई पड़ रहे हैं कन्दमूल जिसमें ऐसे, एक ओर विद्यमान सुन्दर तारकों वाले मृग शिरा नक्षत्र से युक्त पक्षे—एक भाग में विद्यमान आकर्षक पुतलियों वाले मृग से शोभित देव लोक के आश्रम के समान आकाश मण्डल में स्थित हो गया (ध्याननिष्ठ होकर बैठ गया)।

संस्कृत व्याख्या—सन्ध्यायाम् सन्धि वेलायाम् क्षयम् विनाशम् उपगतायाम् प्राप्तायाम् तद्विनाश दुःखिता तस्याः सन्ध्यायाः विनाशेन ध्वंसेन दुःखिता शोकविह्वला विभावरी रजनी कृष्णाजिनमिव कृष्णसारमृगचर्म इव अभिनवं नवीनं तिमिरोद्गमम् अन्धकारोदयम् अवहत् धारयामास—नवोदितान्धकाररूपिणं कृष्णमृगचर्म धृतवती रजनीति सारार्थः। तिमिरम् तमः मुनिहृदयानि मुनीनां ऋषीणां हृदयानि अन्तःकरणानि अपहाय परित्यज्य अन्यत् सर्वम् निखिलमितरवस्तुजातम् अन्धकारताम्—तमोमयताम् अनयत् प्रापयत्। क्रमेण च यथाक्रमं दैनिक परिपाट्या वा रविः सूर्यः अस्तंगतः लोपम् विनाशं वा प्राप्तः इति इदं उदन्तं वृत्तान्तं उपलभ्य प्राप्य जात वैराग्यः जातं समुत्पन्नं वैराग्यं विरक्तिः यस्य सः तादृशः धौतदुकूल बल्कल धवलाम्बरः धौतं प्रक्षालितं यद्दुकूलं क्षौमवस्त्रम् तद्वद् यद् बल्कलं वृक्षत्वक् स एव धवलम् शुभ्रम् अम्बरं यस्य सः तादृशः कश्चिद् विरागी चन्द्र पक्षे—धौतं दुकूलम् इव धवलं शुभ्रम् अम्बरम् आकाश एव बल्कलं यस्य सः तादृशः सतारान्तःपुरः तारयति तारः प्रणव रूपो ब्रह्म तेन सह विद्यमानमिति सतारम् ब्रह्मयुक्तम् ओंकार युक्तं वा अन्तःपुरम् पुरस्य शरीरस्यान्तः अन्तर्हृदयं यस्य सः तादृशः (वियोगी) चन्द्र पक्षे—ताराः अश्विन्यादिनक्षत्राणि एवान्तः पुराणि अन्तःपुरस्यनार्यः तैः सह इति तादृशः अमृतदीधितिः अमृतं सुधा दीधितिषु किरणेषु यस्य सः तादृशः सुधांशुः पर्यन्त स्थित तनुतिमिरतमाल वनलेखम् पर्यन्ते प्रान्तभागे स्थितं विद्यमानं तनुतिमिरम् स्वल्पान्धकार इव (कृष्णवर्ण) तमालानाम् तापिच्छ नाम् विशेष वृक्षाणां वन लेखा विपिन पंक्ति र्यस्य तादृशम् (आश्रमम्) गगनतल पक्षे—पर्यन्ते स्थितं यत् तनुतिमिरं तदेव तमाल वनलेखा यस्य तत् तादृशम्, सप्तर्षिमण्डलाध्युषितम् सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षय स्तेषां मण्डलेन समूहेन अध्युषितं अधिष्ठितं व्याप्तं वा गगनतलपक्षे वसिष्ठादि सप्तर्षि नक्षत्र मण्डलेन व्याप्तम्, अरुन्धतीसञ्चरण पवित्रम् अरुन्धत्याः वसिष्ठपत्न्याः

सञ्चरणेन[1] भ्रमणेनेतस्ततो गमनेन पवित्रम् पूतम्, गगनतल पक्षे—अरुन्धती ना नक्षत्र संचरणेन पवित्रम्, उपहितासाढम् उपहिताः सन्निहिताः आषाढाः पलाशदण्ड यत्र तत् तादृशम् आश्रमम् गगनतलपक्षे -- उपहिते सन्निहिते आषाढे पूर्वाषाढोत्तराषाढ नाम नक्षत्रे यत्र तत् तादृशम्, आलक्ष्यमाणमूलम्—आ समन्तात् लक्ष्यमाणानि विलो-क्यमानानि मूलानि कन्दानि यत्र तत् गगनतल पक्षे—आलक्ष्यमाणं दृश्यमानं मूलं मूलनामनक्षत्रं यत्र तत्, एकान्तस्थितचारुतारकमृगम्—एकान्ते एकस्मिन भागे स्थिते विद्यमाने चारुतारके मनोहर कनीनिके येषान्ते तादृशा गगनतलपक्षे—एकान्ते-स्थिताः चारुतारका मृगाः मृगशिराः (एतन्नामनक्षत्रविशेषः) यत्र तत् तादृशम्, अमर-लोकाश्रमम् इव देवलोकस्य आश्रमस्तपोभूमिः तमिव गगनतलम् आकाशतलम् अभ्यतिष्ठत् अधितस्थौ।

विशेष—प्रस्तुत गद्य खण्ड में चन्द्रमा को विरागी व्यक्ति बनाकर आकाशरूपी आश्रम् में तप करने हेतु जाने की कल्पना करते हुए कवि ने रूपक, उपमा आदि अलंकारों का सुन्दर चित्रण किया है।

तदनुसार—चन्द्रमा और गगन तल के पक्ष में सभी विशेषणों में रूपक एवं वियोगी व्यक्ति व आश्रम के पक्ष में प्रायः उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

सतारान्तःपुरः—ताराः नक्षत्राणि अन्तःपुरं स्त्रियः इति तारान्तःपुरः ताभिः सहित इति सतारान्तःपुरः=नक्षत्र रूपी अन्तःपुर वाला चन्द्रमा विरागी योगी के पक्ष में तारा का अर्थ है प्रणव या ब्रह्म, शरीर में कुण्डलिनी नाड़ी के मध्य तारक अर्थात् ब्रह्म का निवास होता है। तारा महाशक्ति या महाविद्या की १० शक्तियों में से एक है। ये १० शक्तियाँ हैं—काली, तारा, षोडशी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातङ्गी और कमला।

चारुतारक मृग—सुन्दर नेत्रों वाला मृग—उत्तम कोटि के मृगों के नेत्रों में अतिशय सौन्दर्य होता है इसीलिये स्त्रियों को मृगनयनी कहा जाता है। आश्रमों में ऐसे मृग रहते थे। चन्द्र पक्ष में सुन्दर तारा रूपी मृगों वाला आकाश, यह अर्थ होगा। इस प्रकार श्लिष्ट पदों के प्रयोग से श्लेषोपमा आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है।

**चन्द्राभरण भृत स्तारका कपाल शकला लंकृतादम्बरतलात् त्र्यम्बकोत्त-माङ्गादिव गङ्गा सागरमापूरयन्ती हंसधवला धरण्यामपतज्ज्योत्स्ना। हिम-कर सरसि विकच पुण्डरीकसिते चन्द्रिका जलपान लोभावतीर्णो निश्चलमू-र्तिरमृतपङ्कलग्न इवालक्ष्यत् हरिणः। तिमिर जलधर समया पगमानन्तरम् अभिनवसितसिन्धुवारकुसुमपाण्डुरैरर्णवागतैरगाह्यन्त हंसैरिव कुमुद-सरांसि चन्द्रपादैः। विगलित सकलोदयरागं रजनिकर बिम्बमम्बरापगाव-गाह धौत सिन्दूरमैरावत कुम्भस्थलमिव तत्क्षणमलक्ष्यत्।**

शब्दार्थ—चन्द्राभरण भृतः=चन्द्रमा रूपी आभूषण को धारण करने वाले

इस गद्य खण्ड में प्राय: श्लेषोपमा अलंकार है। यत्र तत्र लुप्तोपमा अलंकार है। ...वरणवृत:......में रूपकालंकार है। यहाँ भी चन्द्रमा से सम्बन्धित विशेषणों में वै...रुद्र एवं शिव आदि के पक्ष में उपमा अलंकार है।

तारकाकपालशकलालंकृत - में श्लेष है, शंकर के मस्तक के पक्ष में तारक का अर्थ तारकासुर है। शिव जी नरकपाल अर्थात् मुण्डमाला पहनते हैं अथवा तारक नक्षत्रों के समान कपाल नर मुण्डों की माला से अलंकृत। चन्द्र पक्ष में— तारे ही हैं कपाल, उन कपाल खण्डों की माला से अलंकृत।

हरिण—चन्द्रमा के काले धब्बे को मृग कहा गया है इसीलिये चन्द्रमा को मृगाङ्क, मृग: अङ्के यस्य स: - मृग है गोद में जिसके ऐसा कहा गया है।

अर्णवागतै:— अर्णव के अनेक अर्थ एवं तात्पर्यार्थ हैं। यहाँ चन्द्र किरणों के लिये अर्णव का अर्थ अन्तरिक्ष है एवं हंसों के लिये समुद्र या जलाशय है। कवि प्रसिद्धि है कि वर्षा काल में हंस कीचड़युक्त जल हो जाने के कारण मैदानी भाग को छोड़कर मानसरोवर या समुद्र तट चले जाते हैं और वर्षा समाप्त होते ही लौट आते हैं। अत: यहाँ अर्णव समुद्र से आ जाते हैं अथवा अर्णव का अर्थ जलाशय लें तो अर्थ होगा अर्णवेषु जलाशयेषु आगतै: पुन: सम्प्राप्तै:।

ऐरावत—पौराणिक प्रसिद्धि है कि समुद्र मन्थन से जो १४ रत्न निकले थे, उनमें ऐरावत भी एक है। इसका रंग श्वेत है और यह देवराज इन्द्र के पास रहता है। इसका अर्थ जल इरावान् = समुद्र इरावत: जात: समुद्र से उत्पन्न इति ऐरावत।

सिन्दूर—हाथी को सजाने के लिये उसके मस्तक पर सिन्दूर लगाया जाता है। स्नान करने से जैसे ऐरावत के मस्तक का सिन्दूर धुल जाने से वह साफ-सुथरा चमकता हुआ दीखता है उसी प्रकार चन्द्रमा की लालिमा समाप्त हो जाने से वह चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है।

अमृतपङ्कलग्नमिव में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

**शनै: शनैश्च दूरोदिते भगवति हिमद्युति सुधाधूलिपटलेनेव धवलीकृते चन्द्रातपेन जगति, अवश्यायजल बिन्दु मन्द गतिषु विघटमान कुमुद वन कषाय परिमलेषु समुपोढनिद्राभरालसतारकैरन्योन्य ग्रथित पक्ष्मपुटै रारब्धरोमन्थमन्थर मुखै: सुखासीनैराश्रममृगैरभिनन्दितागमनेषु प्रवहत्सु निशामुख समीरणेषु अर्द्धयाम मात्रा वखण्डितायां विभावर्य्याम् हारीत: कृताहारं मामादाय सर्वैस्तै: सह मुनिभि: उपसृत्य चन्द्रातपोद्भासिते तपोवनैकदेशे वेत्रासने सुखोपविष्टम् अनतिदूरवर्त्तिना जालपादनाम्ना शिष्येण दर्भपवित्र धवित्र पाणिना मन्द मन्दम् उपवीज्यमानं पितरमवोचत्।**

शब्दार्थ — शनै: शनैश्च = और धीरे-धीरे भगवति = भगवान् हिमद्युति = चन्द्रमा के दूरोदिते = (आकाश में) दूर चढ़ जाने पर सुधाधूलिपटलेन इव = चूने की धूलि समूह के समान चन्द्रातपेन = चाँदनी के द्वारा जगति = संसार को धवलीकृते

=श्वेत बना दिये जाने पर अवश्याय जल बिन्दु मन्द गतिषु= अवश्याय= तु (ओस या कुहरा) के जल की बूँदों से धीमी गति वाले विघटमानकुमुद वन क परिमलेषु=विघटमान=विकसित होते हुए कुमुद वन= कुमुद पुष्प समूह की कषा =कसैली परिमलेषु=सुगन्ध वाले, समुपोढ निद्राभरालस तारकैः=बढ़ी हुई (गहरी) नींद के भार से अलसाई, तारक=पुतलियों से युक्त अन्योन्य ग्रथित पक्ष्मपुटैः= अन्योन्य=परस्पर ग्रथित=गुंथी हुई पक्ष पुट= वरौनियों वाले अर्थात् अत्यन्त घनी वरौनियों वाले आरब्ध रोमन्थ मन्थर मुखैः= आरब्ध=प्रारम्भ की गई रोमन्थ= जुगाली में मन्थर मुख धीरे धीरे मुख चलाने वाले सुखासीनैः=सुखपूर्वक बैठे हुए आश्रममृगैः= आश्रम के मृगों के द्वारा अभिनन्दितागमनेषु=अभिनन्दन किये गये आगमन वाले निशामुख समीरणेषु=सांयकालीन हवा के प्रवाहित होने पर अर्द्धयाम-मात्रावशिष्टतायाम्=केवल अर्द्धयाम=आधा पहर ही समाप्त हुई विभावर्य्याम् =रात्रि के हारीतः=हारीत नामक जाबालि का पुत्र कृताहारं=कर लिया है भोजन जिसने ऐसे माम्=मुझको (शुक को) आदाय=लेकर सर्वैस्तैः=उन सभी मुनिभिः सह=ऋषियों के साथ उपसृत्य=पास पहुँच कर चन्द्रातपोद्भासिते=चाँदनी से प्रकाशित तपोवनैकदेशे=आश्रम के एक भाग में वेत्रासने=वेंत के आसन पर सुखोपविष्टम्=सुखपूर्वक बैठे हुए अनति दूरवर्तिना=समीप में ही विद्यमान जालपाद-नाम्ना= जालपाद नामक शिष्य द्वारा दर्भपवित्र धवित्र पाणिना=कुशों से पवित्र धवित्र=मृग चर्म के पंखे से युक्त हाथ से मन्दमन्दम्=धीरे-धीरे उपवीज्यमानम्= हवा किये जाते हुए पितरम्=(अपने) पिता से अवोचत्=कहा (बोला)।

अनुवाद—धीरे-धीरे चन्द्रदेव के (आकाश में) दूर पहुँच जाने पर चूने की धूलि समूह के समान चाँदनी से संसार के श्वेत हो जाने पर (अर्थात् चारों ओर चाँदनी छिटक जाने पर ओस के जल की बूँदों से (भार के कारण) धीरे-धीरे चलने वाली, खिलते हुए कुमुदों के समूह की कसैली सुगन्धयुक्त सांयकालीन हवा के बहने पर, बढ़ी हुई नींद (गाढ़ी नींद) के भार से अलसाई पुतलियों एवं आपस में गुंथी हुई बरौनियों (नेत्रलोमराजि) वाले, जुगाली आरम्भ करने से मन्द-मन्द मुख चलाने वाले, सुख से बैठे हुए आश्रम के मृगों ने उस (हवा) का स्वागत किया। अभी रात्रि का केवल आधा प्रहर ही बीता था कि भोजन किए हुए मुझको लेकर हारीत उन समस्त ऋषियों के साथ समीप जाकर चाँदनी से प्रकाशित आश्रम के एक भाग में बेंत के आसन पर आराम से बैठे हुए तथा समीप में ही जालपाद नामक (शिष्य) के द्वारा कुशों से पवित्र मृग चर्म के बने पंखे को हाथ में ले धीरे-धीरे जिन पर हवा कर रहा था ऐसे (अपने) पिता से बोला।

संस्कृत व्याख्या—शनैः शनैश्च मन्दं मन्दं यथा स्यात्तथा कालक्रमेणेत्यर्थः भगवति प्रभावशालिनि हिमस्रुति हिमं प्रालेयं स्रवति यः सः तस्मिन् प्रालेय वर्षिणि चन्द्रमसि दूरोदिते दूरम् उदिते आरूढे सति सुधाधूलि पटलेन इव सुधा भवन विलेपन-

चूनेति हिन्द्यां प्रसिद्धम् सुवायाः धूलयः पासवः तासां पटलेन समूहेन इव वै तपेन चन्द्रस्य शशिनः आतपेन आलोकेन चन्द्र ज्योत्स्नया इत्यर्थः जगति संसारे 'लीकृते अधवलं धवलं कृत मिति धवलीकृतं तस्मिन् श्वेतीकृते, अवश्यायजलबिन्दु मन्द गतिषु अवश्यायः हिमं तुषारो वा तस्य जल विन्दुभिः सीकर कणैः मन्दा धीरा गतिः संचारो येषां तेषु (समीरणेषु) विघटमानकुमुदवनकषाय परिमलेषु— विघटमानानां विकासं प्राप्यमाणानां कुमुदवनानां कैरवविपिनानां कषायः कषाय गुण विशिष्टः परिमलो गन्धो येषु तादृशेषु (समीरणेषु) समुपोढ निद्राभरालसतारकैः समुपोढः सम्यक् धारितः यः निद्रायाः भरः तन्द्राभारः तेन अलसे मन्थरे निश्चेष्टे वा तारके कनीनिके मेषां तैः तादृशैः अन्योन्यग्रथितपक्ष्मपुटैः अन्योन्यं परस्परं यथा स्यात्तथा ग्रथिते संसक्ते गुम्फिते वा पक्ष्मपुटे लोमसंपुटे यैस्तैः आरब्धरोमन्थमन्थरमुखैः आरब्धः उपक्रान्तः यः रोमन्थः चवित चर्वणम् तेन मन्थराणि अलसानि मुखानि वदनानि येषान्तैः तादृशैः आश्रममृगैः आश्रमस्य तपोवनस्य मृगैः हरिणैः अभिनन्दितागमनेषु अभिनन्दितं श्लाघितं प्रशंसितं वा आगमनम् उपस्थानं येषान्तेषु तादृशेषु निशामुख समीरणेषु निशायाः मुखं निशा मुखं प्रदोषकालः तस्य समीरणेषु पवनेषु सायंकालीन पवनेषु इत्यर्थः प्रवहत्सु सञ्चरत्सु सत्सु, विभावर्य्याम् रजन्याम् अर्द्धयाममात्रावखण्डितायाम् —अर्धयामस्येति अर्द्धयामः अर्द्ध प्रहर मात्रेण केवलम् अवखण्डितायाम् व्यतीतायाम् हारीतः जाबालिपुत्रः कृताहारम् कृतः विहितः आहारः फलादि भक्षणं येन सः तादृशम् माम् वैशम्पायन नामानं शुकम् आदाय गृहीत्वा सर्वैस्तैः समस्तै स्तैः मुनिभिः ऋषिभिः सह सार्धम् उपसृत्य पितुः समीपम् उपगम्य चन्द्रातपोद्भासिते चन्द्रस्य सुधांशोरातपेन ज्योत्स्नया चन्द्रिकया इत्यर्थः उद्भासिते प्रकाशिते तपोवनैकदेशे तपोवनस्य आश्रमस्य एकदेशे एकस्मिन भागे वेत्रासने वेतसरचित्त विष्टरे सुखोपविष्टम् सुखपूर्वक मासीनम् अनति दूरवर्त्तिना नाति दूरस्थायिना अर्थात् समीपस्थेन जालपादनाम्ना जालपादः नाम यस्य तेन जालपादः इत्यभिधानेन शिष्येण अन्तेवासिना दर्भपवित्रधवित्रपाणिना दर्भः कुशः तद्वत् पवित्रं पूतं धवित्रं मृगचर्म विरचितं व्यजनं पाणौ हस्ते यस्य सः तेन तादृशेन (जालपाद शिष्येण) मन्दमन्दम् शनैः शनै उपवीज्यमानम् व्यजनेन क्रियमाणपवनं पितरम् जनकं जाबालिम् अवोचत् अवादीत् ।

विशेष—रोमन्थ—पशुओं की एक प्रकार की भोजनचर्वण क्रिया। मृग आदि पशु पहले जल्दी-जल्दी किसी वस्तु को खा लेते हैं बाद में निश्चिन्त होकर बैठे हुए उस उदरस्थ वस्तु को थोड़ा-थोड़ा मुख में लाकर चबाते हैं, इसे जुगाली या रोमन्थ कहते हैं। मृगों में रोमन्थ क्रिया प्रायः समूह में बैठकर की जाती है। इसीलिये कालिदास ने लिखा है—

"छायाबद्ध कदम्बकं मृगकुलं रोमन्थ मभ्यस्यतु"

निशामुख—रात्रि का प्रारम्भ अर्थात् प्रथम प्रहर।

धवित्र—मृग चर्म से बना हुआ पंखा।

हे तात् ! सकलेयमाश्चर्य श्रवणकुतूहला कलित हृदया समु
तापस परिषदा बद्धमण्डला प्रतीक्षते व्यपनीतश्रमश्च कृतोऽयं पतत्रि
तदावेद्यतां यदनेन कृतमन्यस्मिन् जन्मनि कोवाऽयमभूद् भविष्यति
एवमुक्तस्तु स महामुनिरग्रतः स्थितं मामवलोक्य तांश्च सर्वानेका
श्रवणपरान् मुनीन् बुद्ध्वा शनैः शनैरब्रवीत्-"श्रूयतां यदि कौतूहलम्।

इति महाकवि बाणभट्ट विरचितायां कादम्बर्यां कथामुख समाप्तम्।

**शब्दार्थ**– हे तात् !=हे पिताजी, सकला इयम्=यह सम्पूर्ण आश्चर्य, **श्रवण कुतूहला कलित हृदया**=शुक विषयक आश्चर्य सुनने को उत्सुक हृदय वाली, **समुपस्थिता**=उपस्थित, **तापस परिषद्**=ऋषि सभा, **आबद्ध मण्डला**=मण्डलाकार बैठी हुई, **प्रतीक्षते**=(आपकी) प्रतीक्षा कर रही है। **व्यपनीतश्रमश्च**=और थकान रहित, **कृतः अयं**=कर दिया गया है यह, **पतित्त्रपोतः**=पक्षिशावक। **तद्**=अतः, **आवेद्यताम्**=बतलाइये, **यदनेन**=जो इसके द्वारा, **अन्यस्मिन् जन्मनि**=पूर्व जन्म में, **कृतम्**=किया गया है, **कोवाऽयम्अभूद्**=और यह (पहले) क्या था, **भविष्यति वा**=और (क्या) होगा। **एवम्**=इस प्रकार, **उक्तस्तु**=कहे जाने पर, **स महामुनिः**=उन महात्मा (जाबालि ने ), **अग्रतः स्थितम्**=सामने स्थित, **माम्**=मुझे (शुक को), **अवलोक्य**=देख कर, **ताश्च**=और उनको, **सर्वान् एकाग्रान्**=सभी एकाग्रचित्त, **श्रवण परान्**=सुनने के लिये तत्पर, **मुनीन**=ऋषियों को, **बुद्ध्वा**=समझ कर, **शनैः शनैः**=मन्द मन्द या धीरे–धीरे, **अब्रवीत्**=बोले, **श्रूयताम्**=सुनो, **यदि कौतूहलम्**=यदि जाने की उत्सुकता है।

**अनुवाद**–हे पिताजी ! (शुक विषयक) आश्चर्य (जनक वृत्तान्त) सुनने के लिये उत्सुक हृदय वाली मण्डलाकार बैठी हुई यह ऋषि सभा प्रतीक्षा कर रही है और इस शुक शिशु की थकान भी दूर कर दी गई है। इसलिये (आप) बतलाएँ कि इसने पूर्व जन्म में क्या (पाप कर्म) किया ? यह कौन था ? और भविष्य में क्या होगा ? इस प्रकार कहे जाने पर उन महात्मा जाबालि ने सामने स्थित मुझे देखकर तथा सभी एकाग्रचित्त सुनने के लिये तत्पर ऋषियों को समझकर धीरे–धीरे बोले–"यदि सुनने की उत्सुकता है तो सुनो।"

**संस्कृत व्याख्या**–हे तात ! हे पितः **सकला** सम्पूर्णा **इयम्** पुरःस्थिता **आश्चर्य श्रवण कुतूहला कलित हृदया** आश्चर्यस्य शुकविषयक विस्मयवार्तायाः श्रवणाय आकर्णनाय यत् कुतूहलं कौतुकं तेन आकलितं व्याप्तं हृदयं अन्तःकरणं यस्याः सा तादृशी **समुपस्थिता** समागता **आबद्धमण्डला** आबद्धम् विहितं मण्डलं वर्तुल पंक्ति रुपेणावस्थानं यया सा तथोक्ता **तापस परिषत्**=ऋषि सभा **प्रतीक्षते** भवद्वचनं परिपालयते च तथा **अयं पतत्त्रिपोतः** पुरोदृश्यमानः शुकशिशुः व्यपनीतश्रमः व्यपनीतः दूरीकृतः श्रमः खेदो यस्य सः तादृशः कृतः विहितः भोजनादिनाऽपगतक्लमो कृतः **तद्** अतः आवेद्यताम् बोध्यताम् **अनेन** शुक शिशुना **अन्यस्मिन्** जन्मनि पूर्वभवे यत् **कृतम्** यदनिष्टं विहितं यत्कारणात् पक्षियोनौ जन्म गृहीतवान् **अयं शुकः** को वा **अभूद्** पूर्व जन्मनि कः आसीत् **भविष्यति** वा अग्रे च को भविष्यति एवम् इत्थम् उक्तः कथितस्तु **स महामुनिः** सः ऋषिः जाबालिः **अग्रतः स्थितम्** पुरतः विद्यमानम् **माम्** शुकम् **अवलोक्य** दृष्ट्वा तांश्च **सर्वान्** मण्डलाबद्धान् समस्तान् पुरःस्थितान् **श्रवणपरान्** श्रवणोत्सुकान् **मुनीन्** ऋषीन् **बुद्ध्वा** ज्ञात्वा **शनैः शनैः** मन्दं मन्दम् अब्रवीत् अवदत्–श्रूयताम् निशम्यतां यदि **कौतूहलम्** यद्यौत्सुक्यम् वर्तते इति।

**विशेष**–इसमें शुक के पूर्व जन्म सम्बन्धी वृत्तान्त को सुनाने के लिये एकत्रित तापस सभा के समक्ष जाबालि के कथन की भूमिका प्रस्तुत की गई है। इसके पश्चात् मूल कथा प्रारम्भ होती है।

इति द्विवेदिवंशोद्‌भवेनरामदत्तकनिष्ठात्मजेन डाक्टरोपाधिभाजा चन्द्रशेखर द्विवेदिना कृत विस्तृत हिन्दी संस्कृत व्याख्यायां कादम्बरी कथामुखं समाप्तम्।

## परिशिष्ट : १
## (सूक्ति-संग्रह एवं अन्तःकथाएँ)

### सूक्ति-संग्रह

| | | पृ. सं. |
|---|---|---|
| १. | विषं महाहेरिव यस्य दुर्वचः सुदुःसहं सन्निहितं सदा मुखे। | ८ |
| २. | कटु क्वणन्तो मलदायकाः खला...........। | ६ |
| ३. | मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे-पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव। | ६ |
| ४. | सुभाषितं हारि विशत्यघोगलान्न दुर्जनस्यार्करिपोरिवामृतम्। | ११ |
| ५. | तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम्। | ११ |
| ६. | गुणा नृसिंहस्य नखाङ्कुरा इव। | २७ |
| ७. | सकल भुवनतल सर्वरत्नानाम् उदधिरिवैकभाजनं देवः। | ७३ |
| ८. | नहि करतलस्पर्शक्लेशितानामवयवाना मीदृशी भवति कान्तिः। | ११० |
| ९. | सर्वथा धिग्विधातारम् असदृशसंयोगकारिणम्। | ११० |
| १०. | अहो विधातुरस्थाने रूपनिष्पादन प्रयत्नः। | ११० |
| ११. | प्रायेण हि पक्षिणः पशवश्च भयाहारमैथुननिद्रासंज्ञामात्रवेदिनो भवन्ति। | १२१ |

### अन्तःकथाएँ

| | | |
|---|---|---|
| १. | राहु का अमृतपान। | ११ |
| २. | नरसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का वध। | ४१ |
| ३. | विष्णु का त्रिविक्रम-स्वरूप। | ४१ |
| ४. | विलासिनी वेष वाले विष्णु। | ६७ |
| ५. | अग्निशाप से शुकों में अस्पष्टता तथा हाथियों की जिह्व-परिवृत्ति। | १२३ |
| ६. | नहुष का अजगर होना। | १६४ |

## परिशिष्टः २
### बाण की प्रशस्ति में कतिपय सुभाषित

**राजशेखर–**

सहर्ष चरितारब्धाद्भुत कादम्बरी कथा।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमति क्षितौ।।

**त्रिविक्रमभट्ट–**

शश्वद्बाण द्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः।।

**कीर्तिकौमुदीकार–**

युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः।।

**आर्या सप्तशतीकार–**

जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथाव गच्छामि।
प्रागलभ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति।।

**तिलकमञ्जरीकार–**

केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः कृतसन्धान पुलिन्ध्रकृत सन्निधिः।।

**राघवपाण्डवीयकार–**

सुबन्धुर्बाणभट्टश्य कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणा चतुर्थो विद्यते न वा।।

त्रिलोचन–

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत्कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्।।

श्रीकण्ठ–

मेण्ठे स्वर्द्विरदाधिरोहिणि वशं याते सुबन्धौ विधेः।
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृशः।।

वाणपुत्र भूषणभट्ट–

कादम्बरीरसभरेण समस्तएवं
मत्तो न किञ्चदपि चेतयते जनोऽयम्।।
भीतोऽस्मि यत्र रसवर्ण विवर्जितेन
तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसन्दधानः।।

धर्मदास–

रुचिर स्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनोहरति।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।।

अज्ञातकवि–

हेम्नोभारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये वाणाय कुत्राद्य तत्।
या बाणेन तु तस्य सूक्ति निकरैरुट्टङ्किताः कीर्तय–
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ् मन्ये परिम्लानताम्।।

सोड्ढल

वागीश्वरं हन्त ! भजेऽभिनन्द–
मर्थेश्वरं वाक्पतिराजमीडे।
रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं
बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि।।

मधुराविजय लेखिका गङ्गादेवी–

वाणी पाणिपरामृष्ट वीणा निक्वाणहारिणीम्।
भावयन्ति कथं वान्ये भट्टबाणस्य भारतीम्।।

प्रसन्नराघवकार जयदेव–

हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चवाणस्तु बाणः।
केषां नैषां कथय कविता कामिनी कौतुकाय।।

चन्द्रदेव–

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरे–
ऽलंकारे कतिचित् तदर्थ विषये चान्ये कथावर्णने।
आः सर्वत्रगंभीर धीर कविता विन्ध्याटवी चातुरी–
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।।

परिशिष्टः ३

## महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. "कादम्बरीरसभरेण समस्त एवं मत्तो न किंञ्चिदपि चेतमते जनोऽयम्" पर टिप्पणी लिखिए।
२. कादम्बरी में उल्लिखित चाण्डाल कन्या का वर्णन कीजिए।
३. बाणभट्ट के अनुसार शूद्रक का चरित्र-चित्रण कीजिए।
४. गद्य-लेखन की दृष्टि से बाणभट्ट का मूल्यांकन कीजिए तथा इस प्रसंग में यह भी बताइए कि कथा और आख्यायिका से आप क्या समझते हैं।

.दम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते' इस पर एक लघु निबन्ध लिखिए।

'धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा' के भाव को स्पष्ट कीजिए।

'कादम्बरी संस्कृत गद्य काव्य की सर्वोत्तम रचना है।' इस कथन की समीक्षा करते हुये बाण शैली का विवेचन कीजिए।

कादम्बरी की काव्य सम्बन्धी विशेषताओं का निरूपण कीजिए।

९. कादम्बरी कथामुखंम् के सन्दर्भ में बाण गद्य के गुणों और दोषों का विवेचन कीजिए।
१०. संस्कृत गद्य काव्य में कादम्बरी कथामुख के स्थान के विषय में एक निबन्ध लिखिए।
११. संस्कृत गद्य साहित्य के उद्‌भव और विकास की समीक्षा कीजिए।
१२. कादम्बरी के काव्य सौन्दर्य की समीक्षा कीजिए।
१३. कादम्बरी कथामुखम् का काव्य सौष्ठव बताइये।
१४. कथा ग्रन्थ के रूप में कादम्बरी का मूल्यांकन कीजिए।
१५. 'बाणस्तु पञ्चाननः' इस उक्ति की यथार्थता का परीक्षण कीजिए।
१६. 'कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः' इस उक्ति की पुष्टि कीजिए।
१७. बाणभट्ट के जीवन और साहित्य साधना पर एक निबन्ध लिखिए।
१८. वाण की वर्णन शक्ति पर टिप्पणी लिखिए।
१९. वाण की वर्णन शैली की समीक्षा कीजिए।
२०. बाण की गद्य-शैली के वैशिष्ट्य का विवेचन कीजिए।
२१. "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्" इस उक्ति में निहित भाव को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।
२२. महाकवि बाणभट्ट की कल्पना शक्ति पर टिप्पणी लिखिये।
२३. बाणभट्ट की भाषा एवं शैली पर एक लघु निबन्ध लिखिए।
२४. वाण की उत्प्रेक्षाओं पर एक समीक्षात्मक टिप्पणी लिखिए।
२५. "यादृग्गद्यविधौ वाणः पद्यबन्धे न तादृशः" की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।
२६. 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' की सोदाहरण पुष्टि कीजिए।
२७. बाण के अनुसार संक्षेप में अगस्त्याश्रम का वर्णन कीजिए।
२८. 'प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव' इस सूक्ति की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।
२९. 'कविर्दण्डी सुबन्धुश्च वाणश्चेति कवित्रयी' समीक्षा कीजिए।
३०. 'वाणी बाणो बभूव ह' उक्त कथन को दृष्टि में रखकर महाकवि बाणभट्ट की काव्य शैलीगत विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
३१. बाणभट्ट की काव्य कला की समीक्षा कीजिए।
३२. महाकवि बाणभट्ट द्वारा प्रस्तुत प्रकृति वर्णन की समीक्षा कीजिए।
३३. संस्कृत गद्य परम्परा में बाणभट्ट का स्थान निर्धारित कीजिए।
३४. "केवलोऽपि स्फुरन् बाण : करोति विमदान् कवीन्।" इस उक्ति का उदाहरण देकर समर्थन कीजिए।

**"जिस प्रकार ढंग से सजायी गई वस्तुयें देखने में सुन्दर लगती हैं, ठीक उसी प्रकार शीर्षक व कुटेशनों की सहायता से लिखे गये उत्तर परीक्षक को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।"**

४३८

धि

का

बा

क

९. क

१०.

११.

१२